ISSN : 2319-7137 **Volume : 11/Issue : 01**
January-June-2020

INTERNATIONAL
LITERARY QUEST

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

Chief Editor

Prof. Ashok Singh
Hindi Department
Banaras Hindu University

Editor
Dr. Vikash Kumar
Dr. Surendra Pandey

©सम्पादक

प्रधान सम्पादक
प्रो0 अशोक सिंह
सम्पादक
डॉ0 विकास कुमार
डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
उप सम्पादक
डॉ0 नलिनी माथुर (एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भगिनी निवेदिता कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ0 विनय कुमार शुक्ल (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभागाध्यक्ष, रामानुजप्रतापसिंह देवशासकीय स्ना.महा.,बैकुण्ठपुर,कोरिया,छ.ग.)
सुनील कुमार सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अर्मापुर स्ना. महाविद्यालय, कानपुर)
कार्यकारी सम्पादक
डॉ0 सच्चिदानन्द चौबे (प्राचार्य, हंसराज राम लालदेई स्ना. महाविश्वविद्यालय, झुरिया, भगिनी, गोरखपुर)
मोहम्मद आदिल (असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भवन्स मेहता पी.जी. कालेज, कौशाम्बी, उ.प्र.)
आफताब आलम (शोध छात्र, प्रा.भा.इ.सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
सह सम्पादक
डॉ0 अजीत कुमार राय (गाजीपुर)
डॉ0 नीतू टहलानी (पूर्व शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
सुदर्शन चक्रधारी (शोध छात्र, प्रा.भा.इ. सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
प्रबन्ध सम्पादक
डॉ0 रिपुंजय कुमार सिंह (पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
डॉ0 रविशंकर पाण्डेय (रोहतास, बिहार)
राणा अवद्यूत कुमार (शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
विधि परामर्शदाता
डॉ0 रणजीत सिंह चौहान
अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय
ISSN : 2319-7137
मूल्य : रु0 250.00
सम्पादकीय पता
डॉ0 विकास कुमार
सिविल लाइन, तकिया रोड,
सासाराम, रोहतास (बिहार)
ई-मेल : internationalliteraryquest@gmail.com
मो0 : 09470828492, 9934468661
वेबसाइट- www.internationalliteraryquest.in
कम्पोजिंग
सुधीर कुमार, 7408996394
मुद्रक :
राजैरिया ऑफसेट
जगतपुरी, दिल्ली-110093

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित लेखों एवं उद्धरणों का दायित्व स्वयं लेखकों का है। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

संपादक मण्डल

प्रो0 अनीता सिंह

अंग्रेजी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 रवीन्द्रनाथ सिंह

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 प्रभाकर सिंह

हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 एस0 आर0 जयश्री

महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवन्तपुरम्, केरल

प्रो0 बी0 गनेशन

बैंगलोर विश्वविद्यालय, कर्नाटक

डॉ0 मिकी निशिओका

एसो0प्रो0 रिसर्च डिवीजन ऑफ एशियन, लैंग्वेजेज एण्ड कल्चर III रिसर्च इंस्टिच्यूट ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेजेज, ओसाका यूनिवर्सिटी, जापान

प्रो0 कीम उ जो

भारतीय अध्ययन विभाग, हाइकू यूनिवर्सिटी, दक्षिण कोरिया

प्रो0 आरिफ नजीर

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

डॉ0 सुनीता सिंह

शिक्षा संकाय, ली0 मोयने कॉलेज, सायराक्यूस, न्यूयार्क, अमेरिका

डॉ0 मृत्युंजय सिंह

एसो0 प्रो0, हिन्दी विभाग, एस0पी0 जैन कॉलेज, सासाराम, बिहार

डॉ0 सावित्री सिंह

संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास, बिहार

डॉ0 दिग्विजय सिंह

हिन्दी विभाग, के0डी0बी0 डिग्री कॉलेज, दुबहर, बलिया

डॉ0 प्रिया सिंह

राजनीतिशास्त्र विभाग, गुलाब देवी महिला, पी0जी0 कॉलेज, बलिया

डॉ0 विकास कुमार सिंह

असि0 प्रो0, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 राजकुमार उपाध्याय मणि

असि0 प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष, प्रयोजनमूलक हिन्दी, सरगुजा विश्वविद्यालय, अंबिकापुर, छत्तीसगढ़

डॉ0 वर्षा सिंह

असि0प्रो0 अंग्रेजी विभाग, देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

अनुक्रम

1.	मानसिक विकलांगता **डॉ0 आमोद कुमार सिंह**	10–18
2.	Criminal Behavior **Dr. Urmila Kumari**	19–26
3.	साहित्य में मूल्यों के संरक्षण की चुनौती **डॉ0 अरुण कुमार मिश्र**	27–31
4.	सर्कस कर्मियों के शोषण का दस्तावेज 'सर्कस' **डॉ0 रवीन्द्र कुमार यादव**	32–34
5.	गाँधीजी के आर्थिक चिंतन **कुमार रमन किरण**	35–41
6.	परंपरा एवं आधुनिक जीवन संघर्ष के शब्द चित्र **बिपिन कुमार सिंह**	42–45
7.	मौत का नगर' और 'खुदा और खुदा की लड़ाई' का तुलनात्मक अध्ययन **धर्मेन्द्र दास**	46–49
8.	**शांतिप्रिय द्विवेदी: युगबोध एवं रचना दृष्टि** डॉ. आराधना यादव	50–57
9.	हिन्दी उपन्यासों में नारी और उसका यौन मनोविज्ञान **डा0 बबीता भारती**	58–60
10.	भूमण्डलीकरण के युग में बिहार की सामाजिक संरचना : दशा एवं दिशा **डॉ० रूपक कुमार**	61–64
11.	वन्देमातरम् पत्रिका और बंगाल का नवजागरण **डॉ0 सिम्मी रानी**	65–73
12.	VS Naipaul: A talented Writer **Dr. Sumedha Sinha**	74–76
13.	Social Distancing in Anand's Untouchable **Dr. Sweta**	77–80
14.	Talkie Films on Mughals before Independence **Kaushal Kishor Sharma**	81–89
15.	नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताओं की अंतर्वस्तु **मनोज कुमार पाठक**	90–96

16.	प्रवासी साहित्य और 'रुकोगी नहीं राधिका' **डॉ0 नीलू अग्रवाल**	97—102
17.	भिखारी ठाकुर : नाच से आजादी का रिश्ता **डॉ० रेखा कुमारी**	103—105
18.	ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय पंचायती राज व्यवस्था का संक्षिप्त अवलोकन **डॉ० मधुकर आनन्द**	106—109
19.	छायावादोत्तर काव्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन **रिपुंजय कुमार सिंह**	110—114
20.	श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में मध्यवर्ग **डॉ0 नृपेन्द्र नारायण सिंह**	115—129
21.	नागार्जुन के उपन्यासों की अंतर्वस्तु का सामान्य विवेचन **चंदा रानी**	130—134
22.	A OVERVIEW ON FINANCIAL INNOVATION **Dr. Rajesh Pd. Kushwaha**	135—138
23.	शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों में स्वदेश प्रेम **डॉ0 राजेश रंजन यादव**	139—141
24.	The Decadence of Human Values in Tendulkar's The Vultures **Dr. Raj Kumar Mishra**	142—146
25.	भारतीय संगीत में वाद्यों की महत्वता **डॉ0 सारिका पटेल**	147—150
26.	अमरकांत की कहानियों की भाषा डॉ० सुलोचना कुमारी	151—166
27.	सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता की संभावनाएँ **डॉ० सुशील कुमार सिंह**	167—171
28.	"Cash Transfer Schemes Impact on social economic" condition **Dr. Uttam Kumar**	172—175
29.	LEVEL OF URBAN EDUCATION FACILITY: A CASE STUDY OF GOPALGANJ CITY **DR. VIKASH MAHTO**	176—186
30.	Indian Economy Depending On Agriculture **Dr.Vinay Kumar**	187—190

31.	Impact of Parenting Style and Family Pattern on Child Development **Prity Kumari**	191–199
32.	'गोदान' में स्त्री प्रतिरोध के स्वर **शिप्रा श्रीवास्तव**	200–203
33.	हिन्दी साहित्य में थर्ड जेंडर की अभिव्यक्ति **अंकिता देवी**	204–208
34.	Morphological Structure of Settlement in Bhojpur Plain **Dr. Archana Singh**	209–212
35.	AGRITECH- NEWER AND BETTER APPROACH IN AGRICULTURE FOR THE FUTURE **Dr. Binkteshwer Choudhary**	213–217
36.	Identification and Functional Hierarchy of Service Centers in Bhojpur Plain **Dr. Birendra Kumar**	218–221
37.	हिन्दी साहित्य पर गांधी के विचारों का प्रभाव **अजीत कुमार राय**	222–225
38.	NON-PERFORMING ASSETS IN INDIAN BANKING SYSTEM **Dr. Anand Raj**	226–231
39.	छायावाद का राष्ट्रीय संदर्भ **बैद्यनाथी राम**	232–236
40.	नयी कहानी : परिवेश और परिवर्तन **चन्द्र भूषण रजक**	237–239
41.	विद्यापति गीतों में भक्ति एवं वैराग्य भाव **डॉ0 रंजना कुमारी**	240–244
42.	भारत की कृषि समस्याएँ प्रयास एवं सुझाव **डॉ0 कामेश कुमार**	245–251
43.	Trends of Rural- Urban Migration and its impact on urban system in North-Bihar **DR. RAJU KUMAR**	252–263
44.	आज के समाज में मीड़िया की भूमिका **डॉ0 श्वेता सिंह**	264–267
45.	कबीर की भाषा **जितेन्द्र कुमार**	268–273

46.	''रहमान का बेटा'' और युगबोध **Dr. T. SREEDEVI**	274–275
47.	भारतीयता की पहचान **डॉ0 युवराज सिंह**	276–278
48.	अकबर का साम्राज्य : एक संक्षिप्त विवरण **डॉ0 आदित्य कुमार सिंह**	279–282
49.	भारत में शहरी विकास **डॉ0 अशोक कुमार साव**	283–289
50.	विद्यापति गीतों में भक्ति एवं वैराग्य भाव **डॉ0 रंजना कुमारी**	290–294
51.	भारतीय संगीत में वाद्यों की महत्वता **डॉ0 सारिका पटेल**	295–297
52.	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी के विविध रूप **डॉ0 शारदा कुमारी**	298–301
53.	महिला सशक्तिकरण पर आधुनिकीकरण का प्रभाव **डॉ0 राजकिशोर कुमार**	302–307
54.	भारतीय किसान खेती के साथ–साथ मोती की खेती कर अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला सकते है **डॉ0 कामेश कुमार**	308–313
55.	Role of Microfinance in India **Dr. Suresh Kumar**	314–319
56.	भारत की परमाणु नीति का विवेचनात्मक अध्ययन **डॉ0 राजेश कुमार श्रीवास्तव**	320–321
57.	अशोक के धम्म एवं उनके द्वारा निर्मित्त शिलालेखों का विश्लेषणात्मक अध्ययन **ममता रानी**	322–326
58.	वेदाङ्ग में कल्प सूत्र का महत्व **डॉ0 यशवन्त कुमार यादव**	327–328
59.	निराला काव्य का रचना – विकास एवं वैविध्य क्रम डॉ. शिल्पी कुमारी	329–332
60.	19वीं सदी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य के आईने में स्त्री छवि **लक्ष्मी पाठक**	333–337
61.	**समन्वयवादी संस्कृति के पुरोधा : जायसी** डॉ पंकज कुमार मिश्र	338–340
62.	मौर्यकालीन–कला एवं स्थापत्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन **ममता रानी**	341–344

63.	विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के प्रभाव का अध्ययन **डॉ0 अमर कुमार**	345–350
64.	''आचार्य भट्टोद्भटोद्भावित शब्दालङ्कार'' **डा0 आनन्द कुमार दीक्षित**	351–365
65.	कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रशासनिक भ्रष्टाचार संबंधी अवधारणा **डॉ0 जय शंकर सिंह**	366–369
66.	सरैया प्रखण्ड के लोगों के खान–पान से संबंधित प्रश्नावली **डॉ0 मोनिका कुमारी**	370–373
67.	Women and Their Heroic Qualities in the Novels of Willa Cather **DR. SANJEEV KUMAR**	374–378
68.	Management: Rule of Ancient & Present System" **Dr. Anuja Kumari**	379–382
69.	IRON TECHNOLOGY AND SOCIAL CHANGE IN MAURYAN INDIA **Dr. Rakesh Kumar Singh**	383–391
70.	Economic Life of the Settled Agriculturist in Jharkhand : A Study **Ratan Kumar Das**	392–395
71.	भारत–रूस आर्थिक संबंध : एक अध्ययन **डॉ0 शशि भूषण प्रसाद**	396–400
72.	A study of historical and cultural prospective in Antique Land by Amitav Ghosh **Dr. Sanjay Kumar Sharma**	401–403
73.	भारत में इतिहास दर्शन का विकास **डॉ0 राजेश कुमार सिंह**	404–409
74.	''औद्योगिक प्रतिष्ठानों की प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों का सहभाजन'' **डॉ0 विकास कुमार**	410–414
75.	Intertextuality in news headlines of select Russian newspapers **Md Waris Aqueel**	415–419
76.	DEVELOPMENT THROUGH DECENTRALIZATION **Dr. Ravindra Kumar**	420–424
77.	"सोमनाथ के उपन्यासों में समाजिक स्थिति" **स्नेहा सिन्हा**	425–426
78.	Walter Scott as a Historical Novelist **SUBHASH KUMAR**	427–432
79.	Jane Austen's Art of Characterization **SUBODH KUMAR**	433–437
80.	**अमृता प्रीतम के उपन्यास : औरत जात का सफरनामा** **विकास कुमार साव**	438–442
81.	**लाहौर अधिवेशन और पूर्ण स्वराज *(1929)* :** डॉ0 कुमारी संगीता	443–446
82.	मध्यकालीन भारत में स्त्री शिक्षा **नेहा सिंह**	447–451
83.	INDIAN PRESIDENT RULER OR RUBBER STAMP **Dr. Ajit Kumar**	452–455

84.	राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के पथ पर बाधा क्यों ? **डॉ0 रम्या जी एस नायर**	456–459
85.	नवगछिया अनुमंडल में केले की कृषि का भौगोलिक विश्लेषण **डॉ० सुमित कुमार सिंह**	460–463
86.	**CRITICAL STUDIES OF HUMAN RIGHTS AND HIGHER EDUCATION** Dr. Sunil Kumar	464–469
87.	**कोरोना महामारी, नारी एवं गांधी दर्शनः एक विवेचना** डॉ. प्रज्ञा पाण्डेय	470–480
88.	"Impact of Demonetisation:India" **Dr. Roopam Kumari**	481–487
89.	**اردوناول پرتحریکِآزادیکےاثرات** **محمدراشد،ریسرچ اسکالر،کلکتہ یونیورسٹی**	488–493
90.	हिन्दी उपन्यासों में वर्णित आदिवासी जीवन : सामाजिक दृष्टिकोण **डॉ0 अरविन्द कुमार**	494–501
91.	भोजपुरी लोकगीतों में व्यक्त समाज एवं संस्कृति **कु0 रेनू बाला**	502–505
92.	संयुक्त प्रान्त में गॉधी जी : कृषक आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में! **डॉ0 चन्द्रहास चॉद**	506–510
93.	पर्यावरण संरक्षण और अग्निहोत्र **डॉ0 मोनिका गर्ग**	511–516
94.	The Impact of Indian Agricultural revolutions **Dr. Sanjay Kumar**	517–520
95.	Jahangir as a patron of justice **Dr. Ananta Kumari**	521–524
96.	A Study of Agro-Industries in Bihar **Dr. Arti Jha**	525–527
97.	AGRARIAN LANDSCAPE IN BHOJPUR PLAIN **Dr. Birendra Kumar**	528–530
98.	निराला काव्य की युगीन अर्थवत्ता **डॉ स्मिता कुमारी**	531–536
99.	WOMAN EMPOWERNMENT AND DEVLOPMENT **DR. SANTOSH KUMAR SINGH**	537–541
100.	भारत में कृषि विकास के दीर्घकालिक अंग **डॉ0 अशोक कुमार सिंह**	542–546
101.	बिहार में पंचायती राज व्यवस्था एवं समुदायिक विकास कार्यक्रम **डा0 सुधीर कुमार**	547–550
102.	Cultural Geography of Bhojpur plain in Pre-Rajput period **Dr Shailendra Kumar**	551–555

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

मानसिक विकलांगता

डॉ0 आमोद कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग
बी.पी.एस. कॉलेज देसरी (वैशाली)

मानसिक विकलांगता एक व्यापक विकृति है, जो 18 वर्ष की आयु से पहले दो या दो से अधिक रूपांतरित व्यवहारों में और महत्वपूर्ण रूप से संज्ञानात्मक प्रक्रिया के विकार और न्यूनता के रूप में दिखता है। ऐतिहासिक रूप में इसे बौद्धिक क्षमता (आईक्यू) के 70 के भीतर होने के रूप में परिभाषित किया जाता है। कभी इसे लगभग पूरी तरह अनुभूति पर केंद्रित माना जाता था, पर अब इसकी परिभाषा में मानसिक क्रियाकलाप से संबंधित एक घटक और अपने वातावरण में व्यक्ति के कार्यात्मक कौशल दोनों को शामिल किया जाता हैं।

अनुक्रम

संकेत तथा लक्षण, कारण, संन्दर्भ

निदान

बुद्धि 70 से नीचे

अनुकूली व्यवहार की दो या अधिक क्षेत्रों में महत्वपूण सीमांए

इस बात के सबूत हैं कि सीमांए बचपन में ही स्पष्ट हो जाती हैं।

संकेत तथा लक्षण

मानसिक विकलंगता वाले बच्चों की तुलना में बाद में बैठन, घुटनों के बल चलना और पैरों पर चलना या बोलना सीख पाते हैं। मानसिक विकलांगता वाले वयस्कों और बच्चों दोनों में निम्नलिखित विशेषताएं देखी जा सकती हैः

- मोखिक भाषा के विकास में देरी
- स्मृति कौशल की न्यून्ता
- सामाजिक नियमों को सीखने में कठिनाई
- समस्या का हल करने के कौशल में कठिनाई
- स्वयं–सहायता या खुद अपनी देखभाल करने की क्षमता जैसे कौशल के अनुकूल व्यवहार के विकास में देरी.
- सामाजिक निषेध का अभाव

संज्ञानात्मक कामकाज की सीमाएं मानसिक विकलांगता वाले बच्चे में एक सामान्य बच्चे की तुलना में धीमी गति से सीखने और विकसित होने का कारण बनती हैं। ये बच्चे भाषा सीखने,

सामाजिक कौशल विकसित करने और अपने निजी जरूरतों जैसे कपड़ा पहनने या खाने जैसी जरूरतों का ख्याल रखने मे ज्यादा समय ले सकते हैं। वे सीखने में ज्यादा समय ले सकते हैं और पुनरावृत्ति की जरूरत होती है और उनके सीखने के स्तर दक्षता की जरूरत पड़ सकती है। फिर भी, वस्तुतः लगभग हर बच्चा सीखने, विकसित होने और समुदाय में हिस्सा लेने वाला एक सदस्य बन जाता है।

बचपन के प्रारंभ में हल्की मानसिक विकलांगता (आईक्यू 50–69) समझी नहीं जा सकती और जब तक कि बच्चे स्कूल नहीं जाते, इसकी पहचान नहीं हो सकती. यहां तक कि जब खराब शैक्षणीक प्रदर्शन की पहचान कर ली जाती हो तो भी सीखने की क्षमता कम होने के आधार पर हल्की मानसिक विकलांगता और भावनात्मक/व्यवहार संबंधी गड़बड़ीयों का आकलन करने के लिए विशेषज्ञता की जरूरत पड़ सकती है। हल्की मानसिक विकलांगता वाले व्यक्ति जब व्यस्क होते हैं तो उनमें से बहुत स्वतंत्र रूप से रहने और लाभकारी रोजगार करने में सक्षम हो सकते हैं।

औसत मनसिक विकलांगता(आईक्यू 35–49) लगभग जीवन के पहले साल के भीतर स्पष्ट होती है। औसत मनसिक विकलांगता वाले बच्चों को विद्यालय, घर और समुदाय में काफी समर्थन की आवश्यकता होती है, ताकि वे उन जगहों पर पूरी तरह से भागीदारी कर सकें. व्यस्क के रूप में वे एक सहायक सामूहिक घर में अपने मां–बाप के साथ रह सकते हैं या महत्वपूर्ण सहायक सेवाओं के जरिये उनकी मदद की जा सकती हैं, जैसे उनका वित्तीय प्रबंधन.

अधिक गंभीर मानसिक विकलांगता वाले व्यक्ति (उसके या उसकी) को पूरे जीवन काल तक और अधिक गहन समर्थन और निगरानी की आवश्यकता होगी.

कारण

डाउन सिंड्रोम, घातक अल्कोहल सिंड्रोम और फर्जाइल एक्स सिंड्रोमये तीन सबसे आम जन्मजात कारण होते हैं। हालांकि, डॉक्टरों को कई अन्य कारण भी मिले हैं। सबसे आम हैं:

- आनुवंशिक स्थितियां विकलांगता कभी कभी माता पिता से विरासत में मिले असामान्य जीन की वजह से, त्रुटिपूर्ण जीन गठबंधन या अन्य कारणों से भी होती है। सबसे अधिक प्रचलित आनुवंशिक स्थितियों में डाउन सिंड्रोम क्लिनफेल्टर्स सिंड्रोम, फर्जाइल एक्स सिंड्रोम, न्युरोफाइब्रोमेटोटिस, जन्मजात हाइपोथायरायडिज्म, विलियम्स सिंड्रोम, फनिलकेटोन्यूरिया (पीकेयू) और प्रैडरर–विली सिंड्रोमशामिल हैं।
  अन्य आनुवंशिक स्थातियों में शामिल हैः फेलेन मैकडर्मिड सिंड्रोम,(22 क्यू 13 डीईएल), मोवट–विल्सन सिंड्रोम, आनुंवांशिक सिलियोपैथी और सिडेरियस टाइप एक्स से जुड़ी मानसिक विकलांगता, जो पीएचएफ8 जीन में परिवर्त के कारण होती है। कुछ दुर्लभ मामलों में, एक्स और वाई गुणसूत्रों में असामान्यताएं विकलांगता का कारण बनती हैं। 48XXXX और 49 XXXX, XXXXX सिंड्रोम पूरी दुनिया में छोटी संख्या में लड़कियों को प्रभावित करता है, जबकि लड़को को 47 XYY, 49 XXXXY या 49 XYYYY प्रभावित करता है।
- गर्भावस्था के दौरन समस्याएं. जब भ्रूण का विकास ठीक तरह से नहीं होता है तो मानसिक विकलांगता आ सकती है। उदाहरण के लिए, भ्रूण कोशिकाओं के बढ़ने के समय जिस तरीके से उनका विभाजन होता है, उसमें समस्या हो सकती है। जो औरत शराब पीती है (देखें घातक अल्कोहल सिंड्रोम) या गर्भावस्था के दौरान रूबेला (एक वायरल रोग, जिसमें चेचक जैसे दाने निकलते हैं) जैसे रोग से संक्रमित हो जाती है तो उसके बच्चे को मानसिक विकलांगता हो सकती है।

- जन्म के समय समस्याएं. प्रसव पीड़ा और जन्म के समय अगर बच्चे को लेकर समस्या हो, जैसे उसे पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिले तो मस्तिष्क में खराबी के कारण उसमें (बच्चा या बच्ची) विकास की खामी हो सकती है।
- कुछ खास तरह के रोग या विषाक्तता. अगर चिकित्सा देखरेख में देरी हुई या अपर्याप्त चिकित्सा हुई तो काली खांसी, खसरा और दिमागी बुखार के कारण दिमागी विकलांगता पैदा हो सकती है। सीसा और पारे जैसी विषाक्तता से ग्रसित होने से दिमाग की क्षमता कम हो सकती है।
- आयोडीन की कमी, जो दुनिया भर में लगभग 20 लाख लोगों को प्रभावित कर रहा है, विकासशील देशों में निवारणीय मानसिक विकलांगता का बड़ा कारण बना हुआ है, जहां आयोडीन की कमी एक महामारी बन चुकी है। आयोडीन की कमी भी गण्डमाला का कारण बनती है, जिसमें थाइरॉयड की ग्रंथी बढ जाती है। पुर्ण रूप में थाइरॉयड के कारण पैदा रोग जिसे आयोडीन की ज्यादा कमी से पैदा हुई विकलांगता कहा जाता है, दुनिया के कुछ क्षेत्र इसकी प्राकृतिक कमी और सरकारी निष्क्रियता के कारण गंभीर रूप से प्रभावित हुए हैं। भारत में सबसे अधिक से 500 मिलियन लोग आयोडीन की कमी, 54 लाख लोग गंडमाला और 20 लाख लोग थाइरॉयड से संबंधित रोग से पीड़ित हैं। आयोडीन की कमी से जूझ रहे अन्य प्रभावित देशों में चीन और कजाखस्तान ने व्यापक रूप से आयोडीन से संबंधित कार्यक्रम चलाये, पर 2006 तक रूस मे इस तरह का कोई कार्यक्रम नहीं चलाया गया।
- दुनिया के अकालग्रस्त हिस्सों, जैसे इथियोपिया में कुपोषण दिमाग के विकास में कमी का एक आम कारण है।
- धनुषाकार पुलिका की अनुपस्थिति.

निदान

डायग्नोस्टिक एंड स्टेटिकल मैन्युअल ऑफ मेंटल डिजआर्डर्स (डीएसएम IV) के नवीनतम अंक के मुताबिक मानसिक विकलांगता की पहचान के लिए तीन तरह के मानदंडों को अपनाया जाना चाहिएः आईक्यू 70 से कम हो, दो या दो से अधिक क्षेत्रों में अनुकूल व्यवहार और वह सबूत, जिससे 18 वर्ष की उम्र से पहले सीमाएं स्पष्ट हो जायें.

इसका औपचारिक रूप से बुद्धि और अनुकूलन व्यवहार के पेशेवर आकलन से पता लगाया जा सकता है।

बुद्धि 70 से नीचे

अंग्रेजी भाषा का पहला बुद्धि परीक्षण द टरमैन–बिनेट फ्रांस के बिनेट द्वारा उपलब्धि की क्षमता को मापने के लिए एक उपकरण के रूप में विकसित किया गया। टर्मन ने इस परीक्षण का रूपांतरण किया और इसे मौखिक भाषा, शब्दावली, संख्यात्मक तर्क, स्मृति, मोटर की रफ्तार और विश्लेषण की क्षमता पर आधारित बौद्धिक क्षमता को मापने के एक साधन के रूप में स्थापित किया। इस तरीके से बुद्धि परीक्षण की संख्या 100 है, जिसमें एक मानक विचलन 15 (wais / Wisc-IV) या 16 (बिनेट–स्टैनफोर्ड) है। उप औसत बुद्धि के मौजूद होने पर विचार तब किया जाता है, जब दो मानक विचलनों का व्यक्तिगत स्कोर परीक्षण के अंक से कम हों. संज्ञानात्मक क्षमता (अवसाद, चिंता आदि) के अलावा दूसरे कारणों से भी बुद्धि परीक्षण अंक कम हो सकता है। मूल्यांकन करने वाले के लिए यह

महत्वपूर्ण है कि बुद्धि परीक्षण की माप ''औसत से काफी नीचे'' तय करने से पहले वह व्यक्ति को अलग करे.

मानक बुद्धि परीक्षण अंकों पर आधारित निम्नलिखित श्रेणियां अमेरिकन एसोसियेशन ऑफ मेडिकन रिटार्डेशन, डायग्नोस्टिक एंड स्टेटिकल मैन्युअल ऑफ मेंटल डिजआर्डर्स–IV–टीआर और इंटरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ डिजिजेज–10 पर आधरित हैः

वर्ग	बुद्धि लब्धि
गहरी मानसिक विकलांगता	20 के नीचे
गंभीर मानसिक विकलांगता	20–34
मध्यम मानसिक विकलांगता	35–49
हल्की मानसिक विकलांगता	50–69
औसत बौद्धिक कार्य	70–84

चूंकि रोग की पहचान अंक पर ही आधारित नहीं है, इसलिए एक व्यक्ति के अनुकूल कार्य करने के लक्षणों को भी ध्यान में रखना चाहिए और रोग की पहचान कठोर रवैये के साथ नहीं होना चाहिए। इसमें बौद्धिक परीक्षण अंक, अनुकूली व्यवहार की दर मापने के स्केल के आधार पर निर्धारित अनुकूलित कार्य अंक शामिल होता है, जो व्यक्ति के किसी परिचित द्वारा प्रदान की गईं क्षमताओं के विवरण पर आधारित होता है। यह मूल्यांकन परीक्षक की राय पर भी आधारित होता है, जो उसने सीधे उस व्यक्ति (पुरूष या महिला) की समक्ष, बातचीत के माध्यम या पसंद वाली भाषा के जरिये बात कर हासिल की है।

अनुकूली व्यवहार या अनुकूली कार्य स्वतंत्र रूप से रहने (या उम्र के न्यूनतम स्वीकार्य स्तर पर) के कौशल को दर्शाता है। अनुकूलित व्यवहार के आकलन के लिए पेशेवर व्यक्ति समान उम्र के अन्य बच्चों की कार्यात्मक क्षमता की तुलना करते हैं। अनुकूलित व्यवहार के आकलन के लिए पेशेवर संरचनात्मक साक्षात्कार का उपयोग करते हैं, जिसके माध्यम से वे व्यक्ति के समुदाय में व्यवहार के बारे में उन लोगों से व्यवस्थित जानकारी हासिल करते हैं, जो उसे अच्छी तरह जानते हैं। अनुकूली व्यवहार के लिए कुछ कौशल का होना महत्वपूर्ण हैः

जैसेः

- दैनिक जीवनयापन का कौशल, जैसे कपड़े पहनना, बाथरूम का उपयोग और खुद खाना,
- बातचीत का कौशल, जैसे, जो कहा गया उसे उसने समझा और उसके अनुरूप जवाब देने में सक्षम होना,
- साथियों, परिवार के सदस्यों, दंपतियों, वयस्कों व अन्य के साथ सामाजिक कौशल,

इस बात के सबूत हैं कि सीमाएं बचपन में ही स्पष्ट हो जाती हैं।

इस तीसरी स्थिति का उपयोग अल्जाइमर रोग या मस्तिष्क की क्षति के साथ गहरा आघात जैसे उन्माद की स्थितियों से अलग करने के लिए किया जाता है।

देख–रेख

ज्यादातर परिभाषाओं के मुताबिक मानसिक विकलांगता बीमारी के बजाय सही तौर पर विकलांगता मानी जाती है। एमआर (मानसिक विकलांगता) मानसिक बीमारी के कई रूपों जैसे स्कीजोफ्रेनिया या अवसाद से अलग किया जा सकता है। वर्तमान में एक स्थापित विकलांगता का कोई ''इलाज'' नहीं है, हालांकि उचित समर्थन और शिक्षण के साथ ज्यादातर व्यक्ति कई बातें सीख सकते हैं।

पूरी दूनिया में हजारों एजेंसियां हैं जो विकासमूलक विकलांगताओं वाले लोगों के लिए सहायता प्रदान करती हैं। उनमें सरकार द्वारा चलाई जाने वाली, लाभ के लिए और बिना लाभ की निजी एजेंसियां शामिल हैं। एक एजेंसी में बहुत सारे विभाग शामिल हो सकते हैं, जिनमें पर्याप्त कर्मचारियों वाले आवासीय घर, दिन के पुनर्वास कार्यक्रम, जिसमें अनुमानित रूप से स्कूल, कार्यशालाएं हो सकती हैं, जिसमें विकलांग लोगों को रोजगार मिल सकता है, वैसे कार्यक्रम, जिनके जरिये विकासात्मक विकलांग लोगों की मदद कर सकते हों,वैसे कार्यक्रम, जिनसे उनके बच्चों की परवरिश में मदद की जा सकती हो और इसके अलावा बहुत कुछ हो सकता है। इसमें भी कई विकासात्मक विकलांग बच्चों के माता पिता के लिए कई एजेंसियां और कार्यक्रम होते हैं।

इतिहास

कई पारंपरिक अर्थों में लंबा दिमागी दौरा दिमागी खामी के विविध स्तरों की ओर संकेत करता है, पर यह युफेमिज्म ट्रेडमिल व्यंजना का विषय है। आम प्रयोग में वे दुरूपयोग के साधारण रूप हैं। उनकी मनोरोग की तकनीकी परिभाषा अब अप्रचलित है और उसका केवल विशुद्ध ऐतिहासिक महत्व ही है। उन्हे पुराने कागजात, जैसे किताबें, शैक्षणिक कागजात और जनगणना फार्म का भी सामना करना पड़ता है।

मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े कुछ पेशेवरों ने इन शब्दों के उपयोग को हतोत्साहित करने के प्रयास किये हैं। फिर भी इनका प्रयोग बना हुआ है। नीचे दिए गए शब्दों के अलावा, सक्षिप्त नाम (रिटार्ड) मंदबुद्धि या (टार्ड) अभी भी अपमान के रूप में एक सामान्य प्रयोग में है। 2003 में बीबीसी की ओर से कराये गये एक सर्वेक्षण में रिटार्ड शब्द को स्पेस्टिक शब्दों की तुलना में विकलांगता सूचक शब्द को ज्यादा आक्रमक होने का दर्जा दिया गया।

- क्रेटिन सबसे पुराने और क्रिश्चियन के लिए फ्रांसीसी देसी शब्द के लिए प्रयोग किया जाता है। इसका निहितार्थ यह था कि उल्लेखनीय बौद्धिक या विकासात्मक विकलांगता वाले व्यक्ति भी ''मानव'' हैं और उनके साथ बुनियादी मानवीय गरिमा के साथ सलूक किया जाना चाहिए। इस तरह की हालत वाले व्यक्ति पाप करने के भी अयोग्य माने जाते हैं, इसलिए इन्हें ''मसीह की तरह'' माना गया है। 20वीं सदी के मध्य तक इस शब्द का उपयोग वैज्ञानिक रूप से नहीं किया जाता था और आम तौर पर अपशब्द कें रूप में माना गया : विशेष रूप से, 1964 में बेकेट नाम की फिल्म में राजा हेनरी द्वितीय अपने बेटे व वारिस को ''क्रेटिन'' कहकर पुकारा. ''क्रेटिनज्म'' शब्द का जन्मजात हाइपोथायरायडिज्म के अर्थ वाले के रूप में उपयोग किया गया, जिसमें कुछ हद तक मानसिक विकलांगता होती है।
- मंदबुद्धि का लंबा इतिहास रहा है, यह ज्याातार पागलपन के साथ जुड़ा है। मंदबुद्धि और पागलपन के बीच अंतर मूलतः इनकी शुरूआत के समय से आधार पर परिभाषित किया गया था। मंदबुद्धि का प्रयोग वैसे व्यक्ति के लिए किया जाता था, जिनके जीवन के प्रारंभिक काल में ही मानसिक कामकाज में खामी दिखने लगती है, जबकी पागलपन शब्द का उपयोग उन व्यक्तियों के लिए किया जाता हैं, जिनमें वयस्क होने के बाद मानसिक कमिंया विकसित होती

हैं। 1890 के दशक के दौरान, मंदबुद्धि शब्द का प्रयोग उनके लिए किया जाता था, जो मानसिक कमियों के साथ पैदा हुए थे। 1912 तक मंदबुद्धि का वर्गीकरण ''बेवकूफ, हीन बुद्धि और कमजोर दिमाग'' वाले व्यक्तियों के लिए किया जाता था और यह पागलपन वाली से अलग था, जो बाद के जीवनकाल में दिखता है।

- बेवकूफ बौद्धिक विकलांगता के सबसे ज्यादा स्तर के लिए इंगित किया जाता था, जहां मनसिक उम्र दो साल या कम की होती है और व्यक्ति सामाान्य शारीरिक खतरों के खिलाफ खुद की सुरक्षा नहीं कर सकते. इस शब्द ने धीरे–धीरे गहन मानसिक विकलागता की जगह ले ली.
- हीनबुद्धि का संकेत एक बौद्धिक विकलांगता की ओर है, जो मुर्खता तुलना में कम तीव्र है ओर कोई जरूरी नहीं कि यह वंशानुगत हो। अब यह आम तौर पर दो श्रेणियों में उप–विभाजित है : गंभीर मानसिक विकलांगता और सीमित मानसिक विकलांगता.
- हेनरी एच. गोडार्ड के प्रयासों से 1910 में अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द स्टडी ऑफ द फीबल माइंडेउ द्ववारा मोरोन शब्द को परिभाषित किया गया था ओर यह शब्द उन वयस्क व्यक्ति के लिए कहा गया, जिसकी मानसिक उम्र आठ से बारह वर्ष के बीच हो। इस स्थिति को अब हल्की मानसिक विकलांगता कहा जा रहा है। इन शब्दों की वैकल्किपक परिभाषाएं प्रयोग किये गये बुद्धि परीक्षणों पर आधारित है। ब्रिटेन में 1911 से 1959–1960 तक इस समूह को ''कमजोर दिमाग'' के रूप में संबोधित किया गया।
- मोंगोंजिज्म एक मेडिकल शब्द था, जिसे डाउन सिंड्रोम वाले लोगों की पहचान करने के लिए इस्तेमाल किया गया। कुछ स्पष्ट कारणों से मंगोलियाई पीपुल्स रिपब्लिक ने चिकित्सक समुदाय से अनुरोध किया है कि मानसिक विकलांगता के अर्थ में इस शब्द का उपयोग बंद किया जाये. 1960 के दशक में उसके अनुरोध को चिकित्सक समुदाय ने तब मान लिया, जब विश्व स्वास्थ्य संगठन सहमत हुआ कि चिकित्सक समुदाय में इस शब्द का इस्तेमाल नहीं किया जाये.

समाज और संस्कृति

विकासात्मक देरी वाले लोगों के प्रति इतिहास दयालु नहीं रहा है। पूरे इतिहास में विकासात्मक देरी वाले लोगों को निर्णय लेने और विकास के लिए उनकी क्षमता को अयोग्य और अक्षम करार किया जाता रहा है। यूरोप में आत्मज्ञान के प्रसाद तक देखभाल और आश्रय परिवारों व चर्च द्वारा प्रदान किया गया था, जिनमें भोजन, घर व कपड़े जैसी बुनियादी आवश्यकताओं के प्रावधानों पर ही ध्यान केंद्रित किया जाता था। रूढिबद्ध धारणा के मुताबिक कम बुद्धिवाला गंवार और संभावित रूप से नुकसानदेह प्रकृति वाले लोग एक समय सामाजिक व्यवहार में प्रमुख थे। पुनर्जागरण के दौरान समुदायों के लोगों को भेजते थे, जो विकासात्मक देरी से प्रभावित थे। वे इन्हें मूर्खो के जहाज कहते थे और वे दूसरे बंदरगाह दिखा देते थे, ताकि ये किसी दूसरे समूदाय मे चले जायें.

बीसवी सदी के शुरू में युजनिक्स आंदोलन पूरी दुनिया में लोकप्रिय बन गया। इसकी वजह से ज्यादातर विकसित देशों में बलात् नसबंदी और शादी के निषेध के लिए मजबूर करने की प्रवृत्ति दिखी और बाद में हिटलर ने यहूदियों के नरसंहार के दौरान मानसिक रूप से विकलांग लोगो की सामूहिक हत्या को तार्किक बताया. युजनिक्स आंदोलन बाद में गंभीरता रूप से त्रुटिपूर्ण हो गया और मानवाधिकारों का उल्लंघन होने लगा. इस तरह 20वीं सदी के मध्य तक जबरन नसबंदी और शादी से निषेध का अभ्यास ज्यादातर विकसित दुनिया में बंद हो गया।

18वीं और 19वीं शताब्दियों में व्यक्तिवाद के आंदोलन और औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए अवसरों के चलते मानसिक चिकित्सालयों के मॉडल पर आवास और देखभाल करने की प्रवृत्ति दिखी. लोगो को

उनके परिवारों से हटाकर (आम तौर पर बचपन में) बड़े संस्थानों में रखा जाने लगा, (3000 लोगों तक, कुछ संस्थानों में इससे भी ज्यादा लोगों को रखा गया, जैसे 19'60 के दशक मे पेंसिल्वेनिया राज्य के फिलाडेल्फिया सरकारी अस्पताल में 7,000 लोगो को रखा गया।) जिनमें से कई उसमें रहने वालों के श्रम की बदौलत आत्मनिर्भर थे। इनमें से कुछ संस्थानों में बहुत बुनियादी स्तर की शिक्षा दी जाती थी, लेकिन ज्यादातर का ध्यान केवल बुनियादी जरूरतों के प्रावधान पर ही केंद्रित रहा. इन संस्थानों की हालत काफी विविधता लिए हुए रही, लेकिन जो सहायता प्रदान की जाती थी, वह गैर–व्यक्तिवादी व विपथगामी व्यवहार लिए हुए थी और आर्थिक उत्पादकता के निम्न स्तर के कारण इन्हें समाज के लिए एक बोझ के रूप में माना गया। मादक दवाओं के अत्यधिक प्रयोग और सहायता की सामूहिक पद्धतियां अपनाई गईं ओर विकलांगता का चिकित्सकीय मॉडल बरकरार रहा. सेवाएं प्रदाता की सुविधा के हिसाब से प्रदान की जाती थीं, न कि व्यक्ति की मानवीय जरूरतों पर आधारित थीं।

वैकल्पिक शब्द

''मानसिक विकलांगता'' शब्द एक नैदानिक शब्द है, जो मानसिक कामकाज के अतार्किक श्रेणियों के समूह की ओर संकेत करता है, जैसे ''मूर्ख'' ''हीनबुद्धि'' ओर ''बेवकूफ'' जिसे प्रारंभिक बुद्धि परीक्षण के जरिये तय किया जाता है और जिसने आम बातचीत मे अपमानजनक अवधारणा ग्रहण कर ली. ''रिटार्डेड'' या ''रिटार्ड'' शब्दों को अपमान के तौर पर प्रयोग करने के कारण ''मानसिक विकलांगता'' शब्द का अर्थ निंदात्मक और लज्जाजनक अवधारणा वाला हो गया। इसे मंगलभाषी, जैसे ''मेंटली चैलेंज्ड'' या ''इंटेलेक्चुअल डिजेबिलिटी'' के तौर प्रतिस्थापित किया जा सकता है। जबकी ''विकासात्मक विकलांगता'' को अन्य विकारों में शामिल किया जा सकता है। ''विकासात्मक विकलांगता'' और ''विकासात्मक देरी'' आम तौर पर ''मानसिक विकलांगता'' से अधिक स्वीकार्य शब्द माने जाते है।

यूनाइटेड किंगडम

ब्रिटेन में ''मानसिक विकलांग'' एक आम चिकित्सकीय शब्द बन गया और इसने स्कॉटलैंड में ''दिमागी उप–सामान्यता'' तथा इंग्लैंड और वेल्स में ''मानसिक कमी'' शब्द की जगह ली. 1995 से 1997 तक ब्रिटेन के स्वास्थ्य विभाग के सचिव रहे स्टीफन डॉरेल ने एनएचएस के पदनाम को बदलकर ''सीखने की अयोग्यता'' कर दिया। नया शब्द अभी तक व्यापक रूप से समझा नहीं जा सका है और अक्सर इसका प्रयोग स्कूल के काम को प्रभावित करने वाले के रूप में किया जाता है, जो ब्रिटेन में ''सीखने में कठिनाई'' के रूप में जाना जाता है। ब्रिटिश सामाजिक कार्यकर्ता ''सीखने मे कठिनाई'' या उपयोग मानसिक विकलांग और डिस्लेक्सिया, डिसकैलकुलिय या डिसपाराक्सिया दोनों के संदर्भ में करते हैं। शिक्षा में ''सीखने की कठिनाइयों का प्रयोग व्यापक स्थितियों में किया जाता है: ''सीखने की विशिष्ठ कठिनाईयों'' को डिस्लेक्सिया, डिसकैलकुलिया या डिसपाराक्सिया कहा जा सकता है, जबकि ''सिखने की औसत कठिनाइयां'', ''सीखने की गंभीर कठिनाइयां'' और ''सीखने की विशिष्ठ कठिनाइयां'' स्थितियां अधिक महत्वपूण्र हानि के लिए प्रयोग की जाती हैं।

1983 और 2008 के बीच इंग्लैंड और वेल्स में मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1983 को ''मानसिक हानि'' और ''गंभीर मानसिक हानि'' को ''एक रूके हुए या अपूर्ण मस्तिष्क विकास के रूप में परिभाषित किया गया, जिसमें बुद्धि और सामाजिक कामकाज की उल्लेखनीय/गहन कमी'' है और संबद्ध व्यक्ति असामान्य रूप से आक्रामक व्यवहार और गंभीर रूप से गैर–जिम्मेदार आचरण करता हो।'' इसमें व्यवहार भी शामिल किया गया, फिर भी ये आवश्यक रूप से स्थायी स्थितियां नहीं थीं : उनकी परिभाषा इसलिए दी गई कि उन्हें अस्पताल या अभिभावक के संरक्षण रखने के लिए अधिकृत किया जा सके.

नवंबर 2008 में मानसिक कमजोरी शब्द अधिनियम से हटा दिया गया, लेकिन हिरासत में रखने का आधार बना रहा. हालांकि, अंग्रेजी लिखित कानून अन्यत्र ''दिमागी कमजोरी'' का प्रयोग कम अच्छी तरह से परिभाषित तरीके से करता है, जैसे उन्हें करों में छूट दी जाती है, जिसका अर्थ है कि उस मामले में व्यवहार संबंधी समस्याओं के बिना मानसिक विकलांगता है।

यूनाइटेड किंगडम में बीबीसी द्वारा कराये गये एक सर्वेक्षण में यह निष्कर्ष निकला कि ''रिटार्ड'' विकलांगता से संबंधित सबसे आक्रामक शब्द था। इसके विपरीत सिलेब्रिटी बिग ब्रदर कार्यक्रम में एक प्रतियोंगी ने लाइव प्रसारण के दौरान इस मुहावरे का इस्तेमाल किया कि ''वाकिंग लाइक ए रिटार्ड'' तो लोगों और चैरिटी मैनकैप की शिकायतों के बावजूद कम्नेयुनिकेशंन्स रेगुलेटर ऑफकॉम ने शिकायत को यह कहते हुए स्वीकार नहीं किया कि ''मैनं इस शब्द का आक्रामक संदर्भ में नहीं, बल्कि मनोरंजक मूड में प्रयोग किया'' हालांकि यह भी देखा गया कि पिछले दो दूसरे शो में ऐसी शिकायतों को वाजिब ठहराया गया था।

अन्य

''मानसिक विकलांगता'' शब्द का अब भी ऑस्ट्रेलिया में प्रयोग किया जाता है, तथापि ''बौद्धिक विकलांगता'' को अब और अधिक आम विवरणक के रूम में इस्तेमाल किया जाता है।

सन्दर्भ :

1. "2h.com"(http://www.2h.com/articles/iq-tests/the-relevance-of-iq-scores.html) .2h.com अभिगमन तिथि 2010.06.29.
2. badano, Jose L.; Norimasa Mitsuma, Phil L. Beales, Nicholas Katsanis (September 2006). "The Ciliopathies : An Emerging Class of Human Genetic Disorders". Annual Review of Genomics and Human Genetics. 7: 125-148. PMID 16722803. डीओआइः10. अभिगमन तिथि 2008.06.15.
3. Siderius LE, Hamel BC, van Bokhoven H; एवं अन्य "X-linked mental retardation associaed with cleft lip/palate maps to Xp11.3-q21.3". Am.J.Med. Genet. 85 (3): 216-220.PMID 10398231.Explicit use of et al. in:!author=(मदद)
4. Laumonnier F, Holbert S, Ronce N; एवं अन्य (2005). "Mutations in PHF8 are associated with X linked mental retardation and cleft lip/cleft palate". PMID 1619951. डीओआइ:10.1136/jmg.2004.029439. explicit use of et al.in:! author=(मदद)
5. McNeil, Donald G., Jr. (2006-12-16)."In Raising the World's I.Q., the Secret's in the salt". The New York Times. अभिगमन तिथि 2009.07.21
6. Wines,Michael (2006-12-28). "Malnutrition Is Cheating Its Survivors, and Africa's Future" दि न्यू यॉर्क टाइम्स. अभिगमन तिथि 2009-07-21.
7. सुनदरम एसकेए सिवास्वामी एल, मक्की एम्आई,बेहेन एम्इ, चुगानी एचटी.(2008).अज्ञात एटियलजि की वैश्विक विकासात्मक देरी के साथ बच्चों में वक्र पूलिका का अभावः एक प्रसार तानिका इमेजिंग अध्ययन.जम्मू पीडीएटर 152(2):250-5. 18206698 (PMID)

8. "eMedicine – Mental Retardation: Article by C Simon Sebastian, MD" अभिगमन तिथि 2007-08-23.
9. Kalachnik, JE.; Hanzel, TE.; Sevenich, R.; Harder, SR. (2002). "Benzodiazepine behavioral side effects: review and implications for individuals with mental retardation".. Am J Ment Retard. 107 (5): 376-410. PMID 12186578.डीओआइ :10.1352/0895-8017 (2002)107<0376:BBSERA>2.0.CO;2 नामालूम प्राचल lmonth की उपेक्षा की गयी (मदद)
10. मंदबुद्धि, शैक्षिक विकलांगता मर्फी,एम.लाइन.28.02.2007 09.01.2008 को पुनः प्राप्त.।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Criminal Behavior

Dr. Urmila Kumari

Asstt. Professor, Deptt. Of Psychology
L.P. Shahi Degree College, (Ganipur), B.R.A Bihar University Muzaffarpur

Criminal behaviour is a function of norms which are discriminative for criminal behaviour, the learning of which takes place when such behaviour is more highly reinforced than noncriminal behaviour.

ABSTRACT

Learn more about Criminal Behaviour
Understanding the People on the Scene
Littlejohn Shinder, Michael Cross, In Scene of the Cybercrime
Serious Psychiatric Illness
Criminal behaviour is not, itself, indicative of mental illness. If it were, perhaps it could be treated medically. However, some criminals are motivated to engage in illegal and antisocial behaviour by underlying psychiatric conditions, especially those conditions that manifest themselves in symptoms such as lack of impulse control and lack of inhibition, hallucinations and delusions, paranoia, hyper-activity, and inability to concentrate or possession of impaired communication skills.

Persons suffering from personality disorders, schizophrenia, bipolar affective disorder, aggression, depression, adjustment disorders, and sexual disorders such as paraphilias are prone to criminal behaviour, according to "Psychiatric Illness Associated with Criminality," by William H. Wilson, MD, and Kathleen A. Trott, MD. Illegal conduct can also stem from drug- or alcohol-induced psychosis or conditions caused by traumatic brain injury.

It might be easier for such persons to hide their mental illness in the online community, where they don't have to come into physical contact with others, than in the offline world. Cybercrime that is motivated by psychiatric illness can be difficult to investigate and solve, precisely because the criminal's motivations don't seem logical or rational. We can understand why a money-motivated offender commits crimes, even though we don't approve of the behaviour. However, we might not be able to easily understand the actions of a mentally ill person.

***KEYWORD*:** *J.E. Arboleda-Florez, in International Encyclopaedia of the Social &Behavioural Sciences, 2001*

INTRODUCTION

Criminology: Psychopathological Aspects

Biological Determinants of Criminality

Criminal behaviour can be explained on sociological or anthropological terms or as responding to biological substratum require a biological layer of explanation through biological alterations, cerebral damage caused by prenatal insults or head trauma, or acute intoxication.

1. Personality

Some physiological correlates of personality are also related to criminality, especially by individuals with antisocial and psychopathic personalities. Higher thresholds for excitability and higher impulsivity accompanied by lower levels of skin conductance, pulse, and electroencephalographic markers for excitability than found among normal individuals are found among psychopaths which could explain their thrill-seeking behaviours (Hare 1982).

Similarly, low pulse has been found to be related to regulatory patterns of inhibitory conduct among adolescents, juvenile delinquents, and those diagnosed with conduct disorders.

2. Cerebral Damage

Neuropsychological tests could demonstrate cerebral damage, but this is best done with imaging. MRI, PET scans, and SPECT examinations have demonstrated frontal lobe damage among extremely violent individuals, serial murders, and non-psychotic personality disordered persons (Goyer and Semple 1996). Cerebral pathology is related to intermittent explosive disorders, and frontal lobe insults have been associated with levels impulsivity (Barratt 1987) which in turn have been related to levels of serotonin (Brown et al. 1989).

psychopathological aspects

3. Genetics and Heredity

A familiar component has been described relating antisocial behaviour, criminality, and violence, which in turn are related to paternal violence, poverty, single parent families, and rough neighbourhoods. These interfamily variation factors, as known in genetic epidemiology, change from family but remain constant as a load in one single family. It is not possible, yet, to differentiate within members of a family the quantities that could be attributed to the genetic load (genotype) from that attributed to the environment and that result on a particular form of behaviour (phenotype). Link and association studies demonstrate that some genetic disorders such as alcoholism, Gilles de la Torte syndrome, and the fragile-X Syndrome could be related to antisocial behaviour and violence (Carey 1994). Furthermore, adoption studies of twins indicate that there exists a genetic relation between antisocial personality and alcoholism (Cadoret et al. 1986).

4. Intoxicating Substances

Toxic substances are common correlates of criminal behaviour either ingested voluntarily or through exposure in the environment. The impact of alcohol on infants in uteri resulting in fatal alcohol syndrome syndrome or intellectual damage suffered by normally born babies

exposed to high levels of lead in the environment are well documented. Developmental delays and injuries to the developing brain are risk factors for criminality. Alcohol has a well-known impact on the frontal lobes (Baron and Richardson 1994) which are in charge of inhibitory Functions, and on the limbic structure in charge of vegetative and instinctive functions. The effects of alcohol and drug are well known in forensic psychiatry because of violent crimes including sexual attacks committed while intoxicated and the emergence of dissociative and automatic states of mind (Arboleda-Florez 1999). Figures bear this relationship, 42 percent of arrested individuals are inebriated and 29 percent are under the effects of drugs at the time of arrest. Furthermore, 57 percent had used drugs within one month prior to their arrest, and 83 percent of inmates in state prisons and 73 percent of those in federal prisons had utilized drugs at some time in their lifetimes (Mumola 1998).

5. Biological Reductionism

Some authors have expressed a concern that biological explanations could lead to a fruitless search for easy solutions to the complexities of crime. They point out that such way of thinking could distort the truth because of the weight paid to biological facts, could raise false hopes for easy solutions, and could engender fears, prejudice, and apprehensions in the population worse than the actual dangers represented by crime (Brain 1984). Myths surrounding biological investigations of crime have retarded the development of this profitable area of research (Stoff and Cairns 1996).

THETHEORETICAL PERSPECTIVES OF CRIMINAL BEHAVIOURS AND DEVELOPMENTAL CRIMINOLOGY

Carina Coulacoglou, Donald H. Saklofske, in Psychometrics and Psychological Assessment, 2017.

Theories of criminal behaviour

Criminal behaviour, or offending, is generally defined as any overt or covert law-breaking conduct in a given country or state, punishable upon conviction. The two main broad categories are property crimes (e.g., Public disturbance, illegal drug use, prostitution) and white-collar crime (i.e., offenses committed by public officials, or offenses against a corporate entity by individuals who are employed by the corporation). The term delinquent behaviour (or delinquency) generally refers to offenses committed by adolescents, while the term criminal behaviour refers to adult offending. The definition of criminal behaviour is limited in that it only makes reference to offenses that are detected by the criminal justice system.

The aforementioned types of criminal behaviour can be explained in four dimensions: reckless behaviour (e.g., substance use, risky sexual behaviour, risky motor vehicle use, gambling, etc.), authority conflict (e.g., at home, at school, etc), covert delinquency (e.g., violence, vandalism, etc.). In turn, the co variation among these four factors can be explained by a general factor or dimension which is referred to as general deviance or antisocial syndrome (Le Blanc, 2009). The distinction between different forms of antisocial behaviour is important for developmental criminology, due to the potentially distinct etiologist

underlying these different behaviours (Tackett, Krueger, lacono, & McGue, 2005) and the fact that their development may closely interact across the life course (Le Blanc, 2012).

Domestic violence does not only-or even mostly - consist of acts of physical violence, although these are often present, It includes psychological and emotional tactics, including threats, isolation, and undermining of self-confidence. The severity of its impacts centre on the common operation of fear, terror, and control (e.g., Stark, 2007). Domestic violence is a widespread and everyday phenomenon in higher- and lower- income countries alike that appears to cut across boundaries of class, age, ethnicity, and sexual orientation (McCue, 2008). A review of European studies suggests that around one in four women experience domestic violence over their lifetimes, and 6%-10% in any given year (Council of Europe, 2002). Men make up 10%-30% of victims of domestic violence (Hester, 2009; Walby & Allen, 2004). Domestic violence is marked by its repeated and long-term nature and is a social issue that has serious consequences for the physical and mental health of those who experience it; it is a major cause of family breakup, affects patterns of housing and income, and has far-reaching implications for the well-being, social, and emotional development of children's mental health (Abrahams, 2010; Hester et al., 2006).

Biological and trait theories

There are two major categories of theories: biological trait theories. Biological factors include brain functioning (Seguin, Pinsonneault, & Parent, 2015), neurotransmitters, physiological arousal, neurotoxins, genetic influences, and gene-environment interactions (Beaver, Schwartz, & Gajos, 20145). Raine (2013) proposed that genes influence brain structure and brain structures influence violence. According to Loeber and Pardini (2008), The relationship between biological factors and violence is not always derect. These authors suggest that the impact of biological on violence is mediated by personality traits, such as ager and impulsivity (e.g., Blair, 2012).

Personality theories of criminal behaviour

Psychological, and particularly trait, theories are generally known as propensity theories in criminology. There are three kinds of theories suggesting a connection between personality traits and criminal aggressive behaviour (CAB). First there are those covariates that correlate with antisocial behaviour, or differentiate criminals and noncriminal. Second, there are theories posting that personality traits can influence the decision about and perpetration of crimes. Third, there are theories suggesting that early dispositions (Temperament or personality traits) have a causal or explanatory contribution, either direct or indirect, in increasing the risk of CAB onset. For these theories personality traits are risk factors, not simply covariates. Agnew (2005) suggested that two broad personality traits are important factors related to antisocial involvement, namely low self-control and high irritability (or anger). Lahey and Waldman (2003) also proposed a developmental propensity model to explain the onset of CAB. The authors suggested that high negative emotionality and daring (boldness, thrill seeking, and recklessness) and low prosociality (helpfulness, sympathy for other) during childhood increase the risk of developing later antisocial behaviour. Delisi and

Vaughn (2014) proposed that children with low effortful control and high negative emotionality are at higher risk for developing a perpetual pathway of antisocial behaviour.

Eysenck (1996) also proposed a criminological theory in which personality traits play a central role. He proposed that Individuals inherit predispositions to behave or react in predictable ways under specific environmental conditions. According to Eysenck, Individuals high on the scale of extraversion, neuroticism, and psychoticism (which should arguably have been labelled disinhibition or psychopathy) are more likely to commit crimes.

Psychopathy theory is important for understanding the connections between personality traits and CAB (DeLisi, 2009; Lynam & Derefinko, 2006). Psychopathy is a complex construct encompassing an individual's personality characteristics. For example, Factor analyses of Hare's (2003) Psychopathy Checklist- Revised (PCL-R) items suggested four correlated factors, namely (1) interpersonal functioning (Narcissism, Machiavellianism), (2) affective functioning (Callousness, unemotionality), (3) Impulsive lifestyle (Impulsivity, stimulation seeking), and (4) antisocial behaviour (Past and current). The first three factors are clearly related to personality traits (Lynam & Derefinko, 2006).

The personal, Interpersonal, and community-reinforcement (PIC-R) theory was developed specifically to explain criminal behaviour. It integrates control and learning perspectives while giving attention to the strongest predictors of criminal behaviour: antisocial attitudes, antisocial associates, antisocial personality, and a history of antisocial behaviour. One can see the link between this theory and others in some of these predictors.

CONCLUSION

More generally, the PIC-R theory (Andrew & Bonta, 2003, 2006, 2010) suggests that the balance of benefits and costs from a particular anti social act will determine whether it will be committed or not. There are four types of factors that influence this balance and determine whether a crime is committed: personal (e.g., anti social attitudes, personality), interpersonal (e.g., antisocial associates, family), Community (e.g., neighbourhood influences), and situational (e.g., opportunities, stressors). For example, the personal factors of antisocial attitudes and personality may influence whether one derives self-reinforcement from a criminal act. In addition, interpersonal factors, such as antisocial associates, may influence whether one receives social reinforcement for a criminal act.

MORE THAN PERCENT ADOLESCENTS/YONG ADULTS (ECOLOGICAL)

Because criminal behaviour is most common among persons in their teens and twenties (as documented above), numerous ecological studies have examined crime/ delinquency rates in association with the proportion of a population that is in the age range of about 15-30. Most of these studies have involved comparing neighbourhoods in large metropolitan areas based on information about population age distributions derived from census data. The exact age ranges utilized in these studies have varied from 15 to 24. 15 to 29, and even 15 to 34.

Results from relevant studies are summarized in Table 1. As one can see, the findings are quite mixed, although a slightly greater number of studies suggest that there is either a

positive correlation or a non- significant correlation between the percentage of adolescents and young adults in populations and the official crime rates in those populations.

Appendix B : Target Behavioural Domains

Criminal behaviour

(1)No police contacts, (2) no police contacts and school suspensions/detentions, (3) no police contacts, school suspensions/detentions, and neg. school reports

Drug use

(1) no evidence of hard drug use (2) no evidence of hard drug use and pot (3) no evidence of drugs and alcohol.

Conduct in therapy

(1) attended scheduled session, (2) on time for scheduled session (3) cooperated during session.

School attendance

(1) effort to enroll in school (2) verification of ____% school attendence, (3) verification of ___% school attendance.

Curfew

(1) curfew till _____, (2) curfew till _____, (3) curfew till _____.

Caregiver informed about whereabouts

(1) day without intentionally damaging property, (2) day without raising voice at of caregiver, (3) day without raising voice at caregiver & compromise in disagreements

Table precent Adolescent/ Young Adults and Offending Rates (Ecological).

Nature of Relationship	Official Data Violent, Sex, or Property	General	Delinquency
	EUROPE France: Zehr 1976:59 (neighborhoods, property) **LATIN/CARIBBEAN AMERICA** Brazil: Dellasoppa & amp; Beltrao 2005:1938 (Homicide) **NORTH AMERICA** United states: schuessler 1962:316* (15-35, in cities, murder, assault, burglary, auto theft); Sagi & amp; Wellford 1968; Gastil 1971 (states, violent); Byrne 1986:91 (cities, property); McDowall 1986;29 (violent) stack 1987:536 (homeicides between 1950 and 1980, 16-34); Gazel et al. 2001:69* (violent, Counties in Wisconsin, % 18-34); Imrohooglu et al. 2004 (property, 1970-1996, % 15-24);	**EUROPE**Netherlands Van Wilsem et al 2006: 236 neighborhoods) **NORTH AMERICA**United States: Pogue 1975 cities); Choldin amp; Roncek 1976: 25 (cities); Markowitz 2000: 59 ages 15–34, cities)	**NORTH AMERICA** United States: Osgood & amp; Chambers 2000 (violent, arrests, counties;% juveniles)

Positive	Reid et al. 2005:769* (Metropolitioan areas, no controls, % 15-29, property) **INTERNATIONAL** Multiplo Countries: Hansmann amp; Quigley 1982 (cross - country, violent; Conklin & amp; Simpson 1985 (cross country, violent); Pampel & amp; Gartner 1995 (cross - country, violont): Noumayer 2003 (homicide,% s ages 15-24); LaFree & amp; Tsoloni 2006 (homicide,% ages 15-24): Jacobs & amp; Richardson 2008 (homicide,% 38, ages 15-20); Quimet 2012: 249 (agos 15-29, +45)		
Not significant Negative	**EUROPE** Multiplo Europoon Countries: McCall & amp; Nieuwboerta 2007117 (% 16-24 in large cities) **NORTH AMERICA** United Statos; Schuessler 1962: 316. (15-35, cities, robbery), Choldin & amp; Roncek 1976: 25 (cities, v iolent); Parkor & amp; Smith 1979 (statos, violent); Smith & ampa Parker 1980 (statos, violent); DeFronzo 1983 (cities, violent); Messner cities, violent); Huff - Corzine et al. 1986 (states, violent); Kovandzic 1998 585 (cities, violent); Gazel et al. 2001: 69. (property, counties in Wisconsin,% 18–34); Maume & amp; Lee 2003: 1162 homicide,% 15–29 urban counties); Reid et al. 2005: 769 metropolitan areas, no controls,% 15–29, violent); Kubrin & amp; ishizawa 2012: 161 (violent, large city neighborhoods,% adolescent os); Mielke & amp; Zahran 2012: 51 (assaults,% 15–14 in large cities); PL McCall et al. 2013: 177 (15-20, cities) **INTERNATIONAL** Multiple Countries: Messner 1989 (cross - country violent); Gartner 1990 (homicide, cross - country, violent); Neapolitan 1994 (homicide, cross - country, violent); Neapolitan 1997 (homicide% under 15); Parker 1998 (homicide,% 15–29) Savolainen 2000 (homicide,% 15–29); Fajnzylber et al. 2002 (homicide.% O's 15 29); Pridemore 2008 (homicide, is, ages 15–29); Chon 2010 (homicide,% 20–34); Messner et al. 2010 (homicide): Chon 2012: 740 (homicide,% 20-34) **NORTH AMERICA**United States: Bailey 1984 (cities, violent); Hannon 1997 (cities violent); Fox & amp;	**NORTH AMERICA**Canada Furlong & amp; Mehay 1981: 53; United States: DeFronzo 1984: 208 (cities)	

	Piquero 2003.346 homicide,% 14–24, time - series); Lanier & amp; Huff - Corzine 2006: 189 (homicide,% 15–29, counties, among Native Americans **INTERNATIONAL**Multiple Countries: Lee & amp; Bankston 1999 homicide); Hoskin 2001 (homicide,% os 15–34): Howard & amp; Smith 2003 (homicide,% under 15); Altheimer 2008Altheimer, 2008aAltheimer, 2008b (homicide,% ages 15–34); Agha 2009 (homicide,% 15–29), Stamalel 2009 (homicide); Chon 2011 (homicide,% 20-34)		

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

साहित्य में मूल्यों के संरक्षण की चुनौती

डॉ0 अरुण कुमार मिश्र

असि0प्रोफेसर, हिन्दी, एम0डी0पी0जी0 कालेज, प्रतापगढ़

मूल्य शब्द लैटिन भाषा के वलेरे (Valere) तथा अंग्रेजी के Value से बना है। संस्कृत में 'मूल्' धातु में यत् प्रत्यय करने पर मूल्य शब्द बनता है जिसका अर्थ कीमत, मजदूरी है। मूल्य वह शब्द है जो किसी वस्तु या वस्तु के अन्तर्निहित भाव या संवेदनाओं की स्थिति बताती है। संस्कृत में इष्ट, इच्छा का समानार्थी है जो कुछ भी इच्छित है वह मूल्य है, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्र में, सहज ज्ञान (Intution) और इच्छा (will) को आधार बनाकर ही मूल्य शब्द की व्याख्या की जाती है। ऐसे लक्ष्य आदर्श और प्रतिमान जो जीवन को समग्र ढंग से इच्छा शक्ति से प्रस्तुत करें, मूल्य कहलाते हैं। कवयित्री महादेवी वर्मा मूल्य के सन्दर्भ में कहती हैं– ''कि वास्तव में थोड़े से सिद्धान्त जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं हम उन्हीं को जीवन मूल्य कहते हैं, संसार का प्रत्येक प्राणी सुखी होकर जीना चाहता है। यही मानव की मूल चाहत भी है। हर कोई इस चाहत को पूर्ण करना चाहता है। मानव यही चाहता है–

हे प्रभो! आनंददाता ज्ञान हमको दीजिए
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए
लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बने
ब्रह्मचारी, धर्म रक्षक वीर व्रत–धारी बने।[1]

जिन मान्यताओं के आधार पर हम अपने को, अपने समाज को धारणकर व्यवस्थित करते हैं और उनमें लोकमंगल की संभावनाओं को चरितार्थ करते हैं मानव मूल्य कहलाते है। यह मूल्य मानवता को गरिमा प्रदान करते हैं। इन मूल्यों से परिपूर्ण व्यक्ति एक ऐसी अमर निधि है, जिसकी प्रतिकृति जीवन सुन्दर होकर स्वर्णिम का रूप धारण करती है। इससे जीवन में यश, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। भारतीय दर्शन मूल्य परक दर्शन है, जिसमें मूल्य का सम्बंध नैतिक विचारों से है। नैतिक जीवन के आधार स्तम्भ धर्म और दर्शन है। जीवन क्या है ? इसका लक्ष्य क्या है ? अच्छा क्या है ? बुरा क्या है ? हमें क्यों अच्छा बनना चाहिए इन प्रश्नों का उत्तर या इनका समाधान दर्शन से ही मिलता है। हमारी भारतीय संस्कृति में निहित नीति सिद्धान्त जो न केवल हमारी नैतिक सामाजिक आध्यात्मिक मूल्यों को विशेष आधार प्रदान करते है, अपितु इनका निरंतर पोषण करते रहे हैं।

''उसकी नैतिकता शून्य में क्रियाशील न होकर समाज में ही चरितार्थ होती है इसीलिए मनुष्य चाहे और कुछ न हो परन्तु नैतिक गुणों से युक्त एक सामाजिक प्राणी है ही। उसमें मनन, चिंतन, विवेक मूल्यों के प्रति आस्था आदि गुण तो है ही, भारतीय दर्शन में मानव को आध्यात्मिक मनोदैहिक गुणों से युक्त माना गया है।''[2]

मानव के भीतर रहने वाले दया, करुणा, दान, शील, सौजन्य, क्षमा आदि के समन्वित लोकोपकारक स्वरूप को मानवता कहा गया,जिसके दस लक्षण मनुस्मृति में बताये गये। जिनमें, धृत्ति,

क्षमा, दया, अचौर्य, शौच, इंद्रिय–निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध हैं। मानव मूल्यों के द्वारा ही व्यक्ति में एक संवेदना का भाव प्रवेश कराते हैं। मानव स्वभाव संवेदनशीलता का हो, चाहे पितृसत्तात्मक समाज हो या मातृसत्तात्मक समाज हर समाज में संवेदना उसी के अनुरूप प्रस्तुत होती थी। आज वैश्विक परिवेश में जो हिंसा प्रतिहिंसा विभिन्नवाद या विचारधारा विकसित हो रहे हैं स्वयं अन्तर विरोधों के शिकार हैं, हर विचारधारा किसी दूसरी विचारधारा की प्रतिक्रिया में विकसित होती है, जो सामाजिक दृष्टि से ही नहीं भौतिक आध्यात्मिक दृष्टि से भी विघटनकारी रही है। इन सबके बीच मानव मूल्य ही है जो उभयनिष्ठ रूप में प्रायः सभी में व्याप्त रही है, मानवीय चेतना के परिणाम स्वरूप यह देखने को मिला कि मानव में परस्पर समता का भाव जगा। धर्म, जाति, वर्ण, संप्रदाय, देश के आधार पर विभिन्न मनुष्यों में जो अभेद्य दीवारे रही हैं उन्हें तोड़ने का कार्य मानववाद ने किया। मनुष्य के अन्दर उस चेतना का विकास किया जिसके आधार पर उसे स्वयं अहसास होने लगा कि वह अपनी समस्त समस्याओं को सुलझाने में समर्थ है।

वह नियतिवाद और भाग्यवाद के भरोसे नहीं बैठना चाहता। उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का विकास हुआ, जिसके कारण उसने अंधविश्वासों, रूढ़ियों परमपराओं, सड़ीगली मान्यताओं अनैतिक कुप्रथाओं के प्रति अविश्वास करना शुरू किया। भौतिकवाद की इस आपाधापी में उसका प्रश्न और तर्क पीछे छूटने लगा। उसे हर तथ्य हर प्रश्न विश्वास और मान्यता संदिग्ध से लगने लगी। यांत्रिक सभ्यता की ओर वह उन्मुख हो गया। स्पष्ट है कि यंत्र हमें सुविधाएं तो देता है पर उसकी या हमारी संवेदना को छीन लेता है। अब हमें अपनी मान्यताएं अपने मूल्य तथा सहेज कर रखे गये आत्मविश्वास भी संदेहास्पद लगने लगे।

स्वाभाविक है कि लोगों के अन्दर एक यांत्रिक सभ्यता पनपने लगी और इस यांत्रिक सभ्यता ने सारे मानव मूल्यों पर प्रश्न चिह्न खड़ा करना शुरू किया। स्वभावतः हमारे मूल्य हमारे सम्बंधों को प्रभावित करते हैं। वे ये मूल्य है जो निरन्तर पारिवारिक संस्कारशाला से विकसित होते हैं और यदि इन मूल्यों पर संदेह होने लगेगा तो सारे रिश्ते नाते संदेहास्पद दिखने लगेंगे। साहित्य के मूल्य मानव मूल्य से पृथक नहीं हैं, क्योंकि साहित्य जनता की चित–वृत्ति के संचित प्रतिबिम्ब है। साहित्य के मूल्यों का निदर्शन आधुनिक काल के पाँचवें दशक के बाद शुरू होने लगा, क्योंकि अब हम राष्ट्रीय आन्दोलन को लांघकर देश की स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके हैं। अब हमारे मानदण्ड में बदलाव आया अब हम विश्व युद्ध की विभीषिका और अगले किसी युद्ध में न फंसे, इसको लेकर जो संदेह होने लगे, उस पर हम अपने मूल्यों को लेकर सजग हुए। इस समय के हिन्दी साहित्य में नयी कविता का दौर शुरू हो चुका था जहाँ नयी पीढ़ी के कवियों ने नये ढ़ंग से नये मानव की तलाश शुरू की। जिसे विजय देवनारायण साही ने 'सहज मानव' और लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'लघुमानव' कहा। लेकिन यह मानव और कोई नहीं भीड़ में घिरा मानव था जो अपने मूल्यों की तलाश कर रहा था जिसे कुँवर नारायण ने 'परिवेश : हम तुम' काव्य में लिखा–

अपने ही हथियारों से घबराया मानव,
पत्थर का देव और लोहे का दानव,
यह युग,
अपने ही ताकत से हारा मनुष्य
अपने अतीत को दोहराता अंधा भविष्य
शहरों का कूड़ा झोपड़ियों में फैलाया,
अपनी जरूरतों को कोड़ो से पिटवाया।
इन्सान! मगर बेजान मकानो सा ढ़हाता

अपने दूर पास बस्ती के रहता
सभ्यता! लगी नाखूनों पर पालिस जैसी
हम चाट फकीरी बिकता जो पैसे–पैसे

स्पष्ट है कि मानव की यांत्रिकता में उसे स्वयं भयभीत कर दिया, कुँवर नारायण के शब्दों में– ''पहियों और पंखो वाली इस बेसिर पैर की सभ्यता में पता लगाना मुश्किल है कि यहाँ आदमी मशीन को चला रहा है या मशीन आदमी को।''

यह वह दौर था जब वादों, विचारधाराओं, रूढ़ियों सामूहिक निर्णय या झूठी आस्था का विरोध मानव करने लगा। वह नियतिवादी भविष्य के भ्रमजालों और आशा के झूठे जंजालों पर विश्वास नहीं करता और इस दौरान नयी कविता भी व्यक्ति के अपने विवेक पर आस्था व्यक्त करती है। क्योंकि व्यक्ति का विवेक ही उसे सही दिशा दे सकता है, न कि वाह्य सत्य। नयी कविता के कवि धर्मवीर भारती निजी विवेक के अतिरिक्त आस्था का और कोई वाह्य आधार नहीं स्वीकारते– धर्मवीर भारतीय ने अंधायुग में लिखा–

''जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।
नियति नहीं पूर्वनिर्धारित
उसको हर क्षणमानव निर्णय बनाता है मिटाता है।''[3]

अंधायुग का प्रत्येक पात्र आस्था विहीन है किसी को भविष्य पर भरोसा नहीं है, मनुष्य का भविष्य उन्हें मृत नजर आता है, केवल आत्महत्या ही उन्हें दर्शन, धर्म, कला, संस्कृति तथा शासन में व्यक्त होती नजर आती है–

''हमको अनास्था ने कभी नहीं झकझोरा,
क्योंकि नहीं थी अपनी कोई भी गहन आस्था''[4]
× × ×
यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित
इस पूरी संस्कृति में
दर्शन में धर्म में कलाओं में
शासन व्यवस्था में
आत्मघात होगा अंतिम लक्ष्य मानव का।''[5]

आज समाज में जो कुछ भी चल रहा है क्या उसे हम साहित्य में नहीं पाते, वे व्यक्ति जो परिवार समाज देश के प्रति सकारात्मक भाव नहीं रखते उनके क्या अपने मूल्य हैं। इस यांत्रिक सभ्यता में व्यक्ति न केवल समाज से कट रहा है अपितु अपने जिम्मेदारियों से भाग रहा है। हमारा साहित्य प्राचीन काल से नैतिक मानदण्डों, भारतीय आदर्शों का सूचक रहा है। मध्यकाल सामान्य मानवता का काल था क्या निर्गुण क्या सगुण क्या सूफी, क्या संत सभी ने मानववाद का इतिहास निर्मित किया। मानववाद से जुड़े स्थितियों आदर्शों को पोषित किया, हमारा साहित्य आधुनिक काल के चार दशकों तक निरन्तर विकसित होता रहा, लेकिन आजादी के बाद यह भी अपनी पहचान खोने लगा। क्योंकि इसमें मानव जीवन की व्याख्या न होकर नक्सलवाद और माओ, चेग्वेरा, हो–ची–मिन्ह, मार्क्स, लेनिन, कोहन, वेंदो आदि की विचारधाराओं की व्याख्या होने लगी।

पश्चिम से तकनीकि उधार लेकर भारत में जो पश्चिमीकरण हुआ उसने हमारे अर्थतंत्र की कमर तोड़ दी। अब साहित्य मूलधारा को छोड़कर अधिकारी तंत्र लाल फीताशाही ढाँचा का समर्थन करने लगी। सामान्य सी बात है कि साहित्य में बने रहने का संकट यही है। जिसके कारण एक साहित्यकार अपने मूल कर्तव्यों को छोड़कर एक ऐसा साहित्य लिख रहा है जो आमजन में कुरूचि का भाव उत्पन्न करता है।

लोगों की एक बड़ी आबादी इलेक्ट्रानिक मीडिया की ओर झुकी। प्रिंट मीडिया में उसका समर्थन नहीं रहा इससे उसकी अरूचि होने लगी। स्वाभाविक है कि साहित्य को भी अपने मूल्य को बनाये रखने की चेष्टा करनी होगी। हम व्यक्ति केन्द्रित असहाय आत्ममुग्धता को कब तक प्रश्रय देते रहेंगे, क्योंकि भारतीय मध्यवर्ग अब भिन्नता और अवसाद से अपने को पृथक् नहीं कर पा रहा है। यह समाज बासी, सड़ी–गली रूढ़िगत सौन्दर्य की अभिरूचियों पर केन्द्रित नहीं है वह एक नयी सौन्दर्य दृष्टि कर्म सौन्दर्य की तलाश कर रहा है। वह ताजी दृष्टि विकसित करना चाहता है, क्योंकि यह वैज्ञानिक युग की सदी है। जहाँ सच्चे साक्षात्कार और आत्मविस्तार का व्यापक वर्णन अपेक्षित करता है अब कवि या पाठक अपने प्रत्येक भाव में शक्ति और सौन्दर्य की तलाश करता है, कवि ज्ञानेन्द्रपति ने लिखा है–

''इससे अधिक हम कुछ नहीं बता सकते, महाराज बिक
हमारे हाथों में जो ऐठन होती है उसे जाना ही जा सकता है।
द्वारपाल के लिए बनी बुर्जियों से कूदकर जब हम गिरफ्तार
करने के लिए उनके हाथ थामते है तभी वह होता है,हाँ
महाराज! तभी उसके काले हाथों पर जगह–जगह अँधेरे के गढ़े चकते होते हैं।[5]

स्पष्टतः साहित्य मूल्यों के संरक्षण हेतु हमें अपने नैतिक आदर्शपरक पारिवारिक सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करना होगा क्योंकि आज साहित्य में इन सबके स्थान पर ऐबसर्ड साहित्य लिखा जा रहा है जो साहित्य की सौन्दर्य के ढ़ांचे पर फिट नहीं बैठता, इलेक्ट्रानिक मीडिया। भूमण्डलीकरण ई–लर्निंग, गूगल से हम मौलिकता के बजाय अश्लील साहित्य परोस रहे है।

हमारी मौलिकता ही हमारे मूल्य का संरक्षण करती है, लेकिन अब हम स्वतंत्र चिंतन के बजाय चौर्य चिंतन पर बल देने लगे है, जिससे हमारे साहित्यिक मूल्य हमारी मौलिकता से ही संपृक्त होने लगे हैं। परिणामतः अबहमें अपने मूल्य को बचाये रखने का जो संकट है। वही साहित्यिक मूल्यों के संरक्षण का भी संकट है। दूसरा प्रेमचंद क्यों नहीं पैदा होता ? दूसरा प्रसाद क्यों नहीं पैदा होता ? दूसरा निराला क्यों नहीं पैदा होता ? ऐसा नहीं है कि प्रेमचंद, प्रसाद, निराला ने अवतार लिया था। ये भी किसी शोधी मिट्टी से पैदा हुए बड़े साहित्यकार बने। लेकिन इसके पीछे उसका बड़ा कर्म संघर्ष था। कर्म संघर्ष को भोगे यथार्थ को इस आपाधापी में हम भोगना नहीं चाहते और यही हमारे चिंतन के समक्ष प्रश्न बनकर खड़ा होता है। हम कर्म सौन्दर्य की सीढ़ी पर न चढ़कर शार्ट कट रास्ते की तलाश करते हैं। मंजिल पर त्वरित गति से पहुँचना चाहते हैं। साधन और साध्य दोनों को सौन्दर्य पर रखने के बजाय दोनों में असामान्यता का नाकारात्मक भाव रखते हैं। व्यक्ति के मूल्य उसके आदर्श उसकी नैतिकता, चारित्रिक विशेषता उसके साहित्य में झलकती है और जब व्यक्ति इन सबसे विमुख होगा तब साहित्य में यही होगा। कोठरियो, चौपालो, गोष्ठियों में जिन आदर्शवादी मूल्यों को सहेजने की बात करते है, उन्हें हम त्वरित गति से भूल जाते है। बनी बनाई परम्परा पर चलते तो भी ठीक था अथवा नया सृजन करते तो भी ठीक था, लेकिन हम संवेदनहीन, निरर्थकता बोध के प्रलाप ही करते हैं जो कुपथगामी कहलाते है और कहाँ से होगा हमारा संरक्षण?

संदर्भ :

1. प्रार्थना रामनरेश त्रिपाठी, आधुनिक कवि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संस्करण–2001 ई0, पृ0 35
2. सामाजिक राजनीतिक दर्शन के नये आयाम, हृदयनारायण मिश्र, शिखर प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2004, पृ0 85
3. अंधायुग, धर्मवीर भारतीय, किताब महल, पटना, संस्करण–2016, पृ0 15–16
4. वही, पृ0 17
5. ज्ञानेन्द्र पति, 'ज्ञानेन्द्रपति रचनावली, स्रोत गूगल

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

सर्कस कर्मियों के शोषण का दस्तावेज 'सर्कस'

डॉ0 रवीन्द्र कुमार यादव

पूर्व शोधछात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सर्कस संजीव का बहुत ही महत्वपूर्ण उपन्यास है। जो अक्षर प्रकाशन, दिल्ली द्वारा 1984 में भारतीय सर्कस के 100 साल पूरे होने पर प्रकाशित हुआ। 166 पृष्ठों के उपन्यास के बारे में कथाकार आलोचक बलराम कहते हैं, ''हिन्दी की आत्मकथा पाठक की हैसियत से मैंने सर्कस को लेकर इतनी विविध सामग्री नहीं पढ़ी।''[1]

संजीव ने 'सर्कस' में उपेक्षित कलाकारों की व्यथा और सर्कस की अंदरूनी दुनियाँ को कथ्य के रूप में उठाया है। संजीव ने सर्कस की दुनियाँ का भूगोल, अन्तर्विरोध, सर्कस मालिकों की कुटिलताएँ, कलाकारों की उपेक्षा, शोषण एवं त्रासदी को गहराई से चित्रित किया है।

द हाक 'सर्कस' के जोकर रामू की बेटी झरना उपन्यास की नायिका है। जो दस वर्ष की उम्र में ही सर्कस में दाखिल हो गई थी और कम्पनी बदलने के क्रम में उसे खुद को क्रमशः रूपा, गीता, सुजाता और कामिनी के रूप में ढालना पड़ता है। 'सर्कस' के भीतर भी स्त्री कलाकारों को पुरुष वर्चस्व को झेलना पड़ता है। उपन्यास में रूसी कलाकारों और भारतीय कलाकारों की तुलना भी की गयी है। रूसी जिम्नास्ट, समाज, राजनीति और देश–दुनियाँ की गहरी जानकारी रखते हैं। उन्हें काफी सुविधाएँ दी जाती हैं ''रूसी जिम्नास्ट अंग के प्रदर्शन के बारे में वह सपने में भी नहीं सोच सकती।''[2]

दूसरी ओर वह देखती है कि जान पर खेलने वाले सर्कस कलाकारों की फिल्म कलाकारों के आगे कोई पूछ नहीं है। सर्कस के प्रति सर्वाधिक प्रतिबद्ध बुजुर्ग इब्राहिम खाँ उससे कहते हैं ''इस देश की अवाम् चकाचौध और स्टंट की मारी हुई है। यहाँ मेहनतकशों को नीच समझा जाता है और हरामखोरों को ऊँचा एक नम्बर के फ्लर्ट दलाल और कमीने यहाँ इज्जत पाते हैं।''[3]

कलाकारों के प्रति सर्कस मालिकों के व्यवहार से क्षुब्ध होकर जानवरों के प्रशिक्षक अनिरूद्ध सिंह और वासुदेव झा जैसे लोग अपने घर लौट जाते हैं। कामिनी भी अपने व्यावसायिक इस्तेमाल से तिरस्कार करने लगती है। वह खुद से सवाल करती है, ''सुना है कि सिर्फ उसके करतब देखने पाँच–पाँच बार तक आये हैं दर्शक। क्या देखने हैं? चौधियाते उत्तेजक विन्यास में उसकी यही गोलाइयाँ, यही खुली सगमरमरी जाँघें, ये बाहें उद्दीप्त यौवनें ही।''[4] वह गाँव नहीं लौट सकती थी। इसी बीच सर्कस छोड़ने के बाद उसकी मुलाकात शिल्पकार विकास से होती है। दोनों परिणयसूत्र में बँध जाते हैं, मगर विकास भी जीवन साथी नहीं, बल्कि पुरुष ही साबित होता है।

कामिनी का विद्रोही मन विवाह के बंधन को ज्यादा दिनों तक झेल नहीं पाता। विकास उसकी भावनाओं का जरा भी कद्र नहीं करता। उसके लिये स्त्री एक उपभोग की वस्तु है। उपन्यास के अन्त में कामिनी विकास को छोड़कर नागरिक अधिकारों के लिए जारी प्रदर्शन में शामिल हो जाती है। मिस संधु अपने भाषण में सर्कस को पूरी व्यवस्था का रूपक बना देती है। वह कहती है कि सर्कस के बाहर भी

आम–आदमी उसी तरह जोखिम और संतुलन की अनगिनत क्रियाओं में रहा है। बाहर भी वैसी ही चालबाजियाँ शोषण और उत्पीड़न है।

'सर्कस' के प्रति जनसाधारण के मन में जहाँ बहुत से कौतूहल है वही ढेर सारी भ्रान्तियाँ भी। यह उपन्यास ध्वनि, प्रकाश, करतब और ग्लैमर की दुनियाँ की वास्तविकता को उसकी तमाम खूबियाँ और अन्तर्विरोधों के साथ प्रस्तुत कर सका है। बाहर से आकर्षक लगने वाली सर्कस की छोटी सी दुनियाँ में गंदगी कम नहीं है। बहुत सी लड़कियाँ सर्कस में पलती और जवान होती है। यूनिफार्म पहनकर स्कूल जाते बच्चे उनके लिए अजूबा है। चन्द्रा जैसी लड़कियां बहुत पहले बड़ी कर दी जाती है। सर्कस के शेर, बाघ कभी–कभार एकाध आर्टिस्ट को चट कर जाते हैं। लेकिन नियोगी जैसे आदमखोर के जबड़ों में एक न एक रीता हमेशा फँसी रहती है। जैनुल जैसे व्यक्ति शो के दौरान गिर कर मर जाते हैं। कुछ अपाहिज होकर पूरी उम्र दूसरों की दया झेलते हैं। बाहर से बोल्ड लगने वाली सर्कस की युवतियाँ कितनी पराधीन है– यह सुनीता और रूपा को देखकर जाना जा सकता है। सब पर उनका शासन चलता है जो विचारों से रूढ़िवादी, शरीर से कमजोर और स्वभाव से नीच है।

कामिनी ने सही कहा है,

''समाज में तो हम एक खरगोश से भी गए बीते हैं। वे पिलपिले आदमी जो बाघ की एक दहाड़ से ही पैन्ट खराब कर लें वहाँ चौधरी बनकर निर्णय देते हैं और हम कान–पूछ गिराकर मान लेते हैं।''

सर्कस में भारतीय सर्कस की व्यावहारिक और व्यावसायिक कठिनाईयों का उल्लेख भी हुआ है। विदेश विशेषतः रूस में, सर्कस की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है। विदेशों में सर्कस को सरकारी संरक्षण मिला हुआ है। हर बार डेरा डंडा उखाड़कर नये सिरे से बसाने की समस्या वहाँ नहीं हैं। वहाँ आडोटोरियम सा स्टेडियम पहले से बुक होता है। इसके अलावा मंत्रियों, अफसरों, वगैरह की चापलूसी करने की जरूरत कत्तई नहीं होती है।

यदि यह उपन्यास केवल 'सर्कस' के चरित्र को उभारकर संतुष्ट हो लेता तो नया विषय होने के बावजूद एक सामान्य कृति बनकर रह जाता। संजीव ने सर्कस के कलाकारों की समस्या को व्यापक रूप देते हुए इसे सम्पूर्ण श्रमजीवी वर्ग से सम्बद्ध किया है। देश की बहुत बड़ी जनसंख्या अपने श्रम को बहुत सस्ते में बेचने के लिए अभिशप्त है। मौजूदा व्यवस्था का मकड़जाल कुछ ऐसा है कि श्रम की खुली बेइज्जती हो रही है। रानी ने इस सत्य को बखूबी से समझा है।

''पढ़–लिखकर भटकते, जहर खाकर मरते होनहार युवक खुदकुशी करती है औरतें, मैं कहती हूँ, कहाँ नहीं हैं श्रम की बेइज्जती? जो यह कहते हैं– श्रम का कोई विकल्प नहीं है, या तो बेवकूफ है या बरगला रहे हैं ऐसा होता तो कामचोर राज न करते।''

दूसरे शब्दों में कहें तो शोषितों को अपनी लड़ाई खुद लड़नी है। कामिनी का पूछा गया सवाल वैचारिक ऊर्जा से लैस है। रोटी का टुकड़ा दिखाकर मुँह में लाठी ठूँस देने का इंतजाम हो रहा है। राहत का अन्न बिचौलियों और सेठों के गोदामों में पड़ा है, मगर आप बोल नहीं सकते हैं। मैं पूछती हूँ क्या आप जमूरे और दर्शक ही बने रहेंगे? उपन्यास के अन्त में नये शो के शुरूआत का आशावाद कल्पित या आस्तविक नहीं है।

'सर्कस' के बहाने संजीव ने सर्वहारा से जुड़े कुछ वे प्रश्न भी उठाए हैं, जो राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भों में उठते रहते हैं। तीसरी दुनियां के प्रति धनी राष्ट्रों के रवैये की चर्चा करते हुए पूछा गया है कि एक मुल्क का गरीब और शोषित दूसरे देश के गरीबों पर कैसे और क्यों हँसता है? जबकि दोनों

का दर्द एक है। सर्वहारा से ही जुड़ी एक अन्य मानसिकता का बयान भूखे लोगों द्वारा लोटा, कंबल बेचकर सर्कस देखने के संदर्भ में हुआ है।

लेखक ने सर्कस के कथ्य (संवेदना) को व्यापक संदर्भ में स्पष्ट किया है। सर्कस तो प्रतीक है जिसके माध्यम से सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियाँ सामने लायी जाती हैं। सर्कस की पूँजीवादी व्यवस्था कलाकारों का नियोजनबद्ध शोषण करती है। सर्कस में शोषित, उपेक्षित कलाकारों में भी चेतना पाई जाती है। इस उपन्यास के कथ्य की कसावट के प्रति संजीव सजग नजर आते हैं। इसमें प्रवाह, गति और कलात्मकता दिखाई देती है। यह उपन्यास फ्लैशबैक कथन शैली में लिखा गया है। उपन्यास में सर्वत्र सर्कस कर्मियों की व्यक्तिगत तथा सामाजिक संवेदना दिखाई देती है कि सर्कस कर्मियों का शोषण किस स्तर पर तथा किस–किस रूप में होता है। संजीव ने इसका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया है।

संदर्भ सूची :

1. हंस, नवम्बर, 1986, पृ0 92
2. संजीव, सर्कस, पृ0 140
3. संजीव, सर्कस, पृ0 161
4. संजीव, सर्कस, पृ0 150

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

गाँधीजी के आर्थिक चिंतन

कुमार रमन किरण
पूर्व सहायक प्राध्यापक (तदर्थ)
अनुग्रह नारायण सिन्हा मेमोरियल कॉलेज, औरंगाबाद, बिहार

गांधीजी के विचारों का वास्तविक अर्थशास्त्र यह है कि धन–संग्रह प्रगति के मार्ग में बाधक है। वे अर्थशास्त्र की आधुनिक पाठ्य–पुस्तकों की तुलना में विश्व की धार्मिक कृतियों की अर्थशास्त्र के नियमों की अधिक सुरक्षापूर्ण एवं ठोस कृतियाँ मानते है। उनके अनुसार आज की आर्थिक चुनौतियां जीसस क्राइस्ट के समय में भी थीं। क्राइस्ट ने कहा था कि 'एक ऊँट का सूई की आंख से निकल जाना सरल है किन्तु धनी व्यक्ति के लिए ईश्वर के राज्य में प्रविष्ट होना कठिन है।' क्राइस्ट, मोहम्मद, बुद्ध, नानक, कबीर, चैतन्य, शंकर, दयानन्द, रामकृष्ण सभी महापुरूषों ने अपनी उपस्थिति से विश्व को सम्पन्न बनाया, किन्तु उन्होंने स्वेच्छा से निर्धनता को अपनी नियति के रूप में अंगीकार किया। हमने आधुनिक भौतिक सभ्यता को अपना लक्ष्य बनाकर प्रगति के मार्ग को नहीं चुना। वास्तविक उन्नति कुछ और ही है। प्राचीन आदर्श के अनुसार पूंजी को बढ़ाने वाली गतिविधियों को सीमित करने की आवश्यकता है। इससे सब प्रकार की भौतिक आकांक्षाओं की समाप्ति नहीं होती। पूंजी बनाने वाले अपने कार्य में फिर भी व्यस्त रहेंगे, किन्तु ईश्वर तथा कुबेर की एक साथ सेवा नहीं की जा सकती। यह आर्थिक सत्य है। गांधीजी के अनुसार 'भारत को अमेरिका तथा यूरोप के देशों के समान भौतिकवादी दौड़ में नैतिकता का अन्त नहीं करना है।' वे पुरूषों, स्त्रियों तथा बालकों की मृतदेहों पर खड़ी होने वाली दैत्याकार चिमनियों तथा फैक्ट्रियों को पसन्द नहीं करते। उनके अनुसार देश की आर्थिक समृद्धि बढ़ने के साथ–साथ नैतिकता का स्तर दिनों–दिन घटता जा रहा है।[1]

गांधीजी के अनुसार 'भारत का आर्थिक ढांचा अथवा समस्त विश्व का आर्थिक आधार ऐसा होना चाहिए जिसमें कोई भी व्यक्ति अन्न तथा वस्त्र से विपन्न न हो। प्रत्येक व्यक्ति को इतना काम मिलना चाहिए कि वह अपनी दैनिक आवश्यकताओं की न्यूनतम पूर्ति अवश्य कर सके। यह तभी संभव है जबकि जीवन से सम्बन्धित मूलभूत आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन जनता के नियंत्रण में हो। दैनिक उपयोग की वस्तुयें उसी प्रकार उपलब्ध हों जैसे ईश्वर द्वारा प्रदत हवा एवं पानी। शोषण की अर्थव्यवस्था को तिलांजलि दे दी जाय। आर्थिक साधनों का एकाधिपत्य न किसी देश के हाथ में रहे, न राष्ट्र के हाथों में और न किसी व्यक्ति समूह में। इस साधारण सिद्धान्त की अवहेलना का अर्थ विनाशकारी हो सकता है।[2] यद्यपि गांधीजी समान वितरण के आदर्श पक्षपाती है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से वे समान वितरण के स्थान पर न्याय संगत वितरण को स्वीकार करते है।[3]

असमानता की उत्पत्ति की विवेचना करते हुये गांधीजी ने अपरिग्रह को अस्तेय से संबद्ध किया है। उनके अनुसार यदि कोई वस्तु किसी के पास अनावश्यक होते हुये भी संगृहीत है तो उसे चोरी न मानते हुये भी चुराई गई सम्पत्ति के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाना चाहिये। संग्रह का उद्देश्य भविष्य के लिये व्यवस्था करना है। सत्यमार्ग का पथिक तथा प्रेम के नियम का अनुयायी कभी भी आनेवाले कल की चिन्ता नही करता। ईश्वर कल के लिए संगृहीत नहीं करता। वह तत्काल की आवश्यकता–पूर्ति से

अधिक निर्माण नहीं करता। अतः ईश्वर में पूर्ण आस्था रखते हुये हमें इस विश्वास के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिये कि ईश्वर हमें प्रतिदिन रोटी देगा–हमें सब कुछ प्राप्त होता रहेगा। महापुरूषों एवं भक्तों ने यह तथ्य अनुभव किया है। इस दैवी कानून के प्रति हमारे अज्ञान अथवा लापरवाही ने ही हमारे मध्य असमानता तथा उससे सम्बन्धित कष्टों को उत्पन्न किया है। अमीरों के पास ऐसी वस्तुओं का भण्डार है जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं, और इस कारण वे वस्तुयें व्यर्थ पड़ी रहती है, जबकि करोड़ों व्यक्ति भूख के मारे काल–कवलित हो जाते है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार ही वस्तुओं का संग्रह करें, तो कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं रहेगा और सब अमन चैन से जीवन–यापन करेंगे। अन्यथा अमीर में भी उतना ही असंतोष है जितना निर्धन में। निर्धन लखपति बनने की कामना करता है, तो लखपति करोड़पति बनने की। धनी व्यक्ति को अपरिग्रह के मामले में पहल करनी होगी ताकि सन्तुष्टि का विश्वव्यापी परार्वतन हो सके। उन्हें अपनी सम्पत्ति को सामान्य स्तर पर लाना होगा ताकि क्षुधा–पीड़ितों को भोजन मिल सके और वे अमीरों के साथ सन्तोष से जीवन–यापन कर सकें।[4] यदि सभी व्यक्ति सेवा की भावना से काम करने लग जाये तो पूंजी का संग्रह ही नहीं हो और पूंजी–जन्य असमानतायें समाप्त होने के साथ–साथ दुर्भिक्ष अथवा भुखमरी भी समाप्त हो जाय।[5]

गांधीजी ने समानता के आदर्श को स्पष्ट करते हुए कहा है कि सामाजिक दृष्टि से सब समान उत्पन्न हुये हैं– अर्थात् सबको अवसर की समानता का अधिकार प्राप्त है, किन्तु सब में समान क्षमताऐं नहीं होती। प्रकृति से ही इस प्रकार की असमानता होती है। सभी एक ही ऊँचाई, रंग, बुद्धि आदि के नहीं होते, कुछ अधिक कमाने की योग्यता रखते हैं, अन्य कम। योग्यता सम्पन्न व्यक्ति अधिक अर्जन करेंगे और वे अपनी दक्षता का इसके लिये प्रयोग भी करेंगे। यदि ऐसे व्यक्ति अपनी योग्यता का उदारता से प्रयोग करें तो वे राज्य के कार्य का निष्पादन कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति न्यासी के रूप में विद्यमान रहते हैं। बौद्धिक प्रतिभावाला व्यक्ति यदि अधिक आय प्राप्त करता है तो उसकी बुद्धि कुंठित करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु ऐसे व्यक्ति की आय का बड़ा भाग राज्य के हित में उसी तरह प्रयुक्त किया जाना चाहिये जैसे कि संयुक्त परिवार में पिता के कमाने वाले पुत्रों की आय। वे न्यासी के रूप में ही अपनी आमदनी को रखें।[6]

न्यासिता के सिद्धान्त की चर्चा करते हुए गांधीजी ने व्यक्त किया है कि वे न्यासिता की स्थापना केवल अनुरोध ही नही अपितु असहयोग द्वारा करना चाहते हैं। कोई भी व्यक्ति सम्पत्ति का अधिक संचय व्यक्तियों के स्वेच्छिक अथवा बलात् सहयोग के बिना नहीं कर सकता। गांधीजी पूंजी के मालिकों को आढ़त अथवा बट्टा देने के पक्ष में है। उन्हे आढ़त इसलिए दी जायगी कि धन उनके स्वाधिकार में है। पूंजीपतियों से न्यासी बनने का आग्रह किया जायेगा। गांधीजी ने इसे स्पष्ट करते हुये कहा है कि यदि किसी व्यक्ति के पास सौ रूपये है तो उसे पचास अपने पास रखने को कहा जायेगा तथा शेष पचास रूपये कामगारों को देने के लिए कहा जाएगा जिनके शोषण से वह राशि उत्पन्न हुई है। किन्तु ऐसे व्यक्ति को जिनके पास एक करोड़ रूपये है, उसे केवल एक प्रतिशत धन अपने पास बट्टे के रूप में रखने को कहा जायेगा तथा शेष राशि वहीं स्वेच्छा से समाज–हित में अर्पित कर देगा।[7]

निजी सम्पत्ति के विषय पर गांधीजी ने निर्मल कुमार बोस के साथ हुई बातचीत में बतलाया कि '' प्रेम तथा निजी सम्पत्ति साथ–साथ नहीं चल सकते। सैद्धान्तिक दृष्टि से पूरा प्रेम तभी सम्भव है, जब पूर्ण अपरिग्रह हो। हमारी देह ही हमारी अन्तिम सम्पत्ति है। पूर्ण प्रेम तथा अपरिग्रह तभी सम्भव है जब कि मानवीय सेवा में अपने शरीर को अर्पित करने के लिए तैयार हो जाय''। व्यावहारिक दृष्टि से यह सम्भव नहीं। मानव की अपूर्णता के कारण इस लक्ष्य की प्राप्ति कठिन है, फिर भी इसे एक आदर्श साध्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। जिनके पास पैसा हे वे न्यासी के रूप में कार्य करें तो समानता लाई जा सकती है। राज्य द्वारा हिंसा के प्रयोग से पूंजीवाद का दमन करना उचित नहीं है।

एक बार हिंसा का चक्र प्रारम्भ हो गया तो फिर अहिंसा की स्थापना नहीं हो पायेगी। राज्य हिंसा का केन्द्रीय एवं संगठित प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति में आत्मा है किन्तु राज्य आत्माविहीन मशीन है। हिंसा पर आधारित होने के कारण राज्य हिंसा–रहित नहीं हो सकता। यहीं कारण है कि न्यासिता का सिद्धान्त अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है।[8]

गांधीजी राज्य को न्यूनतम सम्पत्तियुक्त बनाना चाहते है। राज्य में शक्ति का अत्यधिक केन्द्रीयकरण भयावह है। निजी स्वामित्व राज्य के सम्पत्ति के स्वामित्व से कम हिंसात्मक है। यदि व्यक्ति स्वेच्छा से न्यासी बनने को तैयार न हो, तो ऐसी स्थिति में राज्य द्वारा कम से कम हिंसा का प्रयोग कर ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति को न्यास में परिवर्तित कर लेना उचित रहेगा। व्यक्ति अपनी आदतों के अनुसार चलता है, किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि वह अपनी इच्छा के अनुरूप चले। व्यक्ति अपनी इच्छाओं को इतना विकसित कर ले कि वह शोषण को न्यूनतम कर सके। राज्य की शक्ति का विस्तार अत्यन्त भयानक है क्योंकि राज्य शोषण का अन्त करने का कार्य करते हुए शनैः शनैः व्यक्ति के व्यक्तित्व को समाप्त कर देता है। व्यक्तित्व की हानि प्रगति विरोधी है। व्यक्ति न्यासी बन सकता है किन्तु राज्य रूपी मशीन गरीबों का हित नहीं कर सकती। राज्य का संगठन शक्ति पर आधारित है।[9]

गांधीजी के आर्थिक विचारों का आधार रोटी–रोजी सिद्धान्त है। टालस्टाय से गांधीजी ने यह प्रेरणा प्राप्त की है कि जीवित रहने के लिये मनुष्य को कार्य करना चाहिए। रस्किन के विचारों ने भी उनको इस दिशा में प्रवृत किया। रूसी लेखक टी.एम. बोन्डारेफ ने सर्वप्रथम यह विचार प्रकट किया कि मनुष्य अपनी रोटी स्वयं अपने हाथों से काम करके कमाये। टालस्टाय ने इसी विचार को व्यापक रूप से प्रचारित किया। गीता के तृतीय अध्याय में भी यही विचार व्यक्त किया गया है कि बिना कष्ट के प्राप्त भोजन चुराये हुये भोजन के समान है। यही रोटी–रोजी सिद्धान्त का आधार है। श्रम किये बिना व्यक्ति को भोजन करने का प्राधिकार नहीं है। पूंजी तथा श्रम के मध्य विश्वव्यापी संघर्ष छिड़ा हुआ है। निर्धन व्यक्ति पूंजीपति से ईर्ष्या करता है। यदि सब व्यक्ति अपनी रोटी के लिये काम करें, वर्ग भेद स्वतः मिट जायेगा। धनी व्यक्ति फिर भी होंगे किन्तु वे अपने को अपनी सम्पत्ति का न्यासी समझेंगे और इसका प्रयोग वे मुख्यतया सार्वजनिक हित में करेंगे।[10]

रोटी–रोजी का सिद्धान्त उन व्यक्तियों के लिये जो अहिंसा का पालन करते है, सत्य की अर्चना करते है तथा ब्रह्मयर्च का स्वाभाविक रूप से पालन करते है, वरदान स्वरूप है। श्रम का प्रयोग वास्तव में कृषि से ही सम्बन्धित हो सकता है। चूंकि, सभी यह कार्य नहीं कर सकते, अतः व्यक्तियों को कताई अथवा बुनाई, बढईगिरी अथवा लुहारी आदि कार्य कृषि के स्थान पर करने चाहिये और कृषि को अपना आदर्श स्वीकार करना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को अपना स्वयं का महतर होना चाहिए। अपना मैला खुद उठाना चाहिये। सफाई करने का कार्य समाज के किसी वर्ग–विशेष को सौंप दिया जाना न्याय–संगत नहीं है। बाल्यकाल से ही हमारे मस्तिष्क पर यह विचार कि 'हम सब महतर है' अंकित कर देना चाहिये और सफाई के कार्य को रोटी–रोजी के साथ जोड़ देना चाहिये। ऐसा करने से मानव की समानता का सही मूल्यांकन हो सकेगा।[11] सभी के लिये प्रचुर मात्रा में खाद्य सामग्री तथा समुचित विश्राम की सुविधाऐं उपलब्ध हो सकेंगी। जनसंख्या का दबाव, रूगणता तथा निर्धनता भी नहीं रहेगी। जनहित में अनेक प्रकार के हुनर व्यवसाय आदि विकसित होंगें। ऊंच–नीच के भेद नहीं रहेंगे। न कोई निर्धन होगा, न कोई धनाढय, न कोई सवर्ण होगा, न कोई अछूत।[12]

गांधीजी ने रोटी–रोजी के सिद्धान्त को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। असाध्य दिखाई देते हुये भी, इस सिद्धान्त का दैनिक शारीरिक परिश्रम द्वारा संधारण संभव है। हमारी दैनिक आवश्यकताओं को सीमित करने तथा सादा भोजन करने की वृत्ति हमें 'जीने के लिये खाने' के न कि –'खाने के लिये जीने' की प्रेरणा देती है। बौद्धिक श्रम के द्वारा अर्जित आजीविका उचित नहीं है। शरीर की

आवश्यकतायें शारीरिक परिश्रम द्वारा ही पूरी की जा सकती है। बौद्धिक श्रम केवल आत्मा की परितुष्टि के लिये है। आय के लिये इसका उपयोग नहीं होना चाहिये। आदर्श राज्य में चिकित्सक, वकील तथा अन्य केवल समाज के हित के लिये कार्य करेंगे, अपने स्वार्थ के लिये नहीं। रोटी–रोजी के नियम के प्रति आज्ञापालन समाज की संरचना में अवाक क्रान्ति लायेगी। आस्तित्व के लिये संघर्ष के स्थान पर पारस्परिक सेवा के आदर्श में ही मानव की विजय सन्निहित है। पाशविक कानून को मानवीय कानून में परिवर्तित करना है। स्वेच्छा से गांवो की ओर अभिमुख होना है। गांवो में बसनेवालों की निर्धनता का कारण स्वैच्छिक आज्ञा पालन की क्षमता में कमी का सूचक है। शारीरिक श्रम से विमुख होने के कारण ही गांवो से शहरों की ओर पलायन की स्थिति उत्पन्न हुई है। अनिवार्य आज्ञापालन दासता है। रोटी–रोजी नियम के प्रति अनिवार्य आज्ञापालन की स्थिति, निर्धनता, रोग एवं असंतोष उत्पन्न करती है। स्वेच्छा से आज्ञापालन की प्रवृति संतोष तथा स्वास्थ्य प्रदान करती है। जिस प्रकार से पुत्र स्वेच्छा से पिता की आज्ञा का पालन करता है, उसी प्रकार व्यक्ति को रोटी–रोजी के लिये स्वैच्छिक श्रम करना है। गांवो में उद्योंगों का विकास कर स्वैच्छिक श्रम का सूत्रपात किया जा सकता है।[13]

गांधीजी ने पूंजी तथा श्रम की परस्पर न्यासी के रूप में माना है। दक्षिण अफ्रिका, चम्पारन एवं अहमदाबाद में अहिंसा का प्रयोग कर गांधीजी ने बंधक मजदूरों तथा अन्य प्रकार के श्रमिकों की समस्या का निदान प्रस्तुत किया है। अहिंसा द्वारा श्रम की समस्याओं का निराकरण स्थायी है क्योंकि अहिंसा श्रमिक में यह अनुभूति जागृत करती है कि उसका श्रम उसी प्रकार पूंजी है जिस प्रकार धातु। उन्हे अपनी आन्तरिक शक्ति को पहचानना है ताकि वे अपनी संगठनात्मक शक्ति का सही प्रयोग कर शोषण का अंत कर सके। श्रमिकों की स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि वे शोषणमुक्त होने पर अहिंसा का त्याग कर दें। यदि ऐसा किया गया तो वे स्वयं पूंजीपतियों के समान बुरे एवं शोषणकारी बन जायेंगे। अहिंसक बने रहने पर वे पूंजी को सहयोग प्रदान करते हुए उसका सही उपयोग करवा सकेंगे। मिल तथा मशीन को वे शोषण के प्रतिनिधि न मानकर उत्पादन के अपने उपकरण स्वीकार करेंगे। उसकी वे उसी प्रकार रक्षा करेंगे जैसे वह उनकी स्वयं की सम्पत्ति हो। वे न तो उसे हानि पहुचायेंगे और न चोरी करेंगे अपितु अधिक से अधिक उत्पादन बढायेंगे। पूंजी तथा श्रम परस्पर न्यासी बन कर उपभोक्ताओं के भी न्यासी बन जायेंगे। न्यासिता का सिद्धान्त एकतरफा नहीं है। इसमें न्यासी की उच्चता को स्वीकार नहीं किया गया– सभी एक दूसरे के पूरक, सहायक एवं समान है। विश्व में देवताओं की कोई पृथक प्रजाति नहीं है, किन्तु वे सब देवता है जो उत्पादन की शक्ति रखते है तथा उस शक्ति का प्रयोग समाज के हित में करते है– श्रमिक तथा पूंजीपति दोनों ही।[14]

आर्थिक विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से समान वितरण की व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए गांधीजी ने व्यक्त किया है कि सब व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिये और आवश्यकता से अधिक किसी के पास नहीं होना चाहिऐ। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति की भूख कम है और वह पाव भर आटे में अपना पेट भर सकता है और दूसरे को उससे चार गुने आटे की आवश्यकता है तो दोनो की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिये। इसके लिए समाज की संरचना में परिवर्तन करना होगा। अहिंसा द्वारा यह परिवर्तन लाया जा सकता है। व्यक्ति को अपने निजी जीवन में परिवर्तन लाना होगा। उसे भारत की निर्धनता को ध्यान में रखते हुये अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम करना होगा। उसकी आमदनी बेईमानी–रहित होनी चाहिए। उसे भविष्य की चिंता छोड़नी होगी। उसे जीवन के हर क्षेत्र में अपने ऊपर नियंत्रण लगाना होगा। जब व्यक्ति अपने जीवन में यह उतार ले तभी अपने मित्रों तथा पडोसियों को इस आदर्श का उपदेश दिया जा सकता है। समान वितरण की धारणा पर ही न्यासिता का सिद्धान्त आधारित है। धनी व्यक्तियों को अपने पडोसियों से अधिक धन नहीं रखना है। अतिरिक्त धन की न्यासी के रूप में समाज के लिये प्रयुक्त करे। न्यासी की ईमानदारी पर सब कुछ निर्भर करेगा। यदि न्यासी ने निर्धनों के संकट का निवारण नहीं किया तो फिर सविनय अवज्ञा तथा अहिंसक

असहयोग का मार्ग अपनाया जायगा। निर्धन व्यक्तियों के सहयोग के बिना धनी व्यक्ति धन एकत्र नहीं कर सकता यह बात निर्धनों को समझाई जाये तो वे एक जुट हो अहिंसा द्वारा समाज में व्याप्त निर्मम असमानताओं का अंत कर भुखमरी से मुक्ति प्राप्त कर सकते है।[15]

न्यासी के सम्बन्ध में गांधीजी ने बतलाया कि न्यासी से परोपकारी अथवा धर्मात्मा का अर्थ नहीं लेना चाहिये। न्यासिता का विचार स्थापित होने के पश्चात् परोपकारियों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। न्यासी का उत्तराधिकारी व्यक्ति–विशेष नही होता अपितु समस्त जनता होती है। अहिंसा पर आधारित राज्य में न्यासियों का बट्टा निर्धारित होगा। राजा–महाराजा एवं जमींदार सभी अन्य पूंजीपतियों के समान स्तर पर न्यासी ही माने जायेंगे।[16] पदासीन न्यासी अपने उत्तराधिकारी का कानूनन नामांकन कर सकेगा यद्यपि सम्पत्ति जन हित में प्रयुक्त होगी।[17]

समानता के आदर्श की व्याख्या करते हुए गांधीजी ने व्यक्त किया है कि वर्ण–भेद किसी भी मूल्य पर स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये। अमीर तथा गरीब की खाई इतनी बढ़ी हुई है कि सारा दृश्य ह्रदय–विदारक लगता है। निर्धन ग्रामीण को दुतरफा शोषण का शिकार बनाया गया है–एक और विदेशी सरकार तो दूसरी और शहर के निवासी–दोनों ही उसका शोषण करते है। वे अन्न उपजाते है, फिर भी भूखे रहते है। वे दुग्ध उत्पादन करते है, फिर भी उनके बच्चों को दूध पीने को नहीं मिलता है। यह शर्मनाक बात है। प्रत्येक व्यक्ति को संतुलित आहार मिलना चाहिये, साफ सुथरा मकान मिलना चाहिये, बच्चों की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये और चिकित्सा की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये। यही आर्थिक समानता का चित्र है। गांधीजी आवश्यक वस्तुओं के अलावा उत्पादन को प्रतिबंधित नहीं करना चाहते किन्तु इतना अवश्य चाहते है कि अन्य सभी उत्पादन निर्धन व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के पश्चात किया जाय।[18]

न्यासिता के सिद्धान्त के संबंध में गांधीजी ने एक ड्राफ्ट फार्मूला तैयार किया था किन्तु वह गांधीजी के जीवन काल में प्रकाशित नही हो पाया। बाद में प्यारेलाल ने इस फार्मूला को प्रकाशित करवाया। न्यासिता के बारे में प्यारेलाल के गांधीजी से हुये वार्त्तालापों से अनेक नये तथ्य प्रकाश में आये है। प्यारेलाल ने जो प्रमुख प्रश्न प्रस्तुत किये है उनमे कतिपय महत्व के है। एक प्रमुख चुनौती जो कि गांधीजी के न्यासिता सिद्धान्त के संदर्भ में प्रस्तुत की गई है, यह है कि यदि अहिंसा के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग अथवा आत्मदाह भी करना पड़े और इसके द्वारा विरोधी पर प्रभाव डाला जाय तो फिर पूंजीपतियों को शोषण से प्राप्त अपनी अथाह सम्पति त्यागने को विवश क्यों नहीं किया जा सकता? न्यासिता की ही क्या आवश्यकता है? अनेक व्यक्ति इसे कोरी गप्प मानते है। क्या अहिंसा की शक्ति सीमित है? गांधीजी सुधारवाद की राजनीति को क्रान्ति का हनन करने वाली मानते है। क्या यही बात सामाजिक क्रान्ति के सम्बन्ध में लागू नही होती? उपर्युक्त शंकाओं का निवारण प्रस्तुत करते हुये गांधीजी ने व्यक्त किया है कि प्रश्नकर्ता के मस्तिष्क में रूस का उदाहरण है। धनाढय वर्ग की सम्पत्ति को जब्त कर उसे जनता में वितरित कर दिया जाना असाधारण क्रान्तिकारी उत्साह का जनक है, किन्तु न्यासिता की योजना में जनता न केवल पूंजीपतियों की सम्पत्ति का ही उपयोग करती है अपितु पूंजीपति की योग्यता जानकारी तथा अनुभव का भी उपयोग कर सकती है। यह और भी वृहत क्रान्ति है। हम पूंजीपतियों के व्यावसायिक अनुभव तथा योग्यता को जो कि उन्होने पीढियों के विशिष्टीकरण से प्राप्त की है, नकार नहीं सकते। जब तक हम शक्ति सम्पन्न न हो जायें, परिवर्तन ही हमारा शस्त्र है, किन्तु शक्ति प्राप्त करने के पश्चात् हम परिवर्तन को स्वेच्छिक शस्त्र के रूप में काम में लेंगे। परिवर्तन व्यवस्थापन के पहले किया जाना चाहिय। अन्यथा व्यवस्थापन निर्जीव मात्र रहेगा। उदाहरण के तौर पर हमें सफाई के नियमों को लागू करने की शक्ति प्राप्त है। किन्तु हम इससे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि जनता इसके लिये तैयार नही है।[19]

पूंजीपति यदि स्वेच्छा से न्यासी बनने की तैयार न हो तो जनमत के दबाव से ऐसा किया जा सकता है, किन्तु इसके लिए जनमत को संगठित करने की आवश्यकता है। जनमत की मत अभिव्यक्त करने की शक्ति को इतन विस्तृत करने की आवश्यकता है कि बहुमत की इच्छा को प्रभावी किया जा सके। केवल संसदात्मक कार्यवाही से जनता की शक्ति प्राप्त नहीं होगी। अहिंसक असहयोग ही जनता की वास्तविक शक्ति है। अहिंसा का यह तात्पर्य नहीं कि हम शक्ति पर कब्जा कर लें क्योंकि यह अहिंसा का लक्ष्य नहीं हो सकता। शासन की मशीनरी को कब्जे में किये बिना भी अहिंसा द्वारा शक्ति को नियंत्रित एवं निदेशित किया जा सकता है। शासन केवल हिंसा से ही नहीं चलाया जा सकता। शक्ति का प्रयोग फूल के समान हल्का होना चाहिये ताकि किसी को भी उसका वजन न अनुभव हो। गांधीजी के अनुसार ''जनता ने कांग्रेस की सत्ता को स्वेच्छा से स्वीकार किया था। एक से अधिक बार मुझे डिक्टेटर की पूर्ण शक्ति से विभूषित किया। किन्तु हर व्यक्ति यह जानता था कि मेरी शक्ति उनकी स्वैच्छिक स्वीकृति पर निर्भर करती थी। वे मुझे कभी भी अलग कर सकते थे तथा मैं भी बिना किसी नानुकर के हट जाता। खिलाफत के दिनों में मेरी सत्ता और कांग्रेस की सत्ता से किसी को परेशानी नहीं हुई। अली बंधु मुझे 'सरकार' कह कर पुकारते थे। हालांकि वे मुझे जानते थे कि वे मुझे अपनी जेब में रखते थे। जो कुछ समय मेरे बारे में अथवा कांग्रेस के बारे में सत्य था, वह शासन के बारे में सत्य हो सकता है।''[20]

सिद्धान्त में अहिंसक राज्य की स्थापना अथवा अहिंसक तानाशाही सम्भव है, किन्तु उसके लिये आत्मानुशासन, आत्मत्याग एवं तपस्या की आवश्यकता है। भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध (अध्याय) में अहिंसक राज्याध्यक्ष का वर्णन मिलता है। वह ऐसा व्यक्ति है जिसने समस्त पारिवारिक सम्बन्धों का त्याग कर दिया है, भय, पक्षपात, क्रोध, मोह सबसे निर्लिप्त है। अपने लिए किसी बात की कामना न करते हुये–न शक्ति की, न गौरव और न प्रसिद्धि की –वह विनय एवं आत्मत्याग की अभिव्यक्ति है। सतत अनुशासन से वह ऋतुओं, थकान तथा हानि के कष्टों से निर्मुक्त हो जाता है। यदि उसकी आत्मा बलवान होते हुए भी शरीर निर्बल हो जाय तो ऐसा व्यक्ति आत्मदाह कर शरीर त्याग देगा। ऐसा ही व्यक्ति अहिंसा के अनुरूप शासन कार्य कर सकता है। मुक्ति का मार्ग सुगम नही है। यह भी आवश्यक नहीं कि ईसामसीह, मोहम्मद अथवा बुद्ध जैसे दिव्य पुरूष ही यह कार्य कर सकते है। महापुरूषों का अवतरण कभी–कभी ही होता है। किन्तु साधारण व्यक्ति भी अहिंसा को आत्मसात् कर सारे समाज को मुक्ति दिला सकता है। ईसा द्वारा दर्शाये गये मार्ग का ईसा के बारह शिष्यों ने ईसा की उपस्थिति के बिना अनुसरण किया। विद्युत का अविष्कार करने में वैज्ञानिकों की अनेक पीढ़िया निकल गई, किन्तु आज साधारण से साधारण व्यक्ति, यहाँ तक कि बालक भी विद्युतीय शक्ति का दैनिक जीवन में उपयोग करता है। इसी प्रकार से आदर्श राज्य का प्रशासन चलाने के लिये पूर्ण पुरूष की हर समय आवश्यकता नही होती। एक बार शासन स्थापित होने के पश्चात् शासन स्वतः सुचारू रूप से चलता रहेगा। सामाजिक जागृति की पहले आवश्यकता है, शेष बातें अपने आप हो जायेंगी। श्रमिकों को यह बताना आवश्यक है कि सच्ची पूंजी कोई सोना–चाँदी नही, अपितु उनके हाथों एवं मस्तिष्क द्वारा किया गया श्रम है।

संदर्भ सूची

1. दी कलेक्टेड वर्क्सः– खण्ड 13 पृ0– 313, 316
2. यंग इंडियाः– 15–11–1928
3. यंग इंडियाः– 17–3–1927
4. यर्वदा मंदिरः– पृ0 23–24

5. एथिकल रिलिजनः— पृ0 58
6. यंग इंडियाः— 26—11—1931
7. यंग इंडियाः— 26—11—1931
8. मोर्डन रिव्यूः— पृ0 412
9. मोर्डन रिव्यूः— पृ0 413
10. यर्वदा मंदिरः— पृ0 51—52
11. र्वदा मंदिरः— पृ0 53—54
12. हरिजनः— 29—06—1935
13. हरिजनः— 29—06—1935
14. हरिजनः— 12—04—1942
15. हरिजनः— 23—02—1947
16. हरिजनः— 31—03—1946
17. हरिजनः— 25—10—1952
18. हरिजनः— 25—10—1952
19. हरिजनः— 25—10—1952
20. हरिजनः— 25—10—1952

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

परंपरा एवं आधुनिक जीवन संघर्ष के शब्द चित्र

बिपिन कुमार सिंह

शोधार्थी, हिन्दी, भू. ना. मं. विश्वविद्यालय, मधेपुरा (बिहार)

आजादी के बाद आधुनिकताबोध की दुसरी सभ्यता है। त्रिलोचन की यह आधुनिकता बोध की सभ्यता लगातार बदलती हुई सभ्यता है। बदलते हुए इसी आधुनिक भारत में त्रिलोचन ने अपने अनुभव, अपनी दृष्टि, अपनी पकड़ यानी आत्मचित्र को केन्द्र में रखा था। अज्ञेय के कवि के केन्द्र में कभी भारत का मानचित्र नहीं रहा। उनका 'पराया' मन कभी धर्मवीर भारती से भी नहीं मिला।

अमृतलालनागर आगरा और लखनऊ में कभी वहाँ के जीवन से अनजान नहीं रहे। परसाई ने दिल्ली और जबलपुर में बदलते भारतीय मानस को– 'सेठ बॉकेमल' उपन्यास की तरह रचा और परखा है। दोनों जीवन के सत्य के जीवन्त लेखक है। इलाहाबाद में रहते हुए त्रिलोचन ने महाकुम्भ 1953 की विडम्बना को रचा और परखा। तुलसीदास के बाद त्रिलोचन ने इस 'महाकाव्य' में युग की झलक मिलती है। मरणशील परंपरा बदलते हुए भारत से टकराती है यहाँ यह इमानदार कवि की कसौटी है। वह जीवन की विडम्बना पर भीतरी व्यंग करता है। त्रिलोचन आज अपनी जमीन पर खड़े है करीब से और उघेड़ते चलते है आधुनिकतावादी मध्यम वर्ग की सत्ता को। महाकुम्भ 1953 में देखा था त्रिलोचन ने। मुझे पढ़ते हुए अक्सर सिर्फ परसाई और अमृतनागर आजाद भारत के दो रचनाकार याद आए थे। परसाई का त्रिलोचन की काठी की यह विशेषता है न दोनों आधुनिकतावादी भाववादी दर्शन की आलोचना करते है । वह शरीर और मन से स्वस्थ लेखक के साथ अपने व्यंग में बुद्धिवादी रचनाकार हैं।[1]

अपने समकालीनों में भी त्रिलोचन का मिजाज अलग है– एक अर्थ में विशिष्ट भी। उनके पास कविता की भाषा का अभिजात्य नहीं न ही महानगरीय चेतना का जादू है। उनकी कविताएँ, लोकचेतना, लोक संस्कृति, लोकजीवन के प्रकृत प्रभाव में है। त्रिलोचन गँवई कवि की सहज संवेदना के द्वारा प्रकृति को, जीवन को, मानवीय संघर्ष को जितनी आत्मीयता से अपनाते है, वह अद्‌भुत है। सहज बतकही करने वाली कविताएँ कब जीवन के बारे में कोई संदेश दे जाएँगी, कहना कठिन है। कविताई उनके लिए लोकजीवन से विमुखता का बहाना नहीं बनी। उसमें डुबकर ही त्रिलोचन का कवि कर्म सार्थकता पा सकता है। लोकजीवन में रचा–बसा कवि ही लिख सकता है–

यह रहस्य कढ़ा किस ओर से
हृदय की लिपि वायु तरंग में
लिख उठी छवि की अरधान–सी
नयन देख जिसे चुप हो गये

'किस ओर से' जरूरी नहीं त्रिलोचन के लिए प्रश्न ही हो, उत्तर भी हो सकता है। सहजता में भी त्रिलोचन वही है जहाँ बिरले ही पहुँच पाते है।[2]

समकालीन कविता के चरित्र की पहचान करते समय याद रखना आवश्यक है। दरअसल कविता से बहुत ज्यादा उम्मीद करना कविता के महत्व को घटना है। समाज में कविता की भूमिका को त्रिलोचन खूब पहचानते है, उनकी कविता में आने वाले संघर्षशील मनुष्य की चिंता दुनिया में घटित होने वाली घटनाओं को लेकर भी है। त्रिलोचन का कवि आत्मकेन्द्रित नहीं हैं, वरन् सजग भी है । सजगता के भावातिरेक में वह कविता की सीमाएँ लाँधकर युद्धभूमि में नहीं लड़ता है, वह अपने कर्म के प्रति जागरूक रहता है। एक सौनेट का अंश देखें–

हिन्द चीज की जय दीनों ललितों की जय है
इस जय में स्वतंत्रता नये गान–गाती है
निर्भय, मानव पंक्ति आज तैयार खड़ी है
लाली फैल चली है, सम्मुख सूर्योदय है।[3]

आजकल हिन्दी कविता में या तो प्रकृति–अनुभव शून्य अप्रमाणिक कविताएँ लिखी जा रही है या प्रकृति कविता में मात्र एक आलंकारिक उपकरण के रूप में आती है ये दोनों प्रवृत्तियाँ इस बात की द्योतक है कि कवि का सम्पर्क प्रवृति से टूटता जा रहा है। हिन्दी के कितने ऐसे कवि है, जिन्हें वनस्पतियों, पेड़–पौधों, चिड़ियों, फसलों के नाम याद है। ऐसी कविताएँ बड़ी तादाद में लिखी जा रही है जिनमें ऐन्द्रिय–बोध गायब होता जा रहा है। औद्योगिक विकास के साथ लोक–जीवन की परम्पराओं का क्षय होता जा रहा है। लोक–संस्कृति के तमाम रूपों पर पूँजीवादी संस्कृति का प्रभाव पड़ता जा रहा है लोक–कला के रूप नष्ट होते जा रहे है। उसकी जगह जनविरोधी पूँजीवादी संस्कृति विकल्प के रूप में तैयार की जा रही है, महानगरों के आतंक में रहकर कविता लिखने वाले कवि जो पहले अपनी सहज कविताओं के लिए जाने जाते रहे हैं, अब उनकी कविताओं में अस्वाभाविक चमत्कार की प्रधानता है। आश्चर्य की बात यह है कि महानगर की राक्षसी आडंबरपूर्ण संस्कृति के बीच रहते हुए कवि त्रिलोचन अपने लोक–संस्कार की पटरी से नीचे नहीं उतरे हैं। अपने ठेठ अन्दाज में उन्होंने अभिजात्य संस्कृति को ठेंगा दिखा दिया है। प्रवृति त्रिलोचन की कविता में शक्ति बनकर सामने आती है।

तुलसी और त्रिलोचन में अन्तर जो झलके
वे कालान्तर के कारण है देश वही है,
लेकिन तुलसी ने जब–जब जो बात कहीं है,
उसे समझना होगा संदर्भों में कल के
वह कल, कब का बीत चुका है–आँखे मल के
जरा देखिए इस घेरे से कहीं निकल के,
पहली स्वधारा साँसो में कहाँ रही है,
धीरे–धीरे इधर से किधर आज वह रही है।
क्या इस घटना पर आँसू ही आँसू ढ़लके।
और त्रिलोचन के सन्दर्भो का पहनावा
युग ही समझे, तुलसी की भी नहीं सजेगा,
सुखद हास्यरस हो जायेगा। जीवन अब का
फूटकर मेल दिखाकर भी कुछ और बनावा
रखना है। अब बाज पुराना नहीं बजेगा
उसके मन का। मान चाहिए, सबको सका।[4]

बातचीत के अंदाज ही नहीं, बातचीत वाली भाषा का भी कलात्मक उपयोग त्रिलोचन ने किया है। उनकी कविता में एक ओर किसानों सा बातूनीपन है तो दूसरे छोर पर बहुत सारी बात को कुछ शब्दों में, एक चुस्त से वाक्य में एक सूक्ति में समेट लेने की मितव्यिता यह द्वैत वस्तुतः इस बात का प्रमाण है कि उनकी कविता का रचाव हिन्दी अंचल के किसान के चरित्र, आदतों और बोलचाल से कितने गहरे अर्थों में संभव हुआ है। 'मैं तुम' की पंक्तियाँ है, 'मैं तुमसे, तुम्हीं से बात किया करता हूँ। और यह बात मेरी कविता है'। यह निरंतन बातचीत ही है जिसके जरिए वह अनुभवों को अर्जित करते हैं। इहलाम की कविता यहाँ नहीं है। विचार की कविता भी नहीं। ना ही आधुनिकतावादियों की तरह जड़ाऊ और झलरमलर करते विम्ब की। वह विम्बों की झलरें नहीं बाँधते। विम्ब उनके यहाँ बहुत कम है। और जहाँ है वहाँ वे अलग से शोर मचाते, चौंधियाते हुए नहीं आते। वे आते भी हैं। उनकी कविता एक समग्र इकाई की तरह होती है। एक ऐसी अन्विति वहाँ होती है कि अलग से उसका कोई अंश निकालकर उद्धत करना अगर असम्भव नहीं तो मुश्किल जरूर होगा। यह अन्विति सिर्फ कविता, या भाषा के स्तर पर नहीं, अनुभव के स्तर पर भी है। वह किसी एंकागी या हिस्सों में बँटे अनुभवों को अपनी कविता में शामिल नहीं करते। शायद यहीं कारण है कि उनकी कविता किसी समय की मनोदशा को तो उजागर करती है लेकिन बहुत अधिक सतह पर घटित हो रही तत्कालीन स्थितियों या घटनाओं के व्यौरों को दर्ज नहीं करती। वह समाज या इतिहास से निलिप्त कविता नहीं है। उसमें मनुष्य के दैनान्दिन संघर्षों से लेकर उसके संघर्ष का लम्बा इतिहास उसकी विजय और उपलब्धियों के साथ दर्ज है।[5]

सचमुच इधर तुम्हारी याद तो नहीं आयी
झुठ क्या कहूँ। पूरे दिन मशीन पर खटना
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना
इस–उस पर मन दौड़ाना, फिर उठकर रोटी
करना, कभी नमक से कभी साग से खाना।
धीरज धरो आज कल करते तब आऊँगा
जब देखूँगा अपना घर कुछ पर पाऊँगा।

परदेशी मजदूर के पत्र में उसकी कठिन जिन्दगी और मन की दशाओं को जिस कुशलता से प्रकट किया गया है वह केवल त्रिलोचन ही कर सकते है। यह उनकी यर्थावादी कला का एक उदाहरण है। आधुनिकता के दौर में मध्यवर्गीय व्यक्ति के परायापन (एलिअनेरान) को कविता औरक हानी में बहुत फेंटा गया, लेकिन मजदूर का परायापन की प्रक्रिया का शिकार होकर धीरे–धीरे अपने परिवार और मानवीयता से भी अलग हो जाता है। इस कविता में मजदूर अपने परिवार से विच्छिन्न हो गया है। अभी उसमें परिवार से लगाव बचा है, मनुष्यता बची है, लेकिन कब तक? परायापन की प्रक्रिया में पड़े मजदूर की भौतिक और मानसिक स्थितियों की ऐसी अभिव्यक्ति हिन्दी के किसी दूसरे कवि ने की है? किसानों–मजदूरों की जिन्दगी की त्रासद स्थितियों को गहराई से महसूस करने वाला कवि ही यह लिख सकता है, ''हाथो के दिन कब आएँगे। कब तक आएँगें, यह कोई नहीं बताता।''

जैसे प्रकृति के बिना किसान का जीवन अधूरा होता है, वेसे ही प्रकृति की उपेक्षा करने वाली किसान–जीवन की कविता भी अधूरी होगी– यह बात किसान जीवन की समग्रता का कवि जानता है ।

प्रकृति किसान–जीवन का अंग है उससे किसान का सम्बन्ध मनमानें की बात नहीं है, अस्तित्व की अनिवार्यता है। त्रिलोचन का किसान मन खुब रमता है। उनके यहाँ आकर्षक सौन्दर्य है और विस्मयकारी रूपी, सावन की बरसात का संगीत है और यादों का प्रंचड मेध–गर्जन भी, प्रकृति से सहज आत्मीयता है और कठिन संघर्ष भी। प्रकृति से किसान–जीवन का ऐसा ही नाता है।[6]

संदर्भ ग्रंथ :

01. त्रिलोचन के बारे में – सं0 गोविन्द प्रसाद, पृ0 सं0–110
02. वही / पृ0 सं0–112
03. आधार शिला–त्रिलोचन विशेषांग, 2011, पृ0 सं0–29
04. वही / पृ0 सं0–32
05. वही / पृ0 सं0–35
06. त्रिलोचन के बारे में – सं0 गोविन्द प्रसाद, पृ0 सं0–85

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

मौत का नगर' और 'खुदा और खुदा की लड़ाई' का तुलनात्मक अध्ययन

धर्मेन्द्र दास

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

भारतीय दक्षिणपंथ के तीव्रतम उभार के इस काल में उपरोक्त दोनों कहानियों का साहित्यिक और सामाजिक महत्त्व है। 'मौत का नगर' (अमरकांत) और 'खुदा और खुदा की लड़ाई' (यशपाल) कहानी किसी भी सहृदय पाठक के संवेदनशील हृदय को भीतर तक झकझोर कर आंदोलित करने की क्षमता से ओतप्रोत दिखती है। हिंदी कथा साहित्य की लगभग सवा सौ वर्षों की विकास–यात्रा में साम्प्रदायिक हिंसा का स्थान स्थायी भाव सरीखा रहा है। प्रेमचंद, यशपाल, अमरकांत, राही मासूम रजा, काशीनाथ सिंह से लेकर समकालीन लेखिकाओं मसलन चन्द्रकांता और मनीषा कुलश्रेष्ठ तक सब ने भारतीय समाज में व्याप्त हिन्दू–मुस्लिम हिंसा पर अपने नजरिए से काफी कुछ लिखा है। उग्र राष्ट्रवाद के इस समय में यह स्पष्ट रूप से दिख रहा है कि शासन तंत्र ही नहीं चाहता कि हिंदुस्तान की 'गंगा–जमुनी' तहजीब जीवित रहे। समकालीन समय में एक सम्प्रदाय विशेष को जिस तरह से आतंकवादी और राष्ट्रद्रोही घोषित किया जा रहा है, और जिस तरह से उनके खिलाफ सत्ता पोषित विषवमन हो रहा है उससे भारत के साम्प्रदायिक सद्भाव के माहौल को सदा–सर्वदा के लिए समाप्त करने की साजिश का संकेत स्पष्ट रूप से मिलता है। हिंदी साहित्य के तमाम प्रगतिशील लेखकों ने इस खतरे को पिछली शताब्दी में ही भांप लिया था। अमरकांत और यशपाल ने भारतीय समाज की इस त्रासदी से व्यथित होकर इन कहानियों का सृजन किया है। उन्होंने अपनी इन कहानियों में साम्प्रदायिक हिंसा के बरअक्स भारत की प्रेमपूर्ण और समन्वयवादी संस्कृति को स्थापित करने की कोशिश की है। देश में हजारों मुद्दे हैं जिसपर सरकार से प्रश्न किये जा सकते हैं मसलन बेरोजगारी, भुखमरी, महंगाई, पलायन आदि लेकिन नेतागण इन सब से जनता का ध्यान भटकाने के लिए साम्प्रदायिक तनाव' का सहारा लेते हैं। ऐसे माहौल में यह पंक्ति बेहद प्रासंगिक जान पड़ती है–"सब गरीब मारे जाते हैं। रोज कमाने खानेवाला हूँ। तीन दिन से घर में कुछ नहीं बना।"[1] इन समस्याओं को एक साहित्यकार के रूप में बेहद सरल भाषा में अमरकांत लिखते हैं–"हाँ, मिल–जुलकर रहें, तो आँखें उठाने की किसी की हिम्मत न पड़े।"[2] स्पष्ट है कि साहित्यकार भविष्यद्रष्टा होता है और वह आगे आने वाली चुनौतियों को भी ध्यान में रखकर लिखता है। निश्चितरूप से उनके समय भी स्थितियाँ बुरी थीं लेकिन आज स्थितियाँ बदतर हो चुकी हैं, ऐसे में इन समन्वयवादी और आपसी भाईचारे से प्रेरित कहानियों की प्रासंगिकता बहुत बढ़ गयी है और इन्हें बार– बार पढ़े जाने की आवश्यकता है।

दोनों कहानियाँ न केवल भाव के धरातल पर एक जैसी हैं बल्कि उनका शिल्प भी एक जैसा है। यह होना स्वाभाविक भी है क्योंकि जब साहित्यकार किसी गहरी समाजिक समस्या पर लिखता है तो उसके लिए रचना के शिल्प से कहीं ज्यादा भाव की सम्प्रेषणीयता महत्वपूर्ण होती है। यही कारण है कि दोनों कहानियों में भाषा सीधी और सरल है, लेकिन इसके साथ ही हर शब्द की व्यंग्यात्मक क्षमता की विशिष्टता को पहचाना जा सकता है। आज के समय में यशपाल का यह व्यंग्य समीचीन जान पड़ता है–"अरे, हो क्या गया? अब तो फौज भी अपनी है, सब मुसलमान भाई हैं। काफिर तो सब गए। लोगों ने तो पाँच–पाँच सेर सोना बटोर लिया है, बजाजी से घर भर लिए हैं।"[3] यशपाल की व्यंग्यात्मक

यथार्थ की इन पंक्तियों के केंद्र में पाकिस्तान का एक शहर लाहौर है लेकिन इसकी तुलना आज भारत के किसी भी नगर से की जा सकती है। जहाँ हर नेता अपने चुनावी फायदे के लिए किसी को भी ललकारते हुए कह सकता है कि ''अब तो फौज भी अपनी है'' अर्थात अब पाप–पुण्य की चिंता छोड़ ''धर्म–रक्षा'' हेतु कुछ भी करने की स्वतंत्रता है। मेरी दृष्टि में अमरकांत यशपाल की अपेक्षा बहुत कठोर और तीखा व्यंग्य करते हैं। वे लिखते हैं–"बहुत से लोग मारो– मारो की आवाज करते हुए इधर ही दौड़े आ रहे हैं। उसकी आँखों के सामने एक छुरा चमक उठा। क्या वह घर के अंदर भाग जाए? वह दो कदम पीछे हट गया। पर कुछ मकानों के सामने खड़े गिरोहों के लोग उसी तरह बात करने में मशगूल थे। वह कुछ आश्वस्त हो कर शोर को ध्यानपूर्वक सुनने लगा, तो उसकी समझ में आया। बगलवाले मोहल्ले में बहुत–से कुत्ते लड़ रहे थे।"[4] स्पष्ट है कि हिन्दू– मुसलमान में बंटे इंसानों को वे कुत्ते से बेहतर नहीं मानते। ऐसे ही हिन्दू– मुसलमान जो बुद्धि– विवेक के मामले में कुत्ते के ही बराबर हों उन्हें ही कुत्तों की लड़ाई में छुरा दिख सकता है। इंसान का मूल्य इस समाज में जिस प्रकार घट रहा है उसपर अमरकांत के पात्रों का संवाद आंखें खोलने वाला जान पड़ता है। यह संवाद दृष्टव्य है–"कोई खास बात ? उन तीनों में से एक ने होठों में ही भुनभुनाकर पूछा। स्टेशन के पास एक आदमी को छुरा लगा है। दूसरे ने सूचना दी। हिन्दू है? नहीं मोहमडन है। क्या हिम्मतगंज में किसी लड़की की लाश मिली है? हाँ। मोहमडन है? नहीं, हिन्दू है।"[5] इस संवाद में इंसान की मौत से ज्यादा बड़ा सवाल ''हिन्दू'' या ''मुसलमान'' होने का है। ये कहानियाँ सहृदय पाठकों का ध्यान इसी ओर आकर्षित करती हैं। यशपाल की कहानी खुदा और खुदा की लड़ाई की यह पंक्ति भी दृष्टव्य है–"नसरू ने गठरी खोल डाली और गठरी में बँधी पिटारी का ढक्कन झटके से उठा लिया–माँ..... काफिर बुढ़िया भागी तो पिटारी में अपने पत्थर का खुदा लिए जा रही थी। वह विद्रूप में हँस पड़ा।" ये पंक्तियाँ आज के यथार्थ को उघाड़ कर रख देती हैं। आज समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक हिंसात्मक प्रवृत्ति को हम उस दौर में हुई दुर्घटनाओं के साथ भी जोड़कर भी देख सकते हैं।

समाज के निष्ठुर यथार्थ को इन कहानियों में चित्रित कर कथाकारों ने उन लोगों की भी आँखें खोलने की कोशिश की है जो जहरीली तकरीरों और बहकावों में आ कर नंगी तलवार ले अपनों का ही कत्ल करने पर उतारू हो जाते हैं। स्पष्ट है ऐसी हिंसाओं के बीच देश की मूल समस्याएं और चुनौतियाँ दब जाती हैं और बच जाती है सिर्फ हिंसा। जिसका फायदा होता है समाज के शीर्ष पर बैठे किसी तथाकथित नेता को। मौत का नगर की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–"आपसे सच कहता हूँ, जैसे बाड़े में मुर्गियाँ ठूँस दी जाती हैं, उसी तरह औरतें भागकर आई हैं और एक–एक मकान में रह रही हैं। उनकी हालत क्या बयान करूँ! लोग भूखों मर रहे हैं। कोई अपनी साइकिल बेच रहा है, कोई अपनी घड़ी बेच रहा है। गहने गिरवी रखे जा रहे हैं..."[6] समाज का ठीक ऐसा ही विद्रूप चित्रण यशपाल की कहानी खुदा और खुदा की लड़ाई में भी मिलता है। ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–"हिन्दू अपनी दुकानों में भारी–भारी ताले लगाकर चले गए थे। भीड़ पाकिस्तान जिंदाबाद ! अल्ला–हो–अकबर ! सल्तनते–इलाही जिंदाबाद ! के नारे लगा रही थी। दुकानों के ताले तोड़कर माल लूट रही थी। लुटेरे बजाजी की दुकानों से रेशम, मखमल, मलमल के थान उठा–उठाकर भागने लगे। कोई पंसारी और परचून की दुकानों से बादाम, किशमिश, छुहारे, आटा, सूजी, चीनी की बोरियां लेकर भाग रहे थे। किसी दुकान से पीतल–कांसे के बर्तन लूटे जा रहे थे। कुछ लोग सर्राफे की दुकानों पर पिल पड़े थे।"[7] स्पष्ट है कि इन कहानियों में अमरकांत और यशपाल जैसे सम्वेदनशील साहित्यकारों ने समाज में बढ़ती पशुता, उन्माद और बर्बरता के कारणों पर उंगली रखने की कोशिश की है। यह एक कटु सच्चाई है कि जिस देश में बेरोजगारी रिकार्ड स्तर पर होगी, वहाँ के लोगों को धर्म के नाम पर भड़काना और फिर लूट–खसोट का मौका देना तथाकथित नेताओं के लिये बहुत आसान होता है जबकि समस्याओं का सकारात्मक समाधान कोई भी नहीं देना चाहता।

अमरकांत और यशपाल जैसे कथा शिल्पियों ने हिंदी कहानियों में हिंदुस्तान की समन्वयवादी– सद्भावपूर्ण परम्परा और संस्कृति को साम्प्रदायिक तनाव की समस्या के समाधान हेतु लगातार चित्रित किया है। इस दृष्टि से भी इन कहानियों का अपना महत्त्व है। प्रगतिशील साहित्यकार होने के नाते जो समाधान उन्होंने देने चाहे हैं वे उनकी पंक्तियों में परिलक्षित होते हैं। यह पंक्ति दृष्टव्य है–"फज्जे गली के लोगों को अपना लता–पता और समान लिए भागते देखता तो उसकी आह निकल जाती– या अल्लाह, कैसी कयामत आ गयी! सब लोग चले जायेंगे तो इस उजाड़ में गुजर कैसे होगी! भूतों के इस डेरे में हम अकेले कैसे रहेंगे!"[8] स्पष्ट है कि देश की सीमाएं भले अलग हों, घटना भले पाकिस्तान की हो लेकिन यह प्रसंग आज के हिंदुस्तान के लिए उतना ही प्रासंगिक है जितना यह उन दिनों पाकिस्तान के लिए था। समन्वय और भाईचारे की ऐसी ही तस्वीर मौत का नगर में आद्योपांत दृ ष्टिगोचर होती है। कर्फ़्यू के दौरान एक अजनबी हिन्दू की जान बचाते हुए एक मुसलमान कहता है–"बाबूजी, आप सीधे चले जाइये, घबड़ाइये नहीं। ये साले बाहर से आकर मोहल्ले को बदनाम करने चाहते हैं। मैं जरा दूसरी जगह चला गया था तो ऐसी बात हुई, नहीं तो मैं यहीं खड़े होकर सबकुछ देखा करता हूँ कि कोई वारदात न हो जाए। उफ, कैसा खराब जमाना आ गया है। आप मजीद दूधवाले के यहाँ से दूध लेते हैं न?"[9] हिन्दू–मुसलमानों के बीच जो दीवार खड़ी हुई है वह चंद लोगों के स्वार्थ का परिणाम है अन्यथा हिन्दू–मुसलमान हिंदुस्तान में सदियों से एक–दूसरे के सुख–दुख में शामिल हो परस्पर समन्वय के साथ जिये जा रहे थे। यह पंक्ति दृष्टव्य है–"मोहल्ला जहाँ खत्म होता था, वहाँ ईंट की एक चहारदीवारी कुछ दूर तक चली गई थी। पर लोगों को अलग करने की कोशिशें सदा के लिए सफल नहीं होतीं और चहारदीवारी के बीच मे तोड़–तोड़कर कई रास्ते बना लिए गए थे।"[10] स्पष्ट है कि हिंदी कथाकारों ने भारतीय समाज को अपनी रचनाओं के माध्यम से पुनः वह रास्ता दिखाया है जिसपर वे सदियों से चले आ रहे थे, यह बात दीगर है कि राजनीति ने दो भाइयों के दिलों में शिगाफ डाल दिये हैं। अपने हिन्दू भाई–बहनों को मोहल्ला छोड़ कर जाते देख एक सहृदय मुसलमान की पीड़ा का चित्रण करते हुए यशपाल लिखते हैं– "फज्जे जानेवाले परिवारों को गिनता जा रहा था, कौन लोग चले और कौन रह गए? 13 अगस्त की ही सुबह ही साधूराम और जमुनादास के परिवार भी चले गए तो उसने बहुत उदासी से बेटे की ओर देखाकृबस बूढ़ी मूलाँ ताई ही रह गयी।"[11] इन पंक्तियों में एक बुजुर्ग मुसलमान की पीड़ा का उत्कर्ष दिखलाई पड़ता है। जिसने देखा है कि हिन्दू बहुल मुहल्ले में रहते हुए उसे कभी भी किसी परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा वह आखिर कैसे अपनी आंखों के सामने अपने करीबियों को घर से बेदखल होते देख सकता है?

इन दोनों कहानियों में एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है जिसका मूल्यांकन और परीक्षण बेहद आवश्यक है क्योंकि उसी पर भविष्य की नींव टिकी है। यशपाल और अमरकांत की इन कहानियों में युवा वर्ग का जिस ढंग से चित्रण किया गया है वह हमें सोचने को मजबूर कर देता है कि आखिर इस समाज में बच्चों की परवरिश किस ढंग से हो रही है कि उनके हृदय के भीतर धार्मिक उन्माद चरम पर है। सहृदय पाठक के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि वह कौन से कारक हैं जो बच्चों में धार्मिक उन्माद की प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हैं।एक जवान होते युवक का चित्रण करते हुए अमरकांत लिखते हैं–"इसी समय बाईं ओर से एक नौजवान दौड़ते हुए आया। उसकी उम्र बीस से अधिक न होगी। वह जाँघिया और बनियान पहने था और उसके हाथ में एक छुरा था। पर राम की नजर उसपर पहले ही पड़ गयी थी। उसका सारा शरीर सुन्न पड़ गया था। पी.ए. सी. के जवान कुछ दूर पर बैठे थे, पर चाहने पर भी वह चिल्ला नहीं पाया। वह नौजवान उसी की ओर दौड़ता हुआ आया, पर वह बड़ी फुर्ती से पीछे हट गया और नौजवान के आशंकित वार से बच गया। नौजवान ने उसको घूरकर देखा, फिर हँसते हुए छूटे वाण की तरह दौड़ते हुए दूसरी ओर की गली में घुस गया।"[12] ठीक ऐसा ही चित्रण यशपाल की कहानी में भी मिलता है। ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं– "नौजवान नसरू को भय से भागते काफिरों को देखकर

उत्साह अनुभव हो रहा था। वह दाँत पीसकर कहता जाने दो जहन्नुम में हरामी काफिरों को। पाकिस्तान में काफिरों का क्या काम!"[13] स्पष्ट है कि आज का युवा अपने रास्ते से भटक गया है क्योंकि एकाकीपन भरे समकालीन जीवन में आज उसने अपनी जड़ों को ही नहीं देखा और समझा है।

निष्कर्षरूप से कहा जा सकता है कि भले ही इन कहानियों का सृजन दशकों पूर्व हुआ हो लेकिन इसमें चित्रित घटनाएं आज के सामाजिक यथार्थ का आईना हैं। हिंदुस्तान आज भी हिंसात्मक उन्माद, धार्मिक कट्टरपन आदि समस्याओं से जूझ रहा है ऐसे में ये कहानियाँ राह दिखाती हैं। अमरकांत तो इन परिस्थितियों से ऐसे क्षुब्ध थे कि उन्होने धर्म–जाति के नाम पर लड़ने–कटने और मरने वालों की तुलना 'कुत्ते', 'गीदड़' और 'भेड़' तक से की है। यशपाल भी ऐसी ही परिस्थितियों का चित्रण करते वक्त यह दिखाते हैं कि सगा बाप भी अपने पुत्र को अमानवीयता के रास्ते पर बढ़ता देख भद्दी गालियाँ देकर सुधारने की कोशिश करता है। स्पष्ट है ये कहानियाँ समाज के क्रूर और मानवीय पक्षों को दिखाकर मानवता का संदेश देती हैं। सामाजिक मूल्यों के विघटन के इस दौर में सद्साहित्य की यही उपादेयता भी है कि वह समाज को सही दिशा दिखाए। महान कथा शिल्पी प्रेमचन्द ने कहा भी है कि साहित्य राजनीति से आगे चलने वाली मशाल है। इन दोनों कहानियों में यह बात सिद्ध भी होती है कि राजनीतिक कारणों से ही धार्मिक विद्वेष पनपता है लेकिन मानवीय सम्वेदनाओं के यथार्थ उदाहरण देकर अमरकांत और यशपाल ने समाज के सामने एक नजीर पेश की है कि हम उससे प्रेरणा लें। कुल मिलाकर यह कहने में हिचक नहीं होनी चाहिए कि दोनों ही कहानियाँ आज के परिवेश में बेहद प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अमरकांत, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 36, राजकमल पेपरबैक्स, दसवाँ संस्करण
2. वही, पृ० 36
3. यशपाल, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 52–53, राजकमल पेपरबैक्स, दसवाँ संस्करण
4. अमरकांत, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 30–31 राजकमल पेपरबैक्स, दसवाँ संस्करण
5. वही, पृ० 31
6. वही, पृ० 36
7. यशपाल, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 51, राजकमल पेपरबैक्स, दसवाँ संस्करण
8. वही, पृ० 51
9. अमरकांत, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 34, राजकमल पेपरबैक्स, दसवाँ संस्करण
10. वही, पृ० 31
11. यशपाल, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 51, राजकमल, दसवाँ संस्करण
12. अमरकांत, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 34, राजकमल प्रकाशन, दसवाँ संस्करण
13. यशपाल, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 51, राजकमल पेपरबैक्स, दसवाँ संस्करण

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

शांतिप्रिय द्विवेदी: युगबोध एवं रचना दृष्टि

डॉ. आराधना यादव
पूर्व शोध छात्रा म. गा. का. वि. वाराणसी

द्विवेदी जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे जिन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में समान रूप से लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। द्विवेदी जी का जीवन अपने समय की विसंगतियों को और साहित्य अपने युग की प्रवृत्तियों को समाहित किए हुए हैं। द्विवेदी जी ने दर्शन, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, परम्परा, आधुनिकता, राजनीति, समाजशास्त्र और साहित्य में निहित जीवन-मूल्यों का विवेचन विश्लेषण किया। परन्तु वे कभी भी राजनीति से प्रेरित मतवादों और विवादों में नहीं उलझे। अपनी समन्वयवादी दृष्टि से समकालीन समस्याओं पर विचार-विमर्श किया। इसीलिए द्विवेदी जी का संघर्ष ही उनकी प्रेरणा का स्रोत बनता गया।

द्विवेदी जी निबन्धकार, गद्यकार, कथाकार और कवि तो थे ही उन्होंने विपुल साहित्य की रचना भी की। उनकी रचनाओं में विशेष रूप से निबन्धों में उनका चिन्तन प्रमुख रहा है। द्विवेदी जी ने देश की वर्तमान स्थिति, संस्कृति, कला, राजनीति, सामाजिक स्थिति इत्यादि पर अपने विचार प्रकट किए पर उनमें उनकी गाँधीवादी जीवन दृष्टि ही प्रमुख रही। द्विवेदी जी वर्तमान स्थिति को लेकर चिंतित थे। सांस्कृतिक और नैतिक ह्रास, बढ़ते हुए भौतिकवाद, यन्त्रीकरण, औद्योगिक सभ्यता के परिणामस्वरूप पूँजीवाद, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, व्यापारिकता इत्यादि को लेकर वे अत्यन्त क्षुब्ध थे। उन्होंने इस स्थिति के निराकरण के लिए गाँधीवादी जीवन-दर्शन को श्रेष्ठ माना। ग्रामीण व्यवस्था ही श्रेयष्कर है। इसलिए गाँवों को स्वावलम्बी बनाया जाना चाहिए। गाँवों का सारा धन शहरों में चला जाता है और गाँव उसी तरह दीन-हीन स्थिति में रहते हैं। गाँवों में धन का अभाव न हो यदि पहाड़ों पर बरसते पानी की तरह जो वहाँ ठहरता नहीं गाँवों का धन वहीं रहें। वे चाहते थे कि गाँव गोकुल बने, स्वाश्रयी, स्वावलम्बी, आरोग्य, धनधान्य से सम्पन्न और उद्योगशील तथा प्रेम से युक्त बनें। द्विवेदी जी का मत था कि मात्र राजनीतिक, आर्थिक आन्दोलन लोकजीवन की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते। सांस्कृतिक संचरण की अनिवार्यता है। इसी में सृजन और निर्माण की संभावनाएँ हैं।

शान्तिप्रिय द्विवेदी को अपने युग और समय का अथाह ज्ञान था। द्विवेदी जी का विपुल रचना संसार इस बात का परिचायक है कि वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा जयशंकर प्रसाद जैसे इन

बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने आलोचना, निबन्ध तथा कविता संस्मरण इत्यादि साहित्य के विविध क्षेत्रों में अपना योगदान दिया। द्विवेदी जी के साहित्यकार के इन रूपों का अलग-अलग विवेचन अपेक्षित है। वे अपने युगबोध के स्मृतियों को व्यक्त करते हुए कहें- "मेरा अधिकांश शैशव प्रायः गाँव में ही मुकुलित हुआ, किशोर का प्रस्फुटन भी वहीं हुआ। किशोरावस्था में मैं गाँव से नगर में वैसे ही आ गया, जैसे आश्रम का मृगछौना अपनी नैसर्गिक आत्मीया शकुन्तला को खोजते यहाँ आ जाता। शकुन्तला तो फिर मिली नहीं, क्योंकि मैं ऐश्वर्य्या के राज प्रसाद की ओर न जाकर सरस्वती के मन्दिर में आ गया।"[1] वैसे तो द्विवेदी जी गद्य-पद्य के प्रभाव से साहित्य क्षेत्र में सन् 1920 के आस-पास ही आ गए, किन्तु इनका रागात्मक संस्फुरण छायावाद के प्रभाव से सन् 1924 में हुआ। छायावाद युग के जिन कवियों का प्रतिनिधित्व किया उनमें-प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी प्रमुख हैं। यद्यपि छायावाद के सर्वप्रथम प्रतिनिधि कवि प्रसाद जी है, तथापि उनकी अपेक्षायें निराला जी और पन्त जी की कविताओं से ही प्रभावित और उत्प्रेरित हुए। निराला जी के मुक्तछन्द और ओजस्वी स्वर से उत्साहित होकर ये भी कविता लिखने लगें।

द्विवेदी जी की परिस्थितियों और समस्याओं का निराला जी के जीवन से अधिक साम्य था, इसलिए आरम्भ में ही ये निराला जी के सम्पर्क में आ गए। दोनों लोगों का व्यक्तित्व और सामाजिक सोच एक जैसी थी। दोनों लोग परिस्थितियों के मारे गरीबी और आर्थिक तंगी से बेहाल थे। दोनों लोगों का हृदय समाज के निम्न वर्ग की संवेदनाओं से जुड़ा था, इसलिए दोनों लोगों की रचनाओं में आम आदमी, गरीब, मजदूर, निम्न तबके इत्यादि जैसे लोगों का स्वर मुखरित हुआ है। किन्तु द्विवेदी जी में निराला जैसा न तो प्रबल पौरुष था और न ही प्रचण्ड स्वाभिमान। इन्होंने स्वयं अपने बारे में कहा है- "मैं निराला जी के साथ होकर नहीं चल सका। शीघ्र ही भाव और स्वभाव की दृष्टि से मैं पन्त जी के काव्य-कोमल व्यक्तित्व की ओर आकर्षित हो गया।"[2] निराला जी के बाद द्विवेदी जी पन्त के ही सम्पर्क में आए। किन्तु भावात्मक अभिन्नता होते हुए भी सामाजिक स्तर पर दोनों लोगों में उतनी ही भिन्नता थी, जितनी 'ग्राम्या' के ग्रामीण जनों और कवि की बौद्धिक सहानुभूति में। क्योंकि द्विवेदी जी ग्रामीण थे।

समय परिवर्तनशील होता है, समय के साथ लोगों के व्यक्तित्व में भी परिवर्तन होता चला जाता है। पन्त जी के बाद द्विवेदी जी का परिचय महादेवी से हुआ। कवियों का सानिध्य बढ़ता गया। आरम्भ में महादेवी जी की कविता ने इन्हें कल्पना-वैचित्र्य से केवल चमकृत किया। महादेवी की रचनाओं में रूमानियत की कुछ ऐसी वायवी थी कि धरती पर उसकी सामाजिक धारणा नहीं हो पाती थी। इन्होंने स्वयं कहा- "रूमानी तो पन्त जी कविता में भी थी, किन्तु उसमें ऐसी रागात्मकता थी जो

सामाजिक धरातल पर मर्मस्पर्श करती थी। 'पल्लव' और 'वीणा' की विहग बालिकाएँ, कलिकाएँ, मधुपकुमारियाँ, निर्झरियाँ और वीचियों उन ग्रामबालाओं की तरह ही जानी-पहचानी लगी थीं जिनके साथ बचपन में खेला था।"[3]

द्विवेदी जी ने सामाजिक और समसामयिक विषयों पर बड़ी संख्या में निबंध लिखे। द्विवेदी जी का समय राजनीतिक चेतना की जागृति तथा विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और वैचारिक आंदोलनों का युग है। द्विवेदी जी पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा। द्विवेदी जी ने अपने समय की विविध समस्याओं को आधार बनाकर काव्य रचना की। 'जीवन यात्रा', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान' तथा 'समवेत' निबन्ध संग्रह इसी कोटि के हैं। 'जीवन यात्रा' संग्रह में कृषक और शिक्षित युवकों का जीवन, नवयुवक और स्वावलम्बन, स्वदेश प्रेम, युद्ध की विभीषिका निबन्ध दृष्टव्य हैं। 'सामयिकी' निबन्ध संग्रह में 'युग दर्शन' निबन्ध में द्विवेदी जी ने युग की नारी समस्या के लिए 'अर्द्धनारीश्वर' शिव की व्याख्या की है, जो लोक कल्याण की भावना से समन्वित है। साथ ही गाँधी जी के नारी विषयक विचारों द्वारा नारी उत्थान का संकेत दिया। मनुष्य के लिए यथार्थ सत्य विषयक के रूप में 'धरातल' निबन्ध में 'रोटी और सेक्स' निबन्ध उल्लेखनीय हैं। इसमें द्विवेदी जी ने मनुष्य की जैविक अनिवार्यताओं के अभाव की बात कही। इसका कारण मानव में बढ़ता स्वार्थ, परिश्रम एवं सद्भाव का अभाव है। इसी संग्रह में 'मनुष्य और यंत्र' निबन्ध में श्रम के अर्थ और महत्व को स्पष्ट करते हुए यांत्रिक युग में मनुष्य की निष्क्रियता को दर्शाया है। 'किसान और मजदूर' निबन्ध में गाँव के अर्थ के अभाव में किसान से कटकर शहर में मजदूर बन जाने की प्रक्रिया को व्यक्त किया है। इसी संग्रह में 'प्रत्यावर्तन' निबन्ध भी महत्वपूर्ण है। 'साकल्य' निबन्ध में 'युग का भविष्य निबन्ध में द्विवेदी जी ने गांधी दर्शन में अविश्वास, राजनीति की प्रवंचना, मानव के स्वार्थ की चिंता प्रकट करते हुए कहा है कि केवल अर्थ से स्वतंत्रता पाना संभव नहीं। 'साहित्य का व्यवसाय', 'हिन्दी का आंदोलन', 'साहित्य में अश्लीलता' इत्यादि निबन्ध भी दृष्टव्य है। 'पद्मनाभिका' निबन्ध संग्रह में नूतन पुरातन निबन्ध में लिखा है कि अतीत ही अदृश्य होकर भविष्य में प्रतिबिम्बित होता है। उनका मानना था कि विज्ञान ने प्रकृति पर प्रभुत्व पाया है, पर प्रकृति अपनी स्पन्दनशीलता में अजेय है। 'अधान' निबन्ध संग्रह में 'विश्वविद्यालयों में साहित्य ह्रास', 'धुरीहीनता: एक नैतिक समस्या', 'उद्योग और आत्मयोग' इत्यादि निबन्ध युग की ज्वलन्त समस्याओं से जुड़े हैं। विश्वविद्यालयों में साहित्य का ह्रास निबंध विश्वविद्यालयों की दूषित शिक्षा प्रणाली और पनपती व्यापारिक मनोवृत्ति कारण हैं। ये स्थान व्यापारिक एवं राजनीति के अखाड़े बन गए हैं। जहाँ छात्रों और अध्यापकों में सदैव संघर्ष चलते रहते हैं। 'धुरीहीनता: एक नैतिक समस्या' निबंध में धुरीहीन समाज में नैतिक हीनता का उल्लेख है। 'लोक कला का आधुनिकीकरण' निबंध में नेहरू जी के विचारों

से साम्य रखते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है कि कला जन सामान्य से जुड़ी, स्वतः प्रेरित कलाएँ हैं। उनके आधुनिकीकरण से उनकी स्वाभाविकता और सरसता नष्ट हो जाएगी। 'वृन्त और विकास' निबंध संग्रह में 'नेहरू जी: विचार और व्यक्तित्व' तथा 'नेहरू जी काव्यानुभूति' निबंधों में उनके व्यक्तित्व और 'मेरी कहानी' के आधार पर उनकी काव्यात्मकता की प्रशंसा की है और उनके विचारों की गाँधी जी के विचारों में भिन्नता दर्शाई है। 'युगभास' निबन्ध में बेकारी एवं अनुशासनहीनता की समस्याओं का निराकरण गाँधीवादी रचनात्मक कार्यों द्वारा सम्भव माना है। 'समवेत' निबन्ध संग्रह में 'विज्ञान और ग्रामोद्योग', 'प्रकृति और सह-अस्तित्व', 'साधन और माध्यम' निबंधों के अन्तर्गत विज्ञान की प्रगति और उनके प्रभाव, गाँधी जी के ग्रामोद्योग, सर्वोदय, सहअस्तित्व तथा प्रकृति के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त किया है। उनके अनुसार समकालीन समस्याओं का समाधान गाँधीवादी जीवन दर्शन से ही पाया जा सकता है।

शांतिप्रिय द्विवेदी जी के निबंधों में आलोचनात्मक निबंध संकलित हैं। इन निबंधों में साहित्यिक विषयों पर, काव्य-शास्त्र से सम्बंधित विषय, विभिन्न लेखकों, कवियों की भाव तथा दृष्टि के आधार पर आलोचना, व्यावहारिक, सैद्धान्तिक तथा पुस्तक परिचयात्मक आलोचना से जुड़े हुए निबंध हैं। द्विवेदी जी के निबंध संग्रह 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'आधान', वृन्त और विकास', 'समवेत' तथा 'परिक्रमा' में आलोचनात्मक निबंधों की भरमार है। साहित्यिकी निबंध संग्रह में 'ब्रजभाषा का माधुर्य विलास' निबंध में ब्रजभाषा के कवियों की कविता में शृंगार के माधुर्य की तथा ब्रजभाषा के कवियों की कविता द्वारा यह स्थापित किया है भक्ति काव्य से भिन्न इस कविता में प्रणय की बहिर्चेतना ही प्रमुख रही है। 'औपन्यासिकता पर एक दृष्टि' निबंध में टालस्टाय के उपन्यास 'पुनर्जीवन' के आधार पर टालस्टाय की उपन्यास कला पर प्रकाश डाला है। टालस्टाय और तुर्गनेव की तुलनात्मक समीक्षा भी की गई है। 'काशी के साहित्यिक हास्य रसिकों में तुलसीदास, कबीरदास से लेकर आधुनिक काल के भारतेन्दु, पं0 प्रताप नारायण मिश्र, पं0 बद्रीनारायण चैधरी, पं0 चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इत्यादि के साहित्य में हास्य रस को स्पष्ट किया है। इसी संग्रह में 'भारतेन्दु के जीवन पर एक दृष्टि' निबन्ध में भारतेन्दु के व्यक्तित्व एवं कृतित्व द्वारा उनकी साहित्यिक प्रतिभा पर प्रकाश डाला। 'समालोचना की प्रगति', 'हमारे साहित्य का भविष्य', 'गोदान और प्रेमचन्द', 'सांस्कृतिक कवि मैथिलीशरण गुप्त', साकेत में उर्मिला, 'गद्यकार निराला', 'प्रगतिशील कवि पन्त', नीहार में करूण अध्यात्म की कवि महादेवी', 'जैनेन्द्र के विचार' इत्यादि निबंध महत्वपूर्ण हैं।

'युग और साहित्य' निबन्ध संग्रह में 'साहित्य के विभिन्न युग' निबन्ध में लेखक ने भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगति युग, प्रयोगवादी युग का विवेचन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में किया है। 'प्रगति की ओर', हिन्दी कविता में 'उलटफेर', इतिहास के आलोक में' निबंध महत्वपूर्ण हैं। इनमें भारतीय हिन्दी साहित्य की सभी क्षेत्रों में प्रगति, मध्यकाल की कविता का आधुनिक युग में परिवर्तित रूप तथा सन् 40 के पूर्व तक की साहित्यिक, राजनीति और सामाजिक गतिविधियों का विवेचन किया गया है। 'वर्तमान कविता का क्रम विकास', 'छायावाद और उसके बाद', 'कथा साहित्य का जीवन पृष्ठ' तथा 'प्रसाद और कामायनी', 'प्रेमचन्द और गोदान' आदि निबंध महत्वपूर्ण हैं।

'धरातल' निबंध संग्रह में 'सूरदास की काव्य साधना' निबंध में सूरदास के काव्य के भाव एवं कला पक्ष का विवेचन किया है। 'साकल्य' निबंध संग्रह में 'प्रसाद और प्रेमचंद' की कृतियाँ, निबंध में दोनों लेखकों का तुलनात्मक मूल्यांकन किया है। वर्मा जी के 'उपन्यास', 'गुप्त बन्धु और छायावाद', 'हिन्दी का आलोचना साहित्य' निबंध महत्वपूर्ण है। पद्मानाभिका निबंध संग्रह में 'गोस्वामी तुलसीदास की भगवद्भक्ति' में तुलसीदास का जीवन और जीवनदृष्टि को उनकी परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में परखा है। 'पंत जी की अतिमा' निबंध में श्री अरविन्द दर्शन का प्रभाव स्पष्ट किया गया है। द्विवेदी जी ने अपनी भावुक और संवेदनशील मनोवृत्ति के अनुकूल भावात्मक निबंधों की भी सृष्टि की। इन निबंधों में इनकी आत्मानुभूति की ही अभिव्यंजना हुई है। 'साहित्यिकी' निबंध में 'प्रवास', 'एक अतीत स्वप्न', 'कवीन्द्र: एक बाल्य झलक' इसी श्रेणी में आते हैं। 'सामयिकी' निबंध संग्रह में 'भविष्यपर्व' निबंध में गाँधी जी के जीवन दर्शन की भावात्मक अभिव्यक्ति है। 'साकल्य' निबन्ध संग्रह में 'दिगम्बर' निबंध में अपनी उपन्यास रचना दिगम्बर का भावात्मक परिचय दिया है। 'परिक्रमा' निबंध में 'वह अदृश्य चेतना' निबंध में बहिन कल्पवती के सुरूचिपूर्ण शांत, व्यक्तित्व जीवन संघर्षों को भावात्मक स्तर पर चित्रित किया गया है।

द्विवेदी जी ने संस्मरणात्मक निबंधों की भी रचना की। 'साहित्यिकी' संग्रह में 'महापथ के पथिक प्रसाद' निबंध में प्रसाद जी के साथ अपने साहचर्य, अपने वैयक्तिक जीवन का परिचय तथा अपनी किशोरावस्था में अपने अनुकूल कुतूहल, अपने स्वप्नों, सौन्दर्य तथा कला के अपने अनुराग तथा अपनी निःसहाय स्थिति के साथ प्रसाद जी के भी भावुक किशोर हृदय को चित्रित किया है। 'समवेत' संग्रह में 'हुतात्मा नवीन' निबंध में नवीन जी के जन्म, जीवन परिचय और मृत्यु से मर्माहत अपने शोकाकुल भावनाओं का और मानसिक कष्टों का वर्णन किया है। 'परिक्रमा' संग्रह में 'कुसुम कुमार कवि पन्त', 'शून्य मंदिर की प्रतिभा', निबंध संस्मरणात्मक निबंध है।

शांतिप्रिय द्विवेदी एक गंभीर एवं हृदयोपादक आलोचक भी थे। उन्होंने कई आलोचना पुस्तकों का सृजन किया। 'हमारे साहित्य निर्माता', 'ज्योति विहग', 'संचारिणी', 'कवि और काव्य', 'स्मृतियाँ और कृतियाँ'। इन आलोचना पुस्तकों में द्विवेदी जी की सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक समीक्षा का स्वरूप स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त आत्म-व्यंजना प्रधान, आत्मपरक अथवा वैयक्तिकता प्रधान आलोचना के क्षेत्र में भी द्विवेदी जी का विशेष योगदान है। द्विवेदी जी ने विविध आलोचना पद्धतियों का प्रयोग किया। ऐतिहासिक आलोचना में साहित्यिक विधाओं के विकास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। शास्त्रीय समीक्षा में द्विवेदी जी ने समीक्षा के परम्परागत उपकरणों को मान्यता दी। तुलनात्मक समीक्षा में विभिन्न साहित्यकारों, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, शरतचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, गाँधी जी इत्यादि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। छायावादी समीक्षा का भावात्मक रूप द्विवेदी के आलोचना साहित्य में मिलता है। प्रगतिवादी आलोचना में द्विवेदी जी ने समकालीन साहित्य की समीक्षा की। द्विवेदी जी की इन आलोचना विधियों को विस्तार से परखा जा सकता है। आलोचना पद्धति का प्रयोग किसी विषय को उसकी परम्परा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझने के लिए किया गया। द्विवेदी जी ने विशेष रूप से इस आलोचना पद्धति का प्रयोग किया। 'ज्योति विहग' आलोचना पुस्तक में 'हिन्दी कविता का क्रम विकास' शीर्षक लेख में हिन्दी कविता के विकास को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। खड़ी बोली पूर्व ब्रजभाषा काव्य की संक्षिप्त रूपरेखा के बाद खड़ी बोली के आविर्भाव और विकास में ब्रजभाषा की शृंगारपरक रचनाओं को माना। समकालीन साहित्यिक आंदोलनों को भी वर्तमान कविता के विकास में निर्णायक माना। 'संचारिणी', 'रचना में भक्तिकाल की अन्तश्चेतना' तथा 'छायावाद का उत्कर्ष समीक्षात्मक लेखों में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में इन विषयों पर विचार किया है। छायावाद के सम्बंध में उन्होंने लिखा कि कबीर, सूर, मीरा, तुलसी, रसखान इत्यादि कवियों की अन्तश्चेतना ही विभिन्न रूप में छायावादी कविता में प्रकट हुई है। 'हिन्दी गीतिकाव्य' लेख में भी गीतिकाव्य के क्रमिक इतिहास को प्रस्तुत किया गया। 'कवि और काव्य' पुस्तक में, 'प्राचीन हिन्दी कविता' और 'आधुनिक हिन्दी कविता' आलोचनात्मक लेखों में प्राचीन अर्थात् भक्तिकाल तथा रीतिकाल की कविता तथा आधुनिक कविता छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के रूप में ऐतिहासिक विकासक्रम प्रस्तुत किया गया है।

द्विवेदी जी ने शास्त्रीय समीक्षा पद्धति का प्रयोग साहित्य के शास्त्रीय और परम्परागत सिद्धान्तों के आधार पर किया है। 'कवि और काव्य' पुस्तक में 'काव्य चिंतन' लेख दृष्टव्य है। इसमें द्विवेदी जी ने स्थापना की कि कविता द्वारा ही अनुभूतियों का तादात्म्य स्थापित होता है। शृंगार इस काव्य का प्रमुख रस है। द्विवेदी जी ने तुलनात्मक आलोचना पद्धति की परम्परा को आगे बढ़ाया। 'ज्योति विहग' और 'संचारिणी' आलोचना पुस्तकों में तुलनात्मक आलोचना का प्रयोग कई

निबंधों में हुआ है। छायावाद के प्रमुख कवियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने प्रसाद और निराला, पंत और निराला तथा पंत और रवीन्द्रनाथ की तुलनात्मक समीक्षा की। 'संचारिणी' पुस्तक में ही छायावाद के प्रतिनिधि कवियों में पंत, प्रसाद, महादेवी और निराला तथा दूसरे छायावादी कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, माखनलाल के साथ तुलनात्मक विवेचना किया। पंत, प्रसाद और महादेवी की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए उन्होंने लिखा, ''महादेवी की कविता त्याग, उत्सर्ग और निर्वाण को लेकर चली-पंत प्रवृत्ति प्रधान है, महादेवी निवृत्ति प्रधान। प्रसाद का काव्य ऐहिक है जबकि महादेवी का काव्य दार्शनिक अनुभूतियों से अधिक अनुप्रमाणित है।'' द्विवेदी जी ने देवकीनंदन खत्री, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चैहान इत्यादि की तुलनात्मक समीक्षा की। सुभद्रा कुमारी चैहान और महादेवी की कविताओं की तुलना करते हुए उन्होंने लिखा कि महादेवी की कविताओं में प्रकृति की मनोहरता प्रमुख है। परन्तु सुभद्राकुमारी चैहान प्रकृति के प्रति आकृष्ट नहीं हुई। महादेवी वर्मा जी की कविताएँ अन्तर्जगत की भाँति सूक्ष्म है तो चैहान की कविताएँ बाह्य विश्व की भाँति प्रत्यक्ष। एक में यदि आत्मा है तो दूसरे में काया एक के लिए यदि यह एक आत्मा है तो दूसरे में कलेवर। एक के लिए यदि यह शरीर एक सीमापूर्ण बंधन है तो दूसरे के लिए यह संसार भावना का मुक्त प्रांगण। द्विवेदी जी का युग छायावाद का युग था और छायावादी समीक्षा पद्धति का उन्होंने अन्य छायावादी कवियों की भाँति अपनी समीक्षाओं में प्रयोग किया। यह समीक्षा शैली द्विवेदी जी के भावना प्रधान व्यक्तित्व के अनुकूल भी थी। द्विवेदी जी ने छायावादी रहस्यवादी कविता की भी समीक्षा की। छायावादी कवियों की आलोचना की। उनकी छायावादी आलोचना दृष्टि का आधार उनका कवि हृदय और छायावादी जीवन दर्शन है।

छायावाद के बाद प्रगतिवादी कविता का विकास हुआ। इसका सैद्धान्तिक आधार माक्र्स का द्वन्द्वात्मक भौतिक वर्ग संघर्ष और साहित्य में यथार्थ की प्रवृत्ति है। साहित्य में प्रगतिवाद छायावाद की वैयक्तिकता और वायवीयता के विरोध में आया। द्विवेदी जी ने 'ज्योति विहग' में पंत की कविता पर प्रगतिवादी दृष्टि से समीक्षा की। पंत की 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' रचनाओं को निहित यथार्थवाद के कारण समाज के उत्थान और नव-निर्माण के कारण युगसम्मत माना। तथापि द्विवेदी जी गाँधीवाद जीवन दर्शन से प्रभावित और प्रेरित होने के कारण प्रगतिवादियों की संकुचित और प्रचार प्रवृत्ति से दूर रहे। इस तरह उनकी प्रगतिवादी आलोचना भी युग के अनुरूप और नयी चेतना से जुड़ी हुई थी।

आलोचक के रूप में द्विवेदी जी प्राचीन संस्कृत साहित्य और शास्त्र में वर्णित काव्य के मूल तथ्यों से पे्ररित रहे। साहित्य के अंतरंग और बहिरंग का समुचित विवेचन-विश्लेषण करते हुए

साहित्य में रस, छंद, अलंकार, कल्पना भाव और भाषा के परम्परागत उपकरणों का निरूपण भी किया। इस संदर्भ में अनुभूति, संवेदनशीलता, बौद्धिकता, दार्शनिकता तथा सांस्कृतिक चेतना के निदेशक तत्वों का प्रतिपादन भी किया। द्विवेदी जी की आलोचना दृष्टि उनकी रस ग्राहिका शक्ति से चालित थी। काव्य के मूल तत्व रस को साहित्य के लिए विशेष प्रयोजनीय माना।

संदर्भ

1. स्मृतियाँ और कृतियाँ: शांतिप्रियद्विवेदी, पृ0-5.
2. स्मृतियाँ और कृतियाँ: शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ0-6.
3. वही, पृ0-7.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

हिन्दी उपन्यासों में नारी और उसका यौन मनोविज्ञान

डा0 बबीता भारती

पूर्व शोध छात्रा, पटना विश्वविद्यालय, पटना

''पूँजीपति वर्ग ने सभी काव्यात्मक संबधों का अंत कर दिया है। उसने नग्न स्वार्थ के नगद पैसे–कौड़ी के हृदयशून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा संबंध बाकी नहीं रहने दिया है। उसने भावना को आना–पाई के स्वार्थी हिसाब–किताब के बर्फीले पानी में डुबो दिया है, मनुष्य के वैयक्तिक मूल्य को विनिमय मूल्य बना दिया है, और नग्न, निर्लज्ज, प्रत्यक्ष और पाशविक शोषण की स्थापना की है।''– 'मार्क्स–एंगेल्स' आज भूमण्डलीकरण के नये साम्रज्यवादी दौर में जब पूर्णरूपेण मानवद्रोही सिद्व हो चुकी पूंजीवादी व्यवस्था के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह उठ चुका है, तो भारतीय स्त्री समुदाय ने भी यौन–भेद पर आधारित असमानता–उत्पीड़न के उन तमाम सूक्ष्म रूपों–पद्धतियों की शिनाख्त कर दी है, जो अबतक तमाम नैतिक–वैधिक–सांस्कृतिक रहस्यों से ढ़के रहते थे। स्त्री–प्रश्न पर शुरू हुआ यह नया विमर्श भी अगली सदी में मानव–मुक्ति का एजेण्डा तय करने में एक अहम भूमिका निभायेगा। विगत लगभग दो दशकों के दौरान, भारतीय स्त्रियों की दुनिया में एक नये पुनर्जागरण जैसी हलचल पैदा हुई है। इसकी छाप हमारे हिन्दी उपन्यासों में प्रमुखता से देखी जा सकती है।

मानसिक ग्रंथियों और मानस के विभिन्न व्यवहारों का कला में उपयोग होता है। फ्रायड ने जातिय मनोविज्ञान से उत्पन्न मिथ, लीजेण्डस् और परीकथाओं से भी काव्य का संबंध जोड़ा है। यौन तत्व के मनोविज्ञान पक्षों के आधार पर कथानक के सृजन की परम्परा यौन–मनोविज्ञान की स्थापित मान्यताओं के आधार पर ही संभव हो पायी। नई पीढ़ी के कथा–साहित्य में कुंठाग्रस्त व्यक्तित्व जो किसी न किसी यौन–ग्रंथि के शिकार होते है, कि अवधारणा एक सामान्य बात है। काम–भावना को आधार कारण बनाकर असामान्य चरित्रों के सृजन की परिपाटी सी चल पड़ी है। यौन–मनोवैज्ञानिक स्थापनाओं के प्रभाव के ही कारण नैतिक अवबोध भी मूलतः बदल गया है, ऐसी स्थिति में उनके रूचि–परिवर्तनोंके लिए मनोजगत की उपलब्धियों से अवगत होना पाठकों के लिए एक आवश्यक शर्त है। नयी पीढ़ी के उपन्यासों का भावना बौधिक धरातल पर ही सुलभ हो सकता है।

हैवलॉक एलिस अपनी पुस्तक 'यौन मनोविज्ञान' में लिखते है कि – ''स्त्रियों में भी यह क्षमता होती है कि वे पुरूषों के समान एक से अधिक पुरूषों के प्रति स्नेह का अनुभव करें।''इस परम्परा का निर्वहन हमें प्रेमचन्दोत्तर कथा–साहित्य में देखने को मिलता है। प्रेमचन्दोत्तर कथा–साहित्य के नारी पात्र प्रेमचंदीय साहित्य के नारी पात्र प्रेमचंदीय मर्यादा को लांघते हुए परिलक्षित होते हैं। 19वीं सदी के अंतिम दौर में 'परीक्षा गुरू' और 'भाग्यमती' जैसे उपन्यासों के साथ हिन्दी उपन्यास लेखन परम्परा का

आगाज माना जाता है। इस विधा के विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द काल काफी महत्वपूर्ण रहा किन्तु अभी तक हिन्दी उपन्यास में एक कमी थी–इसमें पात्रों के बाहरी जीवन का चित्रण ही रहता था, उनके मनोभावों और भीतरी उधेड़बुन का चित्रण प्रेमचन्दोत्तर युग की प्रधान कथा–धारा के प्रमुख उपन्यासकार रहे इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, अज्ञेय, देवराज उपाध्याय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजेन्द्र यादव, राजकमल चौधरी इत्यादि। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने किसी असाधारण पात्र की मानसिक गुंत्थियों को सुलझाने के लिए या उनकी लिखी हुई कथा को प्रकट करने के लिए एकाध ऐसे पात्र का निर्माण किया है, जो उनका मित्र बनकर उनके कार्यो का या तो विश्लेषण करता है या उनकी कथा के छिपे पहलुओं द्वारा उसके अचेतन को पकड़ने की चेष्टा करता है।

जैनेन्द्र ने अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'सुनीता' द्वारा पुरूष तथा स्त्री के मानसिक कश्मोकश को बखूबी दर्शाया है। सुनीता में सुनीता, श्रीकान्त तथा हरिप्रसन्न के व्यक्तिगत जीवन की अपनी अपनी ग्रंथियॉ है जिसे लेखक ने दर्शन तथा मनोविज्ञान के सहारे कथा को विस्तार दिया है। उपन्यास की रचना तीन कथापात्रों की मानसिक उद्वेलिता में रचा गया है। संबंधों को जोड़ने तोड़ने के लिए बुना गया है। दो पुरूष एक नारी वाला त्रिकोणात्मक कथानक यहॉ जैनेन्द्र जी ने प्रस्तुत किया है। उपन्यास की प्रमुख पात्र सुनीता जिसे एक और पत्नीत्व और दूसरी स्त्रात्व एक साथ निभाना पड़ता है। जहॉ श्रीकान्त जैसा ठंडा पति पाकर सुनीता की कामवासना का दमन होता है वही हरिप्रसन्न की ओर आकर्षित होकर अपनी कामवासना की तृप्ति चाहती है। उपन्यास के तीनों पात्र वासना के दमन से असाधरण बने हैं। समलैंगिक आकर्षण होने से श्रीकांत सुनीता के लिए बर्फ बना है। सुनीता की काम वासना अतृप्त रह जाने के कारण से वैवाहिक जीवन के प्रति वह उदास है और भोग्या के रूप में नारी को ना पाकर हरिप्रसन्न क्रांतिकारी बन गया। सुरेन्द्र चौधरी पुस्तक–हिन्दी कहानीः पाठ और प्रक्रिया में लिखते है–''सामाजिक वास्तविकता का चित्रण जिस यथार्थवादी शिल्प के द्वारा होता है, वह केवल देश का सत्य नहीं होता, समय की चेतना का प्रवाह भी होता है। समय की दिशा में सत्य का यह स्वरूप निश्चित रूप से कथा में सामाजिक वास्तविकता का एक नया आयाम प्रस्तुत करता है।''

डॉ0 धर्मवीर भारती का अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास 'गुणाहों का देवता' मस्तृण प्रेम की मनोरम भूमि में रंगकर दुःखान्त मनोवैज्ञानिक प्रेम कहानी कीझॉकी प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार ने भावना और वासना में उलझे हुए मुख्य पात्र चन्दर के व्यक्तित्व के उन्नयन एवं विकास को समस्या के रूप में ग्रहण किया है। भावना जीवन का आर्दश है और वासना उसका यथार्थ। प्रेम के इस दो पहलुओं में 'गुणाहों का देवता' भटककर जीवन का समवित रूप प्रस्तुत करता है। चंदर सुधा की शादी दूसरे से करवाकर सुधा के पिता तथा समाज की नजर में खुद को ऊॅचामहसुस करता है और अपने प्यार की जीत भी। बाद में उसे महसुस होता है कि नारी के प्रति पुरूष की आसक्ति मांसल होती है और वह प्रेम के प्रतिदान स्वरूप उससे शरीर का आकण्ठ भोग करना चाहता है कि प्रतीति उसने पम्मी के सम्पर्क से जानी। पम्मी के गुलाबी शरीर पर लेटकर उसने यहीं किया था कि ''किसी को वासनाहीन प्यार करके किसी के लिए त्याग करके मुझे जितनी शांति मिलती है, पता नहीं मांसलता में भी उतनी ही शांती मिलती हैं।''

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के क्रम में राजकमल चौधरी का प्रत्येक उपन्यास अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होने विभिन्न उपन्यासों में विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से उनकी मानसिक तथा सामाजिक मनोवृतियों का स्पष्ट चित्रण किया। महानगर की उपभोक्तावादी जीवनशैली के कारण मध्यवितिय पृष्टभूमि की युवतियों की सोच को उन्होंने गहराई से समझा है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'अग्निस्नान' की श्रीमती यह महसूस करती है कि–''अच्छी तरह जीने के लिए दस रूपये किराये का यूनिवर्सिटी गाउन काम नहीं देगा, गाउन के अन्दर सोया हुआ शरीर ही काम देगा।'' जाहिर है कि जो समाज शोषण एवं भोग पर आधारित होगा उस समाज की नैतिकता भी शोषण मूलक और भोगवादी होगी। राजकमल चौधरी अपने उपन्यास 'मछली मरी हुई' में विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से उसके अन्तःमन में झॉकने का सफल प्रयास किया है। उपन्यास की कथावस्तु का एक अभिन्न पात्र है– समलैंगिक स्त्री यौनाचार की कथा। अवान्तर रूप से संयोजित उपन्यास की कथा का यह दूसरा पक्ष जहॉ स्त्री–विमर्श, स्त्रीत्व, स्त्रीत्व और स्त्रीवाद जैसे शब्दों की अर्थवत्ता, औचित्य और दशा–दिशा पर खुली बहस के लिए जगह बनाता है, वहीं जैविक संरचना की भिन्नता और आर्थिक सत्ता के पुरूषवादी केन्द्रीकरण के बीच दोयम दर्जे की हैसियत से देखी जानेवाली स्त्री–जातिऔर उसकी नियति–परिणति से जुड़े कई महत्वपूर्ण प्रश्न मसलन जैविक विशिष्टता बनाम कमजोरी लेस्बियनिज्म, पुरूषवादी व्यवस्था बनाम पूॅजीवादी, स्त्री–पुरूष के कार्यक्षेत्र आदि पर विचार करने की प्रश्नाकूलाहट भी पैदा करता है।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भूमण्डलीकरण के युग में बिहार की सामाजिक संरचना : दशा एवं दिशा

डॉ० रूपक कुमार
एम०ए०, पीएच०डी०, राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भूमण्डलीकरण के युग में विशेषकर बिहार के सामाजिक जीवन में जातीय संरचना के स्वरूप एवं अंतर्जातीय संबंधों के बदलते समीकरण पर नजर डालने से स्पष्ट है कि सवाल विकास एवं पिछड़ापन के व्यापक मुद्दों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है। विकास एवं आर्थिक उत्थान के लिए उठाए गए सीमित कार्यक्रम भी इन ढाँचागत बाधाओं की चपेट में आ जाते हैं। यह तथ्य उस समय और भी स्पष्ट हो जाता है जब हम बिहार की स्थिति की तुलना अन्य राज्यों से करते हैं। जिन राज्यों में सामाजिक स्तरीकरण का जातीय स्वरूप अधिक कठोर नहीं रहा है, वहाँ विकास की गति निश्चित तौर पर तेज रही है।

कुल मिलाकर जाति–भेद की कठोरता तथा समाज में बढ़ती जातीय असहिष्णुता को विकास के बाधक कारकों के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

समाज–रचना का एक दूसरा मुद्दा महिलाओं की सामाजिक स्थिति का है। विकास एवं पिछड़ापन के संदर्भ में सामान्यतः इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान कम ही गया है। परिवार में समुदाय तक महिलाओं की पदस्थिति पूर्णतः दूसरे दर्जे की बनी हुई है। केवल महिलाओं की काबिलियत को ही नकारने का रिवाज नहीं है, बल्कि जहाँ भी इनकी क्षमता एवं भूमिका व्यावहारिक रूप से प्रदर्शित होती रही है, वहाँ भी उन्हें नजरअंदाज करना आम बात है। कार्यकुशलता एवं कौशल, कार्यशैली एवं अनुशासन–जैसे गुणों में महिलाओं का पुरुषों की अपेक्षा अधिक गुणवान होना लोगों को खलने लगता है। परिणामस्वरूप आर्थिक उत्पादन में इनकी भूमिका को समाज ने पूँजी के रूप में देखा तक नहीं है, इसे स्वीकार करना तो दूर की बात है।

स्त्री–उत्पीड़न सामंती समाज का मूलतत्व है। वस्तुतः उत्पीड़न के विभिन्न आयामों का समाज–विशेष में स्वतंत्र रूप से विकास हुआ है, जिसका सीधा रिश्ता उस समाज में स्तरीकरण की संरचना से है। हम जातीय–जनजातीय समाजों के बीच की विविधताओं के उदाहरण के माध्यम से इस तथ्य को अधिक सफाई से समझ सकते हैं। जातीय समाज में स्त्री–उत्पीड़न का सवाल स्तरीकरण के स्वरूप से जुड़ा है। जातीय अधिक्रमान्तक व्यवस्था में बड़े–छोटे का प्रश्न जन्म से जुड़ा हुआ है। सामाजिक जीवन में महिलाओं की निम्न स्थिति का आधार भी करीब–करीब यही है। महिलाओं को औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार के अधिकारों से वंचित किया जाना कोई नई बात नहीं है। वृहत् ब्राह्मणवादी फ्रेम में विकसित बिहारी समाज के विकास–क्रम में जातीय कठोरता अधिक होती गई, लगभग उसी क्रम में महिलाओं की परिस्थिति कमोबेश निम्न एवं कमजोर होती गई। ब्राह्मणवादी व्यवस्था में स्त्रियों की आजादी का सिकुड़ना वैसा ही हुआ जैसा कि जातीय संरचना में दलितों का हुआ। फलस्वरूप ऊँची जातियों के संस्कार, उनकी विश्वदृष्टि, उनके सामाजिक मूल्य, महिलाओं की शुचिता का सवाल आदि सभी मुद्दे अन्य सभी जातियों के लिए संदर्भ–परिधि का काम करते रहे हैं। यह तथ्य सामाजिक सतह पर किस प्रकार क्रियाशील होते हैं इसका एक रोचक दृष्टांत बिहार के ग्रामीण

क्षेत्रों से लिया जा सकता है। सामान्यतः निम्न एवं दलित जातियों की महिलाएँ घर से बाहर खेत–खलिहानों में कठिन श्रम करती रही हैं। परंतु जब कभी इन परिवारों की आर्थिक अवस्था कुछ अच्छी हो जाती है, तब परिवार–विशेष का मुखिया पहला काम यह करता है कि अपने परिवार की महिलाओं को दूसरों की जमीन पर मजदूरी करवाना बंद कर देता है। पुनः यदि आर्थिक स्थिति कुछ और सुदृढ़ हो जाती है, तब महिलाओं को श्रम करने ही नहीं दिया जाता। और, उन्हें घर के अंदर परदे में डाल दिया जाता है, क्योंकि ब्राह्मणवादी व्यवहार ही इन जातियों के लिए संदर्भ–दृष्टि हुआ करती है। बहरहाल स्त्री–उत्पीड़न बिहारी समाज के पिछड़ेपन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है जिसे ध्यान में रखना नितांत जरुरी है।

विकास के संदर्भ में एक अन्य सामाजिक तथ्य की चर्चा काफी चल पड़ी है। लोग यह मान बैठे हैं कि बिहार में विकास का माहौल नहीं है, क्योंकि यहाँ आम लोग अनुशासित नहीं हैं। असहिष्णुता जीवन का पर्याय बन चुकी है। आधुनिक नागरिक भावनाओं का सर्वथा अभाव है। यह चित्रण किस हद तक सही है? क्या यह मूल बीमारी है अथवा उसका लक्षण मात्र? वस्तुतः यह चित्रण मध्यवर्गीय मनोवृत्ति का द्योतक है, क्योंकि बिहारी जीवन में वह नफासत और चालाकी नहीं है जो सामान्यतः लोग आम जीवन में देखना चाहते हैं। देहातीपन बिहारियों की जीवन–शैली का एक ऐसा पक्ष है जो लोगों को सोहाता नहीं है। मेरा मानना है कि ये सारे सवाल बेमानी है। आज सामाजिक उच्छृंखलता का जो प्रदर्शन हो रहा है उसके मूल में परिवर्तन की वैसी प्रवृत्ति है, जो लगभग उन सभी संस्कृतियों में उभरी है जिसका आधार कठोर श्रेणीबद्ध स्तरीकरण व्यवस्था में अवस्थित रहा है।

दरअसल बिहार में व्यापक हिंसा और तनाव का माहौल परिवर्तन की उस दशा को इंगित करता है, जहाँ मूल सामाजिक रिश्ते जड़ से हिल गए हैं। भूमंडलीकरण के युग में जातीय समीकरण बदल गए हैं। अब तक जाति का इस्तेमाल रणनीति के तहत होता रहा है, परंतु अब तक यह खुलकर सामने आ गया है। यह एक खुली चुनौती बन गया है। राजनीति में उच्च जातियों की सत्ता का धराशायी होना और पिछड़ी व मध्य जातियों की चुनौती का न सिर्फ बरकरार रहना, बल्कि उनका बढ़ता हुआ दखल और जयघोष इस बदले हुए सामाजिक परिवेश के मूल में है। राजनीतिक सत्ता में वर्चस्व का टूटना और सामाजिक उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष के द्वारा सामाजिक सत्ता की जड़ें हिलाना–दोनों ही चीजें साथ–साथ संभव हो रही हैं। दुर्बल जातियाँ घुटने टेकने की जगह अवज्ञाकारी हो गई हैं। सामंती शोषण से ग्रस्त समाज का अंतर्विरोध संघर्ष और हिंसा में प्रकट हुआ है। परंपरा से पोषित दमन, अत्याचार और उत्पीड़न के खिलाफ आवाज जीवन की संस्थागत सामूहिकता, अनुशासन एवं सहृदयता को झकझोर रही है।

सामाजिक उथल–पुथल के इस परिवेश में विकास की दिशा और दशा दोनों प्रभावित होती हैं। बिहार में पिछले कुछ दशकों से विकास की दिशाहीन यात्रा भी इसी परिधि में परिचालित होती रही है। विकास के नारे अवश्य लगे हैं। परंतु विकास की खोज एक पिष्टोक्ति होकर रह गई है। आर्थिक तरक्की की अपेक्षाओं से सम्मोहित होकर वंचित समुदाय भी शासन करने वाले श्रेष्ठजनों द्वारा उठाए गए कदमों के दीर्घकालीन प्रभावों का सही आकलन नहीं कर पाए हैं। प्रभुत्वशाली वर्ग के लोगों ने विकास और पिछड़ापन का उद्घोष अपने प्रभाव में वृद्धि के लिए किया है, जिसका छलावन आदर्शात्मक नीतिवचन तथा शिक्षाप्रद उपदेश में हुआ है। इसकी प्रबलता शासन एवं इसके तंत्र के चरित्र पर निर्भर करती रही है, जिसके द्वारा विकास के कार्यक्रमों को उल्टी दिशा मिली है।

अबतक की चर्चाओं से स्पष्ट है कि बिहार में तीव्र गति से विकास के लिए परिवेश–निर्माण में कुछ हद तक यहाँ की समाज– रचना के तत्व बाधक रहे हैं, परंतु सारी जिम्मेदारी इन्हीं तथ्यों पर डाल

देना वास्तविकता से मुँह मोड़ना होगा। प्रस्तुत विश्लेषण के प्रारंभ में यह रेखांकित किया जा चुका है कि विकास की दिशा केवल आंतरिक सामाजिक संरचना से तय नहीं होती। इसके लिए बाहरी ताकतों को भी समन्वित करना होता है। विकास की अवधारणा में गति का प्रश्न भी निहित होता है। विकास एवं परिवर्तन अपनी दिशा स्वयं निश्चित करता है, परंतु मानवीय प्रयास से जुड़ने से इसमें तीव्रता आती है और यह अपने लक्ष्य की ओर सहजता से बढ़ता है।

बिहार की सामान्य जनता अपनी जिजीविषा के बल पर अब तक टिकी हुई है। खेती हो अथवा पशुपालन, गृह उद्योग हो अथवा छोटे व्यापार, शिक्षा हो अथवा स्वास्थ्य सेवाएँ सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हुए हैं। सिंचाई के साधन, उर्वरकों का इस्तेमाल, नए उन्नत बीज कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग–इन सभी वस्तुओं को किसानों ने अपने उद्यम से उपलब्ध कराया है। सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की लचर स्थिति में वैकल्पिक सुविधाओं की उपलब्धता बिहार के गाँवों की नई कहानी कह रही है, भले ही वह नीम–हकीमों के द्वारा संचालित हो। राज्य संपोषित प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों की बीमार अवस्था में निजी विद्यालयों की संख्या में अपार वृद्धि हुई है, जो शैक्षणिक अभाव को पूरा कर रही है। कुल मिलाकर हुआ यह है कि लोग अपने लिए स्वयं रास्ता निकाल रहे हैं। लेकिन जनता के प्रयासों की सीमा हुआ करती है। हर समय यह अपनी गत्यात्मकता नहीं बनाए रख सकती है। अंततः जनतांत्रिक व्यवस्था में राज्य को विकास का माध्यम बनना पड़ता है। यद्यपि विकास से संबंधित चिंतन में इस विषय पर मतभेद रहा है, किंतु इतना कहना से संबंधित चिंतन में इस विषय पर मतभेद रहा है, किंतु इतना कहना पर्याप्त है कि बिहार में राज्य की भूमिका सीमित ही नहीं अपितु निराशाजनक रही है।

आजादी के बाद बिहार में सामाजिक–आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति देने के उद्देश्य से नियोजन की शुरुआत की गयी ताकि क्षेत्रीय असंतुलन एवं आय की असमानता की स्थिति दूर की जा सके। नब्बे के दशक में विश्व अर्थव्यवस्थाओं के लिए विशेष बदलाव की अवधि रहा है, जिसमें देखते–देखते उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की अवधारणाएँ अपनी मजबूत नींव डालने लगी थीं। अपनी राज्य की अर्थव्यवस्था को दूसरे राज्यों के साथ जोड़ने के प्रयास में भूमंडलीकरण का सहारा भी लिया गया, क्योंकि अब तक बिहार सरकार को भी समझ आ गयी थी कि मौजूदा विश्व–व्यवस्था में कोई भी देश, राज्य भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से अलग–थलग नहीं रह सकता। इस दिशा में बिहार सरकार ने कई नामी–गिरामी बहुराष्ट्रीय निगमों को भी यहां उद्योग लगाने के लिए आमंत्रित किया। लेकिन समय के साथ–साथ आज हम इक्कीसवीं सदी में पहुंचने की बात करते हैं तो हमारे लिये ये विषय काफी महत्वपूर्ण हो गए हैं कि हम अपनी उपलब्धियों पर दृष्टिपात करें कि हमें कितनी सफलता मिली है और हम कहॉ असफल हुए हैं?

निष्कर्ष :

दो दशकों से भूमंडलीकरण के दौरान मजदूर, किसानों एवं खेतिहर मजदूरों की जिन्दगी बदतर हो गई है, क्योंकि अस्थायीकरण, निजीकरण एवं ठेकेदारी प्रथा मजदूरों और गरीबों के लिए चिंता का विषय बन गया है। आयात नियमों के बदलाव से किसानों की आर्थिक स्थिति भी कमजोर हो गयी है। भूमंडलीकरण के कारण आज बिहार की आबादी के एक बड़े हिस्से को सामान्य आवश्यकता की चीजें भी उपलब्ध नहीं हो पा रही है और बिहार में कुछ गिने–चुने लोगों की आमदनी में निरंतर वृद्धि हो रही है, तो दूसरी तरफ गरीबी–रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। यह आय की असमानता की ओर संकेत दे रहा है।

वैश्विक परिदृश्य में बिहार की हैसियत स्थापित करने का जोश लिए कई जाने–माने उद्योगपतियों ने वर्तमान सरकार के साथ 23 अप्रैल, 2007 को बिहार विकास एवं निवेश पर्षद की पहली

बैठक में कई महत्वपूर्ण संकल्प लिये गये। इनमें प्रदेश को 6–18 माह के बीच विकास के नए क्षितिज पर पहुँचाना, 8 प्रतिशत की विकास दर पाना, सकारात्मक छवि की ब्रांडिंग करने जैसे महत्वपूर्ण टास्क शामिल हैं। इसके अलावा प्रदेश की सकारात्मक छवि की ब्रांडिंग आवश्यक है ताकि बिहार को वैश्विक परिदृश्य में 'एंकर' स्थापित किया जा सके। बिहार निवासियों की सबसे बड़ी चिंता दो जून की रोटी है। इसलिए आर्थिक सुधारों को मानवीय चेहरा देने की पूरी कोशिश की जानी चाहिए। जब तक हम गरीबी के विषम–चक्र एवं बेरोजगारी जैसे आर्थिक राक्षस जैसी मूलभूत समस्याओं पर काबू नहीं पायेंगे तब तक हमारे राज्य में भूमंडलीकरण का कोई औचित्य नहीं रह जाता है।

सन्दर्भः

- श्री अरविंद मोहन, 'प्रवासी मजदूरों की पीड़ा', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
- प्रो. विनय कुमार कंठ, 'ज्ञान विज्ञान' पटना, 2002.
- डॉ. योगेन्द्र, 'समिधा', पटना, 2006.
- श्री शिवदयाल, 'बिहार की विरासत', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.
- उपरोक्त, 'छिनते पल–छिन', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999.
- डॉ. अनिल ठाकुर, 'बिहार का आर्थिक आकलन', मीनाक्षी प्रकाशन, 2008.
- इकोनॉमिक सर्वे, गवर्नमेंट ऑफ बिहार, फिनान्स डिपार्टमेंट, 2006–07.
- बिहार इकोनॉमिक जर्नल.
- श्री अरविंद मोहन, 'प्रवासी मजदूरों की पीड़ा', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

वन्देमातरम् पत्रिका और बंगाल का नवजागरण

डॉ0 सिम्मी रानी

इतिहास, नेट (यू0जी0सी0), रांची विश्वविद्यालय

नवजागरण के अभियान में सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव आए। जितने प्रयत्न राष्ट्रीयता के लिये किये गये उससे अधिक प्रयास धार्मिक कट्टरता अन्धविश्वास और क्रूर रीति रिवाजों को दूर करने में सहायता पाई। उच्चकोटि की साधना, अतिमानस की स्थिति, मानवतावाद, आचरण की पवित्रता पर अरविन्द घोष के विचार 'वन्देमातरम्' की बाहुल्य नीधि है। 'वन्देमातरम्' गीत का प्रभाव बंगाली एवं हिन्दी भाषी पर व्यापक रूप से पड़ा।

'वन्देमातरम्' पत्रिका और बंगाल का नवजागरण

समस्त विश्व में प्रेस को समाज का महत्त्वपूर्ण दर्पण माना गया है जिसने सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी सराहनीय गयोगदान दिया। सांस्कृतिक आनदोलन से लेकर 1917 की रूसी क्रांति तक पाश्चात्य जगत् में इसने तार्किकता, राष्ट्रवाद, धर्म–निरपेक्षता, प्रजातन्त्रवाद और आर्थिक क्षेत्र में नये आयाम प्रस्तुत किये। पाश्चात्य जगत की परिपक्वता, नैतिकता, संस्थाओं के विकास के साथ–साथ तकनीकी और विज्ञान में नई खोजों को लोगों के सामने प्रस्तुत किया। सामन्तिक, चर्च की धर्मान्धता, शासकों के दैवीय अधिकारों, दासता, श्रेत्रीयता जैसी बुराईयों को मिटाकर राष्ट्र को नयी सोच प्रदान करने में इसकी भूमिका सराहनीय रही। इसके माध्यम से देश–विदेश की समस्त घटनाओं की जानकारी मिलती रही। पाश्चात्य राष्ट्र के विभिन्न आन्दोलनों, नेताओं की भूमिका, संस्थाओं एवम् संगठनों की गतिविधियों आदि की सूचनाएँ विश्व के अन्य क्षेत्रों तक बराबर मिलती रही, जिसके व्यापक प्रभाव औपनिवेशिक देशों पर पड़ते रहे और जिनके कारण उनके भी बराबर प्रेरणा मिली।

बंगाल में जन्मा स्वदेशी आंदोलन पूरे भारत का मार्गदर्शक बन गया था। पूरा भारत बंगाल की सहायता के लिए दोड़ पड़ा था। पंजाब में लाला लाजपतराय, महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक और बंगाल में विपिनचन्द्र पाल इस अखिल भारतीय आंदोलन के राष्ट्रवादी प्रवक्ता के रूप में सामने आ गए थे। कांग्रेस में लाल–बाल–पाल की त्रिमूर्ति पुरानी नरमदलीय भिक्षाकामी राजनीति के विरूद्ध, स्वदेश, स्वावलंबन इस गीत को जब शामिल कया तो लागों ने इसे गौर से पढ़ा। आनंदमठ में छपने के बाद बंकिम को अपनी इस रचना की प्रभावोत्पादकता को कुछ–कुछ अनुमान तो होने लगा था लेकिन उन्हें इस बात की उम्मीद नहीं थी कि आने वाले दिनों में यह रचना जादुई असर करेगी और महान रचना के रूप में इतिहास के पन्नों में स्वर्ण अक्षरों में दर्ज होगी। बंकिम की मत्यु के दो साल बाद 1896 में कोलकाता में ही आयोजित कांग्रेस के एक अन्य अधिवेशन में स्वयं गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसे गाया था।

स्वतंत्रता प्रेमियों में उत्साह का संचार करने वाली इस रचना का वास्तविक उत्कर्ष 1905 के बंगाल विभाजन के दौरान हुआ। 'वंदेमातरम्' जब पूरे देश में आजादी का नारा फूंकने वाला मंत्र बना तो उस समय बंकिम जीवित नहीं थे। आजादी के बाद भारत में इसे राष्ट्रगीत का गौरव हासिल हुआ।

'बन्देमातरम्' के रचयिता बंकिम बाबु का परिवार अंग्रेज भक्त था। यहाँ तक की उनके पैतृक गृह के आगे एक सिंह की मूर्ति बनी हुई थी जिसकी पूँछ को दो बन्दर खिंच रहे थे पर कुछ भी नहीं कर पा रहे थे। यह सिंह ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतीक था पैदा होना निश्चित रूप से उस समय की क्रांति कारी विचारधारा का प्रभाव कहा जाता है। आनंद मठ में बंकिम बाबु ने 'वन्देमातरम्' गीत को प्रकाशित किया। 'आनंद मठ' उपन्यास में प्रकाशित 'वन्देमातरम्' गीत बंगाल में नई क्रांति के सूत्रपात के रूप में उभरा था।

1875 ई0 में बंकिम चन्द्र चटर्जी के आनन्दमठ में 'वन्देमातरतम्' नवजागरण और स्वदेश प्रेम का प्रतीक बना। अगस्त 1906 ई0 से 'वन्देमातरम्' पत्रिका का प्रकाशन भी अरविन्द के सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ। उन्होंने मातृभूमि को दासता से मुक्त करने के लिये आत्मचिन्तन और स्वदेश प्रेम की भावना फैलाई। आत्मबल की शिक्षा देने वाले श्री अरविन्द घोष और विपिन चन्द्र पाल ने वंदेमातरम् पत्रिका द्वारा प्रतिशोध की शक्ति लोगों के भीतर भर दी। रवीन्द्र नाथ टैगोर के गीतों का भी ''वन्देमातरम्' के अंकों में प्रकाशित होने से देश–प्रेम की भावना बनी। और स्वाभिमान की भाषा बोलने लगी थी। कांग्रेस के भीतर नरम दल और गरम दल का टकराव उभरने लगा था। दिसम्बर, 1906 में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता के लिए वयोवृद्ध दादा भाई नौरोजी को स्वयं आना पड़ा। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्वराज्य को भारत का लक्ष्य घोषित किया। स्वदेशी के समर्थन में प्रस्ताव पारित हो गया। कांग्रेस पर लाल–बाल–पाल त्रिमूर्ति की राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देने लगा।

बिपिन चंद्र पाल जी का जन्म 7 नवंबर 1858 को वर्तमान बांग्लादेश के हबीबगंज जिले के पोइल नामक गाँव में एक धनी हिंदू वैष्णव परिवार में हुआ था। बिपिन चंद्र पाल को भारत में 'क्रांतिकारी विचारों का जनक' और महान स्वतंत्रता सेनानियों में से एक के रूप में जाना जाता है। वह एक महान राष्ट्रवादी दिव्यद्रष्टा थे जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता रूपी पवित्र कार्य के लिए वीरता पूर्वक संघर्ष किया। वह एक महान देशभक्त, वक्त पत्रकार ओर वीर योद्धा थे जिसने भारत की स्वतंत्रता के लिए अंतिम समय तक संघर्ष किया।

वह तीन प्रमुख देशभक्तों में से एक थे जिन्हें लाल–बाल–पाल की त्रयी के रूप में जाना जाता है। वह एक शिक्षक, पत्रकार, लेखकर और मशहूर वक्ता होने के साथ ही एक क्रांतिकारी भी थे जिन्होंने लाला लाजपत राय और बाल गंगाधर तिलक, के साथ मिलकार अंग्रेजी शासन से जमकर संघर्ष लिया। इतिहासकार सर्वदानंदन के अनुसार इन तीनों क्रातिकारियों की जोड़ी आजादी की लड़ाई के दिनों में –लाल', 'बाल', 'पाल' के नाम से मशहूर थी। इन्हीं तीनों ने सबसे पहले 1905 में अंग्रेजों के बंगाल विभाजन का जमकार विरोध किया और इसे एक बड़े आंदोलन का रूप दे दिया। बंगाल के विभाजन के खिलाफ उनका संघर्ष अविस्मरणीय है। वह स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख शिल्पकारों में से एक थे। त्रयी के तीनों सदस्य का मानना था कि साहस, स्वतत्रता को पाया जा सकता है।

एक प्रसिद्ध पत्रकार के रूप में प्रख्यात पाल ने अपने इस व्यवसाय का प्रयोग देशभक्ति की भावना और सामाजिक जागजिक जागरूकता के प्रसारण में किया। उन्होंने राष्ट्रवाद ओर स्वराज के विचार को प्रसारित करने के लिए अनेक पत्रिकाएँ, सापताहित और पुस्तकें भी प्रकाशित की। उनकी प्रमुख पुस्तकों में भारतीय राष्ट्रीयता और साम्राज्य, स्वराज और वर्तमान स्थिति, सामाजिक सुधार के

आधार, भारत की आत्मा, हिंदुत्व का नूतन तात्पर्य और अध्ययन शामिल है। वह 'डेमोक्रेट', 'इंडिपेंडेंट' और कई अन्य पत्रिकाओं और समाचारपत्रों के संपादक थे। 'परिदर्शक' (1886–बंगाली साप्ताहिक), 'न्यू इंडिया' (1902–अंग्रेजी साप्ताहिक) और 'वंदेमातरम्' (1906–बंगाली साप्ताहिक) एवं –स्वराज' ये कतिपय एंसी पत्रिकाएँ हैं जो उनके द्वारा प्रारम्भ की गई।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा संस्कृत बाँग्ला मिश्रित भाषा में रचित 'वन्देमातरम्' गीत का प्रकाशन सन् 1882 में उनके उपन्यास 'आनन्द मठ' में अन्तर्निहित गीत के रूप में हुआ था। इस उपन्यास में यह गीत भवानन्द नाम के सन्यासी द्वारा गया गया है। इसकी धुन यदुनाथ भट्टाचार्य ने बनायी थी।

बंकिम बाबू 'वन्देमातरम्' को अपने घर में हारमोनियम पर गाया करते थे। हेमचन्द्र नवीनचन्द्र कवि उनके साथ रहते थे। कांग्रेस पर तो इसका प्रभाव 1886 के कोलकत्ता अधिवेशन के समय हुआ जब हेमचन्द्र ने मंगलाचरण के रूप में 'वन्देमातरम्' गीत गाया। माननीय रवीन्द्रनाथ टैगोर ने श्वेत वस्त्र धारण कर 'वन्देमातरम्' गाया। तभी से प्रत्येक अधिवेशन पर यह गाया जाने लगा।

6 अगस्त 1906 को बिपिन चन्द्र पाल नें ''वन्देमातरम्'' नामक पत्रिका की घोषणा की थी। वे ही उसके सम्पादक भी थे। गिरिजा शंकर लिखते हैं, ''आगे विप्लवेर मुख–पत्र युगान्तर परे निष्क्रिय प्रतिरोधेर मुखपत्र 'वन्देमारतरम्'। ''अरविन्द जीवन इतिहासे उठिक ताइ।'' (आजादी का मुख्यपत्र युगानतर बाद में निष्क्रिय प्रतिरोधक मुख्य पत्र वन्देमातरम है, ठीक उसी तरह अरविन्द के जीवन का इतिहास भी है) गिरिजा शंकर श्री अरविन्द के व्यक्तित्व में क्रान्तिकारी और निष्क्रिय प्रतिरोधवादी का विरोधाभास देखते हैं। विपिन चन्द्र पाल ने जो बहुत पहले से अपने साप्ताहित पत्र में स्वावलम्बन और सहयोग की नीति का प्रतिपादन करते आ रहे थे। 'वन्देमातरम्' नाम से एक दैनिक चलाना आरम्भ किया पर इसके बहुत दिन चलने की आशा न थी। क्योंकि इसे शुरू करते समय इनके जेब में केवल 500 रूप्ये ही थे और भविष्य के लिए आर्थिक सहायता का कोई दृढ़ आश्वासन भी उन्हें प्राप्त न था। इस साहसिक कार्य में री अरविन्द से सहयोग के लिए उन्होंने विचार–विमर्श किया तो उन्होंने तुरन्त कार्य में श्री अरविन्द से सहयोग के लिए उन्होंने विचार–विमर्श किया तो उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। क्योंकि उन्होंने देखा की उन्हें अब अपने क्रांति के कार्य के लिए आवश्यक सार्वजनिक प्रचार प्रारम्भ करने का अवसर मिलेगा। श्री अरविन्द से न सिर्फ आर्थिक दृष्टि से भार स्वरूप 'वन्देमातरम्' को स्वीकार किया बल्कि इसके निमित उन्होंने कलकत्ते के चरम पंथी का उग्र विचारधारा के कार्यकर्ताओं को एकत्र करके उन्हें महाराष्ट्र, गुजरात में तिलक द्वारा संगठित नये दल के साथ मिलकर एक शक्तिशाली दल बनाने की प्रेरणा भी दी। ताकि कांग्रेस के नरम दल का विरोध किया जा सके।

श्री अरविन्द ने 'वन्देमातरम्' पत्रिका द्वारा बंगाल के नेताओं से कहा, ऐसे खिंचते चलने से कोई फायदा नहीं। हमे कांग्रेस पर कब्जा करना ही होगा। नरमदल के नेताओं को निकाल बाहर करना ही होगा। मैंने प्रस्ताव किया कि तिलक को अखिल भारतीय नेता मानकर हम उनका साथ दें। तिलक ने, जो उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध नहीं थे, नेत्त्व स्वीकर कर लिया, वे निश्चय ही माहन् और विशिष्ट व्यक्ति थे। ''वन्देमातरम्' इस उग्र दल का मुखपत्र घोषित हुआ और इसके आर्थिक पक्ष को मजबूत करने के लिए एक कम्पनी बना दी गयी। श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, हेमन्द्र प्रसाद घोष और विजय चटर्जी जेसे सुयोग्य लेखकों की सहायता से श्री अरविन्द के संचालन मं (सम्पादक की जगह उनका नाम नीं जाना जाता था) ''वन्देमातरम्'' धीरे–धीरे अखिल भारतीय स्तर का पत्र होने लगा। पाल स्वयं स्वराज्य के पक्षपाती थे, पर उन्होंने कभी इस शब्द को पूर्णतः परिभाषित करने का प्रयत्न नहीं किया। किया भी तो वह नरमदल वालों के स्वायतशासन के करीब का लग समता था। स स्वराज्य की अपने–अपने

हिसाब से मनमानी व्याख्याएं होती रहीं। दादा भाई नौरोजी ने कलकत्ते अधिवेशन में स्वराज्य बताने की कोशिश भी की। श्री अरविन्द ने पूर्ण स्वराज्य की खुली घोषणा की और ''बन्देमातरम्' के पृष्ठों पर लगातार इसके लिए आग्रहपूर्ण निबंध लिखते रहे।

तब यह आन्दोलन अखिल भारतीय रूप धारण करने लगा था। 4 जून को कलकत्ता में शिवाजी उत्सव में भाग लेने लोकमान्य तिलक, खापर्डे और डा. मुंजे आदि नेता पधारे। आन्दोलन की आवाज को पूरे भारत एवं विश्व तक पहुंचाने के लिए विपिन चन्द्र पाल ने केवल 500 रूपए की पूंजी से 6 अगस्त, 1906 को –वन्देमातरम्' नामक अंग्रेजी पत्र आरंभ कर दिया और अरविन्द को बंगाल नेशनल कॉलेज के प्रधानाचार्य के साथ–साथ इस पत्र के सम्पादन में सहयोग करने का निमंत्रण दिया, यद्यपि वंदेमातरम् के सम्पादक के रूप में विपिन पाल का नाम ही छपता था। 'वन्देमातरम्' में अरविन्द के साथ श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, विजय चन्द्र चटर्जी और हेमेन्द्र प्रसाद घोष जैसे युवा लेखकों की मंडली एकत्र हो गई। 'वन्देमातरम्' स्वदेशी आंदोलन के साथ–साथ भारतीय राष्ट्रीवाद का सर्वाधिक सशक्त प्रवक्त बन गया। उसकी प्रांजल, चुटीली और संयमित भाषा को देखकर इंग्लैण्ड के अखबार भी चमत्कृत रह गए। मान्चेस्टर गार्जियन ने लिखा कि 'वन्देमातरम्' की प्रत्येक पंक्ति में राजद्रोह की गंध भरी है किन्तु उसे कानून के शिकंजे में कसना संभव नहीं है।

'वन्देमातरम्' के माध्यम से अरविन्द ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के लक्ष्यों और दर्शन की पुनर्व्याख्या प्रारंभ कर दी। राजनीतिक स्वतंत्रता पर बल देते हुए भी उन्होने राष्ट्रीयता का भावात्मक दर्शन प्रस्तुत किया। 'वन्देमातरम्' का स्वर था कि भारत केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए ही नहीं अपितु सांस्कृतिक स्वराजय के लिए भी लड़ रहा है। उसे अपने अतीत का भारतीय दृष्टि से अध्ययन करके अपने भविष्य की पुनर्रचना करनी है। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् ने बंगाल नेशनल कॉलेज के पाठ्यक्रम में आधुनिक विज्ञान और तकनीकी की शिक्षा के साथ–साथ बाह्य कर्मकांड के परे जाकर नैतिक धर्म शिक्षा का आग्रह किया प्राचीन भारतीय इतिहास दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति, कला एवं विज्ञान के गहरे शोध को प्राथमिकता दी। इस कॉलेज ने राधा कुमुद मुखर्जी, विनय कुमार सरकार, विजेन्द्र नाथ सील जैसे अनेक महान इतिहासकार पैदा किए।

बंगाल में युवा पीढ़ी ब्रिटिश दासता से मुक्ति पाने के लिए सशस्त्र क्रांति की दिशा में बढ़ने लगी। अरविन्द के छोटे भाई वारीन्द घोष, स्वामी विवेकानंद के छोटे भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त ने बंगला भाषा में 'युगान्तर' नामक साप्ताहिक के माध्यम से सशस्त्र क्रान्ति की विचारधारा का प्रचार शुरू कर दिया। मानकितल्ला बाग उनका केन्द्र बन गया। उनके युगान्तर दल के पीछे अरविन्द घोष और भगिनी निवेदिता की प्रेरणा काम कर रही थी। विपिन पाल उनसे असहमत थे। उनका विचार था कि सरकार की संगठित शक्ति को छिटपुट सशस्त्र प्रयासों से परास्त करना संभव नहीं है। इस वैवारिक मतभेद का परिणाम 'वन्देमातरम्' पत्र पर पड़ा। विपिन पाल ने उसके सम्पादक मंडल और प्रबंध मंडल में स्वयं को अकेला पाया। वे 'वन्देमातरम्' से अलग हो गए। अरविन्द ने अपना नाम न छापने की शर्त पर सम्पादन का दायित्व संभाव लिया। इधर विपिन पाल पूरी शक्ति से स्वदेशी आंदोलन का संदेश जिले–जिले गांव–गांव में पहुंचाने के लिए निकल पड़े। बंगाल का प्रत्येक जिला उनकी ओजस्वी वाणी से गंज उठा था अप्रैल मास में मद्रास के समुद्र तट पर दसियों भाषणों पर वरिष्ठ नेता श्रीनिवास शास्त्री की टिप्पणी थी कि वक्तृत्व का एंसा चमत्कार कभी नहीं देखा था। शब्द की शक्ति का वह अद्‌भुत प्रदर्शन था।

ब्रिटिश सरकार विपिन पाल के भाषणों से तो परेशान थी ही 'वन्देमातरम्' के लिखित शब्द से उससे भी अधिक– वह राजद्रोह का मुकद्दमा चला कर अरविंद की आवाज बंद कर देना चाहती थी। पर किसी लेख पर अरविंद का नाम छपता नहीं था। आखिर, एक संपादकीय लेख को राजद्रोह की परिधि

में लाना उसे संभव लगा, पर उसका लेखक अरविंद को कैसे सिद्ध करें। सरकार को अरविंद व विपिन पाल के बीच मतभेद की गंध मिल चुकी थी। विपिन पाल को अदालत ने नोटिस भेजा कि वे अदालत को बतलाएं कि 'वंदेमातरम्' से अलग होते समय उन्होंने सम्पादक का दायित्व किसे सौंपा था। विपिन पाल बड़ी दुविधा में पड़ गए। यदि वे अदालत में सच बोलते हैं तो अरविंद को जेल हो जाएगी और यदि वे अदालत में नहीं आते तो अदालत की मानहानि के आरोप में उन्हें स्वयं जेल जाना होगा। विपिन बाबू ने अरविन्द को बचाने के लिए स्वयं जेल जाना पसंद किया और वे कारावास में बंद कर दिए गए। सरकारी दमन चक्र और देशभक्तों के बीच संघर्ष अब एक नाजुक दौर में प्रवेश कर गया था।

''वन्देमातरम्'' 3 मई 1908 के अंक में उन्होंने अपने इस स्वराज्य को पूर्णतः विश्लेषित करते हुए लिखा– ''पूर्ण स्वराज्य राष्ट्रीय मानस के लिए जादू का–सा असर रखता है मन की इस माँग को दबा पाना असंभवन है, क्योंकि राष्ट्रीय मानस भारतीय भावना से ओतप्रोत एक ऐसी वस्तु है जो पाश्चात्य भौतिकवाद के स्थूल कल्मष से रहित है। यूरोपीय धारण का स्वराज्य यानी, व्यक्तिगत सत्ता के स्वीकरण के लिए राजनीतिक स्वराज्य भारत को जगा नहीं सकता। प्राचीन भारतीय जीवन की आधुनिक परिस्थितियों में चरितार्थता पाने के लिए राष्ट्रीय महत्ता के सतयुग की पुनरावृत्ति के लिये, भारत की पुनः विश्व के गुरू और निर्देशक की हैसियत से कार्यारंभ के लिए और अन्त, में वेदान्तिक आदर्श (समता) को राजनीति में उतार कर जनता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता ओर चरम चरितार्थता दिलाने के लिए भारत को पूर्ण स्वराज्य चाहित ही। विश्व के तमाम गर्वोन्नता देशों की एक परिणति पहले से ही निर्धारित है कि जब मानवता के कल्याण के लिये उनका निश्चित और सीमित कार्य पूरा हो जाता है, ये जीर्ण–शीर्ण होकर बिखर जाते हैं। किन्तु भारत का मुख्य कार्य है अपने शाश्वत स्रोत के विश्व को प्रकाश और पुनर्नवीकरण का अवदान देते जाना। भारत अपने हृदय देश से प्रकाश भेजता है जो स्वर्ग और जगत् को पूर्णतः उद्भासित कर देता है और मानव जाति सेंट चार्ज की तरह जीवन के कूप में स्नान करके पुनः शक्ति और नई आशा प्राप्त करके अपनी यात्रा पर चल पड़ती है। आज वैसा ही समय आन पड़ा है। आज विश्व को भारत की, स्वतंत्र भारत की आवश्यकता है।''

इन पंक्तियों को यदि ठीक से पढ़ा जाय तो एक आश्यर्चकारी तथ्य सामने आता है। वे 1908 में ही भारत के लिए जिस स्वराज्य की माँग कर रहे थे, वह भारत के लिए तो महत्त्वपूर्ण था ही, नई मानवता या अतिमानसिक दिव्य मानवता के लिये अनिवार्यता मानकर उसके लिये वे प्राणपण से लगे हुए थें। 1890 में उनका राजनीति से हटना और फिर अतिमानसिक समन्वित योग की प्रतिष्ठा करना एक ही मूल सूत्र की स्वाभाविक परिणति लगती है। क्योंकि उनके स्वराज्य का मुख्य लक्ष्य भौतिक समृद्धि ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक नवजारण भी था। साथ ही भारतीय स्वाधीनता को वे विश्वमानवता के लिये एक उपयोगी वस्तु समझते थे।

''वन्देमातरम्'' निरन्तर भारतीय राष्ट्र को अपने मूल उद्देश्य यानी स्वराज्य की प्राप्ति के लिए जाग्रत बनाने में जुटा रहा। विपिनचन्द्र पाल नये दल के कार्यक्रमों को समझाने के लिए जब जिलों को दौरा करते थे, श्री अरविन्द ही उसकी व्यवस्थापक कम्पनी का संचालन कर हरहे थे। विपिन पाल से कम्पनी के अन्य सदस्यों का वैचारिक मतभेद हो जाने पर परिणामतः विपिन पाल ''वन्देमातरम्'' से अलग हो गये। इस तथ्य को भी लागों ने कई दृष्टियों से उपस्थित किया है। इस घटना पर प्रकाश डालते हुए स्वयं श्री अरविन्द ने लिखा है – ''वे कभी भी पाल के अलग होने को स्वीकार न करते क्योंकि वे पाल के गुणों को ''वन्देमातरम्'' की महान् सम्पति समझते थे। श्री अरविन्द की अनुपस्थिति में, जबकि वे ज्वर के भयानक आक्रमण से शनैः शनैः स्वास्थय लाभ कर रहे थे, पाल पत्र की सेवा से अलग हो गये। स्वर्गीय श्री चारूचन्द्रदत्त ने बांग्ला पत्र 'उद्बोधन' के 1944 के अंकों में प्रकाशित गिरिजाशंकर राय चौधरी की श्री अरविन्द–लेखमाला पर कुछ प्रश्न पूछे थे। उत्तर में श्री अरविन्द ने

लिखा – ''हेमेन्द्र प्रसाद घोष और श्यामसुन्दर की भी सम्पादकी विभाग में रखा गया था, पर विपिन बाबू के साथ इनकी निभा न सकी। अन्त में मझे स्मरण नहीं, नबम्बर या दिसम्बर में, विपिन पाल को पत्र से अलग होना पड़ा। मैं स्वयं अत्यधिक रूग्ण था और सरपेंटाइन लेन में अपने श्वसुर के घर मरणासन्न पर पड़ा था। मुझे पता नहीं था कि वहाँ क्या चल रहा है। उन्होंने मेरी स्वीकृति के बिना ही सम्पादक के रूप में मेरा नाम दे दिया। इस पर मैंने मन्त्री की कुछ कड़े शब्दों में भर्त्सना की और आगे से अपना नाम देना बनद करा दिया। इसे और भी अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने एक संध्या वार्ता में कहा – ''कुछ लोग उन्हें'' ''वन्देमातरम्' सके निकालना चाहते थे। उन्होंने मेरा नाम भी जोड़ दिया। मैंने उपर सम्पादक को बुलाकर काफी झाड़ा। किन्तु शरारत हो चुकी थीं पाल महान् वक्ता थे, उस वक्त उनके भाषण काफी प्रेरणाप्रद और उत्साहप्रद थे जैसे किसी ऊपरी शक्ति का अवतरण हुआ हो। बाद में वह शक्ति भी नष्ट हो गई।

असहयोग, निष्क्रिय प्रतिरोध, स्वदेशी, विदेशी–बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा तथा क्रान्ति का राजनीतिक दर्शन आदि कुछ ऐसे मुख्य विषय थे जिन पर ''वन्देमातरम्'' में श्री अरविन्द लगातार लिखते रहे।

विदेशी शासन जिस ढंग से वैधानिक आड़ लेकर भारतीय जनता का शोषण करता था, उसका बहुत स्पष्ट ढंग से पर्दाफाश करना ''वन्देमातरम्' का उद्देश्य हो गया। श्री अरविन्द के इन लेखों ने तहलका मचा दिया। मजेदार बात यह थी कि ये लेख बहुत अधिक उग्र होते हुए कहीं से भी कानूनी पकड़ में आने लायक नहीं थे। स्टेट्समैन के सम्पादक की शिकायत थी कि ''इस पत्र की प्रत्येक पंक्ति में राष्ट्रद्रोह की गंध आती है, पर ऐसी दानवी चतुराई से लिखे जाते हैं कि कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। इस पत्रिका में श्री अरविन्द का धारावाहिक लेख डाक्ट्रिन ऑफ पैसिव रेसिस्टेंस प्रकाशित हुआ, जिसने सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा दी। 8 जून 1907 के ''वन्देमातरम्'' के अंक में घोषणा की गई– ''श्री गांधी सरकारी नियम की अवज्ञा करेंगे। जेल जाने को पूर्ण रूप से तेयार''।

इसी ''वन्देमातरम्'' के 1 अप्रैल से 23 अप्रैल 1907 के अंकों में श्री अरविन्द का एक बहुत ही सुविचारित और भविष्योन्मुखी प्रभावकारी निबन्ध, जिसका शीर्षक था, 'डाक्ट्रिन ऑफ पैसिव रेसिस्टेंस' लगातार प्रकाशित हुआ। हमें हय जानना चाहिए की ''वन्देमातरम्'' उन दिनों पूर्ण स्वराज्य की मांग करने वाले गरमदल के नेताओं का मुखपत्र था और जब उनमें पैसिव रेसिस्टेंस' पर इस प्रकार धारावाहिक निबन्ध निकल रहा था, तो उसे निश्चिय ही तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार रणनीति का सिद्धान्त मानकर ही प्रकाशित किया जा रहा था।

''वन्देमातरम्'' की गतिविधि तेज हो गई थी। अंग्रेज पत्रकार एस0 के0 रैट् क्लिफ ने, जो अनेक वर्षो तक 'स्टेट्समैन' से सम्बन्धित रहे, मैनचेस्टर गार्जियन के 26 दिसम्बर 1950 के अंक में लिखा था – ''हम अरविन्द घोष को एक क्रांतिकारी के रूप में ही जानते हैं, तथा एक ऐसे पत्रकार के रूप में जिन्होंने एक प्रज्ज्वलित पत्र के माध्यम से भारत की दैनिक पत्रकारिता को नया स्तर प्रदान किया। कर्जन के हटने के तुरन्त बाद 1906 में अरविन्द और उनके मित्रों ने ''वन्देमातरम्'' का प्रकाशन शुरू किया। यह पूरे आकार का शीट था, जो बहुत स्पष्ट अक्षरों में हरे कागज पर निकलता था और उसमें सम्पादकी और दूसरे निबन्ध ऐसी शक्तिशाजी अंग्रेजी में लिखे जाते जिनकी झनझनाहट भारती पत्र–जगत के लिए तब तक बिल्कुल अनजानी थी। वह उग्र राष्ट्रीयता का पत्र था।

इसी ''वन्देमातरम्'' में श्री अरविन्द का निष्क्रिय प्रतिरोध पर धारावाहिक लेख 23 अप्रैल, 1907 को पूरा हो गया था। श्री अरविन्द अपने व्यस्त जीवन में किस प्रकार कार्य करते थे, इसकी एक झाँकी, सह–सम्पादक श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने प्रस्तुत की है।

''श्री अरविन्द स्काटलेन के अपने मकान में बैठे हुए थे। श्यामसुन्दर चक्रवर्ती आये और उन्होंने सम्पादकीय देने के लिए कहा। श्री अरविन्द ने सामने की मेज से कागजों के ढेर में से पैकिंग के लिए इस्तेमाल कागजों को खींचकर एक तरफ खाली हिस्से पर लिखना शुरू किया। पन्द्रह मिनट में लेख पूरा कर लिया। एक भी काटकूट नहीं, एक भी परिवर्तन नहीं और लिखने में एक क्षण का कहीं अवरोध नहीं। दूसरे दिन ''वन्देमातरम्'' छपा। वही समपादकीय पूरे देश में फैले राष्ट्रीय विचार वाले हृदयों में नवजागरण देशप्रेम की अग्नि को धधका दिया था।

15 जुलाई, 1907 को बांग्ला पत्रिका 'सन्ध्या' का जन्म हुआ। गिरिजाशंकर राय चौधरी ने 'सन्ध्या' का प्रकाशन– काल 1905 का उत्तरार्द्ध बताया है। उपाध्याय ब्रहा–बानधव इसके संचालक–संपादक थे। 30 जुलाई, 1907 को ''वन्देमातरम्''– कार्यालय पर पुलिस ने छापा मारा इसके पहले ही 'सनध्या' में तथाकथित राजद्रोहमूल्य निबंध लिखने के अभियोग में विवेकानन्द के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त गिरफ्तार किये गये थे। भूपेन्द्रनाथ अपंनी सुरक्षा के लिए अदालती कार्यवाही करना चाहते थे, परन्तु श्री अरविनद ने इसे स्वीकार नहीं किया कि कोई क्रान्तिकारी विदेशी अदालत को न्यायाधिकरण मानकर उसके निर्णय को स्वीकृति दे।

24 जुलाई, 1907 को बंगाल पुलिस ने ''वन्देमातरम्'' के सिद्ध मुकदमा दायर किया। श्री अरविन्द, विपिनचन्द्र पाल और कई अन्य अभियुक्त माने गये।

श्री अरविन्द ने 2 अगस्त, 1907 को राष्ट्रीय विद्यालय के प्रिंसिपल पद से त्यागपत्र देकर मुक्ति ले ली। 16 अगस्त को उनके पास ''वन्देमातरम्'' के 26 जून, 1907 के अंक में प्रकाशित एक पाठकीय पत्र 'इण्डिया फार द इण्डियन्स को देशद्रोहात्मक करार देकर गिरफ्तारी का फरमान आया। श्री अरविन्द ने 19 अगस्त की पुलिस के सामने आत्मसमर्पण किया।

''वन्देमातरम्'' के 23 अगस्त, 1907 के अंक में, बंगाल नेशनल कॉलेज और स्कूल के छात्रों और अध्यापकों की ओर से श्री अरविन्द के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए जो प्रस्ताव पास किया गया, वह इस प्रकार छपा–

''बंगाल राष्ट्रीय माहविद्यालय के छात्रों और अध्यापकों की एक सभा श्रीयुत सतीशचन्द्र मुखर्जी, एम0 ए0 बी0 एल0, अवैतनिक प्रिंसिपल और निरीक्षक, बंगाल राष्ट्रीय महाविद्यालय की अध्यक्षता में श्री अरविन्द घोष, बी0 ए0 (कैण्टब), भूतपूर्व प्रिंसिपल के त्यागपत्र से उत्पन्न स्थिति पर हार्दिक अफसोस ओर उनके सामयिक संकट के प्रति अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट करने के लिए हुई कॉलेज के अस्तित्व में आने के प्रथम वर्ष तक उन्होंन प्रिंसिपल के गरिमामय पद पर जिस दुर्लभ योग्यता से वेयक्तिक त्यागपूर्ण ढंग से सेवा की तााि एक अध्यापक के रूप में उनके गुणों के वैशिष्ट्य के प्रति यह सभा अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हैं।''

श्री अरविन्द की गिरफतारी ने पूरे बंगाल को सहानुभूति, क्षोभा और क्रोध की लपटों में समेट लिया।

विभिन्न पत्रों ने इस मुकदमे पर अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। 22 अगस्त के ''वनदेमातरम्'' ने अनेक प्रतिक्रियाओं को प्रकाशित किया। मराठा समाचार पत्र ने लिखा – ''हमारा अंक अभी प्रेस में गया ही था कि हमें तार से समाचार मिला कि 'वन्देमारतम्' में लेख लिखने के लिए श्री अरविन्द घोष

गिरफ्तार किये गये हैं। श्री अरविन्द घोष ने आई0सी0एफ0 पास कर लिया था, पर घोड़े पर चढ़ नहीं पाये। आज वे जिस शासक की इजलास में कैदी रूप में दण्डनीय होकर खड़े हैं, यदि वे ठीक से घोड़े पर चढ़ गये होते तो यह न्यायाधीश हाकिम उनके अधीन निम्न कर्मचारी के रूप में कार्य करता होता।'' इण्डियन पैट्रियट ने लिखा ''एक अत्युच्च सुसंस्कृत, सर्वप्रिय स्वभाव वाला यह मनुष्य कितना हँसमुख हैं। विनोद और व्यंग्य की श्रमता से उद्दीस इस व्यक्ति के साथ रहने में किसे आनन्द नही मिलता। इस आदमी के ह्रदय में एक महान् लक्ष्य के लिए निरन्तर अदृश्य देश–भक्ति की ज्वाला जलती रहती है।'' मद्रासा स्टैंडर्ड ने लिखा '' बंगााल के बाहर बहुत थोड़े से लोग अरविन्द का नाम जानते थे यहाँ तक कि लंदन टाइम्स जेसे पत्र में भी यह भ्रान्त धारणा चलती रही कि 'वन्देमातरम्' का सम्पादन–संचालन सभी कुछ विपिनचन्द्र पाल कर रहे हैं। किन्तु पहली बार यह भ्रम टूटा है और सभी जान सके है कि इस पत्र के पीछे की शक्ति अरविन्द थे।''

सरकाररी वकील श्री ग्रेगरी ने इजलास में कहा कि यह मुकदमा 'पोलिटिक्स फार इण्डियन्स' और 'इण्डिया फार इण्डियन्स' नामक दो राजद्रोहमूलक निबन्धों के लिए चलाया जा रहा है। उन्होंने इन दोनों निबन्धों का अपराध श्री अरविन्द पर डालने की पूरी कोशिश की। उनहोंने नजीर में भूपेन्द्रनाथ दत्त के मामले को पेश किया।

''ग्रेगरी ने बड़ी उत्तम वक्तृता दी।'' गिरिजाशंकर लिखते हैं– ''किन्तु दुखेर विषय ए प्रबंधगुलिर दायित्व अरविन्देर स्कन्धे आरोप करिवार यथेष्ट प्रमान शेष पर्यन्त पाउया गेल ना। प्रमानभावे अरविन्द खालास पाइलेन।'' (लेकिन दुख की बात यह है कि ये सब कहानियों में कहीं भी अरविन्द के दोषारोपण करने का कोई भी सटिक प्रमाण नहीं मिला है। इसलिए अरविन्द को दोषमुक्त किया गया)।

गिरिजाशंकर के इस दुःख की जितनी भी प्रशंसा की जाये, थोड़ी है। श्री अरविन्द की खलासी यानी कारामुक्ति के प्रति खेद या दुःख क्यों। यानि ग्रेगरी के भाषण की असफलता पर दुःख हुआ।

इन्ही दिनों जब श्री अरविनद की मुक्ति का आनन्दोल्लास चल रहा था, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनसे मिलने आए। वेलिग्टन स्ट्रीट वाले मकान पर राष्ट्रभक्तों की भीड़ थी। रवि बाबू ने श्री अरविन्द से अलिंगनबद्ध होकर बांग्ला में कहा– ''आपने मुझे बड़ा धोका दिया।'' (जेल जाने के बात सोचकर कवि ने कविता लिखी थी)। श्री अरविन्द ने अंग्रेजी में उत्तर दिया– ''बहुत दिनों तक नहीं, आपको ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।'' उन्होंने श्री रवीन्द्रनाथ से जेल से बहुत दिनों तक बाहर न रहने की जो बात कहीं वह वच्ची निकली।

संदर्भ सूची

1. अशोक कौशिक, योगीराज अरविन्द, डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लिमिटेड. नई दिलली, 2004 पृ. 58–60
2. डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 विकीपेडीया ओ0आर0जी0 ध्वन्देत्रऋमारतम्
3. अशोक कौशिक, योगीराज अरविन्द, डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लिमिटेड, पूर्वोद्धत, पृ 58–60
4. श्याम चरण दुबे, परंपरा, इतिहास बोध और संस्कृति, राधाकृष्ण प्रा. इ.ति., नई दिल्ली, 1991, पृ.33
5. नन्दकुमार देव शर्मा, पत्र–सम्पादन कला, एस0 आर0 बैरी एण्डी कं0, 1923 पृ. 149–150
6. आर0 ई0 वून्सेल, भारतीय पत्रकारिता कला, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, नई दिल्ली, 1954, पृ. 91–91

7. कृष्णा बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968, पृ.125–126
8. सम्पादक विनय अखिल तथा गोण्डराम वर्मा, हिन्दी की पत्र–पत्रिकाएँ – हिन्दी साहित्य समिति, जयपुर, 1948, पृ 76–77
9. लक्ष्मी नाराण सुधांशु हिन्दी सहित्य का वृहद् इतिहास, त्रयोदश भाग, समालोचना, निबन्ध और पत्रकारिता, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, स0 2022 वि0 प्रथम संस्करण, पृ. 287 –288
10. होम डिपार्टमेंट पालिटिकल, प्रोसिडिंग, ए. अगस्त, 1910, फाइल न. 20, राष्ट्रीय अभिलेखागार, न्यू देल्ही, इंण्डिया
11. डी.सी. वर्मा, भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन और संवैधानिक विकास, एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1975, पृ. 11–22

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

VS Naipaul: A talented Writer

Dr. Sumedha Sinha

Sohni Patti, Buxar, Bihar

Vidiadhar Suraj prasad Naipaul is one of the most prominent authors of the twentieth century and now of the twenty-first. His scholarship on history, culture, civilization and ethnicity – a journalistic approach to unearth the past has been appreciated even by his critics. He has been successful not merely by being a good author but also by producing a diatribe against " third world countries" – Trinidad, a place of his birth and India, a place of his ancestors – both of which he has often described as 'half-baked societies' that have led him to be the butt of controversies. Shobhaa De remarks on his controversies, Naipaul has fed off controversy all his life. He is an 'agent provocateur' and a brilliant one at that."[1]

Naipaul's erudition his faculty of criticism and brush with controversy are outré. His willingness to vilify, all that he encounters' has not won him many friends, but the simplistic and near – universal assertions of a consistent heart -felt racism and orientalist misogyny seldom undergo close scrunity. Most of criticism of his work trivial, hopelessly oblivious to the complexity of his tortured negotiations with his own post- coloniality. Naipaul's permanent alienation is expressed trough a series of surprisingly different and amazingly defective narrators who are placed in an astonishingly similar succession of chronotopes.

What makes VS Naipaul unique is his distinctive, way of situating the post- colonial subject matter. He dexterously negotiates the text and context, matter and manner in his fictional and non-fictional corpus of writings. His dichotomy of the. 'East and West, dialectics of India and Indian subcontinents, Africa, Trinidad and the USA present the 'national allegory' of the countries he has visited at regular intervals. His literary corpus Is a matter of serious debate and discussion in academia. Naipaul himself is the product of cross-section of a society. His main themes of his writings area based on Indians who had migrated from India living in Trinidad He depicts rootlessness, quest for identity, dislocation, displacement, and mimicry of East-Indians which springs from it. His works are started with sufficient biographical references. His works disclose the fact that the problems faced by protagonists were actually faced by Naipaul himself.

For multiple reasons, VS Naipaul is a novelist and non- fiction writer whose works have been under scanner for long. Critics have been vocal both against him and for him. His association with India is still a red- herring question. To enquire of his belonging to the country is equivalent to unravel the enigma from the womb of the terrain since he himself is not sure enough about his identity as Patrick French remarks, "he was aware that his identity had been compromised by external events" (French 273).[2]

This is an impervious truth. There is conviction about his diatribe against India that let him stand in the lands him in hullabaloo that is him much-loved legion since the publication of his first travelogue on India, An area of Darkness (1964). Yet, one cannot simply ignores his major Contribution to Literature–fiction as well as non-fiction-written in English. Neither can one deny the fact that Naipaul's vulnerability actually lies in overwhelming popularity on finds, on the said grounds, that his novel present "a post-colonial dilemma for us."[3]

His corpus of fiction maneuvers his autobiographical information that recounts his historical, socio-cultural and political affairs. He amalgamates biography and history in his writings to make his subject matter tangible and substantial. Fawzia Mustafa may appropriately be quoted here, Naipaul's use of biographical info relation between notions of the author and the multiple usage of what is called the colonial subject. The same blend has made him a world fame author who leaves no stone unturned to juxtapose enology and elegy of the world that gives him countless prizes.

Again he is the only living author who has bagged almost all the prestigious awards as though his "name spells almost endless accolades" Which includes: the Booker prize in 1971 for In a Free State, a knighthood in 1990 and the noble prize for Literature in 2001 for his corpus of literary works. He has also received literary awards like john Lewellyn Rhys prize (1958), the Somerset Maugham Award (1961), Phoenix Trust Award (1962), the Bennet Award (1980), the Jerusalem Prize (1983), the TS Eliot Award (1986) for creative writing, the David Cohen prize for his lifetime achievement in British Literature (1993). Naipaul as is well-known, was often given grants to travel and document his experiences; as he "writes about racially complex world with all the compassion and insight which is missing in some of his public pronouncements."[4]

Through his multiple texts, Naipaul successfully silhouettes for his ethnicity and discovers for himself an appropriate position that constructs his subjectivity and identity. His works were archived and housed at the university of Tulsa in 1994 as a token of tribute to his contribution to the literature. Naipaul's root lies in the routes of the world. After Trinidad, he looked towards the east to come to terms with the land of his ancestors. His visits to India resulted in the publication of An Area of Darkness (1964)that created a hullabaloo in the media and academia. His sojourn provided him with a splendid opportunity to learn about Indian classics that presented him untold tales of an Indian legacy that often received from his "Gold Teeth Nanee". The "new discovery of India was a contortion for natives as it was called "an area of 'defecation."[5]

The non-fictions of Naipaul are a touch stone for what is happening in every ex-colony of post-colonial world. Naipaul's literature presents the image of an author who does not experience any sense of belonging anywhere, but the wide array of whose intellect has resulted in many superb books. His literary works present the image of a person who is constantly in search of a cultural mooring. "Although he has a vast repertoire of literary output at his disposal, he is not only a natural writer but also a natural novelist".[6] His vision is his own unaffected by contemporary social cliché or political bonanza. He has not only autonomy to Diktat the 'truth' but also relevance to subjugate the hideous lies of the societies. He is engaged with the stresses and strains that we recognize vital in our experience now.

References:

1) http://www.mid-day/news/2011/jun/040611-V-S-Naipaul-psychiatrist-controversy-jane-Austen.html Accessed on Sep 22,2020
2) French, Patrick. The world Is What It is. The Authorized Biography of V S Naipaul. London: Picador 2008. Print
3) Bhattacharya; Baidik. "Naipaul's New World: postcolonial Modernity and Enigma of Belated space". Web. 22 September 2020.
4) <http:www.nobelprize.org/prizes/literature/2001/Naipaul/biographical/> Accessed on Sep 22 ,2020
5) Naipaul, V S. An Area of Darkness (1994) London: picador, 2020.print.
6) Ibid,ix

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Social Distancing in Anand's Untouchable

Dr. Sweta
Jungle, Shahpur, Kushi Nagar U.P

The novel peeps into the life of outcaste, Bakha who represents the misery and inhuman treatment of the marginalized and the have-nots before independence. "The novelist narrates the incident occurred in the life of Bakha , which spans over a single day but in reality everyday in Bakha's life is full of such incidents".[1]

He is not an individual but a type which is always underestimated and oppressed by the caste Hindus. Bakha feels like a laged bird that flutters its wings for a free flight but he finds himself helpless to do so. "Bakha is chained in such suffocation party due to the surroundings, uncongenial and unhygienic, where Bakha as to live and party due to the treatment which he met at the hands of caste Hindus". [2]

"India is a curious place that still preserves the past, religion, and its history. No matter how modern India becomes, it is very much and old country."[3]

Bakha is the novel seems to be enslaved by both external as well as internal forces and could not get rid of his slavery, though he gets comforts but it is just for few moments. Bakha is the lowest of lowest caste. He is looked as castaway even by the untouchable and even his father abuses him for the one thing or the other. As in the very opening of the novel we see Bakha receives many derogatory epithets by his father Lakha; "son of a pig", " you illegally begotten", [4]

He is marginalized in the marginalized group. He is a Bhangi who cleans the toilets and is also referred as a sweeper boy in the novel. Therefore, he is discarded even by the other lower caste Hindu such as scavengers and washer man. As Gulabo, a washer woman, rebukes and abuses her son Ramcharan when she found him in the company of Bakha, a sweeper , during the marriage of her daughter, "oh illegally begotten."[5]

"Are you running away to play with that dirty sweeper and bother worker on the very day of your sister's marriage…"[6]

Though the children do not bother much about each other's caste they are well aware that they all belong to marginalized group in the eyes of caste Hindus. Chota, a bother worker's son slapped by a man whom Bakha touched, by chance, when he was walking on the road.

Chota patted Bakha and says;

"come, be brave,, forget all this, what can we do? We are outcaste"

Here, the sweeper is no less than a criminal or murderer in the eyes of caste Hindus. Whose sights make them by every now and then. But even sweepers do not want that crime to be done by him. He has not opted it by choice but it is being forced upon him. Bakha does not want to clean the dirt of others. As this anger burst into a remark, like a volcanic eruption, when he was abused by caste Hindu, passing on a road without announcing his approach." [7]

Bakha never wanted to clean the dirt of other's, if it brings disgrace to him and the sweeper community as a whole. He has hatred not for the work but the way he is forced to work and even after doing work he is abused and tormented without any cause, which Bakha could not be able to understand. And this is all happen just because of his low birth. Being a sweeper he is excluded from every sphere of life. The outscaste always have to depend upon others for food, shelter, water, clothing etc. They can't live an independent life. They always have to feed on the leftover of the others no matter if they are capable of thinking, speaking, earning and eating as good as the caste Hindu. They are marginalized or excluded from the web which is woven by the caste Hindus only to caught them and make their life vulnerable. Here the novelist attacked the caste Hindus who are dying of overeating but they cannot give food, even lift over pieces, to the outcaste. "Whenever these caste Hindus find themselves in trouble they start to blame each and everything, and outcastes are their first target."[8]

Instead of treating all human beings like, caste Hindus has created a branch among them. Untouchables are not only enslaved physically but they are also suffering from mental and psychological slavery. It doesn't mean that being sweeper they are devoid of virtue and sympathy. But who is supposed to identify that virtue or what to do with such virtue which we found in a person when we took him as a malicious brute, full of vices and who have done untouchable sins which he is playing for as an outcaste or an untouchable. We found mental slavery in Bakha when he is abused by a caste Hindu whom Bakha touched unmindfully. "MeanwhileBakha seems to be confused and felt as he would collapse, as he saw a big crowd surrounding him in a few seconds."[9]

Nothing but his thirst is brought out by the novelist. No such reward is going to be confer upon the girl as she was one amongst those who excluded from the mainstream, and the like of the girl are always treated as the commodities which are thrown away after usage. Here the marginalized are caught in the dilemma. They could not be able to understand the religious philosophy of pandit in which reward of patience given only to the selected ones. In real sense Sohini also could not be able to understand which reward she is going to receive. She comes to know only when pandit Kalinath made indecent advances towards her. But when Sohini denies his amorous advances he shouted a cry which was good enough to escape from Sohini's allegation. In other words, caste Hindu are very clever to hide their faults and

weakness. And in order to protect themselves they have created an ideology in which they have seated themselves on the top as the oppressors or the governing councils. The fault of casteism arouse through misinterpretation of our scriptures. "The temple incident of untouchable flings a harsh and rugged satire on the hypocrisy and ostentation of the caste Hindu."[10]

Bakha dreams of studying and becoming an officer. But he is excluded or marginalized even from the institution which provide knowledge and education to the caste Hindus. It shows that an untouchable has no right to go to the temples, no liberty to listen to the incantation of the Vedas or the other religious scriptures,though they allowed to clean the cowards of the temples but their entry is limited only up to clean and sweep. Bakha seems to be attractive towards Gorasor even Muslims. He wished to be a Gora because there is no caste division among them. And even gets comfort and solidity from Muslims and Goras whenever abused or cursed by caste Hindus. "When Bakha was surrounded by a large crowd in the market place and there is a shower of curses and abuses delivered by caste Hindu. None other than a Muslim came to his rescue and took the boy away."[11]

Thus, marginalized are caught by this dichotomy. They do not know how to deal with caste Hindu they do not know what to do and where to go when they have all doors closed. Though the sweepers are also born as human beings, in the novel they are treated worse than animals. They are supposed to obey their superiors. As Lakha exclaimed, "they are our superior. one word of theirs is sufficient against all that we might say before the police. They are our master. We must respect them and do as they tell us…"[12]

Anand could not be able to provide any suitable solution to the marginalized. He has depicted them as they are. Here the author seems to be in a great trouble. That is why he portrayed Bakha as directionless.

"And yet there was a futility written on his face. He could not overstep the barriers which the conventions of superior had built…"[13]

In other words, Bakha, being an outcaste, is not allowed or permitted to rise in the society to secure a material means for himself. Not only Bakha but every outcaste is deprived of honorable and independent life. The outcastes are forced to follow the caste Hindus blindly.

As Bama, a Dalit writer remarked, "everywhere you look, you see blows and beatings, shame and humiliations… because we have not been to school or learnt anything, we go about like slaves all over lives, as if we are blind, even though we have eyes."[14]

To conclude, we can say that Anand's endeavor to peep into the lower strata of Hinduism has gain insurmountable fame and popularity but so far as the struggle and suffering of the marginalized section of this society is concern, he cannot be able to show

some outlet to their vulnerability and pains. Therefore, the author is unable to show some light bearer to Bakha, who is surrounded by the darkness all around. In the context M.K. Naik observed the disillusionment of Bakha.

Reference:

1) Anand Mulk Raj, Untouchable, London, Lawrence & wishart,1935.
2) Ibid, P.10
3) Ibid, p.11
4) Ibid, p.15
5) Ibid, p.102
6) Ibid, p.109
7) Ibid, p.58
8) Ibid, p.31
9) Ibid, p.54
10) Ibid, p.73
11) Ibid, p.20
12) Ibid, p.90
13) Ibid, p.72
14) Ibid, p.7

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Talkie Films on Mughals before Independence

Kaushal Kishor Sharma
Research Scholar (University of Allahabad)
Med. & Modern History Department

Muslim historicals remained popular only in the Urdu-speaking areas of northern and western India.[1] There , too, fundamentalist elements opposed these films, as they portrayed the ' private lives of Muslim rulers and Muslim civilisation.' In a recorded discussion in August 1933, Saikh Sadiq of the Muslim League raised a question in the legislative assembly regarding the 'censorship of cinematograph films calculated to offend Muslim sentiments.' Pointing to the first historical talkie'*Noorjahan*'(1931)made by Erza Mir as an example. Sadiq categorically questioned the personal motivation of directors from non-Islamic background in presenting such themes. He also spoke of the "great resentment among the Muslim public when the historic Muslim queens and princess are shown making love.[2] In 1934, an Islamic group called 'Anjuman-i-Ashgharia' of Lahore submitted a protest charter to the Legislative Assembly condemning the production and exhibition of similar 7films.[3]With the increasing communal tension, companies producing historicals set in the medieval period narrowed down the market for these films, strictly targeting Muslim, Urdu-speaking audiences with films that focused largely on more communally defined Islamic themes. The contemporary political culture with its high strung communal rhetoric often played a role in the creation of films specially for a single community audience.

The menace of communalism became most evident in historical representation during the late 1930s and early 1940s. Abbas lamented that the increasing communalist tone in mainstream politics was actually disrupting the prevailing harmony in the film industry. Quoting the veteran actor Khalil, Abbas (1940b: 32) recalled, at the Motion Picture Congress in Bombay, 1939, that the film industry was a place where Dadasaheb Phalke had selected Khalil, a Muslim, to play the role of the Hindu god Krishna in dozen of his films. It was the Jewish producer Ezra Mir who had revived the glory of Nur Jahan on celluloid; Himanshu Rai, a Hindu, who had dramatised the romance of Taj Mahal in Shiraz and a Muslim, Sheikh Fattelal, who had jointly directed with Damle, a Marathi Brahmin, the immortal film on the life of Tukaram. However, the situation was changing rapidly. By the end of 1930s, the increasing animosity between the two major communities was reflected in the contemporary political rhetoric as an inevitable element of 'two-nation theory,' which emphasised the existence of divergent community interests ever since Hindus and Muslims had first started living side by side in the subcontinent.

Film *Anarkali* (1935)

Another film *Anarkali* (1935)was screened by R.S.Chaudhary. He worked as Director, story writer and screen writer in this film. This was the second film on the same name as Anarkali which was first released in 1928.' Imperial Company' has credit to prepare this film. This was a black and white film and main crew were Ruby Mayer (Sulochana), Miss Chandra, D.Billimoria, Zilloo, Asooji, Baba Vyas. Sulochana was cast as Anarkali in R.S.Chaudhary's film of 1928 and in 1935. In Anarkali (1953), she was Salim's mother. Sulochana was later bestowed with the Dada Saheb Phalke Award in 1973 for her contribution in Indian cinema[4]

Film *Pukar* (1939)

The film *Pukar* (1939), made by Sohrab Modi from his own Minerva Films, portrayed a different picture of social interaction between Hindus and Muslims during the medieval past. This film narrates the story of a popular 'call' (*pukar*) to end the death penalty in the Mughal judicial system during the days of emperor Jahangir. This choice of subject matter was significant, as it alluded to a contemporary protest against the death sentence imposed on the nationalist freedom fighters. Set amidst the typical grandeur of the Mughal court, the film narrates three parallel love stories from different sections of society. The first story revolves around Mangal Singh and Kuwar, who belong to two rival Rajput families. Mangal Singh has to kill Kuwar's brother and father to ensure the security of his beloved and himself. The second story is about the well-known royal couple Jahangir and Nur Jahan, while the third depicts the happy married life of a washerwoman and her husband.

Pukar was perhaps the first historical film set in medieval times that, as V.P.Sathe (1944: 52) suggests, invoked a nationalist movement without putting Hindu and Muslim communities against each other. Instead, it portrayed a system of justice, governance and law as marked by clan allegiences, religious differences and deep caste and class divisions. Yet, by concluding with a court sense where justice is upheld without a drop of blood being spilled, the film invoked the image of a just polity drawn from the pages of Indian history--a polity that, despite its feudal nature, could claim superiority over the contemporary British legal system, where young lives were being offered at the altar of imperial justice despite countervailing public emotion.[5]

Kamal Amrohi, the scriptwriter of *Pukar*, displayed his linguistic flair by using different kinds of language in the dialogue depending on the character and the situation. The dialogue for the Mughal couple, for example, was written in Urdu, often mixed with Persian. The Rajput Sangram Singh addresses the monarch in a similarly courtly language. The language of the Rajput household is, however, more Hindi than Urdu, with a conscious elimination of Persian derivatives. The lower caste people in the film speak a dialect that seems closer to Bhojpuri--spoken in the eastern part of Utter Pradesh (then called United Provinces)--than Hindustani. Thus, language played an important role in creating a realistic portrayal of the multi-cultural milieu of medieval times.

Shohrab Modi had begun his career in the Parsi theatre, and was deeply influenced by the spectacle and pageantry used to depict period characters. The visuals and frames in *Pukar* bear a strong resemblance to Parsi theatrical conventions, using similar frontal compositions

and staging the narrative in spatial layers. The film featured Chandramohan as Jahangir, the despotic Mughal emperor who later mellows as a result of his personal love and loss. The characterisation of emperor in *Pukar* did not challenge the dominant perception of oriental despotism in pre-colonial India, though it projected a space where other communities could also share power in the medieval period.

Pukar was a smash hit, setting a new trend for historicals through the 1940s. The film critic Iqbal Masud (2005) argues that this trend also upheld Hindustani, which represented the common heritage of Hindi and Urdu spoken in United Provinces, as the appropriate language for the historical films. *Pukar* also revived the theme of the spectacular Mughal court, which became symbolic of a 'national' court attended by both communities rather than only north Indian Muslims. The elaborate courtly customs and rituals created the coveted solemnity and aura typical of a 'national spectacle'.[6]

Taj Mahal 1941

Notwithstanding these political controversies, the spectacular grandeur of the Islamic medieval world still acted as the most important factor driving the selection of these themes. Nanubhai Vakil, who had earlier specialised in Arabian fantasies based on stories such as Arabian Nights and Aladdin, was attracted by the grandiose scale of the Mughal court, and decided to make a film celebrating the romance of the Taj Mahal (Taj Mahal, 1941). He chose to portray this conventional theme by featuring known faces from the historical genre, such as Mubarak, Kumar and Sarojini, in the lead roles. The film was advertised as a production of 'an enormous cost--showing the real scenes of Mughal palaces at Agra Fort, Delhi and other palaces where Shah Jahan and Mumtaz Mahal have lived in their days.'[7]

Taj Mahal narrates the story of emperor Shah Jahan's refusal to meet his beloved wife Mumtaz because of his imperial duties. This refusal causes pain and suffering to the empress, who eventually dies. This overtly melodramatic romance might have appealed to audiences a decade earlier, but, in an atmosphere of growing communal tension, the narrative did not find acceptance among all sections of the cinema-going public.[8] As mentioned previously, a Muslim League member of the legislative assembly, G.Ahmed, condemned the film for showing a debased image of a 'Muslim' monarch, which, according to him, could hurt Muslim sentiments. Though this film failed to make an impression at the box office, films celebrating the legends around Mughal monarchs continued to be produced.

Shahenshah Akbar 1943

Kamal Roy Pictures, owned by a short-term investor in the film trade who had perhaps entered the industry as a means of laundering money, produced Shahenshah Akbar (1943), a film on the life and times of the great Mughal emperor Akbar. The film was jointly directed by G.R.Sethi and R.Roy. Sethi, who had been a close associate of Lala Lajpat Rai in Lahore, selected the most tolerant figure in Mughal history to comment on contemporary communal issues.[9] The advertisement for the film published in filmindia reads: 'It upholds a golden page from the ancient glorious times. It depicts the glory and the grandeur of Mughal culture and wisdom of our ancestors who built India's National life on the touch-stone of unshakable friendship called the "Hindu-Muslim Unity" along with the greatness of it.[10]

In an earlier issue of filmindia, the film was advertised as follows: 'Holding Even the Scales of Justice, India's Great Monarch--Shahenshah Akbar.[11] From this description, one

imagines that Akbar was depicted in the film as a pioneering figure who treated all his subjects equally, irrespective of their religious beliefs.[12] The advertisement glorifies Akbar's contribution as the founder of a 'national heritage' based on unity between the two major communities. In the film, however, Akbar was portrayed not as a typical figure, but rather as an exception among the 'Muslim' rulers of India.[13]

Diwan Sharar, a regular contributor of historical novels and romances set in the medieval period to popular Urdu/Hindi magazines and to Filmindia, provided the script and the screenplay for the film. His involvement in the film bolstered its claims to historical authenticity. Akbar was played by Kumar, who was already famous for his Mughal character roles, especially after Taj Mahal (1941). A stereotypical casting thus came to be introduced into the historical genre. However, Akbar's physical appearance, particularly his 'Mongoloid' eyes, was not accepted as authentic by audiences, who were familiar with Akbar's Hinduised image with a tilak on his forehead. In a review in Filmindia, the film was subjected to a scathing attack for presenting Akbar as a 'Mongolian opium-eater rather than a greatest emperor of the Mughals'.[14]

Shahenshah Babar 1944

Shahenshah Babar (1944) from Ranjit Movietone featured Emperor Babar who founded the Mughal dynasty in India. Communal accusations were directed against this film in a similarly partition review published in Filmindia, where it was censured because of its association with a 'Muslim' director, Vajahat Mirza, born into an aristocratic family in Lucknow, Mirza was better known as a scriptwriter than a film director.[15] Shahenshah Babar was perhaps his only experiment with a historical theme. Mirza had selected the character of the Mughal emperor Babar to highlight the traditional ties between the two communities in the foundation of Mughal empire. The film offers a rather historical biography of Babar, showing how he embraced the land and culture of India as his own. The celebrated legend about Babar's prayer vowing to sacrifice his own life to save his son Humayun was, however, not included in the film. Filmindia criticised the film for failing to depict this legend, a failure that made the character of Babar completely missing on human angle.[16]

The film's overemphasis on the diplomatic moves made by Babar to befriend his Hindu subjects was also condemned for presenting the emperor as nothing more than 'a wise invader'.[17] Krishna Gopal, a former lecturer at Delhi University, saw a 'deeper conspiracy' in the portrayal of medieval 'Muslim' rulers as benevolent sovereigns. He saw a 'plea for Pakistan' in such representation by Muslim directors.[18] Ravi Vasudevan argues that with the intrusion of Hindu nationalist ideology in the film industry, 'off-screen information', such as the religious identity of the producers, directors and actors, came to inform perceptions of on-screen narratives, especially during the late 1930s and early 1940s. The overwhelming impact of communal rhetoric led to doubt being cast upon the intention of directors and actors belonging to rival communities, especially in their representation of a 'controversial' past. The Hindu communalists focused on the religious identity of film personalities, including the actors Sheikh Mukhtar and Khurshid and the director Vajahat Mirza, to corroborate their accusations regarding a 'communalist projection of history' in Shahenshah Babar.[19]

Mumtaz Mahal 1944

Similar allegations were made when a 'Hindu' director (Kidar Sharma) attempted to focus on the darker side of 'Muslim' rule. A review published in Filmindia blamed Pandit Indra's 'Rajput origin' for the 'distortion of history' in a 'Muslim' historical, Mumtaz Mahal (1944).[20] The film depicts the legendary romance between the royal couple, and Shah Jahan's remorse at the death of his beloved wife Mumtaz. It ends with the construction of Taj Mahal as a monument to the emperor's love for Mumtaz. Critics censured the film for its representation of emperor Shah Jahan as a heartless, lascivious despot, as a complete distortion of history. They quoted passages from the writings of historians who were otherwise highly revered in the Hindu nationalist camp, like Shriram Sharma and Jadunath Sarkar.[21] The review also challenged the dubious historical truth of the popular legend about a long separation between the royal couple caused by Shah Jahan's exaggerated sense of justice, which, in the film, ultimately causes Mumtaz's death. This critic attacked British imperialism for generating communally oriented perspectives on medieval India, expressing the hope that such a communally biased film would have been burnt in a public square in a free India.[22]

Although the reviews in film journals interpreted Shahenshah Babar and Mumtaz Mahal as productions masterminded by two rival communalist perspectives, in fact Ranjit Movietone was the studio responsible for producing both these films. After the lukewarm reception of Shahenshah Babar at the box office, perhaps the production company decided to produce Mughal historicals with a different complexion, this time employing a 'Hindu' director Kidar Sharma and a 'Hindu' screenplay writer Pandit Indra. Possibly, the overwhelming pressure from Hindu nationalist forces outside the industry had influenced the studio to replace its 'Muslim' team with a 'Hindu' crew. Yet even in the 'Hindu' production team, Khurshid, a Muslim and the star singer-actress at Ranjit, played the leading role of Mumtaz and remained unsurpassed by the 'Hindu' stars.

Humayun 1945

Mehboob Khan's Humayun (1945) faced the hardest criticism of all from the communalist Hindu press. Khan's films were known for their strong political content. Since his directorial debut with the historical Judgement of Allah (1935), Khan had sought to address contemporary political issues in his films. A self-proclaimed Marxist, he adopted the hammer-and-sickle emblem for his Mehboob Productions in the 1940s when representations of the past had become controversial in the wake of sectarian trends in politics.

Khan chose to portray the Mughal ruler Humayun, father of the famous emperor Akbar, as a symbol of communal integration during the medieval period. Humayun projects a cordial relationship between Mughal rulers and their Hindu subjects even before the days of Akbar. The film's poster also celebrated the heterogeneity of medieval times, depicting two women dressed in distinctively Hindu and Muslim costumes along with the emperor Humayun.

Mehboob also depicted an interesting romantic relationship between the emperor Humayun and a commoner, Hamida Banu (Nargis). Unlike the usual pattern of Mughal romances, Hamida seems to be a stronger and more dynamic character than Humayun. She turns down Humayun's offer of marriage, claiming that all kings treat women not as partners in power but as objects to play with. Interestingly, Rajadhyaksha (1996: 404) points out that

in this film, Nargis, in the role of Hamida Banu, was actually playing for the very first time her best-known screen image of an 'innocent heroine, who is doomed to cause destruction and conflict by her beauty', an image deeply rooted in contemporary Islamic literature.[23]

Humayun's interpretation of social harmony in medieval times infuriated a section of press and the intelligentsia, who accused Mehboob of 'distorting history'. A report in Filmindia attacked even the advertisement of Humayun for 'displaying the bogey of communalism that caused a deep consternation among the intelligentsia'.[24] From the film, it is apparent that Mehboob had attempted to invent a 'secular' myth to counter the communally coloured Mughal myths which had so long enjoyed a monopoly in historical cinema. This emphasis on communal integration was not welcomed, however, especially by the right-wing Hindu nationalist press. A review in *Filmindia* denounced Humayun as a 'Muslim communalist effort to promote the idea of Hindu-Muslim unity.[25]

Even the choice of the historical figure of Humayun came under scrutiny. The review just mentioned elaborately described Humayun's 'historical role' so that of a 'staunch Muslim monarch' who continued with the anti-Hindu policies of his predecessors. It also cast doubts on Mehboob's motives in marking the film, suggesting that 'if Mehboob wanted to produce a picture promoting Hindu-Muslim unity, he should have taken Akbar for the theme of his picture.[26] In spite of these criticisms Humayun, with its star-studded cast and timely innovation of a non-communal albeit invented past, was a box-office success, keeping alive the interest in Mughal courtly legends.

Shahjehan 1946

When A.R.Kardar decided to depict the Mughal past in his film Shahjehan (1946), the political atmosphere was already too tense for any sort of opinion to be expressed in the popular media about the ideological motives for making this historical. Kardar, who usually made social melodramas, was perhaps impressed by the huge success of Mehboob's Humayun (1945) and Jayant Desai's Tansen (1943). He sought to follow the trend by featuring the most popular Mughal figure, Emperor Shah Jahan, and the celebrated legend around the building of the Taj Mahal. The film portrayed the opulence of the Mughal court by recreating its splendour in sets and music in the true tradition of Mughal romances. Kardar brought in the new-generation set designer M.R.Achrekar, who designed spectacular sets for the interiors, although these were not always guided by criteria of authenticity. The film stresses two motifs generally associated with Shah Jahan: his commitment to justice, and the building of the Taj Mahal. Unlike the treatment of these themes in Mumtaz Mahal, Kardar's film intelligently avoided any controversy about communal overtones in the portrayal of Shah Jahan. Though directed and produced by a 'Muslim' (A.R.Kardar), the film accepted the dominant view of the despotic nature of the emperor, although, in his personal moments, he atones for bringing a ruthless, absolutist ruler.

Made in the style of contemporary melodramatic genre, the film plays with the binaries of private and public, love and duty, emotion and justice, that dramatise the life and times of Shahjehan. Accordind to Rajadhyaksha and Willemen (1999: 287), Shahjehan is a classic example of the Mughal romance, which 'fetishizes royal masculinity' by 'gendering the segregation between the personal and political spaces while contrasting declamatory dialogue and large-scale sets with a staccato, documentary narrative'. The film also

establishes the despotic image of Mughal rulers and their patriarchal relationships with female members of their households--stereotypes that were produced in later films on similar themes. Shahjehan became an immense success because of its music. It was, incidentally, the last film of the legendary singing star Saigal before his death later the same year. The songs were composed in simple Hindustani by Majrooh Sultanpuri, who became famous for his sensitive style of lyrics. Naushad, the music director, blended Middle Eastern instruments into the orchestration to create a pre-Lucknawi courtly ambience.[27]

Tansen 1943.

Themes celebrating the Hindustani classical music tradition of the Mughal court still attracted audiences. Ranjit Movietone's Tansen (1943), featuring K.L.Saigal as the legendary court musician of the days of Akbar, enchanted audiences with its music in spite of the growing Hindu nationalist denial of the medieval/Muslim contribution to Indian classic music. However, Bhaskar Chandravarkar (1988) interrogates the claims regarding the classicity of this music. Chandravarkar rejects the 'filmi classical' as an 'improbable idea', arguing that the essential quality of anything 'classical' is its limited accessibility to those who are not high-ranking in social status. 'Classical' features therefore don't accord with 'popular' Hindi films rooted in mass culture. Chandravarkar also questions the historical authenticity of music presented in the name of past maestros such as Tansen. As notations were not written down in traditional Indian classical music until very recently, he argues that it is impossible to revive the exact style of singing ragas five hundred years ago. Despite such criticisms, the filmi classical has remained popular among audiences. In fact, Ranjit Movietone's casting of popular singing star K.L.Saigal in the role of Tansen made him an incarnation of Tansen in the public eye.[28]

Chandravarkar points out that in the name of raga Deepak, the film actually used Raga Kalyan, an evening raga, in the song 'Diya Jalao'(Light the lamp). However, he accepts that song 'is sung with appropriate gusto and creates the suspense the situation demands'[29]

Tansen set the standard for later musicals situated in Mughal times, all of which narrated the fate of a musical genius from a common background at the court of an authoritarian but benevolent monarch. The diametrically opposite worlds of the common people and the imperial court are constructed through music and dialogue in these films. For example, in Tansen, Tani's song 'More Balapanke Sathi'(My childhood companion) is composed in a colloquial Hindi, whereas courtly songs use heavily Sanskritised or Persianised Hindustani. This way of erecting oppositions obliquely reasserted the notion of medieval/Muslim despotism.

Film *Ek Din Ka Sultan*(1945)

The film Ek Din Ka Sultan was produced and directed by Sohrab Modi with storywritten by Agha Jani Kashmiri starring Mehtab (Qausar), Wasti (Nizam Khan), Sadiq Ali and Pratima Devi. The production company Minerva Movietone released this film in 1945. The film was a 'minor historical' using a small incident from the time of emperor Humayun's reign. It was hailed as a "well-directed" film with"some beautiful production values.[30]

Notes and References:

1. *Written Statement of Mr.Mukundi Lal, Bar-at-Law, Deputy President, United Province's Legislative Council, to the Indian Cinematograph Enquiry Committee, 1927-28, p.362, file no. v/26/970/3, OIOC. See also the report on Cinematograph Censorship in Punjab, Government of India, Home Department (Political), file no.8/4/32, 1932, National Archives of India, New Delhi.*
2. Government of India, Home Department (Political), *file no.22/121,1933, NAI.*
3. Government of India, Home Department (Political), *file no.F/2/22,1934, NAI.*
4. *https://www.cinestaan.com>movies>anarkali-13763*
5. Sathe,V.P. (1944) 'The Glory That Was Ind', *The Mirror*, vol.1, nos. 17-20, November, p.52
6. Masud,Iqbal (2005) 'Muslim Ethos in Indian Cinema', *Screen, 4 March*
7. *Filmindia*, vol.8,no.2, 1942, back cover.
8. Zaidi, Javed (1999) Collections: First Indian Film and Video Guide, Mumbai: Update Video Publications, p.286
9. Narwekar, Sanjit (1994) Directory of Indian Film-Makers and Films, Trowbridge: Flick Books, p.298
10. *Filmindia*, vol.9,no.12, 1943,p.68.
11. *Filmindia*, vol.9,no.2, 1943,p.8
12. This film no longer exists. The analysis here is based upon personal conversations with Shasanka Mukharjee(1915-2003), who claimed to have seen this film.
13. *Filmindia*, vol.9,no.2, 1943,p.8
14. *Filmindia*, vol.10,no.1, 1944,p.69
15. Narwekar, Sanjit (1994) Directory of Indian Film-Makers and Films, Trowbridge: Flick Books, p.187
16. *Filmindia*, vol.8,no.11, 1944,p.63
17. *Filmindia*, vol.8,no.11, 1944,p.63
18. *Filmindia*, vol.11,no.11,1945,p.49
19. Vasudevan, Ravi (n.d) 'The Political Culture of Address in a "Transitional" Cinema: Indian Popular Cinema', Film City and New Media Essays, p.10
20. *Filmindia*, vol.11,no.12,1945,p.45
21. *Filmindia*, vol.11,no.12,1945,p.45
22. *Filmindia*, vol.11,no.12,1945,p.45
23. Rajadhyaksha, Ashish (1996) 'Nargis', in G. Nowell-Smith, ed. The Oxford History of World Cinema, Oxford: Oxford University Press, p.404)
24. *Filmindia*,vol.11,no.10,1945,p.41
25. *Filmindia*,vol.11,no.11,1945,p.49

26. *Filmindia*,vol.11,no.11,1945,p.49
27. Interview with Naushad Ali, November 2000.
28. ibid.
29. Chandravarkar, Bhaskar (1988) 'How Classical is Filmi Classical?' Cinema in India, vol.2, no.4, p.21
30. Gangar, Amrit (2008), Sohrab Modi The Great Mughal of Historicals, New Delhi: Wisdom Tree. p.60

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताओं की अंतर्वस्तु

मनोज कुमार पाठक

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, भू.ना.मं.वि.वि. मधेपुरा

काव्य–सृजन में अंतर्वस्तु की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। वस्तु का अर्थ कथ्य विषय, सामग्री, संदेश आदि है। किसी रचना में अंतर्वस्तु से तात्पर्य है कि रचनाकार क्या विषय प्रस्तुत करना चाहते हैं, और उसके माध्यम से क्या संदेश देना चाहते हैं। ''अंतर्वस्तु किसी कृति का केवल कथ्य ही नहीं होती, बल्कि वह मूल्य–सृजन की प्रक्रिया भी होती है, जिन्हें कृति–रचना की पूरी प्रक्रिया में रचनाकार सिरजता है और पाठक अपनी सौंदर्यबोधात्मक शक्तियों से पक्ष–विपक्ष में ग्रहणकर उसकी पहचान पूरी करता है।''[1]

नागार्जुन पचास से अधिक वर्षों के अपने दीर्घ रचना–काल में राजनीतिक कवि के रूप में पहचान बनाने के बावजूद प्रकृति और मानव निहित प्रेम को अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त करते हैं। संस्कार से किसान कवि होने के कारण धरती को निकटता से जानते हैं और उत्पादन एवं उपभोग से जटिल संबंधों को पहचानते हैं। प्रकृति के जैविक और अजैविक रूपों को आत्मसात कर प्रकृति और मानव के द्वंद्वात्मक संबंधों को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। प्रकृति नागार्जुन को सभी स्थितियों में पुलक और प्रसन्नता जगाती है।

जीवन की प्रसन्नता और सहजता पर आधात पहुँचानेवाली वस्तु या घटना के प्रति घृणा जगाने के लिए भी अक्सर वे प्राकृतिक उपादानों का ही प्रयोग करते हैं । नागार्जुन द्वारा लिखी गई कविताओं में लगभग एक तिहाई भगा शुद्ध प्रकृतिपरक कविता है जिसमें कवि की संवेदना मिथिला के मैदानों से तिरकर सुदूर जरहीखाल जैसे पर्वतीय अंचलों तक जुड़ती है।

नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताएँ प्रकृति के समूचे प्रसार को समेटती हैं। इनकी प्रकृति पर लिखी हुई कविताओं में बुनियादी भावुकता सर्वोत्तम रूप में मौजूद है। इनकी भावुकता एक गहरी यथार्थवादी दृष्टि से अनुशासित है। केदारनाथ सिंह के शब्दों में ''एक ठेठ भारतीय किसान में अपने खेत और खलिहान को लेकर जो एक दबी हुई प्रगाढ़ और घनीभूत भुवकता होती है, नागार्जुन की भावुकता उससे मिलती जुलती है।''[2]

नागार्जुन ने प्रकृति को अपने अधूरे सपनों का नीड़ कभी नहीं माना, और न ही पलायन कर इस धतरी के दुख दर्द को भूल जाने की बात ठानी। वे सर्वत्र अपने आस–पास के पूरे जीवन और जगत की विसंगतियों और विद्रूप को भी भूल नहीं पाए हैं। मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के अनुसार उनकी प्राकृतिक रचनाएँ, प्रकृति–क्षितिज का हर संभव विस्तार करती है। एक जनकवि होने के नाते उनकी कविता में प्रकृति की सप्राण उपस्थिति उनके जनकवि की प्रत्यभिज्ञा के अनुरूप अत्यन्त स्वाभाविक और स्फूर्त्तिदायक है। आधुनिक मानव समाज के जीवन–संघर्ष और राजनीतिक उथल–पुथल जन–आन्दोलन,

जेल–यातना और मानव मूल्यों की रक्षा आदि भी प्राकृतिक प्रेमपरक रचनाओं के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

देहाती, ग्रामीण परिवेश के कारण उनकी रचनाओं में देहाती मिट्टी की सोंधी गन्ध है। ग्रामीण जीवन का सहज भोलापन उपलब्ध है। अपने देश और जनपद की प्रकृति से इनका प्रेम, देश–प्रेम और पारिवारिक प्रेम को अन्तःसूत्र में बाँधता है। डॉ0 विमल लिखते हैं : ''हमारी कविता परम्परा में वाल्मीकि, कालिदास, अश्वघोष ही नहीं प्रसाद, पन्त और निराला के प्रकृति प्रेम भी हैं। नागार्जुन को तो विद्यापति, चन्दा झा और लाल दास का मिथिला–प्रकृति–प्रेम भी विरासत में मिला था। कदाचित इसीलिए आधुनिक हिन्दी–कविता में निराला के बाद जीवन्त प्रकृति को अपनी सघन ऐन्द्रियता में नागार्जुन ने ही बाँधा है।''[3]

प्रकृति उनकी रचनाओं में सहजता, निश्छलता, स्फूर्त्ति, विनम्रता, विश्वास, आस्था और दृढ़ता उत्पन्न करती है। किसी भी स्थिति में प्रकृति उनमें पुलक और प्रसन्नता का भाव जगाती है। इसीलिए जुल्म और दमन के विरुद्ध मानव के सुखमय जीवन की कल्पना एक विश्वास के साथ प्रकृति के माध्यम से ही वे करते हैं। जहाँ कहीं भी जन–जीवन की प्रसन्नता और सहजता पर आघात पहुँचाने की कोशिश की जाती है, वहीं पर आघात पहुँचानेवाली घटना या वस्तु के प्रति प्रकृति के माध्यम से घृणा जगाने का काम करते हैं। वे प्रकृति से लगाव के माध्यम से जीवन की तनावपूर्ण स्थितियों में उनसे मुक्त होकर नये उत्साह और नये संकल्प के साथ जीवन से जुड़ते हैं, और जीवन में संघर्ष के साथ–साथ उसे भोगने के लिए भी अपने आप को तैयार करते हैं।

अपनी रचनाओं में प्रकृति के विविध पक्ष को एक नई दिशा और नए संदर्भों के साथ अपनी कविताओं का मनोरम संसार रचते हैं। डॉ0 विमल कहते हैं : ''प्रकृति की अशेष रूपराशि और कृषण–श्रम–रचित ग्राम्य प्रकृति दोनों के अनूठे चित्रों से नागार्जुन ने अपनी कविताओं का मनोरम संसार रचा है।''[4] प्रकृति के साथ नागार्जुन का लगाव पलायन वृत्ति का नहीं, जीवन के प्रति उनके अनुराग का सूचक है। गाँव के प्राकृतिक वातावरण में पहुँचकर वे अनुभव करते हैं : ''बहुत दिनों के बाद/अबकी मैंने जी भर भोगे/गंध–रूप–रस–शब्द–स्पर्श सब साथ–साथ इस भू पर।''[5]

प्रगतिशल कवियों की प्रकृति–संबंधी रचनाएँ छायावादी कवियों की प्रकृति रचनाओं से भिन्न होने के साथ–साथ विशिष्ट हैं। उनकी रचनाओं में संवेदनात्मक गहराई, अपने कलात्मक निखार और रचाव, बारीक निरीक्षण, चित्रमयता, सौन्दर्य और अपने इंद्रिय–अनुभवों के द्वारा भोगा हुआ होने के साथ–साथ मंगल की कामना करती हुई दिख रही है। प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन का प्रकृति संदर्भ कई मायने में अनूठा है। सुरेश सलिल कहते हैं : ''नागार्जुन की कविता में प्रकृति के प्रति जो हार्दिकता, जो सौंदर्य–प्रियता है, प्रेम का जो अनूठा स्पर्श है, वह आधुनिक हिंदी कविता की दुर्लभ घटना है।''[6]

नागार्जुन की प्रकृति छायावाद के कवियों की भाँति समारोहपूर्वक नहीं लाई गई है, और न ही उसे अलंकृत किया गया है, वरन् प्रकृति प्रकृत रूप में ही है । जो अपने आप में सुन्दर, मोहक एवं भव्य है। शिवकुमार मिश्र कहते हैं : ''नागार्जुन के यहाँ प्रकृति सचमुच अपने प्रकृत रूप में ही है–एक संवेदनशील कवि, एक किसान–संवेदना के कवि की निगाह से देखी गई प्रकृति अपने साधारण–असाधरण, रम्य–रौद्र हर रूप में अपनी सहजता को बरकरार रखनेवाली, विश्वसनीय, स्वाभाविक जन–जन के अनुभवों में रची–बसी प्रकृति है।''[7]

नागार्जुन के बारे में सहज ही कहा जा सकता है कि वह एक अद्‌भुत सौन्दर्य चेतना के कवि हैं। वे इस सौन्दर्य को खेत–खलिहानों से लेकर ग्रामीण जन व समाज से ग्रहण करते हैं। उनका जीवन्त रिश्ता ग्रामीण परिवेश से जुड़ा है। आह्‌लाद और सौन्दर्य का विरल गुम्फन उनके काव्य में है। यह सौन्दर्य उनकी राजनीतिक कविताओं तक में दिखाई देता है और हमें चकित कर देता है।

नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताओं को अन्तर्वस्तु की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है– 1. प्राकृतिक अंग और 2. प्राकृतिक व्यापार। फिर प्राकृतिक अंगों को (क) बादल (ख) ऋतु (ग) ग्रह–नक्षत्र (घ) पर्वत (ड़) सर–सरिता (च) खेत–खलिहान (छ) पेड़–पौधा, फल–फूल (ज) पशु–पक्षी जैसे शीर्षकों के अंतर्गत और प्राकृतिक व्यापारों को वर्षा, गर्मी, बाढ़–सुखाड़ आदि के अंतर्गत विश्लेषित किया जा सकता है।

1. प्राकृतिक अंग :– मानव से इतर सृष्टि के विभिन्न अंगों का उपयोग नागार्जुन की कविताओं में सर्वत्र हुआ है। उनके लिए प्रकृति एकांतवास का सुख–साधन नहीं है, वह तो कवि के सतत् जाग्रत मानवीय सरोकारों से संयुक्त होकर काव्य–संवेदना को रचनात्मक ऊर्जा प्रदान करती है। इसी कारण उनका प्रकृति–प्रेम उन्हें यथार्थ जगत से दूर नहीं ले जाता, अपितु जीवन–यथार्थ के परस्पर विरोधी परंतु अंतःसंबंधित और बहुआयामी स्वरूप को आत्मसात् करने की दृष्टि प्रदान करता है। प्रकृति के निरीक्षण में कवि का दृष्टिकोण विशिष्ट और अभिजात नहीं, लोकसामान्य है। उसने जीवन की वास्तविकताओं का सहज–सरल भाषा में आत्मीय अंकन किया है।

(क) बादल : नागार्जुन को बादल हरेक रूप में प्रिय एवं मान्य रहा है। वे संस्कृत के अध्येता और कालिदास के प्रशंसक थे। निराला के बाद उनकी परम्परा से जुड़कर बादल से संबंधित उनकी दो दर्जन से अधिक कविताएँ हैं, जिनमें बादल के सभी रूप–नखरे को नागार्जुन ने व्यक्त किया है। उनका बादल 'आवारा' नहीं है, बल्कि उसका कुछ उद्देश्य है। वह हमें कोई न कोई संदेश देता है। बादलों के प्रति उनका लगाव ठेठ किसानी लगाव है। बादल तथा उनसे होनेवाली वर्षा उन्हें वही सुख और आह्‌लाद देती है, जो एक किसान अनुभव करता है। शिवकुमार मिश्र लिखते है : ''मेघ या वर्षा नागार्जुन के लिए रोमानी आकर्षण की चीजें नहीं हैं। वे उन्हें धरती और धरती–पुत्रों के संदर्भ में ही प्रिय हैं।''[8] बादल के बरसने पर पेड़–पौधों, झील–सरोवरों, पशु–पक्षियों के साथ–साथ लोगों के हर्षोल्लास को देखते हुए कवि भी अपनी सहभागिता प्रदान करते हैं।

(ख) ऋतु महीना : नागार्जुन को अपने देश और जनपद की प्रकृति से रागात्मक और पारिवारिक प्रेम है। भारतीय ऋतुओं एवं महीनों का प्राकृतिक चित्रण वे बड़े ही मनोयोग से करते हैं। वे सदैव प्रकृति का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं । जनकवि होने के नाते हमेशा यथार्थ से जुड़कर वर्णन करना वे पसंद करते हैं। उनकी प्रकृतिपरक कविताओं में छायावादी प्रकृति–चित्रणों की तरह कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं है। डॉ0 विमल लिखते हैं : ''प्रकृति अशेष रूपराशि और कृषक–श्रम रचित ग्राम्य प्रकृति दोनों के अनूठे चित्रों से नागार्जुन ने अपनी कविताओं का मनोरम संसार रचा है।''[9]

नागार्जुन ने बादल के बाद सबसे अधिक ऋतुओं पर ही रचना की है। किसान–मजदूर के सुख–दुःख में साथ रहनेवाले कवि को पावस ऋतु सबसे प्रिय रही है। पावस के साथ–साथ हेमंत, शिशिर आदि ऋतुओं पर भी अनेक रचनाएँ हैं। परंतु पावन के उपरान्त कवि की प्रिय ऋतु वसंत है, जिसके आगमन का उन्हें सदैव इन्तजार रहता है । यों ग्रीष्म और शिशिर भी उनके यहाँ अपने ताप

और त्रास के साथ आत्मीय रूप में हैं, फिर भी बसंत पर नागार्जुन ने अपेक्षाकृत अधिक ही लिखा है । शिवकुमार मिश्र लिखते हैं : ''नागार्जुन मेघों और पावस को ही उनके संपूर्ण तेवरों में स्वीकार नहीं करते, ग्रीष्म ऋतु के ताप–मास को अथवा शिशिर ऋतु की उदात्त भंगिमाओं को भी समान–भाव से स्वीकार करते हैं।''[10]

(ग) ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, आकाश : नागार्जुन अपने को नास्तिक कहते हैं। लेकिन प्रकृति के बीच वे अपने को जनजीवन के इतने करीब पाते हैं कि उन्हें उसी में 'अस्ति' का भाव प्रतिबिंबित होना लगता है। अस्ति का अभिप्रायमूलक अर्थ है किसी सत्ता को मानना। नागार्जुन प्रकृति से बड़ी और कोई सत्ता को नहीं मानते हैं, और यह विज्ञान सम्मत सत्य भी है। ''वह हम से स्वायत्त है। हमने उसका सृजन नहीं किया। वही मनुष्य के अस्तित्व का मूल है। इसी व्यापक अर्थ में नागार्जुन प्रकृति को 'अस्ति' मानते हैं।''[11]

कवि को प्रकृति के अवयवों में आशा की किरणें दिखाई देती हैं। कभी अंधेरा तो कभी कोहरा और कभी उसको चीरकर निकलता हुआ सूर्य भी है। नागार्जुन अद्‌भुत सौन्दर्य चेतना के कवि हैं। उनकी रचनाओं में यह सौन्दर्य खेत–खलिहानों से लेकर ग्रामीण जन तक को समेटते हुए ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, आकाश आदि के गुण, धर्म, सौन्दर्य में भी अभिव्यक्त है। सामान्यतः चाँद की चाँदनी के लिए चितकबरी विशेषण का प्रयोग नहीं किया जाता है। लेकिन नागार्जुन ने 'चितकबरी' का प्रयोग करते हुए चाँदनी को एक विशेष रूप में व्यक्त किया है। भारतीय ऋतुओं के साथ–साथ नक्षत्र, ग्रह आदि प्राकृतिक अवयवों से इनका रचना संसार भरा पड़ा है।

(घ) पर्वत : प्रकृति के अन्य अवयवों की भाँति संसार में फैली पर्वत–मालाओं को भी नागार्जुन अपनी कविता का विषय बनाया है। भारत–भूमि में फैली घाटियों और पर्वतों को उन्होंने दिल से सराहा है तथा हिमालय की वन्दना की है। वाल्मीकि, कालिदास, अश्वघोष आदि की परंपरा में नदी, पहाड़, बादल, ऋतु परिवर्तन, फसलों, वनस्पतियों के अभिनव ताजे टटके रूप नागार्जुन की सौंदर्यानुभूति से गुजरकर सबका ध्यान खींच चुके हैं।

नागार्जुन जीवन भर यात्री रहे हैं। अपनी यात्रा में समतल भूमि से लेकर उभर–खाभर पहाड़ी क्षेत्रों तक के प्राकृतिक सौंदर्य को अपनी आँखों से देखा है। वे संस्कृत के अध्येता तो थे ही, संस्कृत के महान कवि कालिदास के उपासक भी थे। उनकी एक अत्यंत प्रसिद्ध कविता 'बादल को घिरते देखा है' में पर्वत–शिखरों पर मेघों के गर्जन–तर्जन और रुद्र रूप का बड़ा जीवंत चित्रण किया गया है। आनन्द नारायण शर्मा के शब्दों में, ''वे प्रायः कहा करते थे कि शिमला–मंसूरी आदि हिमालय के घुटनों की भाँति हैं। वास्तविक हिमालय इनसे कहीं ऊपर, दुर्गम शिखरों पर है, जिन तक जाने–देखने का सुयोग कम लोगों को मिलता है।''[12]

पर्वतराज हिमालय पर उनकी कविता संस्कृत के क्लासिक कवियों की याद ताजा कराती है। उसका वैशिष्य्य यह है कि वह उनका देखा हुआ हिमालय है, कालिदास की तरह कल्पित नहीं। पठारों–पर्वतों से संबंधित इनकी रचनाएँ हैं 'ओ जन–मन के सजग चितेरे', 'पर्वत–बालाएँ गईं घूम', मैंने देखा' और 'शिखरों पर'।

(ड़) सर–सरिता–सागर : जन–जीवन की जीवन्त प्रकृति को अपनी सघन ऐन्द्रियता में नागार्जुन ने बाँधा है। मिथिला अंचल की कृषिजीवी जनसंस्कृति इनके काव्य में जीवन की आँच बनकर दहकती रही है । पोखर, ताल तलैये, ताल मखाने आदि नजर से ओझल नहीं हो पाते हैं। शिवकुमार मिश्र के शब्दों में, ''नागार्जुन जहाँ मेघों और पावस के आगमन पर अपने हर्षोल्लास को मुखरित करते हैं, वहाँ वे मेघों और पावस को उनसे जुड़े दूसरे पेड़–पौधों, झील–सरोवरों और नालों तथा आदमियों के साथ पशु–पक्षियों की सहभागिता में ही मुखरित करते हैं, उनसे अलग–अलग नहीं।''[13]

नागार्जुन का प्रकृति वर्णन इहलोक के सौंदर्य से ही मतलब रखता है। पोखर, नदी, सागर आदि पर इनकी अनेकों रचनाएँ हैं जिनमें इनकी रचनाशीलता का प्रकृति के प्रति प्रत्यक्ष उद्घोष उपस्थित हुआ है। रेवती रमण के शब्दों में, ''मछलियों से भरा पोखरा उनकी ऐतिहासिकता को प्रतिष्ठित करता है। परमान नदी के किनारे सैकत पुलिन पर सुबह–सुबह टहलने में कवि इहलोक की गत्वरता से अभिन्न होता है। प्रकृति चित्रण का यह लघु सन्दर्भ नागार्जुन को हिन्दी के घोषित प्रकृतिवादियों से बड़ा और प्रभावशाली कवि ठहराता है।''[14]

यात्रा के दौरान कवि ने नदी, झरने आदि के स्वरूपों को भी भलि भाँति देखा–परखा है। मानसरोवर झील को अपनी आँखों से झाँका है। सर–सरिता से संबंधित इनकी रचनाएँ हैं : 'सिंधु नद', 'वेतवा–किनारे–1', 'वेतवा किनारे–2', 'नदियाँ बदला ले ही लेंगी', 'बड़ी फिकर है हमें तुम्हारी', 'विकल है व्याकुल है', 'गढ़ की गंगा', तथा 'चाँदी की हँसुली' ।

(च) खेत–खलिहान : नागार्जुन की कविताओं में उनका गाँव, गाँव की भूमि प्रत्यक्षतः उपस्थित है। किसानी परिवेश के होने के कारण उनके यहाँ खेत–खलिहान का होना स्वाभाविक ही है। कवि ने अपने जनपद, घर–परिवार और गृहस्थ जीवन की रागात्मक अनुभूतियों को निःसंकोच भाव से प्रकट किया है। गृहस्थ जीवन को केन्द्र में रखकर की गई रचनाओं के बारे में कृष्ण कुमार गुप्ता बताते हैं कि ''इनकी कविताओं में रागात्मकता का स्वर अधिक सघन हो जाता है। 'सिंदुर तिलकित भाल' ऐसी ही रचनाओं का एक उदाहरण है।''[15] धरती के प्रति असीम अनुराग ने कवि को सदैव प्रकृति से जोड़े रखा है। प्रेमलता दुआ के शब्दों में ''नागार्जुन की रचनाओं में देहाती मिट्टी की सोंधी गन्ध है। ग्रामीण जीवन का सहज भोलापन उपलब्ध है, जीवन के दुख–दर्द को कवि ने सफलता पूर्वक व्यक्त किया है।''[16]

एक ठेठ भारतीय किसान में अपने खेत और खलिहान को लेकर जो एक दबी हुई प्रगढ़ और घनीभूत भावुकता होती है, नागार्जुन की भावुकता उससे बहुत मिलती–जुलती है। कवि की दृष्टि में ''यह धरती सर्वसहनशीला और अन्नपूर्णा है, स्तुति नहीं। कठोर श्रम माँगती है। पुत्रोचित परिचर्चा, प्रति सुलभ प्रीति, मातृसुलभ ममता और पितृ सुलभ परिपोषण सदा से धरती चाहती आई है।''[17]

नागार्जुन के प्रकृति–चित्रण में भूमि का चित्र अद्भुत रूप में उपस्थित हुआ है। वे 'काली–भूरी–पीली–मिट्टी' की सुगंध से उल्लासित होते हैं। 'रक्ताभ भूमि' पर 'उगते दूर्वांकुर' उन्हें मोहते हैं। केरल की 'सरसब्ज' धरती भी उन्हें प्रेरित करती है। उनकी कविता में भारत के किसानों, भूमिहीन खेतिहरों तथा श्रमिकों को एकजुट करने की व्यापक ध्वनि बिंबित होता है। कवि को जन, जनपद, ग्रामांचल तथा वहाँ की परिचित प्रकृति बहुत अच्छी लगती है। सदैव अपनी धरती और उसके धन से जुड़े कवि की खेत–खलिहान से संबंधित कविताएँ हैं : 'सिंदूर तिलकित भाल', 'भारत माता', 'धरती', 'पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने', 'मैला आँचल' और 'लुभा रही'।

(छ) पेड़–पौधा, फल–फूल, फसल : प्रकृति का ऐसा एक भी क्षेत्र या अवयव नहीं है जो नागार्जुन की आँखों से ओझल हुआ हो। पेड़–पौधे, फसल, फल–फूल तथा धरती के बाहर–भीतर की हरेक वनस्पतियों का बारीकी से निरीक्षण करके अपनी कविताओं के द्वारा उन्होंने प्रकट किया है। वे प्रकृति के विभिन्न अंगों से सर्वत्र अपनी पूरी संवेदना व्यक्त करने को तत्पर दिखते हैं। कहीं चकाचौंध फैलानेवाला सोनिया समंदर है, तो कहीं डाली–डाली पर कंदुक जैसे झूलते कदंब हैं। कहीं नीम की टहनियाँ पुराने पड़ गई, तो कहीं खड़खड़ करते हुए पीपल के पत्ते हैं। कहीं वन–वनस्पतियाँ, तो कहीं उनमें उगनेवाले शाल और चिनार हैं। अपनी रचनाओं में पेड़–पौधों के नाना रूपों के साथ–साथ बीज के अंकुर बनकर उमगने की कसमसाहट और आतुरता को भी जीवन्त रूप में उन्होंने प्रकट किया है। फसल,पेड़–पौधे, फल–फूल से संबंधित उनकी रचनाएँ हैं : 'रजनीगंधा', 'पीपल के पीले पत्ते', 'देवदारु', 'वसंत की अगवानी', 'नीम की दो टहनियाँ', ''फसल', 'तरल कनक', 'विकल है गुलाब', 'लाली बढ़ी सौ गुनी', 'फूले कदम्ब', 'धूप में खिले पात', 'आज मैं बीज हूँ', 'हरे–हरे नए–नए पात', 'सोनिया समंदर' और 'यह तो वो नहीं है'।

(ज) पशु–पक्षी, कीट–पतंग : नागार्जुन की रचनाओं में प्रकृति के जैविक एंव अजैविक दोनों रूपों का दर्शन स्वाभाविक रूप में मिलता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही प्रकृति है। ब्रह्माण्ड का ही एक अवयव पृथ्वी भी है। पृथ्वी पर मानव एवं मानव से इतर जीव–जंतुओं का भी चित्रण प्रकृति–चित्रण के क्षेत्र में आता है। नागार्जुन ने भी विभिन्न जीव–जंतुओं की जीवन्त संवेदना को आत्मसात कर अपनी कविताओं के माध्यम से उसे व्यक्त किया है। प्रकृति के परिवेश में ही कवि ने विभिन्न पशु–पक्षियों का सहज रूपांकन किया है। इनसे संबंधित नागार्जुन की कविताएँ हैंः– 'चातकी', 'तालाब की मछलियाँ', 'चीलों की चली' बारात', 'सौंदर्य प्रतियोगिता', 'काले–काले भौंरे', 'तन है साँवला–सलोना', कछुए ने मारी हाँक', 'अब के इस मौसम में', 'छेड़ो मत इनको', 'देखा सबने चिड़ियाखाना', 'पैने दाँतोवाली','छोटी मछली शहीद हो गई', 'खटमल', 'मगरों के आँसू बहते हैं', 'जी हाँ यह सबकी चहेती है', 'नेवला', 'क्रंदन भी भा सकता है', 'बाघ आया उस रात', 'डियर तोता राम', 'गो माता' और 'नीले आसमान में'।

(2) प्राकृतिक व्यापार

नागार्जुन ने प्राकृतिक व्यापारों का चित्रण अधिकतर मानवीय समस्याओं को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया है। उन्हें ऋतुओं में पावस ही सर्वाधिक प्रिय है। पावस ऋतु में आई बाढ़ से जन जीवन की तबाही को देखकर नागार्जुन तनिक विचलित तो होते हैं, फिर भी गीले पंक की दुनिया उन्हें पसंद है, उतरती हुई बाढ़ उन्हें आनंदित करती है। गीले पंक पर मल्लाहों के छोकड़ों की चहलकदमी देखकर उनका मन होता है कि काश वे भी उनमें शामिल होते।

वर्षा का अभिनंदन तो अनेक कवियों ने किया है, किन्तु वर्षा के साथ पैदा होनेवाले कीचड़ को नागार्जुन ही 'हरि चंदन' के रूप में सम्मान दे सकते हैं। वे ही उसकी जय बोल सकते हैं। कदाचित हिन्दी में या कि भारतीय कविता में या भारतेतर काव्य–साहित्य में किसी रचनाकार ने कीचड़ का इस रूप में अभिनंदन किया हो। 'जय हे कीचड़' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ देखिये : ''टाँगे गल जाएँगी/सरिता की कछार में/पंक ही पंक है/धँसना तो पड़ेगा ही/कर्दम का तुहिनमय स्पर्श/कंपन की पराकाष्ठा/जड़िमा में डूब गया स्पर्श बोध।''[18]

संदर्भ सूची :

1. डॉ0 कुमार ज्योतिवर्द्धन / नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ / 70
2. आलोचना, 56–57 / 16
3. पश्चिम बंगाल, मार्च–मई 1999 / 7
4. वही / 7
5. नागार्जुन रचनावली–1 / 316
6. कल के लिए–13 / 7
7. वही / 13
8. कल के लिए–13 / 13
9. पश्चिम बंगाल, मार्च–मई–1999 / 7
10. कल के लिए–13 / 15
11. विजेंद्र / नयापथ, नागार्जुन जन्मशती विशेषांक–2011 / 266
12. परिषद्–पत्रिका, दिसम्बर–1999 / 216
13. कल के लिए–13 / 13
14. दस्तावेज–33 / 31
15. कृष्ण कुमार गुप्ता / प्रगतिवाद और नागार्जुन के उपन्यास / 34
16. प्रेमलता दुआ / समाजवादी यथार्थवाद और नागार्जुन का काव्य / 114
17. डॉ0 पाण्डेय विनय भूषण प्रसाद / परिषद्–पत्रिका, दिसम्बर–1999 / 132
18. नागार्जुन रचनावली–2 / 28

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

प्रवासी साहित्य और 'रुकोगी नहीं राधिका'

डॉ0 नीलू अग्रवाल

कुम्हरार, पटना

अनेक भारतीय ऐसे हैं जो भारत से अलग अन्य देशों में हिंदी रचना और उसके विकास के कार्यों में लगे हुए हैं। इनमें दूतावास के अधिकारी और विदेशी विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक तो है ही, अनेक सामान्य जन भी हैं जो नियमित लेखन और अध्यापन से विदेश में हिंदी को लोकप्रिय बना रहे हैं। विदेश में रहने वाले हिंदी साहित्यकारों का महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि उनकी रचनाओं में अलग–अलग देशों की विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियां हिंदी की साहित्यिक रचनाशीलता का अंग बनती हैं। विभिन्न देशों के इतिहास और भूगोल का हिंदी के पाठकों तक विस्तार होता है। विभिन्न शैलियों का आदान–प्रदान होता है और इस प्रकार हिंदी साहित्य का अंतरराष्ट्रीय विकास भी होता है।

बीसवीं सदी के मध्य से भारत छोड़ विदेश जा बसने वालों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इनमें से अनेक लोग हिंदी के विद्वान थे और पहले से ही लेखन में लगे हुए थे पर उनका प्रचार तब हुआ जब वे धर्मयुग में प्रकाशित हुए। ऐसे साहित्यकारों में उषा प्रियंवदा का नाम भी आता है। बीसवीं सदी का अंत होते–होते लगभग 100 प्रवासी भारतीय अलग–अलग देशों में (फिजी, टोबैको, मॉरीशस, सूरीनाम, अमरीका आदि) अलग अलग विधाओं में साहित्य रचना कर रहे थे। 21वीं सदी के प्रारंभ होने तक 50 से भी अधिक साहित्यकार भारत में अपनी पुस्तक प्रकाशित करवा चुके थे। वेब पत्रिकाओं का विकास हुआ तो ऐसे साहित्यकारों को एक खुला मंच मिला और विश्वव्यापी पाठकों तक पहुंचने का सीधा रास्ता भी। श्अभिव्यक्तिश और श्अनुभूतिश पत्रिकाओं में ऐसे साहित्यकारों की सूची देखी जा सकती है इसमें प्रवासी साहित्यकारों के साहित्य को रखा गया है। भारत की पत्रिकाओं श्वागर्थश, श्भाषाश और श्वर्तमान साहित्यश ने भी प्रवासी विशेषांक प्रकाशित करके इन साहित्यकारों को भारतीय साहित्य के प्रमुख धारा में जोड़ने का काम किया। 10 जनवरी 2003 को प्रवासी दिवस मनाए जाने के साथ ही दिल्ली में प्रवासी हिंदी उत्सव का भी श्रीगणेश हुआ। इसी के साथ ही आधुनिक साहित्य के अंतर्गत प्रवासी हिंदी साहित्य के नाम से एक नए युग का प्रारंभ हुआ।

यद्यपि प्रवासी महिला साहित्यकार जो अमेरिका से हैं इनमें सुधा ओम ढींगरा, सुशम वेदी,उषा देवी, विजय कॉल आदि के नाम भी आते हैं परंतु उषा प्रियंवदा का एक विशिष्ट स्थान जान पड़ता है। उषा जी ने रचनात्मकता के नए आयामों को छूकर अपनी अलग पहचान बनाई है। इनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि भारत और अमेरिका दोनों रही है, यही कारण है कि इनके साहित्य में दोनों जगह के संस्कृति का समन्वित रूप दिखाई देता है। हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में समान रूप से दक्ष उषा जी ने साहित्य सृजन के लिए हिंदी तथा समीक्षा, अनुवाद व अन्य कार्यों के लिए अंग्रेजी का चयन किया।

उषा जी के प्रकाशित उपन्यासों में 'पचपन खंभे लाल दीवारें' (1961), 'रुकोगी नहीं राधिका' (1966), 'शेष यात्रा' (1984), 'अंतर वंशी' (2000), 'भया कबीर उदास' (2007), 'नदी' (2013) हैं। इन उपन्यासों में मध्यमवर्गीय आधुनिक स्त्री के द्वंद्व, पारिवारिक, सामाजिक संबंधों में आए बदलाव की तनावपूर्ण स्थिति को सूक्ष्मता से उकेरा गया है। 'इनका उपन्यास देशी– विदेशी संदर्भों को समेटते हुए स्त्री पुरुष के रिश्तो की नए संदर्भ में पड़ताल करता है। इनका साहित्य रिश्तों की परंपरागत फ्रेमिंग को सिरे से नकारता है। उषा जी की संवेदनात्मक अनुभूति के विभिन्न रंग रूप हम इनके उपन्यासों में देख सकते हैं। दरअसल अपने जीवन का विस्तृत अनुभव ही इनकी रचनाओं में मुखरित हुआ है। आधुनिक स्त्री की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि ही वास्तव में इनकी अनुभूतियों को विस्तृत आयाम देती है। यही कारण है कि अनुभूतियों के जितने रंग उषा जी के यहां मिलते हैं, अन्यत्र दुर्लभ हैं। स्त्री की परंपरागत गढ़ंत को तोड़ते हुए नए संदर्भ में स्त्री अस्मिता के प्रश्नों की नए सिरे से तलाश की गई है।'[1]

'रुकोगी नहीं राधिका' के माध्यम से मध्यमवर्गीय स्वच्छंद स्त्री के अंतर्द्वंद को बखूबी उकेरा गया है। यह उपन्यास स्त्री संबंधी पुरुषवादी मान्यताओं पर भी प्रहार करता है। उपन्यास की नायिका राधिका अपने निर्णय स्वयं लेती हैं और अपने पर थोपे गए किसी भी निर्णय को नकारती है। आधुनिक शिक्षित स्त्री के रूप में जीवन के प्रति दृष्टिकोण अपनाती है। पिता के आदेश को न मानते हुए डैन नामक विदेशी पत्रकार के साथ एक साल रहते हुए भी शादी के बंधन में नहीं बंधती और न ही पिता द्वारा बनाए गए बंधनों में ही बंधना चाहती है। स्वच्छंद विचरना ही राधिका के स्वभाव में है। वस्तुतः सदियों से पराधीन स्त्री वाली छवि को तोड़ते हुए उषाजी, राधिका के माध्यम से एक नई छवि गढ़ती हैं जिसमें समाज के प्रति विद्रोह के स्वर हैं। चाहे विदेश हो या देश उषा जी की स्त्री अपने मुक्त चरित्र से ही हमें अपना परिचय कराती है।

भारत लौटने पर दो पुरुष पात्रों अक्षय और मनीष के संपर्क में राधिका आती है। दोनों ही उससे विवाह करना चाहते हैं परंतु राधिका अपनी शर्तों पर जीती है। विवाह के बारे में कहती है, 'हो सकता है कि मैं अक्षय से विवाह कर लूं। मेरे जीवन में प्लेब्वॉय के लिए स्थान नहीं है। मैं संगी चाहती हूं जिसमें स्थिरता हो, औदार्य हो, जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले। मेरे अतीत क झेल ले।'[2] परंतु अक्षय की पुरुषवादी मानसिकता इसके लिए तैयार नहीं होती है वह उसे छोड़कर चला जाता है। वहीं मनीष से कहती है, 'तुम बार–बार विवाह की बात क्यों छोड़ देते हो? मैं अभी विवाह करने के मूड में नहीं हूं।'[3] यह परिवर्तनवादी आधुनिक स्त्री है, जो अस्वीकार करने की ताकत रखती है।

उपन्यास नारी प्रधान है फिर भी दुनिया की बढ़ती भीड़ में अकेले पड़ जाने की कथा के साथ–साथ मानवीय मूल्यों से निरंतर घटने और इससे उत्पन्न छटपटाहट के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारणों की पड़ताल की गई है, जिससे राधिका जैसे स्वच्छंद व्यक्तित्व को नया आयाम भी मिला है।

विद्या (सौतेली मां) को स्पेस देने के लिए राधिका घर छोड़ देती है, जो राधिका के उन्मुक्त आचरण को भी दर्शाता है परंतु लेखिका का उद्देश्य केवल बदले की भावना के परिणाम स्वरुप मुक्ति की तलाश करना नहीं है। विदेश में राधिका जब डैनियल से अलग होती है तब उसे पिता के अकेलेपन का एहसास होता है। मां की मृत्यु के पश्चात् 18 वर्ष तक पिता अकेले रहे, पर अब समझ पाई कि अकेलापन कितना भयावह होता है। उपन्यास अकेलेपन की भयावहता का एहसास कराता है फिर चाहे

वह हिंदुस्तान हो या अमेरिका।राधिका अकेले और एकांत की ऐसी आदी हो जाती है कि दिल्ली में भी ऐसा घर खोजती है कि, 'बिल्कुल सन्नाटा हो और एक पत्ता भी ना खड़के कि पूरा दिन बीत जाए और कोई दूसरी सूरत ना दिखे।'[4] इसी महानगरीय यथार्थ बोध की कथाकारा हैं उषा जी।

स्वदेश लौटने की ललक राधिका को भारत तो ले आती है परंतु जल्द ही उसे कड़वे अनुभवों का सामना करना पड़ता है। भारत में दूसरों के जीवन में लोग हस्तक्षेप ही नहीं करते नतीजा भी निकाल लेते हैं। रज्जू मामा राधिका से कहते हैं, 'बातें यहां उड़ जाया करती हैं।'[5] राधिका पिता से मिलने को आतुर रहती है परंतु मिलने के बाद उसे ऐसा लगता है कि उन्होंने उसे क्षमा नहीं किया और निरुद्देश्य सी दिल्ली लौट आती है। उसे लगता है कि उसने भारत लौट कर गलती की है। मनीष के पूछने पर राधिका कहती है, 'अक्सर टामस वुल्फ की उस नावेल का शीर्षक याद आता है 'तुम घर वापस नहीं जा सकते।' कुछ अजीब ही किस्म की हो गई हूं ,न वहां सुखी थी न यहां।'[6] विदेश से लौटे व्यक्ति का दर्द बयां करते हुए मनीष कहता है, 'जब हम अपना देश छोड़कर जाते हैं तो पहले छः महीने हम 'कल्चरल शॉक' के दौरान बिताते हैं, जबकि हर कदम पर हमें अपना देश, अपनी संस्कृति ऊंची दिखाई देती है। दो साल, ढाई साल उस नए देश में रहकर उसके रीति–रिवाज के आदी होकर हम अपने देश वापस आ जाते हैं, तो हमें एक धक्का दोबारा लगता है, रिवर्स कल्चरल शॉक।'[7]

उपन्यास दोनों देशों की समानता और असमानता को पकड़ते हुए राधिका के स्वतंत्र अस्तित्व की निर्मिति का प्रयास करता है। पाश्चात्य सभ्यता और संबंधों का खुलापन डैन और उसकी पत्नी के माध्यम से चित्रित हुआ है, 'कैसा होगा वह देश जहां लोग इतनी आसानी से साथी बदल देते हैं, क्या रिक्ति हृदय में कचोटती नहीं रहती? वह तो पापा को ही क्षमा नहीं कर पाई। इसका उल्लेख करने पर डैन हँसा, कारण तुम्हारा व्यक्तित्व और परिवेश है राधिका।'[8] उपन्यास की संवेदना के केंद्र में दोनों देशों का परिवेश महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राधिका सोचती है वहां चक्की के पाट में फंसे हुए प्राणी सा जीवन था और यहां इतना समय है कि काटे नहीं कटता। यहां के लोगों की मानसिकता पर प्रहार करते हुए मनीष कहता है, 'माना कि हम पिछड़े हुए हैं पर कम से कम हम सभ्य और शिष्ट तो हो ही सकते हैं ।अपनी जहालत और आलस्य को दूर कर सकते हैं।'[9] विदेश में पढ़ कर लौटे दिवाकर का दर्द लेखिका कुछ यूँ उजागर करती है, 'मैं पूछता हूं कि देश में मेरे लिए क्या है? मेरे कॉलेज में मेरे आगे के काम लायक लैब नहीं है, मेरे बच्चों को अच्छे स्कूल में दाखिला नहीं मिल रहा। एक स्कूटर खरीदने के लिए मुझे बरसों इंतजार करना पड़ रहा है.....।'[10] विदेश से लौटे भारतियों का यह सच लेखिका इस व्याख्यान के माध्यम से सामने लाती है। देश प्रेम से पेट तो नहीं भर सकता। सरकार जब तक पर्याप्त सुविधा मुहैया नहीं कराएगी, पलायन यूं ही चलता रहेगा। विदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण पर भी लेखिका ने चुटकी ली है, 'इनका मन एक ट्रांजिस्टर के लिए था।.....क्यों? क्या यहां नहीं मिलते?..... मिलते तो हैं, पर बाहर की चीज की बात ही और होती है।'[11]

उषा जी सिर्फ स्त्री के स्वप्न की ही बात नहीं करती बल्कि बड़ी सूक्ष्मता से उसकी पड़ताल भी करती है जिसके बल पर कोई भी समाज उन्नति या अवनति करता है। बड़ी सूक्ष्मता से अपना समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण इस रूप में रखती है कि जहां विदेश में दो विवाहित स्त्री–पुरुष मैत्री भाव से एक साथ मिलकर कितने ही कार्यों का संपादन कर लेते हैं ,भारत में उन्हें अलग ही नजरों से देखा

जाता है। 'यह वह देश नहीं है जहां दो अविवाहित व्यक्तियों की मैत्री बहुत सहजता से एक नॉर्मल चीज की तरह स्वीकारी जाती है।'[12]

भारत में पुरुषों का स्त्री के प्रति जो रवैया है, उसका विश्लेषण भी उषा जी करती हैं, 'स्त्रियों का आदर करते थे, उन्हें स्वतंत्रता भी देते थे, पर वहीं तक जहां तक उनके द्वारा निर्मित सीमा रेखा न लांघी जाए। 'दूसरे प्रकार के वे थे जो स्त्री को केवल भोग की वस्तु समझते थे, और मेधाविनी स्त्रियों से दूर ही रहते थे। तीसरा था अक्षय, जिसकी उदारता और शालीनता ने राधिका के मन पर प्रभाव छोड़ा था।'[13] परंतु वह अक्षय जिसके इन्हीं गुणों के कारण राधिका चाहने लगी थी, अपनी दकियानूसी सोच के कारण उसे अस्वीकार कर देता है 'तब भी राधिका को पूर्ण रूप से उसके अतीत सहित ग्रहण करने का साहस अक्षय अपने में नहीं पाता।'[14]

नगरीय जीवन की दोहरी जिंदगी की खासी झलक उषा जी के उपन्यासों में मिलती है। व्यक्ति जो महसूस करता है, जिस दर्द में रहता है, उसे अपने चेहरे पर आने नहीं देता। 'कुछ देर अकेले बैठे रहना चाहती थी जैसे की अपने गड़बड़ हो आए विचारों और वेश से हृदय–मंथन करते अपने भावों को तरतीबवार लगा ले और तब, पापा की तरह संयत बन, मुखौटा लगाकर चाय की मेज पर जा बैठे।'[15] अपने गमों को छुपाना एक बात है पर दिखावे की जिंदगी जीना तो और भी दूरूह है। उपन्यास में राधिका की भाभी उच्च मध्यवर्ग के बीच अपनी साख बनाने के लिए सिर्फ दिखावा करती नजर आती हैं जबकि उनकी जिंदगी अंदर से खोखली है। 'दो एक बार भाभी जब उसे अपने साथ क्लब ले गई तो अमेरिका से लौटी हुई ननद को गर्व से मित्रों से मिलाया,तो राधिका समझ गई कि भाभी के लिए उसी संपन्न स्थिति की द्योतक है जैसे बड़दा के लिए पोर्ज में रखी गाड़ी।'[16] सोफिस्टिकेशन का मुखौटा उन लोगों ने भी पहन रखा है जो कल्चरस शॉक और रिवर्स कल्चरल शॉक से ग्रसित हैं।वे इस तरह से कटा हुआ महसूस करते हैं कि न ही इस देश के और न ही दूसरे देश के रह जाते हैं। 'हाथ में पकड़े कॉफी के गिलास की नमी व ठंडक अनुभव करती हुई, और जो कुछ पीड़ा, दर्द, अनुभवों का निचोड़ हर समय उसे सालता रहता था उसकी किंचित भी आभा मुख पर न लाती हुई राधिका। वह कारिन को देख रही थी और जीन, लारेंस को, वह उनके देश में रह चुकी थी पर वह उसका भाग कभी न बन सकेगी, यह बोध उसे जब हुआ था, वह उस स्नेह रज्जू को काट फेंकने के लिए छटपटा उठी थी। और अब यह उसका अपना देश था, पर कहां थे वे लोग? क्या मनीष, प्रवीण, कृस और वह स्वयं किसी प्रकार अपने देश का प्रतिनिधित्व करते थे? राधिका को लगा कि जैसे वे पुतले हैं और एक विशेष प्रकार के आचरण करने के आदी हो गए हैं। चेहरे पर सोफिस्टिकेशन का एक मुखौटा पहने, जीवन से ऊबे हुए, असंतुष्ट, एक बेचौनी सी मन में समाए हुए, जो कि ना जाने कहां कहां ले जाती है, कारिन की बाहों, में राई के गिलास में और..... और..... अक्षय की उपस्थिति की सुरक्षित भावना में।'[17] अतः उषा जी संबंधों के खुलेपन की चर्चा तो करती हैं, पर इससे उत्पन्न अकेलापन, उब और संत्रास को भी बखूबी उजागर करती हैं।

लीक पकड़कर न चलना राधिका को उसके पिता ने ही सिखाया था। मां के मरने के बाद पिता के प्रति उसका लगाव भी एबनॉर्मल हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप वह प्रेमी में भी पिता ढूंढने लगी और किसी से प्रेम न कर सकी। पिता के प्रति एबनॉर्मल लगाव ने राधिका को वह करने पर मजबूर किया जिससे पिता आहत हों। राधिका ने अपने पिता और भाई से व्यक्तिवादी स्वार्थी और महत्वाकांक्षी

सोच विरासत में पाई थी। नतीजन ऐसी स्थिति बनी कि विद्या (राधिका की सौतेली मां) ने आत्महत्या कर ली। मनीष दिखावे और भोग की जिंदगी से तंग आकर सेटल होना चाहता है पर उसने अपनी छवि ऐसी बना ली है कि राधिका स्वीकार नहीं कर पाती और राधिका जिसे चाहती है, यानी अक्षय को पर राधिका को, वह अपनी पुरुषवादी सोच के कारण राधिका को स्वीकार नहीं कर पाता। दूसरी तरफ विदेश से आए लोगों की समस्या यह है कि दूसरे देश में तो उन्हें अपने देश के संस्कार वहां का होने नहीं देते और अपने देश में यहां की कमियां खटकती हैं और वे असमंजस में रह जाते हैं कि आखिर वह कहां के हैं? मनीष कहता है, 'भागदौड़ की जिंदगी से थकता जा रहा हूं। सफलता है, धन भी, पर चौन नहीं।'[18] वहीं राधिका मनीष को बताती है कि उसे क्या परेशान करता है, 'सब कुछ..... मेरा परिवार, मेरा परिवेश, मेरे जीवन के अर्थहीनता, और मैं स्वयं जो होती जा रही हूं, एक भावहीन पुतली सी.....।'[19]

पूरे उपन्यास में मुख्य रूप से जो पसरा पड़ा है, वह है इंसान का मशीनी भाव, बेचौनी, पलायनवादी रवैया, ऊब भरी अकुलाहट और वह भी खासकर उन भारतीयों में जो प्रवासी जीवन गुजार चुके हैं। इन सारे दुखों की पड़ताल अगर हम सूक्ष्मता से करें, तो इसका कारण भी हम उपन्यास मे पाते हैं। उपन्यास का शीर्षक ही राधिका से रुकने की गुजारिश करता है राधिका आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है, जो भाग रही है। वह भाग रही है जीवन के सत्य से, समाज परिवार तथा रिश्तों के बंधनों से, जो बनाए ही इसलिए गए हैं कि व्यक्ति एक जगह टिक कर, अपना सुख दुख बांट कर , सामाजिक जीवन जी सके। मान–मर्यादाओं का पालन करे और जीवन जीने के उच्च सिद्धांतों का पालन करे, जिससे जीवन को संतुष्टि और सुख का अनुभव हो। पर पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण युवा पीढ़ी को असमाजिकता की तरफ उकसाती है और यही वह चीज है जो उनके जीवन को खोखला करती जाती है। इन सबके बावजूद उषा जी ने संभावनाओं को भी जीवित रखा है। 'संस्कारगत पारिवारिक भावनाएं हैं जो अभी पूरी तरह मृत नहीं हुई हैं।'[20] और यही वह वाक्य है जो युवा पीढ़ी के भविष्य के संत्रासों से बच निकलने का संकेत करता है।

अतः यह उपन्यास सिर्फ अकेली स्त्री के अनुभवों की नहीं, आधुनिक समाज में बदलते रिश्तों की प्रकृति से तालमेल न बिठा पाने वाले अनेक व्यक्तियों और संबंधों की बारीकी से पड़ताल करता है। एक असामान्य पिता की सामान्य संतानों के साथ असहज संबंधों की कथा है यह उपन्यास। ऐसे लोग जिनके पारिवारिक सीमांतों पर बाहरी पात्रों की सहज दस्तक इन रिश्तो को नया आयाम देती है, जो ठेठ आधुनिक समाज की देन है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. http://m-youtube-com
2. रुकोगी नहीं राधिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पृ. 82
3. वही, पृ.87
4. वही, पृ. 66
5. वही, पृ. 28
6. वही, पृ. 83
7. वही, पृ. 102
8. वही, पृ. 31, 32

9. वही, पृ. 102
10. वही, पृ. 92
11. वही, पृ. 76
12. वही, पृ. 70
13. वही, पृ. 62
14. वही, पृ. 109
15. वही, पृ. 56
16. वही, पृ. 119
17. वही, पृ. 90
18. वही, पृ. 97
19. वही, पृ. 101
20. वही, पृ. 105

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भिखारी ठाकुर : नाच से आजादी का रिश्ता

डॉ० रेखा कुमारी

पूर्व शोध–छात्रा, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

कवि केदारनाथ सिंह द्वारा रचित प्रसिद्ध कविता 'भिखारी' का एक अंश है :

"जब किसी झुरमुट में
ठनकता था गेहुँअन
तो नाच के किसी अंधेरे से
धीरे–धीरे उठती थी
एक लंबी और अकेली

भिखारी ठाकुर की आवाज
और ताल के जाल की तरह
हिलने लगती थीं,
बोली की सारी
सोई हुई क्रियाएँ

और अब यह बहस तो चली ही
कि नाच का आजादी से
रिश्ता क्या है।"[1]

जब हमारे देश को निगलने के लिए अंग्रेज रूपी शत्रु देश की गरीब एवं अशिक्षित जनता को गुलाम बना रहा था, तब हमारे देश के अनेक विद्वानों एवं 'देशभक्तों ने देश की आजादी में अपने अपने स्तर पर योगदान दिया, जिसमें भिखारी ठाकुर का योगदान अविस्मरणीय है। वे कोई बहुत बड़े राजनैतिक नेता तो नहीं थे, परन्तु एक नाटककार थे, जो बिहार के भोजपुरी क्षेत्र में नाच की एक मंडली चलाते थे। भिखारी ठाकुर 'नाई' जाति के थे। उनका कोई सामाजिक वर्चस्व भी नहीं था, फिर भी उन्होंने अपने नाटकों के द्वारा लोगों में सामाजिक चेतना फैलाने का कार्य किया।

"जब से आदमी तौला नहीं जाता बैल की तरह
उसकी केवल कीमत लगती है
भिखारी ठाकुर का वजन अचानक
दुनिया के करोड़ो दुखी लोगों
के बराबर हो गया!

फिर भिखारी नाचने लगे
उनके दुखों का रास! धा.... धा.... धिक्धिन..."[2]

भिखारी ठाकुर का काल (1887–1971) संक्रमण का काल था। एक ओर तो सामंतवादी (जमींदारी प्रथा) एवं पूँजीवादी (औपनिवेशक शोषण) गठजोड़ ने समाज में गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी एवं मौसमी प्रवास की स्थितियाँ पैदा कर दी थी, वहीं दूसरी ओर आवागमन के साधनों (रेल) का विकास हो रहा था। एक ओर समाज में अनेक कुरीतियाँ, धार्मिक, अंधविश्वास, बाह्याडम्बर, जाति–प्रथा, सती–प्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह का प्रचलन था, वहीं दूसरी ओर आर्य समाज, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं के द्वारा नवजागरण एवं समाज–सुधार का कार्य चल रहा था। दूरदर्शी भिखारी ठाकुर ने इन स्थितियों को समझा और इसका समाधान उन्होंने अपने नाटकों के द्वारा लोगों तक पहुँचाया। उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यक्तिगत समस्याओं से लेकर परिवार, देश और समाज तक की समस्याओं को उजागर किया, ताकि भोली–भाली और गरीब जनता, कला एवं मनोरंजन के माध्यम से जागरूक हो सके। उन्होंने सामंती समाज में किसानों की गरीबी और पूँजीवादी व्यवस्था में तंगहाल प्रवासी मजदूरों की लाचारी से लोगों को केवल रूबरू ही नहीं कराया, बल्कि इसका समाधान भी प्रस्तुत किया।

भिखारी ठाकुर का 'विदेसिया' नाटक व्यापक जनजागृति का नाटक था, जिसमें ग्रामीण नवयुवकों के पलायन के दर्द को समझाया गया है। भिखारी ठाकुर इसकी जड़ तक जाकर इसके कारणों की पड़ताल करते हैं तथा समाज को यह संदेश देते हैं कि असली सुख, शांति एवं समृद्धि अपनी मातृभूमि में अपने समाज एवं अपने परिवार के बीच ही मिलती है, परदेशगमन से प्राप्त सुख क्षणभंगुर है जो हमारे समाज को खोखला बना रहा है। 'विदेसिया' में भिखारी ठाकुर 'बटोहिया' का रूप धारण कर 'विदेसिया' रूपी समाज के भटके हुए नवयुवक को संदेश देते हैं कि वे 'प्यारी–सुंदरी' रूपी अपने समाज एवं परिवार के पास वापस आकर उन्हें विकास के पथ पर अग्रसर करें। अपने धरोहर की सेवा से मिलने वाला सुख, शांति एवं समृद्धि चिरस्थायी एवं व्यापक होता है। 'विदेसिया' नाटक में, 'बटोही' विदेसिया (नायक) से कहते हैं :

"बहुत दिनन से कुमति कमइलऽ, सुमति के सुपथ चलइबऽ कि ना? तनी...
पर तिय संग रति कुंभ नरक मानऽ, धरम का कुंड में नहइबऽ कि ना? तनी..
पापिन गिधिनियाँ के सोझा से दूर करऽ, गाढ़ में से गइया बचइबऽ कि ना? तनी..."[3]

भिखारी ठाकुर यह जानते थे, कि हमारा वास्तविक शत्रु गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा समाज में फैले अंधविश्वास, बाह्याडम्बर, कुरीतियाँ, जाति–प्रथा, व्यक्तिगत अनैतिकता के गुण हैं, जिसका फायदा केवल अंग्रेज ही नहीं बल्कि हमारा सामंती समाज भी उठा रहा है और हमें आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक गुलाम ही नहीं, बल्कि मानसिक गुलाम भी बना रहा है। इसके लिए भिखारी ठाकुर ने व्यक्ति, परिवार एवं समाज में जनजागरूकता फैलाकर उन्हें सशक्त करने का प्रयास किया। देश की आजादी के लिए उन्होंने अंग्रेजो से कोई राजनैतिक लड़ाई तो नहीं लड़ी, परन्तु अपने नाटकों के द्वारा गरीब जनता में जागृति पैदा की। उन्होंने समाज के लोगों को यह समझाया कि राजनैतिक आजादी तो क्षणभंगुर होती है, यदि हमें चिरस्थायी एवं व्यापक रूप से आजादी चाहिए तो आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक आजादी को पाने का प्रयास करना चाहिए। परदेश जाकर व्यक्ति केवल परस्त्री के संपर्क में ही नहीं आता बल्कि नशाखोरी का भी शिकार हो जाता है। नशा व्यक्ति को मानसिक गुलाम बनाता है। अपने 'कलियुग–प्रेम' (पियवा–निसइल) नाटक में भिखारी ठाकुर नशा के परिणामस्वरूप होने वाले पारिवारिक तंगी से समाज को अवगत कराते हुए कहते हैं :

"बेंचि के कमाई पुरूखन के उड़ाई कर, अपने भइलऽ लहँगाझार

पिअऊ निसइल।
खेती–बारी गहना तूँ बेंच देलऽ निसा खातिर, घरे नइखे छीपा के ठेकान
पिअऊ निसइल।"[4]

भिखारी ठाकुर यह जानते थें, कि समाज में जब तक नारी सशक्त नहीं होगी तब तक उस समाज का विकास नहीं हो सकता है। उनका 'गबनधिचोर' नाटक नारी सशक्तिकरण का एक सशक्त माध्यम है। 'गबरधिचोर' की नायिका अपने पुत्र पर अपने अधिकार का प्रमाण देती हुई पंचों के सामने कहती है :

"घर में रहे दूध पाँच सेर, केहू जोरन दिहल एक धार।
का पंचायत होखत बा, घीउ साफे भइल हमार।।"[5]

'बेटी–वियोग' नाटक के द्वारा उन्होंने 'बाह–विवाह' और बेटी बेचने की प्रथा के द्वारा समाज पर पड़ने वाले दुष्परिणाम से लोगों को अवगत कराया है और बताया है कि कम उम्र में विवाह के कारण बाल्यावस्था में ही हमारी बेटियाँ विधवा बन जाती हैं। विधवाओं की दुरावस्था से अवगत कराते हुए उन्होंने 'विधवा–विलाप' नामक नाटक लिखा है।

पारिवारिक विघटन को रोकने एवं परिवार को सशक्त बनाने के लिए उन्होंने 'भाई–विरोध' नामक नाटक लिखा है, जिसका एक अंश है :

"लोक–लाज सब खोके, भाई से अलग होके;
सहत बानी बहुत बिपतिया।"[6]

उन्होंने परिवार, समाज एवं देश में व्यक्ति–व्यक्ति के बीच त्याग, कर्तव्य एवं प्रेम को प्रोत्साहित किया एवं आपसी एकता और सद्भाव को बढ़ावा दिया। "भिखारी को राष्ट्र प्रेम भी बहुत था–'झगड़ा लगावल पाप बरोबर, समुझऽ भारत के भाई।"[7]

निष्कर्षतः भिखारी ठाकुर का नाच व्यक्ति की सम्पूर्ण आजादी से संबंधित था, जिसमें मानसिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक आजादी का समावेश था। उन्होंने अपने नाटकों के द्वारा यह स्पष्ट किया है, कि जब तक मनुष्य आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर, व्यक्तिगत रूप से नैतिक एवं सामाजिक रूप से सम्मान का पात्र नहीं हो जाता है, तबतक उसकी राजनैतिक आजादी अधूरी है। "भिखारी ठाकुर वास्तव में भोजपुरी के जनकवि हैं। इनकी कविता में भोजपुरी जनता अपने सुख–दुख एवं भलाई–बुराई को प्रत्यक्ष रूप से देखती है। ...ग्रामीण विषयों को लेकर ठेठ तथा टकसाली भोजपुरी में कविता करने में आप सिद्धहस्त हैं।"[8]

संदर्भ–ग्रंथ सूची :

1. भिखारी ठाकुर : जीवन और सृजन, अशोक कुमार सिन्हा, पृ० 134
2. वही, पृ० 135
3. भिखारी ठाकुर रचनावली, संपादक – प्रो० वीरेन्द्र नारायण यादव, पृ० 48
4. वही, पृ० 108
5. वही, पृ० 169
6. वही, पृ० 70
7. भिखारी, महेश्वराचार्य, पृ० 78
8. भोजपुरी भाषा साहित्य, डॉ० उदय नारायण तिवारी, पृ०–44, 45

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय पंचायती राज व्यवस्था का संक्षिप्त अवलोकन

डॉ० मधुकर आनन्द

नेट (पी०एच० डी०), इतिहास विभाग
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर

आज सर्वत्र यह भ्रामक अवधारणा व्याप्त है कि पंचायत एवं प्रजातंत्र पाश्चात्य भूमि की अर्वाचीन आविष्कार है, जिसका प्रसार 1947 ई० में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हीं भारतीय धरातल पर हुआ। किन्तु यह मूलतः असत्य है।

वस्तुतः पंचायत प्रजातंत्र का प्राचीनतम स्वरूप है जिसका प्रादुर्भाव भारतीय धरा पर हुआ है। वैदिक आर्यकाल से ही ग्रामीण शासन को प्राथमिक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। पुरातत्व–वेताओ द्वारा कि गयी खोज के फलस्वरूप उपलब्ध पुराने ताम्र पत्रों इत्यादि के अध्ययन से भी यह स्पष्ट होता है कि भारत में पंचायतों का इतिहास शताब्दियों पुराना है। ये पंचायते अति प्राचीन काल से हिन्दु, मुस्लिम और पेशवा सरकारों के काल में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने तक विभिन्न रूपों में फलती–फूलती रही है।

भारत में पंचायती राज व्यवस्था का अस्तित्व उस समय से माना जा सकता है जब से चार वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र की उत्पत्ति हुई। पंचायती राज का शाब्दिक अर्थ है– पाँच जन प्रतिनिधियों के समूह का शासन। ये पाँच प्रतिनिधि हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र और ईश्वर। सभी चार वर्णों के लोग ईश्वर को साक्षी मानकर राज चलाने के लिए जो सामुहिक निर्णय लेते थे, उसी के अनुसार शासन होता था। इसी को पंचायती राज नाम दिया गया। भारत में पंचायती राज व्यवस्था की सुदृढ़ स्थिति का वर्णन कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक दास कैपिटल में भी किया है। कार्ल मार्क्स ने लिखा है–''प्राचीन काल से चले आ रहे ये छोटे–छोटे ग्राम समुदाय धार्मिक ढंग से संयुक्त स्वामित्व तथा किसान और मजदूर के श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है। ये ग्राम समुदाय अपने आप में परिपूर्ण तथा आत्म निर्भर हैं। ऐशियाई समाज में जो सुदृढ़ता, संगठन तथा स्थायित्व पाया जाता है, उसका मुख्य श्रेय इन स्वावलम्बी ग्राम समुदायों को ही है। वहाँ के राज्य टूटते रहते हैं, राजशी खानदान बनते बिगड़ते और मिटते रहते हैं, परन्तु वहाँ के ग्राम समुदायों पर इन तूफानों, आँधियों, क्रांतियों तथा परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपनी सनातन गति से चलते रहते हैं।'' इस प्रकार अगर कार्ल मार्क्स की माने तो एशिया और विशेषकर भारत में पंचायती राज व्यवस्थाओं पर राज सत्ता परिवर्त्तन का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। यह व्यवस्था ग्रास रूट लेवल पर बहुत ही मजबूत और स्थायी थी।

वैदिक काल में पंचायती राज व्यवस्था : – वैदिक काल में पंचायती राज व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि पंचायत के सामने राजा को भी जाने में डर लगता था कि कहीं उसे पदच्युत न कर दिया जाए। इस काल में गाँव का शासन चलाने के लिए एक 'सभा' होती थी। जिसमें गाँव का प्रत्येक नागरिक भाग लेता था। इस सभा की बैठक गाँव के चौपाल पर होती थी, जिसकी अध्यक्षता गाँव का मुखिया करता था। वैदिक काल में 'ग्रामसभा' अलग–अलग ग्रामों में संगठित हो गई किन्तु एक ग्राम सभा का दूसरी ग्राम सभा के साथ कोई संबंध नहीं था जिससे जन शक्ति छोटी और बिखरी हुई थी। इन्हें एक ही शासन प्रबंध के अन्तर्गत आबद्ध करने के लिए समिमि के संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई। समिति का कार्य क्षेत्र विस्तृत हो गया। समिति का संगठन ग्राम सभाओं के प्रतिनिधियों के द्वारा किया गया। इसका कार्य इसकी क्षेत्रीय सीमा के अन्तर्गत स्थित सभी ग्राम सभाओं का निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण करना था तथा अनेक ग्रामों से संबंधित विषयों की व्यवस्था करना था। समिति का स्वरूप विस्तृत था। इसके द्वारा निर्मित विचारों का कार्यान्वयन करने के लिए एक छोटी सी

कार्यकारिणी समिति या 'आमंत्रण' समिति के संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई। आमंत्रण समिति के सदस्यों का निर्वाचन संपूर्ण समिति के सदस्यों के द्वारा किया जाता था। साथ हीं एक अध्यक्ष का भी चुनाव समिति द्वारा किया जाता था, जो राष्ट्राध्यक्ष कहलाता था। यहाँ तक 'राजा' शब्द का जन्म नहीं हुआ था।

रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों से स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक काल में पंचायतों की महत्त्वपूर्ण स्थिति थी। इस काल में राष्ट्रीय जीवन इन विभिन्न स्वायत्त शासनों में अपने आप को अभिव्यक्त करता है। इस काल में स्वायत्त शासनों के माध्यम से वैदिक परंपराये तथा सामुदायिक संस्थाये काफी आगे बढ़ी। उत्तर वैदिक काल में ग्राम के प्रमुख को ग्रामिणी अथवा महत्तर के नाम से जाना जाता था।

उत्तर वैदिक काल के बाद बौद्ध काल में भी पंचायते ग्राम संगठन का एक मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण अंग थी। इस काल में पंचायतों के बारे में जातक कथाओं से पता चलता है। ग्राम सभा के कार्यों में न्याय करना, गाँव की आंतरिक सुरक्षा, सरकारी मकान, घाट, मन्दिर, तालाब, कुएँ बनवाना, कर वसूल करना तथा शिक्षा की व्यवस्था आदी करना शामिल था। ग्राम के शासक को भोजक कहा जाता था तथा ग्राम सभा की बैठक में गाँव के हर परिवार के सबसे बड़े वृद्ध भाग लिया करते थे।

मौर्य काल एवं गुप्त काल में पंचायती राज : – मौर्य काल में पंचायती की स्थानीय शासन एवं न्याय व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका थी। स्थानीय विवादों का निर्णय ग्राम वृद्धों एवं सामंतों द्वारा किया जाता था। यदि ग्राम वृद्ध या सामंत किसी भी विवादास्पद विषय पर निर्णय लेने में मतभेद रखते थे तो उस स्थान की जनता की अनुमति से वहाँ के धार्मिक पुरूष उस विषय पर निर्णय लेते थे अथवा मध्यस्थ को नियत करवाकर उससे निर्णय करवाया जाता था जो सभी को मान्य होता था।

गुप्त काल में हाँलाकि राजसाही का शासन था, फिर भी शासन का विकेन्द्रीकरण विभिन्न स्तरों पर किया गया था। ग्रामीण मामलों के प्रबंधन के लिए एक पद सोपानिक पंचायती व्यवस्था भी विद्यमान थी। गुप्त काल के बाद हूण, शक, मैत्रिक इत्यादी वंशों का शासन रहा। इन शासकों ने प्रशासनिक व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं किया। हर्षवर्द्धन के शासन काल में ग्राम के मुखिया का चुनाव होता था। ग्राम की प्रशासनिक गतिविधियाँ तथा आपराधिक स्थितियों के निराकरण के लिए 'अष्टकुल अधिकरण' नामक समिति होती थी। ग्राम का प्रभारी अधिकारी ग्राम अक्षपटलक कहलाता था।

भारत में व्यवस्थित तरीके से सर्वप्रथम पंचायती राज प्रणाली को लागू करने का श्रेय चोल शासकों को जाता है। चोल अभिलेखों में स्थानीय स्वशासन की मौलिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रशासनिक व्यवस्था को कई स्तरों में बाँटा गया था। हर स्तर पर स्वशासन की संस्थाये थी। गाँव की संस्था को कोट्टम, प्रांत की संस्था को मंडल, प्रदेश की सभा को नगस्तार तथा जिले (नाडू) में कार्यरत संस्था नट्टार कहलाती थी।

मुगल काल में पंचायती राज : – मुस्लिम शासकों ने पहले से चली आ रही स्थायी स्वशासन की इकाईयों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। मुगल साम्राज्य अनेक सरकारों तथा जिलों में बँटा हुआ था। छोटी शासन इकाई परगना कहलाती थी। परगने कई गाँवों में विभक्त थे। गाँव को अपने मामलों में काफी स्वायत्तता मिली हुई थी। अकबर के शासन काल में पंचायती राज संस्थाओं को नैतिक एवं प्रशासनिक सहयोग भी प्राप्त था। हाँलाकि मुगल काल में स्थानीय स्तर पर कई के न्यायायिक अधिकारी, जैसे– काजी, मीर, आदिल आदी हुआ करते थे, फिर भी ग्राम पंचायतों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। मुगल काल के समकालीन दक्षिण भारत में मराठा शासन व्यवस्था में भी ग्राम पंचायतों को काफी महत्त्व प्राप्त था।

ब्रिटिश राज में पंचायती राज व्यवस्था : – शासन काल के शुरूआती दिनों में पंचायती राज व्यवस्था को कमजोर करने का प्रयास किया गया क्योंकि अंग्रेजों का उद्धेश्य शोषण करना था। इसके लिए उन्होंने सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति करना शुरू कर दिया और पंचायतों के अधिकार इन्हीं कर्मचारियों को दिये जाने लगे। लॉर्ड कर्जन के शासन काल में पंचायती राज संस्थाओं पर सरकारी कर्मचारियों का पूर्णतः वर्चस्व स्थापित हो गया।

भारत में पंचायती राज संस्थाओं के अधिकार छीनने का कार्य 1773 ई० में वारेन हेस्टिंगस के शासन

काल में, रेग्युलेटिंग एक्ट के पास होने के बाद शुरू हुआ। गाँव में मालगुजारी वसूलने के लिए जमींदार नियुक्त किये गये। जिनका पंचायतों से कोई लेना देना नहीं होता था, बल्कि वे सरकार के प्रति जवाबदेह होते थे। इसके अलावा दीवानी एवं फौजदारी न्यायालयों की स्थापना के बाद तो पंचायतों का कार्यक्षेत्र और भी सिमट गया। लेकिन 1857 ई० में सरकारी स्वायत्तशासी निकायों का महत्त्व सरकार की समझ में आया और कुछ राज्यों में कोषों की स्थापना की गयी तथा ग्रामीण प्रसाशन को भू–राजस्व, शिक्षा एवं पथकर लगाने का अधिकार दिये गए। 1882 ई० में लॉर्ड रिपन ने ग्रामीण क्षेत्रों में बोर्ड अथवा मंडलों की स्थापना का सुझाव दिया। इसके बाद 1884 ई० में चेन्नई एवं बंगाल में यूनियन पंचायतों का गठन किया गया।

1907 ई० में अंग्रेजों ने शासन सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए शाही आयोग का गठन किया।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट में पंचायतों के गठन का सुझाव दिया। 1915 ई० की शासकीय रिर्पोट में भी पंचायतों को निश्चित कर लगाने की अनुमति देने की सिफारिश की गयी। 1919 ई० में मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुझावों के कारण भारत सरकार अधिनियम के पास होने के बाद पंचायतों की ओर कुछ और ध्यान दिया गया। भारत सरकार अधिनियिम 1919 में पंचायतों को केन्द्रीय सरकार के विषय के निकालकर प्रान्तीय सरकारों के विषय में शामिल कर दिया गया। इसके बाद 1920 ई० में मद्रास प्रान्त में पंचायत कानून बना। इसके अंतर्गत स्थानीय संस्थाओं तथा पंचायतों को कई तरह के अधिकार प्रदान किए गये लेकिन 1930 ई० में पंचायतों के अधिकारों में पुनः कटौती की जाने लगी। हाँलाकि 1935 ई० के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट में जनता के शासन की कई माँगे मान ली गयी थी। परन्तु पंचायतों की दशा में कोई खास सुधार नहीं हुआ। 1942 ई० के विद्रोही दौड़ में सारे अधिकार व्यवहार्यतः विभागीय अधिकारियों को सौंप दिये गये। उसके बाद 1941 ई० में पंचायतों के लिए अलग से विधान बनाने का एक दस्तावेज तैयार किया गया। इसी दस्तावेज के आध ार पर 1946 ई० में ग्राम पंचायत अधिनियम बनाया गया।

अंग्रेजों के शासन काल में विभिन्न प्रांतों के लिए समय–समय पर ग्राम पंचायत संबंधी जो अधिनियम पारित किये गये वे इस प्रकार है– बंगाल में स्थानीय सरकार अधिनियम 1919, मद्रास में स्थानीय सरकार अधिनियम 1920, बंबई ग्राम पंचायत अधिनियम 1920, उत्तर प्रदेश पंचायत अधिनियम 1920, बिहार सरकार अधिनियम 1920, सेन्ट्रल प्रोविन्स पंचायत अधिनियम 1920, पंजाब पंचायत अधिनियम 1922, असम स्वसरकार अधिनियम 1925, मैसूर ग्राम पंचायत अधिनियम 1928।

स्वतंत्रता के बाद प्रगति : – भारत में प्राचीन काल से ही हम देखते हैं कि पंचायते किसी न किसी रूप में विद्यमान थी तथा यहाँ के गाँव के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था में पंचायतों की भूमिका हमेशा से ही महत्त्वपूर्ण रही है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद भारत के लिए जो नया संविधान बना, उसमें पंचायतों के लिए कोई प्रावधान नहीं था। जबकि राज्य व्यवस्था के संदर्भ में गाँधीजी ने यह स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि निचले स्तर पर पंचायतों को रखना हीं होगा। अन्यथा उच्च तथा मध्य का तंत्र लड़खड़ा कर गिर जाएगा। गाँधीजी का मानना था कि स्वराज का अर्थ कुछ लोगों के हाथों में नहीं बल्कि बहुमत के हाथों में शक्ति प्रदान करना होता है जिससे वह शासक को नियंत्रित कर सके। अर्थात सत्ता का विकेन्द्रीकरण हीं भारत के तंत्र का समाधान है। अतः गाँवों को आत्म निर्भर व स्वावलम्बी बनाने के लिए गाँधी जी ने पंचायतों को आधारशिला माना तथा पंचायतों की वैचारिक अवधारणा के रूप में 'ग्राम गणतंत्र' पर बल दिया।

पंचायत पर गाँधी जी के विचार का संविधान निर्माण के क्रम में संविधान सभा में विशद चर्चा हुई थी और पंचायतों की सार्थकता को व्यापक समर्थन मिला था। इसके बाद संविधान सभा के सदस्य के० संथानम ने पंचायतों के प्रावधान हेतू एक संशोधन प्रस्तुत किया जिसके आधार पर भारतीय संविधान के राज्य नीति निदेशक तत्व के अनुच्छेद 40 में पंचायतों के संबंध में एक संक्षिप्त उल्लेख को शामिल किया गया। उल्लेखनीय है कि राज्य के निति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों पर कोई संवैधानिक वाध्यता नहीं है। पंचायतों के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 40 में जिस संक्षिप्त प्रावधान का उल्लेख है उसके अनुसार राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो। इसी

आधार पर आगे के वर्षों में बलवंत राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति इत्यादी का गठन किया गया तथा 64 वाँ संविधान संसोधन विधेयक 1989 एवं 73 वाँ संविधान संसोधन विधेयक 1992 के आधार पर लोकतांत्रिक ढाँचे में एक नए युग का सूत्रपात करते हुए पंचायती राज की त्रिस्तरीय प्रणाली लागू की गयी और ग्राम, प्रखंड एवं जिला स्तर पर इनका गठन कर इन्हें विशेषाधिकार दिया गया।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि पंचायती राज व्यवस्था जिसकी वैचारिक अवधारणा 'स्वशासन' तथा आधार शासन व्यवस्था में आम आदमी की भागीदारी होती है, का प्रादुर्भाव इसी भारतीय धरा पर हुई थी तथा यह हमारे प्राचीनम सभ्यता संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। विभिन्न काल तंत्रों में इसके स्वरूप में क्रमिक विकास होता रहा है तथा अपने वर्त्तमान आधस्वरूप में भी यह भारत के प्रजातंत्रीय पौधें के मजबूत जड़ के रूप में विद्यमान है।

संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली
2. महीपाल, पंचायती राज : अतीत, वर्त्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
3. के० सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
4. इम्तियाज अहमद, मध्यकालीन भारत : एक सर्वेक्षण, पटना विश्वविद्यालय
5. शर्मा, हरिश्चंद्र, भारत में स्थानीय शासन का इतिहास, कॉलेज बुक डिपो, 1997
6. ग्रोवर, बी० एल० तथा यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास
7. कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान : भारत का संविधान एवं संवैधानिक विधि
8. माहेश्वरी, श्रीराम, भारत में स्थानीय स्वशासन, नई दिल्ली, ओरिएन्ट लांग मैन
9. शर्मा, के० के०, भारत में पंचायती राज, विश्व भारती पब्लिकेशसन्स, कॉलेज बुक डिपो, नई दिल्ली, 2012

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

छायावादोत्तर काव्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन

रिपुंजय कुमार सिंह

पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

साहित्य अपने अजस्त्र धारा के प्रवाह में अनेक कालखण्डों को छिपाये हुए रहता है, जो न सिर्फ उस कालविशेष की सूचक होता है बल्कि साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक प्रायः सभी स्तरों पर साहित्य को परिपुष्ट करता है। कुछ ऐसे ही कालखण्ड को समेटे हुए जिस साहित्य की विधा का संज्ञान होता है वह है– 'छायावादोत्तरकाल'। यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस काल के काव्य–साहित्य में विविध प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। इसके मध्य का इतिहास अनेक वादों एवं धाराओं से होकर गुजरा है। कई प्रकार की जीवन–दृष्टि तथा काव्य की वस्तु और शिल्प से सम्बन्धित मान्यताएं उभर कर सामने आयी हैं। कहीं पर रोमानी भाव प्राधान्य है तो कहीं बौद्धिक यथार्थ से परिपूर्ण दृष्टि दिखाई पड़ती है। किसी धारा के प्रवाह में व्यक्तिगत अनुभूतियां सघनता को प्राप्त हैं, वही दूसरी तरफ सामाजिक अनुभूतियां घुली–मिली हैं।

छायावाद की जो अनुपम धारा छायावाद काल में अपने चरम सीमा पर थी, छायावाद का उद्‌भव 1920 के लगभग होता है, 1935–36 तक आते ही इनमें ऐसे तत्व आ जाते हैं जिनसे नई काव्य–प्रवृतियां उभरती हैं एवं 1936 के पश्चात् ही यह धारा क्रमशः आने वाली काव्य प्रवृत्तियों में तब्दील होने लगती हैं। इन कालखण्डों में राष्ट्रीय काव्यधारा उदीयमान होती है। अंग्रेजों के प्रति विरोध के भावों के वजह से देश की जनता में राष्ट्रीय स्तर पर जागरण एवं प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना हिलोरें लेने लगती हैं। राष्ट्रीय धारा के कवियों ने अपने गीतों के द्वारा जो वर्गगत भावों से भयभीत नही– एक तरफ इन्होंने देश की बिगड़ती व्यवस्था तथा कारुणिक परिस्थितियों का चित्रण किया वहीं दूसरी तरफ देश के सुनहरे अतीत को याद किया। इस प्रकार इन्होंने जनता को वर्तमान समय से परिचित कराया वहीं दूसरी ओर उनके नैराश्यपूर्ण जनजीवन को अतीत की झांकी दिखाकर मार्गदर्शन भी किया। ये कवि ही बाद में चलकर दो भागों में विभाजित हो गये। कुछ का विभाजन मानववादी रूप में तो कुछ वर्ग–भावना से आहत होकर प्रगतिवाद से जुड़ गये। माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर', एवं रांगेय राघव इस धारा के महत्वपूर्ण कवियों में आते हैं।

प्रगति की नवीन धारा में 'साकेत' और 'यशोधरा' से सम्पूर्ण साहित्य को गुंजायमान करने वाले कवि मैथिलीशरण गुप्त का नाम विशेष है। गुप्तजी भावुक कवि माने जाते हैं। उनकी यह भावुकता ही रचना को निर्वैयक्तिक बनाकर छोड़ती है। गुप्तजी हिन्दू राष्ट्रवाद से ओत–प्रोत सम्प्रदायिकता को स्थान न देकर गांधीवाद से युक्त राष्ट्रीयता को तरजीह देते हैं। इनके काव्य में नयी संभावनाओं का उन्मेष मिलता है। इन्होंने पंचवटी, भारत–भारती, अनघ, स्वदेश–संगीत, झंकार, मंगल घट के अलावा गुरुकुल, त्रिपथगा, हिन्दू, द्वापर जैसी रचनाएं अपने जीवन उत्कर्षकाल में लिखी हैं। भारत भारती से–

"उद्देश्य कविता का प्रमुख शृंगार रस ही हो गया।
उन्मत होकर मन हमारा अब उसी में खो गया।"[1]

वहीं दूसरी तरफ 'लक्ष्याबेध' शीर्षक के अन्तर्गत द्रौपदी के स्वयंवर में अर्जुन का आना एवं उनके रूप–जाल पर आसक्त होना दिखाया गया है–

"सज गई स्वयंवर राज सभा
नक्षत्रों की सी जगी प्रभा।
उन सब के बीच विकास युता
शशि सदृश्य सी द्रुपद सुता।"[2]

मैथिलीशरण गुप्त ने हर विषय को छुआ है। इन्होंने राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत होकर रचनाएं की हैं। कवि सिर्फ राष्ट्र के उत्थान की ही बात नहीं करते बल्कि विश्व कल्याण की भावना भी रखते हैं।

छायावादोत्तर काल के महत्वपूर्ण कवियों में रामधारी सिंह 'दिनकर' का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। वे सामाजिक चेतना के वाहक कवि हैं। इनके काव्य में प्रेम एवं ओज, सुन्दर एवं सत्य निवृत्ति और प्रवृत्ति तथा समाज एवं व्यक्ति अद्भुत समन्वय के साथ उपस्थित हुए हैं। अपने काव्य में वैयाक्तिकता पर उनका कथन हैं।

"संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मन मेरा भी चाहता था कि गर्जन तर्जन से दूर रहूं और केवल ऐसी कविताएं लिखूँ जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो। यही कारण था कि जिन दिनों हुंकार की कविताएं लिखी जा रही थी, उन्हीं दिनों मैं 'रसवन्ती' और द्वन्द्वगीत की भी रचना कर रहा था। अजब संयोग की बात है कि सन् 1936 में ही ये तीनों पुस्तकें एक वर्ष के भीतर प्रकाशित हो गयी और सुयश तो मुझे 'हुंकार' से ही मिला, किन्तु आत्मा मेरी अब भी 'रसवन्ती' में ही बसती है।"[3]

यदा–कदा खड्ग एवं तलवारों से अत्यन्त दूर होकर ये आत्मीय सौन्दर्य की ओर प्रेरित होते हैं। स्वच्छन्दता के मोह में दिनकर सामाजिकता में बंधी हुई डोर को तोड़ नहीं पाते हैं। 'रसवन्ती' में व्यक्तित्व की ऊहा–पोह में जाहिर की गई भावना है। वियोग उद्दीपन का एक नया स्वरूप दिखाई देता है–

"मुन्द गई पलकें, खुले जब कान
सज गया हरियालियों का ध्यान
मुंद गई पलकें कि जागी पीर
पीर बिछुड़ी चीज की तस्वीर"[4]

वहीं दूसरी तरफ इनके यहां प्रेम में भावुकता भी देखी जा सकती है–

"मैं अमित युगों से हेर रहा
देखी न कभी यह विमल कान्ति
ऐसी स्व पूर्ण यूं बंधी तरी
ऐसी अमेय निर्मोध शांति।
नम सदृश चतुर्दिक तुम्हें घेर
छा रहे प्रेम प्रभु निराकार
मैं समझ न पाई गूढ़ भेद
छा गया अगरु का अंधकार"[5]

प्रेम का रूप दिखाई देता है, जहाँ स्थूलता मिट जाती है। उत्तरार्द्ध में रचनाकार की दृष्टि लौकिक हो जाती है, यहाँ विद्यापति का प्रभाव दिखाई देता है। स्त्री–सौन्दर्य का सद्यस्नाता रूप वर्णित है–

"कढ़ी यमुना से कर तुम स्नान
पुलिन पर खड़ी हुई कच खोल
सिन्त कुन्तल से झरते देवि।
पिये हमने सीकर अनमोल।"[6]

राष्ट्रीय धारा के कवियों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम महत्वपूर्ण है। वे भावुक कवि हैं। इनका अन्तः स्थल बाह्य और आन्तरिक प्रवृत्ति से लगातार जूझता है। उनकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का पक्ष स्वच्छन्द है। अध्यात्म और प्रेम में भी कविताएं लिखी हैं। रचनाएं गूढ़ता से युक्त है। इनकी रचनाएं हैं– कुंकुम, उर्मिला, रश्मिरेखा, हम विषपायीजनमके। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार, **"कुंकुम में संग्रहित राष्ट्रीय आन्दोलन गांधीवाद और प्रगतिवाद से प्रभावित गीतों में उनका व्यक्तिवाद, दिनकर की तरह प्रगति के इतिहास की चेतना का विश्वास भरा गर्व स्फीत स्वर लेकर प्रकट हुआ है।"**[7]

श्रृंगारपरक गीतों में संयोग तथा वियोग दोनों ही तरह की रचना दिखाई देती है–

"रस फुहियांझगरी, गुजरियां, रस फुहिया झगरी
मेरे लगन सगन–गगन में बरबस लटि–लटि उभरि परी।"[8]

'खड़ी–बोली' के अस्तित्व में आने के बाद 1904–05 में जिन कविओं ने लिखना शुरू किया, उनमें माखनलाल चतुर्वेदी महत्वपूर्ण है। ये एक भारतीय आत्मा के रूप में जाने जाते हैं। इनका काव्य दो वर्गों में बँटा है। एक राष्ट्रीय काव्य एवं दूसरा इतर काव्य। इनकी रचनाओं में स्वच्छन्दतावाद के तत्व दिखाई देते हैं यथा– मानवीकरण सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना और कलापक्ष की लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, ध्वन्यात्मकता। 'मुझे तोड़ लेना वनमाली' जैसी कविता में अपनी बातों को प्रत्यक्ष तौर पर न कहकर पौराणिक संदर्भों की तरफ संकेतित करते हैं। 'हिमकिरीटनी जैसी कविता में विद्रोह एवं बलिदान के साथ स्वच्छन्दतावाद एवं कोमल प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। 'तुम्हारे बोल जैसी' कविता में धर्म पत्नी को स्मरण कर लिखा गया गीत है–

"तरुणाई के प्रथम प्रहर में जोड़ी टूट गयी" वहीं दूसरी तरफ प्रेम की अभिव्यक्ति में कवि अपना संतुलन खो बैठता है–

"जब से बने प्राण के बंधन
छूट गये गठबन्धन रानी
लिखने से पहले बन बैठी
मैं ही उनकी प्रथम कहानी
लोग कहे आंखे बहती है
उन्हें आंख में भरती हूॅ सखि
मैं अपने से डरती हूॅ सखि'।"[9]

छायावाद के विघटित होने पर कविता दो रास्तों पर चल पड़ी थी जहां एक ओर निराला और पन्त थे, जो सामाजिक बुराईयों को लेकर अपना काव्य रच रहे थें एवं वहीं दूसरी तरफ नरेन्द्र शर्मा एवं बच्चन ने व्यक्तिगत दर्द के गीत को गुनगुनाकर उस शैली का एक क्षेत्र विशेष में प्रयोग किया। वैयक्तिक कविता में व्यक्तिवादी दर्शन की प्रधानता है। छायावादोत्तर काल में हरिवंश राय बच्चन का नाम महत्वपूर्ण है। छायावाद एवं प्रगतिवाद के बीच में लिखना शुरू किया। इनकी कविता के आश्रय में ही व्यक्तिवाद का आगाज हुआ। इनकी रचनाओं पर खैय्याम की रूबाईयों का प्रभाव दिखाई देता है।

मानवीय भावनाओं के भी कवि माने जाते हैं। इनकी रचनाओं में स्वच्छन्दतावाद के तत्व दिखाई पड़ते हैं। इनके गीति काव्य में अनुभूतियों की एकरसता का सुन्दर विकास दिखाई देता हैं–

"दिन जल्दी जल्दी ढ़लता है।
हो न जाय न पथ में रात कही,
मंजिल भी तो है दूर नहीं
यह सोच थका दिन का पंछी भी जल्दी जल्दी चलता है
बच्चे प्रत्याशा में होंगे
नीड़ों से झांक रहे होंगे
यह स्थान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है।
मुझसे मिलने को कौन विकल?
मैं होऊँ किसके हित चंचल
यह प्रश्न शिथिल करता पद की भरता उर में विह्वलता है।
दिन धीरे–धीरे ढ़लता है।"[10]

व्यक्तिवादी गीतकारों की कोटि में प्रमुख नाम 'नरेन्द्र शर्मा' का है। ये सन् 1930 से काव्य रचना कर रहे थे, किन्तु बच्चन के साथ ने इन्हें इस धारा का कवि बनाया। मध्यवर्गीय संत्रास के भुक्त कवि हैं। कवि को सबसे अधिक ख्याति पूर्व की रचना 'पलाशवन' और 'प्रवासी के गीत' से मिली है। उनके संग्रहों में अतृप्ति का भाव दिखाई देता है। 'प्रवासी के गीत' में अधिकतर रचना सन् 1937 की है। एक रचना में रचनाकार प्रकृति का वर्णन करता है। प्रियतमा के मिलन के समय प्रकृति अपनी नई छटा बिखेरती है.....

'अल्हाद सिन्धु सा बने गगन,
तारक मीनों से तिरें नयन
फिर प्रणय पूर्णिमा भी उमड़े,
फैले अगजग ज्योत्सना अमोल।
जो मिल जाओ तुम चन्द्र मुखी।"[11]

छायावादोत्तर काल के कवियों में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का स्थान महत्वपूर्ण है। ये भावुक होने के साथ ही सौन्दर्य प्रिय कवि हैं। इनकी रचनाएं–अपराजिता, मधुलिका, यायावरी, करील मुख्य हैं। 'अपराजिता' संग्रह रचनाकार का वियोग से परिपूर्ण काव्य है। मधुलिका और अपराजिता में अनुभूति का स्तर एक ही है किन्तु अपराजिता में सघनता बढ़ जाती है। वैयक्तिकता एवं विद्रोह भी दिखाई देता है। ये रचना गीतो से लैस है–

"देख री–
"मधु के दिन आये"
"आयी मलय समीर रे"
"यह छलक रही क्यों बाधरी"।[12]

अंचल की काव्य साधना स्वच्छन्दतावादी भावनाओं से परिपूर्ण है, उनकी अनुभूति उनके युग से जुड़ी है और यही अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण तथ्यों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादोत्तर काल अपनी विविधता को समेटे हुए सम्पूर्णता का काल है, जो अपने कालखण्ड में अनेक महत्वपूर्ण रचनाकारों को

समेटे हुए है, जो प्रत्येक स्तर पर साहित्य में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने के साथ साहित्य को समृद्ध भी करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. भारत भारती–वर्तमान खण्ड–161.
2. गुप्त–जयभारत–लक्ष्य बेध– पृ0– 102.
3. दिनकर–'चक्रवाल' की भूमिका पृ0– 33.
4. रसवन्ती–पृ0–22 'दाह की कोयल'
5. वही–पृ0–32 'अगरू धूम'
6. वही पृ0–29
7. डॉ0 लक्ष्मी नारायण दूबे–बालकृष्णशर्मा 'नवीन' व्यक्तित्व एवं काव्य, पृ0– 150–151.
8. रश्मिरेखा– पृ0– 46.
9. हिमकिरीटनी–गीत सन् 1933 खांडवा में पृ0– 1.
10. निशा निमन्त्रण–पृ0– 25.
11. प्रवासी के गीत–पृ0– 24.
12. अपराजिता– 77, 79, 80.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में मध्यवर्ग

डॉ0 नृपेन्द्र नारायण सिंह

प्रवक्ता– माँ गुजराती पी0जी0 कॉलेज, बक्शा, जौनपुर

राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों के दबाव के अनुरूप मनुष्य की आकांक्षाएँ और संवेदनाएँ बदलती हैं। ये परस्पर पूरक भी हैं। मनुष्य के आन्तरिक, भौतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास के साथ नई स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। किसी बाह्य शक्ति अथवा सत्ता के अधीन रहने पर भी यह संभव हो जाता है। मनुष्य के क्रिया-कलापों से उनके विचारों और आकांक्षाओं को समझा जा सकता है। इन्हीं क्रिया-कलापों के तहत भी समाज में वर्ग विभाजन हुए हैं। इसके अलावा धर्म, समुदाय, रहन-सहन, काम, आर्थिक स्थिति, रंग आदि के आधार पर भी मनुष्य को वर्गों में बाँटा गया है। जैसे वैदिक युग के वर्ग विभाजन के बारे में रामविलास शर्मा ने कहा है, ''वैदिक युग में ही खेती का प्रसार होने लगा था और वर्णव्यवस्था का सूत्रपात हो चुका था। वैदिक जनों के संघ बनने लगे थे और प्रदेश-विशेष में रहने वाली जाति के रूप में परिवर्तित होने का समय आ रहा था। कृषि का प्रसार, वर्ण व्यवस्था और जाति का निर्माण ये तीनों काम एक ही साथ होते हैं।''[1]

प्राचीन व्यवस्था में एक ही वर्ग या वर्ण के अन्तर्गत भी समान ओहदेवालों के बीच ही मेलजोल होता था। यह विभाजन मुख्यतः आर्थिक या धार्मिक विचारों के आधार पर होता था। आर्थिक स्थिति के आधार पर विभाजित तीन वर्गों में उच्चवर्ग की आर्थिक स्थिति सुरक्षित है और निम्न वर्ग की कमज़ोर। लेकिन इन दोनों के बीच एक मध्यवर्ग जो सामाजिक एवं आर्थिक असुरक्षा के कारण कई प्रकार की समस्याओं में उलझा हुआ है।

हमारी अधिकांश साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ समाज के किसी वर्ग या समुदाय से सम्बद्ध रहती हैं। साहित्यकार अपने वर्ग से चिर-परिचित परिवेश से विषय को चुन लेता है, ''अपनी वर्ग स्थिति और चेतना के अनुरूप ही साहित्यकार अपने साहित्यिक विषयों का चुनाव करके उन्हें कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। साहित्यकार अपनी ऐतिहासिक सामाजिक आवश्यकता के अनुसार ही अपने विषय चुनता है। साहित्य सृजन का आधार, व्यक्तिगत होता है, परन्तु उसकी चेतना उस वर्ग में समाहित है जिसके भीतर कलाकार ने अनुभव प्राप्त किया है।''[2]

लेकिन साहित्य का किसी वर्ग में या एक समुदाय में सिमटे रहना उचित नहीं है। परिवेश से प्राप्त अनुभवों को अपनी कल्पना से मिलाकर उसे एक व्यापक परिप्रेक्ष्य पर प्रस्तुत करना असल में साहित्यकार का धर्म होना चाहिए। समाज और जीवन के व्यापक अध्ययन के लिए उसे भिन्न-भिन्न वर्गों में बाँट लेते हैं। सामाजिक परिवर्तन और यथार्थ, सांस्कृतिक चेतना तथा जनता के जीवन के हर्ष उमंग और दुख, इन सबका असर भिन्न-भिन्न समुदायों पर अलग-अलग होता है। राजनीतक चेतना में भी बदलाव होता है। वर्ग विभाजन की पृष्ठभूमि में ये सारी बातें आ जाती हैं। चाहे साहित्य हो या समाजशास्त्र, वर्ग विभाजन वहाँ के आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवेश के आधार पर ही होता है। आर्थिक स्थिति पर आधारित वर्ग विभाजन के बारे में मूलचन्द गौतम ने इस प्रकार लिखा है- ''आय, शिक्षा, व्यवसाय, रहन-सहन के स्तर आदि के सम्मिलित प्रभाव के आधार पर ही यह निर्णय किया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति समाज के किस वर्ग से संबद्ध है। इससे स्पष्ट है कि वर्ग और समाज का अभिन्न संबंध है।''[3]

मध्यवर्ग का उदय :

उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन अपनी जड़ें भारत में जमा चुका था। उनके संपर्क के कारण यहाँ अंग्रेज़ी शिक्षा, औद्योगीकरण आदि का प्रचार एवं प्रसार होने लगा। एक नयी संस्कृति से भारत की जनता परिचित होने लगी। धीरे-धीरे उन्हें अपनी संस्कृति तुछ महसूस होने लगी। ''अंग्रेज़ों के आने से पूर्व भारतीय समाज में आर्थिक रूप से दो वर्ग विद्यमान थे– उच्च एवं निम्न। अंग्रेज़ों की आर्थिक नीति तथा नए वैज्ञानिक आविष्कारों के आगमन तथा डाक, तार, बिजली, रेल आदि का आकर्षण एवं शहरों के औद्योगीकरण, शिक्षा के प्रचार और प्रसार से भारत की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ एक नवीन वर्ग-मध्यवर्ग-की नवीन चेतना दिखाई देने लगी।''[4]

जब से भारत में मध्यमवर्ग का उदय हुआ तब से उसका उत्तरोत्तर विकास भी होता रहा। अंग्रेज़ी शिक्षा ने आर्थिक ढाँचे के साथ-साथ उससे जुड़ी मध्यवर्गीय मानसिकता को भी बदल दिया था। अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति ने नव शिक्षित मध्यवर्ग को पैदा किया तो ब्रह्मसमाज, आर्य समाज जैसी संस्थाएँ इस मानसिकता को भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर ले गयी।

उन्नीसवीं शती के अंतिम दशक तक आते-आते मध्यवर्ग सभी दिशाओं में अपनी जड़ें जमा चुका था। उच्च मध्यवर्ग निम्न मध्यवर्ग जैसा विभाजन इसका प्रमाण है। नयी सामाजिक परिस्थिति के कारण एक नया बौद्धिक परिवेश भी उत्पन्न हुआ था। इस बौद्धिक परिवेश के बारे में नगेन्द्र ने इस प्रकार लिखा है, ''यह काल औद्योगीकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता से संबद्ध है, जिससे नवीन आशाएँ उभरीं और भविष्य का नया स्वप्न देखा जाने लगा। देश, धर्म, राष्ट्र, ईश्वर आदि की नयी-नयी व्याख्याएँ की जाने लगीं।''[5] सभी जगह इस वातावरण का प्रभाव पड़ने लगा। उसके साथ मध्यवर्गीय चिंतन पद्धति का प्रचार भी होने लगा। इस तरह समाज में मध्यवर्ग यंत्र के अनिवार्य पुर्जे के समान जम गया। नयी सभ्यता के विकास के साथ औपनिवेशिक ताकतों को जड़ें जमाना आसान कार्य हो गया। हमारा समाज एक बाज़ार बन गया और मध्यवर्ग में देशी, व्यापारी और बाबू लोगों की निजी विशेषताएँ प्रकट होने लगी, ''औपनिवेशिक व्यवस्था आने से जो एक नया वर्ग-मध्यवर्ग-प्रकाश में आ रहा था, उसकी रूप-रेखाएँ स्पष्ट होती जा रही थी। इस वर्ग के दो छोर थे- देशी व्यापारी और बाबू लोग।''[6]

मार्क्स के अनुसार समाज में तीन वर्ग हैं पहला है शोषक वर्ग अथवा बुजुर्आ वर्ग। दूसरा है शोषित वर्ग। पर इनके बीच से एक व्यापार संस्कृति में क्रय-विक्रय के लिए मध्यम वर्ग की अनिवार्यता थी। ऑक्सफोर्ड इलस्ट्रेटड डिक्शनरी में मध्यवर्ग की परिभाषा इस प्रकार दिया गया है, ''मध्यम वर्ग समाज के उच्च और निम्न श्रेणी के बीच का वर्ग है जिसमें व्यावसायिक, व्यापारिक अथवा क्रय-विक्रय करने वाले लोग सम्मिलित हैं। उद्योग-धन्धों को चलाने में मध्यवर्ग समर्थ नहीं है। चेम्बर्स डिक्शनरी के अनुसार मध्यम वर्ग में वे सभी व्यक्ति आ जाते हैं जो आभिजात्य वर्ग और श्रमिक वर्ग के मध्य होते हैं। इससे ज़ाहिर होता है कि ये लोग उतना गरीब नहीं हैं, ''वस्तुतः मध्यवर्ग पूँजीपति तथा मज़दूर वर्ग के बीच का वर्ग है जो न तो अधिक धनवान है कि उद्योगों को चला सके, न इतना गरीब है कि पेट भरना मुश्किल हो। मध्यवर्ग का उद्‌भव सीधे औद्योगिक क्रांतियों से जुड़ा हुआ है जिन्होंने विश्व की अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव डाला।''[7] इस तरह पता चलता है कि समाज में मध्यवर्ग का अस्तित्व महत्वपूर्ण है। इनका उत्तरोत्तर विकास भी हो रहा है। विज्ञान तथा तकनीकी के विकास के साथ सामाजिक जीवन जटिल हो गए। इस जटिल व्यवस्था में कई तरह से विचार-विमर्श करने वाले मध्यवर्ग-नौकरी पेशा वर्ग, शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग, क्लर्क और निम्न मध्यवर्ग के साधारण लोग आदि कई रूपों में समाज में विद्यमान है।

मध्यवर्गीय मानसिकता

अपने क्रियाकलापों और विचारों के आधार पर मध्यवर्ग की प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जा सकता है। आत्मसंघर्ष, प्रदर्शनप्रियता (दिखावटीपन), अहंग्रस्त मानसिकता (व्यक्तिवादी चिंतन), विसंगतिबोध, महत्वाकांक्षा, समझौता आदि मध्यवर्ग में दिखाई पड़ने वाली प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। विदेशी शिक्षा तथा औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरीकरण की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ने लगी। इसके साथ यंत्र सभ्यता का विकास भी हुआ। वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति ने मानव-मानव के बीच विभाजन की रेखाएँ खींच ली है। मध्यम वर्ग जो विशेषतः बुद्धिप्रधान वर्ग माना जाता था वे ही सामाजिक क्रांति के प्रायः समस्त विचारों के सर्जक थे। मनुष्य की बुद्धि में कार्य और कारण के विश्लेषण के साथ अपने जीवनानुभवों का विश्लेषण भी होता है। इस प्रकार का विचार-विमर्श बुद्धिप्रधान वर्गों में अधिक होता है। कभी-कभी ऐसे विचारों के फलस्वरूप व्यक्ति भीषण मानसिक संघर्षों से गुजरता है। व्यक्ति के मन में होने वाले विचार-विमर्श कभी-कभी उनके अतियथार्थवादी अनुभवों से उद्‌भूत होते हैं।

उनके चिंतन में ही नहीं, यहाँ तक उनके स्वप्न में भी हमेशा द्वन्द्व बना रहता है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन की अदम्य इच्छा के बावजूद प्रत्यक्ष क्रांति के लिए वे तैयार नहीं होते। सभी विचार आत्मसंघर्ष बनकर दब जाते हैं। शासन-व्यवस्था, आचार-विचार, आर्थिक असमानता आदि बातें भी मध्यवर्ग के मन में आत्मसंघर्ष पैदा करती हैं। इनके मन में उच्चवर्ग में मिल जाने की इच्छा जाग उठती है। इसके कारण बाह्य आचरणों में वे हमेशा वास्तविक स्थिति से बढ़कर प्रदर्शन करने लगते हैं। उच्चवर्ग की जैसी सुविधाएँ प्राप्त करने के चक्कर में वे हमेशा आर्थिक संकट से जूझते रहते हैं। असफलताओं के अवसर पर भी वे अपने को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाना चाहते हैं। प्रदर्शनप्रियता के कारण वे अपने कमरे पुस्तकों से सजाते हैं। बड़ी-बड़ी चर्चाओं में भाग लेते भी हैं। हमेशा अपनी वेश-भूषा और बाह्य आचरणों के बारे में सोचते रहते हैं।

प्रायः इनमें ऊँचे बौद्धिक स्तर के लोग होते हैं। वैयक्तिक अधिकार भावना रखने के साथ-साथ ये लोग मन और मस्तिष्क पर अर्जित आदर्शों और मूल्यों के बारे में अपने ढंग की व्याख्या देते रहते हैं। कला और संस्कृति के क्षेत्र में इनकी चिन्तन पद्धतियों का प्रभाव अधिक है। उच्च वर्ग भी इनके विचारों की प्रशंसा करते हैं। मध्यवर्ग के मन में जो संघर्ष होता है उसको अहम समझौते के जरिए कला और संस्कृति के रूप में अभिव्यक्त करते हैं, ''कलाओं और बौद्धिक अनुशासनों अर्थात् संस्कृति से जुड़े मूल्यों का क्षेत्र उच्चवर्ग या मध्यवर्ग के विचरण के लिए छोड़ दिया गया है।''[8] लेकिन इसका व्यावहारिक पक्ष हमेशा उल्टा होता है अर्थात् ये लोग मूल्यों के संरक्षण में असफल निकलते हैं। मध्यवर्ग में एक ऐसा अहं उत्पन्न होता है कि वे उदात्त मूल्यों को ग्रहण कर चुके हैं और समाज का सांस्कृतिक नेतृत्व संभालने में सक्षम हैं। इसलिए इस क्षेत्र में उनकी अहंग्रस्त मानसिकता अथवा व्यक्तिवादी चिन्तन ही काम करती है। रिश्तों से कटे व्यक्ति भी अहंग्रस्त और व्यक्तिवादी बन जाता है, जैसे, ''औपनिवेशिक व्यवस्था व्यक्ति और समाज के बीच की खाई को हमेशा और चौड़ा करती जाती है और दोनों ही एक-दूसरे को अपरिचित या प्रायः शत्रुता की दृष्टि से देखते हैं। व्यक्ति का ध्वस्त आत्मविश्वास अहं बनता जाता है और विकासमान समाज की धारा में वह द्वीप की तरह कटकर ठूँठ सा खड़ा रहता है।''[9] इस तरह व्यक्ति संकुचित विचारवाला हो जाता है।

भारत में शासन करने के लिए अंग्रेज़ों ने बाबू वर्ग का निर्माण किया था। व्यापार आदि कार्यों में ये लोग अंग्रेज़ों की सहायता करते थे। लेकिन अंग्रेज़ी शासन से मुक्त होने के बाद ये लोग नये सिरे से सोचने लगे। भारत की आबादी, बेकारी, असंतुष्टि, शहरीकरण आदि से प्रभावित होकर मध्यवर्गीय मानसिकता विकसित हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो विद्रूपताएँ फैल गईं उनमें यह वर्ग एक प्रकार के विसंगति बोध से पीड़ित दिखाई देता है। नये परिवेश में यह वर्ग देश का भविष्य, आर्थिक नीति, शिक्षा, राजनीति, धर्म, एकता आदि कई मुद्दों पर विचार-विमर्श कर रहा है। इन सबमें इस वर्ग ने विसंगतियाँ ही पायी हैं।

मध्यवर्ग हमेशा अपनी महत्वाकांक्षा के कारण नये-नये विचारों की चमक-दमक में कूद पड़ता है। युवकों में नौकरी पाने की इच्छा के साथ-साथ संपूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन लाने की इच्छा भी है। लेकिन विसंगतिपूर्ण वातावरण में ये दोनों इच्छाएँ दो विरोधी धरातल के सिद्ध होती हैं और इनकी महत्वाकांक्षा टूट जाती है। महत्वाकांक्षा के कारण ही यह वर्ग आर्थिक उन्नति पाने के साथ-साथ उच्चवर्ग में मिल जाना भी चाहता है। बुद्धिजीवी की अर्जित ज्ञान और आर्थिक स्थिति दो भिन्न ध्रुवों पर खड़ी हो जाती है। धन के प्रति मोह ज्ञान द्वारा दबाया नहीं जा सकता, ''मध्यवर्ग में अपना अस्तित्व बनाये रखने का संघर्ष भयानक है। इस वर्ग के पास विशिष्टता का ढोंग है, संपन्नता का दिखावा है। प्रदर्शन और महत्वाकांक्षी जीवन के कारण ही यह वर्ग सदा ही आर्थिक संघर्ष में पिसता रहा है.....।''[10] यह स्वाभाविक है कि कुछ लोग परिस्थिति का शिकार बन जाते हैं तथा कुछ लोग व्यवस्था से विद्रोह करने के लिए तैयार हो जाते हैं और एक वर्ग है जो परिस्थितियों से समझौता करने के लिए तैयार होता है। योरोप के मजदूरों के लिए मार्क्स ने जो सिद्धान्त बनाया था दुनिया भर में उसका प्रचार तो खूब हो चुका है लेकिन उसकी जड़ें समाज से गहराई में जम नहीं पायीं, क्योंकि हर कहीं मजदूर पूँजीपति बनना चाहता है। ऐसा भी देख जाता है कि मजदूरों के बीच में जो एकता है वह स्थाई नहीं है। मध्यवर्ग साम्राज्यवाद की भीषणता को समझ लेता है और उसके खिलाफ संघर्ष करना भी चाहता है। लेकिन उनके अन्तर्मन में साम्राज्यवाद की ओर आकर्षण है। इसलिए वे सुविधावादी उच्चवर्ग के साथ समझौता करने से भी हिचकते नहीं। इस प्रकार मध्यवर्ग एक दुविधात्मक चारित्रिक विशेषतावाला वर्ग है।

इसके अन्तःसंघर्ष एवं जीवन यथार्थों का चित्रण श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में हुआ है। यह वर्ग तथा उसका जीवन शुक्ल जी के लिए चिर-परिचित है।

आत्मसंघर्ष

श्रीलाल शुक्ल का पहला उपन्यास ''सूनी घाटी का सूरज'' का नायक है रामदास। रामदास के मन में विद्या अर्जित करने की अदम्य इच्छा है। वह इस लक्ष्य को लेकर अकेले अग्रसर होता है और कामयाब भी। कामयाबी तक पहुंचने के बीच जो भी बाधाएँ उपस्थित हुई हैं उन सबको दूर करने का निर्णय भी वह लेता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही उसका मन संघर्षयुक्त बन जाता है। शायद यही वह क्षण होगा जहाँ से मध्यवर्गीय मानसिकता उसके मन में फूट निकलती है। समय के साथ चलकर सुविधाओं को अपनाने का प्रयास रामदास ने नहीं किया था क्योंकि गाँव में भी रामदास शोषण के शिकार थे और शहर में भी। गाँव में जमींदार शोषण करते थे तो शहर में विश्वविद्यालय के अध्यापक। रामदास उन परिस्थितियों से भी गुजरा था जहाँ परिवेश के साथ समझौता करने के लिए कई अवसर थे। जैसे ठाकुर राजेश्वर सिंह के साथ रहते समय वहाँ शहरी माहौल था। ठाकुर अपनी बेटी की शादी रामदास से करवाना चाहते थे। लेकिन उनसे समझौता करके उनकी बेटी से शादी करना वह पसंद नहीं करता था। परिस्थितियों के यथार्थ ने रामदास को प्रताड़ित रखा था। रामदास अपने शोधकार्य में किसानों की समस्याओं का प्रतिपादन करता है, ''मैं एक प्रताड़ित आत्मा के अनुभवों को अपनी शिक्षा अपने तर्क और अपने अनुभवों के सहारे किसानों के कर्ज की समस्या में उतार रहा हूँ।''[11]

पढ़ाई के बीच उसके जीवन में संघर्ष के अनेक अवसर आ चुके थे। जैसे उसका दोस्त रामानुज ने उससे कहा था, ''और ये सब सुधार की बातें कि पढ़े-लिखे लोग देहातों में जाएँ। खेती करें। शिक्षा-प्रचार करें। यह सब आकर्षक प्रोग्राम है सुनने में अच्छा लगता है। मीलों तक फैली हुई हरियाली में, प्रकृति की गोद में पलते हुए, नए जीवन का, नई चेतना का संदेशवाहक बना जाय, यह सब मीठी कल्पनाएँ हैं।''[12] अपने दोस्तों से ऐसी-ऐसी घटनाओं के प्रभाव से रामदास सोचता है कि जीवन में मौलिकता का कोई अर्थ नहीं है। यद्यपि वह रिसर्च कर रहा है फिर भी इस प्रकार सोचता है, ''अभी तक नहीं जान पाया कि मैंने एम0ए0 क्यों पास किया। रिसर्च क्यों कर रहा हूँ। विश्वविद्यालय में अध्यापक क्यों होना चाहता हूँ?''[13] इस संघर्ष के बीच ही वह उत्तरप्रदेश के किसानों की समस्या पर शोध कर रहा है। इस तरह आगे का रास्ता चुनने में उसे सोचना तो पड़ता है। लेकिन अपनी समस्या का समाधान ढूँढ़ निकालने में वह असमर्थ निकलता है। क्योंकि वह हर कहीं शोषण के शिकार रह चुका है। इसलिए अस्तित्व संकट से जूझते हुए अन्त में वह गाँव वापस आने का निर्णय लेता है।

नवयुवकों में निराशा और कुंठा के व्यापने के कारणों पर भी इस उपन्यास में अच्छी तरह विचार किया गया है। चिन्तन-मनन के बाद सारे संबंधों का अर्थ वह समझ लेता है। सत्य प्रकाश मिश्र ने इसके बारे में इस प्रकार कहा है, ''सूनी घाटी का सूरज'' में रामदास का अच्छाई पर से विश्वास उठ जाता है। जारेश्वर बाबू और सुरेन्द्रप्रताप के पात्रों को पढ़कर उसे सभी संबंध स्वार्थ संबंध प्रतीत होते हैं। चेतुओं का स्नेह ही उसे अपना लगता है। उसका उनके पास लौटना विकल्पहीनता के भी कारण और अपनी किंचित आस्था के विनाश के कारण भी है, इसे ही रामदास सिन्ड्रोम कहा जा सकता है।''[14]

''पहला पड़ाव'' में आज की व्यवस्था के बीच पिसनेवाली जिस मध्यवर्गीय जिन्दगी का जो चित्रण किया गया है वह रोचक ही नहीं बल्कि हृदय पर आघात पहुँचाने वाला भी है। उसमें समकालीन दूषित राजनीति और उसके प्रतिनिधि पात्रों के असली स्वरूप को भी उभारा गया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र संतोषकुमार सारे यथार्थों से टकराता तो है पर निस्संग बने बैठा हुआ है। इसमें कोई शक नहीं है कि वह मध्यवर्गीय मानसिकता से युक्त युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहा है। अपने भाग्य से लड़ते-लड़ते वह अकर्मण्य बन जाता है। वह किस प्रकार सामाजिक तथा आर्थिक अन्तर्विरोधों की भूल-भुलैये में फँसा हुआ है इसका परिचय शुक्लजी ने यों दिया है- ''नकल के सहारे ही सही, राजनीतिशास्त्र में एम0ए0 करके जो टेढ़ी-मेढ़ी राहें दिमाग में खुल रही हैं, और फिर आपस में एक-दूसरे को काट रही हैं इन पर पहले ही न जाने कितना सोचा जा चुका है, कितना लिखा गया है, मुझे कुछ पता नहीं। किताबों और लेखकों के जो नाम सुन रखे थे, वे भी मुझे भूले जा रहे हैं। एक बार उन्हें ही समझ सकूँ तो शायद इन भूलभुलैयों से बाहर निकलने का कोई दरवाजा खुले।''[15] इससे स्पष्ट है कि शिक्षित युवक किस हद तक संघर्षों का सामना कर रहा है।

शिक्षा ने ही उसे एक ऐसे जाल के अन्दर फँसा दिया था। अब वह इससे बाहर निकलने के लिए रास्ता तलाशता रहता है। क्योंकि जमाना इतना बदल गया है जहाँ ''चोरी करना गुनाह नहीं है.....चोरी करने वालों को देखने पर सज़ा भुगतना पड़ता है।''[16] उपन्यास के आरंभिक पृष्ठों में संतोषकुमार रेलगाड़ी के बारे में इस प्रकार कहता है- ''रेलगाड़ी चलता फिरता भारतीय गाँव है। गुंडागर्दी भारतीय सभ्यता में इस तरह चिपके हुए है कि उसे अलग बयान करने की जरूरत नहीं है। ऐसी स्थिति में सौंदर्य अन्य स्थापित मूल्यों पर विश्वास रखना अनुचित सा लगता है। कभी इसके अन्तर में फँसकर वह सोचता है कि क्या वह भी शोषकों के साथ ही है?

''पहला पड़ाव'' उपन्यास का नायक एक ओर परिवेश की अमानवीयता के कारण पीड़ित है तो दूसरी ओर पूँजीपति बनने के मोह से वंचित भी है। सारे द्वन्द्वों में उलझकर वह अंत तक अपने आप पर व्यंग्य करता रहा है और उसमें ही आश्वासन ढूँढ़ लेता है। संतोषकुमार के मन में, ''नेता के हत्यारे को सज़ा दिलाने की उलझन, 'इंजीनियर साहब को नीचा दिखाने की उलझन, परमात्मा जी को खींचकर अपने मज़दूर आन्दोलन में लाने की उलझन, फिर अपने दोस्त प्रेमवल्लभ का टेटुआ दबाकर उससे यूनियन का रुपया वसूलने की, विधायक निवास छोड़कर अपने रहने की कोई जगह खोजने का उलझन आदि के साथ पृष्ठभूमि में गाँव, घर की सभी उलझनें' भी हैं।''[17] ऐसी परिस्थिति में द्वन्द्व अनिवार्य है। उससे बाहर निकलने का रास्ता सत्ते की ही तरह हर किसी को अपने ढंग से निर्धारित करना है। यही है मध्यवर्ग की अनिवार्य त्रासदी। जब वह अपने आपको पहचानता है तब उसके मन में एक प्रकार का भय उत्पन्न होता है। उसे लगता है कि इस संघर्ष से मुक्त होना असंभव है।

''राग दरबारी'' के रंगनाथ में भारत के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आत्मसंघर्ष उभर आया है। राजनैतिक दृष्टि से आधुनिक काल मोहभंग का है। सोये हुए बुद्धिजीवी वर्ग की चेतना को इसमें अभिव्यक्ति दी गयी है। उनका अस्तित्व सारे द्वन्द्वों में पड़कर संकटमय स्थिति में पहुँच गया है। भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, शोषण आदि के सामने हमारे समाजवादी आदर्श निष्प्रभ हो चुके हैं। आदर्श और नैतिक मूल्यों के पतन के कारण युवा वर्ग परेशान है, ''वह देश पच्चानवें प्रतिशत बुद्धिजीवियों में था जिनकी बुद्धि उनको आत्मतोष देती है, उन्हें बहस करने की तमीज़ सिखाती है, दूसरों को क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, इस पर उनसे भाषण कराती है और न करने के मामले में कुछ उनकी भी जिम्मेदारी है- इस बेहूदा विचार को उनसे कोसों दूर रखती है।''[18]

पढ़ाई के बाद युवकों का यही हाल है। उच्च पदों पर पहुँचकर कुछ लोग ''राग-विराग'' के शंकरलाल की तरह हो जाते हैं। शंकर ने भी जब जब आगे पढ़ने की कोशिश की तब-तब उसे अपना अतीत याद आया था। लेकिन यह द्वन्द्व धीरे-धीरे हट जाता है और बड़ा वैज्ञानिक बन जाता है। पहले उसके मन में जो द्वन्द्व था उसे व्यक्त करने के लिए शुक्लजी ने सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता को उद्धृत किया है- ''जब जब सर उठाया, मेरा सर अपनी ही चौखट से टकराया।''[19] इस काव्यांश में गाँव की गरीबी का एहसास भी है और शंकर के मन की आगे बढ़ने की प्रबल इच्छा भी है। उच्च पद पर पहुँचने के बाद इस द्वन्द्व का विकास होता है और इसके फलस्वरूप शंकर के मन में व्यर्थताबोध पनपता है।

''मकान'' नामक उपन्यास के नारायण के मन में कई प्रकार के द्वन्द्व हैं। शहर की बाह्य-समृद्धि ने उसके भीतर को खालीपन से भर दिया है। लोगों की भीड़ बढ़ गई है। पर हर आदमी अकेला और अजनबी है। सजे-धजे दफ्तर में वह गहरे अन्तर्द्वन्द्व से दम-घुटकर जी रहा है। सिनेमाघर, रेलवे स्टेशन सब कुछ उसे अपने देश में अजनबी दीखते हैं। क्योंकि वह जानता है कि सब कुछ मूल्यों के खिलाफ चल रहे हैं। धीरे-धीरे उसका जीवन भी उस मूल्यहीनता के बहाव में मिल जाता है। परिवार के प्रति स्नेह, संगीत के प्रति आग्रह, महानगरीय परिवेश में सरकारी नौकरी आदि से उत्पन्न आत्म-संघर्ष उसे मथ रहा है। मध्यवर्ग- कभी काम वासना का उदात्तीकरण करता है। इसलिए नारायण अपनी शिष्याओं के साथ अनैतिक संबंध जोड़ने के लिए तैयार होता है। इसके बीच अपने परिवार की याद आने पर उसके मन में पश्चात्ताप उमड़ने लगता है।

पाँच बच्चों के पिता होने के बाद भी नारायण अपनी पुरानी शिष्या को देखकर उत्तेजित हो जाता है। इस तरह शहरी वातावरण में वह वासनाओं के पीछे भागता हुआ दिखाई दे रहा है। उसके मन में कलाकार की कोमलता और व्यावहारिक जगत की कठोरता का द्वन्द्व मचल रहा है। मकान की तलाश में भटकते समय उसका दोस्त उसे याद दिलाता है कि इस देश में लोग बेघर हैं, ठंड और गर्मी से मर रहे हैं, यहाँ मकान न मिलने की समस्या गौण है। ''मकान तो मिल जाएगा। पर

अकेले तुम्हें मिल जाने से क्या होगा? लोग तब भी झुग्गियों में पलते रहेंगे। फुटपाथों पर मरते रहेंगे।''[20] यही यथार्थ है। ऐसी बातों में उसे दिलचस्पी नहीं है। क्योंकि उसके मन में भूख से मरने की इच्छा नहीं है। बीवी और बच्चों के साथ चैन से रहना चाहता है। अब वह परिवार और संगीत से कटकर बिल्कुल जटिल बंधनों में पड़ा हुआ है। यह भी नारायण के आत्मसंघर्ष के लिए एक कारण है, जैसे, ''मेरी दुर्गति हो रही थी। बीवी-बच्चों से दूर पड़े हुए, सितार को कमरे के कोने में धूल और मकड़ियों के हवाले करके एक दिगन्तहीन धरातलहीन शून्यता ही मेरा जीवन बन गयी थी। इस शून्यता को तोड़ने के लिए कुछ भी काफी न था.....''[21]

जीवन का विकृत रूप देख नारायण चौंक जाता है। यह मध्यवर्गीय आत्मसंघर्ष का परिणाम ही है। वह मन ही मन संघर्ष को झेल लेता है। वह अपने अस्तित्व के संकट के प्रति सचेत भी है। पर यह बात स्पष्ट है कि समस्त सुखों को भोगने वाले अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने में असमर्थ हो जाते हैं। मध्यवर्गीय मन द्वन्द्वग्रस्त है। इसलिए वह अनावश्यक उलझनों में पड़ जाता है। अनैतिक काम भी करने लगते हैं। जैसे दूधनाथ सिंह ने लिखा है, ''जहाँ अपने लिए व्यभिचार की खुली छूट और फिर अपने ''बंजर'' तथाकथित ''बंजर जीवन'' में लौट जाने की अपरिमित स्वतंत्रता। छिछोरेपन और सात्विकता के बीच का यह अद्‌भुत तालमेल भारतीय मध्यवर्ग का सार तत्व है। कथाकार इसे कहीं भी छिपाता नहीं, बल्कि कुछ ज्यादा खोलकर ही रखता है।''[22]

''मकान'' उपन्यास में नारायण बनर्जी अपनी आजीविका के लिए महानगर में संघर्ष कर रहा है। इस कारण से उसके संगीत की उपासना में बाधा उपस्थित होती है। नारायण के रूप-वर्णन से ही उसके जीवन-संघर्ष का पता चलता है- ''यह एक कलाकार का प्रतिबिम्ब है जिसकी रोज़ी कला से नहीं चलती, इसलिए उसे क्लर्की करनी पड़ती है; एक गृहस्थ है जिसकी पत्नी और बच्चे दिल्ली में पड़े हैं और जो खुद मकान न मिलने के कारण एक होटल में पड़ा है और.....''[23] उसका जीवन-संघर्ष मार्मिक है। नगर निगम का अफसर चाहे तो उसे मकान दिला सकता है लेकिन वह ऐसा नहीं करता। अफसर ने ही मज़दूरों के आन्दोलन को तोड़ दिया था। उसके कारण नारायण का दोस्त अस्पताल में पड़ा हुआ है। नारायण अफसर के विरूद्ध प्रतिक्रिया जताना चाहता है। लेकिन जब अफसर बारिन-दा से मिलने के लिए अस्पताल आता है तब उसका संघर्ष व्यक्तिगत कमज़ोरी के कारण दब जाता है। वह कुछ कह नहीं पाता सिर्फ उठकर कमरे के बाहर चला जाता है। ''मुझे लगा कि कमरे से बाहर आते समय मेरी चाल में उपेक्षा और अकड़ की मात्रा काफी नहीं थी और शायद किसी ने मेरे वॉक-आउॅट पर ध्यान नहीं दिया है। इस विचार से मैं खिन्न हो गया।''[24] इस तरह नारायण में संघर्ष करने की शक्ति नहीं है। इसीलिए वह अपने जीवन-संघर्ष में लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता। बीच में ही शहर के एक दंगे में मारा जाता है।

''सीमाएँ टूटती हैं'' उपन्यास में एक परिवार अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहा है। पर उनको भी हार मानना पड़ता है। क्योंकि भारत की न्याय-व्यवस्था के सामने वे परास्त हो जाते हैं। दुर्गादास कत्ल के जुर्म में फँसा हुआ है। तमाम सबूत उसके खिलाफ हैं। दुर्गादास कहता है कि वह बेकसूर है। उसका बेटा वकील के पास पहुँचता है तो वकील कहता है कि अपील की सब स्टेजें खत्म हो जाने पर किसी दूसरे आदमी को पकड़कर उसी जुर्म में उसके खिलाफ नये सिरे से मुकदमा चलाने का कोई कानून नहीं है। ''राग दरबारी'' के रंगनाथ मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का प्रतिनिध है जो संघर्ष करना चाहता है लेकिन नाकामयाब होकर गाँव से लौट जाता है। अन्त में वह गधे की उपाधि प्राप्त कर लेता है, ''बाबू रंगनाथ तुम्हारे विचार बहुत ऊँचे हैं। पर कुल मिलाकर उससे यही साबित होता है कि तुम गधे हो।''[25] सामन्तों के सामने जो ऊँचे विचार लेकर संघर्ष करने के लिए तैयार होता है उसे इस तरह अपमानित होना पड़ता है।

''राग दरबारी'' में रंगनाथ को सारी समस्याओं के बीच खड़ा कर दिया गया है। उन्हें वह यथार्थ समझकर इन समस्याओं के बारे में मनन-चिंतन करता रहता है। तब उसे सारी विसंगतियाँ समझ में आ जाती है। इस तरह रंगनाथ के मन में वैचारिक संघर्ष पैदा हो जाता है। उसे ऐसा लगता है कि उसकी अस्मिता वहाँ नष्ट हो रही है, ''वह देश के पच्चानवें प्रतिशत बुद्धिजीवियों में था जिनकी बुद्धि उनको आत्मतोष देती है, उन्हें बहस करने की तमीज़ सिखाती है, दूसरों को क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, इस पर उनसे भाषण करवाती है और न करने के मामले में कुछ उनकी भी जिम्मेदारी है- इस बेहूदा विचार को उनसे कोसों दूर रखती है।''[26]

इस प्रकार बुद्धिजीवियों के विचार एक ओर आत्मसंघर्ष को पैदा करते हैं तो दूसरी ओर मनन-चिंतन के लिए विवश भी। कई तरह के तनाव संघर्ष और तर्क-वितर्क के कारण समाज के साथ इनका सामंजस्य हो पाना मुश्किल हो जाता है। इनकी मानसिकता अन्तरविरोधों का विराट क्षेत्र है। कभी-कभी यह वर्ग कुण्ठित एवं आस्थाहीन दीखता है। ''पहला पड़ाव'' का संतोषकुमार अपने संघर्ष के बारे में यों सोचता रहता है, ''जो सैकड़ों मील पीछे अपना घर छोड़कर दो जून की रोटी की तलाश में यहाँ आए हैं, उनका पहला और आखिरी लक्ष्य यही है कि उनकी रोटी सुरक्षित रहे। वे यहाँ अपने हक की लड़ाई लड़ने नहीं आए हैं। यह करने की उनमें चेतना होती तो वे शायद अपनी ही जमीन पर अपनी लड़ाई लड़ते, यहाँ आने की उन्हें ज़रूरत न पड़ती।''[27] संतोषकुमार ''राग दरबारी'' के रंगनाथ के समान बुद्धिजीवी तो नहीं हैं फिर भी वह अंत में व्यवस्था से टक्कर लेने का निर्णय लेता है।

''सूनी घाटी का सूरज'' में जिस आत्मसंघर्ष का चित्रण शुक्लजी ने किया है उसका विकसित रूप ''राग दरबारी'' में देख सकते हैं। ऐसा लगता है कि ''राग दरबारी'' का रंगनाथ, ''सूनी घाटी का सूरज'' के रामदास का दूसरा रूप है। ''रामदास'' का आदर्श अविश्वसनीय सा लगता है तो ग्रामीण परिवेश में रंगनाथ की स्थिति का चित्रण खरा उतरता है। ''रामदास'' गाँव की कष्टों को लेकर अधिक चिन्तित है। इसलिए वह गाँव लौट आता है। ''राग दरबारी'' की स्थिति इसके ठीक विपरीत है। रंगनाथ गाँव आता है और वहाँ की कष्टों को देखकर पलायन करता है। उसे चले जाने की एक ही जगह है, ''अगर तुम्हारी किस्मत ही फूटी हो और तुम्हें यहीं रहना पड़े तो अलग से अपनी एक हवाई दुनिया बना लो। उस दुनिया में रहो जिसमें बहुत-से बुद्धिजीवी आँख मूँदकर पड़े हैं। होटलों और क्लबों में, शराबखानों और कहवाघरों में, चण्डीगढ़-भोपाल, बंगलौर के नवनिर्मित भवनों में, पहाड़ी आरामगाहों में, जहाँ कभी न खतम होने वाले सेमिनार चल रहे हैं। विदेशी मदद से बने हुए नए-नए शोध संस्थानों में, जिनमें भारतीय प्रतिभा का निर्माण हो रहा है...।''[28]

रंगनाथ के मन में वैयक्तिक संघर्ष था। उसी तरह वैयक्तिक संघर्ष से पीड़ित पात्र हैं, ''राग विराग'' का शंकरलाल। वह एक डाक्टर है। फिर भी उसके गाँव का अतीत उसका पीछा कर रहा है। वर्तमान जीवन में उसे सुकन्या के साथ जीने की इच्छा है। पर सुकन्या उस डाक्टर की बेटी है जिसने उसके गरीब पिता को दवा देने से इनकार किया था। इस तरह शंकर लाल के मन में वर्तमान और अतीत का संघर्ष चल रहा है। वह वर्तमान जीवन में सुख सुविधाओं को अपनाना चाहता है। लेकिन अतीत की स्मृतियाँ उसे घेर लेती हैं।

गाँव भारत की आत्मा है। लेकिन गाँव की स्थिति उत्कंठाजनक हैं। इस उपन्यास में शिवपालगंज नामक एक गाँव के माध्यम से गाँव की इस उत्कंठाजनक स्थिति को शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया है। यहाँ शिवपालगंज स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र रंगनाथ नामक एक शिक्षित युवक है। वास्तव में एक शिक्षित व्यक्ति ही गाँव और शहर के बीच की कड़ी बन सकता है। एक शिक्षित व्यक्ति ही गाँववालों की स्थिति की जानकारी दे सकता है लेकिन यहाँ रंगनाथ स्थिति की निर्ममता से डरकर पलायन करता है। भारत में एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग है जो सामान्यतः मध्यवर्ग से उभरकर आए हैं। ये लोग सामाजिक और राजनीतिक बातों पर बहस करते हैं, लेकिन वास्तविकता से टकराने के बदले वही करते हैं जो रंगनाथ करता है। बहस करते हुए सुसंस्कृत अध्ययन-गृह में रह जाते हैं।

इस उपन्यास में वैद्यजी है जो गाँव का सारा कार्य संभालते हैं। आम आदमी का शोषण करने के लिए उसके साथ कई लोग हैं जो मध्यवर्ती का अथवा दलाल का काम करते हैं। वहाँ के शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं का भी कार्यभार वैद्यजी संभालते हैं। रंगनाथ उसके घर में ठहरे हुए हैं। रंगनाथ के लिए रहन-सहन का इन्तजाम भी वैद्यजी ने किया था। रंगनाथ वहाँ के जीवन के बारे में अध्ययन करता है। वहाँ वह जो कुछ देख लेता है वह चर्चाओं में उभरते गाँव का चित्र नहीं है। एक बात स्पष्ट है कि मध्यवर्गीय चेतना पूँजीवादी सभ्यता के अधीन है। लेकिन सर्वहारा वर्ग के बारे में सोचे बिना वे रह नहीं सकते। रंगनाथ की यही विवशता है। यही संघर्ष का मुख्य कारण भी है। शहर के बिल्कुल पास रहने के कारण गाँववाले भाषण सुनने के आदी बन चुके हैं। वे हमेशा अलग-अलग विषयों पर भाषण सुनते हैं। अशिक्षित होने के कारण भाषणों को सही अर्थ में लेने की समझ उनमें नहीं है। रंगनाथ जानता है कि ये भाषण इनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए सक्षम नहीं है। उपन्यास की सभी घटनाएँ छंगामल इंटर कॉलेज, को-आपरेटिव यूनियन ग्रामसभा आदि पर केन्द्रित है। गुंडागर्दी करके ही वैद्यजी कॉलेज का मैनेजर बनते हैं। समाज के इस तरह के लोग विचारवान व्यक्ति को धक्का पहुँचाते हैं और नौजवानों का

मज़ाक उड़ाते हैं। इसलिए रंगनाथ सोचता है, ''युवा वर्ग अपने प्रति ईमानदार है और समाज के प्रति कुछ नहीं है क्योंकि समाज कुछ नहीं है।''[29] स्वतंत्रता के बाद गाँव की आत्मा को नष्ट करने वाली प्रवृत्तियों के सामने युवा शक्ति क्षीण दिखाई देती है। भ्रष्टाचारी और अन्य राजनीतिक गतिविधियों के बीच मध्यवर्ग अपने आपको निरर्थक पाता है।

एक बार रुप्पन बाबू समझकर बेला नामक लड़की उसके बिस्तर पर आती है। उसके चौंककर आवाज लगाने से वह भाग जाती है। इस अवसर पर रंगनाथ अपने आपको सही अर्थ में गधा महसूस करता है। उसके आदर्शवाद ने उसे उस लड़की के साथ कुछ करने से रोका था। कमज़ोर होकर भी अपने आदर्श को वह नष्ट करना नहीं चाहता। इसलिए लेक्चरर का पद वह ठुकरा देता है। भारतीय बुद्धिजीवियों का अंत इस प्रकार द्वन्द्व में पड़कर जटिल परिस्थिति में ही होता है। जैसे शुक्लजी कहते हैं, ''इस बीमारी का अंत कॉफी हाऊस की बहसों में, शराब की बोतलों में, आवारा औरतों की बाहों में, सरकारी नौकरी में और कभी-कभी आत्महत्या में होता है।''[30]

प्रदर्शनप्रियता

मध्यवर्ग में प्रदर्शनप्रियता की प्रवृत्ति बहुत काफी दिखाई देती है। ''अज्ञातवास'' का रजनीकांत नौकरी से रिटायर होकर अपनी बेटी के साथ ज़िन्दगी बिता रहा है। उसके जीवन के आरंभिक काल में उसे किन्हीं कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा था। सिंचाई विभाग के सुप्रडिंग इंजीनियर बनने के बाद वह शहर आता है। शहर आने से पहले वह एक लड़की से प्यार करता था और गाँव का स्वच्छन्द वातावरण भी पसन्द करता था। पिता की ज़मींदारी में उसे विशेष रुचि नहीं थी। संपन्नता में प्रवेश करने के बाद वह शहर के नाटकीय जीवन से प्रभावित होता है। शहर में सब कुछ खरीदने लायक है यहाँ तक आत्मतोष और सामाजिक महत्व तक, ''कंपनियों के शेयर्स, बैंक के एकाउण्ट्स, चला चल संपत्ति, उसके प्रबन्धक, नाटकों के अभिनेताओं-सा रहन-सहन। कभी कला से प्रेम का दम्भ। कभी दरिद्रों और संस्थाओं की सहायता द्वारा खरीदा हुआ सस्ता आत्मतोष और सामाजिक महत्व।''[31] यद्यपि इस कथन में शहरी माहौल की वास्तविकता का चित्र उभर आया है तथापि उसके मन में ऐसी दिखावटी जीवन-शैली के प्रति जो लगाव उत्पन्न हुआ है उसकी ओर भी इशारा किया गया है।

नौकरी से निवृत्त होने के बाद, रजनीकांत और उनके तीन-चार दोस्त कभी-कभी शराब पीने और बातें करने के लिए इकट्ठे होते हैं। मिलकर बैठना, शराब पीना और ऊँची-ऊँची बातें करना ये सब वास्तव में उच्च मध्यवर्ग के ढोंग ही है। रजनीकांत की बेटी प्रभा इसके बारे में यों कहती है- ''ये लोग एक दूसरे के साथ मिलते ही पीने क्यों लगते हैं? बिना पिए हुए इन्हें आपस में बैठना पड़े तो ये क्या करेंगे?..... इतने दोस्त हैं, एक दूसरे को मन की स्वाभाविक अवस्था में सह क्यों नहीं पाते?..... आदत? सिद्धांत? शायद इन्होंने सिद्धांत बना लिया है कि जब तक खूब पी नहीं लेंगे, एक दूसरे से प्यार से बोलेंगे नहीं। एक दूसरे के दिमाग की तारीफ तभी करेंगे जब इनका दिमाग काम करना बन्द कर देगा।''[32] जब ये लोग मिल जुल जाते हैं तब वहाँ कला की नुमाइश होती है। गरीबों को मज़बूर वहाँ कला का प्रदर्शन करना पड़ता है। प्रभा के उपर्युक्त कथन से ही स्पष्ट है कि ऐसी सभाएँ उच्च मध्यवर्ग के ढोंग के सिवाय और कुछ नहीं है।

इस तरह पूँजीवादी जीवन की मर्यादाओं की ओर आकृष्ट होना मध्यवर्ग की मुख्य विशेषता है। अब वह जीवन के यथार्थ से बचने के लिए शराब का सहारा लेता है। सीता नामक स्त्री से उसका जो नाजायज संबंध है उसे न्यायसंगत बनाने के लिए झूठे कारण ढूँढ़ते हैं। शराब पीने के साथ-साथ ये लोग ग्राम गीत सुनने के लिए इच्छा प्रकट करते हैं। ग्राम गीत गाँव की आत्मा है, लेकिन गंगाधर एंड कंपनी के लिए यह पुरानी यादें ताज़ा करने का साधन है, ''ही लाइक्स इट बिकॉस- देर यू डिस्कोवर सम क्रूड मेटिरियल टू लुब्रिकेट योर इमोशनल मेकानिसम''[33] ऐसी बातें मध्यवर्ग के दिखावटीपन के लिए उदाहरण है। अंकिल विनायक प्रभा को सलाह देता है कि इस तरह बनावटी प्रेम दिखाना अच्छा नहीं है। ''गीतों का शौक है तो गानों पर गाओ। रेडियो पर विदेशी संगीत सुनो और विनायक कहता है कि प्रभा के पापा एक ''लवबिल हिपोक्राट''[34] है। सच्ची बात तो यह है कि ऐसे लोग गाँववालों की विषमताएँ सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। यहाँ यह सच्चाई खुल जाती है कि मनुष्य का लक्ष्य केवल पैसा कमाना मात्र है तो वे यन्त्र बन जाएँगे। जीवन के कोमल पक्ष से वे वंचित रह जाएँगे। ऐसे लोग गाँव के बाह्य सौंदर्य की झूठी प्रशंसा भी करते रहेंगे।

बुद्धिजीवी होने का नाटक करना भी मध्यवर्ग के ढोंग का एक विकृत रूप है। वे बात करने का ढंग भी बदल देते हैं। ''सीमाएँ टूटती हैं'' उपन्यास में इसके उदाहरण मिलते हैं, ''अचानक प्रोफेसर ने कहा- ''आप कुछ कह क्यों नहीं रही

हैं?'' ''क्या कहूँ'', ''कुछ भी।'' नयी नयी फिल्में मिस इंडिया कांटेस्ट, उषा अय्यर का गाना या जगजीत सिंह की गज़लें.....।[35]

मध्यवर्ग के लोग आर्थिक कमज़ोरी के कारण अभावग्रस्त ज़िन्दगी बिताते हैं। ''पहला पड़ाव'' का नायक संतोषकुमार का जीवन भी अभावग्रस्त है। वह मज़बूरन उच्चवर्ग की गिरफ्त में फँसा हुआ है। बड़े-बड़े लोगों के संपर्क में आकर वह कभी-कभी अपनी पोशाक के बारे में सोचता है। ''मेरी दाढी तीन दिन से नहीं बनी थी, बालों में धूल होगी ही। बनियान में छेद थे। पायजामा वही था जिसमें चार दिन से सो रहा था, पाँवों में रबर के घिसे हुए हवाई चप्पल। इस आत्मदर्शन के बाद मेरे लिए अब किसी भली जगह से सभ्यतापूर्ण स्वागत पाने की उम्मीद खत्म हो गई।''[36]

एक बार संतोष कुमार को अच्छा कपड़ा पहनने का अवसर मिला था, ''वेटिंग रूम के चौड़े शीशे में जब मैंने गले में टाई लटकाकर सूट डाला तो अपने लुभावने रूप पर खुद मेरा दिल हाय-हाय करने लगा।''[37] कभी-कभी दूसरों की नज़रों में अपने आपको घटिया समझने लगता है। कभी अपने लुभावने रूप पर गर्व करता है। एक मध्यवर्गीय व्यक्ति के मन में, खुद की और दूसरों की निगाहें इस प्रकार की उलझनें पैदा करती हैं। हैसियत के बारे में उसका विचार भी इस प्रकार बना है, ''क्वालिटी आफ लाइफ खुद एक मुहाविरा है और इसका दिलो-दिमाग नैतिकता और आदर्श से कोई वास्तव नहीं, मैं यह भी जानता हूँ। इसी से यह भी जानता हूँ कि जसोदा और दिवंगत नेता की क्वालिटी आफ लाइफ बिलकुल गलीज रही है और असली क्वालिटी अगर कहीं देखनी हो तो वह इंजीनियर साहब के यहाँ और थोड़ी-बहुत परमात्माजी के यहाँ देखी जा सकती है।''[38] अपनी प्रदर्शनप्रियता के कारण ''मकान'' उपन्यास का नारायण कभी इस प्रकार सोचता है कि उसका असली रूप बिल्कुल ठीक ठाक है। इस विचार के साथ ही वह रेडियो स्टेशन के ''लाइब्रेरियन'' के साथ बड़े होटल में खाना खाने के लिए आता है, ''एक रूपवती लड़की के साथ, जेब में तीन साढ़े तीन सौ रुपये डालकर प्रिंस जैसे होटल में आना और थोड़ी देर के लिए संपन्न पैटर्न का अभिनय करना वैसे भी अच्छा लगता है।''[39] इस तरह के प्रदर्शन के कारण वास्तव में उसके मन में हीनता ग्रंथि का विकास भी होता है। अर्थात् शहरी सभ्यता में या नये व्यावहारिक संबंधों के बीच वह अस्तित्व तथा सार्थकता की खोज में है। महानगर की सभ्यता में संतुलित रहने के लिए जैसे प्रदर्शन का ढोंग अनिवार्य बन जाता है। संस्कार और विश्वासों में भी यह देख सकते हैं। ऐसी सभ्यता में सुविधा और साधन की कमी नहीं है। लेकिन अपने अपको उसके अनुकूल न बना पाए तो एक हीनता ग्रन्थि का विकास हो जाता है। जैसे सिम्मी के साथ नारायण का प्रणय प्रसंग इन्हीं विचारों में उलझकर अधूरा रह जाता है। प्रणय क्रीडा के वक्त भी वह अपने रूप के बारे में सोचता रहता है। पर जीवन के साधारण सपने भी पूरा करने में असमर्थ पाता है, ''मैं पाँच वर्षों से एक नया कोट बनवाना चाह रहा हूँ इस असमर्थता के अनुभव ने हज़ारों असमर्थताओं के मुर्दों को जिलाकर मुझे किसी प्रेतलोक में पहुँचा दिया। मेरा एक हाथ सिम्मी के पीठ को घेरे हुए था। वहाँ उसकी रीढ़ की हड्डी मुझे चुभने लगी।''[40] इस प्रकार मध्यवर्ग अपने वास्तविक सूरत को छुपाकर रखता है और एक सजे सजाये रूप को बाहर प्रकट करता है। यह उसकी प्रदर्शनप्रियता का परिणाम है। शुक्ल जी के बहुत से पात्रों में यह प्रदर्शनप्रियता सक्रिय है।

अहंग्रस्त मानसिकता

सभ्यता के विकास के साथ-साथ व्यक्ति की मानसिकता भी संकुचित होती गयी। इसके वैयक्तिक संबंध टूट जाने लगे। व्यक्ति धीरे-धीरे समाज से अलग होने लगा अर्थात् उसमें अहंवादी मानसिकता पनपने लगी। हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी कथानायकों का विचार करते हुए राजेन्द्र यादव ने इस प्रकार कहा है, ''दोनों महायुद्धों के बीच का हिन्दी उपन्यास वास्तव में नायक के लिहाज से व्यक्ति के अंकन और अध्ययन तथा व्यक्तित्व के निर्माण और गठन के ह्रास और विकास की कहानी है। व्यक्तित्व युगानुरूप विकास करता जाता है और ''व्यक्ति'' संकुचित होकर समाज से कटता जाता है।'' नयी व्यवस्था से समझौता करके उद्योगशीलता बढ़ाने में लगा व्यक्ति कोमल संबंधों से दूर रहकर अपने में सिमट जाता है।

शुक्ल जी के ''मकान'' नामक उपन्यास का पात्र भी व्यक्तिवादी है। वह शहर की भयानक भीड़ में अकेला है। नारायण के स्वभाव में मध्यवर्ग के लगभग सारी विशेषताएँ देख सकते हैं। अलग-अलग संदर्भ में जीवन के विभिन्न मोड़ों पर ये विशेषताएँ प्रकट होती हैं। नारायण अपने विचारों की दुनिया में विचरण करता रहता है। जैसे श्यामा अपने पत्र में लिखती हैं, ''दो मिनट थमकर आपने पूछा ही नहीं कि श्यामा तू कैसी है; आपकी दुनिया में तो बस आप ही आप हैं।'' उसकी

दुनिया में कई तरह की जटिलताएँ पनपती हैं। बाहर की कठिनाइयाँ और अनैतिकताओं को देखकर उसका मन टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है।

''बिश्रामपुर का संत'' नामक उपन्यास का मुख्य पात्र कुँवर जयंतिप्रसाद सिंह राजनीतिक जीवन से निवृत्त होकर सर्वोदय के कार्यों में लगे हुए हैं। उपन्यासकार ने इनके जीवन के माध्यम से बुजुर्ग राजनीतिज्ञों के स्वार्थ और अहंग्रस्तता पर प्रकाश डाला है। कुछ नेताओं के मन में स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने का दंभ है। वे अवसरवादी राजनीति का हिस्सा बन गये। अपने अहं की तुष्टि के लिए वे भूमिसुधार आन्दोलन जैसे कार्यक्रमों में कूद पड़ते थे। कुँवर साहब भी ऐसे एक राजनीतिज्ञ थे। आर्थिक स्थिति के आधार पर वह उच्च वर्ग का प्रतिनिधि हैं। लेकिन विचारों के आधार पर उसे उच्च मध्यवर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। मध्यवर्गियों की अतृप्ति उसके मन में भी है। वयस्क होने के बाद भी वह सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में हर जगह घूमता है। इसी बीच भावात्मक संबंधों में एक नाटकीयता आ गयी है, ''क्या यह बुढ़ापे में दिमागी बरबादी के कारण हुआ है? पर ऐसा नहीं होना चाहिए क्योंकि प्रशासन में, अधिकार और सत्ता के लिए चलने वाले निरन्तर खेल में उनका दिमाग आज भी बखूबी चल रहा है। क्यों वह सिर्फ यहीं पर किसी गहरी संवेदना में उतरने से इनकार कर रहा है?'' शायद नैतिक अहंभाव के कारण है। शहर का दृश्य देखकर वह कहता है, ''मैं चबूतरे के एक कोने में बेंच पर योगियों की तरह शांत और निश्चल बैठा हूँ और भीतर मेरा केंचुए की तरह लगातार टेढ़ा-मेढ़ा हो रहा है।

''बिश्रामपुर का संत'' नामक उपन्यास का मुख्य पात्र कुँवर जयंतिप्रसाद सिंह राजनीतिक जीवन से निवृत्त होकर सर्वोदय के कार्यों में लगे हुए हैं। इसी बीच भावात्मक संबंधों में एक नाटकीयता आ गयी है, ''क्या यह बुढ़ापे में दिमागी बर्बाद के कारण हुआ है? पर ऐसा नहीं होना चाहिए क्योंकि प्रशासन में, अधिकार और सत्ता के लिए चलने वाले निरन्तर खेल में उनका दिमाग आज भी बखूबी चल रहा है। क्यों वह सिर्फ यहीं पर किसी गहरी संवेदना में उतरने से इनकार कर रहा है?'' शायद नैतिक अहंभाव के कारण भावों के प्रकट करने का तरीका भी बदल गया है। विश्रामपुर के आश्रम में जाकर बाकी ज़िन्दगी बिताने के उद्देश्य के पीछे वैराग्य नहीं है। दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए ही वह ऐसा करता है। वहाँ पहुँचकर भी कुँवर साहब एक ऑफिस का वातावरण बनाए रखने के इच्छुक है। जैसा उसका नौकर सोचता है, यह आश्रम राजभवन में तब्दील होने जा रहा है।

नारायण ने पिता से संगीत सीखा था। संगीत से जीविका चलाने की शिक्षा उसके पिता ने उसे नहीं दी थी। समकालीन संगीतज्ञों के लिए पिता के मुँह से मूर्ख गधा आदि विशेषण निकलते थे। इसलिए उसकी लोकप्रियता नष्ट हो गयी थी। सच्चे अर्थ में वह संगीत का उपासक था। यह आदर्शपूर्ण जीवन नारायण के वर्तमान जीवन में नहीं हो पाता क्योंकि वह खुद एक विसंगतिपूर्ण वातावरण में है। अपने पिता से प्राप्त शिक्षा ने नारायण को व्यावहारिक क्षेत्र में अकर्मण्य बना दिया था। अब उसको अपनी बीवी-बच्चों के बारे में भी सोचना है इसलिए नारायण का जीवन दफ्तर, परिवार, अस्पताल और संगीत का मिला जुला जटिल अनुभव बन जाता है।

नारायण मकान की तलाश में है। यह भी मध्यवर्ग की सबसे बड़ी समस्या है। उसका जीवन अभी तक सुरक्षित नहीं है। शादी करके पाँच बच्चों के पिता होने के बाद भी उसका जीवन विसंगतिपूर्ण है इसलिए जटिल भी है। एक धनी कलाकार होता तो इस तरह क्लर्क की नौकरी करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। एक जगह हम देख सकते हैं कि वह अपनी पत्नी का पत्र पढ़कर अपने परिवार के बारे में सोच रहा है। इस चरित्र के बारे में राजेश जोशी जी ने इस प्रकार लिखा है, ''कभी-कभी लगता है जैसे नारायण बनर्जी का पूरा चरित्र ही राग-विराग है। रात्रि के दूसरे पहर का राग। अक्सर वह कलाकार कम और लम्पट ज़्यादा लगता है। उसकी व्यावहारिक बुद्धि, उसका लालच, दारूखोरी और कामुकता उसके कलाकार को बड़ा नहीं होने देते एक चरित्र की तरह। उसका आभ्यन्तर कलाकार का आभ्यन्तर नहीं बन पाता। वह एक दियासलाई और आतिशबाजी की मिली-जुली दुकान ही ज़्यादा बन रहता है।'' यही नारायण के जीवन की विसंगति है।

एक बार नारायण को आश्रम में सितार बजाने के लिए बुलाया जाता है। नशे की हालत में वह सितार लेकर आश्रम की तरफ निकल पड़ता है। आश्रम में पहुँचने तक वह अपनी शिष्या श्यामा के बारे में सोचता रहा या उसे खुद नहीं पता था कि वह क्या सोच रहा है? उसे अपने चिन्तन में काबू पाने की क्षमता भी नहीं है। इस तरह की अराजकता मध्यवर्ग की

विशेषता है, ''मैं सोचता रहा कि मेरे गले का फैसला स्वाद उत्ताहर के कारण है या रम के कारण; और रम, उत्ताहट, कसैलापन, श्यामा, कल्पना, स्वप्न, यथार्थ आदि की विवेचना में उलझा रहा।'' उसका मन अनावश्यक कल्पनाओं से भरा है। जो आम ज़िन्दगी से बिल्कुल संगति नहीं बैठती।

मकान ही एक कड़ी है जो उसे कभी-कभी वर्तमान से बाँधती है। नारायण नशे की हालत में शहर में इधर-उधर घूमता है। इस बीच वह एक लड़के को शराब पिलाने के लिए पंच-सितारा होटल में ले आता है। आवारा लड़का होटल में घुसने से इनकार करता है। फिर नारायण नशे में बेहूदा हरकत करने लगता है। वहाँ वह अपने अफसर से मिलता है। यहाँ कल्पनाओं में डूबकर जीनेवाले मध्यवर्गीय व्यक्ति के पतन की चरम स्थिति हम देख सकते हैं। अफसर उससे कहता है कि उसे मकान एलाट कर दिया गया है। उसको अच्छा फ्लैट मिल गया है। लेकिन हास्टल का कमरा छोड़ने के लिए वह तैयार नहीं है। क्योंकि अब वह अपने दायित्व से भी मुँह मोड़ना चाहता है। विसंगतिपूर्ण परिवेश में उसके चिंतन और कर्म में अराजकता आ गयी है। यह बात उसके व्यावहारिक जगत से अलग कर देती है।

एक बार नेता नामक मज़दूर की हत्या होती है। नेता की पत्नी बेसहारा हो जाती है। इस वक्त संतोषकुमार उसे आश्वासन देने के लिए कहता है, ''परेशान न होओ जसोदा, मैं सारी बात का पता लगा लूँगा, और एक-एक से बदला लूँगा।'' कहने के बाद वह सोचने लगा, ''किस बात का बदला? किससे? सोचे बिना ही मैं इतनी बड़ी बात कह गया। क्यों? जो भी हो, यह कह चुकने पर मैंने अपने को अपने से बेहतर हालत में पाया।'' क्यों वह इस प्रकार के उलझनों में पड़ गया? इसका कारण यही है कि मध्यवर्ग जल्दी ही विसंगतियों का शिकार बन जाता है। यही उसकी नियति है। इस स्वभाव के कारण ही वह धन कमाने के लिए ज़मीन खरीदता है। लेकिन अंत में निराश होकर उसे धन कमाने का इरादा छोड़ना ही पड़ता है। क्योंकि वह उससे संबंधित विसंगतियों की भूलभुलैये से बाहर आना चाहता है।

मध्यवर्गीय चिंतन के फलस्वरूप परिवारों में भी विसंगतिपूर्ण परिस्थितियाँ जन्म लेती हैं। शुक्ल जी ने एक साधारण परिवार की समस्याओं को और उसके तनावपूर्ण परिवेश को ''सीमाएँ टूटती हैं'' नामक उपन्यास में चित्रित किया है। समस्याएँ गृहस्वामी दुर्गादास पर हत्या का आरोप लगाने के बाद शुरू होती है। परिवार पर कलंक लग चुका है इसलिए सब लोग तनावग्रस्त हैं। परिवार के अन्य सदस्य इस कलंक से बचना चाहते हैं। सच्चाई साबित करने का सारा प्रयास विफल हो जाता है। विमल दुर्गादास का दोस्त है। मध्यवर्ग की एक मुख्य प्रवृत्ति है अतृप्ति। चाँद के जीवन में भी अतृप्तियाँ हैं। इस वर्ग के लोग चंचल स्वभाव के होते हैं। एक निर्णय लेने से पहले कई बार सोचना पड़ता है। वे हमेशा अपनी भावुकता को सुरक्षित रखने के लिए जगह ढूँढ़ते रहते हैं। क्योंकि वे चारित्रिक संकट से व्यथित हैं। नये विचार, बाहरी दुनिया का प्रभाव आदि के कारण वह अपने अधूरेपन को मिटाने के लिए नए रिश्ते ढूँढ़ते रहते हैं। ''सीमाएँ टूटती हैं'' उपन्यास में चाँद अपनी विसंगतिपूर्ण परिस्थिति से बचने के लिए नया संबंध स्थापित करना चाहती है।

''अज्ञातवास'' में भी रजनीकांत कई विसंगतियों का शिकार है। गाँव में पले व्यक्ति के जीवन में अचानक शहरी सभ्यता का समावेश होता है तो वह मदिरा और स्त्री के चक्कर में अपनी बीवी को भूल जाता है। उसके जीवन में बेमेल तत्वों का भरमार है। परिवार का सुख उसे नहीं मिल रहा है। ''आज सब कुछ बदल चुका है। केवल उन वनों का लैंडस्केप सामने है।'' अर्थात् उसके जीवन में अब यथार्थ कुछ नहीं है। उसके अपने जीवन को ''पूँजी जीवन जीने लायक बना दिया था।'' जाहिर है कि मध्यवर्ग हमेशा जीवन की प्रतिकूलताओं से याने विसंगतियों से ग्रस्त दिखाई देता है। वह उससे उबरने के संघर्ष में सक्रिय नहीं हो पाता। क्योंकि एक आदमी का आलस्य उसके व्यक्तित्व के संरचनात्मक पक्ष के साथ जुड़ा रहता है। वह आरामतलब है। संघर्ष उसके जीवन में बहुत ही कम है।

महत्वाकांक्षा

उच्च मध्यवर्ग के करतूतों के बारे में ''राग विराग'' नामक उपन्यास में खूब विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है। एक मेडिकल विद्यार्थी रहते समय शंकर लाल अपने गाँव के प्रति चिंतित था। अपना अतीत उसे बार-बार याद आता है। सुकन्या उसे प्यार करती थी लेकिन अपने अतीत से वह डरती थी। अर्थात् शंकर लाल की अशिक्षित माँ, मज़दूर भाई और गरीबी के माहौल से वह डरती थी। शायद इसी कारण से सुकन्या सुवीर के साथ के अनमेल विवाह के लिए राज़ी हो गई थी।

बाद में वह संबंध टूट जाता है। लेकिन अंत में शंकर बहुत बड़ा डाक्टर और वैज्ञानिक बनता है तो सुकन्या उसके निकट आ जाती है और अब उसके मन में अतीत का भय नहीं है क्योंकि शंकर गाँव से बहुत दूर है। वह अब सभी सुख सुविधाओं का जीवन बिता रहा है। इस अवसर पर मौसी कहती है, ''यह सिर्फ सत्रह साल पहले की बात है- सदियों पहले की नहीं। और अब वह खाई कहाँ गई? परिवार की मुफलिसी और अशिक्षा का दूर-दूर तक पता नहीं। वह खुद विदेश में एक विख्यात वैज्ञानिक है। परिवार में तीन भतीजे हैं जो अफसर हैं या वकील हैं। ऐसे समाज में जिसमें मध्यवर्ग निरंतर फैल रहा हो और निचला वर्ग ऊपर की ओर बराबर बढ़ रहा हो, इस तरह का दुराग्रह आज तुम्हें बचकाना नहीं दीखता? ऐसा रोज़ हो रहा है। तेज़ी से बदलते हुए समाज में जो तुम्हें आज गाँव का खेतिहर मज़दूर जैसे दीखता है वही कल शहरी मध्यवर्ग का इज्जतदार सदस्य बन जाता है।

महत्वाकांक्षा ने शंकर को स्वार्थी बना दिया था और वह बहुत आगे बढ़ चुका है। सुकन्या के साथ जीने की इच्छा अब भी शंकर के मन में है। उसकी हैसियत बढ़ गयी है। इसलिए उसके आग्रह के सामने, सुकन्या के पिता जिनके कारण शंकर के पिता की मृत्यु हुई थी, अब एक बाधा नहीं है। सुकन्या को वह पुरानी जगह जाकर ढूँढ़ता है जहाँ वे मिला करते थे। वहाँ सब कुछ बदल गया है। महत्वाकांक्षा से उत्पन्न स्वार्थी वृत्तियों के कारण परिस्थिति भी बदल गयी है। वहाँ का वातावरण देखकर उसके मन में निराशा पनपती है। कुछ क्षणों के लिए वह कल्पना में डूब जाता है। धीरे-धीरे वह यथार्थ को पहचान लेता है कि सुकन्या को पुरानी जगह आकर ढूँढ़ना व्यर्थ है। शंकर की महत्वाकांक्षा टूट जाती है। इसलिए एक बूढ़े आदमी के पूछने पर वह यों कहता है कि- ''मच्छर मार रहे हैं साहब?'' वह उत्तर देता है- ''हाँ भाई, मेरा यही काम है।''

कुछ इसी प्रकार विश्रामपुर का संत में कुँवर साहब की महत्वाकांक्षा भी टूट जाती है। जीवन में उन्नति पाने के बाद उसे अपनी ज़िन्दगी निरर्थक सिद्ध होती है। आध्यात्मिक उन्नति पाने के लिए वह आश्रम में आया था। लेकिन पुरानी स्मृतियों के बोझ से वह परेशान है। उसे पता चलता है कि जिस स्त्री से उसने प्रेम निवेदन किया था, उसका बेटा विवेक भी उससे प्यार करता था, ''एक साथ उठती हुई परस्पर-विरोधी भावनाओं के बवंडर में उन्हें सिर्फ एक विचार डंक जैसा मार रहा था : मुझसे यह कैसी क्रूरता हुई।'' जीवन में ऊँचाईयों को छूने के प्रयासों के बीच उसने अपने बेटे के साथ भी अन्याय किया। इससे पहले ही वह कई बार व्यर्थताबोध से ग्रस्त है- उन्होंने हताश होकर सोचा- यह दीर्घ जीवन ही तो झगड़े की जड़ है। हर नया दिन नये अनुभवों के साथ खत्म होता है और स्मृतियों के अवांछित बोझ को लगातार वजनी बनाया जाता है जिसने स्मृतियाँ बनायी उसने इस बोझ को फेंकने के लिए कूड़ेदान का इंतज़ाम क्यों नहीं किया?

'अज्ञातवास' में भी रजनीकांत नामक पात्र इस तरह हताश होता है। शहरी मध्यवर्ग में मिलकर ऊँची हैसियत पाने की इच्छा उसके मन में थी। लेकिन उसे लगता है कि ऊपरी मेकअप के नीचे अर्जित ज्ञान और सुविधायें व्यर्थ है। इस प्रकार यह आकांक्षा को लेकर आगे बढ़े लगभग सभी पात्र पराजित होकर जीवन को निरर्थक पाते हैं। इसका कारण मध्यवर्ग की झूठी महत्वाकांक्षा है जिसे वह आसानी से प्राप्त करना चाहता है।

समझौता

मध्यवर्ग सुविधाभोगी है। इसलिए वह किसी भी प्रकार के समझौते के लिए तैयार हो जाता है। ''पहला पड़ाव'' उपन्यास के संतोषकुमार के मन में ज्यादा धन कमाने की इच्छा है। वह ढंग का रहन-सहन प्राप्त करना चाहता है। लेकिन वह रहन-सहन की सुविधा, सामाजिक हैसियत आदि को इकट्ठा करने में सर्वथा असमर्थ निकलता है। जैसे शिवकुमार मिश्र ने इसके संबंध में लिखा है, ''दूसरी तरफ वे लोग है, जो परिस्थितिवश इनकी गिरफ्त में फँसे हैं, या अपनी रोज़ी रोटी के लिए इन पर निर्भर है। इस निर्भरता से मुक्त होने की चाह रखते हुए भी ये इस कारण मुक्त नहीं हो पाते कि उनके पास जीविका का और कोई विकल्प नहीं है।'' सत्ते और वहाँ काम करने वालों अन्यों की निर्भरता इंजीनियर साहब जैसे ऐशो-आराम की ज़िन्दगी जीने वालों के प्रति है। इसलिए कभी-कभी इनके मन में इन लोगों के साथ समझौता करने के विचार भी आ जाते हैं। उनके लिए पैसा कमाने का यही एक रास्ता बचा है।

पूँजीवादी सभ्यता में सीधे सादे लोगों का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए परमात्मा जैसे ठेकेदारों का मूल्य बढ़ गया है, ''परमात्मा जी सचमुच परमात्मा हैं जो पापियों के बड़े-बड़े पाप क्षमा कर सकते हैं। यह न मैं कर सकता हूँ ना आप कर सकते हैं। आप करें तो आप भी मेरे लिए दूसरे परमात्मा है।'' जिस तरह संतोष कुमार ''परमात्मा'' की प्रशंसा करता है उसे

उसकी मज़बूरी ही कह सकते हैं। ''राग दरबारी'' का रंगनाथ भी मज़बूरन वैद्यजी के घर में ठहरे हुए हैं। ये लोग हालात से समझौता करने के लिए मज़बूर हैं। यद्यपि ये दोनों पात्र अंत में इनकी गिरफ्त से छूटकर बाहर आ जाते हैं फिर भी उन्हें कई बार समझौता करना भी पड़ा था। ''राग विराग'' उपन्यास में शंकरलाल अपनी उन्नति के लिए परिवेश से समझौता करता है। इस कारण गाँव के प्रति उसकी ममता नष्ट हो जाती है। इसके बारे में उसके दोस्त सूरज भाई ने इस प्रकार कहा है- लाट साहब आस्ट्रेलिया से लौटे तो दिल्ली आए, अहमदाबाद भी गए, पर मुँह दिखाने के लिए गाँव नहीं आए। फिर फुट से उड़कर पेरिस चले गए। समय की बात। आदमी बदल जाता है।

स्वार्थ के कारण अपनी परिस्थिति से समझौता करने का दृश्य राग दरबारी में भी है। इसका मुख्य पात्र रंगनाथ इस प्रकार की विद्रूप स्थितियों को सुधारने का निश्चय करने के बजाय कई बार उनसे समझौता करने का प्रयास ही करता है, ''रंगनाथ जैसे बुद्धिजीवी व्यक्ति, जो व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है, भ्रष्टाचार का विरोध करता है, वह भी व्यवस्था का पुर्जा बन जाता है। रंगनाथ उन बुद्धिजीवियों का प्रतीक है जो पुलिस को कायरतावश रिश्वत के दो रुपये देते हैं, वीर्य बढ़ाने के लिए भाँग पीते हैं और अंध-श्रद्धा के कारण बजरंग बली को प्रसन्न रखने के लिए युक्तियाँ सोचते हैं। समाज में व्याप्त अन्याय के विरूद्ध चिंतन तो करते हैं किन्तु विरोध नहीं कर पाते।'' यह बात स्पष्ट है कि हमारा शासन तंत्र भ्रष्ट है। रंगनाथ इससे अवगत व्यक्ति भी हैं। वैद्यजी एक स्वेच्छाचारी नेता है। एक शिक्षित व्यक्ति होने के बावजूद रंगनाथ वैद्यजी के घर में ठहरे हुए हैं। उनके बेटों के साथ घूमते भी हैं।

राजेन्द्र यादव ने श्रीलाल शुक्ल की एक कहानी के आधार पर मध्यवर्गीय समझौतावादी दृष्टिकोण पर यों कहा है, 1955 के आसपास श्रीलाल शुक्ल ने एक कहानी लिखी थी ''शहीद''। दो आदर्शवादी देशप्रेमी और उत्साही दोस्तों में से एक आंदोलन के दौरान गोली खाकर शहीद हो जाता है और दूसरा क्लर्की को समर्पित। शहीद दोनों होते हैं, लेकिन अपने भोले विश्वास में श्रीलाल ने शायद सोचा भी नहीं था कि इस शहीद का यह पहला समझौता नहीं था, सिलसिले की शुरूआत थी। इस तरह व्यवस्था से संघर्ष करते-करते उनसे समझौता करने की प्रवृत्ति आज भी ज़ारी है। इस प्रवृत्ति की ओर शुक्लजी ने कई बार संकेत भी किया है।

''पहला पड़ाव'' नामक उपन्यास में भी संतोषकुमार अपने परिवेश से समझौता करता है। संतोषकुमार भारतीय रेलगाड़ी में निरन्तर सफर करने वाला व्यक्ति है। वह जानता है कि रेल के डिब्बे में कौन डाका डालता है और कौन बिना टिकट के सफर करता है। वे उसके साथी हैं। उसे मालूम है कि मेडूराम नामक मज़दूर को उसके साथियों ने ही लूट लिया था। संतोषकुमार उनके लुटेरों के खिलाफ शिकायत करने के बदले उन्हें सजा दिलाने का सपना देखता है, ''वह अब क्या लौटेगा, पर कम-से-कम उत्तर प्रदेश में दुबारा तुम्हारे साथ ऐसा सलूक नहीं होगा'' कहते ही मैंने अपने शरीर को डाइरेक्टर जनरल आफ पुलिस उत्तर प्रदेश की चुस्त-दुरुस्त वर्दी में सजा हुआ पाया। बिना आँख मूँदे ही मैं अपने खयाली सिनेमा की वह रोल देखने लगा जिसमें मेरे इशारे पर निगोहाँ थाने की मुस्तैद पुलिस हरचरन और उसके साथियों को पेड़ की डाल से चमगादड़ जैसा लटकाकर उनसे रेल डकैती का पूरा ब्यौरा उगलवा रही है।

वह केवल इस प्रकार सपना देखता भर है। मन ही मन उसने इस प्रकार के अनैतिक कार्यों से समझौता कर लिया है। वह इन घटनाओं को ''व्यावहारिक जीवन दर्शन'' कहता है। इसलिए संतोषकुमार ने भी रोज़ी रोटी के लिए हमारे ''व्यावहारिक जीवन दर्शन'' अथवा डकैती से समझौता कर लिया है। संतोषकुमार का दोस्त प्रेमवल्लभ भी सीधा सादा इनसान नहीं है। सत्ते कहता है, ''वह अब दूसरी दुनिया का हो गया है, इसलिए हमारी दोस्ती लगभग ''प्रेमपूर्ण निसंगता'' के धरातल पर टिक गयी है।'' ऐसे लोगों के साथ दोस्ती करना भी एक प्रकार का समझौता है।

निष्कर्ष :

मध्यवर्ग को अपने जीवन में कई तरह की समस्याओं से निपटना पड़ता है। सामान्य व्यक्ति अपने समय की ज्वलन्त समस्याओं से उतना अवगत नहीं होता। पर मध्यवर्ग विसंगतियों में उलझने के लिए तैयार नहीं होता। निम्न मध्यवर्ग अपनी इच्छाओं को फल प्राप्ति तक ले जाने का प्रयत्न करता है साथ ही साथ समाज की कई समस्याओं को भावुकता के साथ ग्रहण भी कर लेता है। इनमें से कुछ लोग अपने को उच्चवर्ग के बराबर सिद्ध करने के लिए प्रयत्न करते हैं। वे मध्यवर्ग के हैं। वे अपनी महत्वाकांक्षाओं के टूटने पर कुंठाग्रस्त बन जाते हैं। कुछ लोग अपनी आर्थिक कठिनाइयों पर पर्दा डालकर दूसरों के

सामने अपने को ठोंक-ठाक प्रदर्शित करते हैं। जैसे ''पहला पड़ाव'' का संतोषकुमार करता है। ''अज्ञातवास'' उपन्यास में रजनीकांत एक झूठी दुनिया का सृजन करता है। वह हमेशा सुसज्जित वातावरण में बड़े-बड़े लोगों से विद्वतापूर्ण भाषण में लगे हुए हैं। वह गाँव वालों के प्रति सहानुभूति दिखाता है तो सिर्फ अपने आपको ऊँचा साबित करने के लिए। उसके साथी भी इसी तरह के लोग हैं। लेकिन ''सूनी घाटी का सूरज'' में रामदास के मन में कई प्रकार के संघर्ष होते हुए भी विद्या अर्जित करने के बाद वह अपने गाँव लौट जाता है। यह एक आदर्शात्मक परिणति है जो बहुत विरले ही दिखाई देती है। रामदास के संदर्भ में यह सच निकलता है कि उच्च आदर्शवाला व्यक्ति निचले स्तर से आता है।

राग दरबारी और बिश्रामपुर का संत में राजनीति से संबंधित समस्याओं का चित्रण हुआ है। राग दरबारी की समस्याएँ व्यक्ति विशेष को लेकर हैं। शिवपालगंज गाँव में रंगनाथ नामक एक शिक्षित युवक आता है। ऐसे पिछड़े इलाके में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की आकांक्षाओं तथा विचारों के विकास के लिए अवसर कम है। अतः उसे वहाँ ''गधे'' की उपाधि ही प्राप्त होती है। अंत में रंगनाथ वहाँ से भाग जाता है। अर्थात् पलायन करता है जो, मध्यवर्ग के व्यक्तित्व की विशेषता ही है। ''बिश्रामपुर का संत'' में उच्चवर्ग की महत्वाकांक्षाओं के चित्रण पर ही अधिक जोर दिया गया है। इसके मुख्य पात्र कुँवर साहब के अहंवादी विचार, अपनी महत्वाकांक्षा के टूटने के बाद उनकी आत्महत्या आदि मध्यवर्गीय मानसिकता का ही परिणाम है। ''राग विराग'' नामक उपन्यास का शंकरलाल निम्न वर्ग से ऊपर उठकर उच्चवर्ग में मिल जाता है। उनके इस क्रमिक विकास की कथा के बीच वह मध्यवर्गीय संघर्षों से भी गुज़रता है। इस प्रकार शुक्लजी के उपन्यासों में भारतीय समाज के मध्यवर्ग की मानसिकताओं का सही विश्लेषण हुआ है। मध्यवर्ग दरअसल प्रतिभावान है। वह हर समस्या का बौद्धिक विश्लेषण करता है, कारणों को ढूँढ़ निकालता है। पर व्यावहारिकता उसमें बहुत कम है। प्रतिकूल परिस्थितियों से सक्रिय संघर्ष करने की क्षमता उसमें नहीं है इसलिए वह अहंग्रस्त, पलायनवादी, समझौतावादी, सुविधाभोगी जैसे नपुंसक शब्दों के अधिकारी याने व्यंग्य का पात्र बन जाता है। मध्यवर्ग की इस सच्चाई का विस्तृत विश्लेषण श्रीलाल शुक्लजी के उपन्यासों में अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से हुआ है।

संदर्भ सूची :

1. रामविलास शर्मा- मानव सभ्यता का विकास, पृ0 77
2. कुँवरपाल सिंह- साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद (भूमिका), पृ0 13
3. मूलचन्द गौतम- हिन्दी नाटक की भूमिका- मध्यवर्ग के संदर्भ में, पृ0 23
4. (डॉ0 स्वर्णकांता तलवार- हिन्दी उपन्यास और नारी समस्याएँ, पृ0 13
5. नगेन्द्र- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 455
6. राजेन्द्र यादव- उपन्यास और संवेदना, पृ0 140
7. डॉ0 मूलचन्द्र गौतम- हिन्दी नाटक की भूमिका : मध्यवर्ग के संदर्भ में, पृ0 26
8. ज्योतिस्वरूप सक्सेना- एक सांस्कृतिक नीति के आयाम, पृ0 185
9. राजेन्द्र यादव- उपन्यास स्वरूप और संवेदना, पृ0 143
10. डॉ0 राधेश्याम वर्मा- हिन्दी व्यंग्य उपन्यास, पृ0 126
11. श्रीलाल शुक्ल- सूनी घाटी का सूरज, पृ0 148
12. श्रीलाल शुक्ल- सूनी घाटी का सूरज, पृ0 127
13. वही, पृ0 147
14. सत्यप्रकाश मिश्र- श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, सं0 अखिलेश, पृ0 38
15. (श्रीलाल शुक्ल- पहला पड़ाव)
16. (श्रीलाल शुक्ल- पहला पड़ाव, पृ0 242)
17. श्रीलाल शुक्ल- पहला पड़ाव, पृ0 209
18. श्रीलाल शुक्ल- राग दरबारी, पृ0 238
19. श्रीलाल शुक्ल-राग विराग, पृ0 24

20. श्रीलाल शुक्ल- मकान, पृ0 46-47
21. श्रीलाल शुक्ल- मकान, पृ0 49
22. दूधनाथ सिंह- श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ0 223
23. श्रीलाल शुक्ल- मकान, पृ0 19
24. श्रीलाल शुक्ल- मकान, पृ0 153
25. श्रीलाल शुक्ल- राग दरबारी, पृ0 329, 330
26. श्रीलाल शुक्ल- राग दरबारी, पृ0 238
27. श्रीलाल शुक्ल- राग दरबारी, पृ0 240
28. श्रीलाल शुक्ल- राग दरबारी, पृ0 327
29. श्रीलाल शुक्ल- राग दरबारी, पृ0 49
30. श्रीलाल शुक्ल- राग दरबारी, पृ0 167
31. (श्रीलाल शुक्ल- अज्ञातवास, पृ0)
32. (श्रीलाल शुक्ल- अज्ञातवास, पृ0 35)
33. श्रीलाल शुक्ल- अज्ञातवास, पृ0 72
34. वही, पृ0 73
35. श्रीलाल शुक्ल, सीमाएँ टूटती हैं, पृ0 181
36. श्रीलाल शुक्ल- पहला पड़ाव, पृ0 74
37. श्रीलाल शुक्ल- पहला पड़ाव, पृ0 190
38. वही, पृ0 191
39. श्रीलाल शुक्ल, मकान, पृ0 201
40. वही, पृ0 145

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

नागार्जुन के उपन्यासों की अंतर्वस्तु का सामान्य विवेचन

चंदा रानी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, भू.ना.मं.वि.वि. मधेपुरा

नागार्जुन हिन्दी के एक ऐसे बड़े उपन्यासकार हैं, जिनके उपन्यास–साहित्य की कथा–भूमि मुख्यतः स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर मिथिलांचल की ग्रामीण वास्तविकताओं, वहाँ के परिवेश, वहाँ की सभ्यता–संस्कृति आदि का यथार्थ दस्तावेज है। मिथिलांचल उनकी ऊर्जा का स्रोत ही नहीं, उनकी हर साँस में बसे हृदय की धड़कन भी है। मिथिलांचल एक जीवित शक्ति के रूप में उनके प्रथम प्रकाशित हिन्दी उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' (1948) से लेकर 'ज्योत्स्ना', पटना के रजत–जयंती–अंक (1975) में प्रकाशित अधूरे उपन्यास 'प्लास्टिक के लाल ग्लास' तक में गतिशील है। 1975 में कुलानंद मिश्र द्वारा अनूदित होकर हिन्दी में प्रकाशित होने के पूर्व नागार्जुन का 'पारो' तो 1946 में मूलतः मैथिली में ही छपा था। इसके उलट हिन्दी में प्रकाशित 'बलचनमा' (1952) और 'नई पौध' (1953) का पुनर्लेखन कर उन्होंने मैथिली में क्रमशः 1967 और 1954 में छपवाया था। मैथिली से हिन्दी और हिन्दी से मैथिली में उनकी इस तरह की खुली आवाजाही उनके द्वारा रचे गए तेरह उपन्यासों की अन्तर्वस्तु का सहज संकेत दे देती हैं।

'रतिनाथ की चाची' नागार्जुन का हिन्दी में पहला उपन्यास है। इस नायिका प्रधान उपन्यास के केन्द्र में विधवा युवती गौरी के लांछित और यातनापूर्ण जीवन की करूण कथा है। गौरी का जन्म संपन्न मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। देखने में सुन्दर और मधुर बोलनेवाली गौरी का विवाह कुलीन किंतु दरिद्र मैथिल ब्राह्मण परिवार के उम्र में अधिक, दमे के रोगी और सुस्त प्रकृति के वैद्यनाथ झा से हो जाता है। गौरी का दांपम्य जीवन कभी खुशहाल नहीं रहा। एक बेटी प्रतिभामा और एक बेटे उमानाथ को गौरी के मत्थे मढ़ कर वैद्यनाथ झा चल बसते हैं। स्वाभिमानी गौरी पिता के घर में रहने के बजाय पति के घर में रहना ही उचित समझती है। घर का कर्ज चुकाने के लिए गौरी सात सौ रूपए लेकर बेटी का विवाह नीच कुल में, मूर्ख और चालीस साल के एक अधेड़ ब्राह्मण के साथ कर देती है।

गौरी के गर्भवती होने की बात धीरे–धीरे पूरे शुभंकरपुर में फैल जाती है। स्त्री वर्ग में यह विषय खासा चर्चा का कारण बना हुआ है। स्वयं बाल–वैधव्य के बावजूद रंगरेलियाँ मनानेवाली दम्मोफूफी भी सहानुभूति के बहाने गौरी का उपहास उड़ाती है। सम्मानित व्यक्ति की बेटी होने के नाते उसकी घोषणा का विशेष महत्त्व होता है। वह कहती है ''सामाजिक बहिष्कार तो उमानाथ की माँ का हर हालत में करना ही पड़ेगा। और एक अजीब तर्क देती हुई कहती है कि, मर्दो का तो कोई ठिकाना है नहीं। अगर हम न रहें, तो संसार से आचार–विचार हट जाये अर्थात समाज की बुराइयों का ठेका नारी समाज ने ही ले रखा है।"[1]

'बलचनमा' नागार्जुन के उपन्यासों का कीर्तिस्तम्भ माना जाता है। इसका प्रकाशन 1952 में हुआ लेकिन इसकी घटना स्वतंत्रता के पूर्व की है। लगभग 1935–39 के बीच की। उस समय भारत में दो तरह की लड़ाई लड़ी जा रही थी। एक तो देश को आजाद कराने की लड़ाई अर्थात् राजनीतिक लड़ाई

तो, दूसरी ओर शोषकों एवं शोषितों के संघर्ष की लड़ाई अर्थात् सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हक की लड़ाई लड़ी जा रही थी।

दोस्त चुन्नी के कहने पर बलचनमा कांग्रेसी फूलबाबू से मदद माँगने जाता है, पर उसकी कोई मदद वे नहीं करते। वे कहते हैं : ''तुम्हारा तो आपस का झगड़ा है, बहिया–महतो का। इसका निपटारा भी तुम्हीं दोनों कर लोगे। इसमें मेरी कोई जरुरत नहीं। जा, जाकर अपने मालिक के ही पैर पकड़। वह तुझे माफ कर देंगे।''[13] बलचनमा का स्वराजी फूलबाबू से मोह भंग हो गया। उसे स्पष्ट दिखने लगा कि:''जैसे अँगरेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू–भैया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला–गुल्ला और झगड़ा–झंझट मचा रहे हैं उसी तरह जन–बनिहार, कुली–मजूर और बहिया– खबास लोगों को अपने हक के लिए बाबू–भैया से लड़ना पड़ेगा।''[2]

'नई पौध' अनमेल विवाह और नवयुवकों में आयी नई चेतना को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। पंडित खोंखाड़ झा की नतनी बिसेसरी देखने सुनने में काफी सुन्दर है। इस लगन में वह चौदहवाँ पार कर पंद्रहवें में प्रवेश कर चुकी है। इस परी का विवाह गाँव के लोगों के लिए जिज्ञासा का कारण बना हुआ है। बिसेसरी के नाना पंडित खोंखाड़ झा जितने ज्ञानी थे, उतने बड़े स्वार्थी भी थे। उन्हें बेटीबेचवा भी कहा जाता था। उन्होंने अपनी छः बेटियों को शादी के नाम पर नरक की भट्टी में झोककर काफी पैसे कमाये । अब बिसेसरी की बारी है। वह विधवा रामेश्वरी की एकमात्र संतान है। पितृकुल से बहिष्कृत होकर वह अपनी माँ के साथ नाना के यहाँ ही रहती है।

वर की खोज में पंडित अपने बेटे के साथ सौराठ मेले में पहुँचते हैं। वहाँ घटकराज मटुकी पाठक, जो पंडित के सहपाठी रहचुके हैं, की मदद से 60 वर्षीय चतुरानन चौधरी को बिसेसरी के वर हेतु उपयुक्त पात्र पाते हैं। नौ सौ रूपये लेकर पंडित यह शादी पक्की कर देते हैं। वर को साथ लेकर मंगल–पाठ करते हुए गाँव की ओर लौटते पंडित के साथ ही ''आखिर यह अफवाह उड़ ही गई कि आज संध्या काल खोंखा पंडित सौराठ से दूल्हा ला रहे हैं.....शकल सूरत तो उसकी ठीक है मगर उमर अधिक है...बहुत बड़ा काश्तकार है...सीतामढ़ी से पच्छिम कहीं उसका घर है...यह पाँचवीं बार दूल्हा बन रहा है..।''[3]

प्रकाशन वर्ष के हिसाब से **'बाबा बटेसरनाथ'** (1954) नागार्जुन का चौथा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। 'रतिनाथ की चाची' और 'बलचनमा' की अपेक्षा लेखक के राजनीतिक विचार–प्रकाशन की तीव्रता इसमें अधिक है। इच्छा:पधारी वटवृक्ष मानव का रुप धारण कर जैकिसुन को पिछले सौ वर्षों की एक–एक घटना को सिलसिलेवार सुनाता है। रूपउलीगाँव के बाहर चालू रास्ते पर यह वटवृक्ष आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

रूपउली गाँव का परिचय देने के बाद बाबा अपनी कहानी सुनाते हैं। ''आपबीती भी तो जगबीती का ही एक अंश होता है न? तो, ले, सुन ध्यान लगाकर!....''[4]

'वरूण के बेटे' (1957) मछुआरों के जीवन और उनके संघर्ष को केन्द्र में रखकर लिखा गया हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसके कथानक की शुरुआत पूस की हाड़ कपाने वाली ठंढ़ी रात में भोला और खुरखुन द्वारा पचास एकड़ में फैली तीन सौ साल पुराने गढ़पोखर में मछली मारते हुए होती है। गढ़पोखर से थोड़ी दूर पर ही मछुआरों की बस्ती मलाही–गोढ़ियारी है। मछली बेचने भोला और खुरखुन दरभंगा जाते हैं। गढ़पोखर की मछलियाँ अपने स्वाद के लिए प्रचलित थीं, इसलिए उसे बाजार में बिकते देर नहीं लगती है। पानी घटने के बाद मैदानी इलाकों का क्षेत्र छोटे मछुआरों के लिए विधाता का वरदान ही था। इससे छोटी–छोटी मौसमी मछलियाँ सैकड़ों मन निकलती थी। भोला जैसे

सुखी–सम्पन्न परिवार गाँव में दो–तीन ही थे। अधिकतर मछुआरों खुरखुन की तरह छोटी हैसियतवाले थे। वे छोटे–बड़े सभी जलाशयों में मछली पकड़ने काफी दूर निकल जाते थे। मछलियों के अलावे सिंघाड़ा, तालमखाना, कमल, पुरइन–पद्म के चिकने पत्ते आदि उनकी जीविका के आधार थे।

''इस उपन्यास की मुख्य समस्या मछुआ जीवन के अधिकारों की रक्षा से संबंधित है, किंतु मधुरी और मंगल की प्रेमकथा ने उस संघर्ष को अधिक रोचक और गंभीर बना दिया है। 'प्रेम' और 'संघर्ष' के इस दुहरे जीवन को पूरे कथानक में रस्सी की तरह बटकर एकाकार कर दिया गया है। घटनाएँ कथानक को एक निश्चित दिशा में विकसित करती हैं और एक दूसरे की पूरक भी हैं। वैसे भी नागार्जुन ने इस उपन्यास में घटनाओं की अपेक्षा परिस्थितियों के चित्रण पर अधिक ध्यान दिया है।''[5]

'दुखमोचन' आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र से जुड़े भारतभूषण अग्रवाल के आग्रह पर नागार्जून ने 1956 में लिखा था, जो पुस्तकाकार रुप में 1957 में प्रकाशित हुआ। गाँवों के समग्र विकास हेतु ग्रामीणों में भरी जानेवाली जागृति के उद्देश्य से लिखे गए इस उपन्यास का नायक दुखमोचन है, जो जीवनभर नये आदर्शो को प्रतिष्ठित करने की लड़ाई लड़ता है। ''उसे यह एहसास हो गया है कि वह अकेला सामाजिक कुरीतियों से नहीं लड़ सकता है। इसलिए वह धीरे–धीरे अपने गाँव में छोटे–छोटे कार्यक्रमों के जरिये लोगों के हृदय में अपनी जगह बना रहा है। लोगों को उत्साहित और एकजुट करने के लिए पहलकदमी करता है। नागार्जुन ने गाँव में बदलते राजनीतिक मूल्यों को जनहित में लगाने का सपना इस उपन्यास में देखा है।''[6]

'कुंभीपाक' (1960) औरतों के नारकीय जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। कथानक की शुरुआत उस तिमंजिले मकान से होती है, जिसमें छह परिवार रह रहे हैं। मकान ऐसा है कि पूस के महीने में धूप के दर्शन नहीं होते और सीढ़ियाँ ऐसी हैं कि छोटे–बड़े सभी गिरकर घायल होते रहते हैं। प्रतिभामा की बेटी अपर्णा भी सीढ़ियों से गिर जाती है। वैद्य को बुलाकर बच्ची का उपचार किया जाता है। सभी किरायेदार मकानमालिक को कोसते हैं। मुंशी मनबोधलाल किराया दोहन करने वाला मकानमालिक के साथ–साथ सफल दुकानदार भी है।

उम्मी पिछले सप्ताह आकर अपनी माँ को ले गई थी। निर्मला को अब बुआ के पास बैठना अच्छा लगता है। बुआ भुवन को एक और पत्र लिखना चाहती है। जबाब में उसका पत्र पाना चाहती है। बुआ सोचती है कि रंजना ने ही भुवन को पत्र लिखने से रोका होगा। बात भी यही थी। बुआ मन ही मन रंजना से कहती है– ''तुम काशी में हो, मैं यहाँ पटने में हूँ! कैसे समझ पाओगी मुझको? काश तुम मुझे देख पाती रंजना!''[7]

'हीरक जयंती' भारतीय राजनेताओं के सामाजिक–राजनीतिक पाखंडों को बेनकाब करनेवाला एक समर्थ उपन्यास है। उपन्यासकार के मन में इस उपन्यास के कथा–बीज वर्षों से चक्कर काट रहे थे। 1954 की एक कविता है 'अनुदान'। इस कविता को पढ़ने पर पता चलता है कि तब से ही इस कथावस्तु को वे सहेज रहे थे, जो पहले 1957 में 'हीरक जयन्ती' नामक एक कहानी के रुप में सामने आई। दरअसल यह उपन्यास का ही संक्षिप्त रुप था। 1962 में 'हीरक जयन्ती' एक उपन्यास के रुप में प्रकाशित हुआ। 1979 में 'अभिनन्दन' नाम से इसका नया संस्करण प्रकाशित हुआ। 'हीरक जयन्ती' और 'अभिनन्दन' दोनों उपन्यास अक्षरशः एक ही हैं।

हीरक जयंती का संक्षिप्त कथानक रोचकता और कौतूहल का सफल सामंजस्य लिए हुए अवसरवादी नेताओं के भ्रष्ट साधनों का लेखा–जोखा है, जिसकी शुरुआत केन्द्रीय सरकार के किसी हिंदी भाषी मिनिस्टर को कलकत्ते के सेठों द्वारा समर्पित भारी–भरकम अभिनंदन–ग्रंथ से होती है। उस समारोह में कवि मृगांक जी भी आमंत्रित हैं। समारोह इतना भव्य है कि मृगांकजी का मन मोहा गया।

मृगांकजी के मन में भी 71 वर्षीय बाबू नरपतनारायण सिंह की हीरक–जयंती का आयोजन कर उन्हें अभिनंदन ग्रंथ समर्पित करने की बात आयी। उन्हें लगा कि ललनजी, रामसागर और बाबू गोपीवल्लभ ठाकुर को यदि यह प्रस्ताव जँच जाय तो तीनों मिलकर इस योजना में पूरे इलाके को शामिल कर लेंगे। फिर नोटों की वर्षा होने लगेगी। ऐसा ही हुआ। प्रस्ताव के स्वीकृत होने पर मंजुमुखी देवी खुशी के मारे दुहरी हो जाती हैं।

पंद्रह सदस्योंवाली समारोह–समीति गठित की जाती है और उसमे यह निर्णय लिया जाता है:

1. ''कम से कम डेढ़ लाख रूपए वसूल किए जाएँ,
2. पचीस हजार रूपयों की लागत से एक अपूर्व कोटि का अभिनंदन ग्रंथ निकाला जाय।
3. बाबूजी को इस अवसर पर इकहत्तर हजार रूपयों की थैली दी जाए।
4. इस अवसर पर एक विराट सांस्कृतिक महोत्सव का आयोजन किया जाए।
5. समीति की शेष निधि का उपयोग बाबूजी के नाम पर खोली जानेवाली किसी लोकोपयोगी संस्था के संचालन में हो।''[8]

'उग्रतारा' (1963) नायिका प्रधान उपन्यास है। इसके कथानक की शुरूआत फेरीवाले की आवाज सुनकर वर्त्तन धोती उगनी द्वारा उसे देखे जाने से होती है। जाना–पहचाना चेहरा देखकर उगनी ठगी रह जाती है। वह चेहरा उसके प्रेमी कामेश्वर सिंह का था जो उसे ही ढूँढ़ता हुआ डिस्ट्रिक्ट जेल रतनपुर से सिपाही क्वार्टर तक आ पहुँचा है।

जेल के दूसरे मुहाने पर हनुमानजी का एक मंदिर है, जिसके बूढ़े पुजारी अपनी चतुराई के लिए आस–पड़ोस में जाने जाते हैं। पास ही एक कुआँ और छोटी फुलवाड़ी है, जहाँ उगनी और कामेश्वर आठ महीने बाद मिलते हैं। कामेश्वर लाचार उगनी के अधेड़ भभीखन सिंह से शादी करने को बहुत गलत नहीं मानता है। किंतु अब कामेश्वर उसे शीघ्र ही इस नरक की जिन्दगी से निकाल लेगा।

कभी कामेश्वर धर्मशाला में रहा करता था। शादी के बाद ही पत्नी टाइफाइड की शिकार हो गई थी। मैट्रिक फेल होने के बाद कामेश्वर ने खेती कर बाप–दादों की जिम्मेवारी के निर्वहन का निश्चय किया। उसके पास डेढ़ सौर बीघे जमीन, कई बगीचे, दो बड़े–बड़े पोखर थे। छोटी भाभी कामेश्वर को बहुत मानती थी। यह लक्ष्य कर उसे बड़ी भाभी ने उसे एक बार कहा भी था : ''दोनों पिछले जन्म की सहेलियाँ हैं।''[9]

1968 में राजपाल एण्ड संस, दिल्ली से 'इमरतिया' नाम से और किताब महल, इलाहाबाद से **'जमनिया का बाबा'** नाम से प्रकाशित यह कृति मठों की दुराचारपूर्ण जिन्दगी को उघाड़ती है। 'जमनिया के बाबा' का जमनिया बिहार और उत्तरप्रदेश की सीमा के नजदीक नारायणी नदी के किनारे बसा एक छोटा–सा गाँव है। चीनी कारखाना के खुलने और रेलवे स्टेशन होने से जमनिया हिन्दुस्तान के अन्य क्षेत्रों से जुड़ गया है। बाबा ने बहुत सोच–समझ कर जमनिया को अपना अड्डा बनाया है। पहली बात तो यह कि बाबा को पिछड़ी जातियों से विशेष प्रेम है, दूसरी बात नेपाल नजदीक है और शासन की तीसरी आँख से बचने के लिए कितनी बार भागकर नेपाल गये हैं, तीसरी बात पुलिस का अड्डा काफी दूर है, चौथी बात कि आसपास कहीं स्कूल–कॉलेज के दर्शन नहीं हैं और नेता भी पाँच साल बाद ही दिखाई पड़ते हैं।

'गरीब दास' 1979 में एन0 सी0 ई0 आर0 टी के एक अधिकारी मित्र के आग्रह पर लिखा गया ऐसा उपन्यास है जिसका उपयोग संभवतः पाठ्य–पुस्तक के रुप में होना था। काफी समय तक इसका उपयोग नहीं होने पर यह उपन्यास 'सारिका' के जनवरी, 1990 के अंक में छपा और फिर पुस्तकाकार।[10]

'प्लास्टिक के लाल ग्लास' नागार्जुन का वह अधूरा उपन्यास है जिसमें स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद के जन–संघर्षों एवं समाज पर पड़ने वाले उनके प्रभावों की कथा है। इस उपन्यास के मुख्य किरदार रंजना और शशिनाथ भ्रष्ट हैं। कथा का आरंभ तीर्थयात्रा से होता है 'तीर्थयात्रा स्पेशल तीन' नाम से रेलगाड़ी पूरे भारत की तीर्थयात्रा पर निकलती है, जिसमें डेढ़ सौ लोग सवार हैं। यात्रियों में से प्रायः सभी सुखी मध्यम वर्ग के लोग हैं। इस स्पेशल ट्रेन का विज्ञापन साल भर से अखबारों में हो रहा था। इसी यात्रा में शशिनाथ, रंजना, सेठ जी उनकी अठारह वर्षीय पत्नी लीला और वह बूढ़ी महिला भी है, जो बीमार पड़ जाती है। यात्रा में शामिल डॉक्टर तन–मन से उस बूढ़ी महिला की देखभाल कर रहा है।

रंजना पहले तो सोचती है कि इस यात्रा में और भी बहुत सारे लोग हैं, फिर क्यों वह उसकी देखभाल करे, लेकिन सेठ की पत्नी लीला की सेवा–भावना देखने पर वह भी बूढ़ी की देखभाल में लग जाती है। रंजना के दो पुत्र और एक पुत्री है और इस यात्रा के दौरान ही उसकी पुत्री चितू (चित्रा) का खत भी मिलता है जिसे रंजना बार–बार पढ़कर अपने मन को संतुष्ट करना चाहती है। छोटा बेटा टीपू गिरफ्तार होकर हजारीबाग सेंट्रल जेल में है। टीपू नक्सलवादी हो गया है और किसान मजदूर के हक के लिए संघर्ष करता है। रंजना के पति ने भी स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई थी।

शशिनाथ से रंजना का संबंध काफी पुराना है। छोटे पुत्र टीपू का चेहरा, कद आदि शशिनाथ से ही मिलता–जुलता है। सिर्फ दोनों के व्यवहार में भिन्नता है। शशिनाथ के अलावा भी रंजना के संबंध अनेक व्यक्तियों से रहे हैं : ''रंजना के बारे में भी सोचनेवालों की कमी नहीं थी। आधा दर्जन हितैषी तो थे ही। अब उन्हीं में से एक शशिनाथजी साथ चल रहे हैं। लगता है, आजीवन साथ चलेंगे। सहारा तो चाहिए ही। स्त्री हो या पुरूष, संन्यासी में भी सहारे की ज:रत पड़ती है।''[11]

संदर्भ सूची :

1. सुरेन्द्र कुमार यादव / नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : सामयिक संदर्भ / 20
2. नागार्जुन रचनावली –4 / 121
3. वही / 254
4. वही / 290
5. तेज सिंह / नागार्जुन का कथा साहित्य / 141
6. राम आह्लाद चौधरी / पश्चिम बंगाल / 99
7. नागार्जुन रचनावली –5 / 212
8. वही / 234
9. वही 315
10. वही – 5 / 6
11. वही – 5 / 506–7

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

A OVERVIEW ON FINANCIAL INNOVATION

Dr. Rajesh Pd. Kushwaha

Assistant Professor (Guest Faculty)
B.R.A. Bihar University

The relationship between the financial system and economic growth has been scrutinized by a large number of studies in India and abroad. Financial development is considered as a cause of economic growth. Hicks (1969) argued that without financial innovation the industrial revolution would not have taken place. The level of financial development predicts future economic growth and future productivity advances. The financial deepening had increased from the mean of the slowest growing countries to the mean of the fastest growing countries; a country would have increased its growth rate by close to 1 percent per year. This accounts for a difference between the slowest growing countries and the fastest growing countries of around 5 percent. Improving the financial deepening variable would decrease the difference between the countries growth rates by 20 percent.

Microfinance has become, in recent years, a fulcrum for development initiatives for the poor, particularly in the Third World countries and is regarded as an important tool for poverty alleviation. The microfinance revolution, particularly the success stories of institutions like Grameen Bank in Bangladesh, Banco Sol in Bolivia, and Bank Rakyat in Indonesia, attracted several economists to study microfinance in the latter half of the 1990s.

In India also many studies are conducted by various autonomous agencies like NABARD, NEDFI, SIDBI, DRDA, RGVN etc. including RBI from time to time. These organizations practice microfinance. Most of the studies are on the impact assessment of the beneficiaries of microfinance. Very few studies are conducted on microfinance at the NER level in India.

Sen (1990) found the fact that the decision making over the actual loan is likely to be shared by the induced borrower, her family members and BRAC depending on of the loan, it can be argued that it is more appropriate to focus on changes in the overall status of a women derived from the fact that she is the source of an important house hold resource.[1]

Whites (1991) view that micro credit reinforces existing general patterns and inequalities by promoting traditional income generation activities, which they believe do little to alter the social status quo.[2]

Lewis (1993) found that NGOs based on microcredit activities have mainly functioned in order to service the needs of the landless, usually with the foreign donor funding as a counter- point to the state efforts.[3]

Goetz, A.M. and R. Sen Gupta (1994) found that women often act merely as a collection agents for their husbands and sons, such that the men spend the money themselves while women are saddled with the credit risk. As a result, borrowers are kept out of waged works and pushed into the informal economy.[4]

Goetz and Gupta (1994) Microcredit is just another form of dowry Anecdotal evidence from the Grameen Bank suggests that women who are unsuccessful in gaining a loan or who have to wait too long for their turn are experiencing increases in domestic violence from frustrated husband.[5]

Amin et als (1994) worked in thirty six villages in Bangladesh and showed that membership in BRAC positively affected a woman's decision making role, her control over resources and mobility but less so on their attitudes regarding marriage and education of their daughters.[6]

Naved (1994) found that the women credit programme participants in her sample felt their status had improved within the household due to the fact that they were seen as income earners for the family through their access to credit. The woman conceptualized this improvement in status by stating that they were more active participants in household decision making and had more control over household income. The other benefits of the group was in terms of addressing social problems as a joint unit citing a number of incidents, where group pressure helped resolve family disputes.[7]

Hashemi (1995) found that most NGOs related to micro credit in Bangladesh are heavily dependent on the donors for their funds. This creates uncertain supply of fund so that NGOs seek self reliance.[8]

Ebdon (1995) found in the case of the Grameen Bank that most women would simply be given money by their household to cover the weekly repayments and hence their economic earns was not improved.[9]

Montgomery et al (1996) argued that households need to have achieved certain economic level in order to use loans successfully to generate income and to protect their investments. They need reliance income, freedom from pressing debt, sufficient health to avoid incapacitated illness.[10]

Montgomery et al (1996) found little evidence that BRAC's client were attaining their structural position within the rural economy. They concluded that credit might be insufficient and inappropriate for alleviating extreme poverty.[11]

Todd (1996) outlined the impact of the microcredit in terms of improvement in the living conditions and freedom from the clutches of the exploitative money-lenders.[12]

Pitt and Khandker (1996) observed influence of borrowing from the group by both men and women on a variety of household and intra household outcomes involving school envolment of boys and girls, the labour supply of women and men, the asset building of women, recent fertility and contraceptive use, consumption and anthropometrics status of children.[13]

Hashemi, Schuler and Reley (1996) reported social employment in their study. Microcredit programme had introduced some new forms of social activity among rural women such as weekly meetings where women collect and discuss loan proposals, the creation of a space where women can speak without men dominating the discourse and women are taught to sign their names on contracts.[14]

Hashelin et al (1996) developed empowerment index based on eight indicators namely mobility, economic security, ability to make small purchases, ability to make larger purchases, involvement in major decisions, participation in public protests and political campaigning, relative freedom from family domination and political and legal awareness. Their analysis established that a women contributing to her household's income is a significant contributing factor towards her empowerment.[15]

End Notes

1. Sen, A. (1990), 'Gender and Cooperative Conflicts' in Tinker I (ed.) President In equalities' Oxford, Oxford University Press.
2. White, S.C. (1991), 'Arguing with the Crocodile Gender and class in Bangladesh' Books London, Zed Books.
3. Lewis D.J. (1993), ' NGO-Government Interaction in Bangladesh in Farrington J. and D.J. Lewis (ed.), Non-governmental organizations and the state in Asis-Rethinking roles in sustainable agricultural development, London, Routledge.
4. Goetz, A.M. and R. Sen Gupta (1994) who takes the credit ? Gender, Power and control over loan use in rural credit programme in Bangladesh. World Development Vol. 24th January.
5. Ibid.
6. Amin S. (1994), 'Gender Inequality within Households. The Impact of a Women's Development Programme in 36 Bangladesh villages in the Bangladesh Development Studies special Issue on Women, Development and Change' Vol. XXII, No. 2 and 3 pp. 121-155.
7. Naved R. (1994), 'Empowerment of Women: Listening to the voices of Women' in the Bangladesh Development Studies special Issue on Women, Development and Change' Vol. XXII, No. 2 and 3 pp. 121-155.
8. Hashemi S.M. (1995), ' NGO Accountability in Bangladesh: Beneficiaries, Donors and state in Edwards M and D. Humle (ed.) Non Governmental Organizations

performance and Accountability Beyond the Magic Bullet, London, Earthscan Publications.

9. Ebdon, R. (1995), 'NGO Expansion and the fight to reach the poor: Gender Implications of NGO scaling up in Bangladesh'. IDS Bulletin. Vol. 26, No. 3, pp. 49.
10. Montgomery, R. (1996), 'Credit for the Poor In Bangladesh'. The Rural Development Programme and the Government Thana Resource Development and Employment Programme.
11. Ibid.
12. Todd (1996), ' Cloning Grameen Bank: Replicating a poverty Reduction Model in India'. Nepal and Vietnan, Intermediate technology Publication, London, V.K., pp-126.
13. Pitt, M.M. and S.R. Khandker (1996), 'Household and Intra household impact of the Grameen Bank and Similar Targated Credit Programmes in Bangladesh'. Discussion paper No. 320, The World Bank, Washington, D.C., U.S.A., pp 109.
14. Hashemi S., S.S. Schuler and I. Relay (1996), 'Rural Credit Programmes and Women's Empowerment in Bangladesh'. World Development, Vol. 24, No. 4 pp.635-653.
15. Ibid.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों में स्वदेश प्रेम

डॉ0 राजेश रंजन यादव

नेट / जेआरएफ

प्रत्येक देशवासी को अपने देश से अनुपम प्रेम होता है। अपना देश चाहे बर्फ से ढका हुआ हो या गर्म रेत से भरा हुआ हो। देश प्रेम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में काम करने वाला व्यक्ति देशभक्ति की भावना प्रदर्शित कर सकता है। सौनिक युद्ध–भुमि में प्राणों की बाजी लगाकर, राजनेता राष्ट्र के उत्थान का मार्ग प्रशस्त कर, समाज–सुधारक समाज का नवनिर्माण करके, धार्मिक गुरू मानव धर्म का उच्च आदर्श प्रस्तुत करके, साहित्यकार राष्ट्रीय चेतना और जन–जागरण का स्वर फूंककर अपने दायित्वकानिर्वाह करता है। ऐसे ही बंगला में एक दैदिव्यमान साहित्यकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय हुए जो अपने सहित्य में स्वदेश प्रेम को प्रदर्शित किया है। स्वदेश प्रेम के तहत पराधीन भारत वर्ष में जहाँ अधिकारों के हनन एवं जीवन–मरण की समस्याएँ अपनी पराकाष्ठा को पहूँच रही थी, तभी उस परिस्थिति के अंतर्गत कुछ जागरूक चरित्र, जिन्हें स्व–अधिकार एवं जन्मभूमि के सम्मान का परिचय प्राप्त था। मातृभूमि की स्वतंत्रता एवं स्वायत्ताधिकार के प्रश्न को वंछनीय निर्धारित करते हुये संघर्ष किये, आने वाली हर उस पीढ़ी के लिए, जिनको स्वतंत्र भारत के आकाश के नीचे जीवनदान देना चाहते थे। इसी भावना के तहत श्रतचन्द्र जी के कुछ पात्र इस प्रकार हैं–'हरेन्द्र'(शेष प्रश्न), 'डाक्टर' (सव्यसाची) (पथ के दावेदार), 'नीलकान्त जोशी' (पथ के दावेदार)।

'हरेन्द्र कुछ लड़कों को ब्रह्मचारी बनाकर देश सेवा में संलग्न करने का बीड़ा उठाते हैं। अपने सद्वृतियों के सहारे ही वे कमल की श्रद्धा कर सके थे और असहाय नीलिमा को स्त्रीवर्जित ब्रह्मचार्याश्रम ले जा सके थे, लेकिन अन्त में राजेन्द्र एवं सतीश के आश्रम त्यागने के पश्चात कुदेक लड़कों के साथ लेकर जगत से सीधे राह पर इंसान बनाने को तत्पर होते हैं। सम्भवतः यह पदाक्षेप कमल के मत का अवलम्बन था।

पथ के दावेदार उपन्यास में डाक्टर कौन थे? यह एक रहस्य ही बना रहा, लेकिन उनके उद्देश्य से हम भलीभांति परिचित हो सके, यह हमारा सौभाग्य रहा। मानव का वास्तविक अधिकार क्या है? शान्ति का क्या तात्पर्य है? उसकी क्या उपयोगिता है? शोषक कौन है? शोषिक कौन है? इस सतयासत्य एवं सत्–असत् का भेद करना किसी साधारण वैचारिक बुद्धि का कार्य नही था उनके ज्ञान के स्त्रोत की कोई थाह नहीं। "दस बारह भाषाओं के जानकार होने के साथ ही डॉक्टरी एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त हैं। कितने देश धुमें हैं, कितने कैद भोगे व कितनी बार नजरबंद हुए तथा कितनी बार ऐसे मौंके से भागते हुए कितने ही लम्बे रास्ते पैदल चले, कुछ हिसाब ही नहीं है।"[1]

कभी वे गिरीश महापात्र के रूप में मिले तो कभी सव्यसाची, कभी डॉक्टर और कभी चटगाँवी भाषा बोलते मुस्लिम मललाह। सुमित्रा के इतने निकटस्थ होकर भी उसे वरण नहीं किया मात्र अपने उद्देश्य से निमित्त, लेकिन साथ ही भरती को अपूर्व से मिलाने को तत्पर भी रहे। एक ओर देश के परम शत्रु अंग्रेजों की जातिगत खुबी की उन्होंने जिस प्रकार पहचाना था, वह सहज साध्य न था। इसी सिलसिले में भारती से उन्होंने कहा था– "समस्त मानव की इतनी बड़ी शत्रु जाति और कोई भी नहीं है। स्वार्थ के लिए मनुष्य को अमानुष बना डालना उसके मज्जागत संस्कार हैं।.....यदि तुमसे सम्भव हो तो देश की समस्त जनता को यह सत्य सिखा देना । इसी के साथ दूसरी ओर अपने संस्थागत सदस्यों के बारे में भी उनकी सतर्कता हमें प्रभावित किये बिना नहीं रहती।"[2] अपूर्व के गद्दारी करने पर उसकी प्राण रक्षा कर देना, उनकी निरीक्षण का प्रतीक था, जो समझ सका था अपूर्व की चरित्रगत भीरूता को, भारती के ह्मदयागत स्नेह, ममता के आधार पर वे भारती को 'पथ के दावेदार' संस्था से परे हटकर समाजसेविका बाने को कहते हैं। साथ ही वास्तविक गद्दार ब्रजेन्द्र के प्रति सचेतन दृष्टि बारम्बार उनकी दूरन्दाजी को सिद्ध करती है। उनकी अनिश्चित कष्ट से भरी जीवन प्रणाली जिसे देखने वाले का जी दहल जाता है, वह थी उसके होटल के कमरे की स्थिति, जिसे देखाया अपूर्व ने। भारती देखी थी, फॉसी का आसामी मुस्लिम मित्र के घर बड़े तृप्तिपूर्वक गन्दे व बिखराव से पके भोजन को प्रसन्न मुद्रा में ग्रहण करते हुए जिसको भारती स्वचक्षु देखने में समर्थ नहीं हो सकी थी। स्वयं के अनिश्चि ठिकाने के विषय में उनका मुस्कुराकर कहना–"दैवो न जानति"[3]ही उनके विषय में सार्थक वक्तव्य सिद्ध होता है और इसी आधार पर सबको यथायोग्य प्रबोध देकर एवं अभ्यार्थना करते हुए एक ऑधी तुफान से भरी रात मे पानी से भरे जहाज में पुलिस की नजरों से बचते हुए सिंगापुर के लिए रवाना हो जाते हैं।

'नीलकांत जोशी' स्वयं उपन्यास में उपस्थित नहीं होते, हम डॉक्टर से इनके बारे में विदित होते हैं। वे मराठा जाति के एक स्वतंत्रता संग्रामी थे। बड़े ही दयालु प्रवृति के, कोलम्बो के पार्क में हैजा रोगी की सेवा करना, रास्ते में मुर्दा देखकर रो देना आदि। सिंगापुर में उनको फांसी हो गई थी। उनसे गर्वमंण्ट ने पलटन के सिपाहियों के नाम पुछे थे, लेकिन वे तुच्छ प्राण के कारण गद्दारी नहीं किये।

'रामदास तलवलकर' बोद्या कंपनी में एकाउण्टेण्ट के पद पर कार्यरत होते हुए पत्नी एवं नन्हीं बच्ची के संग जीवनयापन करते हैं। विदेश मे असहाय अपूर्व बाबू के प्रारंभ में यही एक मात्र भरोसा होते हैं। अपूर्व को भाषण देते समय जड़ होते देख इनका अग्रसर होना एवं पकड़े जाना काफी महत्वपूर्ण होता है, लेकिन सर्वाधिक चौका देने वाली बात होती है, उनके जैसे सीधे–साधे दिखने वाले इंसान का भी समिति का सदस्य होना। लेकिन अंत में इन्हीं अपूर्वबाबू की कायरता के शिकार होकर इनकी नौकरी चली जाती है व इनको कारावास हो जाता है।

'हीरा सिंह समिति के सदस्य न होते हुये भी डॉक्टर के विश्वस्त चरित्रों में से थे व उपन्यास के अंत तक अपने कत्तव्यों का पालन करते रहे। डॉक्टर उसके बारे में कहते हैं कि– "इसे जो भी काम सौपें वह उसी पर आ जाता है।"[4] वह पहले हांगकांग की पुलिस की नौकरी करते थे, बाद में रंगुन

टेलीग्राफ ऑफिस में प्यादा बन गये एवं गुप्त रूप से समिति का कार्य करने लगे। उपन्यास के अंत में अंधेरी और भीषण तुफानी रात को वही आये थे। डॉक्टर के सिंगापुर जाने का बंदोबस्त कर उन्हें साथ जहाज तक ले जाते हैं। जब भीषण वर्षा व सन्नाटे में भारती के वासस्थल के दरवाजे पर किसी निःशब्द प्रहरी की तरह खड़े डॉक्टर के इंतजार करने की घटना को विदित होते ही अन्य सभी सदस्य अचम्भित हो गये थे।

इस प्रकार 1926 ई0 में शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित उपन्यास 'पथ के दावेदार' में स्वदेश प्रेम की झलक दिखाई पड़ती है। यह अपन्यास को राजदोश से पतित भी हुई। 'राजद्रोहमूलक रचना' इस अभियोग से अंग्रेज सरकार ने इस उपन्यास के प्रचार पर रोक लगा दिय, जो सन् 1929 में राजदोष से मुक्त हो सकी। यह सूचना ही स्पष्ट कर देती है कि 'पथ के दावेदार' उपन्यास स्वदेश प्रेम को अपने अंदर समेटे हुये है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय– पथ के दावेदार, किताबघर, पृष्ठ– 27
2. शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय– पथ के दावेदार, किताबघर, पृष्ठ– 102
3. शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय– पथ के दावेदार, किताबघर, पृष्ठ– 136
4. शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय– पथ के दावेदार, किताबघर, पृष्ठ–172

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

The Decadence of Human Values in Tendulkar's The Vultures

Dr. Raj Kumar Mishra

Ph.D. in English, D.D.U. Gorakhpur University

Gorakhpur (U.P.) 273009

Abstract:

The Vultures (1961), a two act-play, stands apart from the other plays ofVijay Tendulkar in that it is a play which displays, on the stage, the unmitigatedviolence arising from drunkenness, greed, and immorality. Furthermore, it isplay built on contrasting situations. On the one hand, there is a gruesomeportrayal of man's greed and on the other hand, there is a portrayal of tender love.When the agents of these opposing qualities meet, a conflict of great dramaticsignificance resulted. His plays can be said to fall into two distinct groups namely,pre-silence and post-silence plays. *The Vultures* on the other hand is a shockingportrayal of the evil consequences of man's avarice.

Keywords: Violence, Drunkenness, Greed, Immorality

Tendulkar proves throughplays that he is a keen observer of the world around him; especially the world ofthe urban middle class. In his early works he had dwelt on the woes of the middleclass with a degree of sympathy bordering on sentiments. However, marks achange in Tendulkar's attitude towards his dramatic career, he began to look intothe psyche of his subject and focus his attention on the ugliness he detected therein. He has made every effort to carry on his psychological analysis of hischaracters, ever since. Most of the Tendulkar's plays have had their origin in hisown personal experience. Amitav Kumar says-

> "I was 16 or 17 when I watched the performance of "Giddh", aHindi adaptation of Tendulkar's play Gidhade" (*The Vultures*).The abuse that I saw being exchanged between a father and hissons was shocking. So was the naked language of the marketplace,and even the brothel, being used to describe human relations. It was like a slap on the face of all genteel pretensions that I had sofar associated with theatre. Drama was no longer about puttingmake-up and delivering romantic lines. Tendulkar showed me forthe first time that real drama was dirty". (Amitav Kumar's Blog)

Post-Independence playwrights like Vijay Tendulkar provide a muchneeded social expose of violence, inherent in man, since time immemorial. IfIndia passed through the rigorous of partition, it also bore patiently thetumultuous political upheaval that span across

decades. All these seem to havebeen deeply entrenched in the psyche of the common human beings. If Violence'is the keyword in the everyday context, Tendulkar's plays are replete withviolence. It isn't as if common man is not aware of violence around,butTendulkar's plays shake them out of their stupor of habitual acceptance of it andmake them have the shocking realisation that the picture is far grim than theycould have realised. Thus Vultures, is one of the most realistic portrayal of genderand domestic violence that is meted out to a woman that is torn apart between herdesires and her family. There can hardly be a more nuanced metaphor than theword vultures when it comes to the description of ordinary men who selflesslydevote their anger and frustration to the women in the family.

Physical abuses likekicking, slapping, and even strangling are common enough,the play was an instant hit, for nowhere had violence been so ruthlesslystudied and portrayed in theatre. Critics pin the success of the play to its shockelements, admitting in the same breath that it somehow dimmed its central theme.This is a complaint that would stay with Tendulkar for the rest of his life as thevarious dimensions of violence in the society - psychological, political, sexual,social and obviously physical, preoccupied his works. He even spent time withprisoners to study violence, after he got a Nehru fellowship.

The Vultures (Gidhade) was actually written 14 years before it wasproduced (1970) and published (1971). It shocked the conservative 85 sections ofMarathi people with its naturalistic displays of cupidity, sex and violence. Afterthe first production of this play, Girish Karnad wrote that the staging of Gidhadecould be compared to the blasting of a bomb in an otherwise complacent marketplace. It was with the production and publication of Gidhade that Tendulkar'sname became associated with sensationalism, sex and violence. There ensued along war with the censors who condemned the play as obscene and in bad taste.Conservative sections of Maharashtrian Society were stunned by the open displayof illicit sexual relations and scenes of violence that constituted the plot.

Tendulkar, in this play, displays a rare genius for mixing the absurd-asevident in the cruel and curious relationship obtaining in the relationship amongPappa the father, his two sons Ramakant, and Umakant, and Manik, his daughter;and the tender but possessive relationship between Rama, Ramakant's wife, andRajaninath, Pappa's illegitimate son.

The play, on the whole, does not offer any relief to the reader. With TheVultures Tendulkar's vision of the family became more violent. Here he went onestep ahead to demonstrate the bestiality and monstrosity of people in a familyliving in a nauseatingly consumerist world. The family of Ramakant, Umakant,Manik, their father and Uncle and the illegitimate son of their father represent thedecomposing state of the family where even the outward facade of decency hasevaporated and what remains to be seen is the naked play of desire to possess,own, gain money and destroy another human being.The Vultures is indeed the most violent of Tendulkar's plays. It remindsone of Webster's *The Duchess of Malfi*. It is

replete with violent imagery,consisting of blood, eeriness, and mad raving. Both Had Pitale and Manik thirstfor revenge. Both succeed in their mission. While Pappa succeeds in drivingRamakant to the streets, Manik succeeds in causing Rama's abortion. Thedialogue is composed of words which seem appropriate in the mouths of thecharacters who utter them. On the whole, the play is, no doubt, naturalistic in itsportrayal of domestic violence caused by greed.

Tendulkar's *The Vultures* (Gidhade) could be compared with *The Duchessof Malfi* with regard to the theme, the imagery accentuating the thematic structureand the characterization. Though both are revenge plays of horror, the motif for revenge in them is equivocal. The brothers of the Duchess are disconcerted by theDuchess's marriage with the steward, it prompts them to action, however,Ferdinand directly and the Cardinal indirectly confess that they had a desire toinherit her wealth.

In The Vultures, Ramakant and Umakant torturing their sisterManik are primarily prompted by avarice rather than by revenge. Manik abortingRam is motivated by jealousy and malignity rather than revenge. In the plays, sexand violence, melodramatic and supernatural fury haunt the audience. Theavaricious and vicious villains in both the plays are in consonance with ferociousanimals like bloodhounds and wolves and preying birds like vulture and hawk.Rama's attachments to the tulsi plant in Tendulkar's play also suggest the same.The whole play exhibits the baser instincts of humanviolence. Thebeating up of the father by his own children, the two brothers' forcible abortion oftheir sister' s child, the mutual hatred among the members of the family, underlinethe fundamental evil inherent in human character. The relation between HariPitale, the father and three sons and the exhibition of violence in their relationjustifies Freud's theory of Primal father- son conflict as given in his famous bookTotem and Taboo."

In most of his major plays Tendulkar project, women as victims. The playshighlight the gender stereotyping that is forced upon them. The roles allotted towomen in the patriarchal setup are purely domestic - daughter, wife and mother.From birth the girl child is subjected to the negative reinforcement for herVulnerability to rape and assault. A girl / woman is expected to be meek,submissive, patient, she should subordinate her will and desires to those of themale unselfishly. Gidhade presents the pair of women Manik and Rama. And boththe women exhibit contrast with each other. Manik symbolizes the concept offree woman / Modern woman, whereas Rama represents traditional concept ofIdealism.This explains the presence of so many stage directions in Tendulkarenter and push things around, Tendulkar's directors have repeatedly said that hisfinal drafts are often overwritten and have to be severely edited to make themstageable. Dr. Shreeram Lagoo says, about the Vultures:

> I had read the play several years ago, When I read it again for theumpteenth time with a view of directing it, I found that I wouldfirst have to cut a large part that had been unnecessarily written, togive it a good structure A play that was three acts and about three-and-a-half hours long, would have to be cut down to two acts oftwo-and-a-half hours running time (Gokhale 112-13).

About his dialogue writing, however, there were no two opinions. His useof the spoken language amounted to nothing short of a revolution on the Marathistage at the time when he first began to write. Vijaya Mehta reports,for the first time Tendulkar attempted to show that an unspokenmeaninglay beyond the spoken word. People loved teasing usthose days, saying, 'your Tendulkar writes only half sentencesbut these half sentences had the power to create something quitetremendous. That is why I feel that the acting idiom I wasexploring found its perfect match in Tendulkar's writing (Gokhale113).

The Vultures moves around the interpersonal relationship in middle classfamilies. Naturally the idiom in which Tendulkar wrote the play was estheticallyinevitable. He needed an idiom which would allow him to explore the workings ofthe unconscious mind in an attempt to bring out the Vulture-mentality residing inthe deeper recesses of the human psyche. The idiom which would confront theaudience with the vulture in man was truly shocking and unsettling. Thecontemporary audience of course felt the directness of the appeal but would notacknowledge it: at the same time Tendulkar did not go in for any softcompromises on this issue.

Actually the content of the play was far moreimportant than the language or idiom but unfortunately it was precisely thecontroversy raged on the bold and explicitcontent that was neglected.Although there is a generalawareness of the vulture in man, its dramatic representation was howeverrejected. Tendulkar himself has said in this context that the play was written undersuch imaginative pressure that he did not think of changing the names ofcharacters. Ramakant and Umakant are kept as he found them in life. Even whilethe play was being staged he was rather doubtful about what he should do of thenames because they were part of his personal life. Not that he had any angertowards either the names or the persons.

All that he felt was a kind off pity forthem which got reflected in the play itself. He feels that The Vultures expressesall that was unexpected in his middle class world. Further he had not planned inadvance either the theme or the idiom. The shock that the audience receives in theplay was not something new to Tendulkar's dramaturgy, for *Silence! The Court isin Session* had given a similar shock earlier also. Several of the viewers howeverasked why *The Vultures* should repeat the same questions as in the earlier play.The explanation that Tendulkar holds out is that the direct and indirectexperiences which went into the making of *The Vultures* in a sense devastated hisemotional and psychological adolescence. Later, he

began to feel stabilized and-did not feel the rude, raw shock as he became used to the vulture in man. In spiteof the inner vulture in men the fact remains that the audience took its own time toocome to terms with the play.

Works Cited:

Tendulkar, Vijay. "The Vultures." *Five Plays*. trans. Priya Adarkar. NewDelhi: OUP, 2004.

Dharan, N. S. *The Plays of Vijay Tendulkar*. New Delhi: Creative Books,1999.

Gokhale, Shanta. "Tendulkar on his own Terms." *Vijay Tendulkar's Plays: AnAnthology of Recent Criticism.* Ed. V.M. Madge. New Delhi: PencraftInternational, 2009.

Vijay Tendulkar, "Interview", India Today, Dec, 16-31, 1980.-"Interview." by Gowri Ramnarayan, Hindu Folio, 1998.http://amitavakumar.blogsome.com/2008/05/31/vijay-tendulkar-2/trackback

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारतीय संगीत में वाद्यों की महत्वता

डॉ0 सारिका पटेल

वरिष्ठ अनुदेशक, संगीत विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना

भारतीय संगीत में वाद्यों का इतिहास अपनी निजी विशेषता को रखते हुए प्राचीन प्रणालियों में से भिन्न है। इसमें उपलब्ध सामग्री प्राचीन होने के कारण अत्यधिक अमूल्य है तथा इतिहास निर्माण के लिए भी महत्वपूर्ण है।

संगीत की अत्यन्त समृद्ध क्रियात्मक परंपरा, सूक्ष्म तथा पूर्ण सैद्धांतिक रूप में प्राचीन काल से ही विकसित रही है। संगीत उतना ही आनादि एवं प्राचीन है जितनी की मानव जाति, मानव।जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता गया, संगीत भी उसके अनुकूल विकास को प्राप्त करता रहा।

संगीत के मूल तत्वों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि वाद्यकला सही में संगीत की पूर्णरुप से प्रतिनिधी कला है। इसमें स्वर तथा लय का ही एकछत्र राज्य है। इसमें गायन की तरह ही काव्य भी है, और नृत्य की तरह ही अंगसंचालन भी। स्वर तथा लय का स्वछंद, प्रभावपूर्ण तथा भावपूर्ण प्रयोग सिर्फ और सिर्फ वाद्यसंगीत में ही देखने को मिलता है। इस प्रकार वाद्य कला गान तथा नृत्य की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और अकृत्रिम आनंद प्रदान करने वाली है।"[1]"

सम्पूर्ण विश्व में ताल का बड़ा ही महत्व होता है, परंतु अन्य देशों के संगीत की अपेक्षाकृत भारतीय संगीत में ताल अथवा लय का महत्व प्राचीनकाल से ही बहुत अधिक रहा है। ताल का प्रयोग वाद्य संगीत के द्वारा किया जाता है। इसमें केवल स्वर तथा लय ही तत्व होते है वाद्यकला किसी अन्य कला पर आश्रित नही होती है यह अपने आप में ही संपूर्ण होती है।

संगीत कहीं का भी हो उसमें स्वर व लय का बराबर महत्व होता है। संगीत में यदि स्वर को शरीर मान लिया जाय तो लय उसकी आत्मा होगी। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का कोई महत्व नही होता उसी प्रकार लय के बिना भी स्वर महत्वहीन होते है। जिस प्रकार शरीर और आत्मा एक–दूसरे के पूरक होते है, उसी प्रकार स्वर व लय भी एक–दूसरे के पूरक होते है। विभिन्न प्रकार के वाद्यों और अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा कलाकार विभिन्न प्रकार की लयों की रचना करते है।

वाद्यों के द्वारा संगीत में सौंदर्यात्मक चलन शैलियों का विकास होता है। जब कोई गायक भजन, गज़ल, गीत आदि का गुणगान करता है, तो उसमें शब्दों की महत्वता तो होती है, परंतु कुछ

कमी और खालीपन सा लगता है। उस कमी और खालीपन को भरने का काम वाद्य यंत्रों के द्वारा किया जाता है।

वाद्यों का सब से महत्वपूर्ण कार्य है, शास्त्रीय संगीत की विवेचना में उनका सहयोग करना। अगर वाद्य न होते, तो शास्त्रीय संगीत की कोई परंपरा न होती और यदि होती भी तो उसकी विवेचना का कोई उपाय न होता, अगर ऐसा कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नही होगी। स्वरों की उत्पत्ति, स्वरों के स्थान का स्थरीकरण, स्वरों के अन्तरालों की नाप–जोख आदि का कार्य बिना वाद्यों के पूरा नही हो सकता। प्राचीन काल से अब तक स्वरों के विश्लेषण के लिए चाहे वह भारतीय परंपरावादी कलाकार हो अथवा आधुनिक वैज्ञानिक, प्रत्येक को किसी न किसी वाद्य का सहारा लेना ही पड़ता है।

वाद्य संगीत एक ऐसी कला है जिसे अपने सांगीतिक प्रयोगविधी को प्रस्तुत करने और विस्तार करने के लिए किसी अन्य कला की उपेक्षा नही करनी पड़ती। यह स्वतंत्र वाद्य के रुप में स्वयं अपने आप में परिपूर्ण है। दूसरी अन्य सांगीतिक कलाएँ गायन, वादन, नृत्य तथा नाटक बिना किसी वाद्य के अपनी कला का प्रदर्शन नहीं कर सकती हैं अगर करती भी हैं तो उनमें कुछ खालीपन एवं उदास का भाव स्वतः ही दिखता है जिसमें भराव का काम वाद्यों के द्वारा ही किया जाना संभव होता है।

मानवसंस्कृति के उद्‌गम एवं विकास के साथ संगीत के वाद्यों का उद्‌गम एवं विकास भी देखा जा सकता है। आदि काल का संगीत कला संगीत की अपेक्षा दैनिक कार्यो के अधिक निकट पाया जाता था। आदिम मानव तभी गाता – बजाता था जब वह कुछ अभिव्यक्त करना चाहता था। इस प्रकार गाना – बजाना उसके स्वाभाविक विचारों का प्रतिफलन था।

प्रागैतहासिक काल में भी संगीत का प्रचलन रहा है। प्रागैतिहासिक मानव उस समय असंस्कृत तथा असभ्य था, परन्तु उसे नृत्य तथा संगीत से प्रेम था। इस काल की कोई सूत्रबद्ध सामग्री उपलब्ध नही होती है। नृत्य करते समय उसमें उछल–कूद का भाव अधिक होता था तथा तालियों के द्वारा वह लय को दर्शाता था।"[2]

निश्चय ही प्राचीन काल में करताल से पहले कदमताल के द्वारा लय का आभास हुआ होगा। आदिमानव ने जब चलना सीखा होगा तो उसे कदम के द्वारा लय का एहसास हुआ होगा। और वह भिन्न–भिन्न लय में कदमताल करके चलता, उछलता हुआ ताल को महसूस किया होगा।

'वाद्य' शब्द की उत्पत्ति 'वद्' धातु से हुई है। 'वद्' का अर्थ होता है बोलना। संगीत शास्त्रों में, संगीत की भाषा में 'वाद्य' शब्द का अर्थ है 'संगीतोपयोगी ध्वनि'। अर्थात् जिस उपकरण से संगीतोपयोगी ध्वनि का निष्पादन किया जा सके, वह वाद्य है। वाद्य के विषय में यह तथ्य संगीत शास्त्रों में सर्वसम्मति से माना जाता रहा है। इस तरह देखा जाय तो मानव कंठ भी एक तरह का वाद्य है, जिससे तरह–तरह की संगीतोपयोगी ध्वनि निकाली जा सकती है। कुछ विद्वानों ने मानव कंठ को भी वाद्य की संज्ञा दी है।

वाद्यों की उत्पत्ति के संदर्भ में कुछ विद्वानों का मत है कि इनकी उत्पत्ति देवताओं के द्वारा हुई। संस्कृत साहित्य की परंपरा में रचित आचार्य शुभंकर ने वाद्यों की उत्पत्ति का संदर्भ देवता, गंदर्भ, राक्षस तथा किन्नरों आदि से जोड़ा है उनके मतानुसार भिन्न–भिन्न वाद्यों का संबंध भिन्न–भिन्न देवताओं से था।

''ततं वाद्यंतु देवानां गंधर्वाणां च शोषिरम्।

आनद्धं राक्षसानातुं किन्नराणां धनं विदुः।

निजावतोर गोविन्दः सर्वमेवानयत क्षितौ।''[3]

अर्थात् यहाँ तत् वाद्यों का संबंध देवताओं से, सुषिर वाद्यों का गंधर्वो से, अवनद्ध वाद्यों का राक्षसों से तथा घन वाद्यों का संबंध किन्नरों से बताया गया है। उनके मतानुसार जब श्री कृष्ण ने अवतार लिया, तो वे इन चारों प्रकार के वाद्यों को पृथ्वी पर ले आए और तथाकथित लोगों को प्रदान किये।

वाद्योंके विषय में विभिन्न विद्वानों के अपने–अपने मत है। जो इस प्रकार से हैः–

डॉ0 लालमणि के अनुसार–''डॉ0 लालमणि मिश्र ने संगीतात्मक ध्वनि तथा गीत को प्रकट करने वाले उपकरण को वाद्य कहा है।''[4]

डॉ0 इन्द्राणी चक्रवर्ती के अनुसार– 'वाद्य' शब्द 'वद्' धातु से बना है और इसका अर्थ है जिससे बुलवाया जा सके। अर्थात् मनुष्य स्वयं अपने शरीर से नाद उत्पन्न न करके जिस यंत्र में से नाद उत्पन्न कर सकता है अथवा जिसे बुलवा सकता है, वह वाद्य है।''[5]

''वादयितुं योग्यं वाद्यम्'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर निष्पन्न, वाद्य शब्द का शाब्दिक अर्थ 'वादनीय' होता है। अर्थात् वह यंत्र विशेष जो बजाने योग्य हो।''[6]

इस तरह किसी भी संगीतात्मक ध्वनि अथवा लय को प्रकट करने वाले उपकरण को वाद्य कहा जा सकता है चाहे ध्वनि उत्पादन का माध्यम एक पत्थर हो, लकड़ी हो, पत्ती हो, धातु का टुकड़ा हो अथवा कोई अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यम जिनसे संगीतात्मक ध्वनि उत्पन्न हो सकती है वह वाद्य है और वाद्यों के द्वारा उत्पन्न स्वर तथा लय को 'वाद्य संगीत' अथवा 'वादन' कहा जाता है।

''महर्षि भरत ने नाटक में वाद्य का विधान आवश्यक माना है। उनका कहना है कि ऐसा कोई वाद्य नहीं जो नाटक के दसों भेदों में प्रयुक्त न हो सके, किन्तु नाटक के रस–भाव को देखते हुए ही उनका उपयोग करना चाहिए।''[7] संगीत के मूलतत्व स्वर तथा लय से विहीन, 'वाद्य संगीत' में श्रोताओं को घंटो तक संगीत रस में रमाए रखने की शक्ति होती है। संगीत के द्वारा रंजकता का जितना अधिक विस्तार वाद्य–संगीत में सम्भव है उतना गायन एवं नृत्य मे नही है।

वाद्यों के द्वारा एक और महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध होता है, वह है कि इनको संकेत के रुप में भी प्रयुक्त किया जाता है। संकेत से अभिप्राय है कि किसी खास प्रयोजन में, किसी खास वाद्य का प्रयोग

होने से हमें उस प्रयोजन का संकेत मिल जाता है। जैसे –झाँझ, मंजीरा, ढ़ोलक आदि की ध्वनि अगर कहीं से आ रही हो तो तुरंत हमें ऐहसास होता है कि कहीं गीत–भजन आदि हो रहा है। इसी तरह 'घंटी' की ध्वनि से संकेत मिलता है कि पूजा हो रही है, 'शहनाई' की आवाज सुनते ही विवाह आदि मांगलिक कार्य के होने के, 'शंख' तथा 'दुंदुभी' से युद्ध की परिस्थिति के होने के संकेत हमें मिलते है। वाद्य चाहे जैसा भी हो, जिस प्रकार का हो, एक विशेष संकेत प्रदान करता है जिनके बजते ही सुनने वालों को उनके बजने के कारण की स्थिति का स्पष्ट ज्ञान करा देता है। वाद्यों का संकेत के रुप में ऐहसास विश्व की समस्त जातियाँ करती आईं है, और आज भी करती है।

वाद्य संगीत की महत्वता पर यदि प्रकाश डाला जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वाद्यों के बिना सांगीतिक कलाओं का प्रयोग रसहीन तथा भावविहीन सा होता है। जिस तरह वाद्यों के बिना संगीत की विभिन्न कलाओं का रस अधूरा होता है, जनमनरंज का कार्य भी अधूरा सा प्रतीत होता है।

संदर्भ :

1. डॉ0 अरबिन्द कुमार, तुलसी के गीति काव्य में संगीत, पृ0सं0–16
2. पुष्पम नारायण, संगीत और जीवन, पृ0सं0–102
3. डॉ0 लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ0सं0–33
4. डॉ0 अन्जना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ0सं0–2
5. वन्दना ठाकुर, तरबदार सितार की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व, पृ0सं0–2
6. डॉ0 लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, प्राक्कथन
7. बन्दना ठाकुर, तरबदार सितार की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व, पृ0सं0–2

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

अमरकांत की कहानियों की भाषा

डॉ० सुलोचना कुमारी

भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा विचारों एवं भावों का परस्पर सम्प्रेषण होता है। साहित्य की भाषा, जन-विज्ञान की भाषा, संपर्क भाषा, विचार-विनिमय की भाषा आदि अनेक रूपों में यह मानवीय समुदाय से सम्बंधित है। भाषा संस्कारगत होती है। इसे श्रम, साधना और अभ्यास से अर्जित की जाती है। इसलिए भाषा पर अर्जक-सर्जक विशेष की प्रकृति और उसके श्रम का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अमरकांत की कहानियों की भाषा उनके श्रम, साधना और स्वभाव के अनुसार अति विशिष्ट एवं सरलहै। समाजिक सरोकारों से जोड़कर वे उसे जीवंत और गतिमय बना डालते हैं। विषय गंभीर हो या साधारण, व्यावहारिक हो या चिंता युक्त, उसे वे सरल भाषा में ही प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा पात्र, परिवेश और परिस्थितियों के सर्वथा अनुरूप है और संवेदनाओं से पूर्ण है। उसमें कोई उलझाव या निरर्थक शब्दजाल नहीं है। उनके पास हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, तुर्की, फ़ारसी आदि भाषाओँ के सरल शब्दों का अकूत भंडार है। उन्होंने अपनी कहानियों में जिन तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज शब्दों के प्रयोग किए हैं, वे बहुप्रचलित हैं और सहजता से पठनीय हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में जीवन के यथार्थ को वे बड़ी शिद्दत से उभारते हैं। सरल, संयत शब्दों से निर्मित उनके संक्षिप्त वाक्य में तारतम्यता बनी रहती है। देशज शब्दों की अधिकता उनकी कहानियों के सबल पक्ष हैं।

अमरकांत जिस क्षेत्र या परिवेश का वर्णन करते हैं, उसकी हर स्तर पर गहरी समझ भी रखते हैं। उनकी भाषा ध्वन्यात्मक, संकेतात्मक, प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक, रूपात्मक, संवादात्मक, चित्रात्मक आदि शक्तियों से युक्त है। सामाजिक, राजनीतिक विडंबनाओं और विकृतियों पर प्रहार करने के लिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया है। कम-बहुत मात्रा में हास्य भी उनकी भाषा में समाहित है।उनकी भाषायी शक्तियों को निम्न आधारों पर परखा जा सकता है :

(1) **शब्द चयन** : अमरकांत ने अपनी कहानियों में जिसतरह के शब्दों का चयन किया है, उससे ज्ञात होता है कि उनका शब्दकोश अत्यंत समृद्ध है। सरलता, सहजता और बोधगम्यता उनके शब्द-चयन के आधार हैं। वे कथ्य के अनुसार तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों के विशिष्ट प्रयोग करते हैं।

ऺतत्सम शब्द :अमरकांत तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुतायत में करते हैं। परन्तु इन शब्दों के अर्थ अपने परंपरागत अर्थ से भिन्न होते हैं। वे तत्सम शब्दों का प्रयोग भ्रष्टाचार में लिप्त लोगों की करनी और कथनी में अंतर बताने के लिए करते हैं। शोषक व्यक्ति अपनी धूर्तता, चालाकी, मक्कारी, अवसरवादिता आदि को छुपाने के लिए मुखौटा के रूप में इस भाषा का इस्तेमाल करते हैं, परन्तु अमरकांत के हाथों उनकी पोल आसानी से खुल जाती हैI **'बस्ती'** कहानी में बांकेलाल बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग इसलिए करता है ताकि वह जन-समर्थन प्राप्त करके विभिन्न समीतियों के कोशों को अपने अधिकारों में ले सके और वह भी रामलाल की तरह निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए उनका उपयोग कर सके। कहानी के इन पंक्तियों द्वारा इसे समझा जा सकता है:

"उसके अपने भाषणों में आत्मा, महान आदर्श, नैतिकता, शहादत, क्रांति, रक्त आदि शब्दों की भरमार होती थी। बीच-बीच में वह ललकार कर कहता था, 'मैं चेतावनी देता हूँ कि..। वह गरज कर ऐलान करता कि आइंदे यदि यहाँ कोई भ्रष्टाचार की घटना हुई तो जनता उसको बर्दाश्त नहीं करेगीI"[1] रामलाल के विरुद्ध वह आत्मानंद को भड़काता है :

"रोज दावतें होती हैं। बड़े-बड़े लोग आते हैं। बस्ती के किसी को भी नहीं पूछा जाता। सारी समीतियाँ और उनका सारा कोष उनकी जेब में रहता है। कभी पैसे का हिसाब वह देते हैं? मैं इसका विरोध करूँगा क्योंकि मैं अपने महान आदर्शों की हत्या होते नहीं देख सकता। मैं तुम्हारे जैसे ईमानदार और कर्मठ व्यक्ति की मदद के लिए आया हूँ।"[2]

बांकेलाल उक्त शब्दों का प्रयोग सिर्फ जनता में अपना विश्वास स्थापित करने के लिए करता है। परन्तु विश्वास ज़माने के बजाय ये उसकी पोल ही खोल रहे हैं। **'हत्यारे'** कहानी का दोनों युवक गोरा और सांवला राष्ट्रीय संकट, बाल ब्रह्मचारी, अखिल विश्व, प्रार्थना, सत्य, अहिंसा, सामाजिक, नैतिक आदि शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं। आवारा की तरह घूमना उनके लिए विदेश भ्रमण है। शारीरिक वासना की पूर्ति इनके लिए रचनात्मक कार्य हैं। अपने द्वारा किए गए घृणित कार्य को वे क्रांति कहते हैं। वस्तुत: ये शब्द इनके लिए कोई अर्थ नहीं रखते। वे डींग मारने के लिए ही संस्कृत के बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिससे उनकी विवेकहीनता ही उजागर होती है। गोरा सांवले के बारे में मजदूर स्त्री से कहता है :

"आज तुम्हारी सेवा में विश्व के महान नेता को लाया हूँ। ये अखिल विश्व लोफर संघ के अध्यक्ष हैं। इनको हर तरह से तुम्हें खुश करना है।"[3] यहाँ सेवा, महान नेता, संघ शब्दों के अर्थ अपने वास्तविक अर्थ से बिलकुल ही अलग हैं। ये शब्द अपने अर्थ खोकर विशिष्ट अर्थ देने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत भाषा का यह इस्तेमाल अभूतपूर्व है, जो अमरकांत के समकालीनों में नहीं है। अनुनयपूर्ण, असमंजस, अतएव, अत्याचार, अधिकांश, अनिश्चितकाल, अंतरतम, अनुरूप, अनभिज्ञता, अवकाश, आकर्षित, आर्थिक, आश्चर्य, आश्वासन, आत्म-संतुष्टि, आमूल, आगंतुक, उत्साह, उत्तेजित, उद्घाटन, उदारतापूर्वक, उपस्थित, उपदेश, प्रतीक्षा इत्यादि तत्सम शब्द उनकी कहानियों में प्रयुक्त हैं। उनकी भाषा सांस्कृतिक चेतना से युक्त है।

ϒतद्भव शब्द : तत्सम शब्दों के रूप में ध्वनि संबधी विकारों के फलस्वरूप तद्भव शब्द बनते हैं। अमरकांत की भाषा में इन शब्दों के प्रयोग बहुलता से हुए हैं। कुछ उदाहरणों से इसे देखा जा सकता है : "वह तो परमपिता परमेसर हैं।"[4]

"धीरे-धीरे क्यों बोलूँ ,इसी लच्छन से परसाल बीमार पड़ जाया गया था।"[5]

"नहीं तो तुम कौन सदाबरत चला रही थी ?"[6]

"मुझसे ऐसी भाखा न बोलना, हाँ।"[7]

यहाँ परमेसर, लच्छन, सदाबरत, भाखा शब्द तद्भव हैं। इनके अतिरिक्त तीरथ, मरद, उपास, रोआँ-रोआँ, कौवा, माई, मूरख, दुधारू, बिसुन इत्यादि तद्भव शब्द उनकी कहानियों में मिलते हैं।

ϒदेशज शब्द : बोल-चाल के शब्द को देशज शब्द कहते हैं। अमरकांत अपनी भाषा में देशज शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक मात्रा में करते हैं, यह उनकी विशिष्टता है। उनके ये शब्द क्षेत्रीयता का परिचय देते हैं। देशज शब्दों के प्रयोग से वातावरण और पात्रों में सजीवता, आत्मीयता और प्रामाणिकता आई है :

"परन्तु अचानक उसके चाचा उसे पकड़कर बिला कसूर बुरी तरह पीटने लगे थेI"[8] "मन की बात न होने पर खाने की छिपुली पटक देता, पानी की घइली में थूक देता, धेला चलाकर मार देता","क्या कहूँ, बाबा बलेसरनाथ ही हमसे नाराज हैं।"[9]"बिसुनवा! आज यहाँ लहास गिर जाएगीI"[11] "पुलिस को मालूम हो गया तो उसी को जेहल में डाल देगी","करइत है, करइत! सराही धिया डोम घर जाती है।"[12]

यहाँ बलेसरनाथ, घइल, थूक, ढेला, मूस, छिपुली, बिसुनवा, लहास, करइत, जेहल, धिया, परबतिया आदि देशज शब्द है।

ϒअंग्रेजी शब्द : अमरकांत एक अनुभवी कहानीकार हैं। वे धूर्त, अवसरवादी लोगों की मानसिकता से अच्छी तरह वाकिफ हैं। अपने को श्रेष्ठ और दूसरे को तुच्छ बताने और समझने की उनकी आदत को दिखाने के लिए अमरकांत अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। ये अंग्रेजी शब्द साधारण बोलचाल में आने वाले शब्द ही हैं, जिन्हें समझने में कोई परेशानी नहीं होती है। टाइम-टेबुल, प्राइवेट, फ़ीस, पेपर, इंटरव्यू, प्रैक्टिस, कोट, ब्रिटिश, डॉक्टर, कलक्टर, डिप्टी, कम्पोजर, हॉकर, मशीनमैन, फॉरमैन, प्रेस, प्रोफ़ेसर जैसे अनेक अंग्रेजी शब्द उनकी कहानियों में मिलते हैं।

'बहादुर' कहानी में कहानी का वाचक **बहादुर** नामक नौकर को अपने घर आए रिश्तेदार की बात को सच मानकर चोरी के इल्जाम में पीटता है। उसका रिश्तेदार बहादुर के प्रति अंग्रेजी में बोलता है :

"यू डू नाट नो, दीज पीपुल आर एक्सपर्ट इन दिस आर्ट।"[13] '**जोकर'** कहानी का नलिन भाई गरज-तड़प रहे थे – "छोड़ दो मुझे, आज मैं इस ऋषि-मुनि के बच्चे का यहीं वध करूँगा। आई विल किल हिम।"[14]

ϒअरबी, फारसी, तुर्कीशब्द : अमरकांत अरबी, फारसी और तुर्की भाषा के शब्द भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग में लाते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त इन विदेशी भाषाओँ के शब्द हिन्दी में काफी घुले-मिले हैं और भाषा की शक्ति को बढ़ा रहे हैं। उनकी कहानियों में प्रयुक्त कुछ अरबी, फारसी और तुर्की शब्द हैं :

अरबी शब्द : हैजा, दहशत, फ़िराक, आदत, गुलामी, अव्वल, इस्तेमाल, दफ्तर, इस्तीफा इत्यादि।

फारसी शब्द : उस्ताद, कमवख्त, आवारा, खुश, गुलाब, बीमार, रंग, लेकिन, हजार, शादी, आबरू, अजीब, याद, सरकार, किस्मत इत्यादि।

तुर्की शब्द : बहादुर, लाश, बीवी इत्यादि।

ϒध्वन्यार्थक शब्द : अमरकांत की कहानियों में ध्वन्यार्थक शब्दों का बहुत ही सुन्दर प्रयोग हुआ है। उन्होंने रेणु से भी ज्यादा ध्वन्यार्थक शब्दों का प्रयोग अपनी कहानियों में किया है। उनकी ध्वनियाँ रेणु की तरह विशिष्ट न होकर रोजमर्रा की साधारण ध्वनियाँ हैं। जिससे उनकी भाषा झंकृत हो उठी है, इसमें पूर्ण सजीवता आई है। खर-खर खाँसना, हहर-हहर नहाना, चापुड़-चापुड़ खाना, हकर-हकर पानी पीना, धड़-धड़ नमस्कार करना, गट-गट निगलना, लपर-लपर चलना, टुकुर-टुकुर देखना, डग-डग चलना, सुड़-सुड़ पीना इत्यादि बोलचाल के ध्वन्यार्थक शब्दों के उदहारण हैं।

ϒनिरर्थक शब्द : अमरकांत भाषा में सरलता के साथ-साथ स्वाभाविकता और सहजता लाने के लिए कई जगहों पर सार्थक शब्दों के साथ ही कुछ निरर्थक शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। उनके ये शब्द सामान्य व्यवहार और बोलचाल के हैं। **'सवा रुपए'**कहानी की कुछ पंक्ति में निरर्थक शब्दों के अनूठे प्रयोग को देखा जा सकता है :

"बुड्ढे को बकने-**झकने** दो। झूठ-मूठ का बहाने किए करता है।"[15]"वह मुँह फुलाए चुपचाप घर के अटरम-**सटरम** काम करती रही।"[16] "जमुना भंडार-घर में कुछ खटर-**पटर** कर रही थी।"[17] "लड़के इम्तहान-**विम्तहान** की बात कर रहे होंगे।"[18] **"भूख-वूख** थोड़े है, मजाक किया था।"[19]

यहाँ बकने के साथ झकने, झूठ के साथ मूठ, अटरम के साथ सटरम, खटर के साथ पटर, इम्तहान के साथ विम्तहान, भूख के साथ वूख शब्दों के प्रयोग बहुत ही प्रभावकारी और सार्थक हैं। इनके प्रयोग से भाषा में प्रवाहशीलता और एक प्रकार की आत्मीयता आई है। इसीतरह खुसुर-फुसुर, उलट-पुलट, ओना-कोना, फल-मूल, बक-झक, लुगाई-वुगाई, अंतरा-संतरा, नंग-धड़ंग, नौकर-चाकर, फैला-फेलू, फाड़-फूड़ इत्यादि बोलचाल के निरर्थक शब्दों के प्रयोग भी उनकी कहानियों में देखे जाते हैं।

ϒद्विरुक्त शब्द : अमरकांत की कहानियों में द्विरुक्त शब्दों के भी प्रयोग मिलते हैं। इनके प्रयोग से भाषागत सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। कथानक के सहज प्रवाह को बनाए रखने में इन शब्दों से काफी मदद मिली है। शिव-शिव, फाड़-फाड़, साफ-साफ, टनक-टनक, अटक-अटक, थुड़ी-थुड़ी, गटर-गटर, करम-करम, रोने-रोने, ठीक-ठीक, सबेरे-सबेरे, लेटे-लेटे, गट-गट, डग-डग, लपर-लपर, टुकुर-टुकुर, खर-खर, धड़-धड़, हहर-हहर, चापुड़-चापुड़, हकर-हकर जैसे द्विरुक्त शब्द उनकी कहानियों की भाषा की सरसता को बढ़ाते हैं। इनके अतिरिक्त वे **बाजारू और अपशब्दों** का प्रयोग भी कथानक की आवश्यकता के अनुसार करते हैं।

(2) **मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ** : मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग अमरकांत जी अधिक मात्रा में करते हैं। बोलचाल के मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से अमरकांत की भाषा अधिक सजीव, सशक्त, सम्प्रेषणयुक्त और प्रामाणिक हो उठी है। **'डिप्टी कलक्टरी'** कहानी में आर्थिक स्थिति से लाचार पिता अपने बेटे को कोसने के लिए विवश है :

"थर्ड क्लास बी.ए. आप हैं, चौबीसों घंटे मटरगश्ती आप करते हैं, दिन-रात सिगरेट आप फूँकते हैं! आपमें कौन-से सुर्खाव के पर लगे हैं, जनाब? बड़े-बड़े बह गए, गदहा पूछे कितना पानी? फिर करम-करम की बात होती है। भाई, समझ लो, तुम्हारे करम में नौकरी लिखी ही नहीं। अरे हाँ, अगर सभी कुकुर काशी ही सेवेंगे तो हँड़िया कौन चाटेगा?"[20] जमुना बोली –"इतना भी नहीं होगा, तो उसका दिल टूट जाएगा। अंत में उसका गला भर आयाI शकलदीप बाबू आपे से बाहर हो गए।"[21]

'सन्त तुलसीदास और सोलहवाँ साल' कहानी के कुछ अंश : " रणबहादुर सिंह उसपर लट्टू थे।"22"उसने मुस्कराकर ठेंगा दिखा दिया","गाँव भर में थुड़ी-थुड़ी मच गयी","जोरू का गुलाम हो गया है", "बेटा सब पर चूना फेर रहा है","शिकायत करने वालों को जली-कटी सुनाने लगे","फेल होने पर उनका कलेजा ठंडा हुआ","मैं किस खेत की मूली हूँ","शकुंतला का चेहरा फक पड़ गया।"[23]

यहाँ 'सुर्खाव के पर लगना', 'दिल टूटना', 'गला भर आना', 'लट्टू होना', 'ठेंगा दिखाना', 'जोरू का गुलाम होना', 'थुड़ी-थुड़ी मचना', 'सब पर चूना फिरना', 'कलेजा ठंडा होना', 'खेत की मूली होना', 'चेहरा फक पड़ जाना' मुहावरे हैं और 'बड़े-बड़े बह गए, गदहा पूछे कितना पानी', 'अगर सभी कुकुर काशी ही सेवेंगे तो हँड़िया कौन चाटेगा' लोकोक्तियाँ हैं। इनके प्रयोग से भाषा प्रवाहमयी, प्रभावशालिनी, मनोहारिणी एवं प्राणवती हो गई है। इसके अनूठे प्रयोग से निम्नवर्गीय जीवन की सच्चाई प्रामाणिकता के साथ यहाँ चित्रित हो उठी है। 'डिप्टी कलक्टरी' (पेज न०-88) और 'सन्त तुलसीदास और सोलहवाँ साल' (पेज न०-33) के मात्र दो पृष्ठों में जब इतने मुहावरे और लोकोक्तियों हैं तो लेखक के मुहावरों एवं लोकोक्तियों के बृहत्तर प्रयोग एवं भण्डारण क्षमता का अंदाजा सहज ही लग जाता है।

(3) **वाक्य संरचना, विशेषण-विशेष्य और क्रिया-विशेषण :** अमर कथाकार अमरकांत विशिष्ट वाक्य संरचना, अजूबे विशेषण-विशेष्य और अनूठे क्रिया-विशेषण प्रयोग के कारण साहित्य जगत में अपनी विशेष छवि रखते हैं। उपेन्द्र नाथ अश्क के शब्दों में :

"उनकी वाक्य-संरचना भी अपने समकालीनों से भिन्न है। जैसे अमरकांत यह नहीं कहेंगे कि उसने दुकान खोली और असफल हो गया। वे कहेंगे – 'उसने छोटी-सी दुकान खोली थी और उसमें घाटा उठाने का सम्मान प्राप्त किया था।' अथवा वे नहीं लिखेंगे कि अभी भी वह पुराना सपना पाले हुए हैं, वरन लिखेंगे – 'खैर, अब भी उसका महान उद्येश्य पुस्तक प्रकाशन द्वारा लखपति बनने का है।' एक और वाक्य देखो – 'इसके बाद शिकायतों के कुछ महाभियान शुरू हुए जो अन्य कर्मचारियों के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए।' ऐसे वाक्यों का उनकी कहानियों में अंत नहीं। इन्हीं हास्य-व्यंग्य मिले वाक्यों से वे इच्छित प्रभाव पैदा करते हैं।"[24]

अमरकांत की भाषा की एक अन्य विशेषता उनके विशेषण-विशेष्य के प्रयोग से है, जो सामान्य तौर पर प्रयोग नहीं किए जाते हैं। वे अपनी कहानियों में हास्यास्पद गंभीरता, मानववादी गुण्डा, भयजन्य क्रोध, उदार व्यापारिक बुद्धि, कोमल सतर्कता, कुख्यात गाँधीवादी, मीठी-उदासी, सयत्न लापरवाही, अकर्मण्य दया इत्यादि परस्पर विरोधी विशेष्य-विशेषणों का सार्थक प्रयोग करते हैं। एक साथ देखने के अभ्यस्त नहीं होने के कारण ये परस्पर विरोधी और बेतुके लगते हैं, लेकिन इनके अर्थ इतने सटीक हैं कि उनका यह प्रयोग अति विशिष्ट बन पड़ा है। ये विशेषण-विशेष्य स्थिति-विशेष में अपनी दृश्यता या पात्र की विशिष्ट भाव-भंगिमा द्वारा नाटकीयता उत्पन्न करते हैं। **'टप-टप** आँसू चूने लगे' वाक्य में टप-टप क्रियाविशेषण का प्रयोग साधारण और अनूठा है। लपर-लपर चलना, टुकुर-टुकुर देखना, धड़-धड़ नमस्कार करना, हहर-हहर नहाना, चापुड़-चापुड़ खाना, हकर-हकर पीना जैसे अनेक क्रियाविशेषण शब्दों का प्रयोग उनकी कहानियों में मिलता है। कई जगहों पर छोटे-मोटे तुच्छ कार्य करने पर भी ऐसा भाव पात्रों के चहरे पर आता है, मानो उन्होंने भारी प्रशंसा का काम किया हो, इस भाव को व्यक्त करने के लिए अमरकांत 'प्रशंसनीय फुर्ती', 'प्रशंसनीय मेहनत', 'प्रशंसनीय हुज्जत', 'सराहनीय उदारता' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं।

(4)**सांकेतिकता** : अमरकांत की कहानियों की भाषा सांकेतिक है। जहाँ अत्यधिक विस्तार या विश्लेषण की जगह नहीं होती वहाँ वे संकेत द्वारा ही स्थिति को स्पष्ट कर देते हैं। कहीं-कहीं कहानियों के पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा भी स्थिति स्पष्ट होती है। उनका संकेत पाठक के मन में प्रश्न उठाने में सक्षम है। **'असमर्थ हिलता हाथ'** में लक्ष्मी की शारीरिक स्थिति का ठोस संकेत देते हैं:

"उसने घर के लोगों को पुकारा। सभी दौड़े आए। बड़े लड़के ने दाहिना पैर और दाहिना हाथ हिलाकर देखा। वे बेजान से बिस्तर पर गिर पड़े। फिर उसने मुँह में पानी डाला। पानी मुँह से निकलकर बिस्तर पर फैल गया। लकवा है! मुँह टेढ़ा हो गया है। अंगों पर है...।"[25]

'असमर्थ हिलता हाथ'कहानी में लक्ष्मी की आसन्न मृत्यु का संकेत घर के बाहर वृक्ष पर दो-तीन कौओं के बोलने में है। निम्न पंक्तियों में मीना की आंतरिक दशा की ओर संकेत है : "आकाश बादलों से ढका था, यद्यपि पानी नहीं पड़ रहा था।"[26]

'**दोपहर का भोजन**' कहानी की स्त्री पात्र "सिद्धेश्वरी को समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। वह चाहती थी कि सभी चीजों को ठीक से पूछ ले, सभी चीजें ठीक से जान ले और दुनिया की हर चीज पर पहले की तरह धड़ल्ले से बात करे। पर उसकी हिम्मत नहीं होती थी। उसके दिल में जाने कैसा भय समाया हुआ था!"[27]

सिद्धेश्वरी का पहले की तरह हर बात को धड़ल्ले से जान लेने की हिम्मत नहीं जुटा पाना, अवश्य ही कुछ अपघटित होने का ठोस संकेत है। घर की स्थिति अच्छी होने के कारण ही पहले वह धड़ल्ले से कोई भी बात पूछ लेती थी, लेकिन अब नहीं पूछ पा रही है, क्योंकि अभी उसके घर की स्थिति अत्यधिक ख़राब है, अपनी स्थिति से वह डरी हुई भी है।

"उसने पहला ग्रास मुँह में रखा और तब न मालूम कहाँ से उसकी आँखों से टप-टप आँसू चूने लगे।"[28] सिद्धेश्वरी का अपने छोटे लड़के को देखने में उसके भोजन नहीं करने का संकेत है। उसके पास औरे कुछ भी खाद्य सामग्री शेष नहीं होने का भी यहाँ संकेत है। सिद्धेश्वरी की आँखों से टप-टप चूने वाले आँसू में चली गई बेहतर आर्थिक स्थिति और वर्तमान स्थिति दोनों का ठोस संकेत है। इसी कहानी का बड़ा लड़का **रामचंद्र** "एक-दो क्षण बाद रोटी के टुकड़े को धीरे से हाथ से उठाकर आँख से निहारा और अंत में इधर-उधर देखने के बाद टुकड़े को मुँह में इस सरलता से रख लिया, जैसे वह भोजन का ग्रास न होकर पान का बीड़ा हो।"[29]

यहाँ रामचंद्र की क्रिया उसके अभाव का ठोस संकेत देती है। '**शुभचिंता**'कहानी में ज्ञान, सीता के प्रेम को अनुचित कहता है : "मैंने देखा कि शायद तुम कोई ऐसी कमजोरी पाल रही हो, जो ठीक नहीं..हमारे और तुम्हारे दोनों के लिए..।"30इससे सीता को बहुत दुःख होता है।वह फूट-फूट कर रोना चाहती है। इसका संकेत अमरकांत निम्न पंक्ति में देते है : "आसमान बरसने-बरसने को हो रहा था।"[31]

'गले की जंजीर' कहानी में आज के लोगों की खोखली संवेदना की ओर संकेत है। 'इंटरव्यू', 'काली छाया', 'फर्क' आदि कहानियों में मध्यमवर्गीय मानसिकता की ओर संकेत है।कलाप्रेमी', 'देश के लोग', 'दलील' आदि में बुद्धिजीवी वर्ग की अवसरवादिता, हृदयहीनता,काइयाँपन की ओर संकेत है। इसी प्रकार अन्य कहानियों में सांकेतिकता का जबरदस्त प्रयोग है।

(6) **प्रतीकात्मकता :** अमरकांत की भाषा प्रतीकों के प्रयोग से व्यंजना शक्ति से परिपूर्ण हो गयी है। वे अपनी कहानियों में प्रतीकों का व्यापक प्रयोग करते हैं। सारे प्रतीक अपने नवीन रूप में हैं, जो सबके वश की बात नहीं है। उनके हर प्रतीक कम-से-कम दो अर्थ का वहन करता हुआ चलता है। उनके सभी प्रतीक एकदम सटीक, सार्थक और संदर्भवान हैं और अचरज में डालने वाले हैं।लेखक की इस विलक्षण प्रतिभा पर अवाक् रह जाना पड़ता है। अमरकांत ने प्रतीकों का प्रयोग तीन स्तरों पर किया है : कहानी के शीर्षकों में, पात्रों के नाम में, पात्रों के आचरण में आदि।

शीर्षक में प्रतीक : अमरकांत की कहानियों के शीर्षक जैसे - 'दर्पण', 'मूस', 'मकान', 'छिपकली', 'विजेता', 'फर्क', 'लड़की और आदर्श', 'कुहासा' 'हंगामा', 'हार', 'ठंढ और ऊष्मा', 'गगन बिहारी', 'जिन्दगी और जोंक', 'म्यान की तलवारें', 'मछुआ', 'कबड्डी', 'हत्यारे', 'मिठास' आदि बड़े ही प्रतीकात्मक हैं। **'जिंदगी और जोंक'** कहानी में रजुआ 'जिन्दगी' का प्रतीक है और 'जोंक' शोषक वर्ग का प्रतीक है। शोषक के लिए 'जोंक' जैसा सटीक प्रतीक अद्भुत है। इस प्रतीक के माध्यम से उसके शोषण की भयंकरता का आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है। इस कहानी का मुख्य पात्र रजुआ अत्यंत बदहाली में भी जीना चाहता है, लेकिन जोंक (शोषक वर्ग) उसके प्राणांत तक शोषण जारी रखता है। **'छिपकली'** कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। छिपकली उस शोषक व्यवस्था का प्रतीक है, जिसके अंतर्गत साधारण व्यक्ति की हैसियत एक कीट-पतंग की तरह है। कहानी के कुछ अंश :

"इसी समय उसका ध्यान एक छिपकली की तरफ गया, जो दीवार पर चुपचाप चिपकी थी और उसके सामने कुछ दूरी पर एक काला कीड़ा फड़-फड़ कर रहा था। रामजीलाल ने सोचा कि यह छिपकली पहले छोटी और दुमकटी थी, लेकिन अब उसकी दूम भी जम आई है और वह मोटी भी हो गयी है। इस ख्याल से उसको बड़ा अचंभा हुआ और उसके सूखे होंठों पर एक मुस्कराहट दौड़ गयी। सहसा छिपकली कीड़े की ओर दौड़ी, परन्तु इसी समय कीड़ा उड़कर नीचे फर्श पर पट से गिर गया।"[32]

यहाँ 'छिपकली' शोषक और 'कीड़ा' शोषित वर्ग के प्रतीक हैं। स्वतंत्रता के बाद जमींदारी-प्रथा उन्मूलन की नीति के तहत सामंती व्यवस्था कमजोर हो गयी थी और पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत फिर से उसकी जड़ जम गयी। इसी स्थिति को प्रतीकों के माध्यम से अमरकांत स्पष्ट करते हैं। छिपकली की दुम बार-बार कटती है और प्राकृतिक तरीके से बार-बार उग आती है। छिपकली की कटीपूँछ का बार-बार उग आना शोषण वृत्ति के बने रहने की जिद्द का संकेत है। तर्कहीन व्यवस्था का अंत संभव नहीं, क्योंकि समाज में वह पोषित होती रहती है।

इन प्रतीकों के रंग, शारीरिक संरचना, प्रकृति, चेष्टा आदि में भी गजब की साम्यता है। शोषक का रंग सुख-सुविधाओं में जीने के कारण छिपकली की तरह सफेद, रंगीन, मोटा, मुलायम और बड़ा है और रामजीलाल का रंग अनेक तरह की असुविधाओं और परेशानियों एवं दुखों के कारण कीड़ा की तरह काला, बदरंग, पतला, कड़ा और तुच्छ है। शोषक वर्ग का

दोहरा चरित्र, कथनी-करनी में अंतर के लिए भी यह प्रतीक अत्यंत सटीक है, क्योंकि 'गिरगिट (छिपकली) की तरह ही रंग बदलना' इनकी प्रकृति है। इस कार्य में ये उस्ताद हैं। कीड़ा छिपकली से इस तरह बचता है:

"सहसा छिपकली कीड़े की ओर दौड़ी, परन्तु इसी समय कीड़ा उड़कर नीचे फर्श पर पट से गिर गया।"[33] रामजीलाल निम्न चालाकी से बचता है :

"रामजीलाल ने जल्दी से सिर झुका लिया, क्योंकि कोई आ रहा था, संभवत: मैनेजर साहब।"[34]

'कुहासा' कहानी का शीर्षक में भी प्रतीकात्मकता है। 'कुहासा' गरीबी और अभावग्रस्तता का प्रतीक है। कुहासा, ठंढ आदि से गरीब लोग ही प्रभावित होते हैं, क्योंकि इससे बचाव का कोई साधन इनके पास नहीं होता। वे वस्त्र, भोजन, आवास की समस्या से जूझते रहते हैं। कुहासे और ठंढ के कारण मजदूरी भी नहीं कर पाते। भोजन नहीं मिलने से इसे थोड़ी देर भी झेल सकना अत्यंत कष्टप्रद होता है और वे प्राण त्याग देते हैं। **दूबर** की मृत्यु इसी तरह होती है, वह निकम्मा और कामचोर नहीं था।

'मकान' कहानी शीर्षक का दो प्रतीकात्मक अर्थ है। परम्परागत अर्थ में 'मकान' एक रहने वाला घर है, जो अंधविश्वास के कारण मनहूस है, मौलिक अर्थ में व्यवस्था का प्रतीक है, जिसमें रहकर एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति अपनी बदहाली और मानसिक दशा से भ्रमित होकर शांति के लिए छटपटाता है और परिवर्तन चाहता है। तर्कहीन व्यवस्था में रहकर व्यक्ति इंसानियत भी खो देता है। वह अपनी पत्नी और बच्चे के साथ न्याय नहीं कर पाता है। वह कृतघ्न, छली, सनकी, दरिद्र होने पर मजबूर है। शक्तिहीन मनोहर नई व्यवस्था की तीव्र आकांक्षा लिए 'वाचक' के पास बार-बार जाता है। वाचक कहता है :

"मैं सामाजिक और राजनीतिक काम भी करता हूँ और एक ऐसे उदार व्यक्ति के रूप में मशहूर हूँ, जिसका बड़े-बड़े लोगों से परिचय है और जो दूसरों के काम कर दिया करता है, इसलिए घर पर भी मेरे पास लोग आते रहते हैं। वह पहले भी मेरे पास एक-दो बार आ चुका है।"[35]

मनोहर व्यवस्था में परिवर्तन के लिए बेचैन है। वह उस व्यक्ति के पास जाता है, जहाँ से उसे वास्तव में सहयोग मिल सकता है। सामाजिक सरोकार से जुड़ी व्यवस्था की कल्पना से ही उसकी आँखें सनकी की तरह चमकने लगती है। वह कहता है :

"मकान सर्दी-गर्मी, आँधी-पानी, ओला-पत्थर से रक्षा करता है कि नहीं? मकान एक छाया देता है, जिसके नीचे इन्सान सुख के साथ सो सकता है। मकान में रहकर हमें गर्व होता है कि हमारा भी कोई अस्तित्व है।"[36]

'मकान' की कल्पना समाजवादी व्यवस्था का प्रतीक है, स्पष्ट है। मनोहर सामाजिक कार्यकर्ता के पास ही जाता है, यह भी उसी ओर संकेत है। अभी की व्यवस्था में उसे सिर्फ तकलीफ़ हो रही है। उसे विश्वास है कि स्थिति अवश्य बदलेगी। वह कहता है :

"जब मैं बाहर निकलता हूँ तब मेरा मन अपने ही आप पश्चाताप से भर उठता है। मुझमें बीवी और बच्चों का असीम प्यार उमड़कर लहरें लेने लगता है। मैं कल्पना में उनको ढाढ़स बँधाता हूँ, उनके बालों को सहलाता हूँ, उनके ललाट को प्यार से चूमने लगता हूँ। लगता है कि उनको जितना मैं प्यार करता हूँ, उतना कोई भी किसी को न करता होगा। मैं उनको खुश देखना चाहता हूँ। ऐसा सोचते ही पता नहीं कैसे यह विश्वास मन में आ बैठता है कि यह स्थिति बदल जाएगी।"[37] वह चाहता है, एक " ऐसी व्यवस्था..जिसमें गरीबी, अन्याय, झूठ, शोषण, अशिक्षा, भ्रष्टाचार आदि नहीं है, बल्कि जिसमें सभी व्यक्तियों को सामान अवसर प्राप्त हैं और जिसमें सारा समाज साथ-साथ आगे बढ़ता है।"[38]

'गगनबिहारी' शीर्षक के अंतर्गत ऐसे व्यक्ति का चरित्रांकन है, जो मेहनत और श्रम के क्षेत्र में टिक नहीं पाता है और ज्यादातर कल्पना लोक में ही विचरण करता है। यह भी कुव्यवस्था से उत्पन्न स्थिति है। जिस तर्कहीन व्यवस्था में कार्य और कार्यफल में कोई समानता नहीं हो, प्रतिभाओं और योग्यताओं की कोई पूछ नहीं हो, वहाँ गगनबिहारी जैसे चरित्र ही पैदा होते हैं। गगन बिहारी एक व्यक्ति नहीं अपने पूरे समुदाय का प्रतीक है।

'म्यान की दो तलवारें' शीर्षक कहानी में साथ-साथ काम करने वाले दो मित्रों की आपसी अहम के कारण उत्पन्न कलह का चित्रण है। विनय और मदमस्त एक-दूसरे को नीचा दिखाने में ही दिन काट रहे हैं, क्योंकि व्यवस्था में उनकी कोई पूछ नहीं है। उनकी प्रतिभा को इस तर्कहीन व्यवस्था ने कोई दिशा नहीं दी है। यह कहानी दिशाहीन युवा की मन:स्थितियों की प्रतीकात्मक कथा कहती है।

'चाँद' कहानी का शीर्षक में प्रतीकात्मकता है कि जिसप्रकार चाँद को अपना प्रकाश नहीं होता है, वह सूर्य के प्रकाश से ही चमकता है, उसीप्रकार कहानी का मुख्य पात्र एक छोटा-मोटा लेखक है, वह प्रभावशाली लोगों के संपर्क में आकर ही यश और मान-सम्मान प्राप्त करता है।

'मछुआ' कहानी का अखिलेश स्वयं को मछुआ मानता है और स्त्रियों को मछलियाँ। मछुए की भाँति ही वह स्त्रियों को अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न करता रहता है। '**अमेरिका की** यात्रा' कहानी का शीर्षक एक ऐसे लड़के का प्रतीक है, जो अपने यथार्थ को समझे बिना बड़ी-बड़ी काल्पनिक योजनाएँ बनाता है।

ᙎपात्र में प्रतीक : अमरकांत की कहानियों के 'मूस', 'बहादुर', 'जंतु', 'दूबर आदि पात्र स्वयं दरिद्रता के प्रतीक हैं। इनके नाम से ही उनके जीवन में निहित दरिद्रता का आभास हो जाता है। अमरकांत की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि उनके पात्र अपने निजी व्यक्तित्व और विशिष्टताओं से युक्त रहते हुए भी पूरे समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ᙎपात्रों की चेष्टाओं में प्रतीक : अमरकांत की कहानियों में मनुष्य कभी-कभी पशु-पक्षियों जैसा आचरण करता दिखाई देता है। यह लगभग उनकी पूरी कहानियों में देखने को मिलता है। मनुष्य का यह आचरण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में व्याप्त जंगलराज का प्रतीक है। "समाज में यदि तर्कशील, मानवीय व्यवस्था होती तो सक्रियता, कर्मठता सार्थक होती है, लेकिन 'जंगल' में व्यक्तिगत कर्मठता का भरोसा मृगतृष्णा है। जंगल का यह एक रूप है। इस जंगल की कुटिलता यह है कि वह कभी-कभार कुछ लोगों को अच्छे अवसर भी प्रदान कर देता है। इससे जंगल वासी पूरी तरह अपना मोहभंग नहीं कर पातेI वे सक्रिय होते हैं, उछल-कूद करते हैं, एक-दूसरे को कटते हैं, (जंगल का मालिक वर्ग अपना काम कर रहा होता है) हाँफते हैं, थकते हैं, निराश होते हैं, माथा ठोककर रह जाते हैं और भाग्य का खेल समझकर सो जाते हैं। अमरकांत के पात्रों का बार-बार पशु-पक्षियों जैसा आचरण करना इस मानव-जंगल के कारण है। उनकी मानवता उनके जंगल से टकराती है। किसी क्रान्तिकारी परिवर्तन के आभाव में प्राय: जंगल ही जीतता है। अमरकांत के पात्र स्थितियों से निराश होकर अंत में खामोश और पस्त हो जाते हैं। जैसे पशु-पक्षी कटघरे में से बाहर निकलने की अपार छटपटाहट के बाद असफल होकर सो जाएँ।"[39]

"डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का इस तर्कहीन व्यवस्था को जंगलराज मानना सर्वथा उचित है।"[40] अमरकांत का प्रतीक-प्रयोग अनूठा व अद्‌वितीय है।

(7)**बिंबात्मकता** : बिंब-प्रयोग रचनाकार की भाषाज्ञान और अनुभव काद्‌योतक है। बिंब के द्‌वारा कल्पना का मूर्तिकरण होता है और संवेदनशीलता बढ़ती है। कहानीकार अमरकांत बिंब-प्रयोग में विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनके बिंब उनकी

कहानियों के पात्रों के रूप,आकार, वेशभूषा, सौंदर्य, चेष्टाएँ, कार्य करने के तरीके, व्यवहार, जीवन-पद्धति, मनोभावों आदि से संबंधित है। पात्रों की चेष्टाओं की पशु-पक्षियों से उपमा उन्हें अन्य कहानीकारों से बिलकुल ही अलग करती है। विभिन्न उपमाओं के सहारे अमरकांत उस अमानवीय व्यवस्था पर चोट करते हैं, जिसमें रहकर मनुष्य पशु-पक्षी की तरह जीवन जीने की विवशता है।**'कुहासा'** कहानी की कुछ पंक्तियों के द्वारा उभरता चित्ताकर्षक बिम्ब है :

"काफी अनुशासित ढंग से और बहुत ही शांति के साथ वे चौराहे पर खड़े अथवा बैठे थे, जैसे तालाब के किनारे कतार में तैरते अनिगनत बत्तख। उनके कपड़ों के रंग में जो अनोखी समानता थी, वह थी उनका मटमैलापन। मजदूरिनें किसी की ओर देख नहीं रही थीं, बल्कि वे सिर के पल्ले को थोड़ा आगे खींचकर एक-दूसरे की ओर मुँह करके भेड़ों की तरह खड़ी थीं।"[41]बिंब रचनाकार के सूक्ष्म इंद्रिय-बोध के प्रतीक होते हैं। बिंबों के प्रयोग से रचना में स्पष्टता, संप्रेषणीयता, सजीवता और उसके सौंदर्य में वृद्धि होती है। अमरकांत के सूक्ष्म इंद्रिय-बोध के सब मुरीद हैं।

(8) **व्यंग्यात्मकता :** यथार्थ को तीक्ष्णता से व्यक्त करने का सबसे सशक्त हथियार व्यंग्य ही है। यथार्थ जब तीक्ष्ण होता है तो वह व्यंग्य का रूप ले लेता है। कहानीकार अमरकांत तीव्र व्यंग्य की धार पर जीवन के यथार्थ का चित्रण करते हैं। उनकी कहानियों में जहाँ स्वार्थ-सिद्धि और व्यक्तिगत लाभ के लिए कोरी भावुकता, आदर्श, नैतिकता, उदारता और दयालुता की दुहाई देने वाले पात्र आए हैं, वहीं व्यंग्य है।

धूर्तों, भ्रष्टों, लोभियों की कथनी-करनी में अंतर को व्यंग्य के माध्यम से वे बड़ी कुशलता से चित्रित करते हैं। 'दोस्त का गम', 'महान चेहरा', 'प्रिय मेहमान', 'लड़की की शादी', 'शक्तिशाली', 'तंदुरुस्ती का रोग', 'हंगामा', 'लोक-परलोक', 'चाँद', 'एक बाढ़ कथा', 'बौउरिया कोदो', 'श्वान गाथा', 'बस्ती', 'कला प्रेमी', 'अमेरिका यात्रा' आदि कहानियों की भाषा व्यंग्यात्मक शक्ति से ओत-प्रोत है।

'कला प्रेमी' कहानी में कला संस्थाओं की सभाओं में पढ़ी जाने वाली लम्बी, निरर्थक और उबाऊ लेख के बारे में अमरकांत व्यंग्य करते हैं :"हॉल खचाखच भरा हुआ था, जिसमें शहर के काफी सम्मानित व्यक्ति उपस्थित थे। मंच पर एक मंत्री, कुछ पदाधिकारी और प्रतिनिधि बैठे थे। इस समय सचिव महोदय अपनी एक लम्बी रिपोर्ट पढ़ रहे थे। लम्बाई में उस रिपोर्ट की तुलना रावण के दरबार में हनुमानजी की पूँछ से की जा सकती है, जो गांधीजी पंडित नेहरू, मिसेज रंजन, राष्ट्र, मानवता, कला आदि की मिली-जुली जन्म-कुंडली-सी प्रतीत होती थी। सारा हॉल असीम धैर्य के साथ जमुहाइयाँ लेता हुआ इस सारगर्भित रिपोर्ट को सुन रहा था।"[42]

कला संस्थाओं में हो रही धाँधली और उनके निरर्थक सभाओं में किस तरह नेहरू, गाँधीजी जैसे नेताओं का नाम लेते हुए बड़ी होशियारी से स्थानीय प्रभावशाली नेताओं को उनके समक्ष रख दिया जाता है तथा राष्ट्र, मानवता आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिसका प्रभाव या महत्व शून्य होता है, पर लेखक ने व्यंग्य किया है। यहाँ कथनी-करनी में अंतर स्पष्ट है।

'कुहासा' कहानी में दाने-दाने के लिए तरसता एक पिता झींगुर अपने पुत्र दूबर को घर से निकाल देता है। दूबर भागकर शहर आता है। भूख और प्यास से व्याकुल दूबर को बाबू साहब के यहाँ काम मिलता है :

"बाबू साहब को पोता हुआ था, जिसकी बरही के अवसर पर पिछली रात एक अच्छी-खासी दावत हुई थी। इस ख़ुशी के कारण बाबू साहब मन में काफी उदार हो रहे थे, इसलिए उन्होंने दूबर से सिर्फ पाँच घंटे डटकर काम लिया। जिसकी वजह से वह अधमरेपन की स्थिति में पहुँच गया। बाबू साहब की इसलिए भी तारीफ करनी पड़ेगी कि काम ख़त्म होने पर उन्होंने

दूबर के सामने पत्तल पर रात का बचा हुआ खाना परोस दिया, जिसमें लकड़ी की तरह कड़ी पूड़ियाँ-कचौड़ियाँ, कोहड़े की बासी महकती सब्जी, पुलाव की भुरकनी और ढेर सारी मीठी चटनी थी लेकिन दही-बड़े और बुंदियाँ नदारद", "बाबू साहब ने कहा - "ले ससुर, डटकर खा। बेटा, ऐसा खाना तुम्हारे सात पुश्तों ने न खाया होगा...।"[43]"चलते समय बाबू साहब ने उसे डेढ़ रूपये देने की कृपा करते हुए कहा, लो, मेरे जैसा शरीफ आदमी इस शहर में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। दूसरों को खिलाने-पिलाने ही में तो मैं बरबाद हो गया...।"[44]

यहाँ 'उदार', 'सिर्फ', 'तारीफ', 'कृपा', 'शरीफ', 'बरबाद' शब्दों के द्वारा बाबू साहब की शोषण की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। इन शब्दों के प्राकृतिक अर्थ यहाँ बदल गए हैं। यहाँ कथनी-करनी में अंतर स्पष्ट है।

'पलास के फूल' कहानी के पात्र राय साहब और बाबू हृदयनारायण के बीच हुए सवादों के द्वारा देहातों में गरीबों की स्थिति व्यंग्यात्मक शैली में कुछ इसप्रकार अमरकांत प्रकट करते हैं :

"नहीं जानते? ....अरे, हमारे देहातों में यह आम रिवाज था। जब बाबू लोगों को किसी गरीब की बहू-बेटी पसंद आ जाती, तो वे तंग-परेशान करते, मारते-पीटते, खेतों से बेदखल कर देते, और सफलता नहीं मिलने पर बुरी तरह पिटवा देतेI फिर रात में उसके घर में घुसकर या किसी दूसरे तरीके से उल्लू सीधा करते।"[45]"यह बहुत ही कारगर तरीका समझा जाता है। मैंने भी सभी फन इस्तेमाल किये।"46"हारकर एक दिन मैंने चार आदमियों को लगाकर रात के अँधेरे में भुलई को खूब अच्छी तरह पिटवा दिया...।"[47]"मैं तो भई, अपने को जनता हूँ, मेरे - जैसा झूठा, बेईमान, नीच, घमंडी, बदकार कोई नहीं होगाI परन्तु मुझ पापी को भी सरकार ने चरणों में थोड़ी जगह दे दी है...।"[48]

इसी तरह **'गगनबिहारी'** कहानी में अस्थिर चित्त वाले लोगों पर सुन्दरलाल के द्वारा व्यंग्य करते हैं। ऐसे चरित्र के लोग परिश्रम और संयम के साथ जीवन न जीकर कम से कम परिश्रम में अधिक लाभ लेने की मनोदशा से गुजरते हैं। **'म्यान की दो तलवारें'** कहानी में साथ काम करने वाले विकल और मदमस्त की आपसी दुश्मनी को अमरकांत व्यंग्यात्मक शैली में ही प्रस्तुत करते हैं। मदमस्त और विकल परस्पर व्यंग्य करते हैं :

'देर हो रही है, देर हो रही है, जौनपुर की लोमड़ी शेर हो रही है!' 'देर हो रही है, देर हो रही है, मदमस्त जैसे लोमड़ी शेर हो रही है।"[49]

'कुहासा' कहानी का पात्र रामचरण दलाली करता है। वह मजदूरों को लोभ देकर विभिन्न पार्टियों में नारे लगवाता है। वह नगर निगम द्वारा बाँटे गये कम्बल को दूबर से अछूत की बीमारी के नाम पर झटक लेता है। इस कारण ठंढ से ठिठुरकर उसकी मौत हो जाती है। कहानीकार इस दुर्दांत शोषण से विकल होकर तीखा व्यंग्य करते हैं :

"लाश लावारिस पाई गयी थी। कुछ देर बाद उसे पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया। यह जानना जरुरी था कि उसकी स्वाभाविक मृत्यु हुई थी या किसी ने इसको जहर-वहर दे दिया था अथवा किसी ने गला घोंटकर मार डाला था।"[50]

यहाँ अमरकांत व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं।यहाँ दूबर की मौत के वास्तविक कारण की तरफ ध्यान न देकर नितांत गैर जरूरी कारणों में रूचि दिखाई जा रही है। अमरकांत के व्यंग्य प्रयोग की बहुत बड़ी विशेषता है कि सामान्य वर्ग पर किया गया व्यंग्य उसके प्रति घृणा और आक्रोश का भाव पैदा करता है लेकिन निम्नमध्यवर्ग पर किया व्यंग्य उसके प्रति दया,करुणा,प्रेम आदि भावों को उत्पन्न करता है।

(9) **हास्य और व्यंग्य:** अमरकांत जी की कहानियों में व्यंग्य के साथ-साथ हास्य के भी पुट मिलते हैं। व्यंग्य में हास्य का पुट देने से कहानियों में चित्रित समस्याओं से थोड़ी देर के लिए ही सही, निजात दिलाने की कोशिश करते हैं। **'जिन्दगी और**

जोंक' कहानी का पात्र रजुआ कई बार अपनी बातों से हास्य उपस्थित करता है। उसका छोटी जाति की स्त्रियों से मजाक करने में हास्य है। "कुँए पर पहुँचकर वह किसी औरत को कनखी से निहारता और अंत में पूछ बैठता, 'यह कौन है? अच्छा, बड़की भौजी हैं। सलाम भौजी। सीताराम सीताराम, राम-राम जपना पराया माल अपना' इतना कहकर वह दुष्टतापूर्वक हँस पड़ता।"[51] अपने नहाने के बारे में वह कहता है :"खिचड़ी की खिचड़ी नहाता हूँ न मलिकाइनजी।"[52] **'हत्यारे'** कहानी में भी हास्य गोरे-साँवले के संवाद में देखने को मिलता है :

"हलो, डियर!"

"हलो, सन!"

"इतना लेट क्यों, बेटे?"

"भई, बोर हो गए!"

"कोई खास बात?"

"यही नेहरू है, यार! उसका एक और पत्र मिला है।"

"आई सी! साँवले की आँखों और होंठों के कोरों में हास्य की हल्की सिकुड़नें पैदा होकर विलीन हो गयीं।"

"हाँ, डियर यह आदमी मुझको परेशान कर रहा है। मैंने बार-बार कहा कि, भई मेरे, भारत की प्राइममिनिस्ट्री किसी दूसरे व्यक्ति को दो, मेरे पास बड़े-बड़े काम हैं। लेकिन मानता ही नहीं।"[53]

यहाँ स्पष्ट है कि इन दोनों पात्रों का नेहरू जी से कुछ लेना-देना नहीं है। एक-दूसरे की सच्चाई से दोनों वाकिफ हैं और सिर्फ डींगें मार रहे हैं। इसी तरह हास्य-व्यंग्य के कई और उदाहरण अमरकांत की कहानियों में मिल जाते हैं। "अमरकांत की कहानियों में बहुधा ही व्यंग्य की एक प्रच्छन्न अंतर्धारा प्रवाहित रहती है जो पूरी व्यवस्था को ही छूती और छीलती चलती है। वे शोषक, शोषित और व्यवस्था तीनों पर व्यंग्य करते हैं। शोषित के प्रति किया गया उनका व्यंग्य अंतत: शोषक व्यवस्था के प्रति घृणा और आक्रोश उत्पन्न करता है और शोषित के प्रति करुणा। तर्कहीन व्यवस्था की विसंगति और विडम्बना से उत्पन्न विकृति का चित्रण अमरकांत अपनी कहानियों में व्यंग्य के माध्यम से ही करते हैं। वह अपनी कहानियों से सामाजिक बुराई की हिंसात्मकता और उग्रता का ही रचनात्मक विरोध करना चाहते हैं। यही कारण है कि व्यंग्य का जितना प्रचुर और जैसा कलात्मक उपयोग उनके यहाँ मिलता है उतना और वैसा शायद उनके सब समकालीन कहानीकारों के यहाँ मिलाकर भी नहीं मिलता।"[54]

"निम्न मध्य वर्ग की गरीबी, व्यक्तिगत संपत्ति के संस्कार, ऊँचे-ऊँचे सपने और जिंदगी की ठोकरें - यह सब यथावश्यक सहानुभूति और व्यंग्य से चित्रित करने में अमरकांत उस्ताद हैं।"[55]

(10) सादृश्यता : किसी वस्तु, व्यक्ति, दृश्य या घटना को देखकर जो प्रभाव रचनाकार पर पड़ता है, वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिए जिस वस्तु, घटना या प्रक्रिया का प्रयोग रचनाकार करता है, उसे सादृश्य विधान कहते हैं। अमरकांत का सादृश्य विधान उपमान, रूपक, विशेषण, क्रियाविशेषण, लोकोक्ति प्रयोग से निर्मित है। छोटे-छोटे दृश्यों के माध्यम से वातावरण और पात्रों की रूपाकृति स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है। अमरकांत की कहानी **'इंटरव्यू'** में सादृश्य विधान का एक विलक्षण मंजर :

"लोग अलग-अलग गुटों में बनते पास ही पास खड़े थे। अधिकतर पेंट और कोट में थे। सभी के कपड़े मँगनी के या अपने ही सही, या तो नए या धुले-धुलाए थे। छोटे-छोटे दर्जियों के यहाँ सिले हुए कपड़े शरीर से बुरी तरह पेश आ रहे थे। पेंट या तो इतने ढीले थे कि नितम्बों और पैरों का कुछ अंदाज ही नहीं मिलता था या इतने चुस्त, पेट पर कसे हुए तथा नाटे थे कि सामने से देखने पर पहनने वाला पूरा बदतमीज मालूम होता। कोट अक्सर छोटे थे और दोनों हाथ ऊँचा करने पर लगी हुई बटनों के टूटने का खतरा पैदा हो जाता था। उनके जूतों के फीते कस-कसकर बाँधे हुए थे और अधिकतर के मोज़े गंदे थे।"[56]

"उम्मीदवार लोग नौ बजे से ही जिलाधीश के बंगले के सामने मंडराने लगे थे। दस बजे तक लगभग तीन-साढ़े तीन सौ व्यक्तियों की एक भारी पंचमेल भीड़, त्योहारों के अवसर पर किसी निर्द्वंद्व, धर्मात्मा सेठ के हाथ से सत्तू के लड्डू खाने के लिए एकत्रित कुत्तों के समूह के सामान इकट्ठी हो गयी थी।"[57]

"वे बुरी तरह बेचैन थे और उन्माद के रोगी की तरह प्रलाप कर रहे थे। उनके हृदय में एक अनजान आतंक व्याप्त था और वे सूअरों की तरह मुँह चला और मूर्खों की तरह मुस्करा रहे थे। वे खुल कर हँस भी नहीं सकते थे। उनके मुँह तांम्बे की तरह लाल हो जाते और आँखें उल्लू की तरह फैल जातीं। कभी-कभी अचानक वे चुप हो जाते और शरीर को एकदम कड़ा करते हुए सीधे खड़े हो जाते।"[58]

"उनकी हालत उन भंगियों की तरह थी जो किसी बड़ी दावत के बाद पत्तलों के जूठन के लिए किसी घर के सामने एकत्रित हो जाते हैं तथा काले, गंदे बदसूरत नौकरों को 'बाबू जी, राजा जी' आदि कहकर संबोधित करते हैं।"[59]

यहाँ बेरोजगारों ही नहीं पूरी व्यवस्था की वास्तविक स्थिति खुलकर सामने उपस्थित है, किसी से और कुछ जानने और समझने की कोई जरूरत नहीं है। **'आमंत्रण'** कहानी में स्वागतकारिणी समिति का सभापति पद के लिए आमन्त्रण और वित्तीय कठिनाइयाँ को दूर करने में सहयोग देने के सिलसिले में एक घंटा से प्रतीक्षा कर रहे स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा के चार सदस्यों को नौकर ठाकुर जयमंगल सिंह के आने की सूचना देता है :

"सभी देह कड़ा करके बैठ गए। सेक्रेटरी साहब तथा जानकी बाबू काँपते होंठों से धीरे-धीरे मुसकराने लगे। कमलदेव सिंह मेज के नीचे पैरों को तेजी से हिला रहे थे। चन्द्रबिहारी वर्मा की भोंहें तन गईं थीं और मुँह खिसियाना-सा हो गया था।"[60] यहाँ चारों सदस्यों की उत्सुकता, उत्तेजना, घबराहट आदि के मिश्रित भाव सजीव हो उठे हैं। **'जनमार्गी'** कहानी में सादृश्यता प्राणवान हो उठी है :

"अकेला होने पर वह सदा इसी तरह तेज चलना आरम्भ कर देता था – एक पुराने यंत्र की तरह – जब उसका दाहिना कन्धा उचकता था, हाथ भद्दे ढंग से झूलने लगते थे और टांगे शरीर से उखड़ने की कोशिश करती प्रतीत होती थीं। वह अभी पचास का नहीं हुआ था और उसके सिर के बाल कपास हो रहे थे। वह ठिगना और दुबला-पतला था। उसकी गरदन छोटी थी और मुँह बड़ा था, छुहारे की तरह सूखा था, जिसपर घोंसले के तिनके की तरह झुर्रियाँ उभर आई थीं। चश्मे के भीतर उसकी आँखें मलक रही थीं और होंठ एक हलकी मुस्कराहट से इस तरह खुल गए थे, जैसे वह दूर से ही किसी आत्मीय को देख रहा हो।"[61]

'डिप्टी कलक्टरी' कहानी में डिप्टी कलक्टरी का रिजल्ट आने पर शिवनाथ बाबू जल्दी-जल्दी चलकर घर पहुँचते हैं। "सारे घर में मुर्दानी छाई हुई थी। छोटे-से आंगन में गंदा पानी, मिट्टी,बाहर से उड़ कर आए हुए सूखे पत्ते तथा गंदे कागज पड़े थे, और नाबादान से दुर्गंध आ रही थी। ओसारे में पड़ी पुरानी बंसखट पर बहुत-से गंदे कपड़े पड़े थे और रसोई घर से उस वक्त भी धुआँ उठ-उठ कर सारे घर की साँस को घोट रहा थाI कहीं कोई खटर-पटर नहीं हो रही थी और मालूम होता था कि घर में कोई है ही नहीं।"[62] यहाँ गम हर पंक्ति में बोल रहा है। **'घर'** कहानी में अर्थहीनता सजीव हो उठी है:

"खुले हुए बक्से की आधार भूमि की तरह उस मकान का आँगन था, जिसमें तीन खाटें पड़ी थीं। बड़ी खाट पर पन्द्रह वर्ष, तेरह वर्ष और दस वर्ष के क्रम में तीन लड़के सिराहने की तरफ लम्बाई में एक-दूसरे पर हाथ-पैर चढ़ाये हुए सोये थे और उनके पैरों के नीचे पैताने की तरह आठ वर्ष और छह वर्ष की दो बच्चियाँ चौड़ाई में सोयी थीं। एक पतले छोटे और झोलर बंसखट पर उसके पिता दाईं करवट 'ऊँ' बने हुए थे। तीसरी चारपाई पर एक जवान लड़की चित पड़ी थी। और उसी पर उसकी माँ दूसरी ओर पाटी के नीचे पैर लटकाये तथा हथेली पर ठोड़ी को टिकाये बैठी थी और कभी-कभी सिर उचकाकर कमरे की ओर देख लेती थी।"[63]

'दोपहर का भोजन' में निर्धनता का दृश्यचित्र : "सारा घर मक्खियों से भिन-भिन कर रहा था। आँगन की अलगनी पर एक गन्दी साड़ी टंगी थी, जिसमें पैबंद लगे हुए थे।"[64] "खाली पानी उसके कलेजे में लग गया और वह 'हाय राम' कह कर वहीं जमीन पर लेट गयी। आधे घंटे तक वहीं उसी तरह पड़ी रहने के बाद उसके जी में जी आया। वह बैठ गयी, आँखों को मल-मलकर इधर-उधर देखा और फिर उसकी दृष्टि ओसारे में अधटूटे खटोले पर सोये अपने छह वर्षीय लड़के पर जम गयी। लड़का नंग-धडंग पड़ा था। उसके गले तथा छाती की हड्डियाँ साफ दिखाई देती थीं। उसके हाथ-पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे और उसका पेट हंडिया की तरह फूला हुआ था। उसका मुख खुला हुआ था और उसपर अनगिनत मक्खियाँ उड़ रही थीं। वह उठी, बच्चे के मुँह पर अपना एक फटा, गन्दा ब्लाउज डाल दिया और एक-आध मिनट सुन्न रहने के बाद बाहर दरवाजे पर जाकर किवाड़ की आड़ से गली की ओर निहारने लगी।"[65]

प्रस्तुत वर्णन कौशल से आर्थिक बदहाली, निराशा, हताशा, दीनता, चिंतन, घुटन आदि स्थितयाँ सजीव हो उठी हैं। लेखक का यह वर्णनात्मक कौशल अद्भुत है। उनकी अन्य कहानियाँ भी कुशल वर्णन से सदृश्य हो उठी हैं और श्रेष्ठ रचना की श्रेणी में आती हैं। 'सप्ताहांत' और 'एक बाढ़ कथा' कहानियों की भाषा भी चित्रात्मक है।

समग्रत: कहानीकार अमरकांत की भाषिक क्षमता बेजोड़ है। उन्होंने इसे अपने अथक परिश्रम से अर्जित किया है। "घुमाव-फिराव या बाल की खाल निकालने वाली बारीकी नहीं मिलेगी, मिलेगी एक सरलता, एक सहजता, एक सादगी और एक सीधापन लेकिन इस सीधेपन को जब अमरकांत अपने व्यंग्य की धार देते हैं, तो उसका वार झेलना आसन नहीं।"66 उनकी रचनाओं के तीखे व्यंग्यवाण तिलमिलाहट उत्पन्न करने की क्षमता से युक्त है। उन्होंने व्यंग्य की रोचकता को नई रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है।नए बिम्बों, प्रतीकों, रूपकों, उपमानों के प्रयोग से भाषा तीव्र मारक क्षमता से युक्त हो गयी है। सरल और संयत शब्दों से बने साधारण दिखने वाले छोटे-छोटे वाक्य बड़े-बड़े अर्थ गांभीर्य रखते हैं। वे ऐसे वाक्य की रचना करते हैं जिससे पात्रों के छिपे भाव भी मुखरित हो जाते हैं। वे तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव, देशज और विदेशज शब्दों का भरपूर प्रयोग करते हैं। इनके अधिक प्रयोग से उनकी लेखन-शक्ति में अदभुत वृद्धि हुई है और भाषा अत्यधिक गतिशील, प्रभावशील, प्रवाहशील, सरल और सहज बन गयी है। वाक्य संरचना, विशेषण-विशेष्य और क्रिया-विशेषण का उनका प्रयोग अतिविशिष्ट है।भाषा की बुनावट ऐसी है कि उसमें कोई उलझाव नहीं है। बोलचाल के निरर्थक शब्दों के सार्थक प्रयोग से उनकी भाषा मनोरंजक बन गयी है। भाषा को सरल बनाने में जनपदीय भाषा और लोकोक्तियों की भी अहम भूमिका है। नई कहानी की भाषा के संदर्भ में नामवर सिंह की यह टिपण्णी अमरकांत की भाषा के संदर्भ में ही उचित ठहरती है :

"हल्के-हल्के शब्द और छोटे-छोटे वाक्य एक पर एक जमे हुए सहज प्रवाह में बहते चलते हैं, फिर भी सूक्ष्म भाव अथवा विचार का कोई रेशा छूटने नहीं पाता। तमाम अलंकरण, आवरण का कूड़ा-करकट छोड़कर भाषा इतनी स्वच्छ और निर्मल हो उठी है कि विषय-वस्तु और पाठक के बीच में भाषा का व्यवधान ही नहीं रह जाता। कहानी का कथ्य पूरी ताकत के साथ

मन पर सीधा असर डालता है। प्रसन्नता की बात है कि अमरकांत ने इस दिशा में एक आदर्श प्रस्तुत किया है। अमरकांत की भाषा प्रेमचन्द की परम्परा का अद्यतन विकास है : वही सादगी और वही सफाई है। पढ़ने पर गद्य की शक्ति में विश्वास जमता है।"[67]

संदर्भ सूची

1. 'बस्ती', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 391
2. 'बस्ती', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 390
3. 'बस्ती', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 390
4. 'हत्यारे', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 210
5. 'डिप्टी कलक्टरी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड , पेज न० – 92
6. 'डिप्टी कलक्टरी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड , पेज न० – 91
7. 'मूस', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 194
8. 'मूस', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 194
9. 'मूस', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 202
10. 'मूस', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 203
11. 'मूस', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 201
12. 'मूस', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 193
13. 'बहादुर, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 273
14. 'जोकर', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 286
15. 'सवा रूपए', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 40
16. 'डिप्टी कलक्टरी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 89
17. 'डिप्टी कलक्टरी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 91
18. 'डिप्टी कलक्टरी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 96
19. 'डिप्टी कलक्टरी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 103
20. 'डिप्टी कलक्टरी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 88
21. 'संत तुलसीदास का सोलहवाँ साल', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 31
22. 'संत तुलसीदास का सोलहवाँ साल', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 33
23. छोटे दायरे का एक बड़ा रचनाकार : अमरकांत, वर्ष – 1, पेज न० – 286
24. 'असमर्थ हिलता हाथ', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 374,375
25. 'असमर्थ हिलता हाथ', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 371
26. 'दोपहर का भोजन', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 67
27. 'दोपहर का भोजन', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 68
28. 'दोपहर का भोजन', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 64
29. 'शुभचिन्ता', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 127
30. 'शुभचिन्ता', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 127

31. 'छिपकली', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 231
32. 'छिपकली', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 231
33. 'छिपकली', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 231
34. 'मकान', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० 498
35. 'मकान', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 500
36. 'मकान', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 502
37. साक्षात्कार, वर्ष – 1, पेज न० – 110
38. वर्ष – 1, पेज न० – 128
39. वर्ष – 1, पेज न० – 128
40. 'कुहासा', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, दूसरा खंड, पेज न०- 15
41. 'कला प्रेमी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न०- 426
42. 'कुहासा', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, दूसरा खंड, पेज न०- 16
43. 'कुहासा', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, दूसरा खंड, पेज न०- 17
44. 'पलास के फूल', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 118
45. 'पलास के फूल', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 119
46. 'पलास के फूल', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 118
47. 'पलास के फूल', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 117
48. 'म्यान की दो तलवारें', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 141
49. 'कुहासा', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, दूसरा खंड, पेज न०- 28
50. 'जिंदगी और जोंक', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 76
51. 'जिंदगी और जोंक', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 75
52. 'हत्यारे', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 204
53. अमरकांत : एक पक्षधर लेखक की भूमिका, मधुरेश, वर्ष – 1, पेज न० – 157
54. रामविलास शर्मा , कथा विवेचन और गद्यशिल्प, पेज न० – 89
55. 'इंटरव्यू', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 17
56. 'इंटरव्यू', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 13
57. 'इंटरव्यू', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 15
58. 'इंटरव्यू', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 15
59. 'आमंत्रण', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 339
60. 'जनमार्गी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 213
61. 'डिप्टी कलक्टरी', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 106
62. 'घर', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 517
63. 'दोपहर का भोजन', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 68
64. 'दोपहर का भोजन', अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, पेज न० – 62
65. अमरकांत : एक पक्षधर लेखक की भूमिका, मधुरेश, वर्ष – 1, पेज न० – 153

66. जिंदगी और जोंक की भूमिका, भैरव प्रसाद गुप्त
67. कहानी : नई कहानी, नामवर सिंह, पेज न० – 37

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता की संभावनाएँ

डॉ० सुशील कुमार सिंह

(पी० एच–डी० राजनीतिशास्त्र)
बुद्ध पी. जी.कालेज, कुशीनगर, (उ.प्र.)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व में शांति एवं सुरक्षा स्थापित करने के लिए एवं वैश्विक रूप से सदस्य राष्ट्रों में परस्पर मैत्रीपूर्ण सद्भाव, सामाजिक समरसता, आर्थिक सहयोग सुनिश्चित करने के लिए तथा सम्पूर्ण विश्व में मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए जिस वैश्विक संरचना को मूर्त रूप दिया गया वह था – संयुक्त राष्ट्र संध। एक तरफ जहाँ विश्वयुद्धोत्तर काल में समाज विभिन्न विधाओं यथा– सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक उथल–पुथल के दौर से गुजर रहा था वहीं पर सेन फ्रांसिस्को में उसी उथल–पुथल को शांति की नीरवता में तब्दील करने के लिए विश्व के 51 देशों के जनप्रतिनिधि एक मैराथन बैठक कर रहे थे जिसका परिणाम पूरी दुनिया के सामने संयुक्त राष्ट्र संघ के रूप में सामने आया।

अपने द्वारा स्वीकार की गयी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने विभिन्न विभागों को उन दायित्वों को निर्धारित कर दिया और कुशल नेतृत्व एवं मार्गदर्शन प्रदान करते हुए उन लक्षणों की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हो गया। ऐसे ही एक अंग का नाम है– सुरक्षा परिषद। सुरक्षा परिषद का कार्य है– सभी देशों में सुरक्षित माहौल बनाये रखना और जहाँ ऐसा सम्भव न हो वहाँ पर इस तरह की परिस्थितियाँ उत्पन्न करना जिससे लोग आत्मिक रूप से वह कार्य कर सके। जो भी नए राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ से जुड़ना चाहते हैं उन्हे सदस्यता प्रदान करना महासचिव का चयन करना, अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति महासभा के साथ मिलकर करती है। सुरक्षा परिषद की शक्ति महासभा की अपेक्षा वृहद है। यह संयुक्त राष्ट्र संध का कार्यपालक अंग है।

सुरक्षा परिषद में मूलतः पांच स्थायी सदस्य होते हैं और अस्थायी सदस्यों की संख्या प्रारम्भ में 6 थी। लेकिन 1965 ई० में संशोधन कर सदस्यों की संख्या 10 कर दी गई थी। अस्थायी सदस्यों में एशिया और अफ्रीका से पांच, पूर्वी यूरोप से एक, लैटिन अमेरिका से 2, शेष दो पश्चिमी यूरोप से। पाँच स्थायी सदस्यों को परिवर्तनशीलता की स्थिति से बाहर कर दिया गया केवल अस्थायी सदस्यों को गतिशीलता की श्रेणी में लाया गया। कुल सदस्य संख्या 15 होती है। चीन, फ्रांस, ग्रेटब्रिटेन, रूस, अमेरिका इसके स्थायी सदस्य हैं। अस्थाई सदस्यों का निर्वाचन महासभा दो–तिहाई बहुमत से दो वर्ष के लिए करती है। सदस्यों का निर्वाचन करते समय महासभा संगठन के उद्देश्यों, अंतरराष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के योगदान तथा भौतिक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता पर बल देती है। स्थायी और अस्थायी सदस्य बारी–बारी से एक–एक महीने के लिए परिषद् के अध्यक्ष बनाये जाते हैं।

भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता क्यों दी जानी चाहिए, इस परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित तर्क प्रभावी हो सकते हैं– भारत संयुक्त राष्ट्र के संस्थापक सदस्यों में शामिल था। भारत

संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों में सर्वाधिक योगदान देने वाला देता है। वर्तमान में सात बार– (1950–51), (1955–56), (1972–73), (1977–78), (1984–85), (1991–92), (2011–12) में अस्थायी सदस्य रहा है। 8वीं बार 2021–22 में सुरक्षा परिषद का अस्थायी सदस्य पुनः बनेगा।

भारत के विश्व भर में 8500 से अधिक सैनिक तैनात हैं जो संयुक्त राष्ट्र की पाँच बड़ी शक्तियों के सैनिकों की संख्या के दोगुने से अधिक है। भारत 1.3 बिलियन की जनसंख्या और 1 ट्रिलियन डॉलर से भी अधिक की अर्थव्यवस्था वाला एक जिम्मेदार परमाणु क्षमता सम्पन्न देश है। जनसंख्या, क्षेत्रीय आकार, जी.डी.पी., आर्थिक क्षमता, सम्पन्न विरासत और सांस्कृतिक विविधता के मानदण्डों पर फिट बैठता है। यह दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र और एशिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश है। भारत को चार स्थायी सदस्यों और अफ्रीकन यूनियन, लैटिन अमेरिका, मध्य–पूर्वी देशों और दुनिया के अन्य देशों का समर्थन हासिल है। भारत सात बार UNSC, G-77 और G-4 का मेम्बर रहा है। इसलिए भारत की स्थायी सदस्यता पर गम्भीरतापूर्वक विचार अपेक्षित है।

भारत अपना 8वाँ कार्यकाल 1 जनवरी 2021 से UNSC में अस्थायी सदस्य के रूप में करेगा। अस्थायी सदस्यता के चुनाव में भारत को 184 सदस्य देशों का समर्थन प्राप्त हुआ था जो विश्व में भारत की लोकप्रियता को प्रतिबिम्बित करता है। विगत वर्ष 2019 में चीन और पाकिस्तान ने सुरक्षा परिषद में कश्मीर मुद्दे को हाइलाइट करने का प्रयास किया था लेकिन अन्य देशों का समर्थन न मिल पाने के कारण वह प्रस्ताव धराशायी हो गया था और अब जबकि भारत पुनः सुरक्षा परिषद् का अस्थायी सदस्य होगा तो अब इन दोनों देशों द्वारा भारत का विरोध करना आसान नहीं होगा।

जहाँ तक भारत की स्थायी सदस्यता का प्रश्न है तो वर्तमान में उम्मीद की किरणें कम दिखाई देती हैं क्योंकि 2020 में सुधार का जो प्रस्ताव तैयार हुआ है उसमें सुरक्षा परिषद के विस्तार की सम्भावना नगण्य है। सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता के विस्तार के लिए संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 23 में संशोधन करना पड़ेगा। स्थायी सदस्यों का विवरण इसी अनुच्छेद में अंकित है। इस अनुच्छेद में संशोधन तभी सम्भव होगा जब महासभा दो–तिहाई सदस्यों के साथ–साथ पांचो स्थायी सदस्य देश समर्थन करें। भारत के लिए महासभा के दो–तिहाई सदस्यों का समर्थन जुटाना शायद आसान हो अपेक्षाकृत सभी 5 स्थायी सदस्यों के समर्थन के। इन पाँच स्थायी सदस्यों में से 4 ने तो मौखिक रूप से भारत की स्थायी सदस्यता का समर्थन कर दिया है लेकिन चीन तो कभी मौखिक रूप से भी समर्थन नहीं किया है। फिर भी भारत की स्थायी सदस्यता पर विचार किया जाना आवश्यक है।

सुरक्षा परिषद में सुधार की आवश्यकता या फिर भारत की स्थायी सदस्यता का दावा इसलिए और भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जो ढाँचा तैयार किया गया था वह 21वीं शताब्दी के बदलते परिवेश से तालमेल बिठाने में असमर्थ है। उदाहरण के रूप में जर्मनी इस समय युरोप की सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति है जबकि वह सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य नहीं है जबकि दूसरी तरफ ब्रिटेन व फ्रांस, भारत व जापान से छोटी अर्थव्यवस्था होने के बावजूद भी स्थायी सदस्यता वाले देश हैं। दूसरा कारण यह है कि सुरक्षा परिषद् वर्तमान समय की वैश्विक चुनौतियों का समाधान करने में सक्षम नहीं है। इस समय सुरक्षा परिषद् के सामने कई चुनौतियाँ हैं जैसे– आतंकी गतिविधियाँ, मानवाधिकारों का उल्लंघन एवं जलवायु परिवर्तन आदि। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए UNO में विस्तार समीचीन है।

यदि भारत को स्थायी सदस्यता प्राप्त हो जाती है तो भारत को वैश्विक मामलों में वीटो की शक्ति प्रापत हो जायेगी। विश्व स्तर पर भारत की गरिमा में वृद्धि होगी। इसके अलावा दक्षिण एशिया में शक्ति संतुलन भारत के पक्ष में होगा। जब 75 वर्ष पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई थी तब बड़े व

शक्तिसम्पन्न राष्ट्रों को स्थायी सदस्यता प्रदान की गई थी। तब से लेकर आज तक व्यापक परिवर्तन हुआ है। आज भारत दुनिया की 8वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है। भारत में 16 बार शांतिपूर्ण तरीके से सत्ता परिवर्तन हो चुका है। भारत कानून का शासन एवं लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रबल समर्थक रहा है। भारत विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का पक्षधर है। भारत की पंचशील तथा गुटनिरपेक्षता की नीति प्रशंसनीय रही है। 1985 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के निशस्त्रीकरण अभियान की वकालत की थी। भारत के लगभग 1 लाख सैनिक 40 से अधिक शांति मिशनों में अपना योगदान कर चुके हैं।

समय–समय पर सुरक्षा परिषद् में सुधार की माँग की जा रही है। सन् 2005 में बुतरस–बुतरस घाली की जो रिपोर्ट आयी थी उसमें भी सुरक्षा परिषद् की सदस्य संख्या 15 से बढ़ाकर 24 किए जाने का विचार व्यक्त किया गया था। इस समय स्थायी सदस्यता के 4 प्रबल दावेदार हैं– भारत, जर्मनी, जापान, ब्राजील। इन देशों ने G-4 नामक समूह भी बनाया है। स्थायी सदस्यता का विरोध करने वाले देशों ने 'माफी क्लब' नाम का संगठन बनाया है।

प्रत्येक वर्ष सितम्बर माह में जब महासभा का अधिवेशन होता है तब भारत के स्थायी सदस्यता की चर्चा जोर पकड़ने लगती है। यह प्रक्रिया कुछ वर्षों से चल रही है अब इस मुद्दे पर लिखित वार्ता प्रारम्भ होगी, चार्टर में संशोधन होगा। परंतु इस भगीरथ प्रयास की सबसे बड़ी बाधा चीन का वीटो पावर युक्त होना है। यदि यह कहा जाय कि पूरी दुनिया ही किसी देश को स्थायी सदस्य बनाने के लिए तैयार क्यों न हो जाय एक अकेला वीटो पावर युक्त देश पूरे अभियान को असफल कर देता है। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थायी और अस्थायी सदस्य देश हैं–

1. स्थायी सदस्य – 1. चीन, 2. रूस, 3. फ्रांस, 4. ग्रेट ब्रिटेन, 5. अमेरिका

2. अस्थायी सदस्य – 1. बेल्जियम, 2. डोमेनिकन रिपब्लिक, 3. एस्टोनिया, 4. जर्मनी, 5. इण्डोनेशिया, 6. नाइजर, 7. सेन्ट बिसेन्ट, 8. दक्षिण अफ्रीका, 9. ट्यूनीशिया, 10. वियतनाम

चीन जैसे देश के समर्थन के बिना भारत की स्थायी सदस्यता की दावेदारी कमजोर हो जाती है। अब भारत के समक्ष दो विकल्प हैं पहला तो यह कि वह सुरक्षा परिषद की सदस्य संख्या बढ़ाये जाने (15 से 24 करने) पर महासभा को तैयार करे। जिससे नवीन आर्थिक, राजनीतिक शक्ति सम्पन्न देश भारत, ब्राजील, जापान और जर्मनी जैसे देश सुरक्षा परिषद में प्रवेश पा सके। दूसरा विकल्प यह है कि भारत अपनी तिब्बत और अरुणांचल की सीमा सुरक्षा पर सीमाओं के पुनर्निर्धारण में चीन की बात मान ले और अपनी सेना वहाँ से हटा ले। जिसका तात्पर्य होगा भारत चीन के प्रसाद पर्यन्त सुरक्षा परिषद् में स्थायी रूप से प्रवेश करे जो वर्तमान परिदृश्य में सम्भव नहीं है।

हालांकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति निरन्तर परिवर्तनशील है इसलिए नवीन व्यवस्था में भी परिवर्तन हो सकते हैं। भारत के सन्दर्भ में वैश्विक व्यवस्था में परिवर्तन के इन कारणों को चार भागों में बांटा जा सकता है।

1. शक्ति सम्बन्धों में परिवर्तन

2. प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

3. दृष्टिकोण एवं मूल्यों में परिवर्तन

4. प्रमुख देशों में राजनीतिक भूगोल का परिवर्तन

शक्ति सम्बन्धों में परिवर्तन एक ऐसा तत्त्व है जो नवीन विश्व व्यवस्था स्थापित कर सकता है। कभी द्वीध्रुवीय विश्व व्यवस्था आज बहुध्रुवीय व्यवस्था में बदल गयी है। गुटनिरपेक्ष भारत विश्व के अनेक शक्ति सम्पन्न देशों फ्रांस, अमेरिका, इजराइल, जापान से मधुर सम्बन्ध स्थापित कर चुका है। भारत अमेरिका से 3 अरब डालर का रक्षा समझौता (राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप एवं प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी) ने हैदराबाद हाउस में फरवरी 2020 को किया है। जिसके अनुसार अमेरिका भारत को 24 एम.एच. रोमियों हेलीकाप्टर देगा तथा द्विपक्षीय व्यापार स्थापित करेगा। भारत की आत्मरक्षा में उसके साथ रहेगा। फ्रांस के साथ भारत का राफेल डील जिसमें 36 राफेल की खरीद की जानी है, भारत की सामरिक शक्ति को बढ़ावा देगा। इजराइल के साथ साइबर सुरक्षा, फिल्म निर्माण, पेट्रोलियम, इनवेस्ट इण्डिया, इमवेस्ट इजराइल, स्टार्ट अप इण्डिया समेत 9 समझौते हुए हैं। जो भारत को सामरिक आर्थिक रूप से मजबूत बनाते हैं। इसलिए अमेरिका, रूस, चीन, फ्रांस, ब्रिटेन के अलावा भारत भी अब सामरिक मामलों में अत्यधिक मजबूत हो चुका है। अब जहाँ सीमा सुरक्षा के मुद्दे पर विवाद की स्थिति में चीन के साथ पाकिस्तान, उ० कोरिया व गल्फ कन्ट्री के कुछ देश खड़े हैं तो वहीं भारत के साथ इजराइल, अमेरिका, जापान, फ्रांस, ब्रिटेन, भूटान, ब्राजील आदि हैं। इस प्रकार विश्व में अब एक ध्रुवीय, वर्चस्वशील, विश्व व्यवस्था, त्रिध्रुवीय या बहुध्रुवीय व्यवस्था का रूप ले चुकी है।

दूसरा परमाणु प्रौद्योगिकी एक ऐसा तत्व है जिसने विश्व व्यवस्था में वैश्वीकरण के दौर में आमूल–चूल परिवर्तन किया है। सूचना तकनीकी से जुड़े नवीन आविष्कारों ने विश्व की आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित किया है। भारत के I.I.T और I.I.M जैसे तकनीकी और प्रबंधन संस्थानों ने संचार क्रांति को बढ़ावा दिया है इसलिए 1947 के पूर्व का भारत आज सात दशक बाद विश्व के अग्रणी राष्ट्रों की श्रेणी में खड़ा है।

विभिन्न देशों के दृष्टिकोण में वैश्वीकरण के दौर से परिवर्तन देखा जा सकता है। विखराव के बाद USSR (रूस) तटस्थ होने लगा है, अमेरिका जैसा देश आतंकवाद के पोषणकर्ता पाकिस्तान से दूरी बना रहा है वहीं फ्रांस, ब्रिटेन, ब्राजील जैसे देश भारत की शक्ति सम्पन्नता के कारण मित्रवत सम्बन्ध रखे हुए हैं। चीन द्वारा जैविक हथियारों का आविष्कार किये जाने के कारण विश्व के महत्वपूर्ण देश उसे शांति और सुरक्षा के लिए खतरा समझ रहे हैं। ऐसे में वैश्विक स्तर पर भारत के प्रति लगाव और दक्षिण एशिया में भारत का बढ़ता वर्चस्व विभिन्न राष्ट्रों के दृष्टिकोण में अवश्यम्भावी परिवर्तन किया है।

पूर्व सोवियत संघ में जो आन्तरिक परिवर्तन हुए उसके दूरगामी अन्तर्राष्ट्रीय परिणाम सामने आये। भारत द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हस्तक्षेप, लद्दाख को अलग केन्द्रशासित प्रदेश बनना, जम्मू कश्मीर को पूर्ण राज्य का दर्जा, अरुणांचल व तिब्बत की सीमा सुरक्षा पर प्रतिबद्धता ने भारत के राजनीतिक भूगोल को परिवर्तित किया है।

उपरोक्त के अतिरिक्त तृतीय विश्व के अधिकांश देशों द्वारा सुरक्षा परिषद का विस्तार कर भारत जैसे देश को स्थान दिये जाने की वकालत करना। महासभा में 193 में से 184 देशों का समर्थन प्राप्त करना, पुनः 8वीं बार 2021–22 में सुरक्षा परिषद का अस्थायी सदस्य बनना, विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र का सफलता पूर्वक संचालन, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना के लिए सहयोग, आतंकवाद की पूर्ण समाप्ति के लिए वैश्विक समर्थन प्राप्त करना और विश्व के दूसरे देशों में शाति के लिए सेना भेजना तथा विश्व की तीसरी सबसे तेज बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था वाला देश होने के कारण भारत इस बार सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के लिए अपना दावा बहुत मजबूती से पेश करेगा। सम्भव है U.N. चार्टर में व्यापक बदलाव हो और G-4 के देशों (भारत, ब्राजील, जर्मनी, जापान) को स्थायी

सदस्यता प्राप्त हो। सुरक्षा परिषद में दक्षिण एशिया के प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से भी भारत की स्थायी सदस्यता की दावेदारी आने वाले वर्षों में मजबूत दिखाई पड़ती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. जैन, बी० एम०, ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'' (राजस्थान हिन्दी अकादमी संस्करण–2012)
2. शर्मा, एच. सी., ''भारतीय राजनीति की वर्तमान प्रवृत्तियाँ'' (ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2009)
3. त्यागी, रस्तोगी, ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति'', (संजीव प्रकाशन, मेरठ)
4. फड़िया, बी. एल., ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'' (साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा)
5. सईद, एस. एम., ''भारतीय राजनीतिक व्यवस्था'', (भारत बुक सेंटर, लखनऊ, संस्करण 2008)
6. डॉ० जैन, वी. एम., ''प्रमुख देशों की विदेश नीतियां'' (राजस्थान हिन्दी अकादमी, द्वितीय संस्करण)
7. चिनाय, अनुराधा एम., ''मिलिटरिज्म एण्ड वुमैन इन साउथ एशिया'', (नई दिल्ली, काली 2002)
8. एक्फोर्ड, बी. ''दी ग्लोबल सिस्टम : इकोनामिक्स, पोलिटिक्स एण्ड कल्चर'' (कैम्ब्रिज पोलिटी प्रेस, 1995)
9. अन्नान, कोफी, ''वी दी पीपुल्स : दी रोल ऑफ यूनाइटेड नेशन्स इन दी ट्वैंटी फर्स्ट सेन्चुरी, (न्यूयार्क : युनाइटेड नेशन्स, 2000)
10. सम्बन्धित साहित्य : पत्र, पत्रिकाएँ – प्रतियोगिता दर्पण (अंक– अक्टूबर 2020)

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

"Cash Transfer Schemes Impact on social economic" condition

Dr. Uttam Kumar

Assistant Professor, (Guest Faculty)
BRABU, Muzaffarpur

Human Poverty: Relevance for India

Conditional cash Transfer (CCT) schemes provide cash directly to poor households in response to the households\individual fulfilling specific conditions such as minimum attendance of children in schools, and \or attendance at health clinics, participation in immunization and the like. the schemes create incentives for households to adjust their behaviour towards nationally accepted social goals. In technical terms, the objective of such programmers is 'to correct for market failures associated with no internalised positive externalities, (jeanery and sadoulet, 2004. p.1) they are used (a) to incentivize private behaviour to secure positive externalities such as enhance consumption of merit goods like health and education (b) target vulnerable groups who are access merit goods due to negative income effect caused by cyclical downturns and /or exogenous shocks. These schemes have typically been used to improve school attendance by children, boost attendance at health clinics and enhance predication in immunization programmes. Conditional cash transfers are different from unconditional cash transfers grants To vulnerable persons/groups on the basic of certain pre-determined eligibility criteria. Social transfers such as pension oto senior citizens, the physically challenged, Children, etc., are the most common unconditional cash transfers. The main difference as compared to CCT schemes is that are conditional programmes and do not attempt to influence individual/ households consumption preferences. They recognize the vulnerability of those whom the schemes addresses and make a provision of a cash grants individual/ group coping mechanisms, often in response to guaranteed human rights. These constitute protective social security measures. The concept of CCT schemes originated in Latin American countries mainly in response to the macroeconomic crisis of the 1990s when the demand for social services such as education and health from poorer households was the perceived to have declined, drastically These programmes thus represent a shift in government approach that earlier focused on the supply-side delivery of basic services. Instead they focus on the demand-side, by protecting the consumption of merit goods. These programmes also represent a shift from general subsidies to more sharply targeted programmes that aim to improve human caption information and, thereby increase efficiency in the long run.

Evolution

Conditional cash transfer schemes originated in middle-income Latin American countries that had good infrastructure and supply systems. They were positioned as formal, publicly provided safety net programmes that essentially supplied cash to the needy and helped them tide over the period of economic crisis. The earlier of such programmes, progress, was initiated in 1997 in Mexico with a new approach integrating interventions in health, education and nutrition. It was based on the understanding that these important dimension were direct correlates of human welfare, In Brazil the first CCT programmes based on the CCT philosophy were introduced Evolution of CCT schemes, objectives and Design 10 conditions cash transfers schemes for Alleviating Human poverty : Relevance for India to the to address specific areas, these were integrated in 2004 into the now well-known programme- Bolsafamilia. Other countries that initiated CCT countries programmes include Chile, Colombia, Ecuador. Jamaica, south Africa and Turkey. In Asia , Bangladesh had a female stipend programme as early as 1982 followed by a food for education programme in 1993. Food grants were later converted to cash grants in 2002. Indonesia lunched a pilot CCT programme called programme Keluarga Harapan (PKH) in 2007 . its beneficiaries are very poo households that

Pregnant women and/or zero to 15 years- old children. The PKH requires them to access education and health services to be eligible for the cash transfer.

The main features to the eligible for the cash transfer.

The main features of CCT programmes in select countries have been provided country-wise in matrix from in Annexure.

Impact of CCT schemes

The impact of the CCT schemes can be assessed from the point of view of its main objectives, that is alleviating proveryt, and human caption formation.

The other benefits associated with these programmes are that of empowering women, enabling the inclusion of people belonging to marginalized groups, improving accountability, reducing inequality, and others.

The multiple objectives of these schemes make an assessment of their impacts rather complex. The spread of CCT programmes across countries since the 1990s indicates that they have been well received and perceived to have an impact on at least some of the objectives that they have set out for themselves.

The programmes have evaluated by international agencies such as the international food policy reserve institute (IFPRI), the programme for Advancement.

Through health and Education (PATH) the institute for Fiscal studies, the world bank and international poverty centre of the united nations development programme. The main results of the evaluations are discussed herein:

(a) Income inequality and poverty
(b) Education, health and nutrition

(c) Social inclusion
(d) Governance
(e) Income Inequality and poverty

In countries that have high initial levels of inequality and have been implementing CCT schemes fairly long period, it has been observed that the programmes coefficient between mid 1990s and mid 2000s in three countries, that is Brazil, Chile, and Mexico, indicated that "with a share of about 0.5 percent of total oncome in Brazil and México and much less in Chile. The CCT schemes were responsible for 21 percent of inequality reduction in Brazil and Mexico and 15 percent in Chile , (soars, at al, 2007, p.17). The income transfers was too small to be able to make a difference.

(a) Education, health and nutrition

CCT schemes are often labelled as education programmes on account of their focus On increasing school attendance and the relatively high proportion of the education budget that they are allotted 15.

Primary Education: A UNESCO review (Remains, et al, 2006)of theimpact of CCT schemes across five countries indicates that while these schemes have a positive impact on school attendance rates and consequently in the number of years of schooling attained. Thought not a CCT, the Food for Education (FFE).

Programme in Bangladesh in operation from 1993 to 2002, led to an increase in overall attendance in school. Attendance in FFE schools was higher(70percent) as compared to school not offering FFE(58 percent).In Mexico, school enrolment increased from 70 to 78 precent between the year 1998 and 2000 (Skoufias, 2005)

Secondary Education: The programmes also facilities the transition of children from primary to secondary education. In Mexico progress in increased enrolment of children who had completed Grade VI into junior secondary schooling(middle school in Indian parlance). The enrolment increase of 11.1 percentage point for girls and boys, with a larger increase of 14.8 percentage point for girls and 6.5 percentage point for boys. This represents over 20 percent increase in secondary school enrolment for girls and about 10 percent increase for boys (ibid)

Learning Outcomes: The impact of increase enrolment on learning outcomes, however, is limited and inconclusive and thus their impact on improving human capital, while is one of the chief objectives for the introduction of CCT schemes,

Is also not clear. In progress, the results pertaining to educational achievement were termed. As "dismaying" as they indicated to non-beneficiary students did not obtain better test scores as compared to non-beneficiary students. Similarly, the results for Brazils Bolsa Familia indicated that "beneficiary children are almost four percentage points more likely than non-beneficiary to fail at school" (scares, et,al,2007)

Child Labour: CCT schemes have been found to have a market im[pact on reducing children's participation in the labour market. In programme between 1997 and 1999-2000,

when the evaluation for boys declined by IFPRI, it was observed that labour force participation for boys declined between 15 to 25 percent, relative to the probability of participating period to the programme lower incidence of child work due to progress was found to account for 65 to 82 percent of the increase in enrolment of boys in school (Skoufias,2005). Similarly in Bangladesh, the implementation of the Food for Education programme was found to account for 25 percent increase in the enrolment of boys in school.

Health Cheak-ups: CCT schemes have been observed to promote more regular health check-ups among pregnant women and children in countries with good and functioning health infrastructure. In El Salvador, in 2005-07, health checkups by children and mothers increased by 470and 42 percent, respectively. Results have not been as encouraging in countries which are yet to sort out their supply-side problems. For examples, in Paraguay where the Tekapora programme is in operation, results with respect to the updating of vaccination cards for children as well as the number of visit to health's centres habe been less than anticipated on account of supply –side problems (soars, et al,2008).

In fact, it has been observed that the co-responsibilities in the health's sector are more difficult to enforce than in the education sector on accounts of the reluctance of poor households to change their attitudes towards preventive health care.

FOOD Security: With respect to food security, the impact of CCT schemes is more encouraging with most programme evaluations indicating an increase in food acquisition. Its translation into better nutrition depends on several other factors including intra-households food distribution. Nonetheless, the relaxation of the budget constraint seems to have result in more favourable outcomes. In Brazil, where the functioning of the Bolsa Familia was evaluated from 1995-2004 by the ministry.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

LEVEL OF URBAN EDUCATION FACILITY: A CASE STUDY OF GOPALGANJ CITY

DR. VIKASH MAHTO

Department of Geography (P.U), Patna

Urban amenities are site specific goods and services that make some locations attractive for living and working. These amenities influence quality of life and social wellbeing (smith 1977).

According to Glazer and Putnam there are five types of urban amenities-

1. Private goods and Services such as park, restaurants and theaters.
2. Aesthetic physical setting.
3. Availability and quality of public good it includes facility for education health and crime protection.
4. Transportation facility.
5. Social capital.

Considering the need of the urban education facility serviced in urban center the present study has laid emphasis on the requirement of urban amenities according to the population of the urban center, keeping in mind the future population growth. The present study also aims to analyze the urban landscape of the Gopalganj city which has population size of 101110 as per 2011 census. Virtually people of the influence areas of Gopalganj city used to depend upon the educational facilities, health services and other urban amenities of the neighboring metropolitan center of Gorakhpur and only limited number of urban amenities services developed in the township area of Gopalganj city for the urbanities as well as the people of the surrounding rural areas. As such in the present study emphasis has been laid on the analysis of urban amenities developed in the Gopalganj city as well as its future requirement for the increasing population. It may be noted that after its up-gradation as district headquarter population of this city has considerably increased and township has expanded. Therefore, the present study also explains the need of urban amenities services for the increasing population as well as to improve the quality of urban life.

STATEMENT OF THE PROBLEM:

In Gopalganj city there is a pressing need for adequate infrastructure facility especiallyeducational facilities. In this study of attempt would be made to discuss the existing infrastructure in Gopalganj and the problem associated with. The author would also suggest some measures to solve the problem related to urban educational facilities in Gopalganj city.

OBJECTIVE:

For highlighting availability of suitable service amenities in the urban center of Gopalganj and shortage of urban amenities services some important aspects have been given due consideration. This study would incorporate following aspects-

1. Availability of urban infrastructure related to educationin Gopalganj city.
2. Problem associated with these public utility services.
3. Measures of government and non-government organization and agencies to Provide adequate urban educational facilities in the study area.
4. The future projection regarding the demand of these public utility service and Suggestions to fill the gap between requirement and availability of these Services.

HYPOTHESIS:

The present study of levels of urban educational facilities incorporates three hypotheses. An attempt has been made to include all the aspects of urban amenities provided in the study area. A few hypotheses have been also farmed to find out the reality of the facts. These three hypotheses are.

1. Urban educational facilities are inadequate in the study area in comparison to the demand.
2. There is spatial difference in urban educational facilities.
3. Government measures are not sufficient considering the rising demand for urban educational facilities in study area.

FIELD WORK AND SOURCE OF DATA:

The present study has been possible by intensive fieldwork and collection of adequate data. The investigator had to devote enough time in the study area for observing the city. All categories of urban educational facilities services also required thorough investigation. The investigator had to generate primary data with the help of questionnaires and schedules and for secondary data the investigator had to collect information from Gopalganj municipality, census office, district headquarters and urban educational facilities service centers.

METHODOLOGY:

The methodology includes random sampling to get firsthand information about problems, levels of urban educational facilities suggestion of residents etc. Adequate analysis and interpretation of the information collected will be done.

The whole study is based on the Primary data which purposes to analyses the condition of urban educational facilities in the city ideographically. For this purpose the data has been collected from different sources. Primary data has been collected from 28 wards in the study area through questionnaire and interview of some local authorities engaged in Municipal activity and ward members, secondary data has been collected from government and non-government agencies journals and books, Magazines and thesis of other researcher, schools and universities. For the purpose of spatial Map data from survey of India, Remote sensing data from internet has been collected.

The data collected from different sources has been analyzed after statistical treatment and levels of urban educational facilities has been assigned on the basis of some selective parameters. The statistical tools used in the study are; Central Tendency, Standard Deviation, Correlation and Regression Analysis. Selected parameters to assign levels of urban educational facilities are source of number and type of education center. The system analysis approach has been used to study the slum area and to find out the problems there in.

Both *etic* (from outside) and *emic* (from inside) approaches have been applied to find out the level of urban educational facilitiesin the city. The etic approach to find out the level of urban educational facilities in the study area incorporate statistical data regarding availability of amenities in the city and comparative analysis of these amenities with the standard set by urban development department. The *emic* approach to find out level of urban health amenities in the study area is based on the level of satisfaction of the residents. For this purpose primary data of score of satisfaction has been collected by the investigator and cumulative scores of satisfaction with health amenities have been calculated for every ward. These cumulative scores of satisfaction indicate spatial variation in level of urban educational facilities. Primary data has been collected in two stages. In the first stage data for general condition of educational facilities has been collected by the researcher with the help of schedule. In second stage of primary data collection data related to satisfaction with educational facilities has been collected through schedule.

STUDY AREA:

Gopalganj city is situated about 169 km north – west of Patna. It is district headquarter of Gopalganj. It is located between 26° 26’ 30’’ N and 26° 29’ 15’’ N latitude, and between 84° 25’ 15’’ E and 84° 28’ 15’E longitude. It is exceptionally hot and dry during summer with temperature reaching as high as 45^{o}c.This is followed by pleasant temperature in winter. District receives an average rainfall of about 290 mm and the temperature varies from 05 to 45^{o}c. The history of Gopalganj is a part of the history of old saran district. The composite saran district lies on one of the main lines of the Aryan advance. It became an independent district on October 2, 1973. The old saran district included the present district of Saran, Siwan and Gopalganj. Total area of Gopalganj Municipality Corporation is about 2382.4 acre. Population of Gopalganj nagger perished is 101110 according to the 2011 census. The city has a population density of 43 inhabitants per acre. Gopalganj has a sex ratio of 825 females for every 1000 males and a literacy rate of 80.68%. National Highway -28 connects the city to Gorakhpur and Muzaffarpur. The city does not have good transport facilities. Public transport in the city is largely dependent on private buses. Taxis and rickshaws are available for hire throughout the day. Narrow and congested roads and the mix of vastly differing types of vehicles have complicated the city traffic. Thawe near Gopalganj city is a rail junction. Sobeys is an airport in Gopalganj which is not in use right now. Gopalganj district was established in 1973. This has 4 municipalities and Gopalganj city has 28 wards.

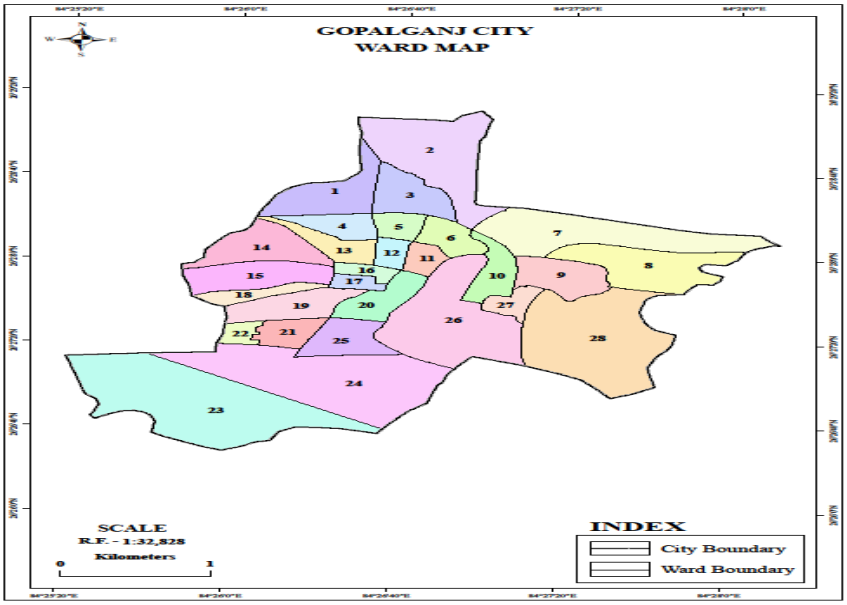

ORGANISATION OF THE WORK:

The present study contains the analysis of urban educational facilities in the urban center of Gopalganj city. As such the study involves the analysis of the development of the urban center of Gopalganj city as well as the development of public utility services. The study of the development of township needs the study of the development of township along with the study of physical landscape. Role of site characteristics and locational significance have been given due consideration. In this aspect role of site & physical conditions on the development of urban land use, functional characteristics, morphological features, demographic features have been analyzed. The availability of service amenities, spatial distribution of amenities services, inadequacy of service amenities & other problem. The last portion provides suggestions for proper development of urban amenities services in Gopalganj city.

EDUCATION FACILITY:

The word 'Education" derives from the Latin educare, meaning to Nourish. Education compasses teaching and learning specific skills and also something less tangible to more profound the imparting of knowledge, positive judgment and well-developed wisdom. Education has as one of its fundamental aspects the imparting of culture from generation to generation. Education means "to draw out" facilitating civilization of self- potential and latent of an individual. It is an application of teaching and learning on many disciplines such as psychology, philosophy, computer science, neuroscience, sociology and anthropology.

The education of an individual human beings at birth and continues throughout life. For some, the struggles and triumphs of daily life provide far more instruction than formal

schooling. Family members may have a profound education effect–often more profound than they realize- though family teaching may function very informally.

EDUCATIONAL INSTITUTIONS:

The interior location and commercial character of the city and location of the Jai Prakash University at a distance of 90 kms are the main reasons for an inadequate development of educational institutions in Gopalganj city. Since then there has been a continuous growth of large institutions in the city. Now Gopalganj plays a pivotal role in this regard. It is the center of institutions for higher learning in the city and is well recognized as such all over the state. There are two general colleges belonging to different faculties. They are the kamlarai college, Gandhi College both constituent units of the jai Prakash University.

Kamlarai College is one of the oldest colleges of bihar. Government polytechnic college is an important college of district which was founded in 1994. Its location in the center of the region is boys and girls are studying 38 teacher are employed in this college. There is no hostel facility for student. Extensive playground, library and other facilities are available. Prior to 1994 this college was imparting education up to the Graduate standard and the standard of education was quite satisfactory. In 1999 the status of the college has been raised to the Post-graduate level in the faculties of Hindi, English, Geography, Economic, History and Political science.

Gandhi College is the second important college of graduate standard which was founded in 1980 It was founded in a residential building of a congested mohalla of jadopur near the Bishnupur road. Gandhi Technical Institute was another best college of Gopalganj city.

In 1992 Government Polytechnic College was established near malviya nagar in Gopalganj city. This college offers various graduate courses as well as post graduate course. All types of educational facilities available at this college for student like wifi library, sports, transportation, hostel, health care, computer lab etc. 700 student are enrolled here 50 teacher and 85 non-teaching employees are employed in this college. The college has a well-established playground and library. The building of the college has not been properly constructed. This is a shortage of classroom, common room, staff room and administrative block in the college.

Shri Mahendra Das College rank third. It was founded in 1984. IT was formerly imparting education up to intermediate standard. In 1997 the status of the college was raised to graduate level. IT was an affiliated unit of the Jai Prakash University, Chapra. It has a play ground and well-built buildings. 1882 student study here. 54 teachers and 87 non-teaching staff are employed. The future of this college is not bright because of local politics and financial constraints.

Besides there are several institutions of higher learning such as Nurses training college, Industrial training institute, Girls teacher training college and private technical institution. In addition there are a large number of high school both private and government. High schools are mentioning are good. All those institutions attract a large number of students from the region. Within the city of Gopalganj there are 46 Government school, 4 Missionary and 105

Private Middle schools. There are 16 Government primary schools and 47 in numerable private schools.

At the time of investigation 2017-18 8000 student were enrolled in different colleges, training college and higher technical institutions, 25000 student were in different high and middle school. Apart from these institutions, to meet the growing demand of education, every street is now marked by the private institution especially of primary standard. In addition, several technical institution and research institution have also been established.

At though illiteracy is widespread among the residents of Gopalganj, there are few organized activities to provide adult literacy and functional education to adults. The settlement which have an adult education programme. The classes are conducted irregularly with a very limited participation of the inhabitants.

There are no vocational training programs for adult and for illiterate youth in the age group of 15 to 35 year in any of the settlements. However some voluntary agencies have organized craft classes for women. There are conducted by part time instructors and provide training in tailoring, knitting and embroidery.

The condition of the educational institutions of Gopalganj city is not satisfactory except in Kamla Rai College, D.A.V. School, V.M. School, and Newton Public School. Others are badly suffering from faulty construction of buildings, congestion, scarcity of playgrounds and unsuitable location etc.

LEVEL OF SATISFACTION REGARDING EDUCATIONAL FACILITIES:

Educational facility is one of the most important social amenities through which the potential and quality of human resource is increased. The Gopalganj city has fairly large number of schools and colleges but it lacks technical university and technical colleges.

All the schools and colleges have sources of drinking water, toilet for girls and boys' student, playground and sufficient number of class rooms. But the number of teachers in some of the schools is not sufficient. Some of the schools have teacher student ratio less than 1:40 other schools have sufficient number of teachers.

The main problem associated with educational facility in the city is absence of:

- Vocational training center for skill development.
- Many of the private schools are unregistered.
- Lack of Technical college and university,
- Lack of required infrastructure in some private schools.

Analysis of data regarding level of satisfaction with educational facility in the Gopalganj city reveals that there is large spatial variation in standard of education in different wards as perceived by the residents.

TABLE

SATISFACTION LEVEL OF PEOPLE REGARDING EDUCATIONAL FACILITY IN GOPALGANJ CITY (2017-18)

Ward number	Total respondents	Score given by respondents (out of 5)						Composite score
		5	4	3	2	1	0	
1	20	4	10	5	1	0	0	77
2	20	2	8	8	2	0	0	70
3	20	2	7	9	1	1	0	68
4	20	3	9	7	1	0	0	74
5	20	2	9	8	1	0	0	72
6	20	3	8	6	2	1	0	70
7	20	5	8	9	1	0	0	77
8	20	2	7	8	2	1	0	67
9	20	4	8	6	2	0	0	74
10	20	4	10	5	1	0	0	77
11	20	1	6	8	3	2	0	61
12	20	3	6	7	3	1	0	67
13	20	0	9	7	3	1	0	64
14	20	0	10	6	3	1	0	65
15	20	2	8	10	0	0	0	72
16	20	1	9	8	2	0	0	69
17	20	5	10	4	1	0	0	79
18	20	4	6	9	1	0	0	73
19	20	3	9	7	1	0	0	74
20	20	3	5	10	1	1	0	68
21	20	3	6	10	0	1	0	70
22	20	1	6	10	2	1	0	64
23	20	2	5	11	1	1	0	66
24	20	1	9	9	1	0	0	70
25	20	2	6	9	3	0	0	67
26	20	2	7	10	1	0	0	70
27	20	2	8	9	1	0	0	71
28	20	3	11	6	0	0	0	77

Source: Based on field survey in Gopalganj city (2017-2018)

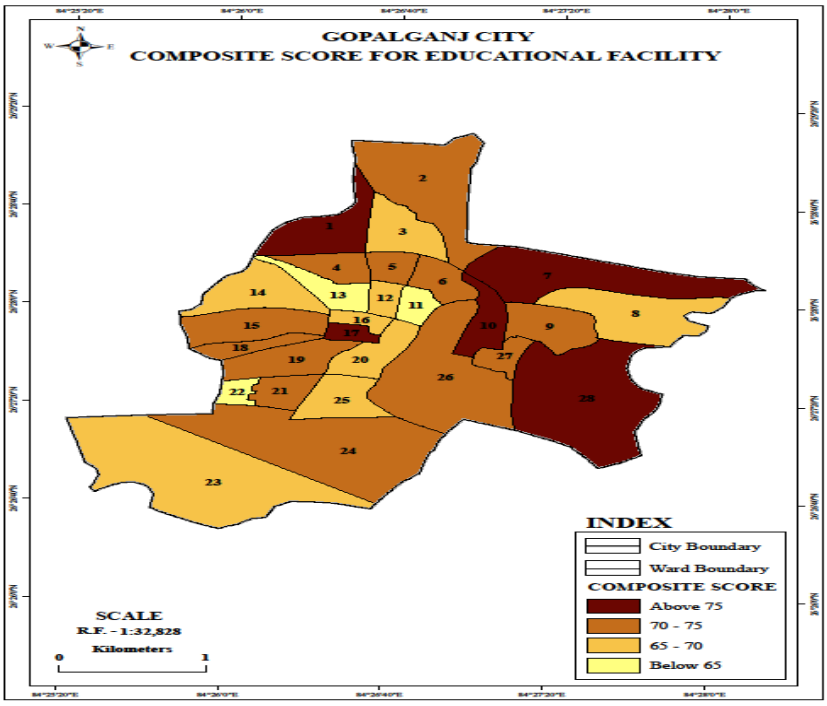

Data above suggest that people in Ward number 11, 13, 14 and 22 are not satisfied with educational facilities they get (composite score is 65 or less). People in other wards are satisfied with educational an facility that is ward number 1, 4, 7, 9, 10, 17, 19, and 28 in the city and composite score of satisfaction is above 74 for these wards. The chorochromatic map of level of satisfaction with educational facility in Gopalganj gives visual explanation of ward wise spatial variation in level of educational facility in the city.

THE MAIN FINDINGS:

The study of geographical background of the urban centre of Gopalganj and level of urban educational facilityavailable in the city has enabled the investigator to reveal some of the main findings and to draw conclusion.

The findings regarding the condition of urban educational facilityin the city can be summarized in following points:

- Educational facility in the city is also good as there are sufficient number of school and colleges in the city.
- The overall condition of urban amenities in the Gopalganj city is satisfactory.
- Condition of electric supply has improved in recent years.
- Parallel drain along streets, lane and roads provide a good sewerage facility to the inhabitants in the study area.
- The facility of toilets is good and almost all household have their own offset pit or septic toilet.

- The environmental condition of slum is deplorable and need focus of the governing authority.
- Parks and playgrounds don't have all the facilities required.
- The treatment plants for organic and inorganic wastes are not available and both are collected and disposed without segregation and treatment.
- Health facility in the city is also good as thereare sufficient numbers of health centre in the city.
- The banking and insurance bodies are sufficient in number to provide financial facilities to the city residents.
- The quality of drinking water and hand pump (private/public) is good.
- The city shows clear sign of expansion in area, population, built up cover, and wealth and beauty.
- The supply water is available only for community taps and shopkeepers.
- Government plans to develop urban infrastructure (Mukhyamantri Sat Nishchaya Yojana) is inclusive and composite.
- There are very few NGOs in the city to help government to provide good physical, social and cultural facilities to al l the residents of the city.
- The medical facilities in the city is adequate as there are two government and numerous private hospitals and clinics.

SUGGESTION:

The problems associated with the provision of urban educational facilityin the Gopalganj city are structural as well as institutional. The structural problem is related to the quantitative and qualitative inadequacy in provision of the services and lack of civic sense in urbanites. On the other hand institutional problems are associated with unequal distribution of facilities, poor maintenance of the physical and social infrastructure, improper implementation of the plans and programmes, overlap of the area of services among parastatal agencies. Due to difference in nature of problem associated with these services the remedies to solve these problems or to reduce its effect are also different. The study area has been studied by the investigator from subject's point of view as well as from his own view. Thus, problems felt by the city dwellers about the services and facilities have been incorporated with the researcher point of view regarding problems of urban educational facilityin the city. The suggestive measures provided by the researcher is based on the study of urban educational facility, its supply and demand gap, problem felt by the urbanites and investigator's own view. These suggestions aim to, provide measures for equal and justdistribution of civic facilities in the city, overcome discrepancy in the governments' programmes run in the city and make the city more beautiful and livable.

The suggestions for development of civic services in the city are summarized as follows:

- Public participation in implementation of programmes is indispensible for proper implementation of programmes.
- The treatment plants for inorganic and organic wastes should be established.
- Regular cleaning of roads should be ensured by municipality.
- Drains should follow the general ground slope to reduce over flooding in some area.
- The burning ghats should be cleaned, and facilities like potable water and rest house should be developed near burning ghats.

- NGOs and private investors should take part in beautification of city and to provide regular, more frequent and inclusive sanitation facility to all urbanites.
- Parks and playgrounds should be beautified, the bare ground of parks should be covered with grasses and facilities like drinking water, toilets should be provided in parks and playgrounds.
- The implementation of the plan and programmes should be ensured and the time taken in completion of projects should be reduced.
- Waste water should be treated before entering into the river Gandaki nala to avoid pollution of the river and to protect local environment.
- The development of civic sense among city dwellers to keep the city clean and beautiful, obey the rules and regulations, take care of public property should be developed at the school and college level so that the generation ahead would have all the quality to make the city more beautiful clean and safe.

The suggestive measures provided by the investigator are for better implementation of programmes, to provide equal distribution of urban amenities, and to develop civic sense among citizens. These measures are necessary to provide a good livable environment and services to run a good life for city dwellers.

GENERAL SUMMARY AND CONCLUSION:

In the urban areas the developments of urban amenities become very essential because not all people can have such facilities of their own. In urban areas all public amenities like education centre. Become so essential that the urban centre cannot exist without having such urbaneducational facility. In developed nation provisions for such facilities are planned and then urban centre are developed.

As a matter of fact unplanned development of these amenities in the urban center in due to the cause of regular growth of service facilities liked educational centre. At the same time these amenities do not develop at par with the growth of population within the municipal limit and there is increasing demand of services, Virtually urban amenities should be properly developed in all areas of the urban center so that difficulties can be avoided and people of urban areas can have opportunity for proper development.

In the present study attempt has been made to analyses the urban educational facility developed in the city of Gopalganj. It is true, this urban centre got the status of city in the present century but its existence in the form of religious centre dates back several centuries earlier and it is supposed to have some of the urban amenities from quite earlier time.

REFERENCE:

1. M. Pacione (2009), "*Urban Geography: A Global Perspective*", Routledge pub ication, New York, USA.
2. R.D. Dikshit (1997), "*Geographical Thought: A Contextual History of Ideas*", Prentice Hall of India Private Limited, New Delhi.
3. Jefferson, M. (1931): "Distribution of the World's City Folks", Geographical Review, Vol. 21, pp. 446-465.
4. Alexanderson, G. (1956): the Industrial Structure of American Cities, Lincoln.

5. Harris, C.D. (1943): A Functional Classification of Cities in the United States, Geographical Review, Vol.33.

6. Nelson, H.J. (1955): A Service Classification of American Cities, Eco. Geog, Vol. 31.

7. Pownall, L.L. (1955): The function of New Zealand towns, A.A.A.G., Vol. 43.

8. Bartholomew, W.H. & wood, J. (1955) Land uses in American Cities, Cambridge.

9. Dube, K.K. (1973): Use & Misuse of land in Agra, Urban Geography on Developing Countries, Varanasi.

10. Ataullah, M. (1985): Urban Land: Its Use & Misuse, Amar Prakashan, Delhi.

11. Singh, R.L. (1955): Banaras: A Study in Urban Geography, N.G. Socity of I., Varanasi. Singh, R.L. (1965) Banglore: An Urban Survey, Varanasi.

12. Dwivedi, R.L. (1961): Alllahabad: A Study in Urban Geography.

13. Taneja, K.L. (1973): Morphology of Indian Cities, Geographical Society of India, Varanasi.

14. Sami, A. (1979): Intra-Urban Market Geography: A Case Study of Patna, Concept Publishing Co., New Delhi.

15. Sinha, S. (1981): Patna: A Study in Urban Renewal and Reconstruction, Ph.D. Thesis, P.U.

16. Srivastva, I.B. (1982): Impact of Population on Land use in City of North Bihar Plain, Ph.D. Thesis, P.U.

17. Haque, S. (1985): Evolution of Land Use in Danapur Urban Agglomeration, Ph.D. Thesis, P.U.

18. Sahay, A. (1988): Changing Pattern of Urban Land Use in Patna, Ph.D. Thesis, P.U.

19. Sinha, R. (1997): Problems of Growing Indian Cities, Rajesh Publication, New Delhi.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Indian Economy Depending On Agriculture

Dr.Vinay Kumar

Senior Secondry Teacher, S.S+2 School,Rampurwa, Mainatand

Describing India, the AIRCS had said "India is essentially Rural India and Rural India is virtually the cultivator, the village handicraftsman and the agricultural laborer". Rural credit is a matter of credit in developing economy like India where 65 percent of the population depends upon agriculture for its livelihood. 25 percent of our GDP is contributed by the rural sector. Economic development of our country can be achieved only through uplift of the village folk consisting of farmers, agricultural labourers and artisan etc. Credit is one of the most important growth driver aspects of any economy. It is the life blood of every commercial venture. Credit supports the villagers as the hang man's rope supports the hanged. Gunnar Myrdal has defined Credit as an accelerator of development. Rural Credit helps in reducing poverty by providing the villagers and the rural poor people with credit facility to start agricultural and allied activities and small business. It not only supports the economic condition of the poor people but also has positive impacts on their social life through better standard of living with greater access to education, health facilities and empowerment to participate in decisions of the society. It has a great importance for following proposes: -

(1) For agricultural purposes such credit is needed for the purchase of seed, manure and fodder, payment of rent, wages, revenue, irrigation of crops, hire charges of pumps and purchase of water, purchase of life stock and effecting other land improvements, repair of agricultural implements, machinery, transport equipment farm house, cattle seeds, repair of wells and other capital expenditure on agriculture.

(2) For Nonfarm Business - Such credit is needed for repair of production and transport equipment and current expenditure in non-farm business; purchase construction and repair of building.

(3) For meeting family expenditure - It is needed for purchase of domestic utensils and clothing, paying for medical, educational and other family expenses and expenses relating to death and marriage and other litigation expenses.

Seeing its great importance, rural credit is the backbone of rural economy. We cannot imagine a rural society without rural credit.

Colonial Period

The social and economic conditions of farmers and labors were the worst in the colonial period. It was very well documented in many official reports. The MPBEC report 1930 is classic. "The debt is not repaid in full and part of loan persists and becomes pro-note debt. In the course of time, it may with a lucky year be paid off or it. Future interest dues repayment was not made in installments, a higher penal interest rate was charged. In several cases money lenders as a purchaser of crops pressured debtors and bought the crops at very cheap price.

Tenants, who formed a very significant proportion of the working population were the worst affected because them an extra sources of exploitation was added the rent relationship. Rent payments were generally fixed for the immediately post harvest period. This was particularly tough on tenants who paid rent in cash. Tenants were not allowed to lift the crop off the ground until the rent had been paid. In case rent was not paid in time, high rates of interest were charged on the unpaid amount. When land was leased following a mortgage, the rent charged was equivalent to the interest[1].

The colonial administration was aware of this problem and made several attempts to grapple with it. In 1793, the British government issued regulations providing for taccavi to proprietors, farmers, sub-ordinate tenants and ryots for embankments, tanks, watercourse etc. After a century, Government intervened in rural credit through the enactment of land improvement loans act, 1871. The limited arrangement of credit did not help the farmers and they were forced to depend on money lenders. The intolerable oppression of the poor by the moneylenders regulated in revolts in some parts of the country. They were attacked and their records were burnt. An enquiry into the causes of the trouble led to the passing of the Deccan Agriculturists Relief Act of (1879) that authorised courts to stop charging usurious interest rates and sales of land as a result similar land alienation acts were passed in Punjab united provinces and central providences and Berar.[2] Sir William Wedderburn and justice Ranade suggested a scheme for an Agricultural Bank to enable Farmers to borrow money at reasonable rates for productive purposes. Their suggestion became the key-issue in the Famine commission of 1881. This commission examined all issues pertaining to rural finance and suggested the provision of public funds for land improvements work and the extension of Deccan Act to other provinces. These led to passing of the Land Improvement Act, 1883 (For long term loan) and the Agriculturist' Loans Act, 1884 (for current needs) But these loans remained Rural In deftness extremely spares and ineffective.

Rural Indebtedness

Progress of SHGs in India

Progress of SHGs till March 2013

Country Name	No. of SHGs	Savinng of SHGs with Banks (Rs. Crore)	Bank loans disbursed during the year (Rs. crore)	House hold covered in (crore)
India	7317551	8217.25	20585.16	9.5

Source : Status of micro finance in India, 2012-13, NABARD, Statement.

From this table shows the growth of SHGs, saving the SHGs and bank loan disbursed during the year March 2013. As of 31 March 2013, there were 73 lakh SHGs in India covering about 9.5 crore households, out of more than 59 lakh were exclusively women SHGs. These SHGs were linked to the formal banking system with their savings balance of over Rs. 8200 crore. The total bank loan disbursed during the year 2012-13 amounted 2058516 crore[3].

Micro Finance in Bihar

The conventional anti-poverty programmes suffer from problems of delivery and are often unsuccessful in making a serious dent of poverty, especially the kind of poverty caused by the absence of a credit support for the poor households. This is particularly true in Bihar. In this scenario, microfinance is a potent alternative for poverty alleviation. This provide cheap and timely credit and other financial services for the weaker sections of the society an affordable.

Table Performance of SHGs in Bihar (March 2013)

1	Potential Rural households to be covered		72.67 lakh
2	Rural households covered (SHG: savings linked)		35.22 lakh
3	Districts with low coverage of SHGs out of 38 districts		35
4	Average savings in Bihar /SHG (Rs)		6264
	National Average (Rs.)		11230
	Highest Priority State : Uttar Pradesh (Rs.)		12388
5	Average credit disbursed/SHG (Rs)		72616
	National Average (Rs)		168757
	Highest Priority State : Uttar Pradesh (Rs)		136085
		2011-12	2012-13
6.1	Loans issued No. of SHGs (lakh)	0.39	0.31
6.2	Loans issued (Rs crore)	398.61	222.02
7	Loans outstanding (Rs crore)	1040.71	932.30
8	Gross NPA (Rs crore)	64.27	56.97
8.1	SGSY (Rs crore)	40.67	36.48
8.2	SHG (non-SGSY) (Rs crore)	23.60	20.49
9	No. of Women SHG districts	16	

Source: Status of Micro Finance in India, 2012-13, NABARD

Endnotes :

1. MPBEC Report 1930, Vol.-1, PP.77
2. Chandavarkar, A(1984), Money and Credit. 1858-1947 in D. Kumar (ed), Cambridge Economic History of India, Voll II, 1757-1970.
3. Economic survey of Bihar 2013-14. Govt. of Bihar, Finance Department PP. - 315

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Impact of Parenting Style and Family Pattern on Child Development

Prity Kumari

Department of Psychology, Magadh University,Bodh Gaya, Bihar

Child is the worthful model of nature. His mind like a blank Slate, on which we can write anything. The idea that the new man begins with the new child has provided the basic and adequate rationalization for massive early childcare. Child is the future of the nation; it is essential to take care of their health for a better life. At a small age, parents should develop the feeling of tolerance, sympathy, humanity and unity in children so that new generation can live their life with satisfaction and in this way welfare of community can be possible. For this child's welfare good health and education are necessary, so that they become well-disciplined and civilized citizens of the nation.

It is universally known that every human being is a product of his heredity and environment. Parents are the sources of both, especially during the critical period of growth and development. Heredity provides developmental potentials and parental actions and reactions provide opportunities as well as resources for actualization and development for genetic potentials. Parental attitude, parenting style and child's development are influenced by many factors related to family such as family pattern (joint and nuclear) and socioeconomic status of the family etc. These factors are solely responsible for shaping the parental attitude toward their children. In the views of Ping and Lee (1992, socio-economic status is directly related to values, attitude, child rearing practices, school adjustment and activities of children.

According to Landreth (1986) and Bernstein (1990), in ajoint family Parent child relation is not better. In joint family, generally socio-economic level is low, that is why, neither child gets nutritive food nor better means of education and entertainment. It gives bad impact on child's development. In contrast, nuclear family's child gets more opportunities for independence, self confidence and development of individuality. Duo to less numbers in nuclear families, parents devote more time for interaction, cooperation and guidance to

the child. It gives the positive impact on all round development of child. In the views of shweder (1919) at every age, the articulation of the children of the nuclear family is superior to that of children of joint family.

As far as the socio-economic status is concerned, it is assumed that it remarkably effects the achievements of the child. According to Young and Criber (1997) girls of high socio-economic status talk much, talk better than boys of high socio-economic status.

A child has emotional needs of positive attitude of parents. When the parent's attitude is unfavourable and irritated, we can say that his development toward maturity is being hampered.

In general parenting plays significant role in child's development. Parenting is affected by numerous factors viz, family pattern and income, parent's educational level and socio-economic status etc. Keeping in view the importance of parenting style for the children belonging to joint and nuclear family pattern in high socio-economic status the topic was selected for the

Objectives

1. To study the positive parenting style for girls and boys in relation to their family patterns viz., Joint and nuclear family system.

2. To study the negative parenting style for girls and boys in relation to their family pattern viz,. Joint and nuclear family system.

Method

Descriptive survey method was used for the study.

Variate Structure

1. Independent variable : Parenting style

2. Dependent variable : Family Pattern (joint & nuclear)

   Sex (Girls & Boys)

3. Control variable : High Socio-Economic Status.

For present investigation 252 families of patna in which 126 nuclear families and 126 joint families of high socio-economic status (after tool administration) were taken for the study.

Tools

Socio-Economic Status Scale SESS (2000) developed by Bharadwaj, was used to measure high socio-economic status of the parents. Multidimensional Parenting Scale (1985) developed by Chauhan and Khokhar was used to measure parenting style in joint & nuclear family pattern. It includes seven bi-polar dimensions of parenting as love/hate encouragement/ discouragement, acceptance/rejection, independence dependence, democratic/autocratic, dominance submission and progressive/conservative.

Results and Discussion

It is clear from the Table 1 that t-values regarding love, encouragement; democratism and dominance are found to be significant. It shows the attitudinal difference of parents belonging to joint and nuclear family for girls in high SES. The mean values show that parents of nuclear family are providing more encouragement (143.24) and democratism (18.7) to their female child as compared to the parents belonging to joint family. It may be due to effect of television viewing which gives enough exposure to western culture, talk show etc. change in attitude of women in general towards girls child. The parents of nuclear

Child is the worthful model of nature. His mind like a blank Slate, on which we can write anything. The idea that the new man begins with the new child has provided the basic and adequate rationalization for massive early childcare. Child is the future of the nation; it is essential to take care of their health for a better life. At a small age, parents should develop the feeling of tolerance, sympathy, humanity and unity in children so that new generation can live their life with satisfaction and in this way welfare of community can be possible. For this child's welfare good health and education are necessary, so that they become well-disciplined and civilized citizens of the nation.

It is universally known that every human being is a product of his heredity and environment. Parents are the sources of both, especially during the critical period of growth and development. Heredity provides developmental potentials and parental actions and reactions provide opportunities as well as resources for actualization and development for genetic potentials. Parental attitude, parenting style and child's development are influenced by many factors

related to family such as family pattern (joint and nuclear) and socioeconomic status of the family etc. These factors are solely responsible for shaping the parental attitude toward their children. In the views of Ping and Lee (1992, socio-economic status is directly related to values, attitude, child rearing practices, school adjustment and activities of children.

According to Landreth (1986) and Bernstein (1990), in ajoint family Parent child relation is not better. In joint family, generally socio-economic level is low, that is why, neither child gets nutritive food nor better means of education and entertainment. It gives bad impact on child's development. In contrast, nuclear family's child gets more opportunities for independence, self confidence and development of individuality. Duo to less numbers in nuclear families, parents devote more time for interaction, cooperation and guidance to the child. It gives the positive impact on all round development of child. In the views of shweder (1919) at every age, the articulation of the children of the nuclear family is superior to that of children of joint family.

As far as the socio-economic status is concerned, it is assumed that it remarkably effects the achievements of the child. According to Young and Criber (1997) girls of high socio-economic status talk much, talk better than boys of high socio-economic status.

A child has emotional needs of positive attitude of parents. When the parent's attitude is unfavourable and irritated, we can say that his development toward maturity is being hampered.

In general parenting plays significant role in child's development. Parenting is affected by numerous factors viz, family pattern and income, parent's educational level and socio-economic status etc. Keeping in view the importance of parenting style for the children belonging to joint and nuclear family pattern in high socio-economic status the topic was selected for the

Objectives

1. To study the positive parenting style for girls and boys in relation to their family patterns viz., Joint and nuclear family system.

2. To study the negative parenting style for girls and boys in relation to their family pattern viz,. Joint and nuclear family system.

Method

Descriptive survey method was used for the study.

Variate Structure

1. Independent variable : Parenting style
2. Dependent variable : Family Pattern (joint & nuclear)

   Sex (Girls & Boys)
3. Control variable : High Socio-Economic Status.

For present investigation 252 families of patna in which 126 nuclear families and 126 joint families of high socio-economic status (after tool administration) were taken for the study.

Tools

Socio-Economic Status Scale SESS (2000) developed by Bharadwaj, was used to measure high socio-economic status of the parents. Multidimensional Parenting Scale (1985) developed by Chauhan and Khokhar was used to measure parenting style in joint & nuclear family pattern. It includes seven bi-polar dimensions of parenting as love/hate encouragement/ discouragement, acceptance/rejection, independence dependence, democratic/autocratic, dominance submission and progressive/conservative.

Results and Discussion

It is clear from the Table 1 that t-values regarding love, encouragement; democratism and dominance are found to be significant. It shows the attitudinal difference of parents belonging to joint and nuclear family for girls in high SES. The mean values show that parents of nuclear family are providing more encouragement (143.24) and democratism (18.7) to their female child as compared to the parents belonging to joint family. It may be due to effect of television viewing which gives enough exposure to western culture, talk show etc. change in attitude of women in general towards girls child. The parents of nuclear family trust their daughters in dealing with problems of everyday life.

They allow them freedom to think, to explore, they encourage them to come decisions and to take actions. They want their daughters highly energetic and socially active as compared to the parents of joint family, although, they are also exposed to the media, it can be seen from the results of the study that the

mean value in joint family regarding love dimension is higher as compared to nuclear family. It may be due to the fact that parents belonging to joint family have more time to pay attention, affection and emotional support, as other family members share their duties & responsibilities in the family.

Table-1: Showing mean, SD and t-value for positive dimensions of parenting of girls.

Family Patt./+ve Dim.	Joint Family Patt.		Nuclear Family Patt.		't'
of parenting	M	SD	M	SD	
Love	137.08	8.032	104.98	12.089	17.554**
Encouragement	138.75	10.224	143.24	9.920	02.504*
Acceptance	144.22	8.375	147.16	8.762	01.925NS
Independence	145.25	7.333	146.24	8.240	00.712NS
Democratism	144.86	9.160	148.70	7.232	02.612*
Dominance	62.14	14.263	122.13	15.200	22.844**
Progressivism	142.98	9.883	142.75	8.792	00.138NS

** Significant at 0..1 level, * Significant at 0.05 level, NS: Not Significant.

Table-2 shows the significant t-values regarding hate, discouragement, rejection, dependence, submission and conservatism dimensions of parenting. It shows that in Indian social structure parents of joint and nuclear family are not similarly disposed towards their female child. The mean values indicate that parents of nuclear family pattern subject their female child to a lower level in comparison to the parents of joint family. It may be due to the effect of mass media in the present items, which has affected the viewpoints of parents with regard to their child's rearing. Now parents are to receive proper educating to assume their roles, for the effective upbringing of children. Their autocratic attitude is found similar in respect of joint and nuclear family that denotes by the mean values 6.81 and 63.1 also indicate so.

From the Table-3 it is clear that t-values of the love, acceptance, independence, democratism, dominance and progressivism dimensions are significant. It exhibits the difference of attitude of parents, belonging ot joint and nuclear family, towards their male child. The mean values show that the

nuclear family parents are treating their male child with more positively in comparison to the parents of joint family. It may be that with the passage of time, revolutionary changes are taking place in all walks of life, which have significantly altered thought and behavioural process of parents positively. Due to which, parental awareness and understanding have improved.

When their male child is attempting to do something worthwhile they appreciate him and they moderate words like you are not absolutely right but getting better and avoid words like no it is wrong. This type of positive approach by parents tend to gives him a feeling of security as he feels that he is good at things and his parents like him. It enhances the child's development in better ways as also supported by Fiedman (1998) and Agarwal and Agarwal (1999).

Table-2: Showing mean, SD and t-value for positive dimensions of parenting of girls.

Family Patt./+ve Dim.	Joint Family Patt.		Nuclear Family Patt.		't'
of parenting	M	SD	M	SD	
Hate	55.70	6.546	52.27	6.940	02.854**
Rejection	85.37	11.547	60.86	10.065	12.705**
Discouragement	74.95	9.694	58.75	7.711	10.378**
Dependence	70.97	7.572	57.29	9.554	08.904**
Autocratism	62.81	6.989	63.10	11.154	00.175NS
Submission	129.79	17.087	67.33	8.294	26.089**
Conservatism	91.43	15.010	63.84	8.439	12.717**

** Significant at 0.01 level, NS: Not Significant.

Table-3: Showing mean, SD and t-value for positive dimensions of parenting of boys.

Family Patt./+ve Dim.	Joint Family Patt.		Nuclear Family Patt.		't'
of parenting	M	SD	M	SD	
Love	103.08	23.521	136.84	7.740	10.822**

Encouragement	131.92	13.986	133.98	8.341	01.004NS
Acceptance	129.90	13.756	150.38	6.209	10.770**
Independence	130.44	14.508	148.65	7.585	08.828**
Democratism	120.13	13.868	137.05	7.720	15.382**
Dominance	127.05	12.736	133.94	5.898	03.898**
Progressivism	140.16	10.884	150.08	6.622	06.180**

** Significant at 0.01 level, NS: Not Significant.

Table- 4 reveals that mean values regarding negative dimensions of parenting are found higher in joint family in comparison to nuclear family. In the joint family parents are more autocratic (88.24) toward their male child rather than the other negative attitude. It may be said that in joint family pattern parents follow traditional manners of rearing their child.

This type of negative behaviour of parents leads to the feelings of insecurity in a male child. It may be that the joint family parents have a habit of taking decision on behalf of a child without bothering to understand their feelings. But in nuclear family, due to less members and high socio economic status, they devote more time with their male child and treat their male child with lower level of negative approach.

Table-4: Showing mean, SD and t-value for negative dimensions of parenting of boys..

Family Patt./+ve Dim.	Joint Family Patt.		Nuclear Family Patt.		't'
of parenting	M	SD	M	SD	
Hate	79.02	13.225	62.78	11.405	07.382**
Rejection	67.98	10.124	63.02	10.185	02.749**
Discouragement	66.86	10.235	49.98	4.769	11.866**
Dependence	65.87	14.937	61.54	10.887	01.860NS
Autocratism	88.24	20.124	61.81	10.24	09.290**
Submission	86.90	18.300	70.33	10.041	06.140**
Conservatism	58.92	05.818	59.06	4.908	00.146NS

** Significant at 0.01 level, NS: Not Significant.

Conclusions

This attitude of high SES parents toward their female child in joint family is somewhat negative in all aspects, except love dimension of positive parenting, whereas, high SES nuclear family parents are more encouraging, democratic and dominating towards their female child.

The high SES parents belonging to nuclear family have a more positive attitude toward their male child whereas, joint family parents exhibit a negative disposition toward their male child.

References

Agarwal, K.L. and Agarwal, S.K. (1999). Influence of parental encouragement on educational achievement of students. International journal of Behavioural Science, 28 (1), 59-61.

Bernstein, B. (1990), Language and social class. British Journal of Educational Psychology, 11, 271-276

Bharadwaj, R.L. (2005). Socio-economic Status Scale (SESS). Agra: National Psychological Corporation.

Chauhan, N.S. and Khokar, C.K. (1985). Multidimensional Printing Scale Meerut: Manovagyanik Anusandhanik Kendra.

Feldman, R.S. (1998). Child Development, New Jersey : Printice Hall. 555

Landreth, C. (1986). The Psychology of Early Childhood. New York: Knopf Pub: P. 746.

Ping, S. and Lee, R. (1992). Home Variables, Parent-Child Activities and Academic
Achievement. San Fransisco : Paper Presentation at the Annual Meeting of American Educational Research Association.

Shweder, R. (1991). Thinking through Cultures, Cambridge L Harvard University, 67. Young, M. and Scribner, J. (1997), The Synergy of parental involvement and student engagement at secondary level. Chicago: Paper Presented at the Annual Meeting of the American Educational Research Association, 4

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

'गोदान' में स्त्री प्रतिरोध के स्वर

शिप्रा श्रीवास्तव

पी–एच0डी0 (शोध छात्रा), हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ0प्र0)

साहित्य सदैव जन–जागृति का माध्यम रहा। जिस भाव, वेदना, विचार को प्रत्यक्ष रूप से समाज के सम्मुख नही रख सकते, उसे साहित्यकार अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्यक्ष का भान कराते हुए समाज के उसी दुर्व्यवहार, कुत्सित मानसिकता पर चोट करता है। वह चाहे दलित की वेदना हो, आदिवासी मनुष्यों की हो या स्त्री के अस्तित्व के संघर्ष की बात हो साहित्यकार इतनी जोर का हथौडा मारता है कि संवेदनहीन समाज का हृदय भी झकझोर उठता है। इसी कड़ी में अग्रणी सम्राट प्रेमचन्द का उपन्यास 'गोदान' जिसमें स्त्री अपनी पीड़ा, बेचैनी के विरोध में सशक्त एवं तटस्थ खड़ी नजर आती है।

भारत के आजाद होने के दस वर्ष से भी अधिक समय पहले लिखा गया इस उपन्यास का प्रकाशन 1936 ई0 में हुआ। तत्कालीन समाज में घटित घटनाओं को अपनी लेखनी के माध्यम से प्रेमचन्द अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करते है।

हमारा देश कृषि प्रधान देश है। कृषि किसानों पर निर्भर है। किसान के जीवन के विविध पहलुओं जैसे उनकी निर्धनता, शोषण, अशिक्षा, आदि को उजागर करने के लिए प्रेमचन्द ने गोदान उपन्यास की रचना की। प्रमुख रूप से गोदान कृषक समस्या पर आधारित उपन्यास है। इसके साथ ही इस उपन्यास में स्त्री प्रतिरोध का स्वर भी मुखर हुआ है।

स्त्री प्रतिरोध का अर्थ पुरूष के वर्चस्व को तोड़ना, पुरूष के अहंकार को समाप्त करना व पुरूष की दूषित मानसिकता को दूर करना है। स्त्री प्रतिरोध का यह अर्थ नही है कि स्त्री–पुरूष सम्बन्धों से उनको मुक्त करना। यह संसार और समाज स्त्री–पुरूष के आपसी सम्बन्ध से चलता है। इस संसार की गति अनवरत रूप से चलती है। इसीलिए स्त्री–पुरूष के मध्य सहभागिता अनिवार्य है।

इस उपन्यास में दलित और श्रमशील समाज की स्त्रियां अपने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं अधिकारों के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं। वह अपने विरूद्ध हो रहे शोषण के प्रति आवाज उठाने में तनिक भी संकोच नहीं करती है। प्रेमचन्द ने गोदान में जिन स्त्री पात्रों को रखा है उनके चरित्र पुस्तकीय चरित्र न होकर समाज में घटित हो रहे घटनाओं को महसूस करते हुए स्त्री अभिव्यक्ति को आवाज दी है। यही कारण है कि इस उपन्यास में जीवंतता दिखलायी पड़ती है।

गोदान उपन्यास में सबसे सशक्त एवं उभरा हुआ पात्र होरी की पत्नी धनिया का है। वह एकदम निश्छल व स्वाभिमानी है। वाह्य रूप से धनिया का व्यक्तित्व स्पष्टवादी, निर्भीक, अपने अधिकारों के प्रति सजग, तेजतर्रार ग्रामीण स्त्री के रूप में दिखायी पड़ता है। और आन्तरिक रूप से धनिया में करूणा की भावना, क्षमादान, सहज नारीत्व, तरल मातृत्व समाहित है। गोदान के आरम्भ में धनिया है और अन्त में भी धनिया है। धनिया के बिना होरी का अस्तित्व कुछ भी नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गोदान में धनिया का चरित्र कितना महत्व रखता है।

महज ग्यारह–बारह वर्ष की अवस्था में धनिया का विवाह होरी से हो गया। धनिया का चरित्र होरी के बिल्कुल विपरीत है। जिसके कारण आये दिन दोनों आपस में झगड़ते रहते है। होरी का मानना था कि– "जब दूसरे के पाँव–तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।"[1] होरी समझौता करके समस्याओं को सुलझााने का प्रयास करता था जब कि इसके विपरीत धनिया विद्रोही स्वभाव होने के कारण बिना किसी वजह के उसे किसी की खुशामद व चापलूसी करना पसंद नही। चाहे वह कितना भी बड़ा जमींदार क्यों न हो। प्रेमचन्द धनिया के माध्यम से कहते है– "उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ।"[2] तत्कालीन समाज में जमींदारी प्रथा विद्यमान थी। जिसके कारण जमीदारों द्वारा किसानों का शोषण किया जाता था। उस समय प्रेमचन्द 'गोदान' में "धनिया के माध्यम से किसानों के प्रति हो रहे शोषण के विरूद्ध आवाज उठाते हैं।

'गोदान' में धनिया के प्रतिरोध के स्वर जगह–जगह पर परिलक्षित होता है। होरी की गाय मर जाती है तब होरी के मन में संदेह होता है कि गाय को विष हीरा ने दिया है। वह अपने संदेह को धनिया से कहता है और मना करता है कि यह बात किसी से मत कहना पर इतना सुनते ही वह आवेश में आ जाती है। वह धनिया जो होरी के छोटे–छोटे भाईयों को पाल–पोसकर बड़ा की, उनका विवाह की, उनकी बहुओं को अपने घर उतारी। इतना सब करने पर भी होरी के छोटे–भाईयों की पत्नी अलगौझा करके उस पर आरोप भी लगायी। यह सब होरी सहन कर सकता था धनिया नहीं। होरी अपने भाई की गलती छिपाने का प्रयास करता है तो धनिया भड़क उठती है और वह इस बात का विद्रोह करती है। वह आवेश में आकर बोलती है– "अनर्थ नहीं, अनर्थ का बाप हो जाय। मैं बिना लाला को बड़े घर भिजवाएं, मानूँगी नहीं। तीन साल की चक्की पिसवाऊँगी, तीन साल। वहाँ से छूटेंगे, तो हत्या लगेगी। तीरथ करना पड़ेगा। भोज देना पड़ेना। इस धोखे में न रहें लाला। और गवाही दिलाऊँगी तुमसे, बेटे के सिर पर हाथ रखकर।"[3] इस तरह धनिया होरी का प्रतिरोध करती है।

दरोगा हीरा के घर की तलाशी लेने आते है किन्तु होरी मरजाद जाने के डर से दरोगा को रिश्वत देने जाता है जिससे हीरा के घर की तलाशी न हो सके। उस समय धनिया का चण्डी रूप प्रेमचन्द बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत करते हैं। धनिया होरी को धिक्कारते हुए कहती है– "घर की तलाशी होने से इसकी इज्जत जाती है। अपनी मेहरिया को सारे गांव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जाती। यही तो वीरों का धरम है। बडा वीर है, तो किसी मर्द से लड़। जिसकी बांह पकड़कर लाया, उसे मारकर बहादुर न कहलाएगा।"[4] इस तरह प्रेमचन्द ने स्त्री के प्रति हो रहे घरेलू हिंसा के विरूद्ध आवाज धनिया के माध्यम से उठाते हैं और अपने अधिकारों के प्रति स्त्रियों को सजग करते हैं।

धनिया का इस प्रकार रूप देखकर होरी आश्चर्यचकित हो जाता है और वह लगभग अपने आपको परास्त महसूस करने लगता है। शिवकुमार मिश्र कहते हैं– धनिया का यह स्वाभिमान उस भारतीय नारी का स्वाभिमान है, जो पुरूष के प्रति समर्पित होकर भी अपनी अस्मिता बनाये रहती है।"[5]

एक तरफ जहाँ धनिया ग्रामीण परिवेश में रहकर अपने अधिकारों की रक्षा करती दिखलायी पड़ती है तो दूसरी तरफ मालती जिसकी उपस्थिति में 'गोदान' की शहरी कथा सरस बनती दिखायी पड़ती है। 'गोदान' की दूसरी सशक्त पात्र मालती हैं। प्रेमचन्द की नारी–सम्बन्धी आदर्श परिकल्पना मालती के चरित्र में दृष्टिगोचर होता है। मालती खुले विचारों की महिला है। चंचलता, चपलता कूट–कूटकर भरी हुई है। उसके अंदर संकोच झिझक कहीं नहीं दिखायी देता है। वह पुरूष–मनोविज्ञान से भली–भांति परिचित है। मालती इंग्लैण्ड से डाक्टरी की पढ़ाई कर के आयी हैं और अब प्रैक्टिस कर

रही है। विभिन्न परिस्थितियों से गुजरते हुए मालती जिन्दगी को समझी और उसी परिस्थितियों ने उसे जीवन जीना सीखा। मालती पुरूषों को उकसाती जरूर हैं पर कभी उनके जाल में नहीं फसती। वह मेहता के करीब आती हैं। मेहता के विचार एवं उसके पौरूष का प्रभाव उसके ऊपर पड़ता है पर मालती शादी के बन्धन में नही पड़ना चाहती क्योंकि वह मानती थी कि शादी के बाद जीवन का पूरा विकास नही हो पाता है।

गोविन्दी खन्ना की पत्नी है। वह मालती से द्वेष करती है उसे लगता है कि वह उसके और उसके पति के बीच में आ रही है। मेहता इस सन्दर्भ में मालती से चर्चा करते है। और वह मालती से कहते भी हैं कि जो बात सारी दुनिया समझ रही है वही मिसेज खन्ना भी समझ रही हैं तो इसमें कुछ गलत नहीं है। यह सुनकर मालती तमतमा उठती है और वह मेहता के इस बात का प्रतिरोध करते हुए कहती है कि– "आपको मुझ पर आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है, अगर आप भी उन्हीं मर्दों में हैं, जो किसी स्त्री–पुरूष को साथ देखकर उंगली उठाए बिना नहीं रह सकते, तो शौक से उठाइए। मुझे रत्ती–भर परवाह नहीं।"[6]

वर्तमान समाज में आज भी आये दिन कामकाजी स्त्रियों को ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह समझने की आवश्यकता है कि यदि स्त्री घर के बाहर काम कर रही है तो पुरूषों के साथ आपसी सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। मालती ऐसे पेशे से जुडी थी जिसमें उसको सभी का स्वागत, सत्कार, आदर करना पड़ता था। यदि कोई इसका अन्य अर्थ निकालता है तो इससे उसकी मानसिकता का पता चलता है।

मील–मालिक खन्ना की पत्नी गोविन्दी को प्रेमचन्द शिक्षित और संस्कारशील स्त्री के रूप में प्रस्तुत किये है। वह अपने पति से इसलिए आहत है कि उसका पति विलासी स्वभाव का होने के कारण परायी स्त्री के आकर्षण में पड़ा है। गोविन्दी इस चीज को बर्दाश्त नहीं कर पाती। मालती के प्रति उसे शक है कि वह उसके और उसके पति के बीच में आ रही है। वह अपने दुख को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करती है परन्तु खन्ना उसका मजाक उड़ाते हैं। खन्ना शारीरिक स्तर पर भी गोविन्दी को प्रताडित करता है। गोविन्दी का स्त्रीत्व आहत हो उठता है और वह घर छोड़कर चली जाती है। मेहता उसको समझाते है और घर लौट जाने को कहते है। गोविन्दी प्रतिरोध करते हुए कहती है– "मुझे अब अपना जीवन असह्य हो गया है। मुझसे अब तक जितनी तपस्या हो सकी, मैंने की, लेकिन अब नहीं सहा जाता।"[7] इस तरह गोविन्दी अपने अधिकारों के प्रति विद्रोह करती है। अन्ततः मेहता के समझाने पर घर वापस लौट जाती है।

गांव और शहरी वातावरण दोनो ही परिवेश में झुनिया रहती है। वह गोबर से सम्बन्ध इसलिए बनाती हैं कि कहीं न कहीं वह इतने लम्बे जीवन को अकेले व्यतीत कर सकने में सशंकित थी। वह बाल विधवा थी और युवावस्था का तकाजा भी था कि वह गोबर के प्रति खिंची आ रही थी। वह गोबर को उद्दीप्त करती है जिससे विवाह पूर्व उसके गर्भ में गोबर का बच्चा आ जाता है। गोबर झुनिया को साथ लेकर अपने घर आ जाता है। धनिया उसको घर में पूर्ण बहू का अधिकार देती है। वह गोबर के साथ नगरीय परिवेश में भी प्रवेश करती है। गोबर पर शहर के वातावरण का असर होने लगता है। वह प्रतिदिन ताड़ी पीकर आता है, झुनिया को मारता–पीटता है। झुनिया के सपने ध्वस्त होने लगते हैं। वह छोटी सी कठोरी में घुटने लगती है। चुहिया उसको सहारा देती है। छोटे से शिशु को अपना दूध पिलाकर पालती है। गोबर को वह धिक्कारती है। झुनिया झिड़ककर चुहिया से कहती है– "रहने दो। अभागा मर जाय, वही अच्छा। किसी का एहसान तो न लेना पडे।"[8] कहीं न कहीं झुनिया के मन में बैठ गया था कि गोबर एकदम मतलबी है उसे केवल भोग की वस्तु समझता है। उसके जीने मरने का

उसके ऊपर कोई फर्क नहीं पड़ता। झुनिया के चरित्र के विषय में शिवकुमार मिश्र कहते हैं– "झुनिया के चरित्र की रेखाएँ प्रेमचन्द ने स्थितियों से उपजे यथार्थ से रची है।"[9]

झुनिया के बाद गोदान की एक अन्य पात्र है सिलिया, जो कि अपनी जाति से भिन्न मातादीन के वासना का शिकार बनती है। मातादीन स्वभाव से लम्पट रहता है परन्तु सिलिया अपनी दृढ इच्छा शक्ति एवं एकनिष्ठता से मातादीन के लम्पट स्वभाव को प्रेम में परिवर्तित कर देती है। इस तरह मातादीन के आचरण परिवर्तन में सिलिया की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

इस तरह 'गोदान' उपन्यास में स्त्री पात्र अपने अधिकारों और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के प्रति अत्यधिक सजग है। धनिया, मालती, गोविन्दी, झुनिया, सिलिया इत्यादि पात्रों में नारी अस्मिता एवं प्रतिरोध की चेतना का स्वर लक्षित होता है।

'गोदान' उपन्यास का स्त्री विमर्श भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है। तत्कालीन भारतीय समाज में स्त्रियों के जिस यथार्थ को गोदान में दिखलाया गया है वह वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है।

स्त्री जीवन को पुरूषों ने सदैव खाई में धकेलने का कार्य किया है जिस तरह से पृथ्वी के गर्भ से ज्वालामुखी का उद्‌गार होता है। उसी प्रकार स्त्री भी समाज के पितृसत्ता को सहते–सहते ज्वालामुखी की भाँति फूट पड़ती है। और इस समाज के प्रति विद्रोह का स्वर मुखर कर देती है अपने अधिकारों के लिए। इसी की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द जैसा उपन्यासकार सम्राट इस दर्द को समझते हुए अपने उपन्यास में स्त्री प्रतिरोध के स्वर को गुंजायमान किया है।

सन्दर्भः

1. गोदान, प्रेमचन्द, लोकभारती प्रकाशन दरबारी बिल्डिंग, एम0जी0 रोड, इलाहाबाद, संस्करण–2005, पृ0 5
2. वही, पृ0 5
3. वही, पृ0 93
4. वही, पृ0 98
5. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–211001, संस्करण–2011, पृ086
6. गोदान, प्रेमचन्द, लोकभारती प्रकाशन दरबारी बिल्डिंग, एम0जी0 रोड, इलाहाबाद, संस्करण–2005, पृ0 144
7. वही, पृ0 169
8. वही, पृ0 239
9. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–211001, संस्करण–2011, पृ0 93–94

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

हिन्दी साहित्य में थर्ड जेंडर की अभिव्यक्ति

अंकिता देवी

पी–एच0डी0 (शोध छात्रा), हिन्दी आधुनिक भारतीय, भाषा विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (उ0प्र0)

समाज के प्रत्येक दुर्गुण को दिखाने का कार्य साहित्य करता है। जो आइने की भाँति अभिव्यक्त किये बिना सब–कुछ व्यक्त कर देता है। समाज के इसी दुर्गुणों में एक है तृतीय–लिंगी समुदाय जिसे समाज द्वारा बहिष्कृत किया गया। समाज की घृणित मानसिकता ने एक पूर्ण मनुष्य को लिंग–दोष के कारण घर से बाहर फेंकने के लिए उस बच्चे के माता–पिता को विवश कर देते है। उसे उसके जीने का अधिकार छीन लेते है। पिता को 'हिजड़े का पिता' कहकर सम्बोधित किया जाता है। जो समाज इसे गाली के रूप में प्रयोग करता आ रहा है। साहित्य ने सदैव इन पर लेखनी चलाने की स्याही को बचाता रहा कि कहीं उसकी छींटे मेरी लेखनी के साथ मुझ पर न पड़ जाए। जितने साहित्य इतिहास आदि लिखे गये। उनमें दबी जुबान इनके अस्तित्व को स्वीकार किया किन्तु उनके जीवन के उस भयावह दृश्य को समाज के समक्ष रखने का साहस नहीं दिखाया, जिससे इस कोढ़–बुद्धि समाज का हृदय विदीर्ण हो जाए। इनके लिए संवेदना जगे कि जिस तरह अन्य बच्चे पलते–बढते है, उनकी भावनाएँ होती है दुनिया देखने की, शिक्षित होने की। किन्तु समय का चक्र चलता ही रहता है। एक दिन ऐसा भी आया जब साहित्य ने दकियानूसी करते हुए भी इस हिजड़ा समुदाय की समस्याओं को समाज के समक्ष परोसना शुरू किया। जिससे थोड़ा ही सही इनके जीवन को समझने में साहित्य ने अपना योगदान दिया।

हिन्दी साहित्य में सदैव विभिन्न विमर्श को स्थान दिया गया है, चाहे वह स्त्री विमर्श हो, दलित विमर्श हो या आदिवासी विमर्श। वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य एक नये विमर्श की ओर उन्मुख हुआ है। वह है तृतीय लिंगीं विमर्श अर्थात् जो न स्त्री है और न पुरूष। यदि मन स्त्री का है तो देह पुरूष का और यदि मन पुरूष का है तो देह स्त्री का।

लेखिका नीरजा माधव रचित तृतीय लिंगी विमर्श आधारित प्रथम उपन्यास 'यमदीप' है जिसमें आर्थिक तंगी में देह व्यापार एवं सामाजिक विसंगतियों पर तीक्ष्ण प्रहार करती है और उन्हें रोजगार देने की पैरवी करती नजर आती है। हिन्दी साहित्य में 2002 में नीरजा माधव का 'यमदीप', 2011 में महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा', 2011 में निर्मला भुराड़िया का गुलाममंडी, 2016 में चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नं0 203 नालासोपारा', 2014 में प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', 2017 में भगवंत अनमोल का 'जिन्दगी 50–50', 2016 में महेन्द्र भीष्म का 'मैं पायल', 2015 में लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी का 'मै हिजड़ा मैं लक्ष्मी', 2018 में मानोवी वांद्योपाध्याय का 'पुरूष तन में फंसा मेरा नारी मन', 2018 में सुभाष अखिल का 'दरमियाना' पुस्तकें हिन्दी साहित्य में थर्डजेण्डर की अभिव्यक्ति को सहारा दिया है। साहित्य समाज

का आईना है जिसमें किसी भी वर्ग के लोगों की पीड़ा को उकेरा जाता है। 15 अप्रैल 2014 को कोर्ट द्वारा आये ऐतिहासिक फैसले को अभी तक जमीनी हकीकत न के बराबर दिखायी देती है। समाज ने स्वीकार नहीं किया और वहीं हंसी बरकरार है जो आज के सौ साल पहले थी या उससे भी अधिक। आज भी लोग गालियों में उत्तेजित होकर हिजड़ा कह देते है। इससे यह प्रतीत होता है समाज आज भी इन्हें स्वीकार नहीं कर पा रहा है। साहित्य की निगाह में देखे तो साहित्य ने एक नयी अलख जगाने का कार्य किया है उनके दर्द को समझा। महेन्द्र भीष्म द्वारा रचित किन्नर गुरू पर 'मैं पायल' आत्म–कथात्मक उपन्यास में जुगनी अर्थात् पायल ने स्वयं बताया है कि एक पिता ने यह जानकर कि मेरा बच्चा हिजड़ा है उसको प्रताड़ित करता है– "इस समय तक मुझे पूरी तरह से एहसास हो चला था कि मैं वही हूँ जो पिता जी गुस्से मे मारते समय चिल्लाते–चीखते हैं। मैं हिजड़ा हूँ। मैं एक हिजड़ा बच्चा हूँ।"[1]

साहित्य ने इस रचना द्वारा दर्शाया कि स्वयं अपना पिता ही एक लिंग–दोष के कारण हमेशा मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित करता है। पायल स्वयं बताती है– "बचपन में मुझे पिता जी से कष्ट, दुख, अपमान और मार के सिवाय कुछ नहीं मिला।"[2]

थर्ड जेंडर लिंगगत् अवधारणा स्त्री और पुरूष में से किसी श्रेणी में नही आता। यह मुख्यतः हाशिए की श्रेणी मान ली जाती है। इन्हीं कारणों से उन्हें अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता है। इसमें भी सबसे पहले वह यातना जो उसे मानसिक, शारीरिक रूप से सबसे अधिक प्रताड़ित करता है, वह है यौन शोषण। चाहे वो लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी हो, मानोबी वंद्योपाध्याय हो या फिर पायल सिंह हो। आज इन सभी लोगों ने अपने आत्मकथात्मक उपन्यास में यह स्वीकार किया है कि हमारी छोटी उम्र में यौन शोषण होता रहा। लक्ष्मी के शब्दों में– "जब मैं सात साल का था, तब पहली बार मेरा यौन शोषण हुआ।"[3] जिस उम्र में बच्चे अपने दुनिया में खोये रहते है, मस्ती करते है उस उम्र में उनके साथ ब्लातकार जैसी जघन्य, घृणित कार्य हुआ। लक्ष्मी ने बताया– "जैसे मेरे शरीर पर इनका हक था। उन्हें उसी में खुशी मिलती थी, पर मुझे सिर्फ तकलीफ, तकलीफ और सिर्फ तकलीफ।"[4]

इस समुदाय के बच्चों के प्रति समाज के किसी वर्ग को कोई संवेदना नहीं होती, सिर्फ उनके शरीर को नोचते रहते हैं। मानोवी जो आज स्वयं के संघर्ष पर कालेज प्रिंसिपल है। उसके पीछे पीड़ा का पहाड़ खड़ा है जिसे उनके आत्मकथा में पढ़कर रोगटे खड़े हो जाते है। शारीरिक शोषण को बताती हुई कहती है कि– "उसने अचानक मेरी गुदा में प्रवेश किया और धक्के मारने लगा। मैं मारे दर्द के चिल्ला पड़ी, उसने मेरी चीख दबाने के लिए मेरे मुँह पर अपना हाथ रख दिया।"[5]

हिन्दी साहित्य अस्मिता, आत्मनिष्ठा, प्रतिनिधित्व जैसी मान्यताओं को एक नया विमर्श दिया। संस्कृति, शरीर व यौन इच्छा सामाजिक द्वन्द्व की धुरी है। जहाँ व्यक्तिगत अस्मिता निरंतर संघर्षरत रहती है। थर्डजेंडर जो निरंतर सामाजिक अलगाव का दंश झेलता आ रहा है। इसी अलगाव की मनःस्थिति से लड़ते हुए विनोद उर्फ बिन्नी अपने माँ से शिकायत करता है– "तुम सबको छोड़ने का निर्णय मोटा भाई का स्वयं का निर्णय है लेकिन अपने इस दीकरे को तुम लोगों ने स्वयं घर से खदेड़ उन हाथों को सौप दिया जिन्होनें अपने मानसिक अनुकूलन को ही अपनी नियति मान लिया।"[6]

मुख्य धारा के समाज से बहिष्कृत किन्नर समुदाय अपनी ही दुनिया में जीना चाहते है। उससे निकलने से भी डरते है। नाच–गाना करके अपना जीवन ज्यों का त्यों जीते जाते है। इसी बात को

पुष्टि करते हुए विनोद अपनी माँ से कहता है– "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो।"[7]

साहित्य पुल की तरह है, जो समाज को जोड़ने का कार्य करती है। उस दुरूह और अप्रत्यक्ष घटित घटनाओं को हमारे समाज के हाथों ऐसे थमा देती है कि संवेदना शून्य इंसान भी सोचने को मजबूर हो जाता है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास का पात्र विनोद किन्नर समाज की छटपटाहट को सामने लाता है– "मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ–पैर नहीं है। हैं, हैं, हैं, सब वैसा ही है, जैसे औरों के हैं।"[8]

समाज की बात की जाए तो किन्नरों के प्रति आज नहीं आदि सें ही संवेदनहीन बना रहा। उस पैदा हुए दुधमुँहे बच्चे का क्या दोष जो जन्म से लिंग–दोष लेकर पैदा हुआ है। और ये बात उसे पता भी नहीं है। वही आँख से अंधा, कान से बहरा बोलने में असमर्थ (गूंगा), पैर से लंगड़ा, शरीर से पूरी तरह अक्षम जो स्वयं से चल भी नही सकता। उसे समाज अपने घर में परिवार, समाज सब कहीं स्वीकार्य है किन्तु जो पूरी तरह स्वस्थ्य है वह परिवार, समाज के लिए सब–कुछ करने में सक्षम है। उसे नरकागार में धकेल दिया जाता है।

'तीसरी ताली' उपन्यास जो सत्य घटनाओं पर आधारित एक रिपोर्ट है। जिसमें शबनम मौसी चुनाव लड़ने के लिए समाज में आती है। और समाज उनके हिजड़ा होने से घृणा करती है। इसी बात पर शबनम कहती है– "असली हिजड़े तो वो है जो जनता के वोटो से संसद और विधानसभा में जाकर उन्हीं का खून चूसने की योजनाएँ बनाते है।"[9]

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, कॉडवेल का कथन पूर्णतः सत्य है– "साहित्य का मोती समाज की सीपी में ही जन्म लेता है।" अर्थात् इस समाज की कुत्सित, घृणित मानसिकता ने हिजड़ा विमर्श की पृष्ठभूमि तैयार की। लैंगिक विकलांगता को सामान्य जीवन की तरह न देखकर भयावह बना दिया। जिसे साहित्य ने उसकी आवाज को उठाने की कोशिश की है वर्षो बाद। समाज में जो कुछ घटित होता है, साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति होती है।

साहित्य के माध्यम से साहित्यकार समाज से संवाद स्थापित करता है। समाज के उन घटिया विचार धाराओं को तोड़ते हुए अनेक प्रश्न खड़ा करता है जिस विचार द्वारा किसी समुदाय को समाज से अलग कर दिया जाता है या उसे घुटन भरी जिन्दगी जीने पर मजबूर कर दिया जाता है।

साहित्य उन चिंताओं को अपने पटल पर उभारता है। जिसे समाज ने नासूर समझ छोड़ दिया है। और समाज ही उस घाव पर चोट भी करता है। साहित्य इसी दुरूहता को दूर करने का मार्ग दिखाता है।

21वीं सदी की प्रतिनिधि के रूप में हिन्दी साहित्य में तृतीय–पंथी जीवन को अभिव्यक्त करने की राह पर है। किन्तु गति धीमी जरूर है। तृतीयलिंगी समाज साहित्य के प्रवाह से छूट गया था जो वह अपमान, पीड़ा, शोषण, त्रासदी, अवहेलना का दिन–ब–दिन सामना करता आ रहा है। यह अनुसंधान की धारा से भी अछूता रहा। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। सामाजिक सुरक्षा प्राप्त हैं। वही इस समाज के हिस्से में यह भी नहीं है। ब्लातकार जैसी घिनौनी घटना पर भी संवेदनहीन पुलिस महकमा इनकी रिपोर्ट तक दर्ज नहीं करती। 'लक्ष्मी' अपने आत्मकथा में

बताती है– "मुझे विरार से फोन आया एक हिजड़े पर वहाँ ब्लातकार हुआ था। पुलिस फरियाद सुनने को तैयार ही नही, जब कि उस हिजड़े की स्थिति नाजुक थी।"[10]

तीसरी दुनिया के समझे जाने वाले थर्डजेंडर समाज को साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति को अभी नाममात्र आवाज मिली है। किन्तु धीरे–धीरे स्वयं हिजड़ा समाज साहित्य की धारा में जुड़ रहे है। और अपना भोगा हुआ सत्य समाज के समक्ष प्रश्नचिह्न के रूप में खड़ा कर रहे है। अपने पेट के लिए थोड़े रूपये में शरीर का व्यापार करते है। उससे कहीं अधिक भयानक एड्स जैसी बीमारी साथ लेकर आते है। अगर देखा जाये तो वही समाज जिसने अपने घर से निकाल दिया वे पेट भरने के लिए कोई काम ढूंढते है तो हिजड़ा होने की वजह से कोई काम तक नहीं दिया जाता। किन्तु चार पैसे फेककर रात के अंधेरे में उनके शरीर का उपभोग कर लिया जाता है। ऐसे घृणित समाज को सभ्य समाज का दर्जा दिया गया है। जो निरीह प्राणी, स्त्री, बच्चा, हिजड़ा किसी से भी अपनी दरिंदगीपन का हवस मिटाते है। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी अपने एक सेमिनार जो मध्यप्रदेश के 'श्री अटल बिहारी बाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय इंदौर' नें किन्नर सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्यःचिंतन और चुनौतियाँ' विषय पर 16 मार्च 2019 को बोलते हुए कहती है– "छः मीटर की साड़ी जिसने भी पहनी उन सबका दर्द एक जैसा है।"[11] अर्थात् स्त्री के रूप में जो भी दिख जाए पुरूष ने उसे अपनी भोग की वस्तु समझकर उसका सदैव उपभोग और उपहास किया। इसी समस्या को लेकर साहित्य ने हमेशा एक नया कदम बढाया है। वो चाहे निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी' हो जिसमे हाशियेकृत हिजड़ा समुदाय की गाथा के साथ–साथ ह्यूमन ट्रैफिकिंग जैसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या पर भी बहुत ही विवेचनात्मक ढंग से विचार करता है। इसी तरह 2002 में ही स्वतंत्र हिजड़ा समुदाय की पैरवी करने वाली पुस्तक यमदीप जो नीरजा माधव द्वारा रचित है जो समाज के मुखौटे को खुरच–खुरच कर नोंच फेकता है और इस समाज को विचार करने पर मजबूर कर देता है।

लिंग तथा सामाजिक पहचान विधि मान्यता के आधार पर हमेशा से वाद–विवाद का एक ज्वलंत मुद्दा रहा है। जिसमें पुरूष को प्रथम, स्त्री को द्वितीय और हिजड़ा को तृतीय बना दिया गया। वर्तमान समय में तृतीय लिंग एक विवादित और संवेदनशील मुद्दा है। जिसे साहित्य ने वर्तमान समय में अपनी गोद में बैठाना शुरू किया है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बाक्स नं0 203–नालासोपारा' में विनोद के माध्यम से हिजड़ो की परेशानियों के साथ उनके लिए कानून बनाने, शिक्षा, समानता और घर वापसी की बात करती है।

वर्तमान में हिन्दी साहित्य थर्ड जेंडर के शिक्षा, स्वास्थ्य और अधिकारों की बात करता है। इससे समाज में थोड़ा परिवर्तन आया है किन्तु समाज आज भी इनके प्रति सहज नही है। साहित्य में जितनी भी पुस्तकें आयी है वे कुछ ही संख्या में है जो उगलियों पर गिनी जा सकती है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ऐसे समाज से है जिन्होंने अपना परचम स्वयं देश–परदेश तक फहराया है। मलेशिया के कार्तिनी स्लामा की बात याद करते हुए कहती है– "अपनी लैगिंकता को अपने हिसाब से अभिव्यक्त करने और अपने व्यक्तित्व का निर्माण करने का अधिकार हर किसी को होना चाहिए।"[12]

इस प्रकार समाज को ये अधिकार नहीं है जिसको चाहे समाज में रखे जिसे न चाहे उसे कचरे के डब्बे में फेंक दे। इसलिए समाज को फिर से एक नई दिशा देने का कार्य साहित्य कर रहा। जिससे समाज को अपनी नियति में परिवर्तन लाना होगा।

संदर्भः

1. मैं पायल, महेन्द्र भीष्म, अमन प्रकाशन, पृ0 34
2. वहीं, पृ0 35
3. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी, लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, पृ0 27
4. वही, पृ0 28
5. पुरूष तन में फंसा मेरा नारी मन, मानोवी वंद्योपाध्याय, राजपाल एण्ड सन्ज, पृ0 16
6. पोस्ट बॉक्स नं0 203– नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, सामयिक पेपर बैक्स, पृ0 49–50
7. वही, पृ0 50
8. वही, पृ0 50
9. तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, पृ0 139
10. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, पृ0 80–81
11. एक दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार 16 मार्च 2019 इंदौर में हुए 'किन्नर सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्यः चिन्तन और चुनौतियाँ' पर हुए सेमिनार में महामण्डलेश्वर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी के वक्तव्य।
12. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, पृ0 101

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Morphological Structure of Settlement in Bhojpur Plain

Dr. Archana Singh

M.A., Ph.D., Geography, V.K.S.U., Ara

The morphological structure of settlement denotes the components of the bounded space and its relationship which can be visualized through the analysis of pattern, plan and structure of any phenomena. The components, in the context of cultural landscape, are the result of man and his settlement. It may be synthesized that morphological analysis involves identification, classification, and regionalization as well as the description and analyses of the structure arrangements of settlements and their associated components in given spatial and temporal context.

The morphological analysis has two principal dimensions horizontal and vertical in which horizontal dimension denotes the build of settlements, related activities, and interactions of various social groups; while vertical dimensions indicate the hierarchical order and interrelationship along the various social groups. The main features of the spatial patterning of social groups in Indian villages is the formation of distinct spatial zones by various social groups, according to their own social norms the cognate behavioural norms set by traditions in villages.[1] Another feature of Indian villages is the functional relationship which binds the people of different groups in a complex net for structural functionalism operating in different cultural areal.

Taking these two themes into consideration, here an attempt has been made to analyse the morphological structure of three sample villages of different parts of the study area. Village Kesopur (F.g.) clearly exemplifies the role of religioritual norm for the development of twin settlements of caste Hindu and the out castes.

The villaged is characterised by multicaste semi-compact settlements having four sprinkling of hamlets with large interceptious of orhards or vacant low lands which are cultivated. The core of the village is inhabited by kakan Rajputs with clustering of Kanu Ahirs and Goind. The Kakan Rajputs, the landowning dominant castes, have articulated the socio-economic positions of the villagers by allocating lands and other village resources and dominated the social life since the begining. Ahirs who are low in the ritual hierarchy, enjoy next numerical position and have also second social status owing to their economic conditions. Kanu, Bind and Teli, are scaled very low in the caste hierarchy and have also the lowest social and economic status. The chamar, traditionally and untouchable, have been inhabited in the southern fringe of the village especially along the eastern side of Arrah-Barhara Road. Ambedkar has stated that "the distinction between the Hindus and untouchables in the original form before the advent of untouchability was the the distinction between tribesmen and Broken men from aline tribes. It is the Broken men who subsequently came to be treated as untouchables who live in the outskirts of the village."

Village Dewhalia (Fig.) has been cited to show the socio-spatial organisation of different castes in relation to locally dominant castes or Jatis. In general socio-spatial setting of the village, various communities and social groups are arranged in accordance with the traditional social values, current needs of the society and economic organization under the stresses generated by socio-economic and socio-professional functions articulated under the suzerainty of the dominant castes (Rajputs) wielding the secular power. As such, Marwarh Rajputs are originally settled in the central part of the village along the two tanks and owned most of the land. Lated on Brahmans, Kumhar and Kahar were brought in and allowed to settle in different parts of the village. Brahmans, in spite of fourth position in population are second most dominant caste due to better economic condition combined with high ritual position The chamars, as usual in this part of the country live in the southern part of the village.

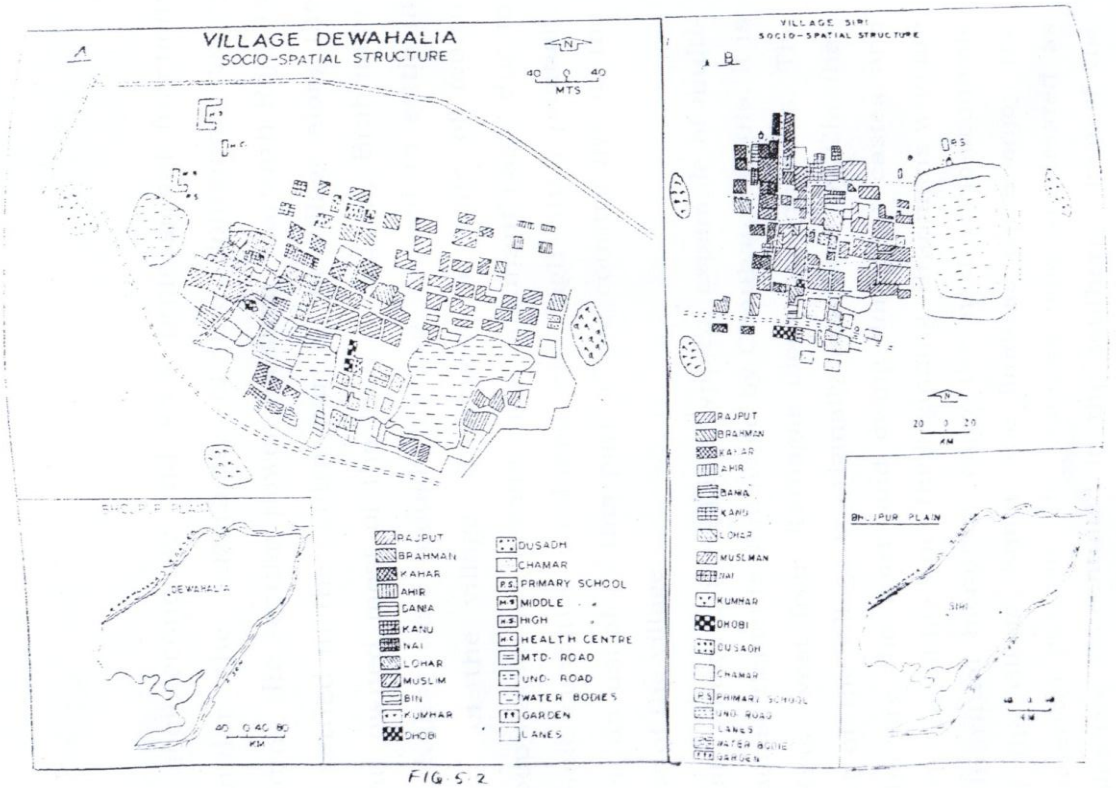

FIG. 5.2

Likewise, village Siri (Fig.) is a typical example of multi-caste compact settlements dominated by Chauhan Rajputs. It is located 7 kms. west from Karhagar block headquarters. The Central part of the vi8llage is originally inhabited by Chauhan Rajput's who are the most land owing dominant castes and dominated the social life since the beginning. Brahmans who are very high in ritual hierarchy, enjoy the next socio-economic position in the village. Kahar, the landless caste enjoy the highest numerical position. The chamars who are treated as untouchables are concentrated in the southern fringe of the village.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

AGRITECH- NEWER AND BETTER APPROACH IN AGRICULTURE FOR THE FUTURE

Dr. Binkteshwer Choudhary

PhD. Dept. of Economics

Abstract:- **"Farming is a profession of hope",** and India holds the record for the second-largest agricultural land in the world, but Agriculture has been wrongly perceived in the past as a "dirty job" for the old people in rural communities but with the renaissance Technology brought to Agriculture, young people now see it as a potential sector to explore. Agritech is the opportunity which has the ability to use technology in areas from the paddock to the plate, in a way that will improve yield, efficiency and profitability through the sector.

Introduction:-Agritech is the use of technology in agriculture, horticulture, and aquaculture[1] with the aim of improving yield, efficiency, and profitability. Agritech can be products, services or applications derived from agriculture that improve various input/output processes. Technologies and applications in agri-tech include:

- IoT-based sensor networks
- Phase tracking
- Drones- used for scanning, monitoring, satellite photography and information transmission with respect to the crop fields.
- Satellite photography and sensors
- Weather forecast
- Biotech
- Light and heat control
- Automated irrigation
- Intelligent software analysis for pest and disease prediction, soil management and other involved analytical tasks
- Hydroponics technology can be used to grow fruits and vegetables throughout the year and this soilless method of crop production helps protect against the ravaging effects of changing climates.

But a drop in landholdings (average 1.4 hectares), post harvest losses, small and fragmented land holdings, a decreasing agricultural land versus a growing population, decreasing groundwater levels, poor quality of seeds, and lack of mechanisation are some of the challenges for the growth of agriculture in India. And that's not enough, an absence of an organised marketing structure for produce, malpractices in the existing unorganised agricultural markets, inadequate facilities for transportation and storage, scarcity of credit, and limited access to superior technology are some of the many afflictions which obstruct the Indian agricultural sector.

So, Adoption of technology in agriculture has always needed a structured institutional focus and technology firms are trying to break into the agricultural landscape using newer business models. Within the last two years, as agriculture has come back into the public mindset, there has been an increased interest in investing in this sector. Agritech start-ups are now trying to bridge that gap with demand driven cold chains, warehouse monitoring solutions and market linkages that can significantly boost farmer income. Start-ups offer technology solutions to increase crop productivity, using big data analytics, Artificial Intelligence and remote sensing to improve land management, crop cycle monitoring and harvest traceability. It also aims at solving farmers' credit issues, providing low cost and timely financing for agricultural equipment and allowing access to low cost digital loans using virtual credit cards.

Methods and methodology:-This study is based on a retrospective data collection and analysis of agritech startups in india and thereby, its increasing market in india.

Results and observations:- Growing at a rate of 25% year on year, India presently has more than 450 start-ups in the Agritech sector.

A List of Indian AgriTech Startups in 2018:-

- Crofarm -Founded in May 2016 by Prashant Jain and Varun Khurana, is an F2B (Farm to Business) venture. It has over 10,000 farmers in its network and has partnered with Reliance Retail, Grofers, Big Basket, Jubilant Foodworks, Big Bazar and Metro Foods. Crofarm generates revenue through commission.
- Aarav Unmanned Systems-An unmanned aerial vehicle startup incubated at IIT Kanpur aims to build the future of drones and their applications in the enterprise space**.**
- Aibono-Founded by IIT Madras graduate Vivek as Airwood Aerostructures and rebranded as Aibono in January, the agritech company provides farm-related intelligence, technology, expertise and gadgets to farmers. Aibono has helped increase yields by nearly 50% for some 140 farmers it works within the Nilgiri hills in Tamil Nadu.

- CropIn integrates the agricultural sector with Information and Communication Technology (ICT) by putting a network of ERP and BI (Business Intelligence) across rural India. By doing so, the agritech startup collaborates with the different value chain participants along the supply chain to monitor farm produce status closely.
- Farm equipment aggregator Gold Farm founded by Abhilash Thirupathy in December 2012 educate farmers about solar water pumps. The Multilateral Investment Firm-backed company has assisted more than 750 irrigation pump owners in Karnataka harness solar power. It currently boasts a user base comprising of 25,000 farmers from three village districts in Karnataka and Andhra Pradesh.
- Ninjacart-Due to marginal farming, poor logistics and zero market information, a number of middlemen get involved in sourcing the produce from farmers to markets. As a result, the farmer gets only one-fourth of what the consumer pays and also there is much wastage in the supply chain. Today, it moves 60+ tonnes of produce a day from farm to store in less than 14 hours at a cost lower than traditional supply chains. It helps over 2,000 farmers to sell more than 80 vegetables and fruits every day to 800+ retailers and restaurants in Bengaluru and claims to have less than 4% wastage in the entire supply chain.
- WayCool aims to fix the disorganized perishable supply chain. It is an omnichannel fresh produce distribution company that distributes fruits and vegetables to multiple end-use segments spanning small local shops, modern retail outlets.
- Farm mechanisation services company EM3 Agri was established in 2014 by the father son-duo of Rohtash Mal and Adwitiya Mal. It **providespay-per-usefarmservices** for every step of the cultivation process, including land development, land preparation, seeding, sowing, planting, crop care, harvesting and post-harvest field management. Mechanisation brings down costs by about 25% and increases productivity by nearly 20%. In the last three years, EM3 Agri has serviced more than 8,000 farms across central India.
- Intello Labs-The Bengaluru based agritech startup offers a product DIGITAL AGRI which uses computer vision algorithms to see the minutest detail on every plant and harness human intelligence to grade agricultural commodities.
- FarmLink-Mumbai-based startup functions as a supplier of value-added fresh produce. It currently specialises in end-to-end supply chain of fruits and vegetables.
- Gramco Infratech Pvt Ltd-Indore-based Gramco primarily operates in the vicinity of villages and producing areas where it is involved in creating and leasing full service agri-infrastructure to the farmers.

- Tessol-Owned and operated by Thermal Energy Service Solutions Pvt. Ltd, founded by Rajat Gupta, an alumnus of IIT Delhi and Harvard, in 2013. Its fuel-free technology is being used by companies across poultry, horticulture, dairy and frozen food sectors. **The firm has already customised 200 cold chain vehicles**with modular TES units for bakeries, fruit and vegetable vendors, dairy and ice cream manufacturers and e-commerce, food processing, poultry and seafood companies.

Discussion:- Agriculture, along with fisheries and forestry, is one of the largest contributors to the Indian Gross Domestic Product (GDP). So, new schemes such as Paramparagat Krishi Vikas Yojana, Pradhanmantri Gram Sinchai Yojana, and Sansad Adarsh Gram Yojana have been introduced to improve farmers' fortunes and other facilities which could boost agriculture in India.

"India's agriculture sector is advancing steadily towards its digital transformation and the start-up ecosystem is playing a critical role here, bringing innovation and disruption in much-needed areas".With regards to funding, the start-ups received 10 times more money in 2017-18 than in 2013-14. Over the same period, funding for global start-ups only doubled. Corporates and investors are playing a vital role with over $200 million in the last 18 months coming for B2B start-ups, with technology innovations that are aimed directly at the farmer.According to a new study from Information technology industry body NASSCOM, these efforts to create supply chain efficiency are the focus of more than 50% of India's booming agritech industry, which has received 300% more funding in the first half of 2019 than in the whole of 2018.

According to government data, post-harvest losses are highest in the fruit and vegetable sector with as much as 16% of produce going waste. Some of the biggest agritech deals have been aimed at addressing this issue, creating direct market linkages through digital platforms such as Ninjacart and Crofarm.

Conclusion:- India with around 60% rural Indian households making their living from agriculture is creating a huge scope for agritech startups in the country. AgriTech startups are also leveraging technology in the area of market linkages and digital agronomy platforms and are able to address input challenges of agriculture in India by providing correct information, techniques, and efficiencies to farmers both for pre-harvest applications and post-harvest use cases.

Demand-side drivers such as population growth, rising income levels leading to increasing consumption, and increasing exports favour the growth of agriculture in India. More so, policy support from the government such as increasing MSPs, increasing crop insurance support, the introduction of various schemes to facilitate farmers, initiatives to bolster easy credit to farmers will also increase growth. The need of the hour is for all stakeholders – from governments to agritech startups to investors – to come together in

harnessing the opportunity to transform this sector. Mostly, government policies treat agriculture as a poverty alleviation method but the focus should be on enhancing productivity and raising incomes. The impetus should be on the application of technology to lower challenges on the input side right from planting to irritating to harvesting and finally selling.

Conflicts of interest:-None

Funding:-self

References:-

1. Modgil S. 12 Indian Agritech Startups to Watch out for In 2018:Dec 29;2017: **https://inc42.com/features/watchlist-agritech-startups-2018/**
2. AgriTech In India: How Startups Are Changing The Face Of IndianAgriculture:Dec17;2017:https://inc42.com/buzz/agriculture-agritech-india-startups/
3. AgriTech in India: Farming For The Future: Oct 11;2018:https://www.indiamobilecongress.com/agritech-in-india-farming-for-the-future/
4. Chawla V. Agritech startups unleash a new wave of innovation in rural india: Aug 16; 2019:https://analyticsindiamag.com/agritech-startups-india/

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Identification and Functional Hierarchy of Service Centers in Bhojpur Plain

Dr. Birendra Kumar

Ph.D., Geography, Magadh University

Every market, town or city however, large or small, becomes a central place, which forms a focus or a centre or various activities for a certain surrounding area. As Dickinson has put it every such place becomes in more or less degrees, a Chef Lieu' or a regional capital[1]. Mark Jefferson using perhaps for the first time the term central place for these places[2] has marked that the growth of central places is accounted for by the geographical setting and situation and the requirements of the country sides set them up to do task that must be performed in central places, Besides town, certain, rurbans market, rural markets by virtue of their serving the encircling population, do also qualify to be called as central places. Such types of central places studies, through initialed earlier by a few German workers and American sociologists, could receive no remarkable attention until the appearance of Christaller's[3] work in 1933, Walter Christallar was the first worker who created much interest in the study of central places among geographers. His famous book also his studies in Southern Germany were evaluated, criticizes and yet accepted as a guiding stone by many workers of the field.

Measurement of Centrality and Hierarchy-

Centrality is a basic principle in human affairs. The relative importance of a centres as a central place in relation to other centres is known as centrality of that place. The centrality of a centre may be measured in various quantitative ways. Much work has been done by various scholars. Walther was the Christaller first worker who measured the centrality of central places in Southern Germany on the basis of number of telephone connections and brought about the categories of central places ranging in population from 800 to over 4 million. He compared the results with the theoretical of the localization of places and found that the centres are arranged in a hexagonal pattern. His theory was based mainly on the economic laws, and the deviations from the theoretically established pattern.

Goldlund[4] in Seden adopted a different criterion of measuring centrality. He has recognized five grades of central places with the retails trades as an "index" of centralization". His gradations are as such (1) regional centres, (2) Settlement centre, (3) Tract centre (4) locality centre and (5) Special place. He used the following formula for the purpose of measuring the centrality of place:

C = ST x 100/pt

Where, st= the number of persons employed in retail trade

pt the population and, C= the desired centrality

Kashi Nath Singh[5] adopted the same formula used by Godlund with slight modification:

C = N-100/P

Where N = the number of people depending upon commerce

P the total regional commercial population and

C= the desired centrality

O.P. Singh[6] has given the following formula to measure the centrality of a place:

$$C = \frac{Pc_1 = Pt_1 \ Rc_{R_1}}{Pc = Pt_{Rt}} \ 100$$

Where Pc_1 = Commercial Population of the place

Pt = Total population of the place.

Pc = Total regional commercial population

Rt = Total regional population

Pt_1 = Summation of Pc_1, Pc_2.....Pc^n, Pt = summation of

Pc_1, Pt_2.....Pt^n.

Method used in the present Work:-

There are 128 rural service centres and 5 urban centers in the district and they vary widely in their extent of influence and capacity of provision of goods and services. Here, the following assumptions have been adopted as rural service centres.

1. It should be a central village have in at least two central functions- (a) educational and (b) medical and communication, in addition to providing services to its own population.
2. It should have 1000 population threshold.
3. At least 10% of the working population of the centre should be engaged to tertiary activities like trade and commerce, transport and communication, and other services.
4. It should be connected with transport, network by Kuchha and Pucca road.

In the present study, all workers engaged in trade and commerce, transport and communication and other services, have been taken into account for measuring the centrality

of places. This centrality deals with all the workers engaged in tertiary services, whose number seems to be true index in the set-up of the centrality of settlements in a region and is helpful in determing their herirarchical order, the author has used the following formula, as developed by Godlund to measure the centrality of a place, with slight modification:

C P x 100 / T

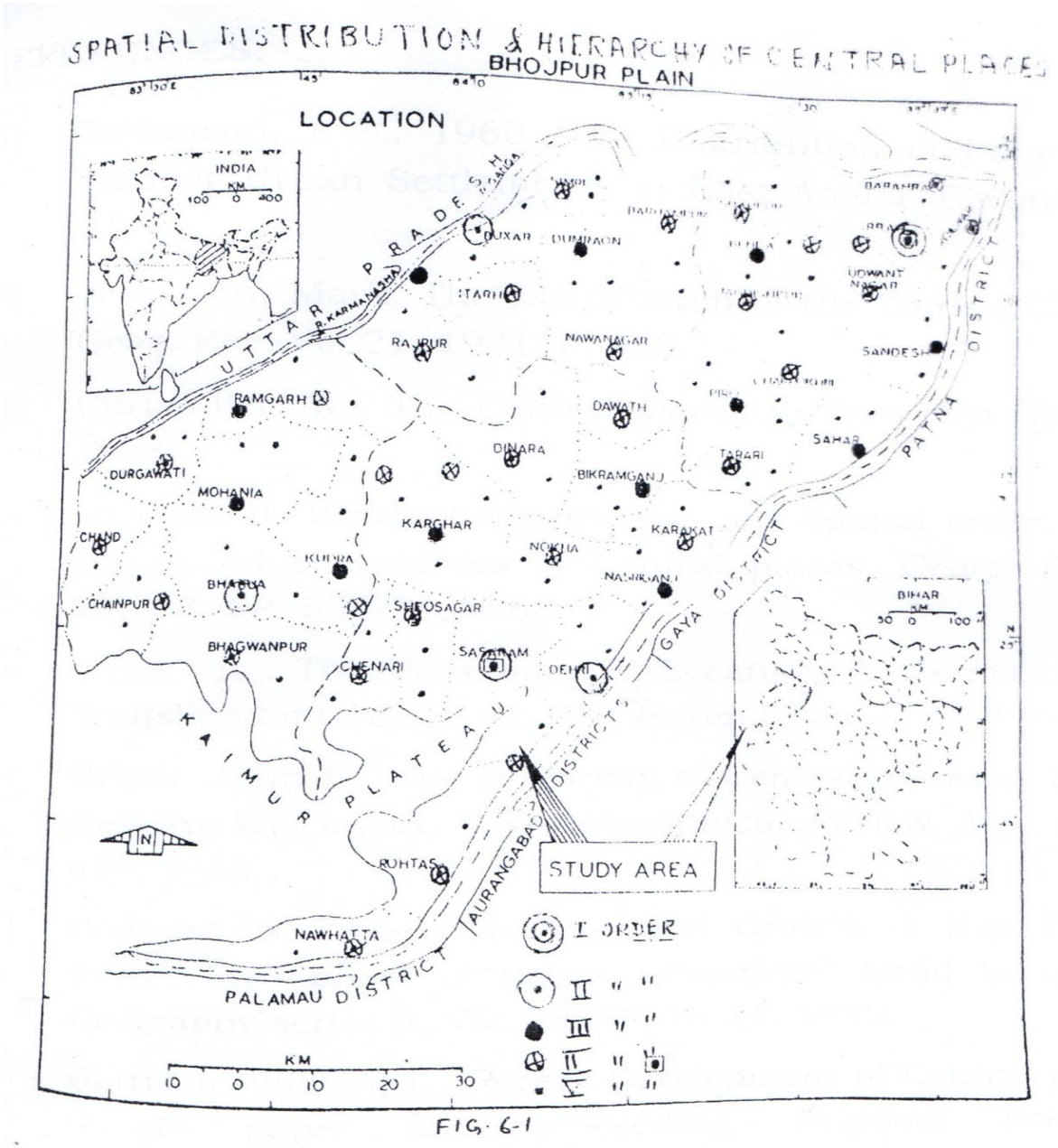

FIG. 6-1

REFERENCES:

1. Dickinson, R.E, 1960, The Distribution of Functions of Smaller Urban Settlements in East Anglia, Geography, P. 21.
2. Jeffersion, Mark, The Distribution of the World's City Folk Geog. Rev. Vol 21. 1931, P. 453.
3. Christaller, W., The Central places in Southern Germany, 1933.
4. Michael, J, Woldenberg, Energy and Spatial order, Mixed Hexagonal Hierarchies of Central places, Georg, Review, Vol. 58,PP. 552-74, 1968.
5. Losch, A., The Economic of Location, a German Work Translated into England, New Haven, Chapter 24, 1954.
6. Brush, John E., The Hierarchy of Central places in South Western Wisconsin, The Geographical Review, Vol. 43 P. 414, 1953.
7. Godlund, S., "The Functions and Growth of Bus Traffic Within the sphere of urban influences" Lund Series in Geography series B, Vol. 18, PP. 13-14, 1956.
8. Garrison, Willian, L., Recent Development of Central place theory, paper and proceeding, Regional Science Association, Vol. 4, PP 154-55, 1958.
9. Dicknson, R.E., OP. Cit, PP 19-31, 1932.
10. Smailes, A.E., The Urban Hierarchy in England and Wales, Geography, 29, PP. 41-51, 1944.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

हिन्दी साहित्य पर गांधी के विचारों का प्रभाव

अजीत कुमार राय

शासकीय अग्रणी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न, सिंगरौली

महात्मा गांधी के विचार की व्यापकता का दायरा ऐसा है जिसमेंसमसामयिक साहित्य , समाज और संस्कृति सांगोपांग शामिल है। महात्मा गांधी का सामयिक साहित्य और विचार पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है। साहित्य का एक बड़ा हिस्सा गांधी के विचारों का संवाहक है। आज जब हम गांधी के विचारों कासामाजिक स्तर पर अवलोकन करते हैं तो हमें पता चलता है कि महात्मा गांधी का दायरा कितना व्यापक है। सबसे पहले हमें इस बात को समझना चाहिए कि महात्मा गाँधी का आगमन किस रूप में, किन परिस्थितियों में और किस तरह के परिवेश में हुआ ? यह अचानक नहीं हुआ कि महात्मा गाँधी भारत आते हैं और पूरा सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य बदल जाता है। साहित्य भी गाँधी के विचारों का अनुसरण करता है।

महात्मा गाँधी भारतीय स्वाधीनता के पूरे परिदृश्य को बदलने वाले नेता के तौर पर सामने आते हैं। यह वही समय है जब द्विवेदीयुगीन साहित्य स्वाधीनता आंदोलन के गीत लिख रहा था और अचानक उस गीत के नायक महात्मा गाँधी बन गये। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में महात्मा गाँधीएक जननायक के रूप में उभरते हैं। स्वाधीनता आंदोलन को भारतीय स्वाधीनता का जन-आंदोलन के रूप में जमीन पर उतारने वाले भागीरथमहात्मा गाँधी ही हैं। महात्मा गाँधी नायकत्व में आम जनता स्वाधीनता आंदोलन की सहभागी बनी।

दरअसल महात्मा गाँधी ऐसे जननेता के रूप में उभ रेजो बहुसंख्यक जनता का न सिर्फ आदर्श बने बल्कि निरंतर उससे संवाद स्थापित करते रहे। महात्मा गाँधी ने भारतीय ग्रामीण समाज के हालात को समझते हुए पूरे राजनीतिक आंदोलन का नेतृत्व किया।

महात्मा गाँधी औपनिवेशिक ताकतों के विरोध में सर्वोदय और सत्याग्रह के सिद्धांत के साथ खड़े हुए। यह उनकी असाधारण क्षमता का परिचायक है। मानवीय गुणोंके साथ भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और राजनीतिमें उतरे महात्मा गाँधी से साहित्यकारों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। सम्भवतः किसी यह पहली कोशिश थीजब स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्वनितांत मानवीय गुणों के आधार पर हुआ।महात्मा गाँधी महात्मा गाँधी के प्रयास में आस्था और विश्वास व्यक्त करते हुए अनेक रचनाकारों-साहित्यकारों ने उन्हें अपने साहित्य में जगह दिया। मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं –"तुने हमें बताया-हम सब एक /एक पिता की है संतान/हैं हम सब भाई-भाई ही/ हैं सबके अधिकार समान ।"[1]

हिन्दी साहित्यकारों में अनेक नाम हैं जिन्होंने महात्मा गाँधी के विचारों का प्रभाव ग्रहण किया। उनमें मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह दिनकर आदि का नाम अग्रणी है। दिनकर के 'रश्मिरथी' में गाँधी के विचारों को रखते हुए लिखा है –"आदमी बड़ा वह है , जो कर्म-पथ का पथिक है /श्रम है केवल सार काम करना अच्छा है।"[2]

उपरोक्त उदाहरण इस बात का द्योतक है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य पर महात्मा गांधी का प्रभाव पूरी गहराई के साथ व्याप्त है। महात्मा गांधी ने भारत की स्वाधीनता की लड़ाई के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। वे आम जनमानस में सत्य, अहिंसा, प्रेम, एकता, शांति, सद्भाव,समानता एवं मानवता की भावना को जगाने का प्रयास करते रहे। महात्मा गांधी ने अपने जीवन में कुछ आदर्श तैयार किया जिस पर वे जीवन भर चलते रहे। यह आदर्श साहित्य की विविध विधाओं में अभिव्यक्त हुआ। अनेक साहित्यकारों ने उनके आदर्श को साहित्य का आधार बनाया।

भारत की सनातन संस्कृति का मूल आधार सत्य, अहिंसा एवं समन्वय है जिसका उत्स रामायण एवं श्रीरामचरितमानस में श्रीराम के चरित्र के उच्चतम आदर्श के रूप में स्थापित होता है। महात्मा गांधी भी श्रीराम के चरित्र से गहरे प्रभावित थे एवं रामराज्य की संकल्पना को अपने जीवन का परम उद्देश्य बनाया।जब महात्मा गांधी राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के नेतृत्वकर्ता के रूप में आए तो उन्होने उस आंदोलन को शांति से लड़ने का आग्रह एवं संकल्प किया। इसीलिए उन्होने स्वाधीनता आंदोलन में शामिल सभीदेशभक्तों से हिंसा का मार्ग छोड़कर अहिंसा के मार्ग पर चलने का आग्रह किया।यही सब कारण थे जिसकी वजह से उस समय के साहित्य पर महात्मा गांधी के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। इनमें प्रमुख नाम प्रेमचंद एवं जैनेंद्र जैसे कथाकारों का है जिन्होने अपनी रचनाओं में आदर्श चरित्रों का निर्माण किया, वहीं कविताओं में मैथिलीशरण गुप्त जैसे राष्ट्रवादी कवियों ने भी एक आदर्श बड़ा रूप प्रस्तुत किया।

महात्मा गाँधी के विचारों के प्रति आस्था रखने वाले कवियों में सुमित्रानंदन पंत का महत्वपूर्ण स्थान है। मानवता, सत्य, अहिंसा, शांति को उन्होने अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति दी है। महात्मा गांधी की विचारधाराओं से प्रभावित और समाज के प्रति आस्था व्यक्तकरते हुए लिखते हैं— "जय नव मानवता निर्माता/प्रयाण तुर्य बज उठे/सत्य अहिंसा दाता,/पटह-तुमुल गरज उठे/ जय है, जय है शांति अधिष्ठाता।"[3]

वहीं कवि केदारनाथ अग्रवाल की कविता में गाँधी की अहिंसा एक दूसरे रूप में आती है—

"मारा गया/लूमर लठैत/पुलिस की गोली से/किया था उसने कतल/उसे मिली मौत/किया था कतल पुलिस ने/उसे मिला इनाम/प्रवचन अहिंसा का/हो गया नाकाम ।"[4]

महात्मा गांधी के विचारों के अनेक आयाम हैं। उनके चिंतन के अनेक केंद्र भी हैं जिनका दायरा व्यापक है। महात्मा गाँधी का चिंतन-दर्शन स्वराज की कल्पना को जमीन पर उतारने का है। हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं स्वराज की संकल्पना को विषय बनाया। माना गया है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है इसलिए समाज में हो रहे बदलाव का साहित्य पर प्रभाव पड़ना लगभग अनिवार्य हो जाता है। महात्मा गांधी का वैचारिक पक्षधरता शांति केन्द्रित थी जिसका प्रभाव तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन की घटनाओं पर देखा जा सकता है। अतः उनके द्वारा किए गए कार्यों को हिन्दी साहित्यकारों ने साहित्य में स्थान दिया एवं उनके मूल्यों एवं आदर्शों को साहित्य की अनेक विधाओं में अभिव्यक्त किया।

यह स्वाधीनता के बाद की स्थिति थी जिसमें महात्मा गांधी के आदर्शों को साहित्य में शामिल किया गया। वहीं स्वाधीनता के बाद साहित्य में भीमहात्मा गाँधी के विचारों की उपस्थिति है लेकिन उसका स्वर बदला हुआ है। स्वाधीन भारत के साहित्य में महात्मा गाँधी को देश की विडंबना बोध जैसी स्थिति में शामिल किया गया है । जिन वैचारिक हथियारों का प्रयोग महात्मा गाँधी ने जनता में आत्मविश्वास पैदा करने के लिए किया , स्वाधीनता की लड़ाई में आने के लिए , अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए,वे सभी आजाद भारत में कमजोर और लाचार हो गए। मुक्तिबोध ने महात्मा गांधी के इसी रूप को अपनी कविताओं में उकेरा। आजाद भारत में महात्मा गांधी के विचार प्रश्नांकित होने लगे थे। मुक्तिबोध ने अपनी कविता 'अंधेरे में' में महात्मा गाँधी के विचारों के इसी रूप को शामिल किया है–

"वह मुख – अरे, वह मुख, वे गान्धी जी।।/इस तरह पंगु ।।/आश्चर्य ।।"[5]

स्वाधीन भारत बहुत तेजी से बदलता है और महात्मा गाँधी के विचारों से लगातार दूर होता जाता है। एक ऐसा परिवेश निर्मित होता है जो महात्मा गाँधी के विचारों को अप्रासंगिक करने की ओर लगातार आगे बढ़ता है। लेकिन महात्मा के विचार अनेक विषम परिस्थितियों में आम जन के दिमाग में आते हैं।राष्ट्रीय संकट के अनेक अवसरों पर महात्मा गाँधी के विचार हमे सहारा देते हैं। लेकिन आधुनिक कविता में महात्मा ग्टनधि के विचारों की जगह उनके विरोध के अतिरिक्त बहुत कम है। जबकि इसके विपरीत स्वाधीनता के बाद के समाज में राजनेता अथवा समाज सुधारक के रूप में गाँधी सर्वाधिक उल्लेख होने वाले वैचारिकों में से एक हैं। नागार्जुन ने 'अहमदाबाद' शीर्षक कविता में लिखते हैं–"मैं सुनता हूँ पुण्यात्मा बापू की कराह / मैं सुनता हूँ गोडसे-गोत्र की वाह-वाह/ मैं सुनता हूँ आहत जन-मन की घुटी आह /मैं देख रहा अपनी लापरवाही अथाह/मैं देख रहा भारत माता का गात्र-दाह/मैं देख रहा देसी प्रभु की कानी निगाह।"[6]

महात्मा गाँधी के विचारों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हिन्दू-मुसलमान भी रहा है। इस संदर्भ में उनका कहना था कि – "हिन्दुस्तान में चाहे जिस धर्म के आदमी रह सकते हैं, उससे वह एक राष्ट्र मिटने वाला नहीं है। जो नये लोग उसमें दाखिल होते हैं, वे उसकी प्रजा को तोड़ नहीं सकते, वे उसकी प्रजा में घुलमिल जाते हैं। ऐसा हो तभी कोई मुल्क एक राष्ट्र माना जाएगा। ऐसे मुल्क में दूसरे लोगों को समावेश करने का गुण होना चाहिए। हिन्दुस्तान ऐसा था और आज भी है।'[7]

ध्यान देने वाली बात यह है कि आजादी के बाद समय-समाज और तत्कालीन व्यवस्था पर कुछ लंबी कवितायें लिखी गयी। इन कविताओं में महात्मा गाँधी के विचारों का मिथकीय प्रयोग हुआ है। इन मिथकों को समझने से स्थिति साफ हो जाती है। मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' शुरू के दौर की लंबी कविताओं में एक है। इसमें सामाजिक संकट और ऊहापोह कीस्थिति और जनता की शक्ति में गाँधी के विश्वास के संदर्भ में गाँधी का मिथकीय प्रयोग हुआ है–"वह मुख-अरे, वह मुख, वे गान्धी जी ।। /इस तरह पंगु ।।/आश्चर्य...../वे कह रहे हैं-/जनता के गुणों से ही सम्भव/भावी का उद्भव"[8]

इसी तरह धूमिल की लंबी कविता 'पटकथा' में भी महात्मा गाँधी का एक अलग चित्र उभरता है। लिखते हैं —"मैंने अहिंसा को/एक सत्तारूढ़ शब्द का गला काटते हुए देखा/मैंने ईमानदारी को अपनी चोरजेबें/भरते हुए देखा"[9]

उपरोक्त दोनों कविताओं की तरह ही सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की तीन खंडों में लिखी लंबी कविता 'कुआनो नदी' में महात्मा गांधी के विचारों का एक अलग चित्र खींचा है। कहते हैं— "घर के पिछवाड़े बँधी /गाँधी जी की बकरी मिमियाती है / और कहीं गोली चलने की आवाज आती है।"[10]

तीनों कवियों ने अलग अलग महात्मा गांधी को समझा है और अभिव्यक्त किया है।'अंधेरे में' कविता में निजी स्वार्थों से में बुरी तरह घिरे हुए राजनेता , वकील, कवि और भ्रष्ट अफसर द्वारा महात्मा गाँधी के संकल्पित 'रामराज्य' की परिकल्पना के आधार को नष्ट कर देने के संदर्भ में महात्मा गाँधी का मिथकीय प्रयोग किया गया है। इसके साथ साथ ही इसमें जनता के प्रति एक उम्मीद भी है। उम्मीद यह है कि जनता के लगातार प्रयासों से उसे अपनी शक्ति का बोध होगा और वहशिक्षित और जागरूक होकर बेहतर भविष्य का निर्माण करेगी। वहीं 'पटकथा' में कुछ और ही व्यक्त हुआ है। धूमिल के अनुसार महात्मा गाँधी के अस्त्र-शस्त्रों से आम जनता को बुरी तरह लूटा जा रहा है। अहिंसा, ईमानदारी, सद्भाव आदि मूल्यों में यकीन रखने वाले लोगों का गला उसी से रेता जा रहा है। महात्मा गाँधी के शिष्यों के द्वारा गाँधीवादी मूल्यों पर बनी संस्थाएँ सही मायने में उनमें आस्था और विश्वास रखने वालों को लूटा है। रघुवीर सहाय की अपातकाल के दौर में प्रकाशित कविता 'कुआनो नदी' में महात्मा गाँधी का मिथकीय प्रयोग देश में गाँधीवादी मूल्यों की बेचारगी और बेबसी तथा लोगों द्वारा उस पर शेष विश्वास समाप्त हो जाने के संदर्भ में हुआ है। यह वह समय है जहाँ तक आते-आते महात्मा गाँधी के स्वाधीनता आंदोलन के सर्वाधिक सफल अस्त्र-शस्त्र इस तरहलाचार हो गये कि 'मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी ' जैसा मुहावरा ही आम जनमानस और लोक में प्रचलित होगया। शताब्दी के महानतमराजनीतिक आंदोलन को परिणति तक पहुंचाने वाला नायक अपनी ही धरती पर मजाक का पात्र बन जाता है, वह भी

जिसे पूरी दुनिया स्वीकार करती है। सर्वेश्वर डायल सक्सेना लोक शैली में रचित 'चुपाई मारौ दुलहिन' कवितामें इसे बड़े ही तल्ख अंदाज में अभिव्यक्त करते हैं –"दे आजादी?/ किसके बल पर/दुखिनी कहलाती शहजादी?/गाँधी जी के चेला के।"[11]

कुलमिलाकर महात्मा गांधी को साहित्य ने अनेक रूपों में स्वीकार किया है। कभी ऊर्जा ग्रहण करने वाले विचार के रूप में तो कभी आलोचना के हथियार के रूप में। महात्मा गांधी की वैचारिकता भारत को दिशा देने वाली रही है जिससे साहित्य भी बहुत प्रभावित हुआ। महातमा गांधी ने समाज के सामने जो आदर्श खड़ा किया वह उनके संघर्ष की गाथा कहता है। आज हम जब महात्मा गांधी का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं कि महात्मा गांधी ने देश के विकास की एक अलग संकल्पना तैयार की थी जिसे उनके शिष्यों ने जमीन पर उतरने नहीं दिया। गांधी का गाँव उजड़ गया और वे जिसे आजीवन अस्वीकार करते रहे, जिसके खिलाफ वे लगातार लड़ते रहे वही आज्ड भारत के विकास का रास्ता बन गया। मतलब यह कि भारत में गांधी और गांधीवाद दोनों की सायास हत्या हुई।

संदर्भ—

1- शोध ऋतु- हिन्दी कविता जगत में गाँधीवादी विचारधारा-पृ.सं.-7.
2- वही, पृ.सं.-10
3- शोध ऋतु- हिन्दी कविता जगत में गाँधीवादी विचारधारा - पृ.सं.- 9
4- अहिंसा कविता, केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, अशोक त्रिपाठी (सं.), राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2010 संस्करण, पृ.-119.
5- चाँद का मुँह टेढ़ा है – गजानन माधव मुक्तिबोध,पृ.सं.-277.
6- अहमदाबाद, नागार्जुन रचनावली, भाग-2, शोभाकान्त (सं.), पृ.सं.- 33.
7- हिन्द स्वराज-मोहनदास करमचंद गाँधी, अमृतलाल ठकोरदास नानावटी (अनु.),पृ.सं. – 31
8- चाँद का मुँह टेढ़ा है- गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.सं.- 277-278
9- पटकथा – धूमिल, कविता कोश (www.kavitakosh.com)वेब से उद्धृत
10- कुआनो नदी (कविता), सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली, भाग-2, वीरेन्द्र जैन (सं.), पृ.सं.-32.
11- चुपाई मारौ दुलहिन- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली, भाग-1, पृ.सं.-134.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

NON-PERFORMING ASSETS IN INDIAN BANKING SYSTEM

Dr. Anand Raj

Research Fellow in Commerce
B.R.A.Bihar University, Muzaffarpur

Abstract

NPA which means Non-Performing Assets is a sentence in itself. It is basically a classification of Loan type whereby debtors default on their loan or advance. It is synonym with NPL which is Non-Performing Loan; though their exists a thread line of difference between both the terminologies. NPA has its own slab which decides the default parameter in accordance to time period. It can also be known as credit facility and is tagged as NPA when this asset has stopped generating any kind of income for the lender. Mostly its fixed at 90 days of time period calculated from the day the loan was supposed to be repaid. The term loan here shall refer to both the Principal amount as well as its interest. This NPA concept revolves around banking and financial institutions though the banking arena has no fixed standard yet to decide the parameters about it which in turn might hurt their capital adequacy norms. In this article NPA and its causes and its remedies along with conclusion shall be discussed. In nutshell NPA judges the financial health of banks and the economy.

INTRODUCTION

The Indian banking system consists of commercial and cooperatives banks, out of which commercial banks account for almost 90 percent of the total banking system's assets. Commercial banks play a very important role in banking system in India and is a very important part of a banking system irrespective of any country. A commercial bank is a profit oriented financial institution that accepts deposits from the public and offers loan to the public. Commercial banks can either be public banks, private banks or foreign banks.

Till 1991, there was no concern for asset quality in Indian banking system, the whole focused was on wide number of branches and to increase the employment generation. It was in the year 1991, when former RBI Governor Mr. M Narasimham was appointed to review the banking system to unleash the potential of banking system in India in terms of increased banking efficiency and improvised customer services. The primary function of any bank is to deposit funds and to grant loans to varied sectors like personal loans, housing loans, agricultural and industrial loans. But in the recent years, the increasing non-performing assets have been a very major concern for the banking sector due to which banks have become very vigilant and stringent in extending loans.

The concept of non-performing asset in banking system is only limited to loans. When a loan asset ceases to generate income (EMI, interest, or any other dues) for bank for more than 90 days, then that loan asset is declared to be an NPA. As per a report of Reserve Bank of India, the gross nonperforming assets in Indian banks is estimated at around Rs. 440,000 crore, out of which 90 percent of the NPA is accounted by the public sector banks. Narasimham Committee was the first ever committee that made it compulsory to identify and reduce the NPA and to treat this issue as a concern of national priority. Due to NPA, banks face credit risk and also become inefficient in allocating resources.

Banks play a very important role in any economy. Banks function to mobilize the funds of the people and to disburse funds according to the priorities of the society and the economy. Thus, it is very important that a bank should manage its credit in an efficient manner and should recover the disbursed loan assets effectively so that it doesn't lead to NPAs.

Meaning of Non-Performing Assets (NPAs) has been well defined by RBI. RBI (Reserve Bank of India) is the central bank of India. Now, as per RBI, a non-performing asset is:

An asset, that also includes leased asset when it stops accumulating income for the banks or financial institutions.

A NPA is a loan or advance where:

- Any interest or instalment of the principal amount remains overdue for a period longer than 90 days in case of a term loan.
- The bill, in case of bills purchased and discounted, remains overdue for a period of more than 90 days.
- The instalment of principal or interest thereon remains overdue for two crop seasons for short duration crops, the instalment of principal or interest thereon remains overdue for one crop season for long duration crops.
- The instalment of principal or interest thereon remains overdue for one crop season for long duration crops.

Assets can be classified into 3 types:

Standard Assets

Those assets which are not facing any problem and are not pf more risk towards the customer are known as standard assets. These standard assets are considered as performing assets. A general provision of 0.25% is must to be provided on basis of global loan portfolio.

Sub-Standard Assets

Any asset which is remained NPA for a period less than or equal to 12 months is classified as sub-standard asset. A general provision of 10% on outstanding has to be provided on sub-standard assets.

Doubtful Assets

Those assets which have remained NPAs for a period exceeding 12 months and which are not loss advance. As per RBI, it is must for banks to facilitate 100% of unsecured amount of pending loan.

NPA has its own slab which decides the default parameter in accordance to time period. It can also be known as credit facility and is tagged as NPA when this asset has stopped generating any kind of income for the lender. NPA in itself is a whole concept rather than just a small financial terminology. NPA is taken from different perspective for many institutions. The institutional framework by default has an imperative job in the fund segment whereby it gives loans to the needy. Without the sound and effective arrangement of it, the bank shall not be in a condition to carry out this activity.

CAUSES FOR RISING NON-PERFORMING ASSETS IN INDIA

There are various explained and unexplained causes for the rising NPA's. Few are such which are controllable and hence can be rectified to a certain level but few factors remain unexplanatory in nature and therefore cannot be rectified. Many internal and external factors are responsible for NPA. A few we can see below-

- Ineffective recovery arenas/ tribunals
- Natural and uncontrollable calamities
- Economic slowdown and sickness of industries
- Change of government plans
- Lending process issues
- Backward technology
- Lack of digital knowledge
- Complexities of banking process and formalities
- Appraisal system ineffective
- Managerial deficiencies
- Wilful self default with negative intentions
- Losses in business
- Lack of apt prediction

IMPACT OF NPA ON BANKS

- **LIQUIDITY POSITION**

If the bank evaluates less capital for the coming future of its business concern might affect the position of banks by creating a mismatch between the assets and liability and thereby it shall force the bank to raise the resources at a high rate than what was expected. So, there will be a negetive impact on the profitability of banks on a high note, and they will not be able to recover the amount from the borrower to the level and as a result the expected profits will come down and IRR shall also get affected highly in a negative sense and thereby the entire institution will get hit tremendously and its liquidity position shall get tightened.

- **UNDERMINE BANK'S IMAGE**

One of the foremost factor for NPA is that it shall result into image hampering. Increase in non-performing assets which shadows the domestic markets and global level markets, on that situation the bank profitability decreases which leads to the bad image to banks. It trembles investors confidence in that bank to invest due to its negative image portrayed.

- **EFFECT ON FUNDING**

Increase in non-performing assets (NPA) leads to scarcity in funding to other borrowers. As well as the Indian capital market also get affected. And then there will be only a few banking institutions which shall be ready to lend money. Moreover, the financial soundness also gets threatened.

- **HIGHER COST OF CAPITAL**

It shall result in increasing the cost of capital as banks will now have to keep aside more funds for smooth operations. Since the liquidity position is continuously getting hampered it results into funding issue and as a result it results into higher cost of capital.

- **HIGH RISK**

High on non-performing assets, low profitability, high risk in business and work against the bank and may take the two circumstances survival of the bank. And it affects the risk-bearing capacity of the bank. This factor also contributes to the point of low investors confidence.

- **BANK'S LOW PROFITABILITY**

These factors makes low profits due to lower capital adequacy ratio and the low capital ratio which limits the further creation of assets. Such kind of banks face difficulties in their growth, expansion, and plans and there they need not wherewithal to match boldly on these fronts. In these growth failures in the expansion, the only consequences are stagnation and negative growth. They reduce net interest income as they do not charge the interest to these accounts. Servicing non-performing assets need to be prudentially provided for. This will gain lead to reduced profitability.

SUGGESTIONS TO NPA IN BANKS

- The banks can take a secured position by taking possession of the assets of the borrower at the time of lending. Also the bank should check properly all the documents related to the ownership title of the land mortgaged.
- The banks can sell or lease the desired security to recover its amount due.
- Standardisation rules must be rechecked and updated frequently like quarterly or semi-annually.

- Obligation recuperation councils: According to Narasimhan board of trustees report (1991) proposed setting up courts to lessen set up for cases. There are just 22 obligation recuperation councils and obligation recuperation redrafting courts not adequate to take care of issues. In this way, setting up more courts will the answer for decrease the issues of NPA to banks.
- Securitization Act 2002: Securitization and reproduction Act 2002 gives special powers to the banks to issue and see for institutions or persons who default for the recuperation of cash inside 60 days. The notice contains that the property won't sell or discard without the assent of the loan specialist i.e. the lending banking institution. The securitization Act engages more powers to the bank to assume control over the ownership of the benefits of the administration of the organization.
- Lok Adalats: lok adalats is the most ideal approach to handle the advances given by the banking institutions. As per the RBI rules issues in 2001 were they conceal NPA about 5laks rupees, the suit recorded and non-documented will be secured.
- Bargain settlements: It is the least difficult approach to recoup non-performing resources by banks under 10crore rupees obligations. It covers the cases which are recorded and pending in the red court council.
- Credit data department: Here the data maintained shall be shared to all the banking institutions. If a person is defaulting in one bank the data common shall be shared to all banks so that in future that person cannot default with others banks.

CONCLUSION

In nutshell NPA judges the financial health of banks and the economy. The expansion of non-performing resources is consistently an issue to the banks and it directly affects the productivity of banks. NPA in itself is a whole concept whereby we learn that making advances is easy but its recovery is a tedious task. So in order to avoid the future mishappenings the lending banking institutions must keep in mind various factors to keep away from NPA's. Various factors contributing to it and its probable solution has also been highlighted. Also various tables has been also discussed year wise in a detailed scenario. As we know its better to prevent than to cure diseases; the same concept we can apply here also that its better to take few precautionary measures rather than regretting afterwards or to move for harsh recovery factors.

References

- Dr. Ashok Kumar Gupta, Priyanka Gautam. (2017). Non-Performing Assets (NPAs): A Study of Punjab National Bank. International Journal of Science Technology and Management. Vol No. 6. Issue No. 1. January 2017. Retrieved from International Journal of Science Technology and Management:
- State Bank of India Balance Sheet as on 2017: State Bank of India. Retrieved from State Bank of India:
- Samir, Kamra, D., (2013) A Comparative Analysis of Non- Performing Assets (NPAs) of Selected Commercial Banks in India Opinion: Retrieved from International Journal of Management, Vol. 3, No. 1, June 2013, ISSN: 2277-4637 (Online) | ISSN: 2231- 5470 (Print).
- https://economictimes.indiatimes.com/industry/
- https://thefinancialexpress.com.bd/
- https://www.thehindubusinessline.com/money-and-banking
- https://www.firstpost.com/

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

छायावाद का राष्ट्रीय संदर्भ

बैद्यनाथी राम

एम0ए0 हिंदी (इग्नू), यू0जी0सी0 नेट

आधुनिक भारतीय हिंदी कविता में छायावाद को बीसवीं शताब्दी का महत्वपूर्ण काव्य आंदोलन माना जाता है। हिंदी कविता में छायावाद का उदय – 1916 –20 के बीच होता है। इस समय भारत पर पूर्ण रुप से अंग्रेजी शासन स्थापित हो चुका था। 1857 की आंदोलन के असफलता के बाद भारत में अंग्रेजी सत्ता के द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था का प्रसार होने लगा था। भारतीय जनता अंग्रेजी औपनिवेशिक दास्ता और पूंजीवादी व्यवस्था से त्रस्त हो चुकी थी, उसमें अंग्रेजी शासन के प्रति क्षोभ बढ़ती जा रही थी। आधुनिक भारतीय हिंदी साहित्य में भारतेन्दु युग से ही राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होने लगी थी। गद्य और पद्य दोनों में ही राष्ट्रीय जागरण के नीमित रचनाएं होने लगी थी। द्विवेदी युग में अतीत का गौरव गान और राष्ट्रीयता की भावना को बल मिला, जो छायावाद तक आते – आते राष्ट्रीय चेतना के बुलन्दी पर पहूंच गया। छायावादी युग की नवीन काव्यगत चेतना को जब हम राष्ट्रीय – सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक भावबोध की दृष्टि से देखते हैं तो पाते हैं कि छायावादी कविता का मूल स्वर भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष और जन जागरण है। आधुनिक हिंदी कविता में छायावाद और भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का आगमन लगभग एक ही साथ हुआ। हालांकि यह एक संयोग मात्र ही है, फिर भी इस स्थिति पर डॉ0 नगेन्द्र कहते हैं कि – 'जिन परिस्थितियों नें हमारे दर्शन और कर्म को अहिंसा की ओर प्रेरित किया, उन्होनें ही भाव (सौंदर्य) वृत्ति को छायावाद की ओर।'[1]

छायावाद की युगीन पृष्ठभूमि की हम बात करें तो पाते हैं कि – 'छायावाद तक आते – आते विवेकानंद के प्रेरक विचारों ने, महर्षि अरविन्द के क्रांतिकारी – स्वर ने तथा महात्मा गांधी के अहिंसावादी सिद्धांतों ने क्रमशः स्फूर्ति और उतेजना तथा आत्मिक खोज, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना की ज्योति का प्रज्ज्वलन और राष्ट्रीय भावना के सात्विक भाव का जन – जन तक प्रचार – प्रसार करते हुए साहित्य की सुदृढ़ पृष्टभूमि तैयार कर दी। इनके साथ –साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्र बोस तथा गोखले आदि राष्ट्र – नेताओं ने जिस राष्ट्रीय – सांस्कृतिक चेतना का आध्यात्मिक प्रसार किया छायावादी काव्य उसे अपने में आत्मसात करके साहित्य जगत में उपस्थित हुआ।'[2]

छायावादी कविता का केन्द्रीय मूल्य है – राष्ट्रीय चेतना, स्वाधीनता और राष्ट्रीय स्वतंत्रता। छायावादी कविता के आधार स्तंभ 'बृहच्चतुष्टय' कवि जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', समित्रानन्दन 'पंत' और महादेवी वर्मा की रचनाओं में स्वाधीन चेतना तथा राष्ट्रीयता की भावना का प्रखर स्वर देखा जा सकता है।

छायावादी युग के कवियों की रचनाओं में राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय चेतना उस रुप में दिखाई नहीं देती जिस रुप में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान एवं बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविताओं में दिखती है।

छायावाद के राष्ट्रीय संदर्भ पर नामवर सिंह कहते हैं कि – 'वस्तुतः हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के दो मोर्चे थे। एक मोर्चा प्राचीन सामंती मर्यादाओं के विरुद्ध था और दूसरा मोर्चा अंग्रेजी साम्राज्यवाद मर्यादाओं के विरुद्ध छायावाद का व्यक्ति स्वातंत्र्य सामंती मर्यादाओं के विरुद्ध बहुत बड़ा कदम था।'[3]

साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे के सवाल पर नामवर सिंह कहते हैं – 'छायावाद ने स्पष्ट रुप से अंग्रेजों का विरोध तो नहीं किया लेकिन परोक्ष रुप से साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश – प्रेम, जागरण तथा आत्मगौरव का गान गाया।'[4]

छायावाद को नवजागरण का अभिव्यक्ति कहा जाता है। इस नवजागरण की राष्ट्रीय चेतना को छायावाद के प्रर्वतक कवि जयशंकर प्रसाद के गीत 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' में स्पष्ट देख सकते हैं –

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रवुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ – प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो!'[5]

प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना का गान 'प्रथम प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री', 'अंब जागो जीवन के प्रभात' कविता में भी उद्धृत हुआ है। यहां 'बीती विभावरी जाग री' और 'अब जागो जीवन के प्रभात' की पंक्तियां –

'बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही –
तारा – घट उषा नागरी!'[6]

x x x

'अब जागो जीवन के प्रभात।
वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आंसू जो क्षोभ भरे
उषा बटोरती अरुण गात।'[7]

प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना गीत के माध्यम से नाटको में अधिक अभिव्यक्त हुआ है। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में देश के अतीत का गौरव गान शत्रु कन्या कार्नेलिया से करवायी है जो निम्न पंक्तियों में देखे जा सकते हैं –

''अरुण यह मधुमय देश हमारा!
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर – मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे – शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुंह किये – समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आंखों के बादल – बनते जहां भरे करुणा जल।
लहरें टकराती अनंत की – पाकर जहां किनारा।
हेम – कुंभ ले उषा सबेरे – भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मंदिर ऊंघते रहते जब – जग कर रजनी भर तारा।
अरुण यह मधुमय देश हमारा।''[8]

जयशंकर प्रसाद के काव्यों एवं नाटकों में राष्ट्रीय चेतना भरी पड़ी है। प्रसाद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय जनता के हृदय में राष्ट्रीय चेतना जागृत कर अंग्रेजी सरकार का विरोध करने की भावना विकसित की है।

छायावाद के दूसरे आधार स्तंभ कवि है महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' । महाकवि 'निराला' नवजागरण के कवि हैं। निराला के काव्य में राष्ट्रीयता की भावना, गीतों में भारत का गौरव गान तथा क्रांति का स्वर काफी प्रखर रुप में दृष्टिगोचर होती है। निराला के काव्य की राष्ट्रीय चेतना का आधार राजनैतिक न होकर सांस्कृतिक भावना से परिपूर्ण रहा है। राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण महाकवि निराला का 'वर दे वीणा वादिनी', 'भारती वंदना', 'जागो फिर एक बार', 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' कविता की कुछ पंक्तिया दृष्टव्य है –

'वर दे वीणा वादिनी वर दे
प्रिय स्वर तंत्र – रव अमृत – मंत्र नव
भारत में भर दे।
वर दे वीणा वादिनी वर दे'[9]

('वर दे वीणा वादनी वर दे') निराला

'भारति, जय, विजय करे
कनक – शस्य – कमल धरे!
लंका पदतल – शतदल,
गर्जितोर्मि सागर – जल
धोता शुचि चरण – युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे!'[10]

('भारती वंदना') निराला

'जागो फिर एक बार!
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण – पंख तरुण – किरण
खड़ी खोलती है द्वार –
जागो फिर एक बार।'[11]

('जागो फिर एक बार') निराला

''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोतम नवीन।''
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।[12]

('राम की शक्तिपूजा') निराला

'जागो, जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीती अन्ध रात,
झरना भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचल,
बांधो, बांधो किरणें चेतन,
तेजस्वी हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।'[13]

('तुलसीदास') निराला

इस प्रकार हम देखतें है कि– ''राष्ट्र के सामाजिक जीवन की समस्याओं के निदान में सर्वाधिक रुचि 'निराला' ने ली है।''[14]

छायावाद के तीसरे प्रमुख आधार स्तंभ हैं – सुमित्रानन्दन पंत। सुमित्रानन्दन पंत को प्रकृति का कवि एवं प्रकृति पुत्र भी कहा जाता है। छायावादी कवियों में सबसे ज्यादा पंत के कविताओं में ही प्रकृति का चित्रण हुआ है। पंत जी ने भी राष्ट्रीय जागरण और देश प्रेम की कविता लिखी है। पंत जी का गीत 'भारत माता ग्राम वासिनी' राष्ट्रीय – सांस्कृतिक दृष्टि से उल्लेखनीय है –

''भारत माता
ग्राम – वासनी!
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला – सा आंचल
गंगा – यमुना में आंसू – जल
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी!

.....
भारत माता ग्राम – वासिनी!''[15]

'राष्ट्रीय चेतना की कविताओं में देश – प्रेम की भावना प्रकृति प्रेम से ही उत्पन्न हुई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो साफ कहा है – किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा। सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा।''[16]

छायावाद के बृहच्चतुष्ट्य कवयित्री के रुप में महादेवी वर्मा जी का नाम बहुत ही आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। आप साहित्य के विभिन्न विधाओं में रचना कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी एवं रहस्य वेदना और गीतात्मकता की सृजक रही हैं। महादेवी की कविता में वेदना, रहस्य, बौद्ध करुणा तथा अद्वैत दर्शन की पर्याप्तता है। महादेवी वर्मा की कविताएं प्रतीक प्रधान है। महादेवी की कविता 'जाग तुझको दूर जाना' में राष्ट्रीय चेतना दृष्टिगोचर होती है –

''चिर सजग आंखें उनींदी आज कैसा वयस्त बाना!
जाग तुझको दूर जाना!
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो लें!
या प्रलय के आंसुओं में मौन अलसित व्योम रो लें,
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया
जाग या विद्युत शिखाओं में निठुर तूफान बोले!
पर तुझे है नाश पथ पर चिन्ह अपने छोड़ आना!
जाग तुझको दूर जाना।''[17]

छायावादी कवियों द्वारा मानवीय मूल्यों की स्थापना, राष्ट्रीय चेतना एवं देश के अतीत का गौरव गान जो छायावादी कविता में किया गया वह आम–जन में देश भक्ति एवं देश – प्रेम की भावना को जगाया। इस संदर्भ में क्रमशः डा0 रमेन्द्र कुमार यादव रवि एवं राम स्वरुप चतुर्वेदी के कथनों को देखा जा सकता हैं– ''राष्ट्र की प्राकृतिक सुषमा का रागात्मक वर्णन जैसा छायावादी कवियों ने किया, वैसा आधुनिक हिंदी काव्य तो क्या, समस्त भारतीय आधुनिक काव्य में दुर्लभ है।''[18] राम स्वरुप चतुर्वेदी – ''छायावादी काव्य में राष्ट्र जागरण से समग्र चेतना का जागरण और आवाहन है, उसमें अंतर्निहित शक्ति

के विकास का रचनात्मक उपक्रम है। यहां राष्ट्रीय से अधिक संपूर्ण सांस्कृतिक जागरण प्रधान है, राष्ट्रीय जागरण वस्तुतः सांस्कृतिक जागरण के अंग रुप में आता है, जो पुनर्जागरण की मूलधारा के अनुरुप है।''[19]

इस प्रकार छायावादी कविता राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से काफी वृहद् एवं समृद्ध है।

संदर्भ :–

1. इग्नू स्नात्तकोत्तर हिंदी पाठ्यक्रम के पाठ्यपुस्तक, एम0 एच0 डी0 – 02, आधुनिक हिंदी काव्य, खंड – 02, पृष्ठ सं0 – 06
2. इग्नू स्नातक हिंदी के पाठ्यपुस्तक, ई0 एच0 डी0 – 02, हिंदी काव्य, खंड – 05, पृष्ठ सं0– 07
3. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियां, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ सं0 – 39
4. वही, पृष्ठ सं0 – 40
5. प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत की श्रेष्ठ रचनाएं, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ सं0 – 59
6. वही – पृष्ठ सं0 – 60
7. इग्नू स्नात्तकोत्तर हिंदी पाठ्यक्रम के पाठ्यपुस्तक, एम0 एच0 डी0 – 02, आधुनिक हिंदी काव्य, खंड – 02, पृष्ठ सं0 – 07
8. चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं0 – 73
9. प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत की श्रेष्ठ रचनाएं, पृष्ठ सं0 – 99
10. वही –
11. वही – पृष्ठ सं0 – 102
12. वही – पृष्ठ सं0 – 125
13. वही – पृष्ठ सं0 – 126
14. छायावादी कविता का समाज – दर्शन, डॉ रमेन्द्र कुमार यादव रवि, राजदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0 – 150
15. प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत की श्रेष्ठ रचनाएं, पृष्ठ सं0 – 172
16. इग्नू स्नातक हिंदी के पाठ्यपुस्तक, ई0 एच0 डी0 – 02, हिंदी काव्य, खंड – 05, पृष्ठ सं0 – 94
17. इन्टरनेट कविता कोश पर 'जाग तुझको दूर जाना' महादेवी वर्मा की कविता।
18. छायावादी कविता का समाज – दर्शन, पृष्ठ सं0 – 150
19. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरुप चतुर्वेदी, पृष्ठ सं0 – 135

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

नयी कहानी : परिवेश और परिवर्तन

चन्द्र भूषण रजक

J.R.F./Net, हिन्दी विभाग, पटना वि॰वि॰, पटना

नयी कहानी का आरंभ आजादी के बाद माना गया है। यह समय मुख्य रूप से परिवर्तन और मोह भंग का था। यह वह समय था जब नई कहानी व्यक्ति के बहुत ही करीब आ चुकी थी। अनूभूति और चेतना के स्तर पर देखा जाए तो नई कहानी में अपने समय की आस्था, अनास्था, आशा–निराशा, असंतोष, परम्पराओं और रूढ़ियों का विरोध महानगरीय संस्कृति और आम आदमी के जीवन संघर्ष, मानसिक अंर्तद्वंद्व को विषय वस्तु बनाया है।

नयी कहानी की विशेषता यह रही है कि वह जीवन की सच्चाइयों को यथार्थ की कठोर जमीन से उठा कर ज्यों का त्यों उद्‌घाटित करती है। नई कहानी में तलाश पात्रों की नहीं यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। पहले कहानी कला मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन मूल्यों को लेकर, पहले कहानी झूठी थी अब सच्ची है (इन्द्रनाथ मदान–हिन्दी कहानी अपनी जुबानी)। तभी तो प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह लिखते हैं–"आज की कहानियों में पाठक का जो बहुत बड़ा समूह तथाकथित निम्न मध्यवर्ग के परिवारों में रहता है, उसकी जिंदगी की तहों में भी खेजने को बहुत कुछ पड़ा है।"[1] दसअसल नयापन जीवन का एक ऐसा दर्शन होता है जो विकट स्थितियों के बीच से अपना रास्ता बना लेता है। पुरानी कल्पनाएँ दम तोड़ने लगती हैं, उनकी जगह नयी व्यवस्था, नयी सोच, नयी संवेदना, नयी वैचारिक दृष्टि, नयी शैली, नयी चेतना उत्पन्न होने लगती है।

नई कहानी परिवेशगत दबावों के बावजूद जिंदगी को पूरे जोश से पकड़े हुए आगे बढ़ने लगी। परन्तु नई कहानी के सामने अपने आरम्भिक दौर में जो परिस्थितियाँ उभर कर सामने आयी वह भी नगरीय जीवन की कहानी और ग्राम्य भावबोध की कहानी। राजेन्द्र यादव, कृष्ण बलदेव, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा जैसे समर्थ कहानीकारों की कहानियों में आधुनिकता के साथ–साथ नगरीय भावबोध उभर कर सामने आया और भुवनेश्वर मार्कण्डेय, रेणु अमरकांत, शेखर, शैलेश मटियानी आदि कहानीकारें की कहानियों में ग्राम्य जीवन विशेष रूप से परिलक्षित होने लगा।

सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में देखे तो नई कहानी उन मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के हक के लिए सदैव तत्पर रही है, जो आजीविका के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे हैं। असल में पुंजीवादी ताकतों का विरोध वही साहित्यकार कर सकता है जिसने इनकी सच्चाई को पहचान लिया हो और अपने समय की विषमताओं और विसंगतियों को नजदीक से देखा हो। इन हिंसात्मक समय में कोमल संवेदनाएँ ही लहू–लुहान होती रही है। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य अपने मूल्यों से दूर होता जा रहा है, उनकी संवेदनाएँ आत्मकेंद्रित होकर रह गई है। आदमी का जीवन खंडित होकर रह गया है।

यदि ध्यान से देखे तो नई कहानी की सामाजिक पृष्ठभूमि विरोधी झाड़–झंखड़ों का खुला आईना है। इस संबंध में नेमिचंद्र जैन लिखते हैं– "आज की कहानी में नयेपन की व्याख्या करते हुए कहा जा सकता है कि जहाँ पहले की कहानियों में संपूर्ण व्यक्ति अथवा सम्पूर्ण आदर्शों की अभिव्यक्ति

होती थी, वहाँ नई कहानी में खंडित व्यक्ति की अथवा व्यक्तित्व की अलग–अलग अंशों की ओर खंडित आदर्शों की अभिव्यक्ति पर अधिक बल है। पहले की कहानी व्यक्ति और समाज को अपने आप देखती थी, आज उसे उसके परिवेश में देखने की प्रवृत्ति है अथवा स्वयं परिवेश ही, किसी केन्द्रीय व्यक्तित्व के बिना भी, कहानी का विषय हो सकता है। पिछली कहानी की तुलना में आज का कहानीकार अधिक जटिल यथार्थ को अभिव्यक्त करता है, नई कहानी अधिक जटिल, संश्लिष्ट और उलझी हुई है।"[2]

संवेदना और विचार की दृष्टि से नई कहानी का फलक बहुत बड़ा है। समाज से उठती जातीय दुर्गंध के बीच नई कहानियों में शोषितों : पीड़ितों आदि निम्नवर्गीय समाज की मानवीय कराह स्पष्ट सुनायी देती है। और साहित्य में यह निम्न वर्ग अपने कष्टों और संघर्षों के साथ दस्तक देने लगा। अपने हिस्से की लड़ाई अपने दम पर लड़ने की आवाज सर्वत्र सुनाई देती है। नई कहानीयाँ अपने समय की जातीय व्यवस्था का कुरूप चेहरा उजागर करने में कुछ हद तक सफल दिखाई देती है। नई कहानियों में विषय–वस्तु संश्लिष्ट है जो जीवन को भावात्मक लय से पकड़कर कथा–शक्ति को मजबूती देती है। चाहे गाँव का परिवेश हो या नगरीय परिवेश। दोनों प्रकार के परिवेश में प्रेम अपने विभिन्न रूपों में दिखाई देता है। नई कहानी में ज्यादातर पात्र निम्नवर्ग और निम्नमध्यवर्ग से संबंध रखते हैं। नई कहानियों में ऑफिस में खटने वाले कर्मचारी, घरेलू नौकर, दिहारी मजदूर आदि के संघर्ष दिखाई देते हैं। नई कहानी के ये पात्र वर्तमान, समाज की लाचारी अजनबीपन आदि संत्रास के शिकार हैं।

नई कहानी के क्षेत्र में जिन कहानीकारों की महती भूमिका है उनमें प्रमुख रूप से अमरकांत, शिव प्रसाद सिंह, उषा प्रियंबदा, कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, धर्मवीर भारतीय, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, श्रीकांत आदि हैं। कुछ आलोचक नई कहानी का आरम्भ 'जिंदगी और जोक' से मानते हैं। भुवनेश्वर की कहानी 'भेड़िये' तो नई कहानी की संकल्पना से भी आगे की कहानी है। नई कहानी की शुरूआत अमरकांत की कहानी 'जिंदगी और जोक' और उषा प्रियंबदा की 'वापसी', कृष्णा सोबती की 'बादल के घेरे', शिव प्रसाद सिंह की 'दादी माँ' जैसी कहानी से मानी जा सकती है। ये सभी कहानियाँ कथ्य, संवेदना और शिल्प के कारण अपने समय की कहानियाँ से भिन्न है। जो नये मूल्यों को स्थापित करने में सक्षम है।

नई कहानी अपने अनुभवों को बड़ी सहजता से कथ्य में समाहित करती है। वह मजदूर किसान या निम्न मध्यवर्ग के ऐतिहासिक अनुभव ही क्यों न हो। आलोचक आनंद प्रकाश नयी कहानी के ऐतिहासिक अनुभव के संबंध में कहते हैं–"नयी कहानी का अनुभव अनेक प्रकार से बहुत समृद्ध और महत्वपूर्ण अनुभव है और स्पष्ट करता है कि आज की कहानी हमारे व्यापक जन जीवन की ऐतिहासिक आशा आकांक्षाओं को व्यक्त करने के लिए किस प्रकार एक सही संयुक्त मोर्चे की दिशा में सक्रिय है। कहना न होगा कि विभिन्न श्रमिक वर्गों (मजदूर, किसान या निम्नमध्यवर्ग) के समाज अनुभवों को एक करना आज की कहानी के सार्थक होने की पहली शर्त है, यह तभी हो सकता है जब आज की कहानी ऐतिहासिक चिंतन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में अपनी स्वतंत्र सांस्कृतिक वैचारिक और राजनीतिक पहचान विकसित करे।"[3]

स्वतंत्राता के बाद नयी कहानी ने भारतीय जन जीवन में हो रहे परिवर्तनों को प्रमुखता से रेखांकित किया। कथ्य की सुक्ष्मता भावप्रवणता और मनुष्य के संवेदनशीलता से प्रत्येक सामाजिक गतिविधियों को सच्चाई के साथ यथार्थ वास्तविकताओं के धरातल से अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया। इस संबंध में कमलेश्वर लिखते हैं–"स्वतंत्रता के बाद पहली बार नयी कहानी ने आदमी को आदमी के

संदर्भ में प्रस्तुत किया है, शाश्वत मूल्यों की दुहाई देकर नहीं बल्कि उसी आदमी को उसी के परिवेश से सही आदमी या यंत्र आदमी के रूप में अभिव्यक्ति देकर।"[4]

नई कहानी इस समस्त बदलाव को देखकर चुप नहीं बैठी बल्कि उसने नारी जीवन में आये सामाजिक बदलाव को बड़े सार्थक ढंग से चित्रित किया है। यही कारण है कि नयी कहानी आम आदमी के जीवन से जुड़ने में अधिक सफल रही है। आलोचक डॉ० नागेन्द्र लिखते है–"आज की स्थिति का यथार्थ परिज्ञान ही आधुनिकता का आधार है। इसकी पुष्टि जोरदार शब्दों में कमलेश्वर ने की है–यह मानदण्ड कहानी के यथार्थबोध से कहानी की ओर है।" यही कारण रहा है कि नई कहानी में जीवन मूल्य, विघटन, दामपत्य जीवन, सेक्स परिवेशगत स्थिति, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग और युवा वर्ग का एक साथ उभरकर सामने आए। दरअसल नई कहानी एक साथ ही मूल्य भंग और मूल्य निर्माण की कहानी है।"[5]

नई कहानियों में जिजीविषा दिखाई देती है जो लोक जीवन के संघर्ष व्यवहार तथा उसकी सामाजिक, आर्थिक स्थितियों से भी अवगत करती है। रेणु की कहानियाँ इस पर खरी उतरती है। स्त्री और प्रेम को नए कहानीकारों ने नए संदर्भ में अपनी कहानी में व्याख्यायित किया है। मन्नू भंडारी की कहानियाँ जहाँ स्त्री को पारिवारिक रिश्तों और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में चित्रित करती है वही प्रेम को जरूरी मानते हुए उस पर जोर देती है।

सारांशतः नयी कहानी ने हताशाओं को भूलकर जीवन के यथार्थ का सामना डटकर किया है। नई कहानी जीवन के द्वन्दों, विरोधों और संघर्ष को मजबूती से पकड़ती है। खंडित जीवन के सत्यों को उद्‌घाटित करने में सफलता पाई है। कहानीकारों ने जीवन की सार्थकता को चित्रित करते हुए ईमानदारी का परिचय दिया है। जिन्होनें समाज को बदलने में अहम भूमिका निभायी है। नयी कहानी भाव, भाषा, शैली शिल्प सभी दृष्टियों से पूर्णता को प्राप्त करती प्रतीत होती है।

संदर्भ–सूची :

1. नई कहानी : नए प्रश्न, पृ० 59।
2. नयी कहानी : कुछ विचार, नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति, संपादक देवी शंकर अवस्थी, पृ०–118।
3. हिन्दी कहानी का विकास यात्रा, पृ०–17।
4. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, पृ०–70।
5. राजेन्द्र यादव, एक दुनियाः समानान्तर, पृ०–34

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

विद्यापति गीतों में भक्ति एवं वैराग्य भाव

डॉ0 रंजना कुमारी

प्रेम, श्रद्वा के साथ पूर्ण समर्पण से ''भक्ति'' परिलक्षित होती है और भक्ति का विद्वानों ने दो प्रतिफल बताए हैं– ज्ञान और वैराग्य। हम यहाँ विद्यापति के भक्ति एवं वैराग्य रस अथवा भाव की रचनाओं के विषय में चर्चा कर रहे हैं। भक्ति की रचनाओं से आशय है, वो गीत रचनाएँ जिसमें प्रेम, श्रद्धा और समर्पण को संपोषित करते हुए शब्द हों। महाकवि विद्यापति जिस तरह श्रृंगार रस के रससिद्ध कवि माने जाते हैं उसी तरह भक्ति रस से ओत–प्रोत उनकी रचनाएँ भी काफी लोकप्रिय हैं जिसको लोग बहुत ही तन्मयता से गाते हैं। महाकवि की भक्ति रचनाओं में माँ काली, भगवान शंकर एवं राधा–कृष्ण के पद अत्यधिक मिलते हैं।

विद्यापति के भक्ति से संबंधित पदों में उच्च कोटि की काव्यकला के दर्शन होते है। छंद की दृष्टि से तो उन्होंने मात्र पद ही लिखे है पर अलंकार, रस आदि काव्यांगों की दृष्टि से उनके भक्ति के पद काफी समृद्ध दिखाई पड़ते है। इस प्रकार से उनकी यह विशेषता सामने आती है जो कि जो पद उन्होंने दरबारी कवि के रूप में आश्रयदाता के कल्याण की कामना करते हुए लिखा है उसमें कलात्मक–जुड़ाव पांडित्य का प्रदर्शन बन गया है पर जिन पदों में उन्होंने अपनी भावना का निवेदन किया है, उसमें भक्ति का स्वाभाविक स्वरूप अभिव्यक्त हुआ। उदाहरण के लिए देवी की स्तुति में लिखित उनके गीत देखे जा सकते है। ''गोसाउनिक गीत'' जय जय भैरवि में उन्होंने माँ काली के रूप और शक्ति का वर्णन तो किया है परन्तु उनसे प्रथमतः सुमति मांगते है। इससे मात्र एक समर्पित भक्ति का स्वरूप सामने आता है, लेकिन कवि काली को दैत्यविनाशिनी स्वरूप में विवेचित कर तत्कालीन व्यवस्था के मर्म को भी छायावादी रूप से उजागर करने का प्रयास किया है। इस समय देशकाल की दशा अशांत थी। दिल्ली सल्तनत के मुस्लिम साम्राज्य का पड़ोसियों से राज्य विस्तार के क्रम में परस्पर युद्ध भी होता रहता था। कवि का हथियार तो लेखनी है और अराध्य गुरू माँ हैं। विद्यापति माँ रूपी काली से देशकाल की दशा के रक्षार्थ निवेदन करते हैं । इस गीत में भक्ति का व्यापक विमर्श है, संतति को किसी प्रकार का दर्द होने पर वह अपनी माँ को ही याद करता है। [1]

मातृ– विमर्श के इस काव्य को देखकर यह कहा जा सकता है कि मौलिक रूप से शिवभक्त माने जानेवाले महाकवि विद्यापति की भक्तिस्वरूप सर्वव्यापक है–

जय–जय भैरवि असुर भयाउनि, पशुपति भामिनी माया।
सहज सुमति कर दियउ गोसाउनि, अनुगत गति तुअ पाया।
वासर रैनि सबासन शोभित, चरण चन्द्रमणि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल, कतओ उगिलि कएल कूड़ा।।
सामर बरन नयन अनंरजित, जलद जोग फुलकोका।
कट–कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुरि फेन उठ फोका।।

धन–धन–धनय घुंघरू कत बाजय, हन–हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पर सेवक, पुत्र बिसरू जनि माता.....[2]

अर्थात् हे काली (भैरवी) तेरी जय जयकार हो, असुरों को भयभीत करने वाली, शिव की मायारूपी पत्नी, हे भगवती मुझे ऐसा वर दो जिससे मैं सहज स्वभाविक एवं सुंदर बुद्धि पाकर आपके चरण का सेवक बनकर मोक्ष को प्राप्त करूँ।

दिन और रात लाश के आसन पर शोभित होने वाली, आपका चरण सिर पर चंद्रमा धारण करने वाले शिव के उपर रखा है। आप कितने ही दैत्यों को मारकर अपने मुख में ले, कहीं और उगल कर कुल्ला कर देती हो। श्यामला बदन और आँखें लाल–लाल ऐसा प्रतीत होता है जैसे बादल के बीच लाल कमल फूले हों। कटकटाते दाँत होठों के मध्य लाल फूल की तरह चमक रहें हैं और उसमें से खून, झाग की तरह निकल रहे हैं जैसे फोका (बुदबुद) उठ रहा हो।

पैरों में जो पायल है उसके घुंघरू अत्यंत घन–घन की आवाज कर रहे हैं जैसे मेघ की गर्जना हो और हाथ में जो तलवार है वो वायु के तेज प्रवाह की तरह हन–हना रहा है। हे माँ मैं कवि विद्यापति आपके चरण का सेवक हूँ इसलिए अपने पुत्र को कदापि न भुलाइए। इसी तरह भगवान शंकर से आराधना करते हुए महाकवि विद्यापति लिखते हैंः–

कखन हरब दुख मोर
हे भोलानाथ।
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाओल
सुख सपनहु नहि भेल, हे भोलानाथ।
एहि भवसागर थाह कतहु नहि
भैरव धरू करूआरि, हे भोलानाथ।
भनई विद्यापति मोर भोलानाथ गति
देहु अभय वर मोहि, हे भोलानाथ।[3]

अर्थात् हे शिव, हे भोलानाथ कब मेरा कष्ट हरेंगे। दुःख में ही मेरा जनम हुआ और दुःख में ही गुजर बसर हो रहा है, सुख तो सपने में भी नहीं हुआ हे भोलानाथ। इस संसार रूपी भवसागर में कहीं सतह का अनुमान नहीं लग पा रहा है, हे भय को हरण कर जगत का कल्याण करने वाले शिव आप अपने विशिष्ट रूप को धारण कर हमें इस दुःख से मुक्ति दिलायें। विद्यापति कहते हैं हे मेरे भोलानाथ मुझे ऐसा वर दो जिससे मैं भयमुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करूँ।

विद्यापति मूलतः शैव थे। उनकी शिवभक्ति के संबंध में एक किवदंती भी प्रचलित है कि भगवान शंकर ने वेश बदलकर उनके यहाँ नौकर का कार्य किया था। यथार्थ चाहे जो हो लेकिन उगना के विरह से आकुल विद्यापति का निष्काम साहित्य इस तरह लोलुप हुआ कि भक्ति रस के मूल आवरण तले करूणा और विरह की अनुपम रचना का यहीं से जन्म हुआ जो कालांतर में इनके अंतिम विश्रांति की कामना का परिचायक भी माना जा सकता है।

उगना रे मोर कतए गेलाह कतय गेलाह शिव किदहु भेलाह।
भांग नहिबटुआ रूसि बैसलाह जोहि हेरि आनि देल बिहुँसि उठला।
जो मेारा कहता उगना उदेश तनिका देब कर कंगन बेश।
नंदन बनमे भेटला महेश गौरी मन हरखित मेटल कलेश।
भनइ विद्यापति उगना सओं काज नहि हितकर मोरा तिरहुत राज। [4]

प्रत्तुत पद्य के अंतिम अंश में प्रयुक्त तिरहुत राज का अर्थ बहुत ही सारगर्भित और व्यापक है। सामान्यता मिथिला को तिरहुत शब्द से विभूषित किया गया है, लेकिन तिरहुत का व्यापक अर्थ है– तीनो लोक यहाँ उगना के विरह में कवि तीनों लोक से विमुख होने की बात करते है। यहाँ, भक्ति करूण और विरह सौदंर्य अलौकिक है। गंगा स्तुति कविता जीवन के अंतिम सत्य अर्थात् स्थायी विश्रांति को दर्शाता है। शिक्षा, दीक्षा, श्रृंगार, नीति के बाद वैराग्य ही जीवन का प्रासंगिक पहलू है, इसकी स्वीकारिता कवि ने आत्मिक रूप से किया हैः–

बड सुख सार पाओल तुअ तीरे, छाड़इत निकट नयन बह नीरे।
कर जोरि बिनमओं विमल तरंगे, पुन दरसन होए पुनमति गंगे।।
एक अपराध छेमव मोर जानी, परसल माय पाय तुअ पानी।
कि करब जप तप जोग धेआने, जनम कृतारथ एकहि सनाने।।
भनइ विद्यापति समदओं तोही, अंत काल जनु बिसरह मोही.....[5]

सौंदर्य की यह अनुपमेय काव्य करूणा के आवरण में भक्ति, श्रद्धा, विश्वास और वैराग्य की अंतिम उपादेयता को मर्मस्पर्श करता है। कवि को गंगा के तट पर अनुपम आनंद की अनुभूति हुई। जन्म देनेवाली माँ आज गंगा माता के रूप में अंतिम निर्वाण का साक्षी रूप में प्रतीत हो रही है। ऐसी कवित्य अहले नहीं आती । कवि अवश्य गीत–संगीत के सर्जक होने के साथ–साथ जीवन कला को समझने वाला अनुपम साधक रहा होगा।

एक समय जब मनुष्य को उसके जीने की जरूरत प्रतीत हो तो जीने के प्रयत्न जारी रखना चाहता है लेकिन अंतिम सत्य ''मृत्यु'' को भी जीवन कालक्रम में गले लगाने की पिपासा भी रखता है। यही तो जीवन का प्रथम और आखिरी सौंदर्य है। कवि भी अन्य चेतनशील प्राणी की तरह मृत्यु का वरन करना चाहता है, इसलिए उसे माँ गंगा के तट से दूर होते ही आँखों के अश्रुगंगा टपकने लगती है, अब जप, तप योग और ध्यान की प्रासंगिकता नहीं रह गयी है। सच्चाई भी है ये सारे साधन तो जीवन को जीवंत करनेवाले हैं, कवि मृत्यु को वरन करना चाहता है। इसलिए एक बार स्नान करके वह ''अंतिम स्नान'' के अगम पथ पर विचरण करने की जिज्ञासा से ही तो पैदल चलकर आया है। पहले गंगा के जलतरंग में पहले कवि का चरण प्रवेश करता है। इसके लिए वह क्षमा चाहता है, लेकिन इससे पहले कवि ने माँ गंगा से कभी क्षमा याचना तो नहीं किया था। सौंदर्य का ऐसा वैराग्यबोध मुक्त गीत में विरले ही मिलते है। यहाँ क्षमा का अर्थ ''अंतिम प्रणाम'' है। यही कारण है कि आज भी मिथिला के सुदूर क्षेत्रों में भी इस गीत को वहाँ के चर्चित विरह धुन ''समदाओन'' धुन पर भी गाया जाता है।

प्रीति जब आस्था में विरूपित होने लगती है तो श्रृंगार की अनुपम सौंदर्य बोध का भक्ति के दार्शनिक रूप में विवर्त होना सहज हो जाता है। कवि विद्यापति के श्रृंगार में विविध कला का विमर्श है, इनका प्रेमोच्छवास अंतर्तम को एक अवरिल रूप से झझकोर देता है। प्रस्तुत है महाकवि के रीति, प्रीति और नीति के त्रिवेणी को उद्वेलित करनेवाली एक अनुपम सौदर्य गीत–

सुनु–सुनु रसिया अब न बजाउ बिपिन बसिआ।
बेरि–बेरि चरणाबिंद गहि, सदा रहब बनिअ दसिया।
कि छलहूँ कि होएब से नहि जानहु, वृथा होएत–कुल–हॅसिया।
अनुभव ऐसन मदन भुजंगम, हृदय गेल मोर डॅसिआ।
नंद–नन्दन तुअ सरन न त्यागब, बरू जग होए दुरजसिया।
विद्यापति कह सुनु बनितामनि, तोर सुख जीतल ससिआ।
धन्य–धन्य तोर भाग गोआरिनि, भरि भजु हृदय हुलसिया। [6]

राधा अपने अनन्य प्रेमी सह आराध्य को निवेदन करते हुए कहती है कि हे रसिया, अर्थात रसिसिद्ध स्नेह निधान कृपा करके अब इस कानन में बांसुरी मत बजाओं मैं बार बार आपका चरण गहती हूं, प्रतिक्षण आपका बहिकिरणी बनकर रहूँगी। मैं क्या थी, क्या हो गई भला वो आप क्या जाने, अर्थात् स्नेहातीत होने के बाद नारी में एक अलभ्य परिवर्तन होता है। जबवह एक स्नेह अलग सम्बोधन से उर प्रेम को बारम्बार अनुभूति कराय तो प्रीति का पुरातन अनुभव एक अलग सिहरन उत्पन्न करती है, इससे बेकार में मेरे कुल की हँसी होगी। मुझे तो यही लगता है कि प्रीति कामुक हो चुकी है और वह सर्प बनकर मुझे डसने के लिए उताहुल है। तथापि हे कृष्ण! मैं आपके शरण में रहूँगी । यह संसार चाहे मुझे कितना भी अपयश दे! महाकवि स्नेहन्तित राधा के असमंजस को भ्रमित करते हुए कहते हैं कि हे संदुरी सुनो! आपका मूँह चन्द्रमा को भी जीत लिया है! आप तो भाग्यशालिनी हो! हुलास मन से कृष्ण का भजन करती रहो! यहाँ कृष्ण भजन का अर्थ व्यापक है। कवि राधा से कृष्ण के प्रति तात्विक समर्पण चाहता है।

तातल सैकत बारि–बिन्दु सम, सुत मित–रमनि–समाज।
तोहि बिसारि मन नाहि समरपल, आब होयब कोन काज।
माधव हम परिनाम निरासा।
तोहें जगतारन दीन दयामय, अतए तोहर बिसबासा।।
आध जनम हम नीन्द गमाओल, जरा सिसु कत दिन गेला।
निधुबन रमनि रंग रभसमातल, तोहि भजब कोन बेला।।
कत चतुरानन मरि मरि जाओत, न तुअ आदिअवसाना।।
तोहि जनमि पुनि तोहि समाएत, सागर लहरि समाना।।
भनइ विद्यापति शेष समन भय, तुअ बिनु गति नाहिआरा।।
तोहें अनाथक नाथ कहाओसि, तारन भार तोहारा। [7]

यह पद विद्यापति के जीवनकाल के अन्तिम क्षणों में लिखा गया प्रतीत होता है, जब वे सारे उमंग–उत्साह, राग–विराग, सुख–सौरभ, सारी आसक्तियों को पार कर जीवन की समस्त व्यथाओं, दुख–दुविधाओं से निपटकर तटस्थ हुए और जीवन का लेखा–जोखा करने बैठे, सम्भवतः तभी उनको ऐसा भाव आया। उस लेखा–जोखा के क्षण में कवि भगवान कृष्ण से कहते हैं– हे माघव! सारे सरोकार निरर्थक साबित हुए। पुत्र, मित्र, पत्नी, कुटुम्ब समाज.... सारे के सारे संबंध तपते हुए रेत पर पानी की बूंद साबित हुए। गिरते ही विलुप्त हो गए, सब निरर्थक, विफल। मुझसे यह बड़ी भूल हुई कि मैं तुम्हारी महिमा से निरपेक्ष होकर उन सब बन्धनों में उलझा रहा, खुद को उनके माया–मोह में समर्पित कर दिया, अब मेरा क्या होगा। जीवन के अन्तिम क्षणों में हे माधव! अब तो मुझे केवल तुम्हारी ही आशा है। आप पूरे जगत के तारनहार हो, दीन–दुखियों के लिए दयालु हो। मुझे अब बस तुम पर विश्वास है। जीवन का आधा भाग तो मैंने नीन्द में गँवा दिया, बुढ़ापा और बालापन में भी बहुत समय खत्म हो गया। आमोद–प्रमोद, स्त्रियों के साथ रंग–रभस में उन्मत्त जवानी बीत गई। अब आपके भजन–अर्चन हेतु मेरे पास समय ही कितना रह गया। हे माधव! कितने ही ईश अवतार ले लें पर तुम्हारा कोई आदि–अन्त नहीं है। सब कुछ तुमसे ही उत्पन्न होकर समुद्र की लहर की तरह तुम में ही समा जाते हैं। विद्यापति कहते हैं कि मेरे जीवन के इन अंतिम क्षणों के बचे–खुचे भय का शमन आप हीं कर सकते हो। आपके बिना मेरा और कोई सहारा नहीं है। आप तो आदि–अनादि सब के मालिक (नाथ) कहलाते हो। आपके हिस्से में तो सम्पूर्ण संसार का बेड़ा पार लगाने का भार है।

जतने जतेक धन पापें बटोरल, मिलि–मिलि परिजन खाए।
मरनक बेरि हरि केओ नहि पुछए, एक करम संग जाय।।

ए हरि, बन्दओं तुअ पद नाए।
तुअ पद परिहर पाप–पयोनिधि, पारक कओन उपाए।।
जनम अबधि नहि तुअ पद सेबल, जुबती रति – रंग मेलि।
अमिअ तेजि हलाहल पीउल, सम्पद आपदहि भेलि।।
भनई विद्यापति लेह मनहि गुनि, कहलें कि होएत काज।
साँझक बेरि सेवकाई मँगइते, हेरइते तुअ पद लाज।।[8]

अर्थात् इस रचना में उन्होंने कहा है कि मैंने छल–कपट, लालच–बेईमानी से जितना भी पाप रूपी धन कमाया है सारा धन मेरे सभी परिजन मिलकर खाते रहे हैं पर हे प्रभु मरने के समय मुझे कोई नहीं पूछेगा। मैंने जो कर्म किया है सिर्फ वही एक साथ जाएगा। इसलिए हे हरि आपके पद का बंदन करना चाहता हूँ। आपके चरण का सेवक हूँ कृपाकर इस भवसागर से पार होने का उपाय बताएँ। जीवनभर मैंने आपके चरणों की सेवा नहीं कर पाया। स्त्रियों के प्रमोपाश में पड़ा रहा। अमृत को छोड़कर विष को पिया और अब ये सम्पत्ति भी मुझे आफत हो गया है। विद्यापति कहते हैं कि अपने मन ही मन गुनते रहो कि हमने ये किया, हमने वो किया ये सब कहना कोई काम नहीं आएगा। जब साँझ का समय यानि जीवन का अंतिम समय अपने काम की मजदूरी माँगते हुए अपने कर्म का लेखा–जोखा करेंगे तो हमें बहुत शर्म आएगी। इसलिए हे हरि आपके चरणों का बंदन करना चाहता हूँ।

अतः हम कह सकते हैं कि विद्यापति की भक्ति एवं वैराग्य भाव की रचनाएँ हमें भक्ति में परमानन्द की अनुभूति कराते हुए एक अच्छे, निश्छल मनुष्य बनने की प्रेरणा देती है।

संदर्भ सूची :

1. पद्य विविधा : ध्रव नारायण सिंह नीरज (ज्ञान ज्योति–प्रकाशन पटना) पृष्ठ सं : 11
2. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 57–58
3. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 361–362
4. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 29–30
5. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 366
6. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 347
7. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 369–370
8. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 370–371

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारत की कृषि समस्याएँ प्रयास एवं सुझाव

डॉ0 कामेश कुमार

शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, बी0आर0ए0बी0यू0मुज0

सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत कि आत्मा गावों में बसती है। भारत की सम्पूर्ण जनसँख्या की आधे से अधिक आबादी का संकेन्द्रण ग्रामीण क्षेत्रों में है जहाँ पर आजीविका का मुख्य साधन कृषि व पशुपालन है. ग्रामीण जनता की इस जीविकोपार्जन के साधनों का निरंतर अस्तित्व बनाये रखने के लिए व्यापक चुनौतियाँ है इसका सर्वप्रमुख कारण कृषि क्षेत्रों में व्याप्त विभिन प्रकार के जोखिम है आज भी भारत की लगभग दो तिहाई जनसख्या कृषि पर निर्भर है। भारतीय कृषि मानसूनी वर्षा पर आधारित है। मानसून आने का समय एवं वर्षा का वितरण फसलों के उत्पादन को प्रभावित करता है। किसी क्षेत्र में अति वृष्टि तो किसी क्षेत्र में अनावृष्टि के साथ सूखे की स्थिति देखने को मिलती है। सूखा प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली के आंकड़ों के अनुसार, भारत के लगभग 42 प्रतिशत भू–भाग में सूखे का सामना करना पड़ रहा है। यदि मानसून साथ न दे तो फसलों को बचा पाना मुशिकल है हमारे किसानो कि सार्वभौम समस्या वित्त की आती है. महंगे कृषि उपकरण, खाद , बीज , सिंचाई की व्यवस्था का भार कृषको के लिए असहनीय हो जाता है। ऐसे में कृषक अपने व्यवसाय के प्रति उदासीन हो जाते है. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट में बताया गया था कि, देश के 40 : किसान खेती छोड़ कर अन्य वैकल्पिक रोजगार पाना चाहते है किसानो के प्रति वित्तीय बोझ का ही यह प्रमाण है कि 1997 से 2009 के बीच 216500 किसानो ने अपनी स्थिति से तंग आकर आत्महत्या का अंतिम विकल्प चुना।

प्रस्तुतिकरण

किसान सदियों से आम जनता से लेकर सत्तासीन लोगो तक के पेट पालक के रूप में सम्मानीय रहे है। व्यावहारिक रूप से उनकी स्थिति अत्यंत गंभीर है। आज खाद्य सुरक्षा को लेकर तमाम तरह की भयावह तस्वीर पेश की जा रही है खाद्य संकट के प्रति हम गंभीरता से सोच रहे है साथ ही इसके उत्पादक के प्रति हमारी नीतिया संतोषजनक नहीं है। सरकार किसानो के लिए कई योजनाये निर्धारित की है जिससे किसानो को रहत मिली है किसानो के सामने उनके वित् व्यवस्था कि समस्या सबसे बड़ी चुनौती है. जिसके लिए वितीय समावेशन के अंतर्गत इस चुनौत्ती का हल निहित है. 2008 में वितीय समवेसन के लिए गठित समिति के अध्यक्ष डा. सी. रंगराजन ने वितीय समावेशन को परिभाषित करते हुए कहा था कि "कम आय व कमजोर वर्गों के लिए ऋण व वितीय सेवाओं तक ससमय सुगमतापूर्वक पहुँच ही वितीय समवेसन है।" इस प्रकार हम वितीय समावेशन को सही तरीके से यदि ग्रामीण क्षेत्रो में लागू करते है, तो ग्रामीण ऋण की मुलभुत आवश्यकता की पूर्ति कर पायेंगे। यह वास्तविकता है कि किसान ऊँचे ब्याज दरो पर साहूकारों से ऋण प्राप्त करते है। इसके विकल्प के रूप

में सरकार ने किसानो के अल्प कालीन सुविधापूर्ण ऋण प्रदान करने के लिए 1998 में किसान क्रेडिट योजना का शुभारंभ किया रिजर्व बैंक के अनुसार 2009 –10 तक 35080000 किसान क्रेडिट कार्ड जारी किये जा चुके है. पिछले साल कृषि क्षेत्र के लिए 375000 करोड़ रुपये के ऋण राशि को 2011 –12 में 475000 करोड़ रुपये कर दिया गया है जिसमे समय पर भुगतान करने वाले कृषको को मात्र 4 प्रतिशत ब्याज देना होगा। इसके आलावा जोखिमो के विकल्प के रूप में फसल बीमा योजना को भी लागू किया गया। इस प्रक्रिया व नीति से निश्चित रूप से किसान अपने ऋण आवश्कता कि पूर्ति के लिए इन वित् व्यवस्थाओं से लाभ प्राप्त करेंगे।

इसके आलवा सरकार ने नाबार्ड (नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एंड रुरल डेवलपमेंट) की अधिकृत पूंजी को भी बढ़ा कर 3000 करोड़ रूपया कर दिया है। ताकि अधिकाधिक किसानो को ऋण प्रदान कर सके देश के 6 लाख गावों को वितीय सेवाओ तक पहुचने और उनकी ऋण जरुरत को पूरा करने के लिए सरकार ने और भी उपाई किये है जैसे स्वयं सहायता समूह ,प्राथमिक कृषि साख समितिया, सहकारी बैंक, डाकघर किसान क्लब आदि। वितीय समावेशन और ऋण उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए 1982 में नाबार्ड का गठन किया गया। ग्रामीण कृषको की ऋण आवश्यकता को पूरा करने के लिए 1975 में ग्रामीण बैंकों कि स्थापना की गयी। इन सबके बावजूद बहुत सारे तकनीकी व व्यवहारगत कारणों से आशातीत उपलब्धी हासिल नहीं हो पाए है. अतः आवश्यकता है कि हम एक व्यापक नीति बनाये और उस पर सही तरीके से और विशेषज्ञता के साथ कदम बढ़ाये। वितीय समवेशन के अंतर्गत ही हम एक और नीति को अमल में ला सकतें है, किसानो को बैंकों से जोड़कर कृषि खाता खोला जा सकता है जिसमे बैंकों को भारतीय खाद्य निगम और कृषक के बीच एक कड़ी के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। उपज खाद्य निगम खरीदे और उसका भुगतान बैंकों द्वारा सीधे लाभार्थी कृषक को मिले तो यह भ्रष्टाचार मुक्त अच्छी व्यवस्था साबित हो सकती है। इससे सुविधाजनक बाजार की उपस्थिति पैदा करते हुए अनचाहे बिचौलियों का खतरा टाला जा सकता है। अधिकाँश कृषक इन् बिचौलियों के जाल में फसकर अपनी मेहनत और उत्कृष्ट उपज का यथोचित मूल्य प्राप्त नहीं कर पाते .और सरकारी नीतियॉ धरी कि धरी रह जाती है।. वर्त्तमान में खाद्य संकट कि जिस त्रासदी से हम गुजर रहे है, उसके निदान के लिए हमें अपने कृषको को खाद्यान उत्पादन करने के लिए उपर्युक्त संसाधन मुहैया करना होगा ताकि प्रजापालक कृषक स्वयं सुदृढ़ हो सके। विकसित देशों के कृत्यों का और सुझाये तरीको और उत्पादों का अंधाधुन्द प्रयोग करते जाना यहाँ के कृषको के लिए नुकसानदेह साबित हो रहा है प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक एम0एस0 स्वामीनाथन ने भी स्थानिय मिट्टी के लिए उपर्युक्त फसलो के लिए अनुसन्धान पर जोर दिया है निसंदेह भारतीय कृषि अपने मूल स्वरुप से भटकती जा रही है और ऋण उप्लब्धता के बावजूद कई कारक इस भटकों को जारी रखे हुए है इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि तमाम योजनाऍ के बावजूद उसका यथोचित लाभ नहीं मिलता है। इसके पीछे जागरूकता का आभाव व भ्रस्टाचार को महत्वपूर्ण करक माना जा सकता है। जागरूकता के आभाव में कृषक अपने वितीय अधिकारों व सामान्य अधिकारों का उपयोग नहीं कर पाते इसके लिए योजनाऍ का सही तरीके व माध्यम से प्रसारण हो तथा शिक्षा के स्तर को गुणवत्तापूर्ण बनाया जाये देस कि 74 प्रतिशत साक्षरता दर को गुणवक्तापूर्ण विशेषण से इंगित नही किया जा सकता इसके प्रति भी सरकार सहित आम जनता को ध्यान देना होगा। स्कूली पाठ्यक्रमो में वितीय समवेसन से सम्बन्धित अध्यायों को जोड़ना होगा। आम जनता में जब तक इस सम्बन्ध में जागरूकता नहीं आएगी, तबतक

कोई भी महत्वाकांक्षी योजना सफल नहीं हो सकती, जागरूकता कार्यक्रमों को ग्राम पंचायत से जोड़कर हम पंचायत सशक्तिकरण का लाभ भी उठा पाएंगे।

कृषि वित्त कि समस्या

कृषि वित्त ग्रामीण विकास एवं कृषि संबंधित गतिविधियों से जुड़े कार्यों के सम्पादन से सम्बंधित ऐसी वित्त व्यवस्था है जो उसके आपूर्ति, थोक, वितरण, प्रसंस्करण और विपणन के वित्तपोषण के लिए समर्पित एक विभाग के रूप में जाना जाता है। कृषि वित्त ग्रामीण विकास एवं कृषि संबंधित गतिविधियों से जुड़े कार्यों के सम्पादन से सम्बंधित ऐसी वित्त व्यवस्था है जो उसके आपूर्ति, थोक, वितरण, प्रसंस्करण और विपणन के वित्तपोषण के लिए समर्पित एक विभाग के रूप में जाना जाता है.किसानों की ऋण आवश्यकताओं को निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है।

- समय के आधार पर
- उद्देश्य के आधार पर

समय के आधार पर किसानों की ऋण आवश्यकताओं को निम्न रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। लघु अवधि, मध्यम अवधि, लंबे समय तक की अवधि के लिए ऋण।

लघु अवधि के ऋण

इस तरह के ऋण उर्वरक, बीज, कीटनाशकों और पशुओं के चारे आदि को खरीदने आदि के लिए दिया जाता है. साथ ही मजदूरों की मजदूरी के भुगतान, कृषि उपजों के विपणन एवं उपभोग और अनुत्पादक उद्देश्यों एवं मजदूरी के भुगतान के लिए आवश्यक हैं। इन ऋणों के लिए अवधि 15 महीने से भी कम है।

किसानों की जरूरत एवं उद्देश्य के आधार पर कृषि ऋण को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

- उत्पादक आवश्यकता
- खपत की जरूरत
- अनुत्पादक आवश्यकता

उत्पादक आवश्यकता –

उत्पादक जरूरतों के सन्दर्भ की बात करें तो कृषि ऋण कृषि उत्पादन को गहरे तक प्रभावित करते हैं. कुछ किसानो की बात करें तो वे आदतन भी खपत के लिए ऋण की जरूरत महसूस करते हैं. . कृषि की बुवाई एवं उसके उपज और बाद में फसल की कटाई और उसके विपणन होने के मध्य इतनी अवधि का समय होता है की किसान अपनी तमाम जरूरतों को पूरा करने में अक्षम होते हैं. अतः वे अपनी तमाम जरूरतों को ही पूरा करने के लिए मजबूरन ऋण लेते हैं. अर्थात यदि कोई किसान ऋण लेता है तो कुछ किसानो को छोड़ दे तो अधिकांश किसानो के ऋण लेने की परंपरा गलत नहीं है।

कृषि वित्त से जुड़े स्रोत निम्नवत हैं।

- गैर संस्थागत स्रोतों
- संस्थागत स्रोतों

गैर संस्थागत स्रोत हैंः– साहूकार, रिश्तेदार, व्यापारी, घूस लेने वाले एजेंट, जमींदार

संस्थागत स्रोतः–

सहकारी बैंक, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

किसी भी देश के विकास के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण बात वहाँ की मौलिक पूँजी होती है। मौलिक पूँजी का अर्थ है देश के प्राकृतिक संसाधनों द्वारा प्रदत्त उपहार। कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत की मौलिक पूँजी है– कृषि उत्पाद। भारत की 1.3 जनसंख्या का आधार कृषि है। यही कारण है कि औद्योगीकरण के बढ़ते कदम में भी घरेलू उत्पाद में 30 प्रतिशत योगदान कृषि का ही है। पिछले 43 वर्षों में इस क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ है। जिसके फलस्वरूप अनाज उत्पादन 17.5 करोड़ टन के स्तर तक पहुँच गया है। लेकिन इतना सब होते हुए भी सीमित खनिज स्रोतों के आधार पर खड़े बड़े–बड़े उद्योग लोगों को अधिक आकर्षित कर रहे हैं, जबकि असीमित कृषि स्रोतों से हम अपने हाथ खींच रहे हैं। बहुराष्ट्रीय संगठनों की सम्बद्धता से जहाँ हम अनायास विदेशी पूँजी के हाथों गिरफ्तार होते जा रहे हैं, वहीं कृषि की उपेक्षा कर पुनः उन्हीं देशों का मुँह ताकना पड़ रहा है। अपने खेतों का श्रम व पूँजी दोनों का हस्तान्तरण सम्भवतः कृषि की उपेक्षा का ही दुष्परिणाम है। इसके निम्न कारण हो सकते हैं–

असंतुलित समाज व्यवस्था

शक्ति के आधार पर वर्गान्तरित सामाजिक व्यवस्था अर्थात एक विशेष वर्ग ने प्रत्येक स्थान पर हावी होकर न केवल कृषि भूमि का लगभग 85 प्रतिशत भाग हथिया लिया है, बल्कि लोगों को तुच्छ मजदूरी पर काम करने को भी बाध्य करता है।

निरक्षरता

निरक्षरता एवं अज्ञानता सम्पूर्ण समाज के लिये अभिशाप है। परन्तु ग्रामीण समाज में साधन विहीन जीवनवृत्ति में इसकी भूमिका और भी दुर्भाग्यशाली है। अनेक सीमांत कृषक तथा भूमिधर अज्ञानता एवं निरक्षरता की वजह से आज न केवल भूमिहीन हो गये वरन व्यर्थ की मुकद्दमेबाजी से आर्थिक स्थिरता भी खो चुके हैं। कर्जे में ब्याज की दरें कर्जदार पर पीढ़ी दर पीढ़ी अपना आधिपत्य बनाए रखती हैं। निरक्षरता का नूतन अभिशाप ही है कि सुविधाओं का उपभोग वास्तविक सेवार्थी नहीं कर पा रहा है।

औद्योगीकरण

औद्योगीकरण के कारण श्रम प्रवर्जन की जो प्रवृत्ति फैली है उससे न केवल गाँव वीरान हुए हैं बल्कि 'श्रमकार' की अनुपस्थिति में व्यर्थ जनसंख्या भार से कृषि समाज निरन्तर पिछड़ता जा रहा है। काम न करने वाली यह जनसंख्या काम करने वाली जनसंख्या का दोगुना–तिगुना अनाज एवं प्राप्त

सुविधाएँ उपभोग करता है और बदले में खेतों की उर्वरता पर 'परती' की चादर डालता जाता है, जिससे खेतों की ऊसर बनने की प्रक्रिया तेज होती जाती है। इस प्रक्रिया से आने वाले 50 वर्षों में देश की कृषि योग्य भूमि का 1ध्4 भाग ऊसर हो जाएगा।

शहरी संस्कृति का प्रभाव

विकास क्रम में सड़कों का जाल बढ़ता गया। आज 80 प्रतिशत गाँव सड़कों से जोड़ दिये गये हैं। इससे जहाँ गाँवों को देश की मुख्य धारा से जोड़ने में सफलता मिली, वहीं गाँवों के युवकों की व्यर्थ की विचरणवादिता में बढ़ोत्तरी हुई। गाँव और सड़कों के मिलान बिन्दु पर स्थापित दुकानों में कृषि उपयोगी श्रम सिगरेट का धुआँ बनकर उड़ जाता है। भविष्य चाय के कुल्हड़ों की तरह टूटन की नियति लिये लुढ़क जाता है। अनावश्यक विचार–विमर्श से वे अपने श्रम समय का दुरुपयोग तो करते ही हैं, साथ–साथ देश में एक वृहत्त नकारी भीड़ खड़ी कर रहे हैं।

इन कारणों के अतिरिक्त सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है– स्वतंत्रता के इतने वर्षों तथा विकास के इतने चरणों के बावजूद कृषि को उद्योग का दर्जा न दिया जाना। बड़े–बड़े फार्महाउस की स्थापना से सामान्य कृषि समाज सुविधाओं से विरत रहकर उत्पादन क्षमता से भी दूर हो रहे हैं। सामान्य किसान आधुनिक संसाधनों को प्राप्त कर भी इन फार्महाउसों की उत्पादन क्षमता को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। अनिर्देशित कृषक पैदावार के तमाम संकट को झेलकर जब अपना अनाज काटता है तो उसे विक्रय के लिये न तो बाजार प्राप्त हो पाता है और न ही उचित मूल्य। इस सम्बन्ध में सहकारी समितियाँ एवं स्थानीय निकाय भी अपनी स्वच्छ भूमिका निष्पादित नहीं कर पा रहे हैं।

हमारा जल प्रबन्ध भी दोषपूर्ण है। इसमें किसान फसल को घण्टों के हिसाब से सींचता है न कि फसल की आवश्यकता के अनुसार। इससे उत्पादन एवं भूमि उर्वरता प्रभावित होती है। भूमि उर्वरता के नष्ट होने के अन्य कारण है– कृषि के आधुनिकतम तरीकों से अनभिज्ञता, भूमि की सतहवार पोषक तत्वों का उचित स्तर बनाए न रख पाना, भूमि कटाव रोकने की जानकारी न होना। यही कारण है कि हमारी कुल भूमि का 52 प्रतिशत भाग बंजर है। यह नहीं है कि हमारे योजना निर्माता एवं सामान्य उपभोक्ता इन बातों से अनभिज्ञ हैं। सरकारी एवं सहकारी अभिकरण अपने प्रचार एवं प्रसार माध्यमों से इन दोषों की तरफ ध्यान दिलाते रहते हैं, परन्तु जनता की अभिरुचि संवर्द्धन की प्रवृत्ति नकारात्मक ही रही। उदाहरणतः विकासखण्ड एवं जनपद स्तर पर भूमि मृदा परिक्षण की सुविधाएँ हैं, परन्तु कितने किसान मृदा परीक्षण करवाते हैं, यह सर्वविदित है। यही अज्ञानता व अरुचि कृषकों के दुर्भाग्य का वाहक बन गया है। सरकारी प्रयास भी दोषपूर्ण है किन्तु वास्तविक प्रश्रय इन्हें सामान्य किसान की भूमिका से ही मिलता है। स्वतंत्रता के पश्चात के प्रयासों, जिनसे कृषि समाज की सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुधर सकती थी, का विश्लेषण हम निम्न रूप में कर सकते हैं।

योजना आयोग की स्थापना एवं उसके कार्यान्वयन की मुख्य नीति कृषि नीति ही रही, क्योंकि कृषि विकास से ही देश में सामाजिक समतुल्यता एवं गरीबी निवारण के कार्यक्रम प्रमुखता से मुखरित हो सकते थे। हरितक्रांति एवं खाद्यान्न प्रगति आदि कार्यक्रमों ने कृषि उत्पादन को निखारा किन्तु कृषि से जुड़े लोगों में 25 प्रतिशत की कमी एवं कृषि योग्य भूमि में लगभग 33 प्रतिशत की कमी ने विकास के सभी कार्यों को दिवास्वप्न बना दिया।

नदियों एवं वर्षाजल को संचित कर असिंचित भूमि के आंचल को हरीतिमा बनाने के प्रयास ने देश में नहरों एवं बहुउद्देशीय परियोजनाओं को जन्म दिया, किन्तु इनका गलत उपयोग उद्देश्य प्राप्ति में बाधक रहा। प्रायः नहरों में पानी तभी आता है, जब या तो फसल सूखने लगती है या खेत लबालब भरे रहते हैं। विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित नलकूप आज महज मूक साधना कर रहे हैं। विद्युतीकरण पर विद्युत आपूर्ति एवं भ्रष्टाचार (नागरिक एवं प्रशासनिक) ने पर्दा डाल दिया है।

राष्ट्रीय बीज परियोजना भी 1976 में संचालित विश्व बैंक की महत्वाकांक्षी परियोजना थी। विभिन्न चरणों की यह योजना भी जनजागरण के अभाव एवं प्रशासनिक दोषों के कारण सफल न हो सकी। इसी तरह तिलहन एवं दलहन के क्षेत्र में विश्व में अग्रणी भारतीय कृषि भी विकास के समानान्तर न चल सकी। संकर फसल क्रान्ति के द्वारा नकदी फसलों में वृद्धि निःसन्देह दृष्टव्य है तथा कपास एवं गन्ने के उत्पादन ने सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य की नीति से अपने शीर्षस्थ उत्पादन क्षमता को अवश्य प्राप्त किया परन्तु यथार्थ में सामान्य किसान के हाथ सूने ही रहे।

भारत में सहकारी बैंक का विकास सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत 1904 में प्राथमिक कृषि साख समितियों की स्थापना से हुआ। वर्तमान में इन साख समितियों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों की राशि में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। इस सन्दर्भ में केन्द्रीय सहकारी बैंक व राज्य सहकारी बैंकों की भूमिका अति सराहनीय रही। दीर्घकालीन सहकारी साख को ध्यान में रखकर भूमि विकास बैंक की स्थापना की गयी जो किसानों को भूमि खरीदने, जीर्ण ऋण चुकाने, कृषि सुधार एवं विकास तथा भूमि छुड़ाने में मदद करती है। इसी क्रम में चौथी योजनाकाल में भूमि बन्धक बैंक को भूमि विकास बैंक में परिवर्तित कर दिया गया। इसके माध्यम से न केवल कृषि अपितु अन्य सम्बद्ध तन्त्रों तथा मुर्गीपालन, दुग्ध उत्पादन आदि में आशातीत सुधार हुआ, परन्तु विडम्बना है कि इन माध्यमों ने भी बड़े किसानों पर ही अपनी कृपा दृष्टि रखी, फलस्वरूप अपनी प्रशासनिक दुर्बलता के कारण वे यथार्थ से दूर हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन तमाम योजनाओं के सहयोग एवं तकनीकों के विकास के होते हुए भी सामान्य किसान आज अपने जीवन–स्तर में सुधार नहीं कर पा रहे हैं। उत्पादकता के अनेक झण्डे पकड़ने वाले हाथ आज भी क्यों विकलांग हैं? यह विचारणीय है। इस दिशा में सुधार करके ही हम विकास के धरातल को प्राप्त कर सकते हैं तथा छोटी सी भूमि से जुड़ा किसान भी अपनी अपरिहार्य आवश्यकताओं को हस्तगत कर सकता है। इसके लिये निम्न सुझाव लाभप्रद हो सकते हैंरू

1. सर्वप्रथम तो जन–जागरण एवं आत्मचेतना का वह मंच तैयार हो जो सामान्य किसान को उसकी वास्तविक जीवन रेखा दिखा सके। विशेषकर युवाओं में खेतों से जुड़ने के लिये प्रेरक कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए।
2. सामाजिक न्याय के सामान्य ढाँचे को वास्तविक एवं सबल बनाने के प्रयास होने चाहिए।
3. किसानों का प्रतिनिधित्व किसान ही करे तथा कृषि नीतियों के लिये गाँवों से ईमानदारी से जनसमर्थन एकत्रित कर के ही योजना फलीभूत कराने की सोचना चाहिए।
4. सरकारी योजनाओं में प्रशासनिक दोषी की कड़ाई से जाँच हो।
5. पानी का भण्डारण कर समय पर उन क्षेत्रों में पानी दें जहाँ इसकी आवश्यकता हो। नलकूपों को पुनर्चालित कर इसकी समुचित देखरेख हो।

6. सहकारी बैंक नियोजित कृषि विकास कार्यक्रमों के लिये ग्रामीण किसानों को सस्ते ब्याज की दर पर आवश्यकतानुसार अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बैंकों के कुशल सहयोग ही कृषि विकास को मजबूत आधार दे सकती है।
7. ग्रामवासी अपने अधिकार को समझें। स्थानीय निकायों एवं समितियों को कृषि हितों की निष्ठापूर्वक मदद करनी चाहिए।
8. कृषि उत्पादों के अतिरिक्त कुटीर उद्योगों एवं कुक्कुट पालन आदि व्यवसायों को समृद्ध किया जाए। नकद–पूँजी के इन उत्पादों की प्रदर्शनी लगाकर अथवा नजदीकी बाजार उपलब्ध कराकर श्रम का सही मूल्य निर्धारित किया जाए।

निष्कर्ष :– हम यही कह सकते हैं कि भारत की कृषि समस्यएँ चारो तरफ से धिरा हुआ है। यदि हम इन समस्या के लिय कोइ नई योजनाएँ को सही तरह से क्रियान्वयन नहीं करने का प्रयास करते है तो हमारी कृषि अर्थव्यवस्था बुरी तरह से तवाह हो जायगॉ। कृषि विकास एवं ग्राम्य समस्याओं को क्षणिक मानवीय लिप्सा की भट्ठी में झोंकने वाले हाथों को मजबूती से रोका जाए। अन्यथा 'भारत माँ ग्राम्यवासिनी' की भावना का तो नाम मिटेगा ही साथ–साथ हरे आंचल की तरह मानव अस्तित्व भी धुएँ में उड़ जाएगा। इसमें हम सभी की परोक्ष एवं प्रत्यक्ष भूमिका अपेक्षित है।

सर्दभसूची :–

- जागरण जोश
- गूगल हेल्प
- कृषि अर्थशात्र साहित भवन डॉ जयप्रकाश मिश्र

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Trends of Rural- Urban Migration and its impact on urban system in North-Bihar

DR. RAJU KUMAR
Post-Doctoral Research Scholar
University Department of Geography
B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur

ABSTRACT*:*

Human migration means the movement of people from one place to another with the intention of settings in the new locations. And Rural-Urban Migration refers to the migration from Rural to Urban centres for long distance or short. Generally, it is the internal migration. It is a natural outcome of inequalities in the distribution of resources like, Medical facilities, Educational facilities, Scope of employment, Wage differences, Children's future and better Amenities. Rural-Urban migration (Generally male migration) in Bihar, primarily influenced by poverty, unemployment, low agricultural productivity, failure of crops, landlessness, lack of Irrigation facilities and poor education & medical care.

The main objective is to study the trends of Rural-Urban Migration and it's impact on Urban centres of meso level region (North Bihar) under the influence of various types of push and pull factors. The present study is based on secondary data collected from Census office, Books, Journals, Internet and others. The selected meso level study aria is North Bihar situated in the middle Ganga plain, is a agricultural dominated region where about 3/4th of it's total workers engaged in agricultural activities, i.e. live in Rural area. According to Census 2011, the total population of Bihar state is 103804637, in which 92074713 (88.70%) people live in Rural areas, rather according to Census 1951, 1961 and 1971, about 93.53%, 92.81% and 90.50% peoples were lived in Rural areas respectively.

In conclusive way we can say that due to Rural-Urban Migration, the urban population increases which affect the Urban system of North Bihar in it's all circumstances like– Economic system, Administrative system, Educational system, Social system, Traffic system, Sanitation and others.

Keywords: Rural-Urban *Migration, PURA, Urban centre, Unemployment,* landlessness, cultivators

Introduction:

Migration means movement of people from one place to another with the intention of settings in the new location. It is an important component of population change and it is most

difficult to project, because of the uncertainty associated with the decision to change one's place of residence. Migration is the Barometer of changing Socio-economic and Political conditions of concerned places. It is also a sign of wide disparities in economic and social conditions between the origin and destination. Rural-Urban migration in North Bihar, primarily influenced by poverty, Unemployment, low agricultural productivity, failure of crops, landlessness, poor education and medical facilities and others. Due to Rural-Urban migration the Urban centre became over populated which affect the Urban system of North Bihar like educational system, social system, traffic system, administrative system, residential system, sanitation and others. And in the Rural area there is shortage of agricultural labours, so that agricultural system also affected negatively.

Objective of the Study

The main objectives of present paper are-

- To study about trends of Rural-Urban migration in North Bihar.
- To assessment about push and pull factors of from Rural to Urban migration in North Bihar.
- To assessment about the impact of Rural-Urban migration on Urban system of North Bihar.

Hypothesis:

following hypothesis have been formulated-

- The most prone to migrating households (from Rural to Urban) are those whose head are either non-agricultural labour or are involved in some private services.
- The Urban centres of North Bihar became crowded due to Rural-Urban migration.

Research Methodology:

The present paper is mostly based on secondary data as well as some primary data. Primary data is collected by interviewing the peoples and by self observation as well as empirical experiences of the author and secondary data have been collected from census office, books, journals, news paper, internet and others. The collected data have been analysed by different statistical measures and represented by suitable map.

Study Area:

The selected meso level study area is North Bihar, means the region of Bihar state lies north of the river Ganga situated in the middle Ganga plain, is an agricultural dominated region. It extended from 25° 14’ N to 27° 31’ 15” N Latitudes and from 83°50’ E to 88° 17’ 40” E Longitudes. North Bihar encompasses an area of 21 districts of northern Bihar. It is demarcated by Nepal in the North, River Ganga in the South, West Bengal in the East and Uttar Pradesh in the West. According to census 2011 the total area of North Bihar (21Districts) is 53625 Sq. KM. Having total population 65947526.

Migration :-

Human Migration means movement of people from one place to another with the intension of settings in the new location. Migration is one of the three important components of population changes and it is the most complex component of them. It provided an important network for the diffusion of ides and information and indicated symptoms of social and economic change and can be regarded as a human adjustment to economic, environmental and social problems i.e migration is the barometer of changing socio-economic and political condition of the people at the national and international levels, it is also a sign of wide disparities in economic and social conditions between the origin and destination, it is the natural outcome of inequality in the distribution of resourses.

Migration is the component of population change, is most difficult to project, because of the uncertainly associated with the decision to change one's place of residence.

As mentioned above the migration is a very complicated global issue. No one has yet provided any such concept or basis which can be universally in all circumstances or in all situation or in all sense accepted as standard or in all sense accepted as standard criteria applicable at all special units or scales (such as local, regional, national and international) and can really make a perfect definition of migration that can be free from any sort of question.

According to Chandna, R.C. (1998),"Migration is a movement that involves a permanent or semi- permanent change in residence from one settlement to another. Migration in another words, is a physical and social transition and hence difficult to conceptualize. this definition deal mainly with the residential change and physical distance. It does not explain the criteria upon which the status of permanent or semi-permanent change in residence can be defined.

United Nations (1970) recommended that the duration of stay of more than one year with a purpose of job will consider as permanent migration and one year or less than one year as temporary migration. Similarly, if a person remains in another country with no legal identity for a period of one year or less is called refugee or displaced person or transferred person.

From the above, it is clear that different scholars have different approaches about migration, but the common elements as involved in their definitions are : residential change, distance travelled, place of Birth, kind of boundry crossed intension of stay and length of time spent in the new place etc. However the general concept is common.

Type of Migration

A. International Migration :- This refers to change of residence over national Boundaries. i.e. Who moves to different country.

B. Internal Migration :- This refers to a change of residence within national boundaries, such as between states, provinces, cities or municipalities etc.

So that it can also be classified under following heading –

- Rural to Urban Migration
- Urban to Rural Migration
- Inter-Urban Migration
- Intra-Urban Migration
- Rural to Rural Migration

Rural to Urban Migration

Rural to urban migration is a form of so-called internal migration which means a movement of people within a country. It refers to the movement of people from rural to urban areas of a country. This change of Residence is often connected with the migration of labor and career change from primary to secondary or third sector- not necessarily, Tough as it cum refer to the migration of people who are not working in agriculture or farming as well.

Rural to urban migration is an essential component of the economic and social life of the country, so safe migration should be promoted to maximize it's benefits, otherwise it produce regional imbalances and labour shortages.

The percent of urban population in India was only 17 percent of the total population in 1951 is expected to jump around 42.5 percent of the total population by 2025. All this will happen because large numbers of people will leave rural areas in search of better opportunities. In the last 50 years the rural opportunities has decreases from 82.0% to 68.9% and it is estimated that approximately more than two million people are shifting from rural to urban area annually since 2011. According to census 2011, only 11.30% people of Bihar living in urban Areas.

Trends of Rural-Urban Migration in North Bihar

Migration is the natural outcome of deprivation, inequality, poverty and unemployment especially in rural areas. Recent economic growth and faster industrial development along with the growth of urbanization is the major magnetic effect of work that draw people from rural to urban areas. The scope of better employment opportunities, better standard of living, better education, health facilities and other amenities attract the people to settle in urban areas.

Migration in Bihar is common, both within the state and from the state to other parts of the country. In Bihar the vast majority of migration is cyclical labour migration by vulnerable groups. It is found that Rural men migrate for 2-3 months to work which affect the urban area for limited period.

In the light of ongoing changes in rural economy as a whole, the nature and pattern of migration has been also-changing over time. Now the migration varies from daily commuting to some nearby places on the one hand to permanent shift of residence to some distant places on the other, as well as the nature and pattern of Rural urban migration also varies from one to another social group of migrants.

NOTE-

The trends of rural urban migration is analysed on the basis of the primary survey data calleded at two periods of time after a gap of approximately 18 years from randomly selected 6 villages of North Bihar. out of these 6 village, 2 each are from three districts such as Gopalganj, Madhubani and Purnea. The data has been collected during 1981-83 and 1999-2000. During 1999-2000 data collected in 18 villages (including that mentioned 6 villages also) covering a population of more than 38 thousand from more than 6400 households.

Rural- Urban Population : Bihar & India (In Lakh) (1951-2011)

	India					Bihar				
Year	**Total Population**	**Rural Population**	**Urban Population**	**Rural Population in %**	**Urban Population in %**	**Total Population**	**Rural Population**	**Urban Population**	**Rural Population In %**	**Urban Population in %**
1951	3611	2986	625	82.71	17.29	294	275	19	93.53	6.46
1961	4392	3603	789	82.03	17.97	348	323	26	92.81	7.46
1971	5481	4390	1091	80.09	19.91	421	388	33	90.50	9.50
1981	6833	5255	1597	76.69	23.34	523	472	51	90.25	9.75
1991	8463	6287	2176	74.28	25.71	645	556	90	86.20	13.95
2001	10288	7426	2861	72.18	27.81	830	743	87	89.52	10.48
2011	12102	8331	3771	68.84	31.16	1038	921	117	88.70	11.30

Sources : Censes of India 2011

The Census Survey in the sample villages reveled that-

(1) There are more than 13% of total population who migrated for at least two months or more during one years.

(2) There are more than 48% of the households who reported at least one migrant from their family.

(3) The caste composition of the migrating and non migrating households show that Muslim households are the most prone to migration followed by OBC-1 and upper caste households. The least prone to migration are the households belonging to OBC-II, because they are cultivators and busy with the stamp piece of land they have.

Percentage distribution of migrating households and the total households

Caste Group	**Total households in %**	**Migrating households in %**
General	18.98	18.88
BC-II	17.38	15.23
BC-I	23.52	24.94
SC	15.03	13.86
Muslims	25.09	27.1
Total	100	100

Sources : Anup K. Karan : Changing pattern of Migration from Rural Bihar & Calculated by the Author

(4) In case of family the proportion of migrating households in all households & much higher in case of joint families, because of it is easier to release some of their family members for migration.

Percentage of Migrants in different types of family

Types of Family	Total households in %	Migrating households in %
Nuclear	68.71%	61.94%
Joint	26.49%	34.38%
Others	4.8%	3.68%
Total	**100%**	**100%**

Sources : Anup Kumar Karan : Changing Patten of Migration from Rural Bihar and Calculated by the Author

(5) The land structure of the households shows that the proneness to migration is almost same with respective proportions of their share in number of households among all the land classes.

Percentage of Migrants in different Land holder classes

Land Size (In Acres)	Total households in %	Migrating households in %
Landless	41.21	42.17
Up to 1	36.03	36.36
1 to 2.5	12.76	12.52
2.5 to 5	6.84	5.91
5 to 10	2.24	2.19
Above 10	0.92	0.85
Total	**100%**	**100%**

Sources : Anup K. Karan : Changing pattern of migration from Rural Bihar and Calculated by the Author

(6) The proportion of cultivator households is much lower among migrating households the most prone to migrating households are those whose head of the households are either non-agricultural labour or are involved in some private services.

Percentage of Migrants involved in different occupations

Occupation of Head of the Householdes	Total households in %	Migrating households in %
Self employed in Agriculture	34.37	26.72
Agricultural Labour	26.7	26.33
Non-Agricultural Labour	11.38	15.78
Private Service	8.7	14.38
Govt. Service	2.88	3.72
Petty Business	6.68	5.06
Other Occupation	1.63	1.46

Non workers	7.56	6.55
Total	**100**	**100**

Sources : Anup K. Karan : Changing pattern of migration from Rural Bihar and Calculated by the Author

(7) The age group of 15 to 40, which is a potentially most productive and creative age in the life span of the individuals, have maximum migration share.

Percentage of migrants in different Age-groups

Age- Group	Percentage of Migrant
Below-15	2.67
15-25	25.95
25-40	26.04
40-60	13.15
60 and above	2.50
Total	**12.57**

Sources : Anup K. Karan : Changing pattern of migration from Rural Bihar and Calculated by the Author

(8) Based on these two survey (1982-83 and 1999- 2000) it has been estimated that during the intervening period (18 years). The intensity of migration has doubled.

Percentage of Migrating Households and persons. 1982-83 and 1999-2000

Category/Class	Migrating Households in %		Migrating persons in Percentage	
Class	1982-83	1999-2000	1982-83	1999-200
General	35.35	48.90	10.24	15.20
BC-II	18.18	47.37	4.02	11.74
BC-I	31.03	53.21	8.97	12.33
SC	22.22	45.12	5.98	12.96
Muslim	26.00	50.00	5.26	12.42

Social Class

Agricultural labour	23.53	48.08	5.99	11.39
Peasant	29.24	38.73	7.03	12.41
Land Lord	35.59	52.69	10.83	16.90
Non- Agricultural	25.00	57.43	10.75	15.66
District's total (Gopalganj, Madhubani, Purnea)				
	27.69	48.63	7.49	13.42

Sources : Anup K. Karan : Changing pattern of migration from Rural Bihar and Calculated by the Author

(9) Three fourth of the migrants migrated in search of employment or for better wage.

Percentage distribution of migrants for different time period by reasons of migration.

Reasons of Migration	Up to 3 months	4-6 months	6-9 months	More than 9 months	Total
In search of employment	42.63	42.74	44.85	31.00	38.69
For better wages	49.84	49.67	33.22	27.57	38.23
Self employment	0.94	1.71	2.16	3.92	2.25
Study	0.94	0.19	0.33	1.06	0.65
Tension in Village	0.09	0.66	3.92	9.26	1.78
Follow family	1.88	1.90	6.48	3.18	3.20
Gov job transfer	2.19	3.32	10.96	27.16	13.55
Others	1.57	0.38	1.33	2.20	1.35
Total	100	100	100	100	100

Sources : Anup K. Karan : Changing pattern of migration from Rural Bihar and Calculated by the Author

(10) More than one fourth of the migrants from rural north Bihar goes to Delhi in search of employment and only 5.68% to the urban centres of Bihar.

Percentage Distribution of Migrants by State/ city

State/city of destination	Gopalganj	Madhubani	Purnea	Total
Bihar	4.98	9.04	2.24	5.68
Delhi	23.96	22.21	29.54	25.26
Gujrat	5.79	2.46	0.08	2.34
Punjab & Hariyana	9.56	15.12	46.89	25.38
Bombay	8.48	5.79	0.58	4.50
Uttar Pradesh	6.73	6.51	4.23	5.74
Others	40.50	38.87	16.44	31.1

Sources : Anup K. Karan : Changing pattern of migration from Rural Bihar and Calculated by the Author

Causes of Rural to Urban Migration in North Bihar

There are numerous causes of migration from rural to urban centres and vice- versa or from one region to another. Notable among these are-

- ⇒ Flood
- ⇒ Lack of employment in rural areas.
- ⇒ Workers got less wages in rural areas.
- ⇒ Social conflicts and social tension,
- ⇒ Inequitable distribution of benefits of economic development
- ⇒ Residential satisfaction
- ⇒ For the purpose of higher education

- ⇒ Friend and family influences.
- ⇒ Income maximization
- ⇒ Law and order situation
- ⇒ Inequalities in the available social and economic opportunities and other amenities of life between groups of people and or sectors.
- ⇒ Govt. job or transfer in urban areas.
- ⇒ For the purpose of self employment
- ⇒ The growing population pressure on natural sources.
- ⇒ Decreasing per capita availability of Land.

Rural Urban Migration, Its impact on urban system of North Bihar :-

Migration aids in urbanization, Thomson also viewed urbanization in the form of migration. The UN also estimated that about 60% of the urban growth in developing counties is due to the rate of natural increases of urban areas and the remaining 40% is due to migration i.e Migration is the chief mechanism for the urban centres of Bihar. Although only 6% migrants from rural North Bihar goes to urban centres of Bihar, however it affect the urban system of North Bihar as follows.

1. Cities have became unmanageable because of uncontrolled migration of Rural population to urban areas, Large cities of Bihar have now ceased to be friendly places for living maximum Rural population coming to urban areas earn their livelihoods by rickshaw pulling, vendors, roadside mobile shops. Such activities leads to problem of traffic, congestion and sometimes add to the crime rates.

2. Urban Growth which means that towns and cities are spatially expanding. The cover an increasing area of land for hansing facilities for new incomers, so that size of town increases.

3. People think that they will have better opportunities to work in cities, but cities are not able to absorb the large influx of new residents in the proper way, this leads to the association of rural urban migration with problems like poverty, insufficient sanitary conditions, sub-standard housing, growth of slums.

4. There are water and electricity shortage in migrant housing

5. Problems rises in the provision of education of migrant children.

6. Due to rural to urban migration, urban area become over populated, causing traffic problems less place to park etc.

7. The property prices will increases due to the popularity of the city.

8. Due to over crowding, garbage from inhabitants lead unclean city.

9. Due to over population in cities, it is argue that high costs of living is also a serious problems.

10. Due to over population, various types of pollution also increases.

11. Administrative system is so effected that no any work is done at time.

12. Educational institution is also very crowded so it become very costly.

13. Entertainment amenities is also affected, and given no joy.

14. There is lack of proper supply of fresh water to all people.

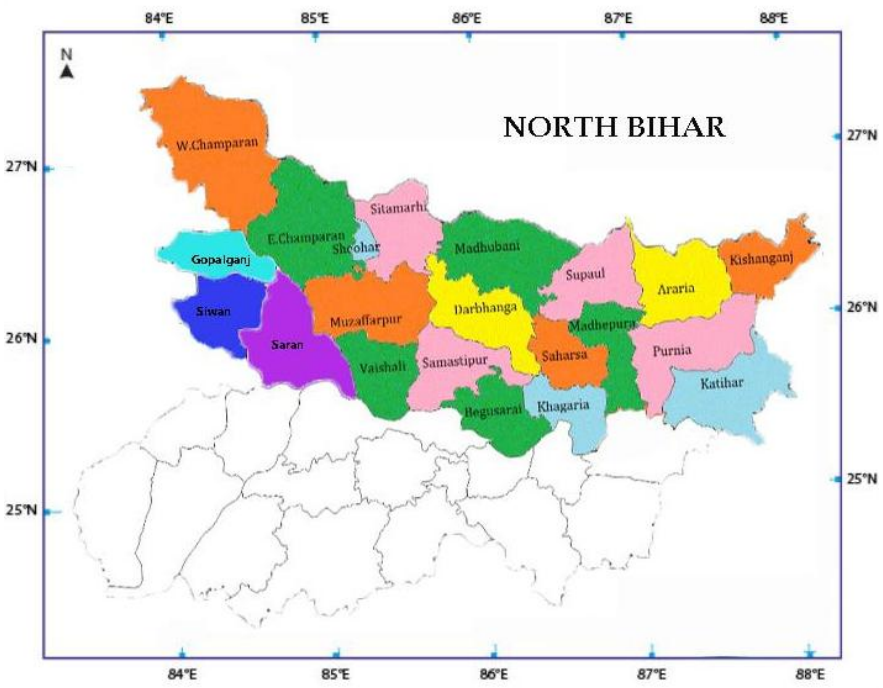

Rural- Urban Migration, its impact on rural areas of North Bihar

1. Migration to urban areas results in rural depopulation. As most of the productive work forces leaves rural areas in search of better opportunities, the rural areas are left behind with the old and the unable.

2. Agriculture in Bihar is characterized by small land holdings where cultivation depend upon manual work and due to migration there is shortage of labour affect the productivity of crops.

3. Income sent here in the form of monetary assistance can help in paying the debts, incrasing food security.

4. Due to migration various types of culture going to disappear.
5. Social cohesions become weaken.
6. Lack of emotions among society & relatives.
7. In the absence of Agricultural labour, farmers try to use modern technology.

Repercussion of Migration on Rural migrants.

It is import to study the repercussion of migration on the rural migrants population of india, because Indian economy is still agrarian in nature, as well as the proportion of rural migration have in higher share in india. The study helps in understanding the deprived status of rural migrant after their migration.

The primary data, carried out during 2012 in Kanpur Nagar districts show that nearly three-fifth migrant population of the district are facing the problems of low income, unemployment electricity, drinking water and toilet, sanitation, housing, hungry etc.

The data shows that 18% of the total sampled population (migrants) have no bad habits, but rest of all have addiction of chewing gutkha, smoking, drinking, Tobacco, Drugs (in the form of chares and Ganja by filling in the cigrate) and gambling.

Suggestion for Checking Rural Migration

Rural migration is still largely a survival or a subsistence strategy. Survival strategy indicates that the prevalent economic and social conditions force the rural people to migrate for a longer time in order to stay alive. The second reason for migration is a short term measure and it is mainly due to supplement income in order to fill the gap of seasonal employment therefore the following strategies can be employed effectively to check migration.

Providing urban Amenities in Rural Areas (PURA)

Under PURA, Amenities to be provided for rural infrastructure include drinking water facilities, sanitation, sewerage, village streets, drainage, soil waste management, skill development etc. which act as checking element of rural migration.

Providing suitable wage employment opportunities

Rural population, If provided with suitable livelihood opportunities will not go for migration. This has been authenticated by various research studies involving MNAREGA, which provide 100 days of work to one of each family in the rural areas which cheaking the rural migration

Making Agriculture Profitable

Agriculture as a major livelihood activity is now being received as a failure due to the rising cost of cultivation and a declining return which making it non profitable, as such it is necessary that agriculture made more profitable by suitable interventions.

Conclusion

Due to Rural-Urban Migration, the urban population increases which affect the urban system of Bihar in it's all circumstances like- economics system, administrative system, Educational system, social system, Traffic system, sanitation and others. In conclusive way, we can say that due to population pressure on agriculture, low agricultural productivity, Landlessness, Unemployment, Poor education & medical care and others, the rate of Rural to urban migration is increases with time and due to increasing Rural to Urban migration the urban centres becoming over populated, so that urban system affected negatively .

REFERENCES:

- Kumar, Nandan &Bhagat, R.B. (2012); Out migration from Bihar: Cause and consequences. Journal of social & Economic studies. Vol. XXII, No. 2, July-December 2012.
- Anup, K. Karan; Changing pattern of migration from Rural Bihar. Fellow, Institute for Human Development, New Delhi.
- Chandna, R.C. (2012); Geography of Population, concepts, determinants and patterns. Kalyani publishers, New Delhi.
- Razi, Shagun (2014); Rural distress and Rural migration. Kurukshetra, Vol. 62, p. 3-6.
- Kumar, Praveen (2014); Consequences of Rural migration. Kurukshetra, Vol. 62, p. 7-10.
- Mohapatra, Kumar Amiya (2014); Rural-Urban migration in India- A critical review. Kurukshetra, Vol. 62, p. 18-21.
- Sinha, V.N.P., Nazim, M., Ahmad, P.Firoz (2013); Bihar: Land, People and Economy. Rajesh publication, New Delhi.
- Census of India 2001& 2011.
- Economic survey of Bihar, Finance department, Patna, Bihar.
- NSSO 64th Round 2007.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

आज के समाज में मीड़िया की भूमिका

डॉ0 श्वेता सिंह

किसी भी लोकतंत्र की सफलता, वहाँ की शासनव्यवस्था की निष्पक्षपता और समाज में धटित हो रही समस्त घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने का सबसे सुगम और सरल माध्यम वहाँ पर संचाालित "मीडिया" से प्राप्त होती है। "मीड़िया" सिर्फ एक शब्द नहीं है बल्कि सिर्फ एक पारदर्शिता निष्पक्षता संपादन अभिव्यक्ति की आजादी वंचित वर्ग की आवाज शोषित और कमजोर वर्ग की स्थिती का विश्लेषक शासक वर्गों का उचित मूल्याकंन करने वाली वह मशाल है जिससे हम वास्तविक रूप में इस समाज में धारित घटनाओं को देखते है, साथ ही साथ आलोचना और सहयोग की भावना के साथ उचित मार्गदर्शन भी देते हैं मीड़िया की भूमिका का सहज और सच्ची जरूरत इस बात से ही लग जाती है कि इसे किसी भी लोकतंत्र या शासनव्यवस्था में चौथे स्तम्भ के रूप में वर्णित किया गया है। इसकी भूमिका सिर्फ आलोचनात्मक नहीं होती है। बल्कि यह पथपर्दशक और मार्गदर्शक के रूप में भी काम करती है। अपनी भूमिका के निर्वाहन और उचित संचालन में शासक वर्ग कों मीड़िया समय –समय पर सलाहकार और आलोचक दोनो रूप में अपना सहयोग देती है। समान्यतया जब हम मीड़िया की भूमिका की बात करते है तो हमारा तात्पर्य सिर्फ टी0वी0 और समाचारपत्र से होता है परन्तु वर्तमान समय में मीड़िया सिर्फ प्रिंट एवं इलेक्ट्रोनिक तक ही नहीं सीमित नहीं रह गया है। बल्कि यह क्षेत्र social media twitter facebook जैसे अन्य माध्यमों से भी अपनी प्रासंगिता और निष्पक्षता का प्रचार प्रसाार कर रहा है। वर्तमान समय में मीड़िया का भूमिका का महत्ता इस बार से परिलक्षित होती है। कि अगर शासक वर्ग के जनविरोधी कार्यो को मिड़िया द्वारा कटु आलोचनाओं का समना करने मात्र से शासक वर्ग या सत्ताधारी वर्ग को अपने कदम वापस लेने पड़ते है। मीड़िया का स्वतंत्र और निष्पक्ष प्रस्तुतीकरण न सिर्फ सत्य को दिखाता है। बल्कि उसके गुणात्मक सुधार का मार्ग भी प्रस्तुत करती है।

वर्तमान समय मीड़िया की महत्ता और उसकी भूमिका निम्न रूपों में पूर्ण हो जाती हैः–

1 सत्यात्मक तथ्यों का प्रस्तुतिकरणः–

वर्तमान समय में मीड़िया का भूमिका "सत्य" से आमजन को अवगत कराना है। वह सत्य किसी भी रूप में भेद –भाव पूर्ण नहीं होना चाहिए क्योंकि प्राचीन समय से ही यह कथन सत्य परेशान हो सकता है। किन्तु पराजित नहीं की भावना से जुड़ा हों, मीड़िया से वर्तमान समय में यह अपेक्षा कि जाती है। कि वह जनकल्याण विकासात्मक कार्यों से सम्बन्धित मुद्दो को प्रमुखता से प्रर्दशित करें नकारात्मक एवं छदम सुचनाओं कि तथ्यात्मक जाँच करने के पश्चात ही उसे समाज के सामने प्रस्तुत

करें। साथ ही साथ अनावश्यक और असवेंदनशील समाज में वैमानश्यता फैलाने वाली सुचनाओं कों निरस्त करें, शासक वर्ग कि अनपेक्षित प्रशांसा नहीं करें भ्रम और हिंसात्मक खबरों का तिरस्कार करें। मिड़िया से यह हमेशा अपेक्षा कि जाती है। कि वह सत्य का प्रदर्शन करें क्योंकि सत्य का प्रस्तुतिकरण ही मीड़िया का प्रथम और अंतिक कर्तव्य है। वर्तमान समय में और वर्तमान समय में मीड़िया की भूमिका इस लिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि आज के भाग–दौड़ और आधुनिक जीवन शैली के कारण सभी लोग काफी व्यस्त हो गए है। जिसके कारण सत्यता और तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने की समय किसी के पास नहीं है, असत्य और अपूर्ण खबरों के कारण समाज मे वैमनस्यता और कदाचार की संभावना रहती है मीड़िया की भूमिका न सिर्फ सूचनाओं का प्रसार करने में महत्वपूर्ण है बल्कि यह आमजन की भावनाओं को शासक वर्ग तक पहुचाने वाला भी होता है सत्यता की प्रस्तुती और उसकी सुरक्षा वर्तमान समय में मीड़िया की सबसे बड़ी कार्यशील क्षमताओं में महत्वपूर्ण और प्राशंगिक है।

जनकल्याण और विकास कार्यों में सहयोगः–

वर्तमान समय में मीड़िया की भूमिका सिर्फ सुचनाओं के आदान प्रदान तक सीमित न होकर जनकल्याण और विकासात्मक कार्यो में भी महत्वपूर्ण है। मीड़िया के सहयोग से जनकल्याण से जुड़े मुद्दे और अन्य वांछित आवश्यकताओं को शासक वर्ग तक पहुँचाया जाना चाहिए क्योंकि आमजन के पास इतने संसाधन उपलब्ध नहीं होते है, समान्यता वंचित वर्ग अपनी वर्तमान दुर्दशा और अपनी जीवनस्तर को अपने भाग्य की नियति मानकर उसे अभिशाप के रूप में स्वीकार कर लेता`है। परन्तु मिड़िया का कर्तव्य उस शोषित और वांचित वर्ग की अकांक्षाओं और जरूरतों को सत्ताधारी वर्ग तक पहुँचाने वाला होना चाहिए क्योंकि किसी भी सरकारी योजना का सफलता तभी मानी जाएगी जब उसके जनकल्याणकारी योजनाओं का लाभ समाज के अंतिक व्यक्ति तक पहुंच सकें। सरकारी योजनाओं से जुड़े सम्पूर्ण सुचनाओं का आदान प्रदान सम्बंधित व्यक्तियों तक हो सकें और उसके सम्पूर्ण समस्याओं का निष्पादन भी ससमय हो सकें इसमें वर्तमान परिपेक्ष्य मीड़िया की सराहनिय भूमिका होनी चाहिए। जनकल्याण से जुड़ी समस्त सूचना और अन्य कार्यो के उचित निष्पादन और समस्याओं के समाधान में वर्तमान समय में मीडिया की भूमिका सराहनीय और प्रगतिशील पथ प्रदर्शक की हानी चाहिए।

भ्रष्टाचार और अनैतिक कार्यों की रिपोर्टिग :–

वर्तमान समय में मीडिया की भूमिका सिर्फ सहयोगात्मक न होकर आलोचनात्मक भी हानी चाहिए मीडिया सतावर्ग और उसके सहयोगी के जनकल्याण योजनाओं के प्रचारक के रूप में अगर अपनी भूमिका का निर्वहण करे तो साथ ही साथ वह समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनैतिक कार्यो की भी ससमय और निष्पक्ष प्रस्तुतीकरण करें, भ्रष्टाचार और उससे संबंधित सभी मुद्दो का उचित विश्लेषण, तथ्यों और उपलब्ध साक्ष्यों की सत्यता की जाँच , समाज और राष्ट्र पर उससे होने वाले दुष्परिणामों की उचित विवेचन वर्तमान समय में मीडिया के कार्यों के फेहरिस्त मे उचित स्थान रखता है। भ्रष्टाचार से संबंधित खबरों की सत्यता और उसके संपादन में मीडिया ने विगत दशक में काफी सराहनीय कार्य किया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि सताधारी और अधिकारी वर्गो से संबंधित क्रियाकलापों में

अभूतपूर्व सुधार आया है। भ्रष्टाचार से जुड़े मामलों में हाल के वर्षों में काफी कमी आयी है और उद्रभेदन के पश्चात निष्पक्ष रूप से उनके ऊपर कार्यवाही भी की गयी है। मीडिया की सक्रियता और उसके उदभेदन के कारण भ्रष्टाचारियों और उनसे संबद्ध कतिपय व्यक्तियों में भय का वातावरण पैदा हुआ है, इसके परिणाम यह हुआ है कि जनकल्याण से जुड़ी योजनाओं में गुणात्मक सुधार समय पर योजनाओं का पूर्ण हाना, जनता को संबंधित कार्य से जुड़ी समस्त सुचाओं का अदान प्रदान और अन्य रूपों में पारदश्रिंता आयी है। अतः निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि मीडिया की सक्रिय भूमिका और निष्पक्ष और सत्यता से संबंधित खबरों के कारण ही समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार रूपी कुनीति और व्याभिचार में गुणोतर कमी लायी गयी है। इस निष्पक्ष और व्यापक भूमिका के कारण मीडिया हाउसों और समाचार पत्रों को निःसंदेह हमारी ओर से सराहना प्रदान की जानी चाहिए।

आधुनिकीकरण और प्रगतिशील सूचनाओं का आदान–प्रदान :–

वर्तमान विश्व प्रगतिशील और आधुनिकीकरण की अवधारणा के साथ आगे बढ़ रहा है,इस आधुनिकीकरण से संबंधित सुचनाओं के आदान–प्रदान में मीडिया की सराहनीय और पथ–प्रदर्शक की भूमिका रही है। आज के बदलते सामाजिक, आर्थिक और तकनीकि परिवेश में समस्त विष्व समाज में क्षण–प्रतिक्षण घटित हो रही घटनाओं और आविष्कारों से संबंधित सूचना मीडिया के माध्यम से युवावर्ग व्यापारियों और बुद्धिजीवियों मिल रही है जिसके कारण Social Media और समाचार प्रसार के माध्यमों से सभी लोग लाभान्वित हो रहे है। आज मीडिया और उसके संसाधनों के उचित उपयोग के कारण छात्र ONLINE शिक्षा ग्रहण कर रहे है, विश्व के उत्कृष्ठ शिक्षकों और उच्च विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर रहें हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों से रोजगारोन्मुखी शिक्षा का जानकोरी शाधपत्रों का अध्ययन और उत्कृष्ठ शिक्षकों का सान्ज्यि उन्हें प्राप्त हो रहा है। व्यापारियों के व्यापार के प्रचार प्रसार और नए गुणवताा पूर्ण उत्पादों के चयन में मीडिया द्वारा प्रदत्त सुचनाओं की प्रमुख भूमिका रही है। आज मीडिया के संसाधनों का प्रयोग करके विश्व की सभी नामी कंपनियाँ यथा AMAZON, FLIPKART, RELIANCE, BAJAJ जैसी कंपनियाँ घर–घर अपने उत्पादों को पहुँचा रही है। आज Social Media के माध्यमों का उपयोग करके हम FACEBOOK, TWITER, WHAT'S APP, SKYPE, GOOGLE के माध्यम से घर बैठे कही से भी किसी भी व्यक्ति से संवाद कर सकते है। आग मीडिया के माध्यम से हम किसी भी तरह की सूचना , तत्क्षण प्राप्त कर सकते है। आज Google Platform के माध्यम से हम सभी क्षेत्र. की सभी सुचनाओं को प्राप्त कर सकते है। आज Corona Virus उत्पन्न स्थिति में हम मीडिया संसाधनों के माध्यम से विश्व में हो रही घटनाओं और चिकित्सा क्षेत्र की प्रगति की निरंतर जानकारी प्राप्त कर रहे है। छात्र सामाजिक दूरी का अनुपालन करते हुए ONLINE CLASS कर रहे हैं, व्यापरी वर्ग ONLINE व्यापार कर पा रहे है। इन सभी तथ्यों के विश्लेषण और विवेचना के आधार पर यह निःसंदेह कहा जा सकता है वर्तमान समय में मीडिया की भूमिका सूचनाओं के आदान प्रदान के साथ–साथ व्यापरिक और शिक्षा के गुणात्मक सुधार में सराहनीय और अकल्पनीय है। मीडिया के सहयोगात्मक और सकारात्मक आदान प्रदान करने की क्षमता और निष्पक्ष संपादिक्ता के कारण इसकी सार्थेकता और उपयोगिता हमेशा बनी रहेगी।

तकनीकि ज्ञान के प्रचार–प्रसार में सहायकः–

वर्तमान समय में मीडिया की भूमिका तकनीकि ज्ञान के विस्तार में महत्वपूर्ण है, आज मीडिया के सहयोगात्मक भूमिका के कारण संचार के समस्त माध्यमों के उपयोग के कारण आज समस्त विश्व एक कमरे में सिमट कर रह गया है। आज संचार माध्यमों के कारण हम विश्व के किसी भी कोने में संपर्क स्थापित कर सकते हैं, ONLINE सूचनाओं का आदान–प्रदान E-Mail के माध्यम से तुरन्त Delievry Google Pay, Phone Pay etc के द्वारा तुरंत भुगतान की सुविधा, ये सभी संबंधित और वर्णित तथ्यों के द्वारा यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि आधुनिक समाज में मीडिया की भूमिका अपरिहार्य है।

अतः वर्तमान परिवेश और सामाजिक वातावरण में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मीडिया की भूमिका वर्तमान में उस प्रकाश स्तम्भ की तरह है जिसकी चिर रोशनी में समाज का विकास, संघ और राज्यों की कर्तव्यपरायणता छात्रों का उत्कर्ष और उत्तरोत्तर प्रगति व्यापर और खेल की निरन्तर प्रगति और समाज के मूल्यों के रक्षा सन्निहित है। मीडिया ने अपने अतुलनीय योगदान और सहभागिता से अपनी निष्ठा वैचारिक संवेग को न सिर्फ जीवित रखा है अपितु कर्त्तव्य परायणता की वह गाथा रचित की है जिससे न सिर्फ शासक वर्ग बल्कि वंचित शोशित कामगार और युवा वर्ग लाभान्वित हो रहे हैं साथ ही साथ संपन्न और संभ्रान्त वर्ग भी लाभान्वित हो रहे हैं। मीडिया की भूमिका न सिर्फ आज के परिवेश में बल्कि आने वाले योगो –योगो तक अपरिहार्य बनी रहेगी ।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

कबीर की भाषा

जितेन्द्र कुमार

(शोधार्थी) बी0आर0ए0बी0यू0 मुजफ्फरपुर
ग्राम– गहिरी, पो0– विक्टोरिया मिशन,
थाना– नौतन, जिला– प0 चम्पारण

कबीर की भाषा निश्चय ही एक मिश्रित भाषा है। इसमें उत्तरी भारत की प्रायः सभी भाषाओं के प्रयोग मिलते हैं। भाषा फारसीपन की छाया है।

कबीर को अपनी मातृभाषा की ज्ञात शब्दावली समर्थ अभिव्यक्ति के लिए असमर्थ प्रतीत हुई। कबीर के समय में भाषा कुछ अस्त–व्यस्त रूप में थी। विचार, भाव और अनुभूति की ओर अधिक था। उन्होंन लिखाः–

"बोली हमारी पूरबी, हमें लखे नहिं कोय।
हमको तो सोई लखै जो धुर पूरब का होय"

उन्होंने आगे कहा हैः

सोबत थें तब जागा।"

अत्यत्र भी उन्होंने लिखा हैः

"पूरब दिसा हंस गति होई
हे समीप सन्धि बूझे कोई"

कबीर ने निर्गुण ब्रह्म का सगूणकरण वर्णन प्रतीकों द्वारा किया है। प्रतीक पद्धति अति प्रापे हैं। वृहदारण्यकोपनिषद में मूर्त्त प्रतीकों का वर्णन मिलता है।

कबीर के समय में अवधी प्रदेश का पूर्वी भाग (जौनपुर) सूफी संतों का बहुत बड़ा केन्द्र था और इस प्रदेश की साहित्यिक परंपराओं से प्रभावित होकर सूफी संतों ने चौपाई, दोहा और गेय पदों में पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत कर दी थी। कबीर दस प्रदेश के सूफियों से पूर्णतः परिचित थे और इनके लिए मुसलमान सूफी संतों की भाषा–परंपरा से अपरिचित होना असंभव था।

सहज तो यह हे कि वेदान्त तत्व (ब्रह्मजीवक्य) और आध्यात्मिक मिलन– वियोग का जीतना भाव–परक, सुक्ष्म और प्रभावशाली वर्णन कबीर के काव्य में हुआ है, इतना उच्च कोटि के संस्कृत और फारसी के आध्यात्मिक साहित्य में नहीं।

भाषा की दृष्टि से कबीर सच्चे लोकनायक थे। जैसा कि सभी सुधी समालोचको ने माना है। उन्होंने अपनी बात लोकभाषा में कही है। उनकी भाषा का निर्माण इस विस्तृत भू–भाग में हुआ था जो पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में राजस्थान, पंजाब तक फैला हुआ था।

उलटवासियों– जैसे कबीर के व्यक्तित्व में फक्कड़पन कबीर के कवि–कर्म में भी है। उलटवासी का ध्वनि सम्प्रदाय के अनुसार व्युत्पतिलभ्य अर्थ है, वाँस को उलटा कर देना। बौद्ध ग्रंथों में ब्रह्मणों के धर्म को अंधवेणु अर्थात् अंधों को बाँस की उपमा दी गई है। ऐसा अर्थ इसलिए लिया गया है कि सब अंधे बाँस को पकड़े एक–दूसरे के पीछे अन्धानुसरण करते चलते हैं। जिस बाँस को पकड़े अंधे पंक्तिबद्ध हो कर चले जा रहे हैं उसे उलट देने से वे हड़बड़ायेंगे और मार्ग खोजने को बाध्य होंगे। उलटबाँसियों में वही होता है।

परंतु कबीर का केन्द्रीय विचार–भक्ति था। कबीरदास ने उसी अंश पर जोर दिया है जो सर्व–साधारण की समझ के भीतर हैः

हमारे राम रहीम करीम,
कैसे अलह राम सति सोई
बिसमिल मेटि विसंभर की,
और न दूजा कोई।

उनके कुछ विचार प्राचीन दीर्घ–परंपरा की देन है। उन्होंने पुरानी परंपरा से महान आदर्श लिया है। कबीरदास का पाठक जानता है कि उनके पदों में उसे कोई अन्य साधारण बात मिलती है जो सिद्धों और योगियों की अक्खड़ता भी उक्त्यिों में नहीं है जो वेदान्तियों के तक्र–कक्रश ग्रंथों में नही है।

कबीर की रचनाओं में कहीं भी थोथा तर्क नहीं है।

"भक्ति द्रविड़ उपजी, लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने, सप्तदीप–नवखण्ड।"

कबीर की भक्ति–भावना और साधना में शब्दों का कोश प्रदर्शन नहीं है।

"खलक सब नाम अपने को बहत सिर पटकता है,
हमनगुरू नाम सांचा है हमन दुनिया से यारी क्या।"

कबीर भाषा को बहते नीर के समान सर्वजन–सुलभ मानते थे। उनकी भाषा बेमेल खिचड़ी नहीं है, अपितु समस्त उत्तर भारत के जन मानस का प्रतिनिधित्व करती है।

"बीजक के संदर्भ में डॉ0 रामरतन भटनागर की यह खोज महत्वपर्ण है परंतु फिर भी, कड़ी आलोचना के बाद भी, "बीजक" का एक बड़ा भाग ऐसा बच सकता है जो निस्संदेह कबीर की विचारधारा का प्रतिनिधित्व कर सकता है। यह दूसरी बात है कि उसमें पाठ भेद हो , या मौखिक रूप से चलने के कारण उसमें भाषा या भाव संबंधी कुछ नये संस्कार आ गये हों।"

सूफियों के प्रति भी बीजककर्त्ता कबीर सहिष्णु नहीं दिखाते। कबीर के काव्य में कोई व्यक्तिवादी आदर्श, नहीं समष्टिवादी आदी आदर्श नहीं, कोई विशिष्ट काव्य चेतना नहीं। उन्होंने काव्य को अमृत रूपवाणी की अभिव्यक्ति माना। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी कवित्व–शक्ति के संदर्भ में बड़ी सटीक बात लिखी हैः

"यद्यपि कबीर ने काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस नहीं इकट्ठा हुआ है।"

कबीर ग्रंथावली की एक साखी से प्रतलीत होता है कि कबीर और अर्थ के तालमेल की अनिवार्यता को मान्यता देते हैः

"सोई आखर सोई बैन, जन ज ूजुवा पवंत।

कोई एक मेले लवनि, अमी रसाइन हंत।"

उनके काव्य का कोई व्यवस्थित रूप नहीं है परंतु वह अमृतरतायन है।

"आज कि कज्हि कि पचेदिनल, जंगल होगा बास।

उपरि उपरि फिरहिंगे, छोर पंरते घात।"

उन्होंने रूपक, अन्योक्ति, समासाक्ति, विशेषसेक्ति, उत्प्रेक्षा, उपमा, विभावना अप्रस्तुत योजना, ठेठ शब्दावली आदि प्रयुक्त की। डॉ0 पारस नाथ तिवारी का मत स्वीकार करने योग्य है।

"जो संजीदगी उनके रूपकों में है वह उनके पूर्ववर्त्ती किसी भी हिन्दी कवि की रचना में नहीं दिखलाई पड़ती।"

भाषा के प्रति कबीरका कोई आदर्शवादी दृष्टिकोण नहीं या ठेठ भाषा के प्रति कोई घृणापूर्ण दृष्टिकोण नहीं है। भाषा के प्रयोग में उनकी विकसोन्मुख चेतना, ओज, शक्ति, मार्दव, सौन्दर्य, भव्यता, विचारों का आलोक, औदात्य, सजीवता, गरिमा, शक्ति, शोभा, त्वर और व्यंजनों की मथुर योजना सहज–स्वाभाविक अभिव्यंजना को कबीर ने सम्मानपूर्वक अपनाया। ऐसी भाषा उनकी स्वस्थ मानसिक प्रवृत्ति और विकासवादी मत सिद्ध करती है। बीजक–बीजककार भ्रामक भक्ति के प्रति सचेत रहने की सलाह देते हैं अनेक देवताओं के प्रति भक्ति–साधना विफल हो चुकी है । अस्तु बीजकार निष्कर्ष पर पहुँचते हैंः "कबीर और जाने नहीं, नाम नाम की आस।"

"बीजक के टीककार विचारदास शास्त्री का मत हैः "कबीर साहब ने मुक्ति का साक्षात्, साधन निर्दिशेष आत्मतत्व–ज्ञान को ही मानना है।"

कबीरदास ने अलवासियों के प्रतिकों का सहारा लिया है परंतु गोपनीयता रखने के लिए नहीं अपितु भावना को मूर्त्त दिया है, कुतूहल और विस्मय उत्पन्न किया है।

कबीर की उलटवासियों अलंकार प्रधान, अद्भूत रसपूर्ण, अद्भूत प्रधान, प्रतीक मूलक मानी गई है। कबीर ने अलंकारों का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था। वे काव्य–शास्त्र की बारीकियों से अनभिज्ञ थे।

रमैणी में राग सहे, सतपदी, बड़ी अष्ठपरी, दुपदी, अस्पदी, चौपदी आदि रमणी का प्रयोग हुआ है।

भाषा में क्लिष्टता है तथापि प्रांजलता और प्रसाद गुण है। इस में साहित्यिक सौन्दर्य निखार के साथ आया है। कबीर कहते हैं कि मुसलमान बहुत धर्म की दुहाई देते हैं, गर्व करते हैं, स्वार्थ पूर्त्ति के लिए गौ तक की हत्या कर देते हैं।

कबीर के "बीजक" में ही चांचर, बेलि, बिरहुला, हिंडोला, कहरा, बसंत, विप्रमतीसी आदि अनेक काव्य रूप में पाये जाते हैं। जहाँ तक भाषा की शक्ति का प्रश्न है, उन्होंने अरूप, अलख और अगोचनर ब्रह्म को वाणी का विषय बनाया है। उसे अभिधा द्वारा व्यक्त करना संभव नहीं। कबीर ने उसका ध्वनन किया है। यह ध्वनि या व्यंजना ही काव्य की सबसे बड़ी शक्ति है। डॉ0 रामकुमार वर्मा के शब्दों में "वे

स्पष्ट रूप से अपने भाव कहने में असमर्थ हो जाते हैं, क्योंकि उनका भाव–सौन्दर्य इतना अधिक हो जाता है कि वे साधारण शब्दों में उसे व्यक्त नहीं कर सकते। उनका भावोन्मुख इतना तेज होता है कि बोलववाल के साधारण शब्द भी उसका बौद्ध सम्हाल नहीं पाते।"

उदाहरणार्थः

"हवा होत होइ नहि जाना।
जबहि होई तबै मन माना।
हे तो सही लखे जो कोई
तब ओही ओहु एहु न होई।"

कबीर का चित्त आसक्ति, अनासक्ति का अवस्धान है। उनकी धारणा है कि हरि के अभ्यंतर निवास के लिए किस में विषयसक्ति का अभाव होना चाहिए।

"बिखै पियारी प्रीतिसो, तब हरि अंतर नाहि।
जब अंतरि हरि जो बसै, तब बिखिया सो चित नाहिं।"

योगदर्शन में भी चित का विस्तृत अर्थ निर्दिष्ट किया गया है। पतंजलि ने लिखा हैः

"योगश्चितवृतिनिरोध।"

जिस प्रकार याज्ञवल्क्य ने जनक को अभयदान दिया उसी प्रकार सद्गुरू ने कबीर को भीः

"चेतन चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हीं धरि।
निर्भय होई निसंक भजि, केवल कहै कबीर।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैंः "रमैनियाँ चौपाई छन्द में लिखी गयी हैं। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी हैं जिनके अंत में एक–एक साखी उद्धत की गई है।" साखियों में "भज्" शब्द 23 बार आये हैं, पदों में 57 बार और रमैनियों में 4 बार। यहाँ ज्ञान भक्ति का ज्ञान है। साखियों में "भजन" शब्द की भी बारंबरता है और यह औचित्यपूर्ण शब्द है। यहाँ उनकी उक्तियाँ वानुभूति, योगसाधना की परिणति है। यहाँ योगपरक उक्तियों में भक्ति का आशय निर्दिष्ट है। बाह्याचरण की शुद्धता, सामाजिक नैतिकता, मातृभाव, सम्यक वाणी के व्यवहार, सात्विकता, उदारता, दूसरों के प्रति सही दृष्टि के प्रति सही दृष्टिकोण, कामिक शु द्धता, भगवान के साथ भक्तिपूर्ण तादात्म्य, गुरू के प्रति आदर, योगाश्यास, सत्संग, उदारतापूर्ण क्षमा, दया, सहानुभूति, भगवान की असीम दया, योगानन्द, मानवतावादी, भगवान के प्रति शरणागीत और आत्मसमर्पण वैचारिक स्वतंत्रता, सत्य की घोषणा की निर्भयता, भक्ति की निष्कामता, मानसिक अनुशासन, आत्मीयता, ईश्वरीय कृपा में आस्था, भक्ति का सर्वांगपूर्ण और सुव्यवस्थित विवेचन, विद्रोह का स्वर, ज्ञानवाद, मजहबी, कट्टरता पर तीखा प्रहार करते हैं। निर्भीकतापूर्ण सत्य की घोषणा करते हैं, सारगर्थित प्रसंग रखते हैं, भक्तिपरक उक्तियों में भी बेबाकी अकाट्य प्रमाण देते हैं। कबीरका उपदेश कडुआ घूँट अवश्य पिलाता है पर यह आत्मीयता के लिए है। उनके सारे उपदेश जो अक्सर हाँ साखियों में आए हैं, "सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्" से कम नहीं है।

साखियों में वे परमहंस की तरह अवतीर्ण हुए हैं। प्रत्येक साखी की अपनी –अपनी विशेषता है। आत्म का आलोक है, जीवन सत्य है, संवेदन सत्य है, कर्मोपासना के अनुष्ठान की महिमा बताई गई है। आत्मा की विवेकशीलता की चर्चा है, समतवबुद्धी का परिचय है, समाज– सुधार की आकांक्षा है। सर्वत्र

सत्य की कसौटी माना गया है। जागरण लाने का माध्यम बनाया गया है। कबीर ने सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में व्यावहारिक जीवन के अनेक अनछुत प्रसंगों को छुआ गया है।

"गुरू को साक्षी (या सखी) करके किसी बात को कहने की प्रथा बहुत पुरानी है।"

इसलिए कबीरदास के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन साखियाँ हैं।"

डॉ0 लक्ष्मी दत्त बी0पंडित ने खोज की है कि "कबीर ग्रंथावली" में 403 पद हैं, 209 साखियाँ है और 6 रमैनियाँ पाई जाती है। कबीर "बीजक" में 115 सबद, 353 साखियाँ और 84 रमैनियाँ हैं।"

कबीर की रचनाओं में एवं प्रकारणों में सबसे अधिक संख्या साखियों की ही मिलती है। संस्कृत के साक्षी शब्द को विकृत कर साखी शब्द कबीर ने बनाकर प्रयोग किया है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि जिन वस्तुओं और घटनाओं का अपनी आँखों से देखा हो उनका वर्णन किया हो। कबीर ने अनेक बातें अपनी सहानुभूतियों से देखकर ही अपनी साखियाँ बनाईं, भ्रमों और संशयों को दूर करने के लिए इनसे पर्याप्त सहायता मिलती है। ये प्रकाशमय वाक्य साक्षी भूत होते हैं। इनमें अनोखे और अनूठे ज्ञान का भंडार है। इन साखियों का महत्व "कबीर बीजक" में बताया गया है।

"साखी आँखीज्ञान की, समुझि देख मन मांहि।

बिना साखी संसार का, रगरा छूटत नांहि।"

"साखी की रचना कबीर ने समय से प्रारंभ हुईं ऐसी मान्यता स्वीकार्य नहीं। प्राचीन काल में भी साखियाँ लिखी जाती थी। बौद्ध काल में ऐसी उपदेशात्मक प्रवृत्ति पाई जाती थी। गुरू गोरखनाथ के समय में भी साखियाँ रही होंगी– ऐसा माना जाता है। कहा जाता है कि नामदेव ने भी साखियाँ लिखीं।

साखियाँ बताती है कि कबीर ने प्रत्येक अनुभवपूर्ण सिद्धांतों को गहन ज्ञान प्राप्त किया, उनका गहन परीक्षण किया तदुपरांत जनता के सामने रखा। कबीर ने साखियाँ अनेक रूपों में लिखी है, जैसे दोहा, चौपाई, हरिपद, गीता, छप्पय, सोरठा आदि छन्द। साखी को दोहा नहीं मानना चाहिए यद्यपि साखियों की रचना अधिकतर दोहों में हुई है। श्लोक से बिगड़ा हुआ रूप साखी है। साखी में सत्वबुद्धि का समावेश है, आत्म–विभोर और मानस–मंथन का नवनीत है। कबीर की अम्बर कुंजा कर लिय "नामक साखी" ढ़ोला मारू रा दूहा से मिलती जुलती है जो निम्नलिखित उद्वहरेण से स्पष्ट हैः

"राजि जु सारस, कुरलिया, गुंजि रहे सबताल

जिनकी जोड़ी बिछड़ी, तिणका कवण हवाला।"

रूपकातिशयोक्ति अलंकार का दृष्टांत दृष्टव्य हैः

"थापनि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हींधीर।

कबीर हीरा बनिजिया, मानसरोवर तीर।"

एक वक्रोक्ति का उदाहरण हैः–

"कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि

एक दिल सोवन होइगा, लम्बे पाँव पसारि।"

इन प्रकार विचार करने से कबीर की तीन प्रकार की कृतियों में स्थूल रूप से हिन्छी की तीन उपभाषाओं की स्पष्ट और निश्चित प्रवृत्ति मिल जाती है।"

इस प्रकार साखी में खड़ी बोंली, सबदी में ब्रजी और रमैनी में अवधी या पूर्वी रूप देखकर मात्रा–भेद से उनकी रचनाओं की तीन उपभाषा या बोंली वर्गों में विभक्त करने के पक्ष में प्रतीत होते हैं।

संदर्भ सूची :

1. स0क0सा0 – 15.1
2. एम0ए0गनी – "हिस्ट्री ऑफ दि पसियन लेन्ग्यूज एट दि मोगल कोर्ट" में उर्दू की पहली गजल मानी गई है।
3. डॉ0 रामरतन भटनागरः कबीर साहित्य की भूमिका, पृ0–243
4. कबीर, पृ0–217
5. कबीर, ग्रंथावली, साखी 28–7
6. कबीर ग्रंथावली साखी 15–5, 64, 67
7. कबीर वाणी, पृ0–198
8. रमैनी, 3.2
9. शास्त्री, बीजक भूमिका, पृ0–06

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

''रहमान का बेटा'' और युगबोध

Dr. T. SREEDEVI

Associate Professor

Dept. of Hindi, M.G. College, Thinvananthapuram

विष्णु प्रभाकर साहित्य के सबसे प्रसिद्ध लेखकों में से एक हैं जो अपने पूरे जीवन में सभी विधाओं में अपनी कलम चलाई है। फिर भी वे अपने आप को कहानीकार ही अधिक मानते हैं। उन्होंने इस प्रकार लिखा है ''पूरी विनम्रता के साथ मेरी मान्यता रही है कि मैं जैसा भी हूँ अच्छा या बुरा, छोटा–बड़ा सबसे अधिक कहानीकार हैं।''[1] विष्णु प्रभाकर जी पुरानी पीढ़ी के कहानीकार हैं, फिर भी स्वातंत्र्योत्तर काल में परिवर्तित नए मूल्यों की स्थापना करके कई युगीन परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध फिर से स्थापित करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

साहित्य और समाज को दो समांतर रेखाएँ माने तो इन दोनों को मिलाने वाली रेखा युग चेतना या युगबोध ही है। इस युग की चेतना ही समकालीनता कहलाता है। साहित्य के लिए आवश्यक सामग्री युग प्रदान करता है और साहित्यकार उस युगबोध को संप्रेषित कर साहित्य की सृष्टि करता है। इसलिए समय के प्रतिसाहित्यकार की प्रतिबद्धता बहुत महत्वपूर्ण रहती है। समकालीनता में समकालीन बोध या युग बोध बहुत ही आवश्यक चीज है।

विष्णु प्रभाकर सामाजिक संचेतना के प्रतिबद्ध कहानीकार हैं जिन्होंने स्वातंत्र्यपूर्व काल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक की सभी गतिविधियों को नजदीक से देखा है और उसे अपने कहानीकार के व्यक्तित्व में ढालने का प्रयास भी किया है। समाज की गतिविधियों से युगीन यथार्थ की चेतना प्रभावित रहती है। समकालीनता की दृष्टि से विष्णु जी अपनी ने रचनाओं में युगीन यथार्थता का समग्र विवेचन किया है।

विष्णु प्रभाकर की प्रमुख कहानियों में से एक है रहमान का बेटा। इस कहानी में विष्णु जी कई तरह की समकालीन प्रश्नों को सामने लाते हैं। अर्थभाव से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण, आक्रोश की अभिव्यक्ति, जातिप्रथा तथा अस्पृश्यता निवारण, नई पुरानी पीढ़ी का संघर्ष, व्यक्ति स्वातंत्र में पूर्ण आस्था जैसे समस्याओं का खण्डन किया है। रहमान का बेटा कहानी का रहमान उठते–बैठते घर में अभाव के दर्शन हो जाने के कारण हमेशा अशांत रहता है। इतना ही नहीं तो धनाभाव के कारण मन की एक ऐसी विचित्र स्थिति हो जाती है कि कभी–कभी अपमान, विवशता को भी सहना पड़ता है।

आक्रोश की अभिव्यक्ति करते हुए, रहमान का बेटा, कहानी में सलीम के माध्यम से विष्णु जी ने निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की विवशता के साथ उसके आक्रोश को व्यक्त किया जो एक ओर सड़ी गली जिन्दगी से सार्थक जिन्दगी पाने की माँग करता है। इसके अलावा रहमान का बेटा कहानी में उच्च जाति का निम्न जाति के प्रति दुर्व्यवहार इसके लिए दोषी है। इस कहानी में विष्णु जी ने निम्न वर्ग में जागृति निर्माण करने का प्रयास किया है। रहमान का बेटा का निम्नवर्ग के बीच किए भाषण का यह

वक्तव्य हे ''हम गंदे रहते हैं, हम अनपढ़ हैं, हम चोरी करते हैं, हमें बोलना नहीं आता, हमें खाने को नहीं मिलता इसमें हमारा ही दोष है। बड़े लोग हमें जानबूझकर नीचे गिराये जाते हैं और हम बोले ही नहीं।''[2] इस कथन से यह स्पष्ट है कि निम्नवर्ग के लोग जातिप्रथा के कारण संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

इन सब बातों के अलावा विष्णु प्रभाकर रहमान का बेटा में व्यक्ति स्वातंत्र्य के पूर्ण आस्था को भी समकालीन रूप में चित्रित करते हैं। इसमें विष्णु जी ने नए मूल्यों को स्वीकार कर धर्म, परंपरा, नीति से अतिमस्त संस्कृति को अस्वीकार किया है। 'रहमान का बेटा' कहानी का रहमान रूढ़ि परंपरा में जकड़ा हुआ है। मात्रउसका बेटा जब अपने परिवार में आचारों–विचारों का रहन–सहन की बातों का सुधार लाने का प्रयास करता है, तो रहमान उसे नकारता है। इसके साथ ही नई पुरानी पीढ़ी का संघर्ष का बातचीत होता रहता है एवं सवर्ण और अनुसूचित जातियों के संघर्ष को नए परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया गया है। शिक्षा, नौकरी, स्वतंत्रता–समानता और अस्तित्व बोध ने समाज एवं परिवार को नए रूप में प्रस्तुत कर दिया जिनका विस्तृत विवेचन कहानी में मिलता है। विष्णु जी के इस कहानी में कई प्रकार के समकालीनता के जागरूक अस्तित्व को उजागर कराती है।

कोई महत्वपूर्ण उद्देश्य ही किसी भी रचना को महत्वपूर्ण बना देती है। उद्देश्यहीन रचना जिसका कोई सामाजिक या मानवीय सरोकान न हो, कभी श्रेष्ठ रचना नहीं मानती है। विष्णु प्रभाकर के कहानियों का रचनात्मक उद्देश्य यह है कि समाज एवं मनुष्य का कल्याण। इस बात का विवेचन करके अध्ययन किया जाए तो हमें बहुत कुद जानने का अवसर प्राप्त हो सकता है,।

'रहमान का बेटा कहानी' में समकालीनता का महत्व दिया जाता है। यहाँ विष्णु जी व्यक्तिवाद दृष्टिकोण, आत्मपरक भावना, मनोविश्लेषण तथा अंतरचेतनावाद के सूक्ष्म विवेचन से मानव जीवन की समस्याओं का नया अध्ययन और उनका मनोवैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करते हैं। इस युग में सामाजिक यथार्थ एवं युगबोध तथा भावबोध को समझाने की कोशिश ही इस कहानी का उद्देश्य रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट होती है कि आज की कहानी मनोरंजन करने अथवा उपदेश देने के उद्देश्य तथा सीमित नहीं है, तो व्यक्ति के अंतर विश्लेषित करने, उसके परिवेशजन्य मानवीय संकटों, परिस्थितियों, समस्याओं को प्रस्तुत करने और सामाजिक स्थिति का बोध कराने के उद्देश्य से अनुप्राणित है। यही सब विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का रचनात्मक उद्देश्य रहा है।

संदर्भ :

1. हिन्दी कहानी में युगबोध : डॉ0 मंजुला सिंह, पृ0 31
2. धरती अब भी धूस रही है : विष्णु प्रभाकर, पृ0 29–30

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारतीयता की पहचान

डॉ0 युवराज सिंह

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
गांधी शताब्दी स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कोयलसा, आजमगढ़

भारतीयता एक मनोदशा है और साथ ही भावना का प्रश्न भी। अतः इसकी पहचान के लिए भारतीय मानस अर्थात भारतीय संस्कृति की समझ आवश्यक है। आज के दौर में भारतीयता को समझना और स्वीकारना दोनों कठिन हैं परन्तु जरूरी भी है। जरूरी इसलिए कि भारतीयता की बुनियादी समस्याओं को समझने के लिए भारतीयता के तह तक पहुँचना आवश्यक है। सच्ची भारतीयता की तलाश वर्तमान संदर्भ में मुख्यतः दो कारणों से आवश्यक है। पहला, यह कि स्वतन्त्रता के बाद से हमारे देश में एक प्रकार की सांस्कृतिक अराजकता व्याप्त हो गयी है। स्वदेश और स्वदेशी का भाव दिन–प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा है। हम बेहिचक पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण कर अपनी अस्मिता खोते जा रहे हैं। हालॉकि पहले यह प्रवृत्ति एक प्रभावशाली वर्ग तक ही सीमित थी, परन्तु अब इसका फैलाव बड़ी तेजी से हो रहा है। यदि इस प्रवृत्ति को रूकने नहीं दिया गया तो हम अपनी परम्पराओं की ऊर्जा को मानव की प्रगति और विकास से जोड़ने में असमर्थ हो जायेंगे और हमारी स्थिति बहुत कुछ त्रिशंकु जैसी हो जायेगी। भारतीयता की तलाश के दूसरे, महत्त्वपूर्ण कारण की ओर ध्यान दिलाते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री **प्रो0 श्यामाचरण दूबे** कहते हैं कि– ''संस्कृति आज की दुनिया में एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में उभर रही है, न्यस्त स्वार्थ जिसका उपयोग खुलकर अपने उद्देश्यों के लिए कर रहे हैं। उन पर रोक लग सकती है, यदि हम निष्ठा और प्रतिबद्धता के साथ भारतीयता की तलाश करें।''[1]

भारतीयता की सही पहचान में बाधक बन रहे हमारे पूर्वाग्रहों और भ्रमों की ओर इशारा करते हुए प्रो0 श्यामाचरण दूबे मानते हैं कि 'भारत ने विश्व गुरू होने का एक भ्रम पाल रखा है। इस भ्रम से जितनी जल्दी मुक्ति मिल सके, उतना ही हमारे लिए अच्छा होगा।'[2] यदि भारतीय संस्कृति ने मानव–सभ्यता को कुछ सिखाया है, तो उससे बहुत कुछ सीखा भी है। इस आदान–प्रदान के बिना हमारा सांस्कृतिक विकास अवरूद्ध हो जाता। हमारा दूसरा भ्रम यह है कि हमारी समाज–व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ और महान आदर्शों वाली है। यदि हमारी सामाजिक व्यवस्था इतनी परिपक्व, आदर्श और स्वयंपूर्ण थी तो समय–समय पर उठने वाली गंभीर समस्याओं का निराकरण क्यों नहीं कर सकी? इन सामाजिक विसंगतियों के कारण हमारी दुर्दशा क्यों हुई?

हम मानते हैं कि भारतीय संस्कृति उच्च मानवीय आदर्शों से परिपूर्ण हैं। हम यह भी मानते हैं कि हमारे उद्देश्य और लक्ष्य समस्त वसुधा के कल्याण को समर्पित हैं, परन्तु इनके संदर्भ में ही हमारा तीसरा भ्रम आकार ले रहा है। हमारे आदर्श हमारी जिदंगी के अंग नहीं बन पाये हैं। 'हमारी कथनी और करनी में बड़ा फर्क है। हम अपने दिल पर हाथ रखकर यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि हमारे समस्त आचार–विचार सत्य पर आधारित है। आखिर अहिंसा के देश में हिंसा का लावा क्यों फूट रहा है? अपरिग्रह की दुहाई देने वाले समाज में उपभोक्तावादी संस्कृति क्यों पल्लवित, पुष्पित हो रही है?'[3]

आज जब हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं तब हमारा सारा ध्यान उच्च विज्ञान और तकनीकी पर केन्द्रित है, हम उनके सांस्कृतिक पक्ष पर बहुत कम सोच–विचार रहे हैं। वैज्ञानिक प्रगति की तुलना में हमारा आत्मिक विकास कहीं पीछे है। हृदय और बुद्धि में संतुलन स्थापित नहीं हो पा रहा है। इस बढ़ती वैज्ञानिकता का मानवीय मूल्यों और हमारी मानसिकता पर क्या प्रभाव पडेगा? क्या यांत्रिकता और अमानवीयकरण ही हमारे भविष्य है?

सही मायनों में भारतीयता की तलाश तभी संभव है, जब हम अपने जगत्गुरू होने का दंभ छोड़कर यथार्थ के धरातल पर उतरे और अपनी वर्तमान दशा पर गहराई से विचार करें। हमें अपने समाज का नये सिरे से पुनर्गठन करने की जरूरत है। इसके लिए हमारे समाज को नये लक्ष्यों और साधनों की जरूरत पड़ेगी। हम मानते हैं कि भारतीय संस्कृति के पास उच्च मानवीय मूल्यों और आदर्शों का अनमोल खजाना है, इसलिए हमें अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के भीतर से ही भारतीयता के नये प्रतीकों और मूल्यों का चुनाव करना है। ये मूल्य ऐसे हों जिनके दम पर हम अपने वर्तमान और भावी जीवन की चुनौतियों का आसानी से मुकाबला कर सकें। इस प्रक्रिया में हमें कई मुखौटे उतारने होंगे। जीवन–दृष्टि पर छाये पाखंड के घने कुहासे को साफ करना होगा। हमें अपनी कथनी और करनी के भेद को समझना होगा। इस प्रकार हमें एक ऐसी सामाजिक संस्कृति विकसित करने की जरूरत है, जिसमें आर्थिक विषमताएँ कम से कम हों। साम्प्रदायिकता और कट्टरता का कोई स्थान न हो, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए लोगों के पास अधिकतम अवसर हों। आज इक्कीसवीं सदी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर हमें रूढ़ एवं सड़ी–गली मान्यताओं को नकारते हुए नये और प्रगतिशील मूल्यों, संस्कारों, को आत्मसात् करने की क्षमता को और भी विकसित करना है जिससे हम अपनी अस्मिता को आहत और विखंडित किये बिना एक सुन्दर और खुशहाल भविष्य का निर्माण कर सकें। आत्मान्वेषण और आत्मोपचार की इस प्रक्रिया से गुजर कर ही हम सच्ची भारतीयता की पहचान कर सकते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संस्कृति हमारे समाज के जातीय संस्कारों का समुच्चय है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति वृहत्तर भारतीय समुदाय की उस जातीयता को सूचित करती है, जो भारतीयों के सर्वोत्तम प्रयत्नों का परिणाम है। भारतीय संस्कृति में निहित उच्च मानवीय, मूल्यों, आदर्शों, संस्कारों आदि का सामूहिक भाव मिलकर ही भारतीयता की सृष्टि करते हैं इसलिए भारतीयता को भारतीय संस्कृति से विलग करके नहीं समझा जा सकता है। हम जानते है कि भारतीय संस्कृति अनेक

उप–संस्कृतियों के योग से बनी है अपने उदार–सहिष्णु गुणों के कारण इस संस्कृति ने भिन्न–भिन्न विचारों और संस्कारों का समावेश किया है। इस कारण इसका चरित्र बहुलात्मक और स्वरूप सामासिक हो गया है। अतः भारतीय संस्कृति को भारतीय संस्कृतियों का सार समझते हुए ही हम भारतीयता की पहचान कर सकते है। हम मानते हैं कि भारतीय संस्कृति के आदर्श और लक्ष्य उच्च मानवीय मूल्यों से अनुप्राणित हैं और विश्वमानवता को सही दिशा प्रदान करने में समर्थ हो सकते हैं परन्तु इसे व्यावहारिक धरातल पर परखने की जरूरत है। आज हमें अपनी वर्तमान विसंगतियों को समझते हुए, विश्व गुरू के दंभ को त्यागकर, सांस्कृतिक अराजकता से निपटने, आस्मिता को बचाने, परम्पराओं की उर्जा को मानव विकास और प्रगति से जोड़ने, संस्कृति को राजनीतिक अस्त्र के रूप में व्यवहार किये जाने के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव के उपयोग की दिशा में सोचने की जरूरत है। ऐसा करते हुए हम भारतीय संस्कृति और भारतीयता के विराट उद्देश्यों की प्राप्ति में सहभागी बन सकेंगे।

सन्दर्भ सूची–

1. डॉ0 श्यामाचरण दूबे, समय और संस्कृति, (भारतीयता की तलाश) पृ0 45
2. वही, पृ0 46
3. वही, पृ0 46

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

अकबर का साम्राज्य : एक संक्षिप्त विवरण

डॉ0 आदित्य कुमार सिंह

पूर्व शोध छात्र, इतिहास विभाग, मानविकी संकाय

म0गां0का0 विद्यापीठ, वाराणसी

जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर के पिता हुमायूँ तथा माता का नाम हमीना बानो बेगम था जो हिन्दाल के शिक्षक अली अकबर जामी की पुत्री थी। जिस समय हुमायूँ एक शरणार्थी के रूप में अमरकोट के राणा वीरसाल के यहाँ ठहरा हुआ था वहीं 15 अक्टूबर 1542 ई0 को उसके भाग्यशाली पुत्र अकबर का जन्म हुआ[1] परन्तु दुर्भाग्यवश पुत्रोत्सव पर अपने मित्रों को भेंट देने के लिये कस्तूरी के अतिरिक्त उसके पास कुछ न था। उसे तोड़कर मुश्क वितरित करते हुए हुमायूँ ने कहा था कि ''अपने पुत्र के जन्म पर केवल यही भेंट मैं आपको देने में समर्थ हूँ। आशा करता हूँ कि एक दिन उसकी ख्याति समस्त संसार में वैसे ही व्याप्त होगी जैसी कि कस्तूरी की सुगन्ध इस समय इस कक्ष में व्याप्त हो रही है।''[2] हुमायूँ की विपत्तियाँ अभी उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। उसने अमरकोट से कन्दहार के लिये प्रस्थान किया किन्तु कन्दहार में भी उसे शान्ति नहीं मिली। वहाँ अपने पुत्र अकबर को जीजी अनगा एवं माहम अनगा नामक दो धायों के संरक्षण में छोड़कर वह अपनी पत्नी हमीदा बानो बेगम तथा अन्य साथियों के साथ ईरान की ओर अग्रसर हुआ। असकरी ने अपने भतीजे अकबर के साथ बहुत सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया तथा उसका पालन पोषण अपनी पत्नी सुल्तान बेगम को प्रदान किया। 1544–45 ई0 में शीतकाल में शिशु अकबर को कन्दहार से काबुल भेज दिया गया वहाँ बाबर की बहन खानजादा बेगम ने बड़े प्यार के साथ उसका पालन–पोषण आरम्भ किया। 1546 ई0 में शिशु अकबर का अपने माता–पिता से पुनर्मिलन हुआ और उसका खतना संस्कार सम्पन्न हुआ परन्तु कुछ ही समय पश्चात् हुमायूँ बदख्शाँ पहुँचकर अस्वस्थ हो गया। कामरान ने अवसर से लाभ उठाकर काबुल पर पुनः अधिकार कर लिया और शिशु अकबर को भी अपने संरक्षण में ले लिया।[3] हुमायूँ को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने काबुल के दुर्ग का घेरा डाल दिया। हुमायूँ के तोपखाने की गोला–वर्षा देखकर कामरान ने अकबर को दुर्ग को प्राचीर पर बैठा दिया किन्तु कामरान के इस क्रूर एवं नीच कार्य में ईश्वर ने उसका साथ न दिया। शाहजादे को पहचानते ही हुमायूँ ने अपने तोपों की दिशा बदल दी जिससे अकबर बच गया। शीघ्र ही हुमायूँ काबुल पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुआ और तत्पश्चात् अकबर का लालन–पालन अपने माता–पिता के संरक्षण में हुआ।

हुमायूँ स्वयं सुशिक्षित व्यक्ति था। अतः उसने अपने पुत्र की शिक्षा की ओर ध्यान दिया। नवम्बर 1847 ई0 में जब अकबर लगभग पाँच वर्ष का था तो उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया तथा उसके लिये एक शिक्षक नियुक्त किया गया किन्तु अकबर की रुचि पुस्तकीय ज्ञान में नहीं थी।[4] यही कारण था कि उसके पश्चात् अनेक शिक्षकों को नियुक्त किया गया किन्तु वे सभी अकबर को अक्षर–बोध कराने में असफल रहे। बाल्यकाल से कबूतरबाजी, अश्वारोहण एवं असि–संचालन में उसकी विशेष रुचि थी। यद्यपि उसने स्वयं पुस्तकें पढ़ना अस्वीकार कर दिया था किन्तु उसे दूसरों से पुस्तकें पढ़वाकर सुनने में आनन्द आता था। उसने स्वेच्छा से प्रसिद्ध सूफी कवि हाफिज एवं जलालुद्दीन रूमी की रहस्यवादी

कविताओं को कंठस्थ कर लिया था। इतिहासकार स्मिथ का कथन है कि ''उस बालसुलभ अध्ययन से ही अकबर के जीवन के उत्तरकालीन वर्षों में पल्लवित रूढ़िहीन धार्मिक उदारवाद की बौद्धिक नींव पड़ी।'' समकालीन इतिहासकार अबुल फजल लिखता है कि ''उसके (अकबर) पावन हृदय और पुनीत आत्मा में शिक्षा के बाह्य रूप के प्रति कभी अभिरुचि उत्पन्न नहीं हुई। अत्यन्त उत्कृष्ट शास्त्रों पर उसका अधिकार एवं साथ ही अक्षर ज्ञान, लाभ करने के प्रति उसकी अरुचि, ऐसे समय में जबकि उनमें अन्तर्निहित बहुल ज्योति किरणें अभिव्यक्त हो रही थीं, मानवमात्र को यह दर्शित करने का उसका एक साधन था कि युग के इस स्वामी की उत्तुंग धारणा शक्ति शिक्षा अथवा अर्जन का परिणाम न थी, वरन् ईश्वर प्रदत्त थी जिसमें मानवी प्रयत्न का कोई श्रेय नहीं था।

अकबर का राज्याभिषेक एवं तत्कालीन मुख्य समस्याएँ

अकबर, जिस समय हुमायूँ की दुर्घटनावश मृत्यु हुई अपने संरक्षक बैरम खाँ के साथ पंजाब में अफगानों के विरूद्ध व्यस्त था। उसे यह समाचार गुरुदासपुर जिले में कलानोर नामक स्थान पर प्राप्त हुआ। वहीं बैरम खाँ ने अमीरां को एक उद्यान में एकत्रित कर 14 फरवरी 1556 ई0 को अकबर का राज्याभिषेक करवाया यद्यपि इसके तीन दिन पूर्व 11 फरवरी को दिल्ली में उसके उत्तराधिकार की घोषणा कर दी गई थी। इस समय अकबर की आयु केवल 13 वर्ष 4 महीने थी। अतः प्रशासन की वास्तविक बागडोर बैरम खाँ ने अपने हाथों में ग्रहण कर ली जो बादशाह का अतालीक (संरक्षक) था।[5]

अकबर के राज्याभिषे के समय भारत में राजनीतिक एकता का अभास था।[6] उस समय तो उसे किसी निश्चित राज्य का स्वामी नहीं कहा जा सकता था। उसकी छोटी–सी सेना का पंजाब के केवल कुछ जिलों पर शिथिल–सा अधिकार था और दुर्भाग्य से इस सेना पर भी पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता था। वास्तविक रूप में सम्राट बनने के लिए अकबर को अपने आपको राज्य के दूसरे दावेदारों से अधिक बलवान सिद्ध करना था और अपने पिता द्वारा छोड़े हुए राज्य को पुनः अधिकार में लाना था।[7]

राज्याभिषेक के समय अकबर की समस्याएँ इस प्रकार थीं–

1. मुगल साम्राज्य अव्यवस्थित था तथा कई दावेदार राज्य हड़पना चाहते थे।
2. पंजाब पर सिकन्दर सूर, आगरा पर हेमू तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश पर मुहम्मद आदिलशाह सूर का अधिकार था। आगरा से मालवा तक के देश तथा जौनपुर की सीमाओं पर आदिशाह की राजसत्ता थी, दिल्ली से छोटे रोहतास तक का क्षेत्र, जो काबुल के मार्ग पर था, शाह सिकन्दर के हाथों में था तथा पहाड़ियों के किनारे से गुजरात की सीमा तक इब्राहीम खाँ के अधीन थे।
3. अकबर का सौतेला भाई मिर्जा हकीम तथा चचेरा भाई सुलेमान मिर्जा उसका राज्य हड़पना चाहते थे।
4. दिल्ली तथा आगरा के पास अकाल पड़ने से स्थिति और बिगड़ गई थी।[8]

अकबर के सिंहासनारोहण के समय भारत की दशा बहुत शोचनीय थी। देश अनेक छोटे–बड़े राज्यों का समूह था जिसमें राजनीतिक एकता एवं संगठन का अभाव था। भारत एक भौगोलिक व्याख्या मात्र रह गया था। अकबर का अधिकार पंजाब के भू–भाग पर ही था। क्योंकि अफगान अभी अपनी पराजय को भूले नहीं थे। वे सिकन्दरशाह सूर एवं मोहम्मद आदिलशाह के नेतृत्व में दिल्ली के सिंहासन पर पुनः अधिकार स्थापित करने में प्रयत्नशील थे। सिकन्दर सूर पंजाब से सम्पूर्ण उत्तर भारत की ओर अपनी शक्ति के विस्तार की चेष्टा कर रहा था। उसका प्रतिद्वन्द्वी मोहम्मद आदिलशाह बिहार से आगरा तक दिल्ली पर अधिकार स्थापित करने का प्रयास कर रहा था। उसका सेनापति हेमू जिसने सफलतापूर्वक 22 युद्धों में भाग लिया था चुनार से एक विशाल सेना के साथ आगरा की ओर बढ़ रहा था। वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था जो अवसर से लाभ उठाकर स्वयं सत्ता ग्रहण करने का इच्छुक था

क्योंकि हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् तेरह वर्षीय अकबर सिंहासनारूढ़ था। काबुल पर मिर्जा मोहम्मद हकीम का अधिकार था जो वहाँ स्वतन्त्र रूप से शासन कर रहा था। बंगाल अफगानों के आधिपत्य में था। बाबर ने राजपूतों शक्ति पर गहरा आघात किया था किन्तु अब राजपूतों ने अपनी शक्ति सुदृढ़ कर ली थी तथा उन्होंने अनेक दुर्गों पर भी पुनः अधिकार कर लिया था। मालवा तथा गुजरात के शासकों ने भी दिल्ली से अपना सम्बन्ध पृथक कर लिया था तथा वहाँ स्वतंत्र रूप से शासन कर रहे थे। गोंडवाना तथा उड़ीसा भी स्वतंत्र थे। कश्मीर में स्वतंत्र मुस्लिम राज्य स्थापित था। सिन्ध एवं मुल्तान भी स्वतंत्र हो गये थे। दक्षिण के अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, खानदेश, बरार आदि राज्यों के सुल्तानों में निरन्तर संघर्ष चल रहा था। विजयनगर का हिन्दू राज्य अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था किन्तु पड़ोसी मुस्लिम राज्यों से उसका सम्बन्ध शान्तिपूर्ण न था। पुर्तगालियों ने अरब सागर तथा फारस की खाड़ी पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उन्होंने गोआ तथा ड्यू सहित अनेक बन्दरगाहों पर अधिकार कर लिया था और पश्चिमी समुद्र तट पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के प्रयास में लगे हुए थे।

वी0ए0 स्मिथ के अनुसार, ''अकबर के राज्याभिषेक के समय भारत में राजनीतिक एकता का अभाव था।''[9] स्मिथ के अनुसार, ''उस समय तो उसे किसी निश्चित राज्य का स्वामी नहीं कहा जा सकता था। उसकी छोटी–सी सेना का पंजाब के केवल कुछ हिस्सों पर शिथिल सा अधिकार था और दुर्भाग्य से इस सेना पर भी पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता था। वास्तविक रूप में सम्राट बनने के लिए अकबर को अपने आपको राज्य के दूसरे दावेदारों से अधिक बलवान सिद्ध करना था और अपने पिता द्वारा छोड़े हुए राज्य को पुनः अधिकार में लाना था।''[10]

इस प्रकार अकबर ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की, उसमें सुव्यवस्थित शासन अपनाया तथा जनकल्याणकारी नीतियों को अपनाया। उसने सभी जाति के व्यक्तियों को योग्यता के आधार पर उच्च पदों पर नियुक्त किया तथा सम्पूर्ण साम्राज्य में एक समान कानून की व्यवस्था की। अकबर ने मालवा, गोंडवाना, मेवाड़, रणथम्भौर, कालिंजर, गुजरात, बंगाल, काबुल, कन्धार, कश्मीर, सिन्ध, बिलोचिस्तान, खानदेश, अजहमदनगर, बरार आदि प्रदशों पर विजय प्राप्त कर एक विशाल सुदृढ़ राज्य की स्थापना की, और विविध राजनैतिक प्रतिकारों का सफलतापूर्वक दमन किया। अकबर एक शक्तिशाली एवं महान साहसी सैनिक, योग्य सेनानायक, लोकप्रिय शासक तथा कुशल शासन–प्रबंधक था। लेनपूल के अनुसार, ''अकबर भारत का ही नहीं, वरन् विश्व के सर्वोत्कृष्ट शासकों में एक था। वह मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक तथा संगठनकर्ता था। वह मुगल साम्राज्य के स्वर्णयुग का प्रतीक था।'' अकबर के शासनकाल में चहुँमुखी विकास हुआ। एडवर्ड व गैरट के शब्दों में, ''अकबर ने अपनी प्रतिभा का परिचय विभिन्न क्षेत्रों में दिया।''[11] बी0ए0 स्मिथ के अनुसार, ''अकबर महान् अपनी चारित्रिक विशेषताओं, मौलिक योजनाओं तथा शानदार सफलताओं के आधार पर इतिहास के प्रमुख शक्तिशाली बादशाहों में गिने जाने का अधिकारी है।''[12] जहांगीर ने लिखा है कि अपने रौबीले निजी व्यक्तित्व में वह मंझले गद का था, किन्तु देखने में लम्बा–सा दीख पड़ता– उसका शरीर सिंह की तरह, उसका वक्ष चौड़ा और उसके हाथ तथा बांहें लम्बी थी।[13] के0एम0 मुंशी के अनुसार, ''अकबर एक सफल विजेता था, जो यह बात भली प्रकार जानता था कि उसे एक शत्रु के साथ कब और कैसे निपटना है। वह जहाँ शत्रुओं के साथ क्रूर व्यवहार करता था, वहाँ उन्हें उदारतापूर्वक क्षमा भी कर देता था।[14] ई0बी0 हैवेल के अनुसार, ''कर्मचारी वर्ग से जो सहायता और राजभक्ति अकबर को मिली, उसे पाने का सौभाग्य किसी और सम्राट को नहीं मिला।[15] वी0ए0 स्मिथ के अनुसार, अकबर एक उच्च कोटि का राज्य–प्रबंधक था। उसने एक ऐसे दृढ़ और कुशल शासन–प्रबन्धक था। उसने एक ऐसे दृढ़ और

कुशल शासन–प्रबन्ध की स्थापना की, जो उसके बाद भी दो शताब्दियों तक भारतीय शासन प्रणाली का आधार बना रहा।[16]

संदर्भ :

1. अबुल फजलः अनु0 बेविरिज, अकबरनामा, खण्ड 1, पृ0 183
2. जौहरः तजकिरात–उल–वाकियात (फारसी), पृ0 588, अंग्रेजी अनुवाद, पृ0 66
3. तबकात–ए–अकबरी, खण्ड 2, पृ0 67; मुन्नतखब–उत–तवारीख, खण्ड 1, पृ0 450
4. अबुल फजलः अनु0 बेविरिज, अकबरनामा, खण्ड 1, पृ0 251, अंग्रेजी अनुवाद, पृ0 520–21
5. तबकात–ए–अकबरी, खण्ड 2, पृ0 126; तारीख–ए–अकबरशाही, पृ0 43
6. बी0ए0 स्मिथः अकबर द ग्रेट मुगल, पृ0 13
7. वही, पृ0 52
8. एस0एल0 नागोरीः मुगलकालीन भारत, पृ0 61
9. बी0ए0 स्मिथः अकबर द ग्रेट मुगल, पृ0 13
10. वही, पृ0 52
11. एडवर्ड व गैरटः मुगल रूल इन इण्डिया, पृ0 53
12. बी0ए0 स्मिथः अकबर द ग्रेट मुगल, पृ0 325
13. तुजके जहाँगीरी, पृ0 22
14. के0एम0 मुंशी (शेलट): अकबर
15. ई0बी0 हैवेलः द हिस्ट्री ऑफ आर्यान्स रूल इन इण्डिया, पृ0 570
16. बी0ए0 स्मिथः पूर्वोद्धृत, पृ0 325

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारत में शहरी विकास

डॉ0 अशोक कुमार साव
पी0जी0टी0 (अर्थशास्त्र)
+2 हाई स्कूल साईं, धनरूआ, पटना

शहरी क्षेत्रों का सृजन एवं विकास शहरीकरण नामक प्रक्रिया द्वारा होता है। वह क्षेत्र, जिनका जनसंख्या घनत्व उनके आस–पास के क्षेत्रों की तुलना में अधिक है और जहाँ मानवीय सुविधाओं की उपलब्धता अधिक होती है, शहरी क्षेत्र कहलाता है। अर्थात् शहरी क्षेत्रों की भौतिक विस्तार (क्षेत्रफल, जनसंख्या आदि का विस्तार) शहरीकरण कहलाता है। यह एक वैश्विक परिवर्त्तन है।

भारत में सन् 1901 में शहरी जनसंख्या 2.59 करोड़ थी, जो कुल जनसंख्या 23.84 करोड़ का 10.9% थी। सन् 1951 में शहरी जनसंख्या आर्थिक आयोजन शुरू होने के समय 36.11 करोड़ जनसंख्या में से 6.24 करोड़ थी, जो कि कुल जनसंख्या का 17.3% थी। सन् 2011 में कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ थी, जिसमें शहरी जनसंख्या बढ़कर 37.71 करोड़ हो गई जो कुल जनसंख्या का 31.2% थी। सन् 2011 की जनगणना में शहरी क्षेत्रों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि का मुख्य कारण ''जनसंख्या के आधार पर निर्धारित शहरों'' में होनेवाली तेज वृद्धि से है। जिसे सेन्सस शहर कते है। यह वह क्षेत्र होता है, जिन्हें शहरों के रूप में वैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं है, परन्तु जनगणना में निर्धारित की गई अन्य कसौटियों को पूरा करते हैं।

सन् 2001 में शहरों की कुल संख्या 5161 थी, जिसमें 3799 वैधानिक शहर एवं 1362 सेन्सन शहर थे। सन् 2011 की जनगणना में कुल शहरों की संख्या बढ़कर 7935 हो गई, जिसमें 4041 वैधानिक शहर एवं 3894 सेन्सस शहर हैं। इस प्रकार जहाँ वैधानिक शहरों की संख्या में मात्र 242 की वृद्धि हुई है वहाँ सेन्सस शहरों की संख्या में 2532 की वृद्धि हुई है, जिनकी शहरी विकास एक चुनौती बन गया है।

जैसे–जैसे शहरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई है, वैसे–वैसे यहाँ की आर्थिक असमानता में भी वृद्धि हुई है। जनसंख्या घनत्व में वृद्धि होने से शहरी निवासियों के स्वास्थ्य में भी गिरावट होने लगती है जिससे कार्य–दशाओं एवं कार्य क्षमता में गिरावट आने लगती है। विकास एवं तेजी से शहरीकरण के कारण गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा स्तर में गिरावट, आवास समस्या, यातायात की समस्या, अपराधों में वृद्धि, खाद्य पदार्थों में मिलावट एवं जीवन स्तर में गिरावट आदि समस्याएँ बढ़ रही हैं।

शहरी विकास की योजनाएँ :– 2011 के जनगणना के अनुसार भारत में कुल आबादी का 31.2% जनसंख्या शहरी समूह में रहता है। देश में तेजी से विकसित शहरीकरण जो समग्र आर्थिक प्रगति से निकटता से जुड़ा हुआ है, के शहरों को बेरोजगारी के साथ आवास के साथ कुछ गम्भीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जैसे–स्वच्छता, परिवहन, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं उपयोगिता आदि। लोगों के जीवन की गुणवत्ता एवं जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए विशेष रूप से शहरी गरीब के लिए आवास एवं शहरी मंत्रालय सक्रिय रूप से नई योजनाएँ शुरू कर रहा है।

शहरी क्षेत्र के विकास के लिए सरकार द्वारा चलाई गयी योजनाएँ निम्नलिखित हैं।

जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण योजना :– इस योजना की शुरूआत 3 दिसम्बर 2005 में की गई। यह एक शहरी आधुनिकरण योजना है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य शहरी आधारभूत संरचना में निवेश बढ़ाना, बेहतर नागरिक सुविधाओं का निर्माण करना, बुनियादी उपयोगिताओं के लिए अपरिवर्त्तनीय पहुँच सुनिश्चित करने के साथ–साथ शहरी गरीबों एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लोगों के लिए सस्ते घर उपलब्ध करना है। इस योजना के तहत 65 मिशन शहरों की पहचान की गई। इसका उपमिशन व्यापक एकीकृत विकास को बढ़ावा देना है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन :– इस योजना की शुरूआत 12 अप्रैल, 2005 को लागू किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य है राज्य सरकारों को लचीला वित्त–पोषण उपलब्ध कराकर शहरी स्वास्थ्य क्षेत्र को पुनजीवित करना है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन में चार घटक शामिल हैं–राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन, देखभाल कार्यक्रम एवं स्वास्थ्य तथा चिकित्सा शिक्षा के लिए मानव संसाधन।

इस योजना से देश के स्वास्थ्य क्षेत्र के कार्यक्रमों में नवीनता आई है। इनमें लचीला वित्त–पोषण, भारतीय स्वास्थ्य मानकों का पालन करने के लिए संस्थानों की निगरानी, कार्यक्रम प्रबन्धन इकाईयों में प्रबन्धन विशेषज्ञों को शामिल कर राज्य, जिला स्तर पर क्षमता निर्माण एवं स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण के राज्य संस्थानों के द्वारा समय पर भर्ती के लिए सरल मानव संसाधन तरीकें शामिल हैं।

इस राष्ट्रीय मिशन में दो नए कार्यक्रम शामिल किए गए हैं–प्रथम कार्यक्रम, एक वर्ष के भीतर ही बच्चे की पूर्ण टीकाकरण करना एवं दूसरा कार्यक्रम कायाकल है। जिसका उद्देश्य सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं में साफ–सफाई की आदत डालना स्वच्छता वैज्ञानिक अपशिष्ट प्रबन्धन एवं संक्रमण नियत्रंण है।

साक्षर भारत मिषन :– इस योजना की शुरूआत 8 सितम्बर 2019 को साक्षर भारत मिशन की शुरूआत की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में लिंग असमानता को दूर करना है।

साक्षर समाज स्थापित करने के लिए इस योजना को मान्यता देने एवं उसका सम्मान करने के लिए संयुक्त राष्ट्र, शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन द्वारा साक्षर भारत मिशन को किंग सेजोंग पुरस्कार, 2013 से सम्मानित किया गया।

राजीव आवास योजना :– यह योजना 4 जून, 2009 को लागू की गई। यह आवास योजना समावेशी एवं न्यायसंगत शहरों के साथ एक ''स्लम मुक्त भारत'' की परिकल्पना करती है, जिसमें प्रत्येक नागरिक की बुनियादी सुविधाओं एवं सामाजिक सुविधाओं एवं सभ्य आश्रय तक पहुँच हो। इसका उद्देश्य मालिन बस्तियों में आवास, बुनियादी नागरिक ढ़ाँचे एवं सामाजिक सुविधाओं में सुधार करना है। इसमें किफायती आवास स्टॉक के निर्माण के साथ मालिन बस्तियों की रोकथाम भी करना है।

स्वच्छ भारत अभियान :– यह शहरी क्षेत्रों में आवास एवं शहरी मामलों के मंत्रालय द्वारा 20 अक्टूबर 2014 को जारी की गई योजना है। इसका उद्देश्य देश के 4041 वैधानिक शहरों, कस्बों एवं इसके ग्रामीण क्षेत्रों की सड़कों, गलियों, नालियों एवं बुनियादी ढ़ाँचे को साफ रखना है। यह महात्मा गाँधी के स्वच्छ भारत के सपने को पूरा करने के लिए बनाई गई योजना है। इसके उद्देश्यों में खुले में शौच का उन्मूलन, अपशिष्ट प्रबन्धन, जागरूकता उत्पन्न करना मुख्य हैं। मिशन में 66.42 लाख व्यक्तिगत

शौचालयों का निर्माण 2.52 लाख सामुदायिक शौचालयों का निर्माण 100% डोर–टू–डोर कचना संग्रहण का लक्ष्य रखा गया है।

राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन :– आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय द्वारा 24 सिम्बर 2013 को यह योजना चालू किया गया था, जिसमें आजीविका को लाभकारी एवं संवर्द्धन कर शहरी गरीब परिवारों के जोखिम को कम करने के कार्यक्रम हैं। कार्यक्रम में स्वरोजगार एवं कुशल मजदूरी रोजगार के अवसर हैं, जिससे उनकी आजीविका में वृद्धि हुई है।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना :– यह योजना कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय द्वारा 1 जुलाई, 2015 को प्रारम्भ की गई। इसका उद्देश्य मौद्रिक पुरस्कार देकर उन्हें गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करके, रोजगार योग्य कौशल के प्रति योग्यता को प्रोत्साहित करना है। इसके अतिरिक्त सम्भावित एवं मौजूदा दैनिक वेतनभोगियों की कार्यकुशलता को बढ़ाना है।

प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना :– यह सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा बनाई गई योजना है। यह योजना एक गोपनीय तरीके से बेहिसाब धन एवं काले धन की घोषणा करने का अवसर प्रदान करता है एवं अघोषित आय पर 50% जुर्माना देने के बाद अभियोजना से बचाता है। अघोषित आय का अतिरिक्त 25% उस योजना में निवेश किया जाता है जिसे चार वर्ष बाद बिना ब्याज के वापस किया जा सकता है।

प्रधानमंत्री आवास योजना :– इस योजना का शुरूआत 25 जून, 2015 में की गयी। शहरी गरीबों के लिए 20 मिलियन किफायती घर उपलब्ध कराने के लिए चालू किया गया था । इस योजना के तहत कमजोर वर्ग के लोगों एवं बी0पी0एल0 समूह (गरीबी रेखा से नीचे) के लोगों को 15 वर्षों के आवासीय ऋण एवं कम ब्याज की सब्सिडी प्रदान की जाएगी।

अटल पेंषन योजना :– यह योजना असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले 18 से 40 वर्ष की आयु के खाताधारकों को जो कर नहीं देते हैं, उनके लिए शुरू की गई है। इसमें 60 वर्ष की आयु पूर्ण होने पर रू. 1,000 से रू.5,000 प्रति माह पेंशन का प्रावधान है।

दीनदयाल उपाध्याय अन्त्योदय योजना (षहरी योजना) :– इस योजना के शहरी घटक के अन्तर्गत सभी 4,041 शहरों एवं कस्बों को कवर कर पूरी शहरी आबादी को कवर किया जाएगा। फिलहाल सभी शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के तहत केवल 790 शहर एवं कस्बे ही आते हैं । इस योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम शामिल हैं।

(i) प्रत्येक शहरी गरीब को कुशल बनाने हेतु 15,000–18,000 खर्च किए जाएँगे।

(ii) माइक्रो एण्टरप्राजेज एवं ग्रुप एण्टरप्राइजेज की स्थापना द्वारा स्वरोजगार को बढ़ावा दियार जाएगा इसमें व्यक्तिगत परियोजना के लिए 7% की दर से रू.2 लाख की ब्याज सब्सिडी एवं समूह उद्यमों पर रू.10 लाख की ब्याज सब्सिडी प्रदान की जाएगी।

(iii) सिटी लिवलीहुड सेण्टर्स के जरिए शहरी नागरिकों द्वारा शहरी गरीबों को बाजारोन्मुख कौशल में प्रशिक्षित करने की बड़ी माँग को पूरा किया जाएगा।

(iv) शहरी बेघरों के लिए स्थायी आवासों का निर्माण और अन्य आवश्यक सेवाओं का प्रावधान एवं विक्रेता बाजार का विकास किया जाएगा।

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना :– यह योजना युवाओं एवं छोटे कारोबारियों को अपना व्यवसाय बढ़ाने के लिए 8 अप्रैल 2015 को शुरू की गई है। इस योजना के अन्तर्गत छोटे कारोबारियों एवं युवाओं को ऋण की सुविधा निम्न तीन चरणों में दी गई है।

(i) **शिशु ऋण योजना :–** इसके अन्तर्गत रू.50,000 तक का ऋण मुद्रा योजना के तहत लिया जा सकता है।

(ii) **किशोर ऋण योजना :–** इसके अन्तर्गत ऋण की राशि 50,000 से रू.5 लाख तक होती है।

(iii) **तरून ऋण योजना :–** इस योजना में रू.5 लाख से रू.10 लाख तक का ऋण दिया जाता है।

प्रधानमंत्री जन–धन योजना :– गरीबी उन्मूलन हेतु यह योजना प्रधानमंत्री ने अगस्त, 2014 में शुरू की थी। इस योजना का उद्देश्य प्रत्येक भारतीय नागरिक का बैंक खाता खोलना है। इस योजना के अन्तर्गत खाता शून्य शेष पर खोल दिया जाता है और खाताधारक को रू. 1 लाख तक का दुघर्टना बीमा दिया जाता है। साथ में रू.30,000 का जीवन बीमा भी दिया जाता है।

उज्जवला योजना :– यह योजना मजदूर दिवस के रूप में 1 मई, 2016 को पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय के अन्तर्गत चलाया जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य पूरे भारत में स्वच्छ अभियान का प्रयोग करना है जो कि LPG द्वारा पूरा किया जा सकता है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य जीवाश्व ईंधन के प्रयोग से होने वाले प्रदूषण को रोकना, घर के अन्दर अशुद्ध ईंधन हवा से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव को रोकना है। इस योजना के लिए गरीबी रेखा से नीचे होना, LPG कनेक्शन पूर्व से न होना व महिला होना आवश्यक है।

उपरोक्त सभी योजना गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी उन्मूलन तथा आर्थिक असमानता को दूर करने में सहायक हैं। इन सभी योजनाओं के साथ आर्थिक विकास को तीव्र गति प्रदान हेतु अन्य योजनाएँ भी चलाए जा रहे है।

स्टार्ट–अप इण्डिया :– इस स्कीम की शुरूआत भारत सरकार द्वारा 16 जनवरी, 2016 को की गई थी। इसका संचालन ''औद्योगिक नीति एवं संवर्द्धन विभाग'' करती है। इस योजना का उद्देश्य देश में रोजगार एवं व्यवसाय को बढ़ावा देना है। यह योजना छोटे उद्योगों एवं व्यवसायियों को आसान ऋण सुविधा उपब्लध करती है। इस योजना से सरकार देश में औद्योगिक विकास एवं स्वरोजगार को बढ़ावा देना चाहती है।

इस स्कीम के अन्तर्गत देश के युवाओं को स्टार्टअप के रूप में शामिल करता है क्योंकि उनके पास नाए आधुनिक विचार, आवश्यक दृढ़ता एवं व्यवसाय का नेतृत्व करने के लिए नई सोच है। युवा समाज के ऊर्जावान एवं उच्च कौशल को रखने वाला भाग है इसलिए वो इस अभियान के लिए बेहतर लक्ष्य माने गए हैं।

डिजिटल इण्डिया :– इसकी शुरूआत 1 जुलाई, 2015 को हुई। इस योजना का उद्देश्य सशक्त समाज एवं ज्ञान अर्थव्यवस्था को डिजिटल रूप देना है। इस योजना में प्रत्येक नागरिक को डिजिटल इण्डिया की उपयोगिता से अवगत कराकर, नागरिक की माँग पर शासन एवं सेवाएँ प्रदान करना तथा प्रत्येक नागरिक को डिजिटल शक्ति प्रदान करना है।

डिजिटल इण्डिया के अन्तर्गत कई योजनाएँ चलाई गई है जो मुख्यतः निम्न हैं।

(i) ब्रॉडबैंड हाइवे की सुविधा

(ii) मोबाइल कनेक्टिविटी

(iii) पब्लिक इण्टरनेट एक्सेल कार्यक्रम

(iv) ई–गवर्नेस

(v) ई–क्रान्ति

(vi) सभी को जानकारी कार्यक्रम

(vii) ई–स्वास्थ्य

(viii) ई–हस्ताक्षर

(ix) ई–शिक्षा

(x) डिजिटल लॉकर

(xi) राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पोर्टल

(xii) इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण

(xiii) आई.टी. फॉर जॉब्स आदि।

स्मार्ट सिटीज :– यह योजना भारत सरकार ने 25 जून, 2015 को स्मार्ट सिटीज मिशन के नाम से शुरू की है। इसका उद्देश्य स्थायी एवं समावेशी शहरों को बढ़ावा देना है और नागरिक को एक स्वच्छ स्वरूप वातावरण प्रदान करना है। स्मार्ट सिटीज में कुछ मुख्य बुनियादी ढ़ाँचे के तत्वों, जैसे–पर्याप्त पानी की आपूर्त्ति, बिजली की आपूर्त्ति, स्वच्छता, अपशिष्ट प्रबन्धन, कुशल शहरी गतिशीलता एवं सार्वजनिक परिवहन, किफायती आवास, मजबूत आई.टी. कनेक्टिविटी एवं डिजिटलाइजेशन ई–शासन एवं नागरिक भागीदारी, पर्यावरण, नागरिकों की सुरक्षा विशेष रूप से महिला एवं बुर्जुगों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर बल दिया गया है। इस परियोजना के पूरा होने का लक्ष्य वर्ष 2019–20 से वर्ष 2022–23 तक बड़ा दिया गया है।

आयुष्मान योजना :– वर्ष 2018–19 के बजट में वित्त मंत्री द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा योजना की घोषणा की गई। इस योजना के अन्तर्गत 10 करोड़ गरीब परिवारों के लिए सलाना 5 लाख रूपये के स्वास्थ्य बीमा का ऐलान किया गया । यह योजना चल रही केन्द्रीय प्रायोजित योजनाओं, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना एवं वरिष्ठ स्वास्थ्य बीमा योजना को एकीकृत करेगी।

राष्ट्रीय वयोश्री योजना :– इस योजना को 1 अप्रैल 2017 से शुरू की गई। इस योजना का उद्देश्य आयु सम्बन्धी बीमारियों का सामना कर रहे गरीबी रेखा से नीचे की श्रेणी से सम्बद्ध बुजुर्गों को जीवनयापन के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान कर उनके जीवन को सामान्य अथवा सामान्य के करीब लाना है।

यह देश में ऐसी पहली महत्वकांक्षी योजना है जो कि वरिष्ठ नागरिकों को सामान्य जीवनयापन में सहायता करेगी।

कायाकल्प एवं शहरी परिवर्त्तन के लिए अटल मिषन :– यह मिशन आवास एवं शहरी विकास मंत्रालय ने सन् 2015 में चालू किया है जिसका उद्देश्य घरों एवं निर्माण के लिए बुनियादी सेवाएँ (पानी, सीवरेज, शहरी परिवहन आदि) प्रदान करना एवं शहरों में सुविधाएँ देना है जो सभी के लिए जीवन की गुणवत्ता

में सुधार करेंगी, विशेष रूप से गरीबों एवं वंचितों के लिए। मिशन का विशेष ध्यान बुनियादी ढ़ाँचे के निर्माण पर है, जिसका नागरिकों के लिए बेहतर सेवाओं के प्रावधान से सीधा सम्बन्ध है।

इस मिशन में 500 शहरों को शामिल किया गया है, जिसमें अधिसूचित नगरपालिकाओं के साथ एक लाख से अधिक की आबादी वाले सभी शहर शामिल हैं।

मेन इन इण्डिया :– इस कार्यक्रम की शुरूआत 25 दिसम्बर, 2014 में की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य लोगों की दैनिक उपयोग की वस्तुओं का निर्माण इण्डिया में ही करना था। अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले 25 क्षेत्रों में बदलाव लाना है, जिससे रोजगार बढ़ेंगे, बेरोजगारी की समस्या दूर होगी, साथ ही इन क्षेत्रों में कौशल विकास होगा।

इन सभी के अलावा सामाजिक सुरक्षा के लिए प्रधानमंत्री ने 2015 में तीन परियोजनाओं को एक साथ शुरूआत है।

(i) प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना

(ii) प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना

(iii) सागरमाला परियोजना

साथ ही साथ ''बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना'' एवं ''सुकन्या समृद्धि योजना'' दोनों 22 जनवरी 2015 में प्रधानमंत्री द्वारा शुरू की। इस योजना का उद्देश्य कन्या जन्म को प्रोत्साहित करने व उनकी पढ़ाई को सतत बनाए रखने के लिए शुरू की गई है।

शहरी विकास नीतियों तथा योजनाओं की प्रतिक्रिया :– शहरी विकास के अन्तर्गत चलाई गई योजनाओं एवं विभिन्न नीतियों ने कई उपलब्धियाँ प्राप्त की है, जो निम्नलिखित है।

(i) नई योजनाओं को शुरू करने का फैसला करने के बाद राज्यों, केन्द्रशासित प्रदेश तथा 500 शहरी स्थानीय निकायों के साथ 'राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय परामर्श मिशन' हृदय संवर्द्धन योजना, स्वच्छ भारत मिशन एवं शहरी क्षेत्रों में सभी के लिए आवास जैसी नई पहलों के कार्यान्वयन के लिए विस्तृत विचार–विमार्श किया गया।

(ii) प्रधानमंत्री ने लोगों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देने एवं शहरी क्षेत्रों में विकास योजनाओं में उन्हें शामिल करने के लिए बढ़ावा दिया।

(iii) स्मार्ट सिटी मिशन के तहत 97 मिशन शहरों के लिए शहरवार स्मार्ट सिटी योजनाएँ बनाने में लगभग 2 करोड़ लोग शामिल हुए।

(iv) प्रधानमंत्री शहरी आवास योजना सभी 4,041 वैधानिक शहरों में क्रियान्वित की जा रही है। अमृत योजना के तहत एक लाख से अधिक की आबादी वाले सभी शहरों एवं कस्बों, राजधानी शहरों एवं कुछ अन्य विशेष श्रेणी के कस्बों सहित कुल 500 शहर एवं कस्बे कोष आवंटन के लिए योग्य पाए गए।

(v) अटल नवीनीकरण एवं शहरी परिवर्त्तन मिशन ने शहरों एवं कस्बों में किए जा रहे सुधारों के तरीकों में उदाहरणीय परिवर्त्तन प्रस्तुत किए हैं।

(vi) स्मार्ट सिटी मिशन में शामिल करने के लिए प्रतियोगिता के आधार पर शहरों का चयन किया गया।

संदर्भ ग्रंथ

(i) इण्डिया विजन, 2020

(ii) ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना, Vol. I

(iii) योजना आयोग, दसवीं पंचवर्षीय योजना, खण्ड–II

(iv) भारत : 2004

(v) 'हिन्दुस्तान' जनवरी 2, 2011

(v) इंण्डिया 2012

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

विद्यापति गीतों में भक्ति एवं वैराग्य भाव

डॉ0 रंजना कुमारी

प्रेम, श्रद्वा के साथ पूर्ण समर्पण से ''भक्ति'' परिलक्षित होती है और भक्ति का विद्वानों ने दो प्रतिफल बताए हैं– ज्ञान और वैराग्य। हम यहाँ विद्यापति के भक्ति एवं वैराग्य रस अथवा भाव की रचनाओं के विषय में चर्चा कर रहे हैं। भक्ति की रचनाओं से आशय है, वो गीत रचनाएँ जिसमें प्रेम, श्रद्धा और समर्पण को संपोषित करते हुए शब्द हों। महाकवि विद्यापति जिस तरह श्रृंगार रस के रससिद्ध कवि माने जाते हैं उसी तरह भक्ति रस से ओत–प्रोत उनकी रचनाएँ भी काफी लोकप्रिय हैं जिसको लोग बहुत ही तन्मयता से गाते हैं। महाकवि की भक्ति रचनाओं में माँ काली, भगवान शंकर एवं राधा–कृष्ण के पद अत्यधिक मिलते हैं।

विद्यापति के भक्ति से संबंधित पदों में उच्च कोटि की काव्यकला के दर्शन होते है। छंद की दृष्टि से तो उन्होंने मात्र पद ही लिखे है पर अलंकार, रस आदि काव्यांगों की दृष्टि से उनके भक्ति के पद काफी समृद्ध दिखाई पड़ते है। इस प्रकार से उनकी यह विशेषता सामने आती है जो कि जो पद उन्होंने दरबारी कवि के रूप में आश्रयदाता के कल्याण की कामना करते हुए लिखा है उसमें कलात्मक–जुड़ाव पांडित्य का प्रदर्शन बन गया है पर जिन पदों में उन्होंने अपनी भावना का निवेदन किया है, उसमें भक्ति का स्वाभाविक स्वरूप अभिव्यक्त हुआ। उदाहरण के लिए देवी की स्तुति में लिखित उनके गीत देखे जा सकते है। ''गोसाउनिक गीत'' जय जय भैरवि में उन्होंने माँ काली के रूप और शक्ति का वर्णन तो किया है परन्तु उनसे प्रथमतः सुमति मांगते है। इससे मात्र एक समर्पित भक्ति का स्वरूप सामने आता है, लेकिन कवि काली को दैत्यविनाशिनी स्वरूप में विवेचित कर तत्कालीन व्यवस्था के मर्म को भी छायावादी रूप से उजागर करने का प्रयास किया है। इस समय देशकाल की दशा अशांत थी। दिल्ली सल्तनत के मुस्लिम साम्राज्य का पड़ोसियों से राज्य विस्तार के क्रम में परस्पर युद्ध भी होता रहता था। कवि का हथियार तो लेखनी है और अराध्य गुरू माँ हैं। विद्यापति माँ रूपी काली से देशकाल की दशा के रक्षार्थ निवेदन करते हैं । इस गीत में भक्ति का व्यापक विमर्श है, संतति को किसी प्रकार का दर्द होने पर वह अपनी माँ को ही याद करता है।[1]

मातृ– विमर्श के इस काव्य को देखकर यह कहा जा सकता है कि मौलिक रूप से शिवभक्त माने जानेवाले महाकवि विद्यापति की भक्तिस्वरूप सर्वव्यापक है–

जय–जय भैरवि असुर भयाउनि, पशुपति भामिनी माया।
सहज सुमति कर दियउ गोसाउनि, अनुगत गति तुअ पाया।
वासर रैनि सबासन शोभित, चरण चन्द्रमणि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल, कतओ उगिलि कएल कूड़ा।।
सामर बरन नयन अनंरजित, जलद जोग फुलकोका।
कट–कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुरि फेन उठ फोका।।
धन–धन–धनय घुंघरू कत बाजय, हन–हन कर तुअ काता।

विद्यापति कवि तुअ पर सेवक, पुत्र बिसरू जनि माता.....[2]

अर्थात् हे काली (भैरवी) तेरी जय जयकार हो, असुरों को भयभीत करने वाली, शिव की मायारूपी पत्नी, हे भगवती मुझे ऐसा वर दो जिससे मैं सहज स्वभाविक एवं सुंदर बुद्धि पाकर आपके चरण का सेवक बनकर मोक्ष को प्राप्त करूँ।

दिन और रात लाश के आसन पर शोभित होने वाली, आपका चरण सिर पर चंद्रमा धारण करने वाले शिव के उपर रखा है। आप कितने ही दैत्यों को मारकर अपने मुख में ले, कहीं और उगल कर कुल्ला कर देती हो। श्यामला बदन और आँखें लाल–लाल ऐसा प्रतीत होता है जैसे बादल के बीच लाल कमल फूले हों। कटकटाते दाँत होठों के मध्य लाल फूल की तरह चमक रहें हैं और उसमें से खून, झाग की तरह निकल रहे हैं जैसे फोका (बुदबुद) उठ रहा हो।

पैरों में जो पायल है उसके घुंघरू अत्यंत घन–घन की आवाज कर रहे हैं जैसे मेघ की गर्जना हो और हाथ में जो तलवार है वो वायु के तेज प्रवाह की तरह हन–हना रहा है। हे माँ मैं कवि विद्यापति आपके चरण का सेवक हूँ इसलिए अपने पुत्र को कदापि न भुलाइए। इसी तरह भगवान शंकर से आराधना करते हुए महाकवि विद्यापति लिखते हैंः–

कखन हरब दुख मोर
हे भोलानाथ।
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाओल
सुख सपनहु नहि भेल, हे भोलानाथ।
एहि भवसागर थाह कतहु नहि
भैरव धरू करूआरि, हे भोलानाथ।
भनई विद्यापति मोर भोलानाथ गति
देहु अभय वर मोहि, हे भोलानाथ।[3]

अर्थात् हे शिव, हे भोलानाथ कब मेरा कष्ट हरेंगे। दुःख में ही मेरा जनम हुआ और दुःख में ही गुजर बसर हो रहा है, सुख तो सपने में भी नहीं हुआ हे भोलानाथ। इस संसार रूपी भवसागर में कहीं सतह का अनुमान नहीं लग पा रहा है, हे भय को हरण कर जगत का कल्याण करने वाले शिव आप अपने विशिष्ट रूप को धारण कर हमें इस दुःख से मुक्ति दिलायें। विद्यापति कहते हैं हे मेरे भोलानाथ मुझे ऐसा वर दो जिससे मैं भयमुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करूँ।

विद्यापति मूलतः शैव थे। उनकी शिवभक्ति के संबंध में एक किवदंती भी प्रचलित है कि भगवान शंकर ने वेश बदलकर उनके यहाँ नौकर का कार्य किया था। यथार्थ चाहे जो हो लेकिन उगना के विरह से आकुल विद्यापति का निष्काम साहित्य इस तरह लोलुप हुआ कि भक्ति रस के मूल आवरण तले करूणा और विरह की अनुपम रचना का यहीं से जन्म हुआ जो कालांतर में इनके अंतिम विश्रांति की कामना का परिचायक भी माना जा सकता है।

उगना रे मोर कतए गेलाह कतय गेलाह शिव किदहु भेलाह।
भांग नहि बटुआ रूसि बैसलाह जोहि हेरि आनि देल बिहुँसि उठला।
जो मेारा कहता उगना उदेश तनिका देब कर कंगन बेश।
नंदन बनमे भेटला महेश गौरी मन हरखित मेटल कलेश।
भनइ विद्यापति उगना सओं काज नहि हितकर मोरा तिरहुत राज।[4]

प्रत्तुत पद्य के अंतिम अंश में प्रयुक्त तिरहुत राज का अर्थ बहुत ही सारगर्भित और व्यापक है। सामान्यता मिथिला को तिरहुत शब्द से विभूषित किया गया है, लेकिन तिरहुत का व्यापक अर्थ है– तीनो लोक यहाँ उगना के विरह में कवि तीनों लोक से विमुख होने की बात करते है। यहाँ, भक्ति करूण और विरह सौदंर्य अलौकिक है। गंगा स्तुति कविता जीवन के अंतिम सत्य अर्थात् स्थायी विश्रांति को दर्शाता है। शिक्षा, दीक्षा, श्रृंगार, नीति के बाद वैराग्य ही जीवन का प्रासंगिक पहलू है, इसकी स्वीकारिता कवि ने आत्मिक रूप से किया हैः–

बड सुख सार पाओल तुअ तीरे, छाड़इत निकट नयन बह नीरे।
कर जोरि बिनमओं विमल तरंगे, पुन दरसन होए पुनमति गंगे।।
एक अपराध छेमव मोर जानी, परसल माय पाय तुअ पानी।
कि करब जप तप जोग धेआने, जनम कृतारथ एकहि सनाने।।
भनइ विद्यापति समदओं तोही, अंत काल जनु बिसरह मोही.....[5]

सौंदर्य की यह अनुपमेय काव्य करूणा के आवरण में भक्ति, श्रद्धा, विश्वास और वैराग्य की अंतिम उपादेयता को मर्मस्पर्श करता है। कवि को गंगा के तट पर अनुपम आनंद की अनुभूति हुई। जन्म देनेवाली माँ आज गंगा माता के रूप में अंतिम निर्वाण का साक्षी रूप में प्रतीत हो रही है। ऐसी कवित्य अहले नहीं आती । कवि अवश्य गीत–संगीत के सर्जक होने के साथ–साथ जीवन कला को समझने वाला अनुपम साधक रहा होगा।

एक समय जब मनुष्य को उसके जीने की जरूरत प्रतीत हो तो जीने के प्रयत्न जारी रखना चाहता है लेकिन अंतिम सत्य ''मृत्यु'' को भी जीवन कालक्रम में गले लगाने की पिपासा भी रखता है। यही तो जीवन का प्रथम और आखिरी सौंदर्य है। कवि भी अन्य चेतनशील प्राणी की तरह मृत्यु का वरन करना चाहता है, इसलिए उसे माँ गंगा के तट से दूर होते ही आँखों के अश्रुगंगा टपकने लगती है, अब जप, तप योग और ध्यान की प्रासंगिकता नहीं रह गयी है। सच्चाई भी है ये सारे साधन तो जीवन को जीवंत करनेवाले हैं, कवि मृत्यु को वरन करना चाहता है। इसलिए एक बार स्नान करके वह ''अंतिम स्नान'' के अगम पथ पर विचरण करने की जिज्ञासा से ही तो पैदल चलकर आया है। पहले गंगा के जलतरंग में पहले कवि का चरण प्रवेश करता है। इसके लिए वह क्षमा चाहता है, लेकिन इससे पहले कवि ने माँ गंगा से कभी क्षमा याचना तो नहीं किया था। सौंदर्य का ऐसा वैराग्यबोध मुक्त गीत में विरले ही मिलते है। यहाँ क्षमा का अर्थ ''अंतिम प्रणाम'' है। यही कारण है कि आज भी मिथिला के सुदूर क्षेत्रों में भी इस गीत को वहाँ के चर्चित विरह धुन ''समदाओन'' धुन पर भी गाया जाता है।

प्रीति जब आस्था में विरूपित होने लगती है तो श्रृंगार की अनुपम सौंदर्य बोध का भक्ति के दार्शनिक रूप में विवर्त होना सहज हो जाता है। कवि विद्यापति के श्रृंगार में विविध कला का विमर्श है, इनका प्रेमोच्छवास अंतर्तम को एक अवरिल रूप से झझकोर देता है। प्रस्तुत है महाकवि के रीति, प्रीति और नीति के त्रिवेणी को उद्वेलित करनेवाली एक अनुपम सौदर्य गीत–

सुनु–सुनु रसिया अब न बजाउ बिपिन बसिआ।
बेरि–बेरि चरणाबिंद गहि, सदा रहब बनिअ दसिया।
कि छलहूँ कि होएब से नहि जानहु, वृथा होएत–कुल–हॅसिया।
अनुभव ऐसन मदन भुजंगम, हृदय गेल मोर डॅसिआ।
नंद–नन्दन तुअ सरन न त्यागब, बरू जग होए दुरजसिया।
विद्यापति कह सुनु बनितामनि, तोर सुख जीतल ससिआ।

धन्य–धन्य तोर भाग गोआरिनि, भरि भजु हृदय हुलसिया।[6]

राधा अपने अनन्य प्रेमी सह आराध्य को निवेदन करते हुए कहती है कि हे रसिया, अर्थात रसिसिद्ध स्नेह निधान कृपा करके अब इस कानन में बांसुरी मत बजाओं मैं बार बार आपका चरण गहती हूँ, प्रतिक्षण आपका बहिकिरणी बनकर रहूँगी। मैं क्या थी, क्या हो गई भला वो आप क्या जाने, अर्थात् स्नेहातीत होने के बाद नारी में एक अलभ्य परिवर्तन होता है। जबवह एक स्नेह अलग सम्बोधन से उर प्रेम को बारम्बार अनुभूति कराय तो प्रीति का पुरातन अनुभव एक अलग सिहरन उत्पन्न करती है, इससे बेकार में मेरे कुल की हँसी होगी। मुझे तो यही लगता है कि प्रीति कामुक हो चुकी है और वह सर्प बनकर मुझे डसने के लिए उताहुल है। तथापि हे कृष्ण! मैं आपके शरण में रहूँगी । यह संसार चाहे मुझे कितना भी अपयश दे! महाकवि स्नेहन्तित राधा के असमंजस को भ्रमित करते हुए कहते हैं कि हे संदुरी सुनो! आपका मूँह चन्द्रमा को भी जीत लिया है! आप तो भाग्यशालिनी हो! हुलास मन से कृष्ण का भजन करती रहो! यहाँ कृष्ण भजन का अर्थ व्यापक है। कवि राधा से कृष्ण के प्रति तात्विक समर्पण चाहता है।

तातल सैकत बारि–बिन्दु सम, सुत मित–रमनि–समाज।
तोहि बिसारि मन नाहि समरपल, आब होयब कोन काज।
माधव हम परिनाम निरासा।
तोहें जगतारन दीन दयामय, अतए तोहर बिसबासा।।
आध जनम हम नीन्द गमाओल, जरा सिसु कत दिन गेला।
निधुबन रमनि रंग रभसमातल, तोहि भजब कोन बेला।।
कत चतुरानन मरि मरि जाओत, न तुअ आदिअवसाना।।
तोहि जनमि पुनि तोहि समाएत, सागर लहरि समाना।।
भनइ विद्यापति शेष समन भय, तुअ बिनु गति नाहिआरा।।
तोहें अनाथक नाथ कहाओसि, तारन भार तोहारा।[7]

यह पद विद्यापति के जीवनकाल के अन्तिम क्षणों में लिखा गया प्रतीत होता है, जब वे सारे उमंग–उत्साह, राग–विराग, सुख–सौरभ, सारी आसक्तियों को पार कर जीवन की समस्त व्यथाओं, दुख–दुविधाओं से निपटकर तटस्थ हुए और जीवन का लेखा–जोखा करने बैठे, सम्भवतः तभी उनको ऐसा भाव आया। उस लेखा–जोखा के क्षण में कवि भगवान कृष्ण से कहते हैं– हे माघव! सारे सरोकार निरर्थक साबित हुए। पुत्र, मित्र, पत्नी, कुटुम्ब समाज.... सारे के सारे संबंध तपते हुए रेत पर पानी की बूंद साबित हुए। गिरते ही विलुप्त हो गए, सब निरर्थक, विफल। मुझसे यह बड़ी भूल हुई कि मैं तुम्हारी महिमा से निरपेक्ष होकर उन सब बन्धनों में उलझा रहा, खुद को उनके माया–मोह में समर्पित कर दिया, अब मेरा क्या होगा। जीवन के अन्तिम क्षणों में हे माधव! अब तो मुझे केवल तुम्हारी ही आशा है। आप पूरे जगत के तारनहार हो, दीन–दुखियों के लिए दयालु हो। मुझे अब बस तुम पर विश्वास है। जीवन का आधा भाग तो मैंने नीन्द में गँवा दिया, बुढ़ापा और बालापन में भी बहुत समय खत्म हो गया। आमोद–प्रमोद, स्त्रियों के साथ रंग–रभस में उन्मत्त जवानी बीत गई। अब आपके भजन–अर्चन हेतु मेरे पास समय ही कितना रह गया। हे माधव! कितने ही ईश अवतार ले लें पर तुम्हारा कोई आदि–अन्त नहीं है। सब कुछ तुमसे ही उत्पन्न होकर समुद्र की लहर की तरह तुम में ही समा जाते हैं। विद्यापति कहते हैं कि मेरे जीवन के इन अंतिम क्षणों के बचे–खुचे भय का शमन आप हीं कर सकते हो। आपके बिना मेरा और कोई सहारा नहीं है। आप तो आदि–अनादि सब के मालिक (नाथ) कहलाते हो। आपके हिस्से में तो सम्पूर्ण संसार का बेड़ा पार लगाने का भार है।

जतने जतेक धन पापें बटोरल, मिलि–मिलि परिजन खाए।
मरनक बेरि हरि केओ नहि पुछए, एक करम संग जाय।।
ए हरि, बन्दओं तुअ पद नाए।
तुअ पद परिहर पाप–पयोनिधि, पारक कओन उपाए।।
जनम अबधि नहि तुअ पद सेबल, जुबती रति – रंग मेलि।
अमिअ तेजि हलाहल पीउल, सम्पद आपदहि भेलि।।
भनई विद्यापति लेह मनहि गुनि, कहलें कि होएत काज।
साँझक बेरि सेवकाई मँगइते, हेरइते तुअ पद लाज।।[8]

अर्थात् इस रचना में उन्होंने कहा है कि मैंने छल–कपट, लालच–बेईमानी से जितना भी पाप रूपी धन कमाया है सारा धन मेरे सभी परिजन मिलकर खाते रहे हैं पर हे प्रभु मरने के समय मुझे कोई नहीं पूछेगा। मैंने जो कर्म किया है सिर्फ वही एक साथ जाएगा। इसलिए हे हरि आपके पद का बंदन करना चाहता हूँ। आपके चरण का सेवक हूँ कृपाकर इस भवसागर से पार होने का उपाय बताएँ। जीवनभर मैंने आपके चरणों की सेवा नहीं कर पाया। स्त्रियों के प्रमोपाश में पड़ा रहा। अमृत को छोड़कर विष को पिया और अब ये सम्पत्ति भी मुझे आफत हो गया है। विद्यापति कहते हैं कि अपने मन ही मन गुनते रहो कि हमने ये किया, हमने वो किया ये सब कहना कोई काम नहीं आएगा। जब साँझ का समय यानि जीवन का अंतिम समय अपने काम की मजदूरी माँगते हुए अपने कर्म का लेखा–जोखा करेंगे तो हमें बहुत शर्म आएगी। इसलिए हे हरि आपके चरणों का बंदन करना चाहता हूँ।

अतः हम कह सकते हैं कि विद्यापति की भक्ति एवं वैराग्य भाव की रचनाएँ हमें भक्ति में परमानन्द की अनुभूति कराते हुए एक अच्छे, निश्छल मनुष्य बनने की प्रेरणा देती है।

संदर्भ सूची :

1. पद्य विविधा : ध्रव नारायण सिंह नीरज (ज्ञान ज्योति–प्रकाशन पटना) पृष्ठ सं : 11
2. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 57–58
3. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 361–362
4. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 29–30
5. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 366
6. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 347
7. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 369–370
8. विद्यापति की पदावली : श्री बेनीपूरी, पृष्ठ संख्या – 370–371

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारतीय संगीत में वाद्यों की महत्वता

डॉ0 सारिका पटेल

वरिष्ठ अनुदेशक, संगीत विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना

भारतीय संगीत में वाद्यों का इतिहास अपनी निजी विशेषता को रखते हुए प्राचीन प्रणालियों में से भिन्न है। इसमें उपलब्ध सामग्री प्राचीन होने के कारण अत्यधिक अमूल्य है तथा इतिहास निर्माण के लिए भी महत्वपूर्ण है।

संगीत की अत्यन्त समृद्ध क्रियात्मक परंपरा, सूक्ष्म तथा पूर्ण सैद्धांतिक रूप में प्राचीन काल से ही विकसित रही है। संगीत उतना ही आनादि एवं प्राचीन है जितनी की मानव जाति, मानव।जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता गया, संगीत भी उसके अनुकूल विकास को प्राप्त करता रहा।

संगीत के मूल तत्वों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि वाद्यकला सही में संगीत की पूर्णरुप से प्रतिनिधी कला है। इसमें स्वर तथा लय का ही एकछत्र राज्य है। इसमें गायन की तरह ही काव्य भी है, और नृत्य की तरह ही अंगसंचालन भी। स्वर तथा लय का स्वछंद, प्रभावपूर्ण तथा भावपूर्ण प्रयोग सिर्फ और सिर्फ वाद्यसंगीत में ही देखने को मिलता है। इस प्रकार वाद्य कला गान तथा नृत्य की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और अकृत्रिम आनंद प्रदान करने वाली है।"[1]"

सम्पूर्ण विश्व में ताल का बड़ा ही महत्व होता है, परंतु अन्य देशों के संगीत की अपेक्षाकृत भारतीय संगीत में ताल अथवा लय का महत्व प्राचीनकाल से ही बहुत अधिक रहा है। ताल का प्रयोग वाद्य संगीत के द्वारा किया जाता है। इसमें केवल स्वर तथा लय ही तत्व होते है वाद्यकला किसी अन्य कला पर आश्रित नही होती है यह अपने आप में ही संपूर्ण होती है।

संगीत कहीं का भी हो उसमें स्वर व लय का बराबर महत्व होता है। संगीत में यदि स्वर को शरीर मान लिया जाय तो लय उसकी आत्मा होगी। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का कोई महत्व नही होता उसी प्रकार लय के बिना भी स्वर महत्वहीन होते है। जिस प्रकार शरीर और आत्मा एक–दूसरे के पूरक होते है, उसी प्रकार स्वर व लय भी एक–दूसरे के पूरक होते है। विभिन्न प्रकार के वाद्यों और अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा कलाकार विभिन्न प्रकार की लयों की रचना करते है।

वाद्यों के द्वारासंगीत में सौंदर्यात्मक चलन शैलियों का विकास होता है। जब कोई गायक भजन, गज़ल, गीत आदि का गुणगान करता है, तो उसमें शब्दों की महत्वता तो होती है, परंतु कुछ कमी और खालीपन सा लगता है। उस कमी और खालीपन को भरने का काम वाद्य यंत्रों के द्वारा किया जाता है।

वाद्यों का सब से महत्वपूर्ण कार्य है, शास्त्रीय संगीत की विवेचना में उनका सहयोग करना। अगर वाद्य न होते, तो शास्त्रीय संगीत की कोई परंपरा न होती और यदि होती भी तो उसकी विवेचना का कोई उपाय न होता, अगर ऐसा कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नही होगी। स्वरों की उत्पत्ति, स्वरों के स्थान का स्थरीकरण, स्वरों के अन्तरालों की नाप–जोख आदि का कार्य बिना वाद्यों के पूरा

नही हो सकता। प्राचीन काल से अब तक स्वरों के विश्लेषण के लिए चाहे वह भारतीय परंपरावादी कलाकार हो अथवा आधुनिक वैज्ञानिक, प्रत्येक को किसी न किसी वाद्य का सहारा लेना ही पड़ता है।

वाद्य संगीत एक ऐसी कला है जिसे अपने सांगीतिक प्रयोगविधी को प्रस्तुत करने और विस्तार करने के लिए किसी अन्य कला की उपेक्षा नही करनी पड़ती। यह स्वतंत्र वाद्य के रुप में स्वयं अपने आप में परिपूर्ण है। दूसरी अन्य सांगीतिक कलाएँ गायन, वादन, नृत्य तथा नाटक बिना किसी वाद्य के अपनी कला का प्रदर्शन नहीं कर सकती हैं अगर करती भी हैं तो उनमें कुछ खालीपन एवं उदास का भाव स्वतः ही दिखता है जिसमें भराव का काम वाद्यों के द्वारा ही किया जाना संभव होता है।

मानवसंस्कृति के उद्‌गम एवं विकास के साथ संगीत के वाद्यों का उद्‌गम एवं विकास भी देखा जा सकता है। आदि काल का संगीत कला संगीत की अपेक्षा दैनिक कार्यो के अधिक निकट पाया जाता था। आदिम मानव तभी गाता – बजाता था जब वह कुछ अभिव्यक्त करना चाहता था। इस प्रकार गाना – बजाना उसके स्वाभाविक विचारों का प्रतिफलन था।

प्रागैतहासिक काल में भी संगीत का प्रचलन रहा है। प्रागैतिहासिक मानव उस समय असंस्कृत तथा असभ्य था, परन्तु उसे नृत्य तथा संगीत से प्रेम था। इस काल की कोई सूत्रबद्ध सामग्री उपलब्ध नही होती है। नृत्य करते समय उसमें उछल–कूद का भाव अधिक होता था। तथा तालियों के द्वारा वह लय को दर्शाता था।''[2]

निश्चय ही प्राचीन काल में करताल से पहले कदमताल के द्वारा लय का आभास हुआ होगा। आदिमानव ने जब चलना सीखा होगा तो उसे कदम के द्वारा लय का एहसास हुआ होगा। और वह भिन्न–भिन्न लय में कदमताल करके चलता, उछलता हुआ ताल को महसूस किया होगा।

'वाद्य' शब्द की उत्पत्ति 'वद्' धातु से हुई है। 'वद्' का अर्थ होता है बोलना। संगीत शास्त्रों में, संगीत की भाषा में 'वाद्य' शब्द का अर्थ है 'संगीतोपयोगी ध्वनि'। अर्थात् जिस उपकरण से संगीतोपयोगी ध्वनि का निष्पादन किया जा सके, वह वाद्य है। वाद्य के विषय में यह तथ्य संगीत शास्त्रों में सर्वसम्मति से माना जाता रहा है। इस तरह देखा जाय तो मानव कंठ भी एक तरह का वाद्य है, जिससे तरह–तरह की संगीतोपयोगी ध्वनि निकाली जा सकती है। कुछ विद्वानों ने मानव कंठ को भी वाद्य की संज्ञा दी है।

वाद्यों की उत्पत्ति के संदर्भ में कुछ विद्वानों का मत है कि इनकी उत्पत्ति देवताओं के द्वारा हुई। संस्कृत साहित्य की परंपरा में रचित आचार्य शुभंकर ने वाद्यों की उत्पत्ति का संदर्भ देवता, गंदर्भ, राक्षस तथा किन्नरों आदि से जोड़ा है उनके मतानुसार भिन्न–भिन्न वाद्यों का संबंध भिन्न–भिन्न देवताओं से था।

''ततं वाद्यंतु देवानां गंधर्वाणां च शोषिरम्।
आनद्धं राक्षसानातुं किन्नराणां धनं विदुः।
निजावतोर गोविन्दः सर्वमेवानयत क्षितौ।''[3]

अर्थात् यहाँ तत् वाद्यों का संबंध देवताओं से, सुषिर वाद्यों का गंधर्वो से, अवनद्ध वाद्यों का राक्षसों से तथा घन वाद्यों का संबंध किन्नरों से बताया गया है। उनके मतानुसार जब श्री कृष्ण ने अवतार लिया, तो वे इन चारों प्रकार के वाद्यों को पृथ्वी पर ले आए और तथाकथित लोगों को प्रदान किये।

वाद्योंके विषय में विभिन्न विद्वानों के अपने–अपने मत है। जो इस प्रकार से हैः–

डॉ0 लालमणि के अनुसार–''डॉ0 लालमणि मिश्र ने संगीतात्मक ध्वनि तथा गीत को प्रकट करने वाले उपकरण को वाद्य कहा है।''[4]

डॉ0 इन्द्राणी चक्रवर्ती के अनुसार– 'वाद्य' शब्द 'वद्' धातु से बना है और इसका अर्थ है जिससे बुलवाया जा सके। अर्थात् मनुष्य स्वयं अपने शरीर से नाद उत्पन्न न करके जिस यंत्र में से नाद उत्पन्न कर सकता है अथवा जिसे बुलवा सकता है, वह वाद्य है।''[5]

''वादयितुं योग्यं वाद्यम्'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर निष्पन्न, वाद्य शब्द का शाब्दिक अर्थ 'वादनीय' होता है। अर्थात् वह यंत्र विशेष जो बजाने योग्य हो।''[6]

इस तरह किसी भी संगीतात्मक ध्वनि अथवा लय को प्रकट करने वाले उपकरण को वाद्य कहा जा सकता है चाहे ध्वनि उत्पादन का माध्यम एक पत्थर हो, लकड़ी हो, पत्ती हो, धातु का टुकड़ा हो अथवा कोई अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यम जिनसे संगीतात्मक ध्वनि उत्पन्न हो सकती है वह वाद्य है और वाद्यों के द्वारा उत्पन्न स्वर तथा लय को 'वाद्य संगीत' अथवा 'वादन' कहा जाता है।

''महर्षि भरत ने नाटक में वाद्य का विधान आवश्यक माना है। उनका कहना है कि ऐसा कोई वाद्य नहीं जो नाटक के दसों भेदों में प्रयुक्त न हो सके, किन्तु नाटक के रस–भाव को देखते हुए ही उनका उपयोग करना चाहिए।''[7] संगीत के मूलतत्व स्वर तथा लय से विहीन, 'वाद्य संगीत' में श्रोताओं को घंटो तक संगीत रस में रमाए रखने की शक्ति होती है। संगीत के द्वारा रंजकता का जितना अधिक विस्तार वाद्य–संगीत में सम्भव है उतना गायन एवं नृत्य मे नही है।

वाद्यों के द्वारा एक और महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध होता है, वह है कि इनको संकेत के रुप में भी प्रयुक्त किया जाता है। संकेत से अभिप्राय है कि किसी खास प्रयोजन में, किसी खास वाद्य का प्रयोग होने से हमें उस प्रयोजन का संकेत मिल जाता है। जैसे –झाँझ, मंजीरा, ढ़ोलक आदि की ध्वनि अगर कहीं से आ रही हो तो तुरंत हमें ऐहसास होता है कि कहीं गीत–भजन आदि हो रहा है। इसी तरह 'घंटी' की ध्वनि से संकेत मिलता है कि पूजा हो रही है, 'शहनाई' की आवाज सुनते ही विवाह आदि मांगलिक कार्य के होने के, 'शंख' तथा 'दुंदुभी' से युद्ध की परिस्थिति के होने के संकेत हमें मिलते है। वाद्य चाहे जैसा भी हो, जिस प्रकार का हो, एक विशेष संकेत प्रदान करता है जिनके बजते ही सुनने वालों को उनके बजने के कारण की स्थिति का स्पष्ट ज्ञान करा देता है। वाद्यों का संकेत के रुप में ऐहसास विश्व की समस्त जातियाँ करती आई है, और आज भी करती है।

वाद्य संगीत की महत्वता पर यदि प्रकाश डाला जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वाद्यों के बिना सांगीतिक कलाओं का प्रयोग रसहीन तथा भावविहीन सा होता है। जिस तरह वाद्यों के बिना संगीत की विभिन्न कलाओं का रस अधूरा होता है, जनमनरंज का कार्य भी अधूरा सा प्रतीत होता है।

संदर्भ :

8. डॉ0 अरबिन्द कुमार, तुलसी के गीति काव्य में संगीत, पृ0सं0–16
9. पुष्पम नारायण, संगीत और जीवन, पृ0सं0–102
10. डॉ0 लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ0सं0–33
11. डॉ0 अन्जना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ0सं0–2
12. वन्दना ठाकुर, तरबदार सितार की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व, पृ0सं0–2
13. डॉ0 लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, प्राक्कथन
14. बन्दना ठाकुर, तरबदार सितार की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व, पृ0सं0–2

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी के विविध रूप

डॉ0 शारदा कुमारी

+2 शिक्षिका, वि0 +2 उ0 वि0 मऊ,
बाजिदपुर दक्षिण समस्तीपुरए बिहार

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी के मातरूप का गरिमामय चित्रण मिलता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की वृद्धा सुचरिता की सास अमितकांत की माता, स्नेह और तेज की मूर्ति हैं। उसका स्नेह पुत्रवधू सुचरिता को प्राप्त होता है तो उसका तेज तपस्वी वेशी अमितकांत के समक्ष प्रस्फुटित होता है। स्थानीश्वर की इस विधवा वृद्धा का एक मात्र सहारा, उसका इकलौता दुलारा बेटा अमितकांत किसी भिक्षु के पेर में प्रज्वलित हो जाता है। विलखती वृद्धा तथा अप्राप्त यौवना सुचरिता निराश और अनिश्चयपूर्ण जीवन जी रही है। सीता जैसी सती सुचरिता का एकमात्र आश्रय सास है, वह सास जिसने अपना स्नेह–भंडार उसके लिए पूरा ही खोज दिया है। संकल्पशीला वृद्धा सुचारिता को लेकर अपने अमितकांत को खोजने को निकल पड़ती हे। वाराणसी जनपद में पुराण पाठ करता हुआ बाणभट्ट वृद्धा को प्रणाम करता है। तब 'वृद्धा का मुखमंडल मुरझाये हुए कमल पुष्प के समान खिन्न था कुण्डलित केश अस्त–व्यस्त हो रहे थे, आँखों में प्रलयपुर का दृश्य था।[1] वाण ने उस भक्तिमती, विश्वास परायणा और सरल हृदय नारी को देखा। वह वाण से खोयी अपनी निधि को पाने की विधि, कोई अनुष्ठान, कोई मांगल जल, कोई जप होम पूछ रही थी। बाण से कुछ व्रत उपवास की विधियाँ ज्ञान करके वृद्धा वहाँ से चली गयी।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की रचना का उद्देश्य ही नारी– महिमा का गान और उसका आत्मोत्थान है। द्विवेदी जी ने नारी के सुप्त देवता को जाग्रत किया है। उनके नारी पात्र आत्मजीवी हैं। साधारण वर्ग की विधवा निउनिया का चरित्रोत्थान संपूर्ण उपन्यास जगत में अनूठा है। वह बुद्धि, साहस, संकल्प और अदभुत त्याग के बल से प्रणम्य होती है। 'चारूचंद्रसेख' की नारी माता का संयम और तप उन्हें इतना ऊँचा उठा देते हैं कि चक्रवर्ती कामी राजा सातवाहन उनकी चरण धूलि पाकर धन्य होता है। द्विवेदीजी की मैना साहसमयी है। पुनर्नवा में गणिका सुता मृणाल शिक्षाशील, संयम–त्याग के बल से देवी बन जाती है। 'चन्द्रा की संसर्गजन्य वासना मृणाल का सत्संग पाकर उज्ज्वल होती है और चन्द्रा विश्वसनीय तथा आदर्श नारी का स्थान पाती है 'अनामदास का पोथा' की ऋतम्भरा का चित्रण द्विवेदी जी ने नारी के लिए उच्च आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है।'[2]

किशोरी लाल गोस्वामी, प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र और इसाचन्द्र जोशी ने नारी के विभिन्न रूपों का अंकन किया है। प्रेमचन्द का दृष्टिकोण नारी के प्रति स्वस्थ और उदार है। उन्होने उनके अमर नारी पात्रों की सृष्टि की है, किन्तु उनकी नारियों का स्वरूप लौकिक है। उनका संघर्ष बाह्य जगत संघर्ष है। वे पुरूष की सत्ता से , समाज से और रूढ़ परंपराओं से टक्कर लेती हैं। परंतु हैं उनके नारी पात्र देहजीवी ही। शिक्षित नारी को उन्होंने पश्चिमी नारी का पर्याय माना है। प्रेमचंद के गिने चुने शिक्षित स्त्री पात्र चंचल प्रकृति के ही उदाहरण कहे जा सकते हैं। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास

साहित्यिक कम और ऐतिहासिक अधिक हैं।, जैनेन्द्र जी ने नारी की मनोचिकित्सा का प्रयास किया है तो इसाचंद्र जोशी ने उसके अंतर्द्वन्द को उभारा है। यशपाल के नारी–पात्र परंपराओं से विद्रोह अवश्य करते हैं परन्तु वे पुरूष की निर्भरता नहीं तोड़पाति।नारी का अबलापन अवश्य इन्होंने समाप्त किया है किन्तु अबला वह बनी रही। अभी तक नारी आत्मनिर्भर नहीं हो पायी थी। उसके आत्मोन्नयन का कार्य अभी शेष था। भारतीय संस्कृति के आस्थावान पुजारी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नारी को उसका खोया हुआ प्राचीन गौरवमय पद दिलाने का सफल प्रयास किया है। द्विवेदी जी ने नारी के पतिव्रता रूप का, मातृरूप का, उसके देवी रूप का चित्रण करके प्राचीन को नवीन धरातलपर आँका है। द्विवेदीजी नारी उद्धार को साहित्यकार का कर्त्तव्य मानते हैं। इसीलिए उन्होनें नारी को देवी–रूप में चित्रित किया है। द्विवेदीजी नारी को भौतिक रूप से आत्मनिर्भरता दिलाने की वकालत नहीं करते। वे तो उसे तप, त्याग,सेवासंयम के उच्च भारतीय आदर्शों से समन्वित देखना चाहते है। वे नारी को पम्दिनी, सीता, अनुसूइया और गार्गी बनाना चाहते हैं। 'बाणभट्ट' की आत्मकथा की निपुणिका, 'चारूचन्द्रसेख' की मैना पम्दिनी रूपा है, भिट्टिनी सीता का संयम और विवेक लिए हुए है, 'पनर्नवा की मृणाल औ धूता देवी अनुसूइया सी पति परायण हैं तो 'अनामदास का पोथा की ऋतम्भरा गार्गी के ज्ञान गौरव से सम्पन्न हैं।[3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति के शद्धावान पुजारी थे। उनके उपन्यास नारी–प्रतिष्ठा की स्थापना को लक्ष्य बनाकर लिखे गये। वे नारी महिमा के अदभुत चितेरे हैं। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में प्रायः एक पतितानारी के प्रति सहानुभूति जगाकर उसके उद्धार का चित्रण मिलता है। 'बाणभट् की आत्मकथा' की भट्टिनी अपहृत राजपुत्री है, निपुणिका अवला है। इन स्त्रियों के रूप में द्विवेदीजी ने नारी हृदय की समग्र पीड़ा को प्रकट कर दिया है। इन नारियों की पीड़ा मानो नारी सामान्य की युगयुगीन संचित पीड़ा बन गयी है। निपुणिका और भट्टिनी के हृदय की पीड़ा का जो चित्र द्विवेदीजी ने प्रस्तुत किया है, वह बड़ा सजीव है।'[4]

नारी हृदय की संपूर्ण वेदना उनके चरित्र में साकार हो उठी है। उनकी नारी की पीड़ा चिंरतन पीड़ा है जो पुरातन होते हुए भी नूतन है। चारू चन्द्रसेख की मैना और नारी माता सजीव नारियाँ हैं। नारी माता नृत्य कुशला, अपूर्व सुन्दरी नारी है। उनका रूप–मार्धुय उनके जीवन को पीड़ापूरित बनाने वाला है। रानी चन्द्रलेखा देवी रूपा हैं। बत्तीस लक्षणों से युक्त पूर्ण नारी चन्द्रलेखा सिद्धि, योगिनी, चन्द्रलेखा और पतिपरायण चन्द्रलेखा तीन रूपों में हमारे सामने है। उसके प्रथम रूप में श्रद्धा–संयुक्त आकर्षण है, द्वितीय रूप चमत्कृत करनेवाला है और तृतीय रूप करूणोत्पादक हो गया है। मैना साहसमयी और संयममूर्ति नारी है। लुटाना उसकी प्रवृत्ति है। पाने की इच्छा उसमें जगती ही नहीं है। मैना अकेली ही व्यूह–भेदन में और दुर्ग–भंजन में सक्षम है। वह साधनों की कायल नहीं है। साहस में सिद्धि बसती है– मैना का आदर्श वाक्य है, जीवन सिद्धान्त है।

'पुनर्नवा' की मृणाल गणिका गर्भ उत्पन्न होकर भी शिक्षाशील संयम के बल पर अपने को इतना ऊँचा उठाती है कि वह सम्राट की भी सम्माननीया हो जाती है। चन्द्रा ऐसी प्रताड़ित नारी है जो दृढ़ संकल्प के बल से अदभ्य साहस से समाज ओर शासन की चिन्तान करती हुई वांछित जीवन–पथ का निर्माण करती है। वह लोक दृष्टि में कुशल है किन्तु स्वयं को वह कुलवधू और सतीसाध्वी मानती है।'[5] वह एकनिष्ट होने के कारण प्रिय पत्नी मृणाल की श्रेह्या दीदी हो जाती है चन्द्रा का चरित्र प्रताड़ित किन्तु संघर्शशील, साहसी और निश्छल नारी का चरित्र है।

अनामदास को पोथा' में भगवती ऋतम्भरा उपनिषद्कालीन गौरवमयी नारी है। वे ऐसी प्रभा राशि हैं जिनसे पोथा का प्रत्येक पात्र प्रकाशित हैं, वे सरस्वती रूपा धर्मपरायणा, समाजसेवाव्रती नारी है। राजबाला जाबाला एक विदुशी और स्वावलंबी नारी है और ऋजुका पीड़ितवर्ग विधवा साधन शून्य नारी

है। ऋजुका रैक्व और जाबाला की सहयाता से पति की थाती नन्हें पुत्र भरण–भार कोई वहन करने सामार्थ्य नहीं कर पाती वरण उसकी जिजीविषा को भी जीवन मिलता है। इस प्रकार द्विवेदीजी ने नारी को सर्वत्र आदर्श रूप में चित्रित किया है। उनकी नारियाँ मानवी से देवी के पद की ओर अग्रगमन करती है। वे उसके मलिन अन्तर को तप, त्याग, सेवा की सुधा से प्रक्षालित करके उसे नमस्य बना देते हैं।[6]

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी प्रताड़ित है। आत्मकथा की नारी अपनी अस्मिता की रक्षा के प्रयास में संलग्ल है। निपुणिका, भिट्टिनी महामाया, सुचरिता सभी पुरूषों से प्रताड़ित है। परन्तु भिट्टिनी उस प्रताड़ना को ईश्वरेच्छा मानकर स्थिर भाव से सहती है। निपुणिका अपनी बुद्धि के द्वारा पुरूषों के रचे जाल को काटती रहती है तो सुचरिता हथकड़ियों को भी नारायण को अर्ध्यरूप में अर्पित कर समरश बनी रहती है। महामाया अवश्य समाज –नियमों और राज नियमों का मुखर विरोध करती है। स्थाणीश्वर की जनसभा का उद्‌बोधन उसके विद्रोह का ज्वलंत प्रमाण है।'चारूचंद्रसेख'में सुहब देवी अपने पुत्र हरिश्चन्द्र को राज्याधिकार से वंचित किये जाने के प्रश्न पर विद्रोह करती है और महाराजा जयित्रचन्द्र के विरूद्ध षड्‌यंत्र करके मुहम्मद गोरी को आक्रमण के लिए आमंत्रण देती है। 'पुनर्नवा' की चन्द्रा अपने पिता, पति और समाज के प्रति विद्रोह की अग्नि समेटे हुए है।'उसके सशक्त विद्रोह के कारण समाजनीति, राजनीति में शोधन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाता है।'[7]

'अनामदास का पोथा' की जाबाला गुरू ओदुम्बरायण के प्रस्ताव उसके और अश्वलायण के विवाह के प्रति विरोध रखती है। उसके मनस्ताप को उसकी सखी अरून्धती शब्द और गति देती है। 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के उपन्यासों में प्रणय भावना है तो परंतु सर्वत्र संयमित। निपुणिका वाण के प्रति अनुरक्त है। परन्तु समर्पणविफला निपुणिका का मोह भक्ति में बदल जाता है।'[8] भट्टिनी बाण के कहे शब्दों को सामगान–समान मानती है। उसकी बाण के प्रति प्राणयानुभूति सदैव अप्रकट है। मैनाका सातवाहन के प्रति प्रेम भी आंतरिक है। वह राजा के प्रति मोह तो रखती है, पर लोभ नहीं। चन्द्रा का प्रणय आर्यक के प्रति वेगवती सरिता–सा उच्छृंखल है जो समाज के तटबंधों को तोड़कर प्राप्य को पा के ही रहता है। जाबाला का रैक्व के प्रति प्रेम, श्रद्धा–मनु का प्रेम के सम्मान संयत है। अंतर्द्वद्र की स्थिति 'बाणभट्ट की आत्म कथा' की महामाया की है, जहाँ उसका शरीर विग्रहवर्मा के प्रासाद में आवद्ध है, वहीं उसका मन अपने वागदानी की पुकार सुनता रहता है। वह राजा से कहती है, 'मेरामन, अन्यत्र चला गया है, शरीर रहा भी तो क्या, न रहा तो क्या? सिद्धि–विच्यूत चन्द्रलेखा तपस्विनी से पतिव्रत महत्व और नारी–पूजा की निरर्थकता सुनकर व्याथित होती है। उसका चित्त अनुतप्त होता है। 'पुनर्नवा' की मृणाल आर्यक के विदेश गमन से तो प्रसन्न थी किन्तु सम्राट समुन्द्रगुप्त की सेना से उसका पलायन मृणाल के चित्त को मथ देता है। उसे अपने सिंह–विक्रम पति आर्यक के पलायन पर आश्चर्य होता है वह इस पलायन का कारण बहुत पीछे समझ पाती है।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों की सभी नारियाँ गरिमामयी हैं। जो नारियाँ शिक्षा और संस्कार से हीन है वे भी संत्संग के पारस से हिरणमयी हो जाती है। परन्तु उनके दो नारी पात्र सर्वथा अविस्मरणीय हैं। एक है 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की निपुणिका और दूसरी है ' पुनर्नवा' की चन्द्रा। प्रथम के जीवन का पूवार्द्ध है एक पीड़ित–प्रताड़ित नारी का जीवन है और उत्तरार्द्ध उसका त्यागमयी देवी का जीवन। वह 'अशोक वन की सीता'भट्टिनी का उद्धार करके, असाघ्य साधन करती है। फिर उस उद्धर को अपने प्रिय वाण को सौंपकर अपूर्व त्याग का प्रमाण प्रस्तुत करती है। वह तप–त्याग तथा निःस्वार्थ सेवा भावना के बल पर सामान्य नारी से देवी बन जाती है किन्तु ऐसी देवी जो अनुकरणीय भी है, प्रेरणा भी है और श्रद्धा भी है। चन्द्रा प्रारंभ में उपाम काम की ज्वाला सी हमारे समक्ष आती है। किन्तु मृणाल के सम्पर्क में आकर वह भी महिमामयी हो जाती है। चन्द्रा का चरित्र पूर्णतया स्वाभाविक और

विश्वसनीय है। अनुराग और त्याग के तटों में प्रवाहित उसकी जीवन–सरिता सार्वजनिक कल्याण का आधार हो जाती है।

'काथाकार का चित्त नारी के रूप–वर्णन में खूब रमा है नेत्र,मुख केशों का वर्णन लेखक ने अधिकता से किया है।' चन्द्रलेखा का रूप–वर्णन कुछ अतिवादी प्रतीत होती है। पर बत्तीस लक्षणों से युक्त पूर्ण एक पम्दिनी नारी का यह विस्तृत अंग वर्णन भी औचित्य ही सीमा की आता है। आत्मकथा की निपुणिका का प्रिय–त्याग महामाया और सुचरिता का संयम अति की सीमा का स्पर्श करता है और आस्वाभाविक सा हो जाता है। चारूचन्द्रसेख मैना का दुसाहस आश्चर्यजनक है। वह धीर शर्मा को घुण्डक सेना से अकेली ही मुक्त कराती है। और पृथ्वीराज की कारा का भेदन कर शाह को निकाल लाती है। विष्णुप्रिया का आत्मदाह अकारण प्रतीत होता है। ऐसी भक्तिमती, मोदमयी, सुख–दुख में समरस रहने वाली के प्राण–त्याण का कारण तो लेखक प्रस्तुत करना ही चाहिए था और आत्मदाह न होता तो भी काम चल सकता था।

अंत में हम कह सकते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चारों उपन्यासों को हम नारी–महिमा–पुराण के चार अध्याय कह सकते हैं। इन उपन्यासों की चालीस से अधिक नारियों में एक भी ऐसी नहीं है, जो वितृष्णा जाग्रत करती हो। उन्होंने गणिकाओं के हृदय में भी सुप्त देवता का अनुसंधान किया है। उनके संपूर्ण नारी चरित्रों में केवल चन्द्रा ही ऐसा चरित्त है जिसके जीवन क आरंभ वासनायुक्त है। परन्तु उसकी काम–भवना को वासना मानना संगत प्रतीत नहीं होता?'[10] उसकी वासना में एकनिष्ठता है और इस उस एक निष्ठता के कारण यह पावन प्रेम के कोटी में आती है, वह जितने प्रचंड वेग से अपने प्रिय आर्यक को पाने और देह–सुख भोगने के लिए अग्रसर होती है। उतनी ही गती के साथ वह शिवशक्ति की ओर बढ़ती है। द्विवेदीजी ने नारी रूप का विस्तृत चित्र प्रस्तुत किया है। उनकी प्रायः सभी नारियाँ सौन्दर्य सम्पन्न होकर आकर्षणवती है, किन्तु उनका सौन्दर्य –चित्रण सर्वत्रमर्यादित है। उनकी नारी का श्रृंगार गोस्वामी तुलसीदास की सीता का श्रृंगार है, प्रसाद की श्रद्धा का श्रृंगार है।

संदर्भ सूची :

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा', डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989 पृष्ठ–162
2. 'द्विवेदीजी के उपन्यास' एक विवेचन, शांतिलाल व्यास, राज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1993, पृष्ठ–142
3. वही, 107
4. हिन्दी उपन्यासों में नारी, डॉ रामेश्वर प्रसाद शर्मा, नचिकेता प्रकाशन दिल्ली, 1990, पृष्ठ 57
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास, मनोहर लाल वर्मा, साहित्य वाणी, इलाहावाद, 1980, पृष्ठ 262
6. वही पृष्ठ 372
7. पुनर्नवाः एक विश्लेषण, साहित्य संस्थान,कानपुर, 1989, पृष्ठ 44
8. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास, गोपाल कृष्ण यादव, ग्रन्थायण, अलीगढ़, 1990, पृष्ठ 270
9. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास, मनोहर लाल वर्मा, साहित्य वाणी, इलाहावाद, 1980, पृष्ठ 170
10. वही पृष्ठ 197

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

महिला सशक्तिकरण पर आधुनिकीकरण का प्रभाव

डॉ0 राजकिशोर कुमार

पारू, मुजफ्फरपुर

शोध सारांश :

विश्व में कोई समाज ऐसा नहीं है जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से अछूता है। भारत में भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने अनेक परिवर्तनों को जन्म दिया है। भारत आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की विवेचना हम निम्नांकित तीन आधारों पर कर सकते हैंः–

1. **आरंभिक आधुनिकीकरण,**
2. **स्वतंत्रता पूर्व आधुनिकीकरण एवं**
3. **स्वतंत्रता पश्चात् आधुनिकीकरण।**

शब्द कोष :– आधुनिकीकरण, प्रक्रिया, अछूता, परिवर्त्तन, विवेचना, आधार, पश्चात् ।

1. आरंभिक आधुनिकरण– भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ बहुत पहले ही हो गया था। यदि हम पदमूलक गतशीलता को आधुनिकीकरण की एक विशेषता मानें तो हम देखते हैं कि भारत में संस्कृतिकरण के माध्यम से पिछले ढ़ाई हजार वर्षों से आधुनिकीकरण की परक्रिया चल रही है। भारत में तब वर्ण व्यवस्था का प्रचलन था। प्रो0 एम0 एन0 श्रीनिवास ने पाया कि भारत में प्रत्येक युग में विभिन्न वर्ण और जातियाँ कभी ऊपर उठती रही है एवं कभी नीचे गिरती रही है। उदाहरण के लिए वैदिक काल में ब्राह्मणों की स्थिति अजेय थी और क्षत्रियों का पद गौण था। उसके बाद ब्राह्मणों ने कर्मकाण्डों के प्रति तथा विशुद्ध क्षत्रिय राजकुमारों ने जैनवाद एवं बौद्धवाद के नये सुधार आंदोलनों को विकसित कर क्षत्रियों की सामाजिक श्रेष्ठता में वृद्धि की। ऋग्वेद काल में वैश्यों का उदय साधारण विकास जनजातियों से हुआ।

इतिहासकारों के अनुसार मध्ययुग के भारत में राजनैतिक इकाइयों पर शासन प्रायः नीच कुलों के लोग ही करते थे, अठारहवीं शताब्दी तक के भारत में राजनैतिक व्यवस्था की स्थिरता वर्ग जिसमें सैनिक परम्परा होती थी, वह कृषि योग्य जमीन पर अधिकार करके और यहाँ तक कि शासन को हथिया कर भू–स्वामी या राजा बन जाता था। इस प्रकार की पदमूलक गतिशीलता आधुनिकीकरण ही मानी जा सकती है।

2. स्वतंत्रतापूर्व आधुनिकीकरण– भारत में सही तौर पर आधुनिकीकरण प्रक्रिया का सूत्रपात ब्रिटिश शासन से हुआ। ब्रिटिश शासन के पूर्व भारत अनेक छोटी रियासतों में विभाजित था। आधुनिक शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से अछूता भारत मूलतः एक परम्परावादी राष्ट्र था। ब्रिटिश शासन ने भारत में संरचनात्मक एवं संस्थात्मक परिवर्तनों को जन्म दिया। प्रो0 एम0 एन0 श्रीनिवास ने ब्रिटिश शासन के

150 वर्षों में भारतीय संरचना पर पड़े प्रभाव को पश्चमीकरण कहा है। वर्त्तमान पुलिस, सेना, शिक्षा, नहरें आधुनिक संचार एवं परिवहन साधन आदि सब ब्रिटिश की देन कहे जाते हैं।

भारत में आधुनिकीरण की प्रक्रिया में "शिक्षा" ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की। आधुनिक शिक्षा के प्रसार से बृद्धिजीवियों ने हिन्दू धर्म के धार्मिक ग्रंथों और हिन्दू धर्म की परम्पररओं की तार्किक दृष्टि से व्याख्या की। इन्होंने भारत में अनेक ट्रस्टों एवं मिशनों जैसे ब्राह्मण समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से हिन्दू धर्म की कुरीतियों, रूढयों एवं अंध–विश्वासों जैसे मानव–बलि, सती–प्रथा, अस्पृश्यता, जाति–प्रथा, दास–प्रथा, बालिका–हत्या देवदासी–प्रथा आदि का विरोध किया और नवीन मूल्यों की स्थापना की। डॉ बी0 बी0 मिश्र ने लिखा है कि "भारत में नवीन मध्य वर्गीय वर्ग की ब्रिटिश शासन काल में माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा की वृद्धि की ही उपज है।"

ब्रिटिश शासन की पश्चिमी शिक्षा ने एक ऐसे वर्ग का विकास किया जो सार्वजनिक सेवकों, वकीलों, शिक्षकों, क्लर्कों आदि के रूप में देखे जा सकते हैं।

भारत में ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप ही धर्मनिर्पेक्षीकरण का विकास हुआ। अंग्रेजी शासन मैकाले ने ही यहाँ अंग्रेजी का शुभारम्भ किया। उनका तो स्वप्न था कि सभी धर्मों, जातियों लिंगों एवं वर्गों आदि के लिए एक ही प्रकार की व्यवस्था स्थापित करके भारत में आधुनिकीकरण का विकास किया जाय, किन्तु परम्परावादियों के विरोध के कारण यह संभव नहीं हो पाया।

ब्रिटिश शासन में ही भारत में "राजनीतिक" की प्रक्रिया का भी शुभारम्भ हुआ। भारत में आधुनिकीकरण के फलस्वरूप एक और भाषायी चेतना और साम्प्रदायिकता का विकास हुआ। राजा राममोहन राय के समय से महात्मा गाँधी के काल तक राष्ट्रीयता की भावना एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास तीव्र गति से हुआ। गाँधी ने भारत में राष्ट्ररवाद की प्रक्रिया का विकास इस तरह किया कि परम्परात्मक प्रतीकवाद और सुधारवादी विचारों का समन्वय हो सके।

ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप एवं पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के कारण ही भारत में नवीन वेश–भूषा, खान–पान की आदतों, कला और इन सबसे बढ़कर भारतीय सामाजिक संस्थाओं जैसे जाति–प्रथा, विवाह, संयुक्त–परिवार, नातेदारी ग्रामीण जीवन आदि में भी व्यापक परिवर्तन हुए और इन समाजिक संस्थाओं में अनेक नवीन एवं आधुनिक मूल्यों का समावेश हुआ। इसी आधार पर हम कह सकते हैं। कि भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का सही तौर पर प्रारम्भ ब्रिटिश शासन से हुआ।

3. स्वतंत्रता पश्चात् आधुनिकीकरण– स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में आधुनिकीरण की प्रक्रिया की गति बहुत तेज हो गई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश शासन के दौरान आधुनिकीरण की प्रक्रिया एक छोटे से जान–समुदाय तक ही सीमित रही जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसमें आश्चर्यजनक रूप में वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप हमारे व्यवहारों, खान–पान, रहन–सहन के नियमों, भाषा, वेश–भूषा, पारिवारिक संगठन, पारस्परिक सम्बन्धों, सामाजिक व्यवस्थाओं, व्यवस्थाओं, नैतिकता, शिक्षा, धर्म प्रथा, परम्पराओं, दृष्टिकोण, विचारों आदर्शों तथा हमारी जीवन पद्धति में स्पष्टतः पश्चिमी समाज की झलक दिखाई देने लगी है। सदियों से रूढ़िवादी और शोषण से युक्त हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में रहने वाले व्यक्तियों के लिए पश्चिमी संस्कृति जीवन का एक आदर्श बन रही है। स्वाधीनता के बाद संविधान सभा

ने भारत को एक "धर्मनिरपेक्ष प्रजातांत्रिक एवं कल्याणकारी राज्य" और समाजवादी समाज बनाने का मसौदा तैयार किया और इसी से संविधान बना। यह प्रयास स्वतंत्रता पश्चात् आधुनिकीकरण का एक महत्वपूर्ण प्रयास था। अनेक योजनाओं विशेषकर पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को उत्पन्न करने से भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को और अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। भारत में स्वत्रंता के पश्चात् हुए आधुनिकीरण के तत्वों में राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि, भूमि से अतिरिक्त श्रम का निष्कासन, नियोग की प्रेरणा, बचत का महत्व, धन का समान वितरण, प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में वृद्धि, रोजगार के बढ़ते अवसरों का विकास, जनसंख्या पर नियंत्रण एवं आर्थिक व समाजिक एकीकरण प्रमुख हैं। इस प्रकार भारत में आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप ही सामाजिक विकास एवं आधुनिकीरण को बल मिला। शिक्षा, प्रतिरक्षा, विज्ञान एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों, स्वास्थ एवं सुविधाओं, कृषि विकास, सहकारिता आंदोलन, सिंचाई, बिजली, सामुदायिक विकास योजनाओं लघु एवं कुटीर तथा वृहत उद्योगों की स्थापना एवं विकास, औद्योगिक उत्पादनों एवं उनका उपभोग, परिवहन, आवागमन एवं संचार के साधनों, कल्याण योजनाओं आदि में स्वतंत्रता के बाद अभूतपूर्व वृद्धि हुई और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की गति तीव्र हुई।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में भी तीव्र आधुनिकीरण हुआ। भारतीय संविधान में समस्त धर्मों, जातियों, लिंगों एवं वर्गो आदि के नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करके सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय सिद्धान्त की स्थापना की। संविधान के द्वारा ही अस्पृयता को समाप्त किया गया। 1955 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1956 में उत्तराधिकार अधिनियम, 1961 में दहेज निरोध अधिनियम एवं अन्य अनेक उद्योग, श्रमकल्याण, परिवहन अधिनियम आदि अष्ट किए गए। इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद इन सामाजिक विधानों ने एक निश्चित सीमा तक शिक्षित भारतीयों से विश्वव्यापी सामाजिक मूल्यों को जागृत करके उनमें वैचारिक परिवर्तन उत्पन्न किये।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि स्वतंत्रता से पूर्व के अधिनियम तथा आधुनिकीरण में ब्रिटिश शासन एवं "पश्चिमीकरण" का प्रमुख हाथ था परन्तु स्वतंत्रता के बाद हुए आधुनिकीकरण में भारत अन्य प्रमुख विकासशील राष्ट्रयों जैसे– अमेरिका, जापान, जर्मनी, फांस, कनाडा आदि के घनिष्ठ संपर्क में आया, जिसके फलस्वरूप, हमने इन देशों के सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक और प्रौद्योगिक आदर्शों को एक निश्चित सीमा तक अपनाकर भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को शक्तिशाली बनाया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का शुभारम्भ जो मूलतः ब्रिटिश शासन से प्रारम्भ हुआ था, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अत्यंत तीव्र गति से भारतीय जन–जीवन पर छा गया। भारत के परम्परागत रहन–सहन, खान–पान, भाषा, वेश–भूषा, स्थिति, त्योहार, परम्पराएं, प्रथाएं, रूढ़ियों लोकविश्वासों, ग्रामीण जीवन शैली, शिक्षा व्यवहार, प्रतिमानों, जाति प्रथा, विवाह, संयुक्त परिवार, नातेदारी एवं एम्पूर्ण रूप से भारतीय जन–जीवन का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पक्षों में आधुनिकीकरण के छाप किसी ने किसी रूप में हमें दिखाई देती है। भारतीय जन–जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जो इस आधुनिकीकरण कि प्रक्रिया से पूर्णतः अछूता रहा हो। अतः भरत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अत्यंत बलवती एवं तीव्र रही है।

भारत में आधुनिकीकरण की बाधायें– उपर्युक्त विवेचना के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में ब्रिटिश शासन के बाद आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है, लेकिन फिर भी विश्व के अनेक देशों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तुलनात्मक रूप में भारत से बहुत अधिक रही है। भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तुलनात्मक रूप से इतनी तीव्र नहीं हो पाई, उसके अनेक कारण हैं। इन्हीं कारणों से भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में कमी आई है। भारत में आधुनिकीकरण की प्रमुख बाधाओं को हम निम्न बिन्दुओं में रखकर समझ सकते हैं।

धार्मिक एवं पवित्र समाज– भारत मूल में एक धार्मिक राष्ट है। अनेक धर्म और उनके धर्मावलम्बी इस राष्ट्र में रहते हैं। फिर भारत एक पवित्र समाज है जिसमें परम्परागत मान्यताएँ धार्मिक विश्वास, दार्शनिक विचारधाराएँ एवं स्वीकृत आदर्श नियम, परम्पराएँ, प्रथाएँ तथा रूढ़ियाँ आदि हैं। इसी कारण भारतीय समाज के लोग आधुनिकता के विचारों को सुगमता से स्वीकार नहीं करते हैं, बल्कि इन विचारों का प्रतिरोध ही करते हैं। ब्रिटिश शासन काल से लेकर आजतक परम्परवादियों ने प्रत्येक आधुनिक विचार की कटु आलोचनाएँ की। हिन्दू पवित्र समाज के लोग धर्म के कारण आधुनिकीकरण के अवरोध में कर्म, धर्म संसार, आश्रम, मोक्ष, माया, पाप, पुण्य, रूपी अवधारणाओं का प्रयोग करते हैं। गुन्नार मिर्डल ने अपनी कृति "एशियन ड्रामा" में लिखा है कि भारत जैसे परम्परागत समाज टैब तक आधुनिकीकृत नहीं हो सकता, जब तक कि उसके परम्प9रागत विश्वास, मूल्य आदर्श नियम, कर्मकाण्ड और सामाजिक संस्थाओं का पूर्णरूपेण विघटन नहीं होता है।

जाति एवं संयुक्त परिवार प्रथा– भारत को जातियों का अजायबघर कहा जाता है। भारतीय जाति–प्रथा की जड़े इतनी गहरी है कि वे सुगमता से समाप्त नहीं की जा सकती। जात–प्रथा में असमानता के आयाम इतने सुदृढ़ एवं कठोर हैं कि वे विभिन्न सामाजिक समूहों के सदस्यों के बीच समानतावादी दृष्टिकोणों को विकसित नहीं होने देती। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में वैधानिक तौर पर जातिगत भेदीभावों को कोई महत्व नहीं दिया जाता परन्तु व्यवहार में स्थिति दूसरी है। आज भी अधिकांश भारतीय किसी–न–किसी रूप में जाती से चिपके हुए हैं।

इसी प्रकार पिरवार प्रथा की आधुनिकीकरण में एक बाधा ही है। संयुक्त परिवार में व्यक्तिवादी हितों का विरोध कर प्रत्येक तबके के लिए सिद्धांत को महत्व दिया जाता है। भारत के संयुक्त परिवारों के सामाजीकृत व्यक्तियों में व्यक्तिवाद के मूल्यों का विकास होना अत्यंत कठिन है। ये व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी नगरों में जाकर विभिन्न आधुनिक व्यवसायों में संलग्न होने के बाद भी संयुक्त परिवार एवं उसकी परम्पराओं से जुड़े रहते हैं। फलस्वरूप आधुनिकीकरण में बाधा उपस्थित होती है।

दोषपूर्ण शिक्षा– व्यक्ति के सामाजिकरण में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हाती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को आधुनिकीकृत बनाने एवं उसे कुरीतियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों से हटाने में शिक्षा की भूमिका उल्लेखनीय है। भारत में प्रचलित धार्मिक शिक्षा ने भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में बाधा उपस्थित की है। दूसरी ओर, ब्रिटिश शासन में विकसित अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार महज अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए किया। इस शिक्षा से आधुनिकीकरण को जो थोड़ा बहुत बल मिला वह महानगरों एवं शहरों तक की सीमित रहा। ग्रामों को तो अंग्रेजी शिक्षा ने बहुत कम परिवर्तित किया एवं गांव के लोगों को, जो भारतीय जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग, आधुनिकीकरण से वंचित रहा। दूसरी ओर शिक्षा प्रणाली इतनी दोषपूर्ण है कि वह पाश्चात्य वेश–भूषा, खान–पान एवं औद्योगिक

उत्पादनों के प्रति काम या अधिक मात्रा में भारतीय लोगों को आकर्षित करने में सफल रही है, परन्तु शिक्षा प्रणाली उनमें उनमें व्यक्तिवाद, मानवीय सृष्टि, समानता, स्वतंत्रता आदि नवीन एवं आधुनिक मूल्यों को विकसित नहीं कर पाई। इस तथ्य से के भी इंकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय शिक्षा पद्धति ने भारतीयों में तार्किकता, गतिशीलता एवं विभिन्न क्षेत्रों में साझेदारी के आधुनिक दृष्टिकोणों को विकसित नहीं किया।

निहित स्वार्थ– भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का एक और अवरोध व्यक्तियों, समूहों एवं दलों के अपने निहित स्वार्थ हैं। अंग्रेजों ने आधुनिक शिक्षा एवं आधुनिक व्यवसायों का प्रशिक्षण इसीलिए प्रारम्भ एवं विकसित नहीं किया क्योंकि उन्हें भय था कि बाद में भारत के लोग स्वतंत्र होकर उद्योगों की स्थापना कर सकेंगे, बल्कि वे तो इनके प्रति भारतीयों का मोह इसलिए पैदा करना चाहते थे ताकि वे अपनी उत्पादित वस्तुओं के लिए बाजार तैयार कर सकें। स्वाधीनता के बाद गांधीजी ने औद्योगिकीकरण का विरोध इसलिए किया कि उन्हे भय था कि औद्योगिकीकरण भारतीय गांवों की आत्मनिर्भरता को समाप्त करके लोगों में बेकारी एवं अन्य औद्योगिक समस्याओं को जन्म देगा। श्रमिक लोग कारखानों में अभिनवीकरण, स्वचालीकरण एवं कंप्यूटरीकरण का विरोध इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें भय है कि इससे उनमें बेकारी और बढ़ जाएगी। राजनैतिक अभिजात वर्ग आधुनिक विचारों को अत्यंत सावधानी से ग्रहण करते हैं। बहुत से राजनैतिक दल राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के लालच में भाषावाद, जातिवाद एवं प्रदेशिकतावाद आदि को भड़काकर आधुनिक मूल्यों को चुनौती देते हैं।

आर्थिक समृद्धि का अभाव– किसी भी समाज के आधुनिकीकरण की पहली शर्त है कि वह संयज आर्थिक दृष्टि से समृद्धशाली हो। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए उसे आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकि पर आधारित औद्योगिक समाज का निर्माण करना पड़ता है जिससे प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हो एवं उनका सामान्य जीवन स्तर उच्च हो सके। भारत वस्तुतः आर्थिक समृद्धि की उन सीमाओं को नहीं छू पाया है, जिनकी अपेक्षा तीव्र आधुनिकीकरण के लिए की जाती है। यहाँ कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनके पास अथाह संपत्ति है जबकि अधिकांश भारतीय गरीबी रेखा के नीचे आते हैं। एक व्यक्ति नवीन प्रौद्योगिकी से उत्पादित वस्तुओं का उपयोग अनेक बार और सामान्यता इसीलिए नहीं कर पाता क्योंकि उसके पास उन्हें खरीदने के लिए आवश्यक धन नहीं है। आर्थिक संकट के कारण ही भारत आधुनिकीकरण की रफ्तार को तीव्र नहीं रख पाया।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में आधुनिकीकरण के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बहुत धीमी है। जबकि स्वतंत्रता से पूर्व ही भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का शुभारम्भ हो गया था और स्वतंत्रता के बाद तो उसमें गति भी आई है, फिर भी यह गति अपेक्षाकृत कम है। आज संसार के राष्ट्र जिस तीव्र से आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रहे हैं एवं एक के बाद एक नए आयाम खोज रहे हैं, उसकी तुलना में भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अभी बाल्यावस्था में है। बोटोमोर ने लिखा कि "भारत के बुद्धिजीवी वर्ग के लोग बहुत कम प्रभावशाली रहे हैं, क्योकि उनमें अभी तक शक्तिशाली एवं विशिष्ट सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा की लहर का उदय नहीं हो सका। इस प्रकार भारत में वास्तविक बौद्धिक

शिविर नहीं है, सामाजिक सिद्वांत के समक्ष सम्प्रदाय नहीं है और एक यथार्थ रूप में नवीन और आधुनिक संस्कृति के लिए लक्ष्य नहीं है।

लेकिन बोटोमोर का कथन पूर्णतया सत्य हो, ऐसा नहीं है। भारत में वर्त्तमान में जो परिवर्तन का दौर चल रहा है, उससे ऐसा लगता है कि भारतीय समाज में भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से गतिशील होगी।

संदर्भ की सूचीः–

1. एस0 एन0 आइसेनस्टैट : मोडर्नाडजेशन, प्रोटेस्ट एण्ड वेंज।
2. एम0 मिचेल : मोडर्नाइजेशन एण्ड सोशल स्ट्रकचर।
3. दैविद ऐप्टर : सोशल चेंज।
4. प्रो0 मूरे : द इम्पैक्अ ऑफ इंडस्ट्रीज।
5. योगेन्द्र सिंह : मोडर्नाइजेशन ऑफ इंडिया ट्रेडिशन।
6. एन0 प्रसाद : चेंज स्ट्रेटेजी इन ए डेभलपिंग सोसायटी।
7. डी0 लर्नर : ओप. वीट.।
8. डब्लू0 जी0 स्मीथ : मोडर्नाइजेशन ऑफ ट्रेडिशन सोसायटी।
9. डॉ0 डी0 पी0 मुकर्जी : क्वोटेड फ्रॉम डाइभरसीटीज, 1958 ।
10. कृष्ण मुकर्जी : सोसिओलोस्टस एण्ड सोशल चेंज इन इंडिया टूडे।
11. डॉ0 एस0 पी0 नागेन्द्र : द कंसेप्ट ऑफ रीच्यूअल इन मोडर्न सोसियोजौजिक थ्योरी, 1971।
12. डॉ बी बी0 मिश्रा : द इंडिया मिड्स क्लास, 1951 ।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारतीय किसान खेती के साथ–साथ मोती की खेती कर अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला सकते है

डॉ0 कामेश कुमार

शोधार्थी, वणिज्य विभाग,
बी0आर0ए0बी0यू0, मुजफ्फरपुर

सारांश

भारत एक कृषि प्रधान देश है जॅहा एक तिहाई जनसंख्या किसी न किसी रूप से कृषि पर र्निभर है लेकन यॉहा के किसान कि स्थिति परम्परागत खेति पर निर्भर रहने के कारण उसकी आय इतनी कम है कि वह अपनी मूल आवश्कता कि पूर्ति करने में सझम नहीं होता है यदि किसान खेति के साथ साथ मछली पालन, बागवाणी, पशुपालन, मोती सीप की खेती आधुनिक तरिके से करते है तो उन्हें एक दुसरे कि हानी को पाटने एवं लाभ बढ़ाने में सहायक होगी। इस में सीप से मोती उत्पादन में किसान को कम लागत में अधिक आमदनी हो सकति है। यदि एक मोती की औसत कीमत आठ सौ रुपए भी हो तो 80 हजार तक की कमाई हो जाती है। सीप के अंदर किसी भी आकृति (गणेश, ईसा, क्रॉस, फूल, आदि) का फ्रेम डाल देते हैं, पूरी प्रक्रिया के बाद मोती यही रूप लेता है।

एक अनुमान के मुताबिक हमारे देश में मोतियों का करीब चार सौ करोड़ रुपये का सालाना कारोबार है। मोतियों के विश्व बाजार में तकरीबन 50 फीसदी पर चीनी मोतियों का कब्जा है। वजह है, उनका भारतीय मोतियों की तुलना में लगभग साठ से सत्तर प्रतिशत तक सस्ता होना। इसके बावजूद मोतियों की खेती से हर महीने एक से दो लाख रुपए तक की कमाई की जा सकती है। इसके लिए बस मामूली लाख–दो लाख रुपए के निवेश और हल्के–फुल्के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। सोना महंगा होते जाने से पूरी दुनिया के बाजार में मोती के नेकलेस, मोती के पेंडेंट, मोती की अंगूठियों, कफलिंक्स आदि की मांग बढ़ती जा रही है। इस काम में हमारे देश के हजारे ज्वैलर और ब्रांडेड लिटेलर जुड़े हुए हैं। आधुनिक डिजाइन तकनीक और पारंपरिक कला के इस्तेमाल से इसके बाजार में मालामाल होने की अपार संभावनाएं मौजूद हैं। भारते में इसके बीड्स जापान, चीन, ताइवान, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया से आयात किए जाते हैं। दुनिया में मोती उत्पादक देश हैं – चीन, जापान, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण समुद्र, वियतनाम, भारत, यूएई, यूएसए, मैक्सिको, फिजी, फिलीपीन्स, फ्रांस, म्यांमार और इंडोनेशिया आदि। बेरोजगार छात्र–छात्राओं, किसानों के साथ नौकरीपेशा लोग भी इसकी खेती कर सकते हैं। इसकी खेती में बहुत ज्यादा देखभाल की भी जरुरत नहीं रहती है। इसलिए इसे पार्ट टाइम (अतिरिक्त समय में) भी किया जा सकता है। भारत में इफको मोती की खेती का प्रशिक्षण देता है।

मात्र दो दिन के प्रशिक्षण में सीप की पहचान, चारा बनाने, नुकलेस बनाने, सर्जरी करने, सर्जरी के बाद देखभाल आदि करना सिखा दिया जाता है। प्राकृतिक मोती सीप में मिलती है लेकिन अब कृ त्रिम स्तर पर खेती के रूप में भी इसका भारी विकास हो चुका है। अब बाजार में ज्यादातर

आर्टिफिशियल मोती की ही भरमार है। भारत हर साल करीब पचास–पचपन करोड़ रुपए से अधिक के मोती इंपोर्ट करता है और लगभग सौ करोड़ तक एक्सपोर्ट। हमारे देश से ज्यादातर डिजानर मोतियों का एक्सपोर्ट होता है।

कृषि विज्ञानी बताते हैं कि एक सामान्य जैविक प्रक्रिया में सीप का निर्माण एक खास ढांचे में होता है। आवरण की बाहरी कोशिकाएं एक उत्तक होती हैं जो मोती के सीप उत्पादन में सहायक होती हैं। आवरण की बाहरी कोशिकाओं के उत्तक में जब बाहरी उत्तेजना (जैसे कि दूसरे कठोर शरीर में अचानक अकड़न) होती है तब दूसरे शरीर से मोती का उत्पादन शुरू हो जाता है। मोती और कुछ नहीं, सिर्फ मुलायम खोलीदार सीप में जमा कैल्सियम कार्बोनेट होता है। अब मीठे पानी के सीप को घरेलू तालाब अथवा पानी की टंकी में पाल–पोषकर मोती की खेती की जा रही है।

प्रस्तुतिकरण

मोती एक प्राकृतिक रत्न है जो सीप से पैदा होता है। भारत समेत हर जगह हालांकि मोतियों की माँग बढ़ती जा रही है, लेकिन दोहन और प्रदूषण से इनकी संख्या घटती जा रही है। अपनी घरेलू माँग को पूरा करने के लिए भारत अंतराष्ट्रीय बाजार से हर साल मोतियों का बड़ी मात्रा में आयात करता है। सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ फ्रेश वॉटर एक्वाकल्चर, भुवनेश्वर ने ताजा पानी के सीप से ताजा पानी का मोती बनाने की तकनीक विकसित कर ली है जो देशभर में बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं।

प्राकृतिक रूप से एक मोती का निर्माण तब होता है जब कोई बाहरी कण जैसे रेत, कीट आदि किसी सीप के भीतर प्रवेश कर जाते हैं और सीप उन्हें बाहर नहीं निकाल पाता, बजाय उसके ऊपर चमकदार परतें जमा होती जाती हैं। इसी आसान तरीके को मोती उत्पादन में इस्तेमाल किया जाता है और यह कैल्शियम कार्बोनेट, जैविक पदार्थों व पानी से बना होता है। बाजार में मिलने वाले मोती नकली, प्राकृतिक या फिर उपजाए हुए हो सकते हैं। नकली मोती, मोती नहीं होता बल्कि उसके जैसी एक करीबी चीज होती है जिसका आधार गोल होता है और बाहर मोती जैसी परत होती है। प्राकृतिक मोतियों का केंद्र बहुत सूक्ष्म होता है जबकि बाहरी सतह मोटी होती है। यह आकार में छोटा होता और इसकी आकृति बराबर नहीं होती। पैदा किया हुआ मोती भी प्राकृतिक मोती की ही तरह होता है, बस अंतर इतना होता है कि उसमें मानवीय प्रयास शामिल होता है जिसमें इच्छित आकार, आकृति और रंग का इस्तेमाल किया जाता है। भारत में आमतौर पर सीपों की तीन प्रजातियां पाई जाती हैं– लैमेलिडेन्स मार्जिनालिस, एल.कोरियानस और पैरेसिया कोरुगाटा जिनसे अच्छी गुणवत्ता वाले मोती पैदा किए जा सकते हैं।

मोती एक प्राकृतिक कृति है जो मोलस्क से उत्पन्न होती है और मोती के उत्पादन या उत्पादन को मोती संस्कृति के रूप में जाना जाता है। मीठे पानी में मोती की खेती जिसे आसानी से किसी भी शुरुआती द्वारा संचालित किया जा सकता है, आजकल अंतर्राष्ट्रीय बाजार में मोती की मांग बढ़ रही है, क्योंकि किराना की दुनिया में इसका बहुत उपयोग है। दूसरी ओर, बढ़ते प्रदूषण के कारण मोती का स्टॉक कम हो रहा है। यह व्यवसायय मोती संस्कृति प्रक्रिया वास्तव में लाभदायक है और अन्य की तुलना में बहुत सरल है क्योंकि मोती बनाने के लिए किसी भी भोजन की आवश्यकता नहीं है।

मोती बनने में कितना समय लगता है? बहुत कम समय अवधि में, आप उपज के रूप में मोती प्राप्त करने में सक्षम होंगे। आमतौर पर, एक सीप के अंदर एक मोती बनाने में कई सप्ताह लगते हैं। लगभग 45 दिन से छह महीने या उससे अधिक, हालांकि, मोती का निर्माण मुख्य रूप से मसल के प्रकारों पर निर्भर करता है।

उत्पादन का तरीका

इसमें छह प्रमुख चरण होते हैं– सीपों को इकट्ठा करना, इस्तेमाल से पहले उन्हें अनुकूल बनाना, सर्जरी, देखभाल, तालाब में उपजाना और मोतियों का उत्पादन।

सीपों को इकट्ठा करना

तालाब, नदी आदि से सीपों को इकट्ठा किया जाता है और पानी के बरतन या बाल्टियों में रखा जाता है। इसका आदर्श आकार 8 सेंटी मीटर से ज्यादा होता है।

इस्तेमाल से पहले उन्हें अनुकूल बनाना

इन्हें इस्तेमाल से पहले दो–तीन दिनों तक पुराने पानी में रखा जाता है जिससे इसकी माँसपेशियाँ ढीली पड़ जाएं और सर्जरी में आसानी हो।

सर्जरी

सर्जरी के स्थान के हिसाब से यह तीन तरह की होती है– सतह का केंद्र, सतह की कोशिका और प्रजनन अंगों की सर्जरी। इसमें इस्तेमाल में आनेवाली प्रमुख चीजों में बीड या न्यूक्लियाई होते हैं, जो सीप के खोल या अन्य कैल्शियम युक्त सामग्री से बनाए जाते हैं।

सतह के केंद्र की सर्जरी इस प्रक्रिया में 4 से 6 मिली मीटर व्यास वाले डिजायनदार बीड जैसे गणेश, बुद्ध आदि के आकार वाले सीप के भीतर उसके दोनों खोलों को अलग कर डाला जाता है। इसमें सर्जिकल उपकरणों से सतह को अलग किया जाता है। कोशिश यह की जाती है कि डिजायन वाला हिस्सा सतह की ओर रहे। वहाँ रखने के बाद थोड़ी सी जगह छोड़कर सीप को बंद कर दिया जाता है।

सतह कोशिका की सर्जरीरू यहाँ सीप को दो हिस्सों– दाता और प्राप्तकर्त्ता कौड़ी में बाँटा जाता है। इस प्रक्रिया के पहले कदम में उसके कलम (ढके कोशिका के छोटे–छोटे हिस्से) बनाने की तैयारी है। इसके लिए सीप के किनारों पर सतह की एक पट्टी बनाई जाती है जो दाता हिस्से की होती है। इसे 2ध्2 मिली मीटर के दो छोटे टुकड़ों में काटा जाता है जिसे प्राप्त करने वाले सीप के भीतर डिजायन डाले जाते हैं। यह दो किस्म का होता है– न्यूक्लीयस और बिना न्यूक्लीयस वाला। पहले में सिर्फ कटे हुए हिस्सों यानी ग्राफ्ट को डाला जाता है जबकि न्यूक्लीयस वाले में एक ग्राफ्ट हिस्सा और साथ ही दो मिली मीटर का एक छोटा न्यूक्लीयस भी डाला जाता है। इसमें ध्यान रखा जाता है कि कहीं ग्राफ्ट या न्यूक्लीयस बाहर न निकल आएँ।

प्रजनन अंगों की सर्जरीरू इसमें भी कलम बनाने की उपर्युक्त प्रक्रिया अपनाई जाती है। सबसे पहले सीप के प्रजनन क्षेत्र के किनारे एक कट लगाया जाता है जिसके बाद एक कलम और 2–4 मिली

मीटर का न्यूक्लीयस का इस तरह प्रवेश कराया जाता है कि न्यूक्लीयस और कलम दोनों आपस में जुड़े रह सकें। ध्यान रखा जाता है कि न्यूक्लीयस कलम के बाहरी हिस्से से स्पर्श करता रहे और सर्जरी के दौरान आँत को काटने की जरूरत न पड़े।

देखभाल

इन सीपों को नायलॉन बैग में 10 दिनों तक एंटी–बायोटिक और प्राकृतिक चारे पर रखा जाता है। रोजाना इनका निरीक्षण किया जाता है और मृत सीपों और न्यूक्लीयस बाहर कर देने वाले सीपों को हटा लिया जाता है।

तालाब में पालन

देखभाल के चरण के बाद इन सीपों को तालाबों में डाल दिया जाता है। इसके लिए इन्हें नायलॉन बैगों में रखकर (दो सीप प्रति बैग) बाँस या पीवीसी की पाइप से लटका दिया जाता है और तालाब में एक मीटर की गहराई पर छोड़ दिया जाता है। इनका पालन प्रति हेक्टेयर 20 हजार से 30 हजार सीप के मुताबिक किया जाता है। उत्पादकता बढ़ाने के लिए तालाबों में जैविक और अजैविक खाद डाली जाती है। समय–समय पर सीपों का निरीक्षण किया जाता है और मृत सीपों को अलग कर लिया जाता है। 12 से 18 माह की अवधि में इन बैगों को साफ करने की जरूरत पड़ती है।

मोती का उत्पादन

पालन अवधि खत्म हो जाने के बाद सीपों को निकाल लिया जाता है। कोशिका या प्रजनन अंग से मोती निकाले जा सकते हैं, लेकिन यदि सतह वाला सर्जरी का तरीका अपनाया गया हो, तो सीपों को मारना पड़ता है। विभिन्न विधियों से प्राप्त मोती खोल से जुड़े होते हैं और आधे होते हैंय कोशिका वाली विधि में ये जुड़े नहीं होते और गोल होते हैं तथा आखिरी विधि से प्राप्त सीप काफी बड़े आकार के होते है।

मोती उत्पादन शुरू करने से पहले निम्नलिखित तथ्यों और मुख्य बिंदुओं पर विचार करना चाहिय ।

मोती बनाने में एक दीर्घकालिक समय लगता है, कभी–कभी बड़े प्रारंभिक निवेश के साथ कई वर्षों तक और आपको मोती संस्कृति प्रक्रिया में सफल होने के लिए कड़ी मेहनत करनी होगी और उच्च गुणवत्ता वाले मोती का उत्पादन करना होगा ताकि आप एक बड़ा लाभ कमा सकें। मोती की गुणवत्ता आकार, चमक, आकार आदि पर निर्भर करती है।

मोती की खेती के लिए ये हैं जरूरी बातें

मोती की खेती की शुरुआत एक साधारण किसान 20 हजार से कर सकता है। अगर किसान के पास तालाब है तो सीप खरीदकर उसे चार– पांच दिन पानी में रखकर वहां के आक्सीजन के अनुकूल बनाया जाता है। अगर किसान ने ट्रेनिंग खुद ली है तो इसकी सर्जरी करके एंटीबायोटिक देते हैं जिससे सीप 10 से 20 प्रतिशत की खराब होती हैं। इसकी खेती को करने का सही समय मार्च–अप्रैल, सितम्बर और अक्टूबर महीना है। पीएच मान सात से आठ होना चाहिए। तालाब का पानी महीनें में एक से दो बार बदला जाता है। इन सीप का खानपान बहुत महंगा नहीं होता है।

उत्तराखंड के देहरादून में रहने वाली आशिया अपने घर पर रहकर ही मोती की खेती कर रही है. इस खेती से वह 4 लाख रुपए से ज्यादा सालाना की कमाई कर रही हैं. आपको बता दें कि इस तरह की खेती के लिए सरकार लोन भी देती है. साथ ही, कई सरकारी संस्थाएं इसकी ट्रेनिंग भी कराती है.आम फसलों की खेती की तरह ही मोती को भी प्राकृतिक रूप से तैयारी किया जाता है. मोती की खेती करने के लिए इसे मोती की खेती की शुरुआत एक साधारण किसान 20 हजार से कर सकता है। अगर किसान के पास तालाब है तो सीप खरीदकर उसे चार– पांच दिन पानी में रखकर वहां के आक्सीजन के अनुकूल बनाया जाता है। अगर किसान ने ट्रेनिंग खुद ली है तो इसकी सर्जरी करके एंटीबायोटिक देते हैं जिससे सीप 10 से 20 प्रतिशत की खराब होती हैं। इसकी खेती को करने का सही समय मार्च–अप्रैल, सितम्बर और अक्टूबर महीना है। पीएच मान सात से आठ होना चाहिए। तालाब का पानी महीनें में एक से दो बार बदला जाता है। इन सीप का खानपान बहुत महंगा नहीं होता है।

उत्तराखंड के देहरादून में रहने वाली आशिया अपने घर पर रहकर ही मोती की खेती कर रही है. इस खेती से वह 4 लाख रुपए से ज्यादा सालाना की कमाई कर रही हैं. आपको बता दें कि इस तरह की खेती के लिए सरकार लोन भी देती है. साथ ही, कई सरकारी संस्थाएं इसकी ट्रेनिंग भी कराती है.आम फसलों की खेती की तरह ही मोती को भी प्राकृतिक रूप से तैयारी किया जाता है. मोती की खेती करने के लिए इसे2) बीज कहां से मिलेगा– सबसे पहले आपको इस खेती के लिए कुशल वैज्ञानिकों से प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जो भारत सरकार के द्वारा कराया जाता है. प्रशिक्षण के बाद आपको सरकारी संस्थानों या मछुआरों से सीप खरीदने होंगे. सीपों को खुले पानी में दो दिन के लिए छोड़ा जाता हे. इससे उनके उपर का कवच और मांसपेशियां ढीली हो जाती हैं।

सीपों को ज्यादा देर तक पानी से बाहर नहीं रखना चाहिए. मांशपेशियां ढीली होने के बाद सीपों की सर्जरी कर उनकी सतह पर 2 से 3 एमएम का छेद करके उसमें रेत का एक छोटा कण डाला जाता है. यह रेत का कण जब सीप को चुभता है तो वह उस पर अपने अंदर से निकलने वाला पदार्थ छोड़ना शुरू कर देता है. सीपों को नायलॉन के बैग में रखकर (एक बैग में 2 से 3) तालाब में बांस या पीवीसी के पाईप के सहारे छोड़ दिया जाता है. 15 से 20 महीने बाद सीप में मोती तैयार हो जाता है आप उसका कवच तोड़कर मोती निकाल सकते हैं.

सरकार देती है ट्रेनिंग– इंडियन काउंसिल फॉर एग्रीकल्चर रिसर्च के तहत एक नए विंग सीफा यानि सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ फ्रेश वॉटर एक्वाकल्चर इसके लिए निशुल्क ट्रेनिंग कराती है.

इसका मुख्यालय भुवनेश्वर में है और यह 15 दिनों की ट्रेनिंग देता है, जिसमें सर्जरी समेत सभी कुछ सिखाया जाता है. मोती की खेती पहले समुद्र तटीय क्षेत्रों में की जाती थी लेकिन सीफा के प्रयोगों के बाद अन्य राज्य भी इसके लिए मुफीद हैं.

कहां से मिलेगा लोन– मोती की खेती का यदि आपके पास प्रशिक्षण है तो इसे बड़े स्तर पर शुरू करने के लिए आप लोन भी ले सकते हैं. इसके लिए नाबार्ड और अन्य कमर्शियल बैंक आपको 15 सालों के लिए सिंपल इंटरेस्ट पर लोन उपलब्ध कराते हैं.

केंद्र सरकार की ओर से इस पर सब्सिडी की योजनाएं भी समय–समय पर चलाई जाती हैं. यदि आप इसमें कामयाब हो जाते हैं तो अपने बिजनेस को बढ़ाकर कंपनी भी बना सकते हैं और कमाई करोड़ों में कर सकते हैं.

मोती बनाने की प्रक्रिया

छोटे स्तर पर मोती बनाने के लिए 500 वर्गफीट के तालाब में 100 सीप पाला जाता है। इसके बाद सीपों की सर्जरी के जरिए उसमें बीज डालना होता है। इसके लिए पहले प्रशिक्षण लेना होता है फिर सीपों में सर्जरी की जाती है। सीपों को खुले पानी में 2 दिनों के लिए छोड़ा जाता है। जिसस कवच और मांसपेशियां ढीली हो जाती हैं। फिर सतह पर 2 से 3 एमएम का छेद कर रेत का छोटा कण डाला जाता है। सीप को जब रेत का कण चुभता है तो पदार्थ छोड़ना शुरू कर देता है। फिर सीपों को नायलॉन के बैग में डालकर पाइप के सहारे तालाब में छोड़ा जाता है। 20 महीनों बाद सीप में मोती तैयार हो जाता है, जिसे कवच तोड़कर निकालते हैं।

निष्कर्ष :– निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यदि किसान को सही प्रशिक्षण दे कर सीप से मोती का उत्पादन करने के लिय प्रोत्साहित किय तो वह अपनी आय को बढ़ा सकता है । खेति कि हानि कि भरपाइ हो सकति है इसके साथ साथ किसान कि आय में बढ़ोतरि होने से खेति से निरस्ता खत्म हो जायगी । वह धिरे धिरे खेति से व्यवशाय कि तरफ बढ़ने लगेगें और आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो जायगा।

संदर्भ सूचि :

इंडियन काउंसिल फॉर एग्रीकल्चर रिसच

सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ फ्रेश वॉटर एक्वाकल्चर, भुवनेश्वर

जय प्रकाश सोशल मिडिया, गॉव घर सोशल मिडिया,

जागरण जोश, गूगल सर्च,

इंडिया डेवलपमेंट गेटवे

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Role of Microfinance in India

Dr. Suresh Kumar

Assistant Teacher, Raj Inter College, Bettiah, West Champaran, Bihar

Introduction :

Poverty Alleviation is one of the primary objectives of any planning in a national economy. Therefore, it becomes imperative to formulate situation specific poverty alleviation policies and programmers for generation of a minimum level of income for rural poor, which form the substantial percentage of national population in developing societies. One initiative is credit infusion in rural sector. Increased involvement of banks in rural credit in post nationalization in India was considered as integral art of sociopolitical development effort for the rural areas. However, despite a vast network of commercial, co- operative and rural banks and other financial institutions no significant impact could be made on the grim poverty situation prevailing in rural India. Knowing that the success of any credit programme for the rural areas hinges on its high out reach and people friendly approach, the Governmental and other institutional players stepped into provide favorable environment to the poor to develop their organizations. The decade of 1990's witnessed growth of various people's organization. In this situation, self help groups approach is the key element of social mobilization. linked with micro finance, the self help groups approach and movement has now been accepted as an effective intervention strategy for poverty alleviation.

Micro Finance :-

The concept of Micro Finance were introduced by the nobel prize winner, Muhammad Yunus in Bangladesh in the form of "Grameen Bank". This concept were envolved in Bangladesh, Indonessia, Philippiens, Srilanka and were adopted in India too. Financing through SHG's has been considered instrumental in people's empowerment, mobilizing thift and extending credit. Micro Finance in India evdved to fill the gaps credited by formal banking institutions.

Mirco Finance is the provision of financial services to the poor people there financial services may take the form of Micro Saving, Micro Credit and Micro Insurance. It is also referred to as the alternate commercial sector targeting the poor.

Microfinance is holistic concept. It includes not only Micro Credit but so support services as saving, insurance technical assistance and capacity buildings.

Objectives of Micro Finance :-

Main objective of Micro Finance are poverty alleviation and Improving socio economic status of poor people. Promotes socio economic development at grass root level. Develop and Strength SHG's. Provide livelihood training to weaker section. Empower and Mainstream women. Organize and co-ordinate networking of grass root Level organization and removing illiteracy.

Principles of Micro Finance :-

1. Effective and powerful tool to fight poverty.
2. About building permanent local financial institution that can attract domestic deposits recycle them into loans and provide other financial services.
3. Building financial system that serves the poor.

Self Help Groups :-

Self Helps Groups (SHG's) form the basic constituent unit of the Micro Finance moment in India. An SHG is a group of a few individual usually poor and often women. Who pool their saving into a fund from which they can borrow as and when necessary. Such a group is linked with bank a rural Co-operative or Commercial Banks. Where they maintain a group account overtime the bank begins to lend to the group as units without collateral relying on self monitoring and peer pressure within the group for repayment of these loans.

An SHG consists of five to twenty persons, usually all from different families often a group kike this is given a name. Each such group has a leader and a deputy leader elected by the group members. The members decide among them selves the amount of deposit they have to make individually to the group account. The starting monthly individual deposit level is useally low Rs. 10 of Rs. 20 for a group of size 10, this translate to Rs. 100 to Rs. 200 of groups savings per month on the basic of the resolutions adopted and signed by all members of the group the manager of a local rural or commercial bank opens a saving bank account. The saving are collected by a certain data from individual members and deposited in the bank account.

SHG's is voluntary association of people farmed to achieve both social and economic goals. In this micro financing programmes, the promotion and bank linking of SHG is not seen as a credit programme but as part of an overall arrangement of providing financial services to the in a sustainable manner and also an empowerment process for the members of these SHG's.

So, the SHG's not only play a major role in poverty alleviation in rural India but are instrumental in creating consciousness among a section of person who are otherwise neglected people below poverty line, mostly women voluntarily join SHG's as member.

SHG's is based on the following principles :-

1. Creation of a common fund by contributing small saving on the regular basis.
2. Flexible democratic system of working group lender are elected by members.

3. Amounts interloaned are small frequent and for short duration.
4. Transparency is operation of the group and participatory decision making ensure that the benefits to member's are evenly distributed.
5. SHG's hold regular meeting to ensure participation of members in the activities of the group.

There are so many benefit of financing through SHG :-

1. Creates income generate activity.
2. Saving mobilized by poor.
3. Reduction of transaction cost for both leader and borrowers.
4. Tremendous improvement in recovery.
5. Remarkable empowerment of poor women.

Most of the SHG's are promoted by NGO and other formal Govt. Agencies like Commercial Bank, RRB, NABARD, SIBBI, SEWA, MYRADA, ADITHI, PRADAN, etc.

SWA-SHAKTI and SWAYAM SIDHA are two important project's aimed at socio economic empowerment of women throught promoting SHG's Bank linkage and development income generating activities. So, SHG approach is the key element of social mobilization small funds are raised for day to day needs. The saving groups when transformed to earning groups not only increase the productivity of women but the credibility also. SHG is a good way to stop the exploitation of the consumer.

The main advantage of self help groups lies in their liability and consequent "Peer Monitoring" of members borrowers. In association with sponsoring NGO's, they serve to reduce the transaction and monitoring costs of small lending for banks as well as reach credit to the absolute poor. It is therefore hardly a surprise that they have attracted considerable attention in rural banking sector as well as from the government in recent years. 75% SHG's formed by NGO's and formal agencies by directed financed by banks and 16% SHG's formed and financed banks.

The Role of NGO's in Micro Finance :-

The sector received a major boost in the 1990's with the entry of several Non- Government organization (NGO's). Many of these NGO's have been previously functioning in different developmental roles among the poor and now added micro credit to the list of services they provided. NGO's provided the leadership and management necessary in forming and running such groups in most cases. They also act as the crucial link between these groups and formal banking system.

There are several major legal, regulatory and financial challenges for NGO's involved in Microfinance activites. Legally, they are usually registered as societies and trust with no equity capital and consequently can never be "Capital Adequate" in leveraging debt. Also, these NGO's do not come under any specific control by any regulatory body and their only responsibility is to submit annual account to the registrar of sociaties. This lack of specific

regulatory provisions has acted as a mixed blessing in the area. It has allowed for organic growth and spread of NGO's MFI's and at the same time has led to lack of financial sustainability for most of these organizations, sometimes with disastrous effects on the good will of Microfinance at large.

So, NGO's are the significant player in the Microfinance sector. It is an voluntary organization established to social intermediation. MYRADA (Mysore Resettlement and Development Agency) were the pioneer to promote SHG. Non-Government organization is a charitable and religious association that mobilise private funds for development, planning services and promote community organization.

There are many NGO's running in the microfinance programme like as SEWA (Self Employed Women's Association) is running in Gujrat and women forum in the Tamilnadu. BASIX are in Hydrabad. PRADAN and NIDAN are running in Bihar. The performance of organization like SEWA in Western India and SHARE and BASIX in Southern India have convinced many a sceptic that Microfinance can indeed make differences in India as well. Over the past decade, NABARD's "SHG-Bank linkage program" aimed at connecting self help groups of poor people with banks. Has, in fact created the largest Microfinance network in the world. NGO's have helped SHG's like social and capacity building activities, facilitate training of SHG's undertake Internal audit, promote new groups. As we know, rural women has no well skill and money. In this condition, NGO's gives training to rural women through SHG in the different sector and improve their condition, It gives new technique by which generate income activities.

Government Support for SHG based financing :-

While most of the SHG formation process has initially been in non-government hands, the developmental potential of the SHG based micro finance process has not gone unnoted by government. In recent year, government developmental programs have also sought to target the poor through the SHG's. Starting with the Rastriya Mahila Kosh and Indira Mahila Yojana, the government has used the SHG approach in may of its anti poverty projects.

The Government has started multiproug approach for poverty Alleviation through anti poverty project and Govt. programme and the Govt. also credit support in the form of Micro Credit to urban and rural poor household. The most important of the Government programs using the SHG approach is the Swarna Jayanti Gram Swarojgar Yojana (SGSY) in 1999. With increasing acceptance of the SHG Based developmental approach there is pressure set on village and block level administrator to acheive target of forming a certain number of SHG's by specified data. Thus Panchayats are also promoting SHG's in many areas.

The goal of the programme is to enable the poor attain income generating assts. According to SGSY Guidlines "The SHG approach helps the poor to build their Self- Confidence through Community action. Interaction in group meeting and collective decision making enable them in identification and prioritization of thin needs and resources. The process would ultimately lead to the strenghthening and socioeconomic empowerment of the rural poor as well as improve their collectie bargaining power."

The SGSY strategy includes identifying a cluster of activities at the block level and funding SHG's to perform these activities. The programme is implemented countrywide through a hierarchy of SGSY committees, at the Central, State, District and Block levels. The actual implementation requires close interaction between the government officials at various levels, particularly the DRDAs (Deistic Rural Development Agencies), Managers from the participating banks, NABARD, as wellas NHO's. The actual disbursement of government funds would be through the DRDAs who would distribute the subsidy to banks. The programme recognizes the important role that NGO play in the formation and nurturing of self help groups and seeks to include them in the exercise.

SGSY is not the first or only government programme to try SHG approach. DWCRA (Development of Women and Children in Rural Areas) for instance is also based on the same approach. The Govt. programme is the excellent source of subsidized credit.

Government established many fund special for Women land this fund provide financial support and training and improve their condition like as.

1. Rastriya Mahila Kosh.
2. Mahila Vikas Nidhi.
3. Rastriya Sewa Samiti.
4. Indra Mahila Yojana.
5. The Padmavathy.

Government has removed poverty and improve their Socio Economic status by following tools.

Human resource development :- by education, skill up gradation, health services.

1. Economic development :- by propagation of modern agriculture and technology.
2. Attitudinal change :- to promote greater equality, self-reliance, environment sensitivity.
3. Self management and momentum :- for promotion of saving and credit, community management of infrastructure.

Conclusion :-

Microfinance intervations are well recognized world over, as an effective tool for proverty alleviation and improving socio economic condition of the poor. In India too, Microfinance is making headway in its efforts for reducing poverly and empowering women in particular. The impact on microfinance programme through SHG's has been effective in making positive social change to all members, irrespective of the direct borrowers of the micro credit. In the rural context, the SHG's have facilitated the poor, especially the women to overcome the existing constraints grappling the formal credit institution. These groups provide considerable social protection and income opportunities to the members. The SHG's

have acquired a prominent status in maximizing social and financial return. The promotion of Income generation activities for the poor rural women is perceived as a powerful medium to resolve several socio economic problems such as reduction in poverty, provision of goods and services appropriate to local needs, redistribution of income and opportunities in the community etc.

References :

1. Harpur, M, Self Help Group, Some Issues from India small enterprise development volume VIII, NO-02, 1997, PP.53-54.
2. Kingree, J.B. & Barry Rubah, R. Understanding self help group in India, Pub-New Delhi, 1994 PP.272-273.
3. Girija, S. & D.S.K. Rao - Financing of SHG by Bnks - Some Issues Bankers Instituion of Rural Development Lucknow, 1996, PP.49-50.
4. Fisher, Thomas & M.S. Sriram ed; 2002, Beyond Micro Credit, Putting Development Bank into Microfinance, New Delhi : Vistaar Publications, Oxford : Oxfam, PP.29.
5. Ministry of Rural Development, New Delhi, ed.1999, PP.45-45.
6. Harpur, Malcolm 2002, "Promotion of Self Help Groups under the SHG Bank linkage program in India". Work presentel at the seminar on SHG Bank linkage programme at New Delhi, November 25-26, PP.67-69.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारत की परमाणु नीति का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ0 राजेश कुमार श्रीवास्तव

प्रवक्ता राजनीतिशास्त्र,
आदर्श देवकली बाबा स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उदैना, अहरौला, आजमगढ़

भारत ने अपना पहला परमाणु परीक्षण 18 मई 1974 ई0 में पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के शासन काल में किया था। यह परीक्षण राजस्थान के पोखरण में किया गया था, भारत ने परमाणु परीक्षण कर विश्व पटल पर अपनी सैन्य ताकत दर्ज कराई। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने इसे शान्तिपूर्ण परमाणु परीक्षण करार दिया। इसके साथ ही अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन के बाद भारत छठाँ ऐसा देश बन गया जिसने परमाणु परीक्षण किया। इस परमाणु बम का वजन 1400 किग्रा0 था और इसकी क्षमता 12 किलोटन आँकी गई। इस परीक्षण में परमाणु वैज्ञानिक राजा रमन्ना की मुख्य भूमिका रही थी। अमेरिका ने इस पर कड़ी प्रतिक्रिया दी और कहा कि यह 1968 ई0 की परमाणु अप्रसार सन्धि के प्रतिकूल है।

भारत ने दूसरा परमाणु परीक्षण पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल में 11 मई एवं 13 मई 1998 ई0 को राजस्थान के पोखरण में कुल मिलाकर पाँच परमाणु बमों का सफल भूमिगत परीक्षण करके देशवासियो ंको नया सुरक्षा कवच उपलब्ध कराया। भारत द्वारा 11 मई को तीन प्रकार के परमाणु परीक्षण किए गए थे– थर्मोन्यूक्लियर परीक्षण, फिजन परीक्षण तथा लो–यील्ड परीक्षण। इन तीनों परीक्षणों को बहुत ही नियन्त्रित ढ़ंग तथा रेडियोधर्मी किरणों के प्रभाव को रोकते हुए भारत ने अपनी परमाणु अस्त्र बनाने की क्षमता को प्रदर्शित कर दिया। शेष दो परमाणु परीक्षण 13 मई 1998 ई0 को किया। इस कदम के साथ ही भारत की दुनिया भर में धाक जम गई। भारत पहला ऐसा परमाणु शक्ति सम्पन्न देश बना जिसने परमाणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। भारत द्वारा किये गए इन परमाणु परीक्षणों की सफलता ने विश्व समुदाय की नींद उड़ा दी थी। इन परीक्षणों के कारण विश्व समुदाय ने भारत के ऊपर कई तरह के प्रतिबन्ध लगाये थे। इसी कारण भारत ने विश्व समुदाय से कहा था भारत एक जिम्मेदार देश है और अपने परमाणु हथियारों को किसी देश के खिलाफ ''पहले इस्तेमाल'' नहीं करेगा, जो कि भारत की परमाणु नीति का हिस्सा है। भारत ने सन् 2003 ई0 में अपनी परमाणु नीति बनायी जिसमें भारत ने कहा कि वह किसी भी देश पर हमला तब–तक नहीं करेगा जब–तक कि शत्रु देश भारत के ऊपर हमला नहीं कर देता और भारत अपनी परमाणु नीति को इतना सशक्त रखेगा कि दुश्मन के मन मे ंभय बना रहे।

भारत ने कहा कि यदि किसी देश ने भारत पर परमाणु हमला किया तो उसका प्रतिशोध इतना भयानक होगा कि दुश्मन की अपूर्णीय क्षति हो और वह जल्दी इस हमले से उबर न सके। जिन देशों के पास परमाणु हथियार नहीं है उनके खिलाफ परमाणु हथियारों का इस्तेमाल नहीं किया जाएगा। भारत परमाणु मुक्त विश्व बनाने की वैश्विक पहल का समर्थन करता रहेगा तथा भेद–भाव मुक्त परमाणु निःशस्त्रीकरण के विचार को आगे बढ़ाएगा।

भारत में परमाणु हमला करने का निर्णय सिर्फ प्रधानमंत्री के पास होता है। हलाँकि प्रधानमंत्री अकेले निर्णय नहीं ले सकता। प्रधानमंत्री के पास एक स्मार्ट कोड जरूर होता है जिसके बिना परमाणु बम को नहीं छोड़ा जा सकता है। परमाणु बम को दागने का असली बटन तो परमाणु कमाण्ड की सबसे निचली कड़ी या टीम के पास होता है जिसे परमाणु मिसाइल दागनी होती है।

भारत का प्रधानमंत्री सुरक्षा मामलों की कैबिनेट कमेटी राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार और चेयरमैन ऑफ चीफ ऑफ स्टाफ कमेटी की राय लेकर ही परमाणु हमले का निर्णय ले सकता है। भारत का परमाणु कार्यक्रम किसी देश को धमकाने या उस पर हमला करके कब्जा करने के लिए नहीं बल्कि भारत की सम्प्रभुता और सीमाओं की रक्षा करने के लिए है। भारत की परमाणु नीति का सारांश यह है कि– ''पहले भारत छेड़ता नहीं है और जो भारत को छेड़ता है उसको भारत छोड़ता नहीं है।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. समसामयिकी महासागर मार्च 2017
2. आगरा शिखरवार्ता–डॉ0 अनुपम त्यागी

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

अशोक के धम्म एवं उनके द्वारा निर्मित्त शिलालेखों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

ममता रानी

अतिथि सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग,
एस0एन0एस0आर0के0एस0 कॉलेज, सहरसा (बिहार)

प्राचीन भारतीय इतिहास के अन्तर्गत चौथी सदी ई0 पूर्व से दूसरी सदी ई0 पूर्व के मध्य मगध पर बहुत हीं महत्त्वपूर्ण वंश 'मौर्य वंश' के शासन काल का वर्णन मिलता है। जिसकी स्थापना महान सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के द्वारा की गई थी। इन्हीं के प्रतापी पौत्र सम्राट अशोक कहलाये जो बौद्ध धर्म के सबसे बड़े अनुयायी होने के साथ–साथ सबसे बड़े आश्रयदाता भी बने। अपने शासन काल के प्रारंभिक दौर में अशोक ने हिंसात्मक प्रणाली को अपनाया।

डॉ0 विपिन सिन्हा के कथनानुसार– "राज्यारोहण के नवें वर्ष कलिंग जैसे शक्तिशाली राज्य पर आक्रमण किया। भीषण संग्राम और भयानक नर–संहार के बाद उसे विजय प्राप्त हुई। इस युद्ध में लाखों लोग मारे गए, डेढ़ लाख बन्दी बनाये गए और सहस्त्रों घायल हुए। घायलों की चीख–पुकार व विधवाओं के विलाप और अनाथ बालकों के करुण–क्रंदन का उन पर भारी प्रभाव पड़ा। उसका हृदय करुणा से ओत–प्रोत हो गया। उसने इस भीषण रक्तपात और भारी जन–संहार का प्रमुख कारण अपने आपको हीं माना और भविष्य में युद्ध न करने का दृढ़ निश्चय किया। अशोक के बौद्ध होने का प्रत्यक्ष प्रमाण उसके चतुर्दश शिलालेख में से तेरहवें शिलालेख में मिलता है। अशोक ने बौद्धमत के व्यवहारिक पक्ष के समर्थक सिद्धांतों का प्रचार प्रारंभ किया। उसने जिस धर्म का प्रचार किया वह अशोक का धम्म कहा जाता है।"[1] इसी धम्म की नीति ने सम्राट अशोक का महानता प्रदान की। पूरे विश्व में इनकी धम्म नीति की आज भी सराहना की जाती है। धम्म की नीति ने समाज की रुपरेखा हीं बदल डालीं। अब शांति व समृद्धि के युग का निर्माण होने लगा। सामाजिक प्रगति होने लगी। साथ हीं बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार होने लगा। निरंतर रुप से मानव के नैतिक उन्नति के लिए प्रयास किया जाने लगा। जन–कल्याण के कार्यों को किया जाने लगा। बौद्ध धर्म के संपर्क में आने के पश्चात् सम्राट अशोक प्रियदर्शी अशोक बन गए। उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए अपने राज्य सहित सम्पूर्ण भारतवर्ष एवं विदेशों में धर्म–प्रचारकों को भेजा। जगह–जगह पर तथागतों की कल्याणमयी बातों को उद्धृत कराये जिससे अधिक–से–अधिक लोगों तक उन बातों को पहुँचाया जा सके। पेड़–पौधे लगवाये गए। नल–कूप की व्यवस्था की गई। चिकित्सालय बनवाये गये। इन्हीं कार्यों एवं नीतियों ने अशोक को विश्वविख्यात बना दिया। जिन नियमों एवं सिद्धांतों के पालन से इंसान में इंसानियत पैदा हो सकता है, अशोक के द्वारा उद्धृत कराये गए लेखों एवं शिलालेखों में उसे ही 'धम्म' कहा गया है। **रोमिला थापर** का मत है कि "धम्म कल्पना अशोक की निजी कल्पना थी किंतु अशोक के शिलालेखों में धम्म की जो बातें दी गई हैं उनसे स्पष्ट है कि वे पूर्ण रुप से बौद्ध ग्रंथो से ली गई है।"[2]

स्तंभलेखों में अशोक के धम्म नीति की विवेचना बहुत ही सटीक ढ़ंग से की गई है। **'दूसरे और सातवें स्तंभलेख' में** धम्म को साधुता की संज्ञा दी गई है। साधुता का अर्थ है– जनकल्याणकारी कार्यों को करना, वाणी में मिठास बनाए रखना, सभी प्राणियों के प्रति अपने स्वभाव एवं व्यवहार में दया का भाव रखना, गुरुजनों का आदर करना, मित्रों, सगे–संबंधियों एवं ब्रहमणों के प्रति दानशीलता का भाव रखना एवं सभी के साथ उचित व्यवहार करना। वहीं **ब्रहमगिरि शिलालेख** में भी इन सभी गुणों के अतिरिक्त एक अन्य गुण की व्याख्या की गई है, जो यह है कि शिष्य द्वारा सदैव गुरुजनों का सम्मान होना चाहिए जो कि भारतीय संस्कृति की सदियों पुरानी परंपरा है। वहीं **तीसरे अभिलेख के** अंतर्गत सम्राट अशोक ने अल्प व्यय एवं अल्प संग्रह करना भी धम्म का हीं एक अंग माना है। सम्राट अशोक ने धम्म की व्याख्या के साथ–साथ धम्म की प्रगति में बाधक तत्वों के बारे में भी बतलाया। बाधक तत्वों के अन्तर्गत क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार आदि को रखा गया है। उन्होंने कहा इंसान को इन सारी बुराईयों से बचना चाहिए। ये सारी बुराईयाँ इंसान को इंसानियत के मार्ग से भटका देता है। अशोक ने आत्म–निरीक्षण एवं आत्म–परीक्षण दोनों पर बल दिया। व्यक्ति की सदैव यह प्रवत्ति रही है कि वह अपने द्वारा किये गए अच्छे कर्मों को हीं याद रखता है जबकि बुरे एवं पाप कर्मों पर उनकी नजर तक नहीं जाती। इसलिए व्यक्ति को यह देखना चाहिए कि ये मनोवेग, निष्ठुरता, क्रोध, ईर्ष्या आदि व्यक्ति को पाप की ओर न ले जाएं और ना हीं उसे भ्रष्ट कर पाए।

धर्मप्रचार के उपायः– सम्राट ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु अपने विशाल साम्राज्य में मौजूद सभी साधनों को नियोजित कर दिया। यह भी माना जाता है कि उनके द्वारा किये गए कुछ उपाय पर्याप्त रुप से मौलिक थे। सम्राट द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु अपनाये गए साधनों को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैः–

1. **धर्म–यात्राओं का प्रारम्भः–** सम्राट अशोक ने इस धर्म का प्रचार एवं प्रसार धर्म यात्राओं से प्रारंभ किया। अशोक के स्वयं की पहली धर्म यात्रा बोधगया से प्रारंभ हुआ। "इन यात्राओं में वह ब्राहमणों और श्रमणों का दर्शन, दान, वृद्धों का दर्शन, धन से उनके पोषण की व्यवस्था, जनपद के लोगों का दर्शन, धर्म का आदेश और धर्म के संबंध में प्रश्नादि किया करता था। अपने अभिषेक के चौदहवें वर्ष में नेपाल की तराई में स्थित (निग्लिवा) निगाली सागर में जाकर उसने कनकमुनि बुद्ध के स्तूप के आकार को द्विगुणित करवाया। बीसवें वर्ष वह बुद्ध के जन्म स्थल लुम्बिनि ग्राम गया, वहाँ शिलास्तम्भ स्थापित करवाया तथा पूजा की। चूंकि वहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था, अतः वहाँ का कर घटाकर 1/8 कर दिया। अशोक के इन कार्यों का जनता के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुई।"[3]
2. **राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्तिः–** सम्राट ने व्युष्ट, रज्जुक, प्रादेशिक तथा युक्त नामक पदाधिकारियों की नियुक्ति किया जिनका काम जनता के बीच जाकर धर्म का प्रचार करना था।
3. **धर्मश्रावन तथा धर्मोपदेश की व्यवस्थाः–** धर्म प्रचार के उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु सम्राट ने धम्म सावन एवं धम्मानुसधि की व्यवस्था करवायी जो अलग–अलग जगहों पर घुमकर लोगों को इस धर्म के बारे में जानकारी देते थे तथा धर्म से संबंधित घोषणाओं को जनता तक पहुँचाने का कार्य करते थे।
4. **धर्म–महामात्रों की नियुक्तिः–** बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अशोक ने पदाधिकारियों का एक नया वर्ग बनाया जिन्हें धर्म महामात्र कहा गया। इनका कार्य विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच के

द्वेष–भाव को समाप्त कर धर्म की एकता पर बल देना था। इनका प्रमुख कर्त्तव्य धर्म की रक्षा एवं वृद्धि करना था।

5. **दिव्य–रुपों का प्रदर्शनः–** बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए पारलौकिक जीवन में आस्था रखने वाले सम्राट अशोक ने जनता के मध्य उन स्वर्गीय सुखों का प्रदर्शन करवाये जो मनुष्य को देवत्व प्राणित पर स्वर्ग में प्राप्त होते हैं।
6. **धर्मलिपियों का खुदवानाः–** सम्राट ने शिलाओं एवं स्तंभों पर बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को उत्कीर्ण करवाया जिससे लोगों को चिरस्थायी लाभ मिल सके।
7. **विदेशों में धर्म प्रचारकों को भेजनाः–** बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए बहुत सारे लोगों को अलग–अलग देशों में भेजा। जैसे–

धर्मप्रचारक	देश
मज्झन्तिक	कश्मीर तथा गन्धार
धर्मरक्षित	ऊपरान्तक
सोन तथा उत्तर	सुवर्णभूमि
महारक्षित	यवन देश
रक्षित	बनवासी
महेन्द्र तथा संघमित्रा	श्रीलंका

"इस प्रकार बौद्ध धर्म ने भारत की सीमाओं का अतिक्रमण कर एशिया के विभिन्न भागों में फैल गया और यह अन्तर्राष्ट्रीय धर्म बन गया। बिना किसी राजनीतिक एवं आर्थिक स्वार्थ के धर्म प्रचार का यह पहला उदाहरण था और इतिहास में दूसरा उदाहरण नहीं है।"[4]

अशोक द्वारा निर्मित शिलालेखः– सम्राट अशोक ने स्वयं एवं धर्म से संबंधित जानकारियों को शिलालेख, स्तंभलेख एवं गुहालेख के माध्यम से आम जनों तक पहुँचाया।

(1) शिलालेख–

(क) लघु शिलालेखः– यह शिलालेख दो तरह के हैं नं0–1 तथा नं0–2। नं0–2 तरह के शिलालेख मैसूर के चिन्तल जिले के सिद्पुर जातिंग रामेश्वरी और ब्रहमगिरि नाम स्थानों के अलावा मास्की, नविमय, पल्का, इरामुदी नामक स्थानों पर मिलते हैं।

(ख) लघु शिलालेखः– इन शिलालेखों के माध्यम से सम्राट अशोक

के राजनीतिक एवं नैतिक विचारों से संबंधित जानकारियाँ प्राप्त होती है। इन शिलालेखों की तिथि 257 ई0पू0 एवं 256 ई0पू0 है। यह निम्न स्थानों पर प्राप्त हुए हैं–

मनसेहरा (हजार जिला)

गिरनार (जूनागढ़ के समीप)

कालसी (देहरदून जिला)

इरागुदी (करनाल जिला)

धौली (पुरी जिला)

शहबाज गढ़ी (पेशावर जिला)

(ग) दो कलिंग शिलालेखः– यह शिलालेख धौली एवं जोगढ़ नामक स्थानों से प्राप्त हुआ है। इनकी तिथि 256 बी0सी0 है। इन शिलालेखों में कलिंग के साथ–साथ अन्य सीमान्त प्रदेशों में रह रहे लोगों के साथ किये गए व्यवहार की जानकारियाँ हैं।

(घ) भाब्रू शिलालेखः– इस शिलालेख में ऐसे 7 उद्धरण प्रस्तुत किये गए हैं जो बौद्ध धर्म से संबंधित होने के साथ–साथ सम्राट अशोक को सर्वप्रिय भी थे और वे चाहते थे कि उनकी प्रजा उन सारी बातों को पढ़कर उनके अनुसार आचरण भी करे।

(2) स्तंभलेख

(क) सप्त स्तंभ लेखः– यह स्तंभलेख 6 स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

टोपरा	–	दिल्ली
मेरठ	–	दिल्ली
कौशाम्बी	–	इलाहाबाद
रायपुरवार	–	चम्पारण

लौरिया अरेराज एवं लौरिया नन्दगढ

(ख) दो तराई स्तंभ लेखः– रुम्मिनदेई तथा निग्लिव ग्राम से प्राप्त इन लेखों के तहत बौद्ध धर्म के तीर्थस्थानों एवं तीर्थ यात्राओं के बारे में बताया गया है।

(ग) चारा गोरा स्तंभ लेखः– इन स्तंभलेखों में से एक झारखंड राज्य के राँची और दूसरा उत्तरप्रदेश के सारनाथ की लाटों पर खुदे हुए हैं। अन्य दो प्रयोग में है। इतिहासकारों के अनुसार इन स्तंभों को बौद्ध धर्म में उत्पन्न हो चुके मतभेदों को समाप्त करने हेतु लिखवाया गया था।

(3) गुहालेखः– इसकी कुल सं0 3 है। इससे यह पता चलता है कि अशोक की सहिष्णुता की नीति किस प्रकार की थी।

अभिलेखों की भाषा, लिपि व महत्त्वः– सम्राट अशोक द्वारा निर्मित्त अभिलेखों की भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इन अभिलेखों का महत्त्व इतना अधिक है कि इससे हमें सम्राट अशोक के समय की सभी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक बातों की जानकारी मिल जाती है।

"ईसा से पहले की पाँच शताब्दियों में भारतीय इतिहास में जिन व्यक्तियों में देश की गतिविधियों व परिवर्त्तन की बहुत सी धाराएँ सबसे अधिक प्रवाहित करती हैं उसमें अशोक का एक विशेष स्थान है।"[5]

निष्कर्षः– अंततः हम यह कह सकते हैं कि सम्राट अशोक का धम्म व्यावहारिक फलमूलक होने के साथ–साथ चरित्रार्थ योग्य था। व्यक्ति के जीवन–जीने के सही तरीकों को बतलाते हुए इस धम्म एवं

शिलालेखों की प्रासंगिकता वर्त्तमान समय में भी बनी हुई है। आज भी हमारा समाज अगर उन सारी बातों को आत्मसाथ कर ले तो सबका जीवन सुखमय एवं शांतिमय बन जाएगा। इस धरती पर हीं उन्हें स्वर्ग के सुखों की प्राप्ति हो जाएगी। प्रत्येक मनुष्य को उच्च आदर्श, सिद्धांत, दयालुता, उदारता आदि की भावना को सिखलाता हुआ सम्राट अशोक की यह धम्म नीति एवं शिलालेख पूरे विश्व के इतिहास में अग्रनीय, अतुलनीय एवं अद्वितीय है।

संदर्भः–

1. 'प्राचीन भारत का इतिहास' – डॉ0 विपिन सिन्हा, ज्ञानदा प्रकाशन, सी0 एण्ड डी0, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0– 134–335
2. 'प्राचीन भारत का इतिहास' – द्विजेन्द्रनारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ सं0– 187
3. 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति' – के0सी0 श्रीवास्तव, यूनाइटेड बुक डिपो 21, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद–211002,15वीं आवृति 2019–20 संसोधित तथा परिवर्धित, पृष्ठ सं0–231 डी0, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0– 134–335
4. 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति' – के0सी0 श्रीवास्तव, यूनाइटेड बुक डिपो 21, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद–211002,15वीं आवृति 2019–20 संसोधित तथा परिवर्धित, पृष्ठ सं0–231–232
5. 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति' – शिव कुमार गुप्त, पंचशील प्रकाशक, फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर–302003, पृष्ठ सं0–0212

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

वेदाङ्ग में कल्प सूत्र का महत्व

डॉ0 यशवन्त कुमार यादव

प्रवक्ता संस्कृत,
आदर्श देवकली बाबा स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उदैना अहरौला आजमगढ़

कल्प शब्द के अनेक अर्थ होते है, जैसे 'व्यवहार में लाने योग्य उचित समर्थ धार्मिक कर्तव्यो का विधि विधान आदि।'[1] सूत्र का तात्पर्य है– धागा, डोरी, सूत्र ग्रन्थ तथा आपस्तम्ब सूत्रविधि, धर्मसूत्र आज्ञप्ति (विधि) आदि।[2] कल्प सूत्र से तात्पर्य है याज्ञिक विधि विधानो पर प्रकाश डालने वाला वैदिक साहित्य।

वेद के क्रिया पक्ष का समुचित उद्घाटक वेदाङ्ग कल्प है। कल्प नामक वेदाङ्ग अन्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। कल्प से सम्बन्धित अनेक वेदो के ब्राह्मण तथा सूत्र ग्रन्थ उपलब्ध होते है। आचार्य विष्णुमित्र का कथन है कि 'वेद विहित कर्मो का क्रमपूर्वक विवेचन करने वाला कल्प है।' ब्राह्मण ग्रन्थो की रचना की पृष्ठ भूमि का यह तथ्य समाहित था कि यज्ञ परक विधि–विधानो का निरूपण किया जा सके और साथ ही यह भी उद्भावित किया जा सके उनमें वेद ऋचाओं का किस प्रकार विनियोग किया जाता है। कालान्तर में यह आवश्श्यकता महसूस की गई कि यदि यज्ञ–परक विधानो और संस्कारों का संक्षिप्त सूत्रात्मक निरूपण किया जाय तो वह यजन के क्रियात्मक पक्ष हेतु अधिक उपयोगी होगा। आचार्य सायण के अनुसार–'कल्प सूत्र मंत्रो का विनियोग बताकर याज्ञिक अनुष्ठान की विधि का प्रतिपादन है और यही उनकी उपकृति है।'[3] कल्प वेदाङ्ग से सम्बन्धित ग्रन्थ सूत्रात्मक है। सूत्र के विषय में विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है कि–'सूत्र में अक्षर कम हो, सब बात सार के रूप में प्रस्तुत कर दी गई हो और अभिप्राय को असंदिग्ध रूप प्रकट किया गया हो।'[4]

कल्प सूत्रो की आवश्यकता क्यों पड़ी ? इसके उत्तर में आचार्य बलदेव उपाध्याय का यह कथन द्रष्टव्य है कि–'ब्राह्मण युग के प्रभावानुसार यज्ञ ही वैदिक आर्यों का प्रधान धार्मिक कृत्य था, परन्तु उसके बहुत ही विस्तृत होने से याग विधान के नियमों को संक्षेप तथा व्यवस्थित रूप में ऋत्विजों के व्यावहारिक उपयोग के लिए प्रतिपादित ग्रन्थों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और इसकी पूर्ति के लिए 'कल्प सूत्रों' का निर्माण प्रत्येक शाखा में सम्पन्न हुआ।'[5]

कल्प सूत्रो ने ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिपादित यजन–विधान को सामाजिक व्यवस्थित एवं सार्थक अर्थवत्ता प्रदान की जिससे ऋत्विजो के यज्ञ विषयक व्यावहारिक प्रयोजन में सफलता मिली। कल्प सूत्रो का महत्व इस तत्व से भी आकलित किया जा सकता है कि वे सम्बन्धित आचार्यो के स्वाध्याय के प्रमुख अंग बन गये। स्थिति यहा तक हो गई कि मन्त्रों तथा ब्राह्मणों का महत्व घट गया। कल्प सूत्रो के इस महत्व के कारण ही इनके रचयिता स्वयं नये चरणो के प्रवर्तक बन गये।[6]

सन्दर्भ :

1. संस्कृत हिन्दी साहित्य शब्दकोष– वामन शिवराम आप्टे पृ0 258
2. उक्त पृष्ठ 1119
3. अतः कल्प सूत्र मन्त्र विनियोगेन क्रत्वनुष्ठानमुपदिश्य अकरोत।
(प्रा0भा0 इति0 पृष्ठ 63)
4. अल्पाक्षरमसदिग्धं साखद् विश्वतो मुखम्।
अस्तोमनवद्यं च सूद्यं सूत्र विदो विदुः।। (विष्णुधर्मोत्तर प्रा0भा0 इति0 पृष्ठ 63)
5. आचार्य बलदेव उपाध्याय– वैदिक साहित्य पृष्ठ 306
6. आरूण पराशर शाखा ब्राह्मणस्य कल्परूपत्वम्
माक्सम्यूलर हि0ए0सं0लि0 पृष्ठ 152

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

निराला काव्य का रचना – विकास एवं वैविध्य क्रम

डॉ. शिल्पी कुमारी

पूर्ववर्ती शोध छात्रा

स्नाकोत्तर हिन्दी विभाग

वीर कुँवर सिंह विश्वविधालय, आरा, बिहार

यद्यपि निराला जी अपनी बहुमुखी काव्य प्रवृत्ति के कारण किसी भी वाद के अन्तर्गत नही आ पाते तथापि उन्हे छायावाद के चार प्रभुत्व स्तम्भो मे परिगणित किया गया है- निराला जैसे कवि के लिए ऐसा दृष्टिकोण संकुचित ही कहा जाएगा।

यद्यपि निराला जी छायावाद के प्रवर्तक और पोषक कवि है किंतु उसके साथ ही उनके काव्य मे आधुनिक काव्य की अन्य धाराओं विशेषता प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के बीच भी विधमान है। दूसरे शब्दों में, यह कहना समीचीन है कि इन काव्य प्रवृतियों के उदय के पूर्व ही निराला जी इनकी भावी विकास की दिशा का संकेत कर चुके थे। आधुनिक हिन्दी काव्य के क्षेत्र मे निराला जी को ही भाषा भाव छंद अभिव्यंजना और प्रतीको के क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय है।

निराला काव्य के विकास के अध्ययन की दो दिशाएं हो सकती हैं- काल क्रम के आधार पर तथा काव्यगत-प्रवृतियों के आधार पर है।

विद्वानो ने निराला के काव्य-विकास को पाँच चरणो मे बाँटा है-

(क) पहला चरण (सन् 1916 से सन् 1927 तक)- परिमल

(ख) दूसरा चरण (सन् 1928 से सन् 1935 तक) नीति का तथा दूसरा अनामिका के कुछ जीत

(ग) तीसरा चरण (सन् 1936 से सन् 1942 तक) अनामिका दूसरी तुलसी दास

(घ) चौथा चरण (सन् 1942 से सन् 1950 तक) कुकुरमुत्ता, अणिमा अपरा बेला, नए पत्ते

(ङ) पाँचवा चरण (सन् 1950 से अन्त तक) अर्चना, अराधना गीतगुंज तथा कविश्री

निराला काव्य-विकास के इन पाँचो चरणो का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है –

<u>पहला चरण</u> – प्रथम चरण मे लगभग ग्यारह वर्षो की उनकी साहित्यिक साधना 'परिमल' में संचित है। परिमल का कवि एक युवक कवि है जिसके तन-मन मे अदम्य, उत्साह और गहन आस्था है। इस कविता-संग्रह की प्रत्येक कविता के युवकोचित सुदृढ़ आत्मविश्वास, विद्रोह का पंचस्वी स्वर, जिज्ञासा और कुतुहल-भरे प्रश्न, उदार एवं व्यापक जीवन दृष्टि सभी कुछ स्पष्टतः दिखता है। 'परिमल' की कविताओं की रचना के समय

निराला अपनी युवावस्था के शीर्ष बिन्दु पर थे। अतः कवि मे युवकोचित आत्मविश्वास बराबर दिखता है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियाँ देखिए-

" अभी न होगा मेरा अन्त
अभी अभी ही तो आया है मेरे मन में मृदुल बसंत। "

कवि निराला अनेक रचनाओं में कटु यथार्थ के प्रति तीव्र असंतोष व्यक्त हुआ है –

" वज्र घोष से ये प्रचण्ड
आतंक जमाने वाले
ऐ न व्यथ पाने वाले
भय के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर।"

'जुही की कली' और 'संध्या सुंदरी' कविताओं मे कवि-मन ने प्रकृति के माध्यम से अपने भावो को कलात्मक अभिव्यक्ति दी है।

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंको की झाड़ियो से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिये गोरे कपोल गोल।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम चरण की अधाकांश रचनाएँ यौवन-काल की आस्थामयी रचनाएं है एक कवि के रुप मे निराला का यह समय स्वर्ण काल ही है।

दूसरा चरण – निराला काव्य-विकास के दूसरे चरण मे 'गीतिका' और 'अनामिका' की गणना की जा सकती है। निराला का व्यक्तिगत जीवन अभी भी पहले की भांति अभावो और संघर्षो मे बीत रहा था।

निरन्तर संघर्षो से जूझते रहने के कारण निराला की प्रवृति ईश्वरोन्मुख हो गयी है।

गीतिका के कवि की मनः स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही है-

कौन तम के पार ? (रे कह)
अखिल पल के स्त्रोत,जल-जग
गगन घन-घन-धार (रे कह)

स्वभावतः यहां आकर कवि घोर निराशा का अनुभव करने लगा है। उनकी अन्तर्वेदना का यह स्वर ' सरोज स्मृति ' और ' बनबेला ' जैसी कविताओं मे तो और भी अधिक मुखर हो गया है।

तीसरा चरण – निराला के काव्य-विकास के तीसरे चरण के अन्तर्गत 'अनामिका' (दूसरी) और 'तुलसीदास' नामक रचनाएं आती है। 1935 से पूर्व तक की रचनाओ मे जो नैसर्गिकता और सहजता मिलती है वह तीसरे चरण की रचनाओ मे तनिक भी नही दिखती, यह ठीक है कि इस अवधि मे उन्होने 'तुलसीदास' और 'राम की

शक्तिपूजा' जैसी सूदीर्घ कविताओ की रचनाएं की किन्तु यह भी उतना ही सच है कि यहां आकर कवि का विद्रोह-वर्चस्वी स्वर शिमिल और धीमा पड़ गया था।

कवि इस तीसरे चरण तक पहुँचकर सहज ही बुदबदा उठा-

धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

यहाँ हम देखते है कि निराला एक नितान्त असहाय व्यक्ति की तरह लगभग कूट-कूट कर कह रहे है-

कन्ये मै पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका।

यहाँ पहुँच कर कवि एक और अन्तर्मुखी और दूसरी ओर यथार्थ द्रव्य बन गया है।

चौथा चरण – निराला काव्य के विकास-क्रम के चौथे चरण मे कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला और नये पत्ते आदि काव्य-कृतियों की गणना की जा सकती है। चौथे चरण मे आकर निराला पर आयु का भार बढ़ गया था अब वह अदम्य साहस के साथ जीवन के कटु यथार्थ का सामना करते है। निरन्तर प्रहारो को सहते-सहते उनकी सशक्त धारणाएं और विश्वास हिल उठे। गंभीर चिन्तन-धारा यथार्थ की तीर्वता से व्यंग्य रुप बन गयी यंत्र-तंत्र हास्य-विनोद के छीर भी दिख पड़ते है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्ति देखिए-

मै ही हाँडी से लगा पल्ला
सारी दुनिया तोलली नाल्ला
मुझसे मूछे, मुझसे कल्ला
मेरे लल्लू मेरे लल्ला
कहे रुपया या अधन्ना
हो बनारस या न्यावन्ना।

इसी चरण मे ' कुकुरमुत्ता ' मे हास्य और व्यंग्य मे सामाजिकता साथ लगी हुई है। स्वभावतः चौथे चरण मे तटस्थता के साथ विनोद की दृष्टि भी दिखती है।

पाँचवाँ एवं अंतिम चरण – निराला काव्य-विकास का अंतिम चरण सन् 1950 से सन् 1961 तक माना जा सकता है। काव्य-विकास के इस अन्तिम चरण के कवि पूर्णत अन्तर्मुखी हो गयी है और उसकी अधिकांश रचनाएँ किसी धर्मभीरु भवन की प्रार्थना पर रचनाएं जैसी प्रतीत होती है। काव्य-विकास के इस चरण के अन्तर्गत निराला की अर्चना, अराधना, गीतगुंज तथा कविश्री नामक काव्य-संग्रहो की गणना की जा सकती है। निराला की आयु पचास वर्ष की हो चुकी थी। इस वय मे पहुंचने पर मनुष्य स्वभावतः ईश्वरोन्मुखी बन जाता है और अध्यात्म के प्रति उसकी सहज रुचि हो जाती है।

कवि ने सहज रुप मे यह स्वीकार किया है –

हार गया जीवन रण
छोड़ गए साथी जन
एकांकी जैश क्षण

कष्टम पच विगत पथ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला जी ने अपने काल मे भी अपने मन की वेदना को कविता मे व्यक्त किया है।

निराला-काव्य के इस विकास-कम्र मे उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके व्यक्तिगत जीवन मे आया हुआ मोड़ उनकी कृतियो में भी परिलक्षित होता है। उनकी आरम्भिक कृतियो मे गहरी आस्था और दृढ़ आत्मविश्वास व्यक्त हुआ है। दूसरे व तीसरे चरण की रचनाओ में उनका मानसिक संतुलन बना रहा है किन्तु विद्रोह का स्वर मंदा पड़ गया है, किंचित संयत् हो गया है। चौथे चरण मे उनकी दृष्टि एक तटस्थ दर्शन की तरह हो गयी है अंतिम चरण मे नितान्त अन्तर्मुखी हो गए है और अब वे विराट सत्रा की शरण मे जाने के लालायित है। लगभग साढ़े चार शतको मे फैली उनकी दीर्घ साहित्य-साधना परछाई की तरह उनके जीवन की पुरगोमी रही है। जीवन के तपस्या कुंज से संकलित फूलो और काँटो को निराला के हाथो एक-सा सम्मान और स्नेह प्राप्त हुआ है।

संदर्भ -

1. निराला का साहित्य और साधना पृ. 214
2. ‘ गीतिम ’ भूमिका पृ.12
3. कविता सही भाषा की तलाश-विजेन्द्र (आलोचना) 1970
4. निराला और नयी पीढ़ी (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 4 फरवरी 1968 ई.
5. अर्चनाः पृ. 4

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

19वीं सदी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य के आईने में स्त्री छवि

लक्ष्मी पाठक

शोध छात्रा, इतिहास
विभाग– जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण)

प्रायः इतिहासविदों ने साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत लेखन को इतिहास को जानने व समझने के स्त्रोत के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि साहित्यकार दस्तावेजों को यथावत् रूप में प्रस्तुत नहीं करता, किन्तु इतिहास लेखन की आधुनिक विद्या में राजनीतिक इतिहास लेखन के समानान्तर सामाजिक इतिहास लेखन को भी प्राथमिकता दिया जा रहा है। इनके द्वारा समाज की हाशिये पर रही आबादी को अपने इतिहास लेखन का केन्द्र–बिन्दु बनाया जा रहा है। ऐसे में इतिहास व साहित्य को एक–दूसरे से अलग करके देखना उचित प्रतीत नहीं होता है। साहित्य व इतिहास एकदूसरे के हमकदम हैं। इतिहास जहॉ मानव की सांस्कृतिक गतिशीलता है, तो साहित्य उसकी भाषिक अभित्यक्ति। इसलिए इतिहास व साहित्य का संबंध प्रगाढ़ है। यही कारण है कि रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य को 'जनता की चित्रवृति का संचित प्रतिबिम्ब' माना है, तो प्रेमचन्द ने 'साहित्य को समाज के आगे–आगे चलने वाली मशाल' कहा है। यद्यपि यह सत्य है कि साहित्यकार तथ्यों को यथावत् प्रस्तुत नहीं करता, तथापि उनके द्वारा चित्रित विषय–वस्तु तत्कालीन समाज व उसकी समस्याओं को जानने व समझने का प्रभावी साधन बन सकता है। इतिहास लेखन की अत्याधुनिक परम्परा में समाज व क्षेत्र–विशेष के इतिहास लेखन को महत्व प्रदान किया जा रहा है तथा इसे कारगर बनाने के लिए नित्य–प्रतिदिन नवीन शोध किये जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में क्षेत्रीय स्तर पर साहित्य इतिहास लेखन के महत्वपूर्ण स्त्रोत के रूप में प्रभावी भूमिका निभा सकता है, क्योंकि साहित्यकार न केवल समाज में घटित घटनाओं को चित्रित करता है, अपितु इन समस्याओं से मुक्ति का मार्ग भी दिखाता है। साहित्य के माध्यम से जन–जागरूकता लाई जा सकती है। सामाजिक इतिहास लेखन जिसमें आमजनों का इतिहास लेखन शामिल होता है, कि दिशा में साहित्य अत्यंत उपयोगी साबित हो सकता है।

साहित्य व इतिहास की इसी जुगलबंदी को देखते हुए हिन्दी साहित्य के माध्यम से स्त्री विमर्श को प्रस्तुत करना समीचीन प्रतीत होता है। किसी भी समाज की उन्नति का मापदण्ड उसमें स्त्रियों की स्थिति से संबंधित होता है। देश की आधी आबादी को विकास की मुख्यधारा में शामिल किये बिना एक विकसित व गौरवशाली राष्ट्र के रूप में भारत को स्थापित करने का स्वप्न अधूरा रह जायेगा। भारतीय इतिहास में स्त्री विर्मश एक ज्वलंत मुद्दा रहा है जो आज भी प्रासंगिक है। 19वीं शताब्दी में अद्भूत स्त्री चिंतन को भारतीय हिन्दी साहित्य के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दौर में साहित्यकारों ने सामाजिक समस्याओं को अपनी लेखनी का विषय–वस्तु बनाकर जन–जागृति का कार्य प्रारम्भ किया। अपनी लेखनी के द्वारा इन साहित्यकारों ने स्त्री की जीवन–दशा और उनकी समस्याओं को उभारते हुए उनकी विमुक्ति हेतु व्यापक जन–आंदोलन की पृष्ठभूमि निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि, मानव समाज

के विकास का इतिहास वास्तव में स्त्रियों के निरन्तर बढ़ते अवमूल्यन और शोषण का इतिहास है, जिसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य के माध्यम से हुई है।

19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत जहॉ एक ओर भारत के प्राकृतिक संसाधनों व सम्पदा की भयावह लूट के साथ–साथ शिल्पियों, कारिगरों व किसानों का अमानवीय शोषण व दलन किया जा रहा था, तो वहीं दूसरी ओर वर्ण विभाजित सामाजिक–व्यवस्था के मध्य स्त्री समुदाय भी दलन व शोषण का शिकार बन रही थी। पराधीनता के बेड़ियों में जकड़े किसी देश में जब शिक्षा, शिल्प व अस्मिता पर बलात् अधिकार किया गया हो, तो उसके दुष्चक्र से स्त्री भी अछूती नहीं रह सकती । औपनिवेशिक शोषण के मध्य स्त्री अपने अधिकारों की प्राप्ति व विमुक्ति के लिए छटपटा रही थी। 19वीं शताब्दी का सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलन इसी पृष्ठभूमि की देन था। परतंत्रता का दंश झेल रही स्त्री समुदाय के नवजागरण का प्रस्थान बिन्दु भी 19वीं सदी के समाज सुधार आंदोलन व 1857 के विद्रोह को माना जा सकता है। वास्तव में आधुनिक स्त्री विमर्श की शुरूआत भी इसी दौर से मानी जाती है। 19वीं सदी के समाज–सुधार आंदोलनों के समानान्तर हिन्दी साहित्य में सामाजिक वर्गों का इतिहास लेखन प्रारम्भ हुआ, जिसे हिन्दी साहित्य के नवजागरण काल के रूप में देखा जाता है। इन नवजागरण काल के प्रणेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। इसलिए इस युग को साहित्यिक चेतना का 'भारतेन्दु युग' भी कहा जाता है। उस समय के सभी प्रसिद्ध और समृद्ध गणमान्य व्यक्ति, भारतेन्दु के मित्र थे और उस समय का सबसे सक्रिय सजग रचनाकारों का दल ''भारतेन्दु मंडल'' के नाम से जाना जाता था। भारतेन्दु ने अपने सभी समकालीनों एवं परवर्ती लेखकों को प्रभावित किया। महज 34 वर्ष की अत्यल्प आयु में उन्होंने हिन्दी का साहित्य भण्डार भर दिया। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में भारतेन्दुजी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शोषकों के अमानवीय शोषण के चित्रण को ही अपने साहित्य का मूल बनाया। जनसाधारण तक अधिकालिक पहुॅचने के लिए पत्रकारिता, नाटक तथा काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। उन्होंने अपने लेखन से औपनिवेशिक काल के भारत की सम्पूर्ण समस्याओं को उजागर किया जिसमें स्त्री–समुदाय से संबंधित समस्याओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा। भारतेन्दु युग में स्त्री की सामाजिक स्थिति अशिक्षा, पर्दा–प्रथा, बहु–विवाह, सतीप्रथा आदि कुरीतियों के कारण अधीनस्थ थी। प्रारंभिक दिनों में भारतेन्दु ने अपनी काव्य रचना में स्त्री श्रृंगाररस में नख से शिख तक का वर्णन किया है, तो दूसरी ओर बालबोधिनी जैसी में स्त्रियों को आदर्श रूप में दर्शाया गया है, तथा पतिव्रता बनने की बात की गई है।

स्त्रियों की सामाजिक दशा को देखते हुए भारतेन्दु जी ने कहा है कि ''लड़कियॉ पिता के लिए बोझ है, तो पति के लिए वह बच्चा पैदा करनेवाली मशीन है।'' स्त्रियों को जीवन से लेकर मृत्युपर्यन्त यौन–शोषण, अपमान, लांछन, गर्भपात, वेश्यावृति और आत्महत्या तक की यातना को झेलना पड़ता है। ऐसी सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए उन्होंने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया अपनी पत्रिका 'बालबोधिनी' के माध्यम से स्त्रियों को प्रेरित करने का प्रयास किया और ''नर–नारी समानता और नारी मुक्ति का नारा दिया।'' 1874 से 1877 तक अपनी बालबोधिनी पत्रिका के माध्यम से ऐसी स्त्री का निर्माण करना चाहने लगे जो घर रूपी पारिवारिक संस्था को सुचारू रूप से चला सके।

बालबोधिनी हिन्दी की पहली स्त्री पत्रिका होने के कारण इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इस पत्रिका के द्वारा भारतेन्दु जी भारतीय स्त्रियों में चेतना व विवेक पैदा करना चाहते थे। उन्होंने स्त्री–शिक्षा पर जोर देते हुए कहा कि स्त्रियॉ यदि शिक्षित होंगी तो वे अंधविश्वास से ऊपर उठकर तर्क की कसौटी पर आकर अपने जीवन को सुखमय बना सकती है और कहीं भी ठगी नहीं जायेगी। भारतेन्दु कहते हैं कि स्त्रियों को पतिपरायण होना चाहिए, किन्तु उन्हें धार्मिक व वैचारिक रूप से कैद करने का षड्यंत्र नहीं होना चाहिए।

भारतेन्दु स्त्री पुर्नरूत्थान के पक्षधर थे। अपने साहित्य के माध्यम से वह स्त्रियों को आदर्श माता और पतिव्रता पत्नी बनने की बात करते हैं। स्त्री शिक्षा की बात करते हुए उन्होंने कहा कि लड़कियों को भी शिक्षित कीजिए, किन्तु उस चाल से ही जैसा कि आजकल पढ़ाई जाती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश, कुल धर्म सीखें। पति व परिवार के बड़े सदस्यों की सेवा करे एवं बच्चों को सहज शिक्षा दे। उन्होंने नारी जागरण के लिए स्त्री शिक्षा अनिवार्य माना। कविवचनसुधा में भारतेन्दु हरिश्चन्द ''स्त्री शिक्षा'' के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं– ''यह बात तो सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जबतक कि यहॉ की स्त्रियों को भी शिक्षा नहीं दी जाएगी। क्योंकि यदि पुरूष विद्वान व पण्डित होवेंगे और उनकी स्त्रियॉ मूर्ख होंगी तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह की होगा। इस समय के परम्परावादी स्त्री शिक्षा के विरोधी थे। वे स्त्रियों को अंग्रेजी पद्धति से शिक्षित नहीं होने देना चाहते थे। उनके अनुसार स्त्रियों को भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षा पद्धति द्वारा ही शिक्षित होना चाहिए। भारतेन्दुयुगीन काव्य में स्त्री चिंतन में मुख्यतः स्त्री–पुरूष समानता को रेखांकित किया गया है। 'कविवचन सुधा' के मुखपृष्ट पर छपे सिद्धान्त वाक्य नारी–नर की समानता को ही व्यक्त करता है। उन्होंने स्त्रियों को शिक्षित कर पुरूषों के समान अधिकार देने की बात कही। अपने 'मातृ भगिनी सखी तुल्या आर्य ललना गण' शीर्षक के तहत भारत में स्त्री की दुर्दशा पर क्षोभ प्रकट किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्त्रियों की दुर्दशा के लिए कुल परम्परा को दोषी मानते थे। यही कारण है कि वे स्त्रियों को शिक्षित करने की नयी शिक्षा व्यवस्था को अपनाने की बात करते थे और परम्परागत शिक्षा व्यवस्था को परम्परा से संबंधित होने के कारण त्रुटिपूर्ण मानते थे। उनके विचार में परम्परागत शिक्षा व्यवस्था के दोषों को दूर किये बगैर नारी सशक्तिकरण के लक्ष्य को पाना असंभव था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काब्य का काल औपनिवेशिक काल था, जहॉ नारी विमुक्ति के प्रश्न तथा राष्ट्रवाद साथ–साथ उद्भूत हुए। जहॉ एकरफ भारत को अंग्रेजीराज के चंगुल से बाहर निकालना था, तो दूसरी ओर नारी समुदाय को पुरूषों की दासता से स्वयं को मुक्त कराने का संघर्ष था। उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री समुदाय की पीड़ा को पहचाना और उसे सहानुभूति पूर्वक दर्शाया है। सबसे महत्वपूर्ण है कि इस युग में एक नयी चीज स्वत्व का विकास हुआ। भारतेन्दुजी ने पहली बार सामाजिक जीवन की उपेक्षा न कर आमजन की ओर व्यापक ध्यान दिया। उन्होंने अपनी लेखनी में मध्यमवर्गीय सामाजिक परिस्थितियों को स्पष्टता से दर्शाया है। हिन्दी भाषा व साहित्य में उनके योगदान को देखते हुए हिन्दी साहित्य के साहित्यकार रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें महात्मा कहकर सम्बोधित किया है। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार भारतेन्दुजी की सबसे बड़ी साहित्यिक देन यह थी कि उन्होंने साहित्य को नए–नए विषयों की ओर उन्मुख किया तथा उसे आधुनिक विचारों से सुसज्जित किया।

''भारतेन्दु युग'' में स्त्री विमर्श से संबंधित साहित्य लिखा गया, किन्तु इन साहित्यों में प्रस्तुत विचार व चिंतन उस युग की ऐतिहासक जटिलताओं के अधीन थे। इस युग के साहित्यकार इस पर विचार नहीं कर पाते कि औपनिवेशिक काल में स्त्री–सुधार की प्रेरणा व प्रकृति के पीछे का वास्तविक ध्येय क्या था। क्या वास्तव में उसका लक्ष्य स्त्रियों की मुक्ति थी ? इस युग का साहित्य एक विशेष परिस्थिति के अधीन रचित किया जा रहा था। 19वीं सदी के उतरार्द्ध का बौद्धिकवर्ग स्वयं और अपने समुदाय को औपनिवेशिक सत्ता के द्वारा प्रस्तुत व्याख्या के प्रभाव में अपने को देख रहा था। भारतेन्दु युग का भारतीय जीवन–दशा औपनिवेशिक हितों की भेंट चढ़ा हुआ था। ब्रिटिशों द्वारा भारत में अपनी सत्ता को न्यायोचिक सिद्ध करने के क्रम में अतार्किकता, बेईमानी व यौन–विकृति को भारतीय संस्कृति के मूल तत्व के रूप में स्थापित करने का प्रयत्य किया गया। सभ्यतागत श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अंग्रेजी राज ने भारतीय सभ्यता को हीन, पतित व घृणित रूप में अभिव्यक्त किया, जिसमें स्त्री प्रश्न को

महत्व दिया गया। स्त्री–पुरूष संबंधों को सभ्यतागत श्रेष्ठता का मापदण्ड बताते हुए अंग्रेजों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति दयनीय होने के कारण यह सभ्यता के सोपान के नीचले स्तर पर है।

सभ्यतागत श्रेष्ठता व आधुनिकता के अग्रदूत के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करने वाले अंग्रेज भारतीय समुदाय को सटीक, तर्कयुक्त व वैज्ञानिक सोचयुक्त जीवनशैली अपनाने के लिए प्रेरित करने का ढोंग रख रहे थे। ऐसी परिस्थिति में भारतीय बौद्धिकवर्ग को दो प्रकार की चुनौती का सामना करना था। प्रथम चुनौती–भारत की सभ्यता–संस्कृति की गौरवमयी प्रस्तुती हेतु उसकी प्रभावशाली व्याख्या करने की थी तो दूसरी चुनौती स्वयं और समुदाय को अपने स्वत्व को खोये बिना आधुनिकता से सुसज्जित करने की थी। भारतेन्दु जी के साहित्य में यह अन्तर्विरोध स्पष्टतःझलकता है। ''आधुनिकता व परम्परा'' के इस संघर्ष में भारतेन्दु ने परम्परा को यथावत रूप में न अपनाकर उसे आधुनिक तर्क से सुसज्जित कर अपनाने पर जोर दिया। भारतेन्दुजी आधुनिकता को अपनाने के पक्षधर थे। परन्तु इसके लिए परम्परा को पूर्णरूप से छोड़ने की बात नहीं करते थे। उन्होंने आधुनिक विचारों को भी परम्परा का वस्त्र पहनाकर ही अपनाने की बात कही है। भारतेन्दुजी द्वारा स्त्री दुर्दशा पर उठाये गये प्रश्न भले ही आधुनिकता के दबाव की उपज है, किन्तु उसके उत्तर खोजने का बोध परम्परा पर आश्रित होते हुए भी यह एकदम पारम्परिक नहीं है। भारतेन्दुजी ने सतीप्रथा की महिमा का एकाधिक स्थानों पर गान किया, किन्तु स्त्रियों पर सामाजिक अत्याचारों को देखते हुए उन्होंने विधवा–विवाह का समर्थन किया। धर्म के आधार पर विधवाओं को पूनर्विवाह की अनुमति न दिये जाने की स्थिाति में समाज में बढ़ रहे दुराचारों से परिचित भारतेन्दु ने दयानन्द सरस्वती से घोर असहमति होते हुए भी उनके विधवा–विवाह के प्रयासों की सराहना की। उन्होंने अपने अति प्रसिद्ध निबंध 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है', में विधवा–विवाह को धर्मसम्मत माना हैं यह भाषण उन्होंने अपनी मृत्यु से डेढ.–दो महीने पहले सन् 1884 ई0 में दिया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उपन्यास ''पूर्णप्रकाश चन्द्रप्रभा'' की गुणमंजरी कतई भिन्न नारी पात्र है। वह समाज–सुधारकों, विचारकों, स्वप्नद्रष्टाओं, यहॉ तक कि स्वयं भारतेन्दु जी के अन्य नारीपात्रों से भी भिन्न है। गुणमंजरी ऐसे कुलीन पति की पत्नी है, जिसकी चार पत्नियॉ हैं। परित्यक्ता गुणमंजरी अपने मायके में अपनी पुत्री चन्द्रप्रभा के साथ रहती है। वह अपनी पुत्री को कुलीनता की भेंट चढ़ाना नहीं चाहती है। इसलिए पति द्वारा कुल बनाए रखने के आग्रह पर गुणमंजरी क्रोधित होकर कहती है– पन्द्रह रूपये की जो बड़ी निधि है, तो उतना रूपया हम तुमको देते हैं। अपने घर जाओं– हमको कुल से कोई प्रयोजन नहीं है।

19वीं शताब्दी में केन्द्रीय महत्व के व्यक्तित्व भारतेन्दु जी ने स्त्री विषयक जो चिंतन–लेखन प्रस्तुत किया, उसका तत्कालीन सामाजिक–संस्कृति व्यवस्था पर अत्यधिक प्रभाव रहा होगा। इनके द्वारा प्रतिपादित विचारधारा समाज को एक नये चिंतनपद्धति को अपनाने हेतु प्रेरित करने में अग्रणी भूमिका निभाई होगी। अतः भारतेन्दु द्वारा अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित स्त्री–विमर्श न केवल उस समय के नारी समुदाय की जीवनदशा और चुनौतियों को जानने व समझने के लिए आवश्यक है, बल्कि उस समय भारतीय समाज के नवीन पितृसंरचना के निर्माण की जो आधारशीला रखी गई थी, उसकी मीनार वर्तमान समय में बुलंद हो रही है। अतः यह वर्तमान युग में भी नारीजगत के समस्याओं व उसके समाधान को जानने का सशक्त माध्यम बन सकती है। भारतेन्दुजी अपने साहित्यिक उपलब्धियों, सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सक्रियता और राजनीति में अपनी जोरदार उपस्थिति के कारण अपने युग के निर्माता बन चुके थे। अतः भारतेन्दुजी द्वारा व्याख्यायित स्त्री प्रश्न व विमुक्ति के प्रयासों का बोध न केवल उस युग के अन्य हिन्दी बौद्धिक विचारों से अवगत होने के लिए आवश्यक है, अपितु उस युग की प्रमुख सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रवृतियों के अध्ययन के लिए भी आवश्यक है। भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र अपने दो पत्रिकाओं, कविवचन सुधा और हरिश्चन्द्र मैगजीन के माध्यम से समाज सुधार से संबंधित मुद्दों पर बहसें आयोजित किया करते थे।

''बालबोधिनी'' पत्रिका हिन्दु स्त्रियों के मनोरंजन या विशुद्ध ज्ञानवर्द्धन के लिए नहीं था, वरन् इसके प्रकाशन का वास्तविक उद्देश्य राष्ट्रीय हित में घर–बाहर और स्त्री–पुरूष के संबंधों को नये ढंग से परिभाषित कर उसके आधार को सशक्त बनाते हुए घरेलू विन्यास को पुर्नगठित कर हिन्दू पित्रृसत्तात्मक संरचना को पुनर्निमित की थी, जिसे अपनी प्रकृति में विक्टोरियाई नैतिकता और विक्टोरियाई स्त्री दृष्टि से प्रभावित माना गया है। बालबोधिनी के प्रकाशन के उद्देश्य के बारे में वसुधा डालमिया ने लिखा है, स्त्री की भूमिका को गृहिणी और मॉ के रूप में पुनर्परिभाषित करते हुए यह अपने रूझान में पूरी तरह विक्टोरियाई थी। बालबोधिनी के विश्लेषण से इस बात की पुष्टि हो जाती है, कि भारतेन्दु के स्त्री–विषयक विचार औपनिवेशिक शासन की लैंगिक विचारधारा की उपस्थिति में स्त्री विषयक विक्टोरियाई धारणा और अपने राष्ट्रीय ''स्वत्व'' की निर्मिति के लिए प्राचीन हिन्दू धर्म में स्त्रियों के लिए निर्धारित किये गये मूल्य शील, सती और पतिव्रता से बनते हैं। भारतेन्दु के स्त्री विषयक विचारों पर उनके वक्त में उभरते नव मध्यवर्ग के आधुनिक जीवन की परिस्थितियों की महती भूमिका रही थी। भारतेन्दु के स्त्री विषयक इन विचारों की पुष्टि उनके नाटकों और अन्य प्रकार के लेखन से भी होती है।

भारतेन्दु जी के स्त्री विषयक विचार की व्याख्या उनके समय और व्यक्तित्व के अन्तर्विरोधों को सामने रखकर ही की जा सकती है। दरअसल उनका अंतर्विरोध न केवल उनका बल्कि उनके युग का अन्तर्विरोध था।

संदर्भ–ग्रंथ सूची :

1. *भारतेन्दु समग्र* पृ0 984–851
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, *पूर्ण प्रकाश चन्द्र प्रभा*, पृ0 18–19
3. हरिश्चन्द्र, *बालबोधिनी*, मुख्य पृष्ट।
4. बजरत्न दास, *भारतेन्दु हरिश्चन्द्र*, इलाहाबाद, 1962, पृ0 409
5. बालबोधिनी, प्रवेशांक, जनवरी 1874
6. भारतेन्दु समग्र, 2002, पृ0 1028
7. भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, (से पा.), शंभुनाथ, आनेवाला कल प्रकाशन, कलकता, 1986, पृ0 63
8. भारतेन्दु समग्र, 2002, पृ0 1009–10
9. बालबोधिनी, 1/6 जून 1874
10. वही।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

समन्वयवादी संस्कृति के पुरोधा : जायसी

डॉ पंकज कुमार मिश्र
अध्यापक, नागालैंड

मध्यकाल के संतों का एक ही उद्देश्य था – समतावादी मूल्यों की स्थापना. जीवन में भेदभावगत अंतर, बैमनस्य, लोलुपता से त्रस्त दीन जनता का उद्धार. इसी लिए भारतीय संतों की यह परम्परा लोक-जीवन के लिए एक कल्याणकारी मार्ग की तलाश करती दिखती है.सूफी संत परम्परा भी तत्कालीन राजनीति से बिल्कुल भिन्न होकर, एक सहज जीवन मार्ग की तलाश करती दिखती है. जायसी इन्ही सूफी संतों की परम्परा के एक उद्गाता हैं और इस उद्गान के लिए इस संत परम्परा को भी राजनीति के विरोध और धार्मिक तल्खी का सामना करना पड़ा होगा; यह सहज ही अनुमेय है.

.अल-बरूनी के इतिहास में इस बात के बड़े तल्ख तेवर बयाँ दीखते हैं. मुस्लिम धर्म के एकेश्वरवादी इस्लाम के अतिरिक्त किसी और के अस्तित्व का होना भी जलालत मानने वालों, बादशाहों की धार्मिक कट्टरता तथा उनके सामंत, धनिक, अगुए, चमचों की शक्ति के समानांतर समभाव का सामंजस्य कर पाना जायसी, कुतुबन और दाऊद जैसे कवियों के लिए आंधी में दिया जलाने की तरह ही था. और उसके बावजूद भी यदि समरसता का इतना बड़ा काव्य-संसार खड़ा हो पाता है, सामाजिक एकता का दर्शन आकार लेता है तो इसके पीछे भारतीय संस्कृति और समाज के सर्वांग समभाव वाले दर्शन तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम' वाली लोक-कल्याणकारी दृष्टि का सहज प्रवाह ही माना जायेगा.

जायसी कवि में, स्वभाव की उदारता, समावेशी दृष्टिकोण तथा लोक की परम-कल्याणकारी भावना सहज ही दिखाई देती है. यथार्थ और आदर्श का सम्यक विवेक जायसी की कविताओं में परिलक्षित होता है किन्तु इस विवेक के आलोक में , सबसे बड़ी बात यही है कि कवि; कभी भी काव्य-मूल्यों की प्रतिष्ठा के बजाय, मानव और समाज के मूल्यों की प्रतिष्ठा करता दिखता है. और यही कारण है कि जायसी की दृष्टि का यह महा-भाव, उनके काव्य में प्रेम-पद्धति निरूपण, सौंदर्य-वर्णन,विम्ब-विधान, भाषा-सौंदर्य आदि किसी भी काव्य-सौंदर्य कारक तत्व हेतु उदात्त का कारण बन जाता है उदारमना हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों के लिए संगम की धार-धरा का निर्माता बन जाता है.

जायसी का एक और बहुत मार्मिक फ्लू है- 'धर्मनिष्ठा और धर्म-निरपेक्षता का संतुलन'.एक ओर जायसी की इस्लाम में आस्था कभी क्षीण नहीं होती, वहीं हिंदू-संस्कृति का मोह भी उन्हें बांधता है. परन्तु बैमनस्य-अनुदारता उन्हें क्लहीन भी स्वीकार्य नहीं होती है. काव्य की माध्यम से कवि बार-बार हत्या, हिंसा, उन्माद और कट्टरता का घोर विरोध करता है जबकि इसीके समांतर मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा – दया, करुना और समरसता इनके काव्य-दर्शन का प्रकाश-स्तम्भ हैं.

पद्मावत के अन्त में अहमवादी व आतताई अल्लाउद्दीन के सम्बन्ध में खी गई निम्न उक्तियां, वर्तमान विश्व की महाशक्तियों के लिए भी, कवि की एक गम्भीर चेतावनी है-

छार उठाई लीन्ही एक मूठी
दीन्ही उडाई पिरिथवी झूठी

जौं लगी ऊपर छार न परयीं
तब लगी नाही जो तिला मरईं

विजित-विजेता दोनों के भाग में आत्म-ग्लानि की आग और पछतावे के आँसू ही तो बचते है.इसीलिए जायसी का यह पद, पदबंध मात्र नहीं है बल्कि विश्व-शान्ति और मानव-सृष्टि के अस्तित्व रक्षार्थ , शान्ति के अग्रदूत हैं.

यद्यपि 'पद्मावत'तत्कालीन कई धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक रूढियों के प्रभाव से प्रभावित है किन्तु इसकी सर्वाधिक उपादेयता -- दो संस्कृतियों के टकराव से उत्पन्न वैमनस्य, हिंसा, क्रूर अमानवीय व्यवहार के बीच मूल्य रूपी एक किरण के रूप में है जो समाज के दोंनों वर्गों को समभाव से आश्वस्त करती है, युद्धोन्माद रोकती है, चेताती है और समन्वय का रास्ता दिखाती है.

इस 'पद्मावत-कथा' का वर्णन अमीर खुसरू ने भी किया है किन्तु जौहर के दौरान जहाँ उसकी नजरें; मानव – सामाजिक सम्वेदना से दूर हैं वहीं जायसी अल्लाउदीन की विजय को विजय तक नहीं कहते. उनकी नजरों में यह विजय दूर-दूर तक हतास-निराश और भटके हुए मानव कि काम-अग्नि से ज्यादा और कुछ भी नहीं है. इसके लिए जायसी को कोपभाजन का शिकार भी होना पड़ा ही होगा किन्तु यही दृढता, उदारता, सच्चाई के प्रति विश्वास इनके महाकवित्व का केन्द्र-विन्दु है.

डॉ बासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है, 'जायसी सच्चे पृथ्वी-पुत्र थे. इस कवि ने भारत-भूमि की मिट्टी के साथ अपने को मिला दिया. राम-कथा अवध के गांवों की जन-वाणी थी किन्तु जायसी ने जनता के स्तर से ही मानस की राम-कथा को लगभग सौ से अधिक बार पद्मावत के बहाने पूजा है. इन्हें मिला देने मात्र से ही एक छोटी सी जायसी-रामायण बन जायगी.'

राम भारतीयता और भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं, इस देश की संस्कृति के मूर्तमान आदर्श. जायसी ने पद्मावत में राम-कथा आदर्श का ही तो आलम्बन लिया है.

पद्मावत की समापन पंक्ति है-
' जौहर भई सब इस्तरी पुरुष भये संग्राम
पातसाहि गढ़ चूरा चित्तउर भा इस्लाम

'चित्तोड़, इस्लाम हो गया' यह बड़ा करारा व्यंग्य है – उस आक्रामक संस्कृति पर जो तलवार के बल पर धर्म का प्रचार करती है. जब चित्तोड़ में कोई स्त्री-पुरुष बचा ही नहीं तो इस्लाम कौन हुआ ?

'किले की दीवारें और जौहर की राख ?'

और इस छंद में कवि अपना मन्तव्य कह डालता है कि ,

तब लगि सोई अवसर होई बीता
भये अलोप राम और सीता
छार उठाई लीन्ही एक मूठी
दीन्ही उडाई पिरिथवी झूठी

जब अल्लाउदीन फतह करके गढ़ में पहुंचता है तब राम और सीता अलोप हो चुके थे. राम और सीता रत्नसेन और पद्मावती ही तो हैं. यह है जायसी का आदर्श भारतीय रूप जहाँ हर एक स्त्री सीता माँ है और हर एक पुरुष स्वयं राम-रूप.

यहीं कवि का काव्य चमत्कार है. जब रत्नसेन-पद्मावती पर प्रभु राम - माँ सीता का रूपारोप है तो अपहरणार्थ उद्धत अल्लाउदीन क्या हुआ ? जायसी यह सवाल पाठक पर छोड़ देते हैं.

इस प्रकार जायसी ने आतताइयों के विरुद्ध खड़े राम-सीता का रूप, आमजन के उपर आरोपित करके भक्ति की धर्म-मर्यादा और भावगत सम्वेदना का जो अवसर हमे दिया है वह अतिउदात्त और राष्ट्रीय है तथा हमारे लिए अनुकरणीय रूप में उपस्थित होता है. हिंदू और मुसलमान दोनों एक ही प्रिय के प्रेम-पथिक हैं.दोनों उसी ओर जा भी रहे हैं अतः इनके सम्पूर्ण काव्य में इसी एकता औए समन्वय की भावना का सागर लहराता दिखता है.

यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से जायसी काव्य में समन्वय के एक या दो पक्ष नहीं बल्कि कई प्रकार के आयाम दीखते हैं. लेकिन काल-देश, राजनीतिक भूचाल और सांस्कृतिक संक्रमण के भंवर से भोली जनता को मुक्त कराने की जो कोशिश जायसी के काव्य में है वह उदात्त का एक अलग ही उत्कर्ष है. आज-कल के गतिरोध भरे सामाजिक वातावरण में, जरूरी यही होगा कि हम जायसी के भाव-सागर को ही आदर्श प्रतिष्ठा देवें. इसीमे भारत-जन का कल्याण छुपा है.

सहायक ग्रन्थ-सूची --

१. पद्मावत : जायसी
२. जायसी ग्रन्थावली : आ. शुक्ल
३. जायसी : विजयदेव नारायण साही
४. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : गणपतिचन्द्र गुप्त
५. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आ. शुक्ल

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

मौर्यकालीन–कला एवं स्थापत्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन

ममता रानी

अतिथि सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग
एस0एन0एस0आर0के0एस0
कॉलेज, सहरसा (बिहार)

मौर्यकला का स्थान भारतीय इतिहास में काफी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ से व्यवस्थित और सुसंगठित भारतीय कला का प्रारंभ माना जाता है। मौर्य के पूर्व (अपवाद–हड़प्पा सभ्यता) शायद कलात्मक वस्तुएँ मिट्टी या लकड़ी के बनाये जाते होंगे इसलिए उसके अवशेष नहीं मिल पायें। मौर्यकाल से कला के क्षेत्र में पत्थर या शिलाखण्डों का व्यापक प्रारंभ हुआ जो विरासत के रुप में हमस ब को चकित और गौरवान्वित कर रहा है।

अशोक के पूर्व कलाकृति बनाने के लिए ईंट तथा लकड़ी का प्रयोगा किया जाता था परन्तु सम्राट अशोक के समय पत्थरों का प्रयोग किया जाने लगा। अशोक ने कई नगरों का निर्माण कराया। राजतरंगिणी के लेखक कल्हण का विचार है कि श्रीनगर की स्थापना अशोक ने मौर्यकला के विकसित होने के कारण उसका राजकीय संरक्षण प्रदान किया था।

भवनः– इसका उत्कृष्ट उदाहरण कुम्हरार, पटना में उपस्थित चन्द्रगुप्त मौर्य का राजप्रसाद है। यहाँ से प्राप्त अवशेषों से उसकी विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह सभा भवन अनेक स्तंभो वाला एक विशाल हॉल था। इसमें चौरासी पाषाण स्तंभ पाये गये हैं। ये स्तंभ बलुआ पत्थर की बनी हुई है, और उनपर चमकदार पॉलिश की गई थी। भवन की लम्बाई 140 फीट और चौड़ाई 120 फीट थी। संभवतः फर्श और छत लकड़ी की बनायी गई थी। इस भवन की भव्यता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि **इंडिका में मेगास्थनीज ने लिखा है कि –"चन्द्रगुप्त के भवन ईरान के सूसा औरइकबताना के भवनों से सजावट और कला में अधिक सुन्दर है।"**[1] अशोक ने उद्यान के बीच में एक बहुत ही सुन्दर महल बनवाया था जिसे देखकर फाह्यान अचंभित हो गया और उसने लिखा कि – "यह सब असुरों द्वारा बनाए गये थे। उन्होंने चुनकर दीवारों तथा द्वारों का निर्माण किया और उनपर ऐसी सुन्दर खुदाई और पच्चीकारी थी जो संसार के मनुष्यों के लिए करनी असम्भव है।"[2] पतंजली ने भी इस सभा भवन की प्रशंसा की है।

पाटलीपुत्र का वर्णन करते हुए **स्ट्रबो** लिखते हैं "पोलिबोथ्रा (पाटलीपुत्र) गंगा और सोन के संगम पर स्थित था। इसकी लम्बाई 80 स्टेडिया तथा चौड़ाई 18 स्टेडिया थी। यह समानान्तर चतुर्भुज के आकार का था। इसके चारो ओर लगभग 700 फीट चौड़ी खाई थी। नगर के चतुर्दिक लकड़ी की दीवार बनी हुई थी जिसमें बाण छोड़ने के लिए सुराख बनाये गये थे।"[3] मौर्य राजप्रसाद की तुलना कुछ विद्वानों द्वारा पर्सिपोलिस से प्राप्त हुए स्तंभों वाले हखामनी राजप्रसाद से करते हैं।अशोक के समय के बहुसंख्य स्मारक मिले हैं। जिसे स्तम्भ, स्तुप, वेदिका तथा गुहाविहार में विभक्त किया जाता है।

स्तम्भः– मौर्यकला के सर्वोत्कृष्ट नमूने अशोक के एकारम स्तंभ है जो उसने धम्म–प्रचार के लिए देश–विदेश के विभिन्न भागों में बनवाया। इसकी संख्या वी0डी0 महाजन के अनुसार 30–40 रही होगी। ये चुनार के बलुआ पत्थर से बनी हुई जिसकी ऊँचाई 40–50 फीट तथा वनज 50 टन से 80 टन तक है। स्तम्भ का निर्माण एक ही पत्थर से हुआ है जो आधार से शीर्ष तक मोटा से पतला होता गया। इसकी मुख्य विशेषता चमकदार पालिश है। स्तम्भ के तीन भाग हैं, पहला ध्वज – चिकना, पालिशदार परन्तु सादा, दूसरा अण्ड–गोल और धार्मिक प्रतीकों–चक्र, पशु–लता पुष्प से अलंकृत और विभक्त, तीसरा–शीर्ष–जिसमें, वृषभ, सिंह हस्ति, अश्व आदि की मूर्त्ति बनी होती थी। सिंह शीर्ष स्तम्भ–बसाढ़, लौरिया नन्दनगढ़ रामपुरवा, साची, सारनाथ से गजशीर्ष स्तम्भ संकिशा से, वृषभशीर्ष स्तम्भ, लौरियाअरेराज तथा रामपुरवा प्राप्त हुआ है। मौर्यकला का श्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम उदाहरण सारनाथ का अशोक स्तंभ है जिसके शीर्ष पर पीठ से पीठ मिलाये चार सिंह है, प्रत्येक सिंह के नीचे एक चक्र है। इसके साथ गोलाकार रुप में एक हाथी, एक घोड़ा, एक साँढ़ और एक शेर की उभरती हुई मुर्त्तियाँ हैं, जिनके बीच–2 में एक चक्र बने हुए हैं। सबसे उपर एक विशाल चक्र बना हुआ है, जो बुद्ध के द्वारा दिए गये प्रथम उपदेश जिसे ''धर्मचक्रप्रवर्तन' कहा जाता है, को सांकेतिक करता है इस चक्र में चौबीस तीलियाँ है जो समय को प्रदर्शित करता है।

बहुत सारे विद्वान जिनमें जान मार्गन, पर्सीब्राउन भी शामिल हैं मौर्ययुगीन स्तम्भों को इरानी अनुकृति मानते हैं। जान मार्शल ने लिखा है कि अशोक के राज्यकाल में ईरान से बुलाए गए कलाकारों द्वारा भारतीय कलाकारों का प्रशिक्षण हुआ परन्तु वी0ए0 स्मिथ अशोककालीनकला को विदेशी मानने से इनकार करते हैं। के0सी0 श्रीवास्तव अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति' में इरानी तथा अशोक के स्तम्भों में अन्तर स्पष्ट करते है। पहला अशोक के स्तम्भ एक ही पत्थर से काटकर बनाये गये थे जबकि इरानी स्तम्भ टुकड़ो को जोड़कर बनाया गया है। दूसरा अशोक के स्तम्भ बिना आधार के भूमि पर टिकाये गये हैं, जबकि ईरानी स्तम्भों को चौकी पर। तीसरा–अशोक का स्तम्भ स्वतंत्र रुप से है जबकि इरानी स्तम्भ विशाल भवन में। चौथा–अशोक के स्तम्भ पर पशु की आकृति है जबकि ईरानी स्तम्भों पर मानव का। पाँचवा–ईरानी स्तम्भ गड़ारीदार है किन्तु अशोक के स्तम्भ सपाट है। अशोक के स्तम्भों के शीर्ष पर लगी पशु मूत्तियों का एक विशेष प्रतीकात्मक अर्थ है जिसकीसमूचित व्याख्या भारतीय परम्परा में ही सम्भव है जबकि ईरानी शीर्षकों में कोई प्रतीकात्मकता नहीं है। छठा–अशोक के स्तम्भ नीचे से उपर पतला होता गया है जबकि ईरानी स्तम्भों की चौड़ाई नीचे से उपर तक एक है।

इस प्रकार हम इसे ईरानी नकल नहीं कह सकते हैं। स्पूनर महोदय ने स्तम्भों की ओपदार पालिश को इरान से ग्रहित बताया जबकि पूर्व मौर्य युग के उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों से जिनका काल 600–200BC है काले रंग के चमकीले मृदभाण्ड मिले हैं। मृदभाण्ड पालिश करने की प्रारम्भ छठी शताब्दी ई0पूर्व ही हो गई थी। अतः मौर्ययुगीन स्तम्भ एवं पालिश भारतीय प्रतीत होती है। **डॉ0 वासुदेव नारायण अग्रवाल** के शब्दों में "मौर्य स्तम्भों की परम्परा को लौरियानन्दन गढ़ के काष्ठ यूपो में ढूंढ़ना अधिक समीचीन होगा जो हमारे यहाँ ही मौजुद है। बौद्ध साहित्य और महाभारत में ऐसे स्तम्भों का उल्लेख है जो धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थानों में लगाये जातेथे।"[4]

स्तूप–निर्माण कलाः– स्तूप निर्माण परंपरा का व्यवस्थित विकास मौर्य काल में हुई। ये अर्द्धगोलाकार होती है जिसका आंतरिक भाग कच्ची ईंटों का बना हुआ है। स्तूप के उपर लकड़ी या पत्थर का छत्त होता था। हर्मिकः में अस्थियाँ रखी होती थी। यह स्तूप का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग होता था। वी0एस0 अग्रवाल ने हर्मिका का अर्थ "देवसदन अथवा देवताओं का निवास स्थान होता है।"[5] वेदिक स्तूप को चारों ओर से घेरती है। स्तूप तथा वेदिका के बीच जो खाली स्थान होता है उसे प्रदक्षिणापथ कहा

जाता था। बाद के समय में वेदिका कि चार दिशाओं में प्रवेशद्वार बनाये गये महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी अस्थियों को आठ भागों में बाँटते हुए उसपर स्तूप का निर्माण कराया गया था। इनमें केवल पिपरहरवा स्तूप के अवशेष ही बचे है। अशोक के समय स्तूप निर्माण का कार्य व्यापक पैमाने पर शुरु हुआ। बौध अनुश्रुति के अनुसार अशोक ने चौरासी हजार स्तूप का निर्माण कराया यद्यपि यह अतिश्योक्ति मालुम पड़ता है। चीनी यात्री हुएनसांग की यात्रा वृतांत में तक्षशिला, श्रीनगर, थानेश्वर, मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, गया, कौशाम्बी, श्रावस्ती, वाराणसी, वैशाली आदि को देखने की बात करता है। सांची तथा भरहुत के स्तुपों का निर्माण मूल रुप से अशोक ने ही कराया था। स्तुप के प्रवेश द्वारों पर गौतम बुद्ध के जीवन–प्रसंगो तथा जातक कथाओं से संबधित प्रस्तर मूर्त्तियाँ बनायी गई हैं।

गुहा–विहारः– मौर्यकाल के शिल्पी पत्थरों को काटने, छीलने तथा पॉलिश करने में अद्वितीय थे। चट्टानों को काटकर गुहाविहारों का निर्माण कराया। गुहा निर्माण आजीवक संप्रदाय के भिक्षुओं के निवास स्थल के रुप में करायी गई। इन गुफाओं की भी एक बड़ी विशेषता इनकी छतों एवं दीवारों पर चमकदार पॉलिश को होना है जो आज भी बरकरार है। मौर्ययुगीन स्तूप एवं गुफाविहार वेदिकाओं से घिरे होते थे। बोधगया, सारनाथ आदि स्थलों से वेदिकाओं के अवशेष मिले हैं, चमकदार पॉलिश इनकी विशेषता है।

अशोक ने अपने राज्यभिषेक के बारहवें वर्ष में सुदामा गुहा को आजीवकों को प्रदान किया। यह जहानाबाद जिले के बराबर की पहाड़ियों में स्थित है। यह दो कमरों वाला है। एक बड़ा चतुर्भुजाकार कमरा जिसकी छत बेलन के समान है। बाहर के कमरे से अन्दर के वृत्ताकार कमरे में जाया जा सकता है। द्वार लकड़ी के बने हुए हैं। अशोक ने शासन के 19वें वर्ष कर्णचौपाल गुहा का निर्माण कराया। यह आयताकार कमरा है। इसकी छत मेहराबदार है। अशोक के पौत्र दशरथ ने नागर्जुनी पहाड़ियों में तीन गुफा बनवायी और आजीविकों को प्रदान किया गया। इसमें लोमश ऋषि की गुफा प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ है। इसका वास्तु–विन्यास सुदामा गुफा जैसी है। परन्तु इसका आन्तरिक कोष्ट अण्डाकार है। इसका प्रवेशद्वार पर हाथियों द्वारा स्तूप पूजा करते हुए दिखाया गया है। मेहराब में जालीदारी काम किया गया है।

मूर्त्तिकलाः– राजा के सरंक्षण में जो मूत्ति कला का विकास हुआ उसे राजकीय कला कहा जाता है। इस काल के मूर्त्तिकला के सबसे अच्छे नमूने अशोक के स्तम्भों पर मिलता है। सारनाथ की मूर्त्तियाँ कलात्त्मक रुप से सर्वश्रेष्ठ है। इसमें चार सिंह पीठ से पीठ सटाये हुए चार दिशाओं की ओर मुँह किये हुए दृढ़तापूर्ण रुप से बैठे हुए हैं। सिंह के तने हुए शरीर की मांसपेशियाँ, लहलहाते केश तथा गठीला अंग–प्रत्यंग इतने अच्छे से बनाया हुआ है मानो वह सजीव हो। धौली चट्टान (उड़ीसा) को काटकर बनाई गयी हाथी की आकृति पाषाण मूत्तिकला की उत्कृष्टता का प्रतीक है। विशालकाय हाथी जिसके अग्र भाग को उकेरा गया है, उसके पैर, सूँड़ को बड़ी सावधानी से बनाया गया। देखने से ऐसा लगता है मानो अपनी सूँड़ में कोई वस्तु लपेटकर उठा रहा है, और हाथी चट्टान से बाहर आ रहा है। कालसी से भी एक हाथी की मूत्ति मिली है जिसे चट्टान से काट कर बनाया गया है।

लोककला में विशेषकर यक्ष–याक्षिणी की मूर्त्तियाँ प्राप्त हुई है। ये मूत्तियाँ लोक प्रतीकों का सूचक है। साथ ही इसपर चमकदार पॉलिश है। दीदारगंज (पटना) से प्राप्त चामरग्राहिणी यक्षिणी उत्कृष्ट नमुना है। यह मूत्ति अत्यंत सजीव है और इसमें नारी सौन्दर्य की स्वाभाविक गुण दिखाये गये हैं। मूर्त्ति के दाहिने हाथ में चँवर है, बाल गुंथे हुए है। गले में मोतियों का हार तथा कलाइयों में चुड़ियाँ

इस बात की ओर इशारा करती है कि इस काल की महिलाएँ अपनी देह–यष्टि के प्रति काफी सजग थी।

इसके अतिरिक्त बेसनगर यक्षिणी, आगरा और मथुरा से यक्ष, वाराणसी से त्रिमुखी यक्ष की मूत्ति प्राप्त हुई है। शिशुपालगढ़, कुरुक्षेत्र, महरौली आदि से भी यक्ष की मूत्ति प्राप्त हुई है। यक्ष–यक्षी प्रतिमाएँ लोकधर्म का प्रमुख आधार थी और इन्हें सभी जगह देवी–देवता के रुप में पूजा जाता था।

मृण्मूर्त्तियाँः–पटना से मिट्टी की मूर्त्तियाँ प्राप्त हुई है। इसमें खिलौने विशेष रुप से महत्त्वपूर्ण है। यह बुलन्दीबाग, कुम्हरार, बसाढ़, बक्सर आदि से प्राप्त हुए हैं। बुलन्दीबाग से एक नारी की लम्बी व खड़ी मूर्त्ति मिली है। हाथ में डमरु तथा लहंगा धारण की है। बुलंदीबाग से ही हँसते हुए बालक का शिरोभाग मिला है, इसकी हँसी मनमोहक है। इन मूर्त्तियों का संबंध जनजीवन से जुड़ा हुआ है।

निष्कर्षः– कुल मिलाकर मौर्यकाल की इस कला ने भारतीय जनजीवन में एकता स्थापित करने की परंपरा को अटूट रुप से सुरक्षित बनाए रखने में अमुल्य योगदान दिया। इसी काल से कला के क्षेत्र में पत्थरों का प्रयोग प्रारंभ हुआ जो आगे चलकर भारतीय संस्कृति की एक अनमोल विरासत बन गयी। मौर्ययुगीन कलाकार शिलाखण्डों को काटने, छीलने, शीशे की तरह चमकाना, उसमें सजीव निरुपण करने में अपने समय के साथ–साथ आज के संदर्भ में भी अद्वितीय दिखाई पड़ते हैं। स्तम्भों की बनावट तथा तत्त्कालीन चमकदार पॉलिश भारतीय कला के ही पहचान हैं। एक पल के लिए भी विदेशी विद्वानों के इस मत को स्वीकार करते हुए ये मान ले कि मौर्यकला स्तंभों की बनावट तथा चमकदार पॉलिश पर विदेशी प्रभाव पड़ा है तब भी मौर्यकालीन कला अपने युग की सर्वोत्त्कृष्ट कला का उदाहरण है।

संदर्भः–

1. वी0डी0 महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0–340
2. वी0डी0 महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ सं0–340, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली
3. के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद,पृष्ठ सं0–271
4. के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति,यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृष्ठ सं0–271
5. डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीयकला, पृष्ठ सं0–120–122

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के प्रभाव का अध्ययन

डॉ0 अमर कुमार
द्वारा – स्व. राम नन्दन लाल
मो.– शेखटोली, वार्ड न. – 25
जिला+पो.– समस्तीपुर

सार–संक्षेपः

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के प्रभाव का अध्ययन करना है। इसके लिए समस्तीपुर जिला के शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्र में अवस्थित 5 विभिन्न विद्यालयों से 200 विधार्थियों का चयन उद्देश्यात्मक प्रतिदर्शन पद्धति के आधार पर किया गया। विद्यार्थियों की उम्र सीमा 13 वर्ष से लेकर 15 वर्ष (औसत उम्र–14 वर्ष) थी।

विकसित अलगाव मापनी, डॉ0 मोहसिन शमशाद एवं के0 जहाँ (2087) द्वारा रूपान्तरित समायोजन मापनी, रेखा गुप्ता (2005) द्वारा विकसित आत्म–विश्वास मापनी एवं स्वयं द्वारा विकसित व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र को उत्तरदाताओं के ऊपर प्रशासित करते हुए प्रदत्त संग्रह का कार्य किया गया। प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर पाया गया कि (i) अलगाव का समायोजन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, अर्थात् अलगाव से प्रभावित बच्चों का समायोजन, अलगाव रहित बच्चों के समायोजन की अपेक्षा खराब होता है, (ii) अलगाव से प्रभावित बच्चों का आत्म–विश्वास निम्न होता है, जबकि अलगाव रहित बच्चों का आत्म–विश्वास उच्च होता है एवं शहरी क्षेत्रों के बच्चों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों में अलगाव कम होता है।

परिचयः

वर्त्तमान समय में विद्यालय जाने वाले बच्चों के लिये एवं शैक्षिक संस्थानों के संदर्भ में अलगाव एकऐसा मुख्य कारक है, जो विद्यार्थियों को मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक दृष्टिकोण से प्रभावित करता है। अलगाव एक ऐसी अवधारणा है, जिसका सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दोनों सदंर्भ से होता है। सामाजिक अवधारणा के अनुसार सामाजिक प्रक्रिया के कारण व्यक्ति अपने समाज से अलग हो जाता है, जबकि मनोवैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार व्यक्ति अपने को दूसरों से अलगाव का अनुभव करने लगता है।

विद्यालय जाने वाले बच्चों के सम्बन्ध में अलगाव की अवधारणा अधिक पाई जाने लगी है। अलगाव मनोवैज्ञानिक अवधारणा से संबंधित होने के कारण बच्चों में इसके प्रभाव होने की संभावना अधिक होती है। शैक्षिक दृष्टिकाण में बच्चों में अलगाव, आर्थिक अलगाव, वर्ग–साथियों से अलगाव इत्यादि। जब बच्चे किसी प्रकार के अलगाव से प्रभावित होता है, तो उसका प्रभाव उसके समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर भी पड़ता है।

समायोजन से अभिप्राय होता है, व्यक्ति को परिस्थिति के अनुसार अपने को ढ़ालना होता है। अर्थात् व्यक्ति जब बिना किसी टकराव अथवा विरोधाभास के जीवन–यापन करता है, तो वह समायोजित कहलाता है। विद्यालयी दृष्टिकोण से जब बच्चा विद्यालय प्रबंधन के अनुकूल एवं अपने विद्यालय के साथियों, शिक्षकों इत्यादि के साथ आदर्श एवं सकारात्मक रूप से रहते हुऐ शैक्षिक गतिविधि करता है, तो वह समायोजित बालक के रूप में जाना जाता है।

आत्म–विश्वास व्यक्तित्व के प्रतिमान का एक गुण होता है। आत्म–विश्वास एक आवश्यक मनोवृत्ति होता है, जिसके द्वारा हम अपने अन्दर सकारात्मक और वास्तविक प्रत्यक्षण कर सकते हैं और अपने गुणों की पहचान कर पाते हैं। यह व्यक्ति की व्यक्तित्व विशेषता होती है, जिसके द्वारा व्यक्ति में स्वतंत्रता, विश्वास, स्नेह, आशान्ति एवं आलोचनाओं को सामना करने की क्षमता विकसित होती है।

वसावना (1975) ने आत्म–विश्वास की अवधारणा स्पष्ट करते हुऐ कहा है कि आत्म–विश्वास से तात्पर्य व्यक्ति के वैसे अर्जित गुणों से होता है, जिसके द्वारा प्रभावी रूप से किसी भी परिस्थिति में सही ढ़ंग से कार्य करने में सक्षम होता है।

अलगाव से संबंधित कुछ शोध–अध्ययनें उपलब्ध हैं; जिसकी सहायता प्रस्तुत शोध में लिया जा सकता है। मोरिनाज इत्यादि (2017) ने अपने अध्ययन में पाया है कि विद्यालयी अलगाव बच्चों के सकारात्मक मनोवृत्ति एवं मनबहलाव के साथ नकारात्मक रूप से संबंधित होता है।

एल्तेनवॉग इत्यादि (1995) ने अपने अध्ययन में पाया है, कि विद्यालयी अलगाव का शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसी संदर्भ में इन्होंने पाया है कि विद्यार्थियों के सहभागी व्यवहार पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

जॉनसन इत्यादि (2005) ने भी अपने अध्ययन में पाया है, कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि विद्यालयी अलगाव से प्रभावित होती है। विद्यालयी अलगाव यदि बच्चों में अधिक होती है, तो उसका शैक्षिक उपलब्धि संतोषजनक नहीं होता है।

इस तरह अलगाव से संबंधित अनेकों शोध अध्ययनें उपलब्ध हैं। लेकिन इन अध्ययनों में अलगाव, समायोजन एवं आत्म–विश्वास को लेकर अध्ययनों की कमी है। अतः इस दृष्टिकोण से विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने का निर्णय लिया गया है।

शोध का उद्देश्यः

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के प्रभाव का अध्ययन करना था।

परिकल्पनाऐंः प्रस्तुत शोध की मुख्य परिकल्पनाऐं निम्नांकित हैंः–

(i) अलगाव ग्रसित बच्चों एवं अलगाव रहित बच्चों के समायोजन स्तर में अन्तर होगा।

(ii) अलगावग्रसित बच्चों का आत्म–विश्वास कमजोर होगा जबकि अलगाव रहित बच्चों का आत्म–विश्वास बेहतर होगा।

(iii) शहरी एवं ग्रामीण बच्चों के अलगाव भावना में सार्थक अन्तर होगा।

(iv) लड़के एवं लड़की उत्तरदाताओं में अलगाव की भावना में सार्थक अन्तर होगा।

शोध–विधिः

(i) प्रतिदर्शः

प्रस्तुत शोध में उत्तरदाताओं के रूप में समस्तीपुर अनुमण्डल क्षेत्र के अंतर्गत स्थित चार विभिन्न उच्च विद्यालयों (दो विद्यालय शहरी क्षेत्र एवं दो विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र) से कुल 200 छात्र–छात्राओं का चयन किया गया।

कुल उत्तरदाताओं में 100 लड़का एवं 100 लड़की उत्तरदाताओं एवं इतनी ही संख्या में शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र से छात्र–छात्राओं का चयन किया गया।

(ii) प्रतिदर्श चयन की विधिः

प्रतिदर्शों के चयन में उद्येश्यात्मक प्रतिदर्शन विधि का अवलोकन किया गया।

(iii) शोध मापनियांः

प्रस्तुत शोध में निम्नांकित मापनियों का प्रयोग किया गयाः–

(i) अलगाव मापनीः

उत्तरदाताओं के अलगाव स्तर की जानकारी हेतु हरदेव ओझा (1990) द्वारा विकसित अलगाव मापनी का प्रयोग किया गया। यह मापनी भारतीय संदर्भ में अलगाव स्तर की जानकारी हेतू काफी विश्वसनीय वैध एवं वास्तविक मापनी है।

(ii) समायोजन मापनीः

उत्तरदाताओं के समायोजन स्तर की माप के लिए मोहसिन शमशाद एवं के0 जहाँ0 (1987) द्वारा रूपान्तरित समायोजन मापनी का प्रयोग किया गया। यह मापनी भी मनोवैज्ञानिक शोध में उत्तरदाताओं के समायोजन स्तर की माप के लिए अत्यन्त ही लोकप्रिय मापनी है।

(iii) आत्म–विश्वास मापनीः

उत्तरदाताओं के आत्म–विश्वास स्तर की माप के लिए रेखा अग्निहोत्री (1990) द्वारा विकसित आत्म–विश्वास मापनी का प्रयोग किया गया। यह मापनी भी उत्तदाताओं में आत्म–विश्वास स्तर की माप के लिये काफी उपयुक्त, वैध, वास्तविक एवं विश्वसनीय मापनी है।

(iv) व्यक्तिगत सूचना–प्रपत्रः

उत्तरदाताओं के सम्बन्ध में व्यक्तिगत जानकारी के लिए शोधार्थी द्वारा विकसित व्यक्तिगत सूचना–प्रपत्र का प्रयोग किया गया।

(iv) प्रदत्त संग्रह की प्रक्रियाः

शोध–शीर्षक से संबंधित संगत प्रदत्त संग्रह के लिए शोधार्थी द्वारा अच्छे ढ़ंग से योजना बनाई गई। बनाई गई योजनानुसार शोधार्थी द्वारा अध्ययन क्षेत्र स्थित विद्यालय का भ्रमण किया गया और विद्यालय प्रधान से मिलकर, मिलने के प्रयोजन से अवगत कराया गया। तत्पश्चात् प्रदत्त–संग्रह के लिए सहयोग की अपील की गई। इसके बाद विद्यालय प्रबंधन के साथ तय किये गऐ निर्धारित तिथि एवं समय पर छोटा वर्ग समूह बनाकर सभी चयनित मापनियों को प्रशासित किया गया और प्रदत्त संग्रह का

कार्य सम्पादित किया गया। इस तरह शोधार्थी द्वारा प्रदत्त संग्रह का कार्य पूर्ण किया गया। विद्यालय प्रधानों, शिक्षकों एवं छात्र–छात्राओं को आवश्यक सहयोग के लिये धन्यवाद दिया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषणः

शोधार्थी द्वारा संग्रहित किये गये प्रदत्तों का ही परीक्षण सांख्यिकीय विधि द्वारा विश्लेषण किया गया और समसामाजिक भारतीय संदर्भ में परिणाम तैयार किया गया।

परिणामः

सारणी संख्या –(i)

अलगाव ग्रसित एवं अलगाव रहित उत्तरदाताओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी परिणामः–

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
अलगाव ग्रासित उत्तरदाताएँ	100	32.29	9.37	4.31	<.01	198
अलगाव रहित उत्तरदाताएँ	100	25.03	6.81			

सारणी संख्या –(ii)

अलगाव ग्रसित एवं अलगाव रहित उत्तरदाताओं के आत्म–विश्वास का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी परिणामः–

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
अलगाव ग्रसित उत्तरदाताएँ	100	31.43	9.33	4.08	<.01	198
अलगाव रहित उत्तरदाताएँ	100	24.27	6.13			

सारणी संख्या –(iii)

शहरी एवं ग्रामीण उत्तरदाताओं में अलगाव का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी परिणामः–

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
शहरी उत्तरदाताएँ	100	18.61	7.41	5.10	<.01	198
ग्रामीण उत्तरदाताएँ	100	12.99	4.33			

सारणी संख्या –(iv)

लड़के एवं लड़की उत्तरदाताओं में अलगाव का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी परिणामः–

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
लड़के उत्तरदाताएँ	100	11.24	2.42	5.18	<.01	198
लड़की उत्तरदाताएँ	100	18.33	4.51			

सारणी संख्या (i) में दिऐ गये परिणाम के विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट है कि अलगाव ग्रसित उत्तरदाताओं का समायोजन स्तर अच्छा नहीं है, जबकि अलगाव रहित उत्तरदाताओं का समायोजन स्तर अच्छा है। क्योंकि अलगाव ग्रसित उत्तरदाताओं ने समायोजन मापनी पर, अलगाव रहित उत्तरदाताओं की अपेक्षा अधिक माध्य (32.29) एवं मानक–विचलन (9.37) प्राप्त किया है। साथ ही, प्राप्त टी–मूल्य विश्वास के < .01 स्तर पर सार्थक पाया गया। अतः इस तरह कहा जा सकता है कि व्यक्तियों के समायोजन स्तर पर उसके अलगाव की भावना का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सारणी संख्या (ii) एवं (iii) में प्रदर्शित परिणाम के अवलोकन से स्पष्ट है कि आत्म–विश्वास मापनी पर अलगाव रहित उत्तरदाताओं ने कम माध्य (12.99) एवं मानक विचलन (7.41) प्राप्त किया है, जबकि अलगाव ग्रासित उत्तरदाताओं ने अधिक माध्य (18.61) एवं मानक–विचलन (7.41) प्राप्त किया है। इन दोनों समूहों के द्वारा प्राप्त माध्य एवं मानक–विचलगे के आधार पर परिकलित टी–मूल्य (5.10) विश्वास के <.01 स्तर पर सार्थक की भावना के कारण लोगों का आत्म–विश्वास कमजोर होता है, जबकि अलगाव की भावना से अलग रहने पर आत्म–विश्वास मजबूत होता है।

सारणी संख्या (iii) के अवलोकन से स्पष्ट है, कि अलगाव की दृष्टि से शहरी एवं ग्रामीण उत्तरदाताओं में सार्थक अंतर है। इस संदर्भ में परिणाम में पाया गया कि शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा अलगाव की भावना अधिक होती है। दोनों समूहों के उत्तरदाताओं के द्वारा प्राप्त माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर परिकलित टी–मूल्य (5.10) भी विश्वास के < .01स्तर पर सार्थक पाया गया। इस तरह के परिणाम के आधार पर किया जा सकता है, कि शहरी क्षेत्रों में अधिकांश लोग अलगाव की भावना से प्रभावित होते हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी अपेक्षाकृत कमी होती है।

सारणी संख्या (iv) के अवलोकन से स्पष्ट है कि अलगाव की दृष्टि से लड़का एवं लड़की उत्तरदाताओं के बीच सार्थक अन्तर है। इस परिणाम में लड़कियों ने जहाँ अलगाव मापनी पर अधिक माध्य (18.33) एवं मानक–विचलन (4.51) प्राप्त किया है, वहीं लड़के उत्तरदाताओं ने अलगाव मापनी पर कम माध्यम (11.24) एवं मानक–विचलन (2.42) प्राप्त किया है। इस तरह, इस परिणाम के आधार पर कहा जा सकता है कि लोगों के अलगाव भावना पर यौन–भिन्नता का प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्षः

प्रस्तुत शोध में प्राप्त परिणामों के निष्कर्ष के रूप में निम्नांकित तथ्य स्पष्ट हैः–

(i) अलगाव से ग्रसित बच्चों का समायोजन स्तर खराब होता है, जबकि अलगाव से रहित बच्चों का समायोजन स्तर बेहतर होता है।

(ii) अलगाव से ग्रसित बच्चों का आत्म–विश्वास कमजोर होता है, जबकि अलगाव रहित बच्चों का आत्म–विश्वास मजबूत होता है।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों में अलगाव की भावना कम होती है, जबकि शहरी क्षेत्रों के बच्चों में अलगाव की भावना अधिक होती हैं। एवं

(iv) लड़के की अपेक्षा लड़कियों में अलगाव की भावना अधिक होती है।

सुझावः

प्रस्तुत शोध में सुझाव के रूप में मेरा मत है कि लोगों में मनोवैज्ञानिक सम्पन्नता, बेहतर आत्म–विश्वास एवं समायोजन के लिए अलगाव सम्बन्धी कारक को दूर करना होगा क्योंकि अलगाव के कारण व्यक्ति का समायोजन एवं आत्म–विश्वास नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।

संदर्भ ग्रन्थों सूचीः–

01. एल्तेन वर्ग, आर0 जे, इंजेल, डी0 ई0 मार्टिन, डी0 टी0 (1995) : केअरिंग फॉर किड्स : ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ अरवन स्कूल लीवर्स, लंदन : द फाल्मर प्रेस।

02. मोरिंनाज, जे0, ग्रीसू, अलीसा, हडज़ार, ए0 (2017) : स्कूल एलिनेशन : ए कनस्ट्रक्ट वैलिडेशन स्टडी, फ्रॉन्टलाईन लर्निंग रिसर्च, वॉल्यूम–5, नं0 (2) 36–59.

03. गुप्ता, रेखा (1995) : मैनुअल ऑफ सेल्फ कॉन्फिडेन्स इन्वेंट्री, आगरा साईकोलॉजिकल रिसर्च सेल आगरा।

04. शमशाद, एम0 एण्ड जहाँ, के0 (1987) : मैनुअल ऑफ एडजेस्टमेंट इंवेंट्री, आगरा साईकोलॉजिकल रिसर्च सेल आगरा।

05. ओझा, हरदेव (1990) : मौनुअल ऑफ ऐलिनेशन स्केल, आगरा साईकोलॉजिकल रिसर्च सेल, आगरा।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

''आचार्य भट्टोद्भटोद्भावित शब्दालङ्कार''

डा0 आनन्द कुमार दीक्षित

प्राचार्य
विवेकानन्द इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट एण्ड टेक्नोलॉजी
इटावा

पुनरूक्तवदाभास

आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में पुनरूक्तवदाभास अलंकार का विवेचन नहीं हुआ है। आचार्य भामह तथा दण्डी ने भी इस अलंकार को अनुल्लिखित रखा है। यह अलंकार सर्वप्रथम उद्भट के 'काव्यालंकारसारसंग्रह' के प्रथम वर्ग में प्रथम विवेच्य है। उद्भट ने नामोद्देश–स्थल में इसे ' पुनरूक्तवदाभास' कहा है–

पुनक्तवदाभासं छेकानुप्रास एव च।
अनुप्रासस्त्रिधा लाटानुप्रासो रूपकं चतुः।।
उपमादीपकं चैव प्रतिवस्तूपमा तथा।
इत्येत एवालंकाराः वाचां कैश्चिदुदाहृताः।।[1]

परन्तु लक्षण लिखते समय इसे 'पुनरूक्तवदाभास' नाम देते हैं। उद्भत कृत लक्षण है–

पुनरूक्ताभासमभिन्नवस्त्विवोद्भासि भिन्नरुपपदम्।''[2]

अर्थात् 'पुनरूक्तवदाभास में भिन्न रूपपद अभिन्न वस्तु इव प्रतीत होता है अर्थात् जहां दो पद एक से प्रतीत हों परन्तु वस्तुतः अर्थ में भिन्न हों।

लघुवृत्तिकार प्रतिहारेन्दुराज स्पष्ट करते हैं– अत्रालंकार्यं यत्काव्यं तद्धर्मत्वेन पुनरूक्तवदाभासमानयोः पदयोरलंकारत्वमुक्तं न तु स्वतन्त्रतया। फलं चैवमभिधानस्य पुनरूक्तवदाभासमान पदसमन्वस्य अलंकारताख्यापनम्। अलंकारस्य खल्वलंकार्य परतन्त्रतया निरूपणे क्रियमाणे सुष्ठुस्वरूपं निरूपितं भवति स्वात्मन्यवस्थितस्य तस्यानलंकारत्वात् समुद्गकस्थित हारकेयूर पारिहार्याद्यलंकारवत्। अतः पुनरूक्तवदाभासत्वस्यालंकारताख्यापनाय काव्यपरतन्त्रतया निर्देशो युक्त एव।''[3]

पुनरूक्तवदाभास का उदाहरण देते हैं–

''तदाप्रभृति निःसङ्गो नागकुंजरकृतिभृत्।
शितिकण्ठः कालगलत्सतीशोकानलव्यथः।।''[4]

यहां इस उदाहरण में 'नाग''कुंजर' पद गजवाची होने से भिन्नरूप पद होते हुए भी अभिन्नवस्तु इव प्रतीत होते हैं– परन्तु वस्तुतः 'नाम' हस्तिवाची है, 'कुंजर' नहीं, कुंजर श्रेष्ठतावाची है। इसी प्रकार 'शितिकण्ठ' तथा 'कालगल' शिववाची हैं, परन्तु वस्तुतः 'कालगलत्' पद का अर्थ है 'समय पाकर नष्ट होने वाला और यह पद सती के शोक का विशेषण है। यहा 'शितिकण्ठः कालगलत्' में ''शितिकण्ठ'' एवं

'कालगल' शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं पुनरुक्तता का आभाष वहां मिलता है। परन्तु वह आभाष ही है वास्तव नहीं।

विवृतिकार ने उद्भट कृत मूल लक्षण पर परिष्कार पूर्वक विचार किया है। उद्भट इस अलंकार को 'वाचामलंकार' के मध्य गिनते हैं। इंदुराज स्पष्टतया इसे 'शब्दालंकार' कहते हैं किन्तु विवृतिकार ने अर्वाचीन आलंकारिकों के अनुरूप 'वाचां' का अर्थ व्युत्पतिभेद से 'शब्द'एवं'अर्थ' दोनो किया और अर्वाचीन आलंकारिकों के समान इसे उभयालंकार सिद्ध किया। उद्भट की पदावली इस प्रकार श्लिष्ट हैं कि 'वाचाम्' को केवल शब्दपरक रखकर केवल शब्दालंकार भी कहा जा सकता है और शब्दार्थपरक रखकर उभयालंकार भी कहा जा सकता है।

वामन तथा रुद्रट में इस अलंकार का वर्णन प्राप्त नहीं होता। किन्तु आचार्य मम्मट के 'काव्यप्रकाश' के नवम उल्लास में शब्दालंकारों में अन्तिम विवेच्य अलंकार पुनरुक्तवदाभास है। विभिन्नाकार शब्दगा प्रतीत एकार्थता को पुनरूक्तवदाभास कहते हैं अर्थात् विभिन्न स्वरूप के शब्दों में एकार्थता के न रहने पर भी एकार्थता का आभास पुनरूक्तवदाभास है। लक्षण है–

''पुनरूक्तवदाभासो विभिन्नाकारशब्दगा।
एकार्थतेव..... ।।[5]

विभिन्न रूप के कहीं दोनों सार्थक कहीं दोनों निरर्थक और कहीं एक सार्थक एक निरर्थक शब्दों में जो प्रारम्भ में एकार्थता की प्रतीति होती है वह पुनरूक्तवदाभास का चमत्कार है।

''भिन्नरूप सार्थकानर्थक शब्दनिष्ठम् एकार्थत्वेन मुखेभासनं पुनरूक्तवदाभासः।''[6]

यह उभयालंकार है।

''अत्र एकस्मिन् पदे परिवर्तितेनालंकार इति शब्दाश्रयः अपरस्मिंस्तु परिवर्तितेऽपि स न हीयते इत्यर्थनिष्ठः इत्युभयालंकारोऽयम्।''

शब्द का पुनरुक्तवदाभास केवल शब्द में रहता है और सभंग अथवा अभंग है। सभंग का उदाहरण है–

अरिवध देहशरीरः सहसा रथि सूततुरगपादातः।
भाति सदानत्यागःस्थिरतायामवनितलतिलकः।।

राजानक रुय्यक ने अलंकारसर्वस्व के प्रारम्भ में ही तीन प्रकार की पौनरुक्त्य का वर्णन किया है।

'इहार्थपौनरुक्त्यं शब्दपौनरुक्त्यं चेति त्रयः पौनरुक्त्य प्रकाराः।'[7]

तथा अर्थ पौनरुक्त्य को दोष मानते हुए शब्दार्थ पौनरुक्त्य एवं शब्द पौनरुक्त्य का वर्णन 'पुनरूक्तवदाभास' नाम से किया है। लक्षण है–

''आमुखावभासनं पुनरुक्तवदाभासम्।''

अर्थात् सूत्र में 'आमुख' शब्द का ग्रहण पर्यवसान में भिन्नता का ज्ञान कराने हेतु हुआ है। परिभाषित प्रस्तुत अलंकार का निर्देश करते हुए नपुंसकलिंग का रूप 'पुनरुक्तवदाभासम्' लौकिक अलङ्कारों से वितरीत रूप में काव्यालंकारों की अलंकार्य अर्थात् शब्दार्थमय काव्य के प्रति परतन्त्रता

(अपृथग्भाव) को व्यंजित करने के लिए हुआ है। अर्थ की पुनरूक्ति होने से अर्थ पर आश्रित होने के कारण इसे (पुनरुक्तावभास को) अर्थालंकार मानना चाहिए।

पुनरूक्तवदाभास का उदाहरण रूय्यक स्वरचित श्रीकण्ठस्तव से ही देते हैं यथा–

अहीनभुजगाधीशवपुर्वलयकङ्कणम्।
शैलादिनन्दि चरितं क्षतकंदर्पदर्पकर्म।।
वृषपंगवलक्ष्यमाणं शिखिपावक लोचनम्।
ससर्वमङ्गलं नौमि पार्वतीसखमीश्वरम्।।
दारूणः काष्ठतो जातो भस्मभूतिकरः परः।
रक्तशोणार्चिरूच्चण्डः पातु वः पावकः शिखी।।
एतच्च सुबन्तापेक्षया।
तिङ्न्तापेक्षया च यथा तत्रैव –
भुजंग कुण्डली व्यक्तशशिशुभ्रांशुशीतगुः।
जगन्त्यपि सदापायादव्याच्चेतोहरः शिवः।।[8]

अर्थात् मैं भगवान शंकर को प्रणाम करता हूँ जो अहीन (अहि–सर्प,इन=स्वामी,अ–हीन=पुष्ट) भुजगाधीश (वासुकि नाग) के शरीर के वलय (मण्डलीकृत शरीरी का कंकण पहने है, जो शैलादिनन्दिचरित (शिलाद पुत्र=शैलादि अर्थात् नन्दी, शैलादि नन्दी, पुनरूक्त, शैलादि अर्थात् नन्दी, शैलादि नन्दी, पुनरूक्त, शैलादि को नन्दित प्रहृष्ट करने वाला चरित) जो क्षतकन्दर्प – दर्पक हैं, (कन्दर्प और दर्पक – काम–पुन, कन्दर्प का दर्प) जिनका निशान है वृषपुंगव (वृष–बैल नन्दी, पुंगव = बैल नन्दों, वृषों में पुंगव श्रेष्ठ) जो शिखि पावक से युक्त नेत्रों वाले हैं शिखी = अग्नि और अग्नि – पुन0, शिखायुक्त अग्नि जो ससर्वमंगल और पार्वती सहित हैं। (सर्वमंगला – पार्वती, उनसे युक्त, तथा सबके मंगल से युक्त)।

'दारूणः काष्ठ से उत्पन्न (दारूणः = दारूण शब्द का पंचमी एक वचन, अतः दारू से और काष्ठ से = पुनरूक्ति, दारूण – क्रूर) भस्मभूतिकर (भस्म और भूति = भस्म उत्पन्न करने वाले, भस्म की भूति अर्थात् ढेर पैदा करने वाले) तथा रक्तशोणार्चि (रक्त = खून, शोण = खून, के समान लपट वाले शोण = लाल) शिखी (शिखा = लपट वाला अग्नि) उच्चण्ड पावक (अग्नि और पवित्र करने वाला) आपकी रक्षा करे।

प्रस्तुत स्थल सुबन्त की दृष्टि से पुनरूक्तवदाभास था। तिङ्न्त (क्रिया पदों) का पौनरूक्त्य का भी उसी प्रकार श्रीकण्ठस्तव में ही उदाहरण दिया है – जिसमें भुजंग कुण्डली (कुण्डली = सर्प कुण्डलवाले) व्यक्तशशि शुभ्रांशुशीतगुः (व्यक्त शशिशुभ्रांशुशीतगुः (व्यक्त है, शशी = चन्द्र शुभांशुचन्द्र शीतगु = चन्द्र जिसमें, शश = खरगोश से युक्त, शुभ्र किरणों वाला चन्द्र जिसमें) चेतोहर (चेतः चित्त को हरः = शिव, चेतोहरः चित्त को हरण करने वाले) शंकर भगवान सारे ब्रह्मांडों को सदापायात् अव्यात् (सदापायात् = रक्षा करें, अव्यात् = रक्षा करें 'सदाऽपायात् = अपाय हानि से रक्षा करें)

इस प्रकार अर्थगत पौनरूक्त्य का विचार प्रस्तुत करने के उपरान्त सर्वस्वकार ने शब्द गत पौनरूक्त्य पर भी विचार किया है –

''शब्द पौनरूक्त्यं व्यज्जनमात्र पौनरूक्त्यं स्वर व्यंजनसमुदाय पौनरूक्त्यं च।।''[9]

वृत्ति में स्पष्ट करते हैं कि अलङ्कार प्रकरण में केवल स्वर का पौनरूक्त्य चमत्कार कारी नहीं होता इसलिए दो ही भेद बतलाये गये।

''अलंकार प्रस्तावे केवलं स्वर पौनरूक्त्यमचारूत्वान्न गण्यते इति द्वैविध्यमेव।''[10]

वृत्ति में स्पष्ट करते हैं कि अलङ्कार प्रकरण में केवल स्वर का पौररूक्त्य चमत्कार कारी नहीं होता इसलिए दो ही भेद बतलाये गये।

आचार्य जयदेव ने चन्द्रालोक में ''पुनरूक्त्तवदाभास'' को पुनरूक्त प्रतीकाश'' नाम से प्रस्तुत किया है। भेदों की चर्चा नहीं की है। लक्षण – उदाहरण सुस्पष्ट है –

पुनरूक्तप्रतीकाशं पुनरूक्तार्थ संनिभम्।
अंशुकान्तं शशी कुर्वन्नम्बरान्तमुपैत्यसौ।।[11]

आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट की ही शब्दावली में पुनरूक्तवदाभास का लक्षण किया है –

आपाततो यदर्थस्य पौनरूक्त्येन भासनम्।
पुनरूक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः।।''[12]

विश्वनाथ ने भेदों का वर्णन तो नहीं किया परन्तु उभयालंकार को स्पष्टतः व्यक्त किया है।

''शब्दपरिवृत्ति– सहत्वासहत्वाभ्याम् अस्योभयालंकारत्वम्।''

अप्पयदीक्षित के ग्रन्थ कुवलयानन्द में जिसमें मात्र अर्थालंकारों की चर्चा है वहाँ पुनरूक्तवदाभास का वर्णन प्राप्त नहीं होता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पुनरूक्तवदाभास की कल्पना उद्भट प्रतिभा प्रसूत है। मम्मट ने भी इस अलङ्कार का सुष्ठुरूपेण वर्णन किया। उद्भट के ग्रंथ में 'पुरूक्तवदाभास' तथा 'पुरूक्ताभास' दोनों रूप दृष्टिगोचर होते हैं। जयदेव ने 'पुरूक्तप्रतीकाश' नाम दिया। मम्मट ने अन्वयव्यतिरेक भाव के कारण इसे उभयालंकार माना। विश्वनाथ भी मम्मट से सहमत हैं। परन्तु शोभाकरमित्र इसको शब्दालंकार मानते हैं।

''छेकानुप्रास''

उद्भट द्वारा सर्वप्रथम विवेचित चार अलंङकारों में से द्वितीय अलङ्कार छेकानुप्रास है।

लक्षण है – **'छेकानुप्रासस्तु द्वयोर्द्वयोः सुसदृशोक्तिकृतौ।।**[13]

दो दो समान स्वर व्यंजनों की सुन्दर अभिव्यक्ति छेकानुप्रास है। इसमें दो दो पदों में सौन्दर्य रहता है तीन चार में नहीं और ऐसे सौन्दर्य कोष अनेक हो सकते हैं। अनेक अक्षरों का दो दो समूह में उच्चारण छेकानुप्रास है। लक्षण में प्रयुक्त 'द्वयोर्द्वयोः में जो द्विवचन है – उससे प्रयोक्ता के तीन अभिप्राय हैं (स्वार्थे, अवधार्यमाणे, अनेकस्मिन्) पहला तो यह है कि स्वार्थ का ही ग्रहण हो, दूसरा यह कि 'सावधारण' ग्रहण हो और तीसरा यह कि वैसे अनेक हों। स्वार्थ का ग्रहण होने से 'वीप्सा' का खण्डन है अर्थात् प्रस्तुत द्विरूक्ति को वीप्सा का द्योतक नहीं माना जाना चाहिए। इसका फल यह है कि तब यह अभिप्राय नहीं होगा कि जितने भी द्विक किसी श्लोक या पद में संभव हो – उन सबका एक सदृश उच्चारण हो, बल्कि यही होगा कि कतिपय का ही। वीप्सा समस्तता के अभिप्राय से ही होती है। यहां वह समस्तता अभिप्रेत नहीं है। इस प्रकार 'स्वार्थ' कथन से वीप्सा की बात ही खतम हो जाती है। 'अवधार्यमाण' के ग्रहण से 'द्वयोर्द्वयोः' का अर्थ होगा द्वयोर्द्वयोरेव अर्थात् दो, दो का ही, अर्थात् दो दो समुदायों का ही परस्पर उच्चारणगत साम्य होना चाहिए, न कि तीन–तीन का। इसी प्रकार 'अनेकस्मिन्

कहने से यह व्यक्त होता है कि इस प्रकार का उपनिबंध जब अनेक बार होता है तभी छेकानुप्रास होगा एक बार के उपनिबंध से नहीं।

छेकानुप्रास शब्द दो अंशों से निर्मित है – छेक तथा अनुप्रास। चूंकि छेक, अनुप्रास का एक प्रकार है अस्तु सामान्य होने के कारण 'अनुप्रास' शब्द का पहले विवेचन प्रतिहारेन्दुराज के शब्दों में किया जा रहा है–

''परस्परमेकरूपान्विता रसाद्यभिव्यक्त्यनुगुणत्वेन लब्धोत्कर्षावर्णास्ततसमुदाया वा शोभातिशयहेतुत्वेन काव्ये क्षिप्यमाणाऽनुप्रासशब्देनान्वर्थे नाभिधीयन्ते।''[14]

अर्थात् वे वर्ण या वर्ण समुदाय अनुप्रास शब्द से अभिहित किए जाते हैं जिनमें परस्पर एकरूपता हो, जो रस एवं भाव की अभिव्यक्ति के अनुरूप हों। फलतः उत्कृष्ट हों, तथा शोभातिशय के संपादक होने के कारण काव्य में उपन्यस्त हों। 'छेका' शब्द नीड़ की ओर अभिरत पक्षियों का

बोधक है। कहा भी है– छेकान–गृहेष्वभिखानुशन्ति मृगपक्षिणः'।

घोंसले की ओर उन्मुख और बिना किसी की छेड़छाड़ खाये पक्षियों की भांति रस रूप घर की ओर अनायास उन्मुख इन वर्णों में अनुप्रास के योग से मधुर वाणी समुच्चरित होती है। इसीलिए विदग्धों ने इस अनुप्रास को छेकानुप्रास कहा है। अथवा छेक का अर्थ विदग्ध भी होता है अतः विदग्ध प्रिय होने से भी इसे विदग्धों का अनुप्रास या छेकानुप्रास कहा जाता है। छेकानुप्रास का उद्भट प्रदत्त उदाहरण है–

स देवो दिवसान्निन्ये तस्मिन् शैलेन्द्र कंदरे।
गरिष्ठगोष्ठी प्रथमैः पर्युपासितः।।

यहां कंदर का अर्थ है गुफा, गरिष्ठ शब्द गुरूतम का पर्याय है। गरिष्ठ शब्द गुरू शब्द से इष्ठन् प्रत्यय का विधान होने पर सम्पन्न होता है। साथ ही 'गुरू' शब्द को 'गर' आदेश हो जाता है। गुरू शब्द को 'गर' आदेश का विधान करने वाला सूत्र है–

प्रिय स्थिरास्फिरोरूबहुलगु वृद्धतुप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्वहिगर्वर्षित्रव्द्राधिवृन्दाः[15]

इस सूत्र से 'गुरू' शब्द को 'गर' आदेश होता है। इष्ठन् प्रत्यय'अतिशायने तमविष्ठनौ 'सूत्र से बताया गया है। गोष्ठी शब्द से विदग्धों का आसनबन्ध समझना चाहिए। प्रथम अर्थात् प्रधान। प्रमथ गणों को कहते हैं। पर्युपासित का अर्थ है सेवित। इस पद्य में 'सदैव तथा दिवस', इन्द्र तथा कंदर, 'गरिष्ठ तथा गोष्ठ', प्रथम तथा प्रमथ' परि एवं उपास' शब्द एक–एक जोड़े हैं – जहां स्वर एवं व्यंजन समुदित रूप में हैं अथवा इन जोड़ों या द्विकों के प्रत्येक समुदित खंड स्वर एवं व्यंजन की समष्टि है और प्रत्येक जोड़े में उच्चारणगत समानता भी है। अतः यहां छेकानुप्रास है।

मम्मट ने काव्य प्रकाश के नवें उल्लास में अनुप्रास के दो भेदों का निरूपण किया है। छेकानुप्रास तथा वृत्यानुप्रास। अनेक व्यंजनों के एक बार आवृत्ति रूप साम्य को छेकानुप्रास कहते हैं, छेक अर्थात् विदग्धों में प्रिय होने के कारण इसका नाम छेकानुप्रास है।

''वर्णसाम्यमनुप्रासः छेकवृत्तिगतो द्विधा।
सोऽनेकस्य सकृत्वपूर्वः, एकस्याप्यसकृत्परः।।''[16]

मम्मट का यह लक्षण उद्भट के लक्षण की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। इसमें दोनों की परस्पर तुलना भी है। अनेक वर्णों का एक बार साम्य छेकानुप्रास है और एक वर्ण अथवा अनेक वर्णों का अनेक

बार साम्य वृत्यानुप्रास है। 'सकृत' एवं 'असकृत' की यह विशेषता मम्मट का योग है। राजानक रूय्यक कृत छेकानुप्रास का लक्षण है –

''संख्यानियमे पूर्व छेकानुप्रासः।''[17]

रूय्यक ने संख्यानियम पद की कल्पना की। संख्या नियम को विवेचित करते हैं –

''द्वयोर्व्यंजन समुदायोः परस्परमनेकधा सादृश्यं संख्या नियमः।''[18]

अर्थात् दो व्यंजन समुदायों का परस्पर अनेक बार सादृश्य संख्या का नियम कहलाता है। यही संख्या का नियम होने पर पहले छेकानुप्रास होता है। सूत्रगत पहले (पूर्व) का अर्थ है व्यंजन समुदाय पर आश्रित। छेकानुप्रास का रूय्यक सम्मत उदाहरण है –

किं नाम दर्दुर दुरध्यवसाय सायं, कायं निपीड्य निनदं कुरूषे रूषेव।
एतानि केलिरसितानि सितच्छदाना माकर्ण्य कर्णमधुराणि न लज्जितोऽसि।।''

यहां 'सायं' शब्द के अनुस्वार को छोड़कर यकार मात्र के सादृश्य को दृष्टि में रखने से इस छेकानुप्रास अलङ्कार को वृत्यानुप्रास के साथ एक वाचकानुप्रवेश संकर है। जयदेव ने छेकानुप्रास का संक्षिप्त लक्षणोदाहरण दिया है –

''स्वर व्यंजन संदोह व्यूहा मन्दोहदोहदा।
गौर्जगज्जाग्रदुत्सेका छेकानुप्रासभासुरा।।[19]

आचार्य विश्वनाथ ने छेकानुप्रास के लक्षण में सुधार किया। लक्षण हैं –

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।
छेको व्यंजनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा।।[20]

यह लक्षण मम्मट की अपेक्षा सरल है। साथ ही 'अनेकधा' पद एवं उसकी व्याख्या छेकानुप्रास के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करने में समर्थ है।

''अनेकधेति स्वरूपतः क्रमतश्च। रसः सरः इत्यादेः क्रमभेदने सादृश्यं, नास्यालंकारस्य विषयः।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि उद्भट तथा रूय्यक दोनों आचार्य छेकानुप्रास को स्वतन्त्र अलंकार मानते हैं, परन्तु मम्मट आदि आचार्य इसे अनुप्रास का एक भेद मानते हैं। इसकी कल्पना उद्भट ने की, मम्मट ने उद्भट के लक्षण को एक वैज्ञानिक रूप प्रदान किया। मम्मट ने 'सकृत' और 'असकृत', पदों के प्रयोग से छेकानुप्रास एवं वृत्यनुप्रास का अन्तर किया। विश्वनाथ ने 'अनेकधा' पद जोड़कर छेकानुप्रास के लक्षण को सरल और स्पष्ट बना दिया।

''वृत्यानुप्रास''

'काव्यालंङ्कारसारसंग्रह' में चार शब्दालंकार हैं – एक पुनरूक्तवदाभास तथा तीन अनुप्रास। छेकानुप्रास, अनुप्रास (वृत्यानुप्रास) तथा लाटानुप्रास को उद्भट ने स्वतन्त्र अलंकारों के रूप में प्रतिपादित किया है। लघुवृत्तिकार प्रतिहारेन्दु राज ने पुनरूक्तवदाभास पूर्वक इन तीन अनुप्रासों को चार शब्दालंकार गिना है–

''**अत्रालंकारा अष्टावुद्दिष्टाः। तत्र चादौ चत्वारः शब्दालंकारा निरूपिताः।**''[21]

उद्भट ने अनुप्रास का लक्षण समस्त विवेचन के अन्त में प्रस्तुत किया है। भामह के अनुसार 'सरूपवर्णविन्यास' को अनुप्रास कहते हैं, उद्भट ने वर्ण के स्थान पर व्यंजन पद का प्रयोग किया।

''सरूप व्यंजनन्यासं तिसृष्वेतासु वृत्तिषु।
पृथक् पृथगनुप्रासमुशन्ति कवयः सदा।।''

व्यंजन पद का प्रयोग अधिक वैज्ञानिक है, क्योंकि अनुप्रास में 'स्वर' का महत्व नहीं है, मात्र व्यंजन पर अनुप्रास का सौन्दर्य निर्भर रहता है। उद्भट ने अनुप्रास के प्रसंग में वृत्तियों का भी परिचय दिया है और तीनों वृत्तियों के आधार पर अनुप्रास (वृत्यनुप्रास) के तीन उपभेद किए हैं।

परूषावृत्ति –

प्रथम वृत्ति परूषा है जिससे परूषानुप्रास बनता है। परूषा के आधार हैं – शकारषकारादियुक्त वर्ण, रेफ संयुक्त व्यंजन, टवर्ग तथा ह्ल, ह्व, ह्य आदि।

शषाभ्यारेफसंयोगैष्टवर्गेण च योजिता।
परूषा नाम वृत्तिः स्यात ह्लह्वह्यद्यैश्च संयुता।।

वृत्ति द्वारा स्पष्ट करते हैं कि 'श' एवं 'ष' आदि का योग होने पर जो वर्ण योग होता है– उसे परूषा नामक वृत्ति कहा जाता है। रेफ संयोग का अर्थ है, रेफ के साथ अन्य वर्ण का संयोग जैसे, क्र, र्क आदि। ट' वर्ग का अर्थ है – ट ठ ड ढ ण। इस वृत्ति में जो अनुप्रास होता है उसे परूषानुप्रास कहा जाता है। उसका उदाहरण देते हैं –

तत्र तोयाशयाशेष–व्याकोशित कुशेशया।
चकाशे शालिकिंशारू कपिशाशंमुखा शरत्।।[22]

इस उदाहरण में जलाशयों में पूर्णरूप से खिलाये गये हैं कमल जिसके द्वारा ऐसा बहुब्रीह समास और धान्य के शब्दों से पीले हो रहे हैं दिङमुख जिसमें (यह शरत्) यहां भी बहुब्रीह समास है। यहां शकार का समान रूप से उपनिबंध होने का कारण परूषानुप्रास है।

उपनागरिका –

द्वितीय वृत्ति उपनागरिका है जिससे उपनागरिकानुप्रास बनता है। इस वृत्ति के आधार हैं – सरूप वर्णों के संयोग क्क, च्च, प्प आदि, तथा वर्गान्त व्यंजनों के स्पर्शी (क से म तक) के साथ योग।

''सरूप संयोगयुतां मूर्ध्नि वर्गान्त्ययोगिभिः।
स्पर्शैयुतां च मन्यन्ते उपनागरिका बुधाः।।''

अर्थात् विदग्ध जनों ने उपनागरिका वृत्ति उसे माना है जहां समान रूप वाले वर्ण संयुक्त हों, तथा प्रत्येक वर्ग के अन्तिम अनुनासिक वर्ण अन्य स्पर्श वर्णों (क से म तक) के शिरोभाग पर अथवा आदि में मिलें हों। समान रूप वाले वर्णों के जो संयोग हैं जैसे क्क, प्प, च्च, इत्यादि उनसे युक्त और वर्ग के अन्तिम जैसे ङ, ञ, न, ण, म, सो इनसे ङ्क, ञ्च, ण्ट, न्त एवं म्प रूप से संयुक्त हों, सभी क से लेकर म तक के स्पर्श वर्ण, तो ऐसे वर्णविन्यास वालीवृत्ति उपनागरिका कही जाती है इसे उपनागरिका इसलिए कहा जाता है कि यह वैदग्ध्य सम्पन्न नागरिक वनिता से उपमित होती है। जो नागरिका से उपमित की जाय उसे उपनागरिका कहना ही चाहिए। यहाँ समास विधान कराने का सूत्र है – **'अवादयः कुष्टाद्यर्थे तृतीयया।**[23]

अर्थात् 'अव' आदि कुष्टादि अर्थ में तृतीयान्त पदों से समस्त होते हैं। इसी वार्तिक से वहाँ तत्पुरूष समास हुआ है और उपनागरिका शब्द निष्पन्न हुआ है।

उपनागरिका अनुप्रास का उद्भट सम्मत उदाहरण है–

सान्द्रारविन्द वृन्दोत्थ मकरन्दाम्बुविन्दुभिः।
स्यन्दिभिः सुन्दरस्मन्दं नन्दितेन्दिन्दिरा क्वचित्।।[24]

यहां 'द' स्पर्श वर्ण, जो अपने पूर्व में 'न' से युक्त है अर्थात 'न्द' की सरूपतः अनेकशः स्थिति है, 'न्द' की असकृद् आवृत्ति है। यहां आये 'सुन्दरस्मदं स्पंदिभिः' प्रयोग द्वारा सामान्य स्पन्दन को सुन्दर स्पन्दन से विशेषित बताया गया है। लघुवृत्तिकार ने इसे स्पष्ट करने हेतु 'रे पोषं पुष्णांति' प्रयोग उपस्थित किया है। पाणिनि के **'स्व पुषः**[25] सूत्र का यह उदाहरण है। अर्थात् जिस प्रकार यहां सामान्य पोषण को धन द्वारा पोषण रूप विशिष्ट पोष से विशेषित किया गया है उसी प्रकार 'सुन्दरस्पंदं स्पंदिभिः' की भी स्थिति है। 'सुन्दरस्पंद' बहुब्रीहि समासात्मक पद है, जो यहां क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सामान्य क्रिया स्पंदन विशेष्य है और विशिष्ट क्रिया 'सुंदरस्पंद' विशेषण है। बहुब्रीहि समास द्वारा सुंदरस्पंद का अर्थ होगा, सुन्दरस्पंदन है जिस क्रिया में वह सामान्य क्रिया जो अन्य पदार्थ प्रधान है, सुन्दर स्पंदन रूप विशेष क्रिया समासार्थ होकर विशेषण रूप से अन्वित है। इन्दिन्दिरा शब्द 'भ्रमर' का अर्थ प्रदान करता है।

ग्राम्या (कोमला) वृत्ति–

तृतीय वृत्ति ग्राम्या है जिससे ग्राम्यानुप्रास बनता है। ग्राम्या में परूषा तथा उपनागरिका से अतिरिक्त सौन्दर्य का समावेश होता है। इस वृत्ति को कोमला भी कहते हैं। यह लकार आदि से युक्त होती है। उद्भट ग्राम्या वृत्ति का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं–

''शेषैर्वर्णैर्यथायोगं कथितां कोमलाख्यया।
ग्राम्या वृत्तिं प्रशंसन्ति काव्येष्वादृतबुद्धयः।।[26]

अर्थात् यथा सम्भव अवशेष वर्णो से कोमल नाम द्वारा कथित ग्राम्या वृत्ति की प्रशंसा वे लोग किया करते हैं– जिनको काव्य में पर्याप्त आदर बुद्धि है। जिन वर्णो का उपयोग परूषा एवं उपनागरिका वृत्ति के निर्माण में स्थिर किया जा चुका है, उनसे बचे हुए यथासंभव लकार आदि वर्णो के योग से बनी वृत्ति को 'ग्राम्या' कहते हैं। उसी का दूसरा नाम है–कोमला। 'कोमलाख्यया' का ''कथिता' से सम्बन्ध है अर्थात् कोमला नाम से कही हुई। इस वृत्ति में होने वाले अनुप्रास की ग्राम्यानुप्रास संज्ञा होती है। उसका उद्भट द्वारा प्रदत्त उदाहरण है–

केलिलोलालिमालानां कलैः कोलाहलैः क्वचित्।
कुर्वती कानानारूढ श्रीनूपुररवभ्रमम्।।[27]

यहॉ 'केलिलोलाः' का तात्पर्य है 'क्रीड़ालम्पट। 'कलैः' अर्थात् मधुर शब्दों से। भ्रम अर्थात् भ्रान्ति या विपरीत ज्ञान। यहॉ 'ल' 'क' एवं 'र' का सरूपतः असकृद् उपनिबन्ध है। यहां ग्राम्यानुप्रास का स्वरूप बताने वाली कारिका में 'यथायोग' कहने का तात्पर्य यह है कि अवशिष्ट वर्ण 'घ' आदि भी हैं, परन्तु इनका प्रयोग नहीं होना चाहिए। कोमल वर्णों की असकृद् आवृत्ति से निर्मित होने के कारण ही इसे कोमलानुप्रास या ग्राम्यानुप्रास कहा गया है। इन वृत्तियों में रस भाव आदि की अभिव्यक्ति के अनुरूप अलग–अलग अनुप्रास उपस्थित होता है। इस उद्भट निम्नलिखित रूप से कहते हैं–

''सरूपव्यंजनन्यासं तिसृष्वेतासु वृत्तिषु।
पृथक्पृथगनुप्रासमुशन्ति कवयः सदा।।

आचार्य रूद्रट ने अनुप्रास को केवल वृत्यनुप्रास तक सीमित रखा। छेक तथा लाट अनुप्रास का विवेचन न करते हुए अनुप्रास सामान्य का लक्षण दिया है–

''एकद्वित्रान्तरितं व्यंजनमविवक्षितस्वरं बहुशः।
आवर्त्यते निरन्तरमथवा यदसावनुप्रासः।।[28]

यहां आये विवेचन में अनुप्रास का नाम तो वृत्यानुप्रास प्राप्त नहीं होता किन्तु इस सन्दर्भ में आचार्य रूद्रट द्वारा निरूपित पॉच वृत्तियों के विवेचन से यह अनुमन्य हो जाता है कि अनुप्रास को वहां वृत्यानुप्रासात्मक ही माना गया है। रूद्रट द्वारा विवेचित पॉच वृत्तियों के नाम निम्नवत् हैं–

''मधुरा प्रौढ़ा परूषा, ललिता भद्रेति वृत्तयः पंच।
वर्णानां नानात्वादस्येति यथार्थनामफलाः।।''[29]

मम्मट ने उद्भट के ही अनुसार छेक, वृत्ति और लाट इन भेदों में अनुप्रास को मानते हुए वृत्ति को व्यंजना रूप माना है–

वर्णसाम्यमनुप्रासः छेकवृत्तिगतोद्विधा।
सोऽनेकस्य सकृतपूर्व एकस्याप्यसकृत परः।।[30]

अर्थात् वर्ण साम्य ही अनुप्रास है वह छेक और वृत्ति इस प्रकार दो भेदों में केवल वर्णगत रहता हैं। इनमें छेकानुप्रास में अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति होती है और वृत्यानुप्रास में एक या अनेक वर्णों की अनेक बार। मम्मट ने वृत्यनुप्रास के संबंध में तीन वृत्तियों का प्रतिपादन किया है। उद्भीट ने वृत्तियों की चर्चा चलायी थी वे तीनों वृत्तियॉ और उनके कारण, वृत्यनुप्रास के उपभेद, मम्मट ने अपना लिए।

राजानक रूय्यक मम्मट के ही आधार पर वृत्यनुप्रास का अन्तर स्पष्ट करते हैं–

''अन्यथातु वृत्यनुप्रासः।।''[31]

अर्थात् यदि **संख्यानियम**[32] न हो तो व्यंजन पौनरूक्त्य वृत्यनुप्रास कहलाता है।

वृत्ति में स्पष्ट किया है–**''केवल व्यंजनसादृश्यमेकधा समुदाय सादृश्यं त्रयादीनां च परस्पर सादृश्यमन्यथाभावः। वृत्तिस्तु रसविषयो व्यापारः। तद्वती पुनर्वर्णरचनेह वृत्तिः। सा च परूषकोमलमध्यम वर्णारब्धत्वात् त्रिधा। तदुपलक्षितोऽयमनुप्रासः''।**[33]

अर्थात् केवल अकेले एक व्यंजन का सादृश्य, व्यंजन समुदाय का एक बार सादृश्य दो से अधिक तीन आदि व्यंजनों का परस्पर सादृश्य अन्यथाभाव है। इस प्रकार छेकानुप्रास से वृत्यनुप्रास का स्वरूप भिन्न है। तथा वृत्यानुप्रास शब्द में वृत्ति का मूलभूत अर्थ तो है रस विषयक व्यापार किन्तु यहॉ वृत्ति है उस रस विषयक व्यापार से युक्त वर्णरचना। वह रचना परूष कोमल और मध्यम इन तीन प्रकार के वर्णों से युक्त होने के कारण तीन प्रकार की होती है। यह अनुप्रास उससे उपलक्षित होता है।

रूय्यक प्रदत्त वृत्यानुप्रास का उदाहरण है–

''आटोपेन पटीयसा यदपि सा वाणी कवेरामुखे
खेलन्ती प्रथते तथापि कुरूते नो सन्मनोरंजनम्।

न स्याद्यावदमन्द सुन्दर गुणालंकार झंकारितः
सप्रसयन्दिल सद्रसायन रसासारानुसारीरसः।।''[34]

अर्थात् बड़े भारी आटोप से यद्यपि वह वाणी (वाग्देवी और कविता) के कवि के आमुख (आरम्भ और मुख में) खेलती रहती है और विस्तार को भी प्राप्त होती है। किन्तु उतने पर भी मेरे चित्त को वह तब तक प्रसन्न नहीं कर पाती जब तक उज्जवल तथा सुन्दर गुणों तथा अलंकारों से झंकृत एवं छलछलाते रसायन की बौछार जैसा वह रस न हो।

उपर्युक्त उदाहरण आटोपेन पटीयसा0 के चारों चरणों में केवल व्यंजन साम्य है। उसमें भी 'अलङ्कार झंकारित' इसमें एक बार समुदाय सादृश्य है और 'रसायनरसासारानुसारीरस' में तीन व्यंजन समुदायों का सादृश्य है। इसी प्रकार 'आटोपेन पटीयसा' में गौणी रीति है। 'अमद्र सुन्दर' इत्यादि में बैदर्भी रीति और 'गुणालङ्कार झंकारित' में पांचाली रीति है, इसका निर्णय उन–उन पदों से निकलने वाले अर्थों से होता है।

विमर्शिनीकार ने छेकानुप्रास से वृत्यानुप्रास के भेद की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है–**''समुदायः पारिशेष्याद् व्यंजनद्वयरूपः। एकधेति चात्रैव संबद्धव्यम्। केवलस्य त्रयादीनां चानेकधापि सादृश्यस्यानेन व्याप्तत्वात्। एतच्च समस्तासमस्ताक्षरत्वेन संभवतीत्यस्य प्रायः षट् प्रकाराः।''[35]**

अर्थात् यह अनुप्रास समस्त (सभी) अक्षरों में और असमस्त (कतिपयमात्र) अक्षरों में हो सकता है इसलिए इसके 'एक व्यंजन गतानेकसादृश्य, द्वयधिकव्यंजनगतानेक सादृश्य तथा व्यंजनद्वयगतैक सादृश्य इन तीन भेदों को समस्ताक्षर और असमस्ताक्षर इस प्रकार दो दो प्रभेदों में विभाजित करने से प्रायः छः भेद होते हैं। आचार्य जयरथ एक–एक का उदाहरण देते हैं–

(1) एक व्यंजन समस्ताक्षर का उदाहरण–

''यया यायाय्यया यूयं यो यो यं येयेयायया।
ययुयायि ययेयाय ययेयायाय याययुक्।।''[36]

(2) एक व्यंजन असमस्ताक्षर वृत्यानुप्रास का उदाहरण स्वयं रूय्यक ने प्रस्तुत कर दिया है।

(3) व्यंजन समुदाय द्वय समस्ताक्षर वृत्यानुप्रास का उदाहरण–

''दीनादीनां ददौ दानं निननाद दिने दिने।
निदिन्द नन्दनानन्दानदुनोदिननन्दनम्।।

अर्थात दीन आदि को दान दिया, प्रतिदिन निनाद किया, नन्दन (स्वर्गोद्यान) के आनन्दों की निन्दा की और इन नन्दन अर्थात् सूर्यपुत्र (यम) को दुःखी किया।

(4) असमस्ताक्षर वृत्यनुप्रास का उदाहरण–

''रूच्याभिः प्रचुराभिस्तरूशिक्षरापाचिताभिरूचिताभिः।
अचिररूचिरूचिररूचिभिभ्चिराच्चिराभिभ्यचमत्कृतं चेतः।।

इसी प्रकार अनेक व्यंजन गत समस्ताक्षर वृत्यानुप्रास का उदाहरण–

(5) **''ततः सोमसिते मासि सततं संमतं सताम्।**
अतामसोत्तममतिः सती सुतमसूत सा।।

अर्थात् उसके पश्चात तामसीवृत्ति से रहित और उत्तममति वाली उस सती ने शुक्ल पक्ष में सत्पुरूषों में समादृत सुत को जन्म दिया।

(6) अनेक व्यंजनगत असमस्ताक्षर वृत्यानुप्रास का उदाहरण–

''कमलदृशः कमलामलकोमल कमनीय कान्तिवपुरमलम्।
कमलंकुरूते तावत्कमलापतितोऽपि यो विमलः।।[37]

अर्थात विष्णु से भी अधिक सुन्दर या भाग्यशाली ऐसा कौन सौभाग्यशाली पुरूष है जिसे कमलनयनी का निर्मल और कमला (लक्ष्मी) या कमल के समान अमल और कमनीय कान्ति वाला शरीर अलंकृत करता है? वहां 'कमल' इन तीन व्यंजनों का अनेक बाद सादृश्य है।

आचार्य जयदेव ने अनुप्रास का लक्षण नहीं दिया। किन्तु उनके पाँच भेदों में वृत्यानुप्रास भी सम्मिलित है। जयदेव कृत अनुप्रास के भेद हैं–

1. छेकानुप्रास, 2. वृत्यानुप्रास 3. लाटानुप्रास 4. स्फुटानुप्रास 5. अर्थानुप्रास

विश्वनाथ ने भी अनुप्रास के पाँच भेद किए हैं। वृत्यानुप्रास को उनमें सम्मिलित किया है।

1. छेकानुप्रास 2. वृत्यानुप्रास 3. श्रुत्यानुप्रास 4. अन्त्यानुप्रास 5. लाटानुप्रास अप्पयदीक्षित कृत कुवलयानन्द में मात्र अर्थालंकारों का विवेचन है शब्दालंकारों का नहीं। इसलिए अनुप्रास आदि का प्रसंग प्राप्त नहीं होता। पं0 राज जगन्नाथ ने भी अनुप्रास को अछुता ही छोड़ दिया है।

''लाटानुप्रास''

स्वतन्त्र अलङकार के रूप में लाटानुप्रास की कल्पना उद्भट ने की थी। यद्यपि उद्भट के पूर्ववर्ती भामह ने काव्यालंकार के द्वितीय परिच्छेद में अनुप्रास भेदों का वर्णन करते हुए माना है कि कुछ लोग 'लाटीय' को भी अनुप्रास का एक भेद मानते हैं–

''लाटीयमप्यनुप्रासमिहेच्छन्त्यपरे यथा।
दृष्टिं दृष्टि सुखां धेहि चन्द्रश्चचन्द्रमुखोदितः।।''[38]

आचार्य उद्भट ने 'काव्यालङ्कारसारसंग्रह' के प्रथम वर्ग में लाटानुप्रास अलङ्कार का वर्णन करते हुए कहा है–

''स्वरूपार्था विशेषेऽपि पुनरूक्तिः फलान्तरात्।
शब्दानां व पदानां लाटानुप्रास इश्यते।।''[39]

अर्थात् स्वरूप एवं अर्थ में भेद न रहने पर भी जहां प्रयोजनान्तर से शब्दों अथवा पदों[40] की पुनरूक्ति हो वहां लाटानुप्रास का चमत्कार है। यही लक्षण उत्तर आचार्यों में भी मान्य रहा है। आचार्य उद्भट लाटानुप्रास के भेदों को स्पष्ट करते हैं कि–

''सपदद्वितयस्थित्या, द्वयोरेकस्य पूर्ववत्।
तदन्यस्य स्वतन्त्रत्वात्, द्वयोर्वैकपदाश्रयात्।।
स्वतन्त्रपदरूपेण द्वयोर्वापि प्रयोगतः।
भिद्यतेऽनेकधा भेदैः पादाभ्यासक्रमेण च।।''

अर्थात् लाटानुप्रास के प्रथमतः तो तीन भेद हैं–

1. **''द्वयोःपदद्वितयस्थित्या''**–अर्थात् दो सरूप शब्दों की दो भिन्न पदों के अन्तर्गत परतंत्र रूप से स्थित होने के कारण (जैसे, **क्वचिदुत्फुल्ल कमला कमल भ्रान्तषट्पदा–**[41] में 'कमल' शब्द दो भिन्न सामासिक पदो के अन्तर्गत है– उसकी अलग से स्वतन्त्र स्थिति नहीं है। यहां कमल शब्द है, पद नहीं अर्थात् सुबन्त नहीं।

2. **''एकस्य पूर्ववत तदन्यस्य स्वतन्त्रत्वाद्''**–अर्थात् ऐसे दो शब्दों की पुनरूक्ति से भी लाटानुप्रास होता है– जिनमें से एक तो पहले की भॉति परतन्त्र हो और दूसरा स्वतन्त्र। जैसे **'पदिमनीगाढ़स्पृहयागत्यमानसात्। अन्तर्दन्तुरयामासुर्हंसा हंसककुलालयात्''**[42] यहां पद्मिनी एवं हंस शब्द दो–दो बार प्रयुक्त हैं– पर उनमें से एक स्वतन्त्र है जबकि दूसरा अन्यपद के अन्तर्गत होने से परतन्त्र।

3. **''द्वयोर्वोएक पदाश्रयात्**–अर्थात् ऐसे दो शब्दों की पुनरूक्ति से भी लाटानुप्रास होता है जो एक ही सामासिक पद के अन्तर्गत हों। पहले दोनो पदों में भिन्न–भिन्न पद आश्रय हैं– यहां एक ही सुबन्त पद आश्रय है। जैसे–''जितान्यपुष्प किंजल्क–किंजल्क श्रेणिशोभितम्। यहां दो किंजल्क' शब्द एक साथ ही पद में स्थित हैं।

4. पुनः अगली कारिका अर्थात1/10 के द्वारा स्पष्ट करते हैं कि दोनो पदों का सर्वथा स्वतन्त्र रूप से प्रयोग हो, जैसे ''काशाः काशाइवाद्भासि सरांसीव सरांसि च यहां दोनो 'काश' पद सर्वथा स्वतन्त्र पद के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

5. पॉचवा भेद वह है जब कि पद समुदायात्मक समस्त पाद ही पुनरावृत्त हो। यथा–

स्त्रियो महति भर्तभ्य आगस्यपि न चुक्रधुः।
भर्तारोऽपि सति स्त्रीभ्य आगस्यति न चुक्रुधुः।।''[43]

यहां द्वितीयपाद यथावत् चतुर्थ पाद में आवृत्त है।

इस प्रकार लाटानुप्रास पहले तीन प्रकार का होता– दोनों स्वतन्त्र हों, या दोनों परतन्त्र हों अथवा दोनों में से एक स्वतन्त्र हो और दूसरा परतन्त्र। इनमें से प्रथम भेद अर्थात् जहां दोनों स्वतन्त्र हों उसके दो भेद होते हैं (1) प्रथमतः एक एक पद में भी स्वतन्त्र रूप से रह सकते हैं। (2) या पदसमुदायात्मक पाद की पूर्णतः आवृत्ति होने से पाद रूप में भी स्वतन्त्र रह सकते हैं। लाटानुप्रास के उपर्युक्त भेद प्रभेद निम्न शाखावृक्ष से स्पष्ट हैं–

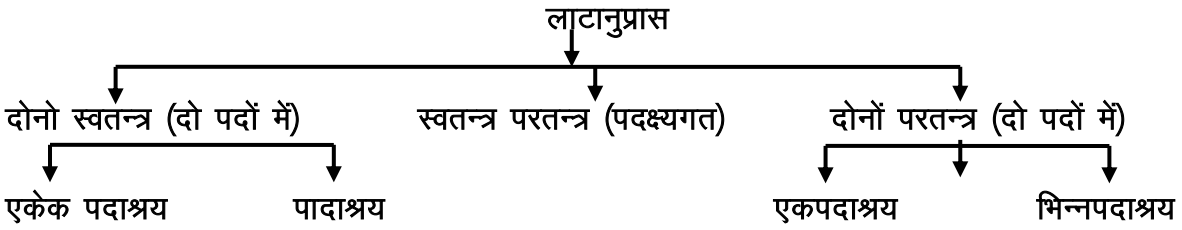

उद्भट के टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज का मत है कि इसे लाटानुप्रास इसलिए कहा जाता है कि यह प्रकार लाट देश के निवासियों को अत्यधिक प्रिय हैं।

''लाटदेश निवासिजन वल्लभत्वात् लाटानुप्रासोऽभिधीयते।''[44]

लाटानुप्रास की चर्चा दण्डी तथा वामन के ग्रंथों में प्राप्त नहीं होती। कुंतक की भी दृष्टि इस अलंकार की ओर संभवतः नहीं गयी। भोज ने सरस्वती कण्ठाभरण में यह अवश्य बताया है–

अर्थाभेदे यदावृत्तिः प्रवृत्या भिन्नयेहया।
ससूरिभिरनुप्रासो लाटीयइति गीयते।[45]
स चाव्यवहितो व्यस्तः समस्त उभयःपुनः।
उभयं चकवालच गभैश्चैवाभिधीयते।।
यस्तु व्यवहितो नाम नेयता तस्य शक्तये।
कर्तुमेकादिगणना पदवृत्यादिभङ्गिभिः।।

आचार्य मम्मट ने लाटानुप्रास की परिभाषा यों बताई कि शब्द एवं अर्थगत अभेद रहने पर भी अन्वयमात्र से जहां भेद हो, वहॉ जो अनुप्रास हो लाट देश के लोगों को प्रिय होने के कारण उसे लाटानुप्रास कहा जाता हैं।

शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्य मात्रतः।
पदानां सः, पदस्यापि, वृत्तावन्यत्र तत्र वा
नाम्नः स वृत्यवृत्योश्च तदेवं पंचधामतः।।[46]

राजानक रूय्यक सम्मत लाटानुप्रास लक्षण है–

''तात्पर्य भेदवत्तु लाटानुप्रासः।[47]

अर्थात् तात्पर्य के भेद से युक्त शब्दार्थ पौनरूक्त्य लाटानुप्रास अलंकार कहलाता है। वृत्ति में स्पष्ट करते हैं।

''तात्पर्यमन्यपरत्वम्। तदेव भिद्यते, नतुशब्दार्थस्वरूपम्।[48]

अर्थात् तात्पर्य का अर्थ है दूसरे (अर्थ) में पर्यवसित होना। इस अलङ्कार में तात्पर्य ही बदल जाता है। शब्द या उसके अर्थ का स्वरूप नहीं बदलता।

लाटानुप्रास को उदाहरित करते हुए रूय्यक का कथन है जैसे–

तदा जायन्ते गुणा यदा ते सहृदयैगृह्यन्ते।
रविकिरणानुग्रहीतानि भवन्ति कमलानि कमलानि।।

तथा– **ब्रूमः कियन्नय कथंचन कालमल्प मत्रावजपत्रनयने नयने निमील्य।**
हेमाम्बुजं तरूणि तत्तरसापहृत्य देवद्विषोऽयमहमागत इत्यवेहि।।[49]

यहां उपरोक्त उदाहरण में 'नयने' 'नयने' आदि स्थलों में विभक्ति का तो पौनरूक्त्य नहीं है क्योकि प्रथम नयन बहुब्रीहि के कारण स्त्रीलिंग में है और संबोधन के कारण प्रथमा एकवचन में जबकि द्वितीय 'नयन' नपुंसक लिंग द्वितीया के द्विवचन में है। तथापि शब्द (विभक्ति) आदि की मूल प्रकृति नयन तथा उनके अर्थों का अधिकांश पुनरूक्त ही है अतः यहां लाटानुप्रास होगा।

तथा– **काशा इवाभ्रान्ति सरांसीव सरांसि च।**
चेतांस्याचिक्षिपुर्यूनां निम्नगा निम्नगा इव।।[50]

इस उदाहरण में लाटानुप्रास का अनन्वय के साथ एक वचनानुप्रवेश संकर नहीं है क्योंकि दोनों के क्षेत्र भिन्न हैं। लाटानुप्रास का क्षेत्र है अन्योन्यापेक्षी शब्दार्थ युग्म और अनन्वय का क्षेत्र है मात्र अर्थ।

<u>अनन्वय से लाटानुप्रास का भेद–</u>

अनन्वय में जो शब्द की पुनरूक्ति होती है वह इसलिए कि उसके बिना अनन्वय संभव नही, अतः वहॉ शब्द पुनरूक्ति अलङ्कारत्व प्रयोजक, चमत्कारी नहीं अपितु आनुषंगिक है। जहॉ तक लाटानुप्रास का सम्बन्ध है इसमें शब्द पुनरूक्ति ही अलङ्कारत्व प्रयोजक है।

'अनन्वये च शब्दैक्यमौचित्यादानुषङ्गिकम्।
अस्मिंस्तु लाटानुप्रासे साक्षादेव प्रयोजकम्'।।

जयदेव पीयूषवर्ष कृत लाटानुप्रास लक्षण है।

'लाटानुप्रासभूभिन्नाभिप्राया पुनरूक्तता।
यत्र स्यान्न पुनः शत्रोगर्जितं तज्जितं जितम्।।[51]

आचार्य विश्वनाथ कृत लाटानुप्रास का लक्षण है–

'शब्दार्थयोः पौनरूक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः।
लाटानुप्रास इत्युक्तोऽनुप्रासः पच्चधाततः।।[52]

सन्दर्भ–

1. काव्यालंकारसारसंग्रहः–1/1
2. तदैव – 1/3
3. काव्यालंकारसारसंग्रहः लघुवृत्तिसमेतः–पृ0–2, बनहट्टी सम्पादित।
4. तदैव – पृ0–3 –तदैव।
5. काव्यप्रकाश– नमव उल्लास – सूत्र 121
6. तदैव– पृ0–438–तदैव–विश्वेश्वर कृतटीक
7. अलंकारसर्वस्वम् – सूत्र –।
8. वही – पृ0–26–27 – कु0 जानकी संपादित।
9. अलंकार सर्वस्व – सूत्र – 4 – चौखम्बा संस्कृत सीरीज – आफिस–1971
10. अलंकार सर्वस्व – पृ0–27 – कु0 जानकी संपादित।
11. चन्द्रालोक – 5/7
12. साहित्यदर्पण – 10/2
13. काव्यालंकारसारसंग्रहः – पृ0–3 – बनहट्टी संपादित।
14. काव्यालंकारसार संग्रहः लघुवृत्ति समेतः – पृ0–4 – बनहट्टी सम्पादित।
15. अष्टाध्यायी – 6/4/157
16. काव्यप्रकाश – 9/79
17. अलंकार सर्वस्व – सूत्र–4
18. तदेव– पृ0–28 – कु0 जानकी संपादित।
19. चन्द्रालोक – 5/2
20. साहित्य दर्पण –10/3
21. काव्यालंकारसारसंग्रहः लघुवृत्ति समेतः – पृ0–01 – बनहट्टी संपादित।
22. काव्यालंकारसारसंग्रहः लघुवृत्ति समेतः – पृ0–5
23. पाणिनि सूत्र भाष्य – 2/2/18 वार्तिक।
24. काव्यालंकारसारसंग्रहः–पृ0–6–बनहट्टी सम्पादित।
25. पाणिनि सू0–3/4/40

26. काव्यालंकारसारसंगंहः–पृ0–6–बनहट्टी सम्पादित।
27. काव्यालंकारसारसंग्रहः पृ0–6– बनहट्टी सम्पादित।
28. काव्यालंकार–रूद्रट–2/18
29. काव्यालंकार–रूद्रट–3/19
30. काव्यप्रकाश–मम्मट–9/79
31. अलंकार सर्वस्व–सूत्र–6
32. द्वयोर्व्यंजनसमुदाययोः परस्परमनेकधा सादृश्यं संख्यानियमः।
33. तदैव पृ0–28–29–कु0 एस0एस0जानकी संपादित।
34. अलंकारसर्वस्वम्–कु0एस0एस0 जानकी संपादित–पृ0–30
35. अलंकारसर्वस्व विमर्शिनी समुपेतम्–पृ0–63–चौखम्भा संस्कृत संस्थान–1971
36. अलंकारसर्वस्व (विमर्शिनी समुपेतम्)–पृ0–63– चौखम्भा संस्कृत संस्थान–1971
37. अलंकारसर्वस्व विमार्शिनी समुपेतम्– पृ0–63'–चौखम्भा संस्कृत संस्थान–1971
38. काव्यालंकार – 2/8
39. काव्यालंकारसारसंग्रह – उद्भट–1/18
40. 'शब्द' तथा 'पद' में यहाँ यह अन्तर माना गया है कि शब्द 'सुबन्त' तिडन्तरूप नहीं जबकि 'पद' की संज्ञा 'सुप्तिडन्तंपदम् ही है।
41. तदेव – पृ0–8–नारायण दास बनहट्टी संपादित।
42. काव्यालंकारसारसंग्रह – उद्भट्ट–पृ0–9 नारायणदास बनहट्टी संपादित।
43. काव्यालंकारसारसंग्रहः–पृ08–बनहट्टी संपादित।
44. काव्यालंकारसारसंग्रह की लघुवृत्तिटीका–पृ0–7 बनहट्टी संपादित।
45. सरस्वती कण्ठाभरण–2/102–103–104.
46. काव्यप्रकाश–9/81–82
47. अलंकार सर्वस्व सूत्र–9
48. तदैव– पृ0 32–कु0 एस0एस0जानकी संपादित।
49. अलंकारसर्वस्वम्–पृ0–71–चौखम्बा संस्करण–1971।
50. तदैव – पृ0–33–कु0 जानकी संपादित।
51. चन्द्रालोक–5/4
52. साहित्य दर्पण– 10/7

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रशासनिक भ्रष्टाचार संबंधी अवधारणा

डॉ0 जय शंकर सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

राज्य के शासन व्यवस्था को सुदृढ रूप से संचालन के लिए उस राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था का मजबूत होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी क्रम में प्रशासन में भ्रष्टाचार की व्यापतता देखा जाता है। इसका इतिहास गवाह है कि यह भ्रष्टाचार लगभग सभी काल में देखा जा सकता है। किसी समय कम तो कभी अधिक हो सकता है इसी प्रकार आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में प्रशासन में भ्रष्टाचार संबंधी अवधारणा पर व्यापक प्रकाश डाला है–

कौटिल्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में अधिकारियों की नियुक्ति पूर्ण सतर्कता से की जाती थी। विभिन्न परीक्षणों के बाद योग्य अभ्यर्थी ही उचित पद पर नियुक्ति प्राप्त करने का अधिकारी होता था, फिर भी कौटिल्य का मानना था कि अधिकारियों की भर्ती कुशलतापूर्वक की जाने पर भी कुछ अधिकारी व कर्मचारी भ्रष्ट होंगे ही। अपने तीक्ष्ण व्यावहारिक राजनीतिक अनुभव का परिचय देते हुए कौटिल्य ने कहा कि

यथा ह्य स्वादयितुं न शक्यं, जिह्वातलस्थां मधु वा विषं वा।

अर्यस्तथाह् यर्थरण राज्ञः स्वल्पो ऽप्नास्वादपितुं न शक्यः।।[1]

जिस प्रकार जीभ पर रखे हुए शहद या जहर के बारे में कोई यह चाहे कि मैं इसका स्वाद न लूँ, यह बिल्कुल हो ही नहीं सकता। जीभ पर रखी हुई चीज की इच्छा न होने पर भी स्वाद आ ही जाता है, ठीक इसी प्रकार राजा के धन सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त हुए कर्मचारी, उस धन का थोड़ा भी स्वाद न ले, यह कदापि नहीं हो सकता। वे थोड़ा बहुत धन आदि का अपहरण अवश्य करते ही हैं।

कौटिल्य का मत था कि वितीय पदों पर नियुक्त कार्मिकों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भ्रष्टाचार अवश्य ही पाया जाता है। अपने मत के पक्ष में कौटिल्य ने आगे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि –

मत्स्या यथान्तः सलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्याः सलितं पिबन्तः।

युक्तास्था कार्यविधी नियुक्ताः ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः।।[2]

अर्थात जिस प्रकार पानी में रहती हुए मछलियाँ पानी पीती हुई दिखायी नहीं देती, ठीक उसी प्रकार धन सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त कर्मचारी अर्थ का अपहरण करते हुए प्रतीत नहीं होते। कौटिल्य के अनुसार आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गतिविधि का पता लगाया जा सकता है, किन्तु धन का अपहरण करने वाले कर्मचारियों के गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करना कठिन कार्य है।

प्रशासनिक अधिकारी धन का अपहरण करते ही हैं, इस विचार के साथ–साथ आचार्य कौटिल्य ने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला कि कर्मचारी धन का अपहरण किस प्रकार अर्थात् किन उपायों से कर

सकते हैं। अर्थशास्त्र में आचार्य कौटिल्य ने भ्रष्टाचार पनपने के चालीस प्रकार बताये हैं जिसमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित है।[3]

1. प्रथम फसल से प्राप्त द्रव्य को द्वितीय फसल आने पर रजिस्टर में चढ़ाना।
2. राजग्राह्य कर को रिश्वत लेकर छोड़ देना अर्थात् कर वसूल न करना।
3. राज्य–कर से मुक्त वर्ग से गुप्त रूप से कर वसूल करना।
4. कर–प्राप्ति के पश्चात भी उसका उल्लेख नहीं करना।
5. प्राप्त राशि से कम राशि का उल्लेख करना।
6. प्राप्त राशि से अधिक राशि का उल्लेख रिश्वत लेकर करना।
7. प्राप्त द्रव्य के स्थान पर अन्य द्रव्य का वर्णन करना।
8. देय वस्तु को स्वयं के पास रख लेना।
9. एक व्यक्ति से प्राप्त धन को रिश्वत लेकर दूसरे व्यक्ति के नाम लिख देना।
10. राजस्व से प्राप्त धन को राजकोष में जमा नहीं करके स्वयं के पास ही रख लेना।
11. कुटिल उपायों से अतिरिक्त धन वसूल करना।
12. पक्षपात करना।
13. बहुत से मनुष्यों से एकत्रित होने वाले 'कर' अलग से सब में विभक्त करके प्राप्त करना।
14. बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य वस्तु के साथ परिवर्तन कर लेना।
15. बाजार में वस्तुओं की कीमत बढ़ा देना एवं घटा देना।
16. प्रदत्त वेतन से अधिक वेतन का उल्लेख करना।
17. कार्यरत अधीनस्थ कार्मिकों की अधिक संख्या दिखाकर उनके नाम का वेतन एवं लाभ स्वयं प्राप्त कर लेना।
18. धार्मिक कार्य हेतु दिये जाने वाले धन में कुछ राशि स्वयं के पास रख लेना।
19. छावनियों के मूल्यों के अव्यवस्थित होने से उनको बढ़ाकर लाभ उठाना।
20. कर्मचारियों द्वारा चोरी करना।
21. न्यायाधीशों द्वारा रिश्वत लेकर निर्णय परिवर्तित कर देना।
22. जेलर द्वारा रिश्वत लेकर कैदी को छोड़ देना आदि।

उपर्युक्त उपायों के द्वारा कर्मचारी राजकोष में क्षय कर सकते हैं। राजकोष सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था का हृदय होता है। कार्मिकों में भ्रष्टाचार पनप जाने के परिणामस्वरूप कोष का दुरूपयोग होने लगता है। साथ ही कार्यकुशलता में शिथिलता उत्पन्न होने लगती है जिसके कारण देश का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था से लेकर वर्तमान समय तक प्रशासनिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार एक अभिशाप के रूप में विद्यमान रहा है। फिर भी कौटिल्य के शिष्य चंद्रगुप्त मौर्य का शासन एक सुव्यस्थित शासन व्यवस्था के रूप में स्थापित था, किन्तु इससे पूर्व में अराजकता फैली थी, प्रशासनिक कार्मिक पदसोपान के प्रत्येक स्तर पर भ्रष्ट थे। अराजकता एवं भ्रष्टाचार का सामना करते हुए कौटिल्य ने चंद्रगुप्त को सम्राट बनने हेतु मार्गदर्शन एवं सहयोग दिया किन्तु सम्राट बनने के पश्चात चन्द्रगुप्त मौर्य को संघर्षों का सामना करना पड़ा, तब कौटिल्य का यह सुझााव था कि राष्ट्र के उत्थान हेतु आवश्यक है कि कार्मिकों को भ्रष्टाचार से दूर रखा जाये और इसके लिए कठोर अनुशासन की आवश्यकता है। कौटिल्य का यह सिद्धांत था कि 'अर्थ' ही व्यक्ति के विचारों तथा क्रियाकलापों को प्रभावित करता है। मुख्यतः दो कारणों से व्यक्ति राजकीय कोष का दुरूपयोग करता है। प्रथम अर्थ की दृष्टि से सुदृढ़ होते हुए भी राजकार्य में नियुक्त होने के पश्चात व्यक्ति स्वार्थवश राजकोष का दुरूपयोग

करते हुए अर्थ का उपभोग करता है। दूसरा, आर्थिक दृष्टि से कमजोर कर्मचारी, समाज में अपना स्थान बनाने हेतु न्यायोचित उपायों को त्यागकर भ्रष्ट उपायों से धनार्जन करता है, जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। अतः कौटिल्य को यह आभास था कि जिस देश के मंत्री व कर्मचारी भ्रष्टाचार में संलिप्त होते हैं, वह देश उत्थान नहीं कर सकता। वर्तमान समय में यह और प्रासंगिक है– क्योंकि अगर भारत को विश्व में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करनी है– तो उसे भ्रष्टाचार के विरूद्ध कठोर कदम उठाने होंगे।

भ्रष्टाचारमुक्त शासन के उपाय

आचार्य कौटिल्य के अनुसार भ्रष्टाचार को निम्नलिखित उपायों से रोका जा सकता है –

1. पदाधिकारियों के भ्रष्टाचार की सूचना गुप्तचरों से प्राप्त की जा सकती है।
2. किसी कर्मचारी पर आरोपित भ्रष्टाचार की जाँच हेतु राजा एक जाँच समिति स्थापित कर उसकी जाँच करा सकता है।
3. कर्मचारियों के भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में सूचना देने वाले व्यक्ति को पुरस्कृत करने की उद्घोषणा राजा को करनी चाहिए।
4. कर्मचारियों का समय–समय पर स्थानांतरण करते रहना चाहिये।
5. भ्रष्ट उपायों से समृद्ध हुए कर्मचारी को राजा पदच्युत करके उसकी संपत्ति अपने अधिकार में कर ले।
6. भ्रष्ट कर्मचारियों के मुँह पर गोबर और राख लगाकर नगर या गांव में उसके भ्रष्ट कार्यों की उद्घोषणा करते हुए घुमाना चाहिए या उसके सिर के बालों को कटवाकर पीटते हुए राज्य के बाहर निकाल देना चाहिए।[4]

इसके अलावा भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए कौटिल्य ने भ्रष्ट कर्मचारियों के विरूद्ध कार्यवाही करने हेतु राजा को अनेक सुझाव दिये हैं। कौटिल्य के अनुसार यदि किसी अध्यक्ष के विषय में, राजा को धन अपहरण करने का संदेह हो जाये, तो राजा उसके प्रधान निरीक्षक अधिकारी, खजांची को, लेखक को, कर देने वाले राजपुरूष को, मंत्री के नौकर को अलग–अलग बुलाकर यह जानकारी प्राप्त करें कि इस अध्यक्ष ने धन का अपहरण किया है, अथवा नहीं, यदि इसमें से कोई असत्य जानकारी प्रदान करे तो, उसे अपराधी के समान दण्ड दिया जाये।[5]

कौटिल्य के अनुसार प्रत्येक कर्मचारी के आचरण की परीक्षा गुप्तचरों द्वारा की जानी चाहिए, जिससे राज्य के विरूद्ध उनकी गतिविधियों की जानकारी प्राप्त हो सके। कौटिल्य ने राजा से अपेक्षा की है कि वह स्वयं भी प्रशासन के समस्त विभागों का समय–समय पर निरीक्षण करता रहे तथा यह जानकारी प्राप्त करता रहे कि कर्मचारी अपने दायित्वों का निर्वाह उचित प्रकार से कर रहे हैं या नहीं। अधिकारियों और कर्मचारियों पर नियंत्रण को सुनिश्चित करने हेतु कौटिल्य ने एक ही पद और एक ही विभाग में किसी अधिकारी या कर्मचारी को लम्बे समय तक रखने का निषेध किया है तथा उनके स्थानांतरण की नीति अपनाने की सलाह दी है।[6]

कौटिल्य ने प्रशासनिक अधिकारियों पर नियंत्रण की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुए इस सम्बन्ध में राजा को एक व्यावहारिक नीति अपनाने का सलाह दी है। कौटिल्य का मत था कि पद व शक्ति के साथ उसके थोड़ा दुरूपयोग की संभावना बनी रहती है। अतः राजा को चाहिए कि वह छोटे–छोटे अपराधों को क्षमा कर दें तथा यदि घोटाला हुए राजस्व की मात्रा बहुत कम हो तो उस पर ध्यान न दें।[7] किन्तु यदि कोई भ्रष्ट आचरण सम्पूर्ण प्रशासन पर नकारात्मक प्रभाव डालता हो, तो ऐसे आचरण करने वाले भ्रष्ट कार्मिकों को कठोर दण्ड देना चाहिये। आचार्य कौटिल्य ने विभागों को

भ्रष्टाचार से मुक्त रखने की दृष्टि से सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को अट्ठारह विभागों में विभाजित किया था। प्रत्येक विभाग का पृथक–पृथक अध्यक्ष नियुक्त किया जाता था, जो अपने अधीनस्थ कार्मिकों के सहयोग से विभागीय कार्यों को संपादित करते थे। इसी प्रकार कौटिल्य का बल विकेन्द्रीकरण तथा शक्ति विभाजन पर था जो आज के सन्दर्भ में एक सुशासन और भ्रष्टाचारमुक्त शासन की स्थापना के लिए आवश्यक माना जाता है। दूरदर्शिता का परिचय देते हुए आचार्य कौटिल्य ने न सिर्फ यह मत व्यक्त किया कि राजा की सम्पूर्ण सफलता या असफलता प्रशासनिक समूह की योग्यता या दक्षता पर निर्भर करती है बल्कि उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पारिस्थितिकीय तथ्यों का अध्ययन करते हुए प्रशासन में फैले हुए व्यापक भ्रष्टाचार के कारणों को भी पहचानने में सफलता प्राप्त की।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य ने प्रशासन को भ्रष्टाचारमुक्त करने और सुशासन की स्थापना करने के लिए केन्द्रीय शासन के संगठन को मजबूत करने की बात कही है साथ ही राजा की स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण और जनता के शासन में भागीदारी को महत्त्व दिया है। गुप्तचर विभाग को मजबूत बनाने पर व्यापक जोर दिया है जो अच्छे अभिशासन का महत्त्वपूर्ण अंग है। यदि वर्तमान संदर्भ में देखा जाय तो आज केन्द्र सरकार भी संगठनात्मक प्रभावशीलता पर व्यापक जोर दे रही है। भ्रष्टाचार पर नियंत्रण रखने वाले प्रमुख उपायों में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988, केन्द्रिय सतर्कता आयोग, इण्डिया अगेंस्ट करप्शन तथा सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 इत्यादि जैसे कानून एवं संगठन महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। अतः आचार्य कौटिल्य द्वारा दिये भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन की अवधारणा वर्तमान में प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1. उदयवीर शास्त्री, *कौटलीय अर्थशास्त्र,* मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन नईदिल्ली 1988, पृ0 148
2. वही
3. वही, पृ0 137
4. चन्द्रदेव प्रसाद, *कौटिल्य* यूनिवर्सल बुक स्टोर, भोपाल, 1986 पृ0 90
5. उदयवीर शास्त्री, *कौटलीय अर्थशास्त्र,* पृ0 140
6. वाचस्पति गैरोला, *कौटिलीय अर्थशास्त्रम्,* पृ0 141
7. एल0एन0 रंगराजन, *कौटिल्य दि अर्थशास्त्र,* पैंग्विन बुक्स, नई दिल्ली, 1992, पृ0 283

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

सरैया प्रखण्ड के लोगों के खान–पान से संबंधित प्रश्नावली

डॉ0 मोनिका कुमारी
सामाजिक विज्ञान संकाय (गृह विज्ञान)
बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर

भारतीय समाज अनेक संस्कृतियों, परम्पराओं, जाति, धर्म, विश्वासों का सम्मिश्रण है। इस समाज में खान–पान अनेक धर्मों तथा उत्सवों एवं वातावरण (मौसमों) के अनुरूप निर्भर करता है।

टेबल–1

आप आहार किस तरह का पसंद करते हैं?

संख्या	प्रतिशत	सिर्फ शाकाहारी		मांसाहारी तथा शाकाहारी	
		No.	%	No.	:
500	100:	75	15:	425	85:

आज के बदलते परिवेश में खान–पान का नजरिया भी बदला है। वर्तमान शोध के अनुसार हमने पाया कि आज भी ऐसे कुछ लोग हैं जो मांशाहार को अपने धर्म में शामिल नहीं करना चाहते हैं तथा इसमें ज्यादातर लोग शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों हैं। मेरे शोध के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में अभी 15 प्रतिशत सिर्फ शाकाहारी हैं तथा 85 प्रतिशत ऐसे लोग है जो शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों हैं। जो अपने खाद्य पदार्थ में मांसाहार को शामिल करते हैं, उनका शारीरिक विकास ज्यादा विकसित था।

टेबल–2

क्या आप अपने खाना में दूध या दूध से बने भोज्य पदार्थ लेते हैं?

संख्या	प्रतिशत	हाँ		नहीं		कभी–कभी	
		No.	%	No.	%	No.	%
500	100:	150	30%	50	10%	300	60%

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इतना गरीबी है कि न तो पशुपालन कर सकते हैं और न ही दूध खरीद कर अपने और बच्चों को खिला सकते हैं। आज भी 10 प्रतिशत ऐसे लोग हैं और 60 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो अपने घर में पशुपालन तो करते हैं पर गरीबी के कारण दूध अपने और बच्चों को न देकर उसको बिक्री कर देते हैं तथा उसी में से कभी–कभी वे स्वयं भी लेते हैं। मेरे प्राप्त शोध के अनुसार 30 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो प्रतिदिन दूध आहार में लेते हैं।

टेबल–3

आप खाना में किस तरह का खाना पसंद करते हैं? जैसे?

संख्या	प्रतिशत	घर का बना खाना		बाहर का बना खाना	
		No.	%	No.	%
500	100:	100	20%	400	80%

आज के इस 'हाईटेक' का असर ग्रामीण क्षेत्रों में भी बखुबी पड़ा है। गाँवों में भी आज टेक्नोलॉजी की धूम है। वहाँ के लोग भी घर से ज्यादा बाहर का खाना पसंद करते हैं। मेरे षोध सर्वे के अनुसार पूछ–ताछ में मैंने पाया कि हर लोगों को बाहर का खाना (कुरकुरे, बिस्कुट, मैगी इत्यादि) ज्यादा पसंद है लेकिन उनकी गरीबी के कारण उन्हें हमेशा मिल नहीं पाता। ऐसे में 20 प्रतिशत ही लोग अपने घर का खाना पसंद करते हैं तो 80 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो 'फास्टफूड' बाहरी खाना ज्यादा पसंद करते हैं।

टेबल–4

क्या प्रखण्ड के लोग खाने में मौसमी फल प्रतिदिन लेते हैं?

संख्या	प्रतिशत	हाँ		नहीं		कभी–कभी	
		No.	%	No.	%	No.	%
500	100:	75	15%	150	30%	275	55%

ग्रामीण क्षेत्रों के लोग मौसमी फल कभी–कभी ले लेते हैं क्योंकि गाँवों में पेड़–पौधा पर्याप्त मात्रा में होता है तथा वहाँ मध्यम वर्ग के लोगों के पास अपना जमीन होता है इस वजह से मौसमी फल प्राप्त कर लेते हैं। इसमें ऐसे सबसे ज्यादा लगभग 55 प्रतिशत लोगों ने अपने खाने में मौसमी फल खाने की बात कही तथा 15 प्रतिशत लोगों ने पूछ–ताछ के दौरान बताया कि उच्च वर्ग परिवार के लोग अपने खाने में हमेशा फल लेते हैं। उनके अभिभावक हमेश फल खरीद कर घर में देते रहते हैं। इस षोध के दौरान 30 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिनको पेट भर खाना ही नसीब नहीं होता। वे लोग फल कहाँ से खायेंगे जिनके पास पास न तो अपना बगान है तथा नहीं फल खरीदने के लिए पैसा है।

टेबल–5

क्या प्रखण्ड के लोग खाने में गिरीदार फल (Dry Fruit) लेते हैं?

संख्या	प्रतिशत	हाँ		नहीं		कभी–कभी	
		No.	%	No.	%	No.	%
500	100%	25	5%	425	85%	50	10%

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी शिक्षा का अभाव है। कुछ लोग पढ़े–लिखे होते हुए भी पोषण शिक्षा से बिल्कुल अनजान हैं। इस वजह से ग्रामीणों में गिरीदार फल पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता है। सिर्फ 5

प्रतिशत ऐसे ग्रामीण लोग हैं जो गिरीदार फल खाते हैं क्योंकि उनके अभिभावक खान–पान के प्रति जागरूक हैं, तथा 10 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिन्हें कभी–कभी गिरीदार फल खाने को मिल जाते हैं। मेरे षोध के अनुसार 85 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो गिरीदार फल कभी नहीं खा पाते क्योंकि, कुछ तो ऐसे हैं जिन्हें पेट–भर खाना भी नसीब नहीं होता तथा कुछ को अभिभावक की अज्ञानता के कारण गिरीदार फल नसीब नहीं होता है।

टेबल–6

सरैया प्रखण्ड के ग्रामीण खाना किस तरह का खाते हैं?

संख्या	प्रतिशत	हमेशा ताजा		कभी–कभी बासी	
		No.	%	No.	%
500	100%	100	20%	400	80%

ग्रामीण क्षेत्रों में खान–पान को लेकर ज्यादा जागरूकता नहीं है। यहाँ के अभिभावकों को खाने में जो मिल जाता है उससे अपना पेट भरते हैं। कुछ लोगों को तो मजबूरी है तो कुछ ऐसे लोग हैं जो अज्ञानता, आसल की वजह से ताजे भोजन को देना ज्यादा जरूरी नहीं समझते। ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में 80 प्रतिशत लोग हैं जो कभी ताजा तो कभी–कभी बासी खाना भी खाते हैं। इसमें 20 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो पढ़े–लिखे तथा पोषण के प्रति जागरूक हैं वो हमेशा ताजा भोजन करते हैं।

निष्कर्ष :

सरैया प्रखण्ड में खाने की आदतों एवं भोजन के मूल तत्वों का मूल्यांकन ही प्रस्तुत षोध–अध्ययन का मुख्य विषय वस्तु है। सम्पूर्ण प्रखण्ड में जैविक क्रियाओं का संचालन परिस्थितिकी, वातावरण, सामाजिक एवं धार्मिक गतिविधियाँ आदि से आकलन किया गया है। सर्वेक्षण द्वारा विभिन्न प्रकार के आहार जिनमें बच्चे, वृद्ध, महिलाएँ आदि का विश्लेषण है।

इस प्रखण्ड का सम्पूर्ण पोषण विज्ञान के रूप में खाने की आदतों पर गहन अध्ययन किया गया है। माताओं को ज्ञान होना चाहिए ताकि वे अपने बच्चों का सही ढंग से पोषण कर सके। पोषण संबंधी तत्वों की कड़ी गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए शिक्षा की अहम भूमिका है। सरैया प्रखण्ड के 90 प्रतिशत लोग इससे अनभिज्ञ हैं और खाने की आदतें अनियमित हैं।

सर्वेक्षण के दौरान मैंने देखा कि ज्यादातर कुपोषण भूमिहीन खेतीहर मजदूरों के परिवारों में पाया गया। ग्रामीण क्षेत्र में अभी भी शिक्षा का अभाव है।

गृह–वैज्ञानिकों तथा स्वयं सेवी संस्थाओं को प्रत्येक वार्ड में भेजना चाहिए। बच्चों से बूढ़े तक को पोषण की शिक्षा दी जानी चाहिए।

स्वास्थ्य विभाग की विषय सूची में निम्न बिन्दुओं को अपनाना होगा। जैसे– मानव षरीर, क्रिया विज्ञान, आहार एवं पोषण स्वच्छता, पारिवारिक, स्वास्थ्य रक्षा, असंक्रामक रोगों का नियंत्रण इत्यादि।

बच्चों का घर उनका प्रथम पाठशाला होता है। इस पाठशाला की शिक्षिका अर्थात् माँ अशिक्षित हो तो शिक्षा का संचार होना असम्भव है। बच्चों के पालन–पोषण में माँ की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

मानसिक स्वास्थ्य पर भी ध्यान देने की जरूरत है ताकि लोगों के बीच सद्विवेक, धैर्य, सहिष्णुता इत्यादि का समुचित विकास कर एक स्वस्थ समाज का निर्माण किया जा सके।

बीमारी का मूल कारण पोषण संबंधी अनियमितता, गलत खाने की आदत, असामान्य खाने की आदत एवं परिवार का निम्न स्तर था। महिलाओं में लोहा एवं कैल्शियम की कमी पाई गई जिसके कारण ज्यादातर महिलाएँ एनिमिया की शिकार थीं।

संदर्भ–सूची :

1. आहार एवं पोषण वितरण – डॉ स्वामीनाथन, एन.आर. ब्रदर्श, मेडिकल डिविजन, इंदौर 1986, पेज–169
2. सूक्ष्म पोषक तत्व एवं हमारा स्वास्थ्य, धारा सिंह, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
3. सामाजिक अनुसंधान – आर.एन. मुखर्जी, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली। नया संस्करण, वर्ष–2005

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Women and Their Heroic Qualities in the Novels of Willa Cather

DR. SANJEEV KUMAR
Assistant Teacher (English)
U. Higher Secondary School Alalpur, kharik, Bhgalpur, Bihar

An Abstract

The feminist novelist Willa Cather does not present her heroines simply as the 'second sex' or heroes wives. They themselves are heroes in their novels. Carl Van Doren characterizes them as autonomous- *they are not the darlings but heroes themselves*. They are so because they play the perfect role of heroes. They have all the relevant characteristic of heroes-highly competent in their duties and also appealing, delightful, lovable and pleasing in physical and mental make-up. They have ingrained in their personality the basic qualities of the heroes- faithfulness, exactness and allegiance. Thus they are inheritors of grand personality. They also share the attributes of feminist protagonists in the feminist novels- feelings of love and tenderness for the poor, affection and sympathy for the miserable woman and loyalty to and feeling of sacrifice for others. Women protagonists like Alexandra Bergson, O Pioneer (1913), Thea Kronborg, The Song of Lark (1915) Antonia Shimreda, My Antonia (1980) and Cecil Auclair, Shadow on the Rock (1931) have performed their assigned tasks in a better way than other male protagonists in others novels.

Keywords: - Feminism, Pioneer, Heroes, Competent, successful, Sacrifice.

Introduction –

The women of the novels of Willa Cather break the tradition of the male heroes of early 20th century novels. They do so in that they have a right to exercise full power and strength. That makes them distinct from other women heroines of other feminist novelists. Her male protagonists are not as adventurous as Alexandra and Thea nor as effectual as Antonia and Cecile. These women characters display greater strength in their action and behavior. Doris Grumbach- *she has created heroines who are larger than life and stronger than the men around them; her male characters seem to me weak and ineffectual in contrast.*

The women of the novels of Willa Cather are simple in birth and growth like the pioneer group like women. They have taken farming as their profession. Faced with problems in their new countries, they develop immense ability to tackle them. Alexandra Bergson, the protagonists of *O Pioneer!* (1913) and Antonia Shimreda, the protagonist of *My Antonia* (1918) are the pioneer women attracted to the farmland. They are honored as earth mothers. There are yet women of other categories. Thea Cronborg, the protagonist of *The Song of The Lark* (1915) comes from a different background. She is appreciated for her devotion to music. Yet another heroine Cecile Auclair of *Shadow on the Rock* is the culture bearer in the lonely island of Quebec. In Lucy Gayheart has her love of art as her background. But for her

romantic attitude to her and inconstancy in her study she fails to be a successful singer. Among these heroines there are those who represent the evil forces in life.

The Swedish immigrant farming family settled in Hanover Alexandra of O Pioneer! is herself committed to Hanover land. She is so successful in her land management that her father John Burgson appoints her as a trustee to his land over riding the claims of her son Oscar and Lou. The father's one dream is to convert his wild land into a productive farm. He is sure that his sons would fail him. And so he instructs his sons, from his death-bed – *I want you to keep the land together and to be guided by your sister… Alexandra is the oldest and she knows my wishes… Alexandra will manage the best she can.* She is successful in fulfilling her father's dream.

She is highly innovative in land management. She has new cultivating techniques as well as new seeds for her farm. Even though the climate and her brothers are unfavorable to her, she does not renounce her soil. Her brothers are envious of her for she prospers even after the partition of the land. They are so wicked that they even drive away Carl Linstrum, her well-wisher, from her home with much insult. But her loyalty to her farm is greater than to her lover.

Though she maintains the best of relationships with her neighbors she appreciates the Bohemian farmers more for their skill in taming cattle and growing more crops on the farm. She says – *Bohemians certainly know how to make more kinds of bread than any other people in the world O Pioneer*. This close relationship with them benefits her for she gets more support from them with which she can grow more wheat in the farm and be a manager of her big farm. Carl, her close neighbor, selflessly supports her with her good advice in managing her family. He also shares her tears and smiles. She shows her sympathy for Emil murders and yet tries to free his murderer Frank Shabata from prison. She assures Frank- I am not going to stop trying until I get you pardoned. I'll never give the government any place *O Pioneer*! Alexandra's heart is so large and forgiving that she takes Carl Linstrum as her 'mystic lover' for he is always with her in her need and moment of tiredness and frustration.

Antonia Shimerda is a Bohemian girl immigrated to Blake Hill, Nebraska. Her father Mr. Shimerda, a Weaver in Bohemia, is forced to take farming as his profession in Blake Hill. But he has to commit suicide for the failure of crops in the new soil. Her life becomes miserable and painful. Her misery grows as her brother Ambrosch becomes a powerful person in the family. Making a comment on this domination over Antonia, feminist Jim Burden says- *Since the father's death, Ambroach was more than ever the head of the house, and he seemed to direct the feelings as well as the fortunes of this women- folk.* Brother's behavior to his sister is so cruel that feminist Mrs. Burden, Jim's grandmother, makes the statement, Heavy fieldworks spoil that girl. She'll lose all her nice ways and get rough ones. But he is unmindful of her pain and forces her to earn wages by working for others.

Antonia suffers because of the poverty of her parents and cruelty of her brother. She cannot complete with her neighbors-Jim Burden and other Native Americans. She can somehow get the job of a hired girl at Mrs. Harling's house in Blake Hawk town. But soon she is ejected out of the house when she is known as ejected out of the house when she is known as a dancer. Then she gets a job at wicked Cutler's house. He is a money–lender and a

womanizer who tries to rape her. However, she is saved by feminist Jim. She is again entrapped by Larry Donovan who makes her pregnant, empties her purse and deserts her.

Antonia has to brace one misfortune after another. First, she has to face her father's suicide. His dead body is not allowed to be buried in the Roman Catholic Church although he is a Catholic. To bury him, her mother has to dig a hole at her own terrace. She has to bear an unwanted pregnancy by Larry. This enrages her brother so much that, even in her pregnancy, he compels her to do hard work at his farm. She secretly gives birth to her child in her lonely room for fear of her brother. Soon her life turns for the better. She marries Anton Cuzak, a good hearted Gardner of her nationality. She then becomes a loving wife and a successful mother. She is a true feminist who knows how to suffer and then change her life for the better. As a true feminist she always smiles even in her diversity. She is never dismal. She always shows her fearless look. Naturally she always shines with her physical and mental beauty. For all these qualities she is always adored by her good neighbors.

Among all Cather's heroines, Antonia is the best. She has all the noble qualities. She manages well the house of Mrs. Harling. She loves her children, Nina and Charley and prepares the best food for them. She continues to have her good abilities and qualities through her marriage. She takes care of her children and shares all her good qualities with them-good discipline, nice manners and sharp intelligence. Her daughter shares her qualities of good cooking. Her son shares her qualities of good harvesting. They are all active like her. She forgives even the doers- Mrs. Harling, Wick Cutler, and Larry Donovan. Alexandra and Antonia appear to be the dearest heroines of Cather for they show courage to fight against the odds of life. Krishnamoorthy says-

Back on the farm, Antonia engages herself in hard work undergoes a process shedding American influences… In the outside world, Antonia's life may appear to be a failure. But to Cather, through Jim, Antonia remains special.

Thea Kronborg is a different heroine. She is an artist with artistic inclination and ambition. She is always busy with her artist performances. She is so dedicated to her art that she has no life outside her art. She says to Dr. Archie, *My dear doctor, I didn't have any (personal life). Your work becomes your personal life …. It's like being woven into a big web you can't pull away.* She finds a contradiction between art and marriage. Marriage requires sacrifice for the family. Hence a married woman cannot be great artist. She is a committed artist rejecting any other commitment outside art, even marriage and the concept of a 'married women' being called a 'great woman' – *A great woman cannot be a great artist… There was no doubt for Cather that a woman has to choose between devotion to family or to art and that only the exceptional woman could dedicated herself to art.*

Yet Thea marries Fred Ottenburg at a very mature age of forty six. Her purpose is very simple – friendship and not sex. Fred himself is an artist and understands Thea very much. She is lucky enough to have him as her husband. The daughter of a French apothecary Euclide Auclair , Cecile, at the age of twelve, finds her life very difficult after their migration from France to Quebec. Living a lonely life without any friend, she fails to get even good food. After her mother' death, she has to work as a house-wife. Her mother says,-

Your father has a delicate apetite and the food here (in Quebec) is coarse. If it is not very carefully prepared, he will not eat and will fail ill… when I am too ill to help you, you will

perhaps find it fatiguing to do all these things alone over and over. But in time, you will come to love your duties, as I do.

Alexandra, Thea, Antonia and Cecile, in their home, always remember their old countries. They are much emotional about their old homes. Naturally they are attached to these homes and continue with their culture and older in the new country. Cecil continues with her French Social culture in Quebec. Alexandra Nourishes and develops Swedish farming culture in Hanover. It is not that they are traditional or conservative in their outlook. They do so for in their new country they find its capitalistic spirit to awkward whereas the old country is found to nourish good culture and spirit. Cecile fulfills all her duties towards the new land – Quebec and is worried very much about its future. Yet she loves France and plants its cultural seed in Quebeck. Her good management of her father's apothecary shop in Quebec makes it a place of attraction. In the narrators words-

Once having taken your seat in the close air by the apothecary's fire, you can't explode into military glory, any more than you can pour champagne into a salad dressing… And really, a new society begins with the salad dressing more than the destruction of Indian villages.

Naturally, the women protagonists are free from selfish motives and tricky behavior. Her women protagonists share many of their creator's qualities and abilities. They are gentle, honest, sincere, true in habits and loyal to their duties like Cather herself. Alexandra, Thea, Antonia and Cecile share the mould of Cather. Like her, they are imbued with enough feminist strength to stand against disasters in their lives created by some scoundrel males.

Conclusion:-

Thus Cather's heroines are life-like and lively like the heroine of Shakespeare and jane Austen. Cather brings out fully the qualities of their heads and hearts. We can easily peep into them. They have the quality of everlasting freshness coming into contact with them, our heads and hearts also refreshed and energized. Cather's Alexandra and Austen's Elizabeth exhibit similar humanistic attitude to life, purity of their heart delight of their mind and warmth of their personality. Carl and Alexandra, Darcy and Elizabeth share all these qualities in equal measure. About Darcy's approval of Elizabeth, Prabhu says, *Darcy values Elizabeth for the loveliness of her mind and the generous warmth of her deposition which he does not attempt to change.* About Cather's heroines, Chang says – The heroines stood out, very impressive and familiar, with fresh and bone.

Hence, it can be summed up that Cather's women protagonists are superb in all their qualities of head and heart. They are all good human beings working hard to establish a good family and society around them. Their humanity is contagious; it affects even us today. They may not be as humorous as Austen's heroines. But they are as rational and feminist as Shakespeare's Portia and Rosalind in his comedies. In her novels, there is a great line from liberal feminist women who form her protagonists of great compassion, high patience, unbelievable courage and memorable endurance, which are the greatest attributes of the human beings on earth.

Work Cited –

Carl Van Doren, "Willa Cather", *American Novel* (New York: The Macmillan company, 1957).

Doris Grumbach, Foreword, *My Antonia*, by Willa Cather (Boston: Houghton Mifflin Company, 1988).
S. Krishnamoorthy Aithal, "Immigrants in Cather's America", *Span* (January1991).
James Woodress, *Willa Cather: A Literary Life* (London: Universityof Nebraska Press, 1987).
Willa Cather, *The Song of Lark* (Boston: Houghton Miffin Company, 1988).
L. C. Chang, "Willa Cather And China". *Willa Cather's Pioneer Memorial Newsletter* XXVIII 1 (1984).

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

"Waste Management: Rule of Ancient & Present System"

Dr. Anuja Kumari
Guest Asst.Professor
Dept. of History
S N S R K S College, Saharsa

"**Wastes** are materials that are not prime products (that is products produced for the market) for which the generator has no further use in terms of his/her own purposes of production, transformation or consumption, and of which he/she wants to dispose. Wastes may be generated during the extraction of raw materials, the processing of raw materials into intermediate and final products, the consumption of final products, and other human activities. Residuals recycled or reused at the place of generation are excluded."

Kinds of Wastes

Solid wastes: wastes in solid forms, domestic, commercial and industrial wastes

Examples: plastics, Styrofoam containers, bottles, cans, papers, scrap iron, and other trash

Liquid Wastes: wastes in liquid form

Examples:domestic washings, chemicals, oils, waste water from ponds, manufacturing industries and other sources

According to EPA regulations, SOLID WASTE is any garbage or refuse (Municipal Solid Waste)

Sludge from a wastewater treatment plant, water supply treatment plant, or air pollution control facility

Classification of Wastes according to their Properties

Bio-degradable

- can be degraded (paper, wood, fruits and others)

Non-biodegradable

- cannot be degraded (plastics, bottles, old machines, cans, Styrofoam containers and others)

Classification of Wastes according totheir Effects on Human Health and the Environment

- Hazardous wastes

Substances unsafe to use commercially, industrially, agriculturally, or economically and have any of the following properties- ignitability, corrosively, reactivity & toxicity.

- Non-hazardous

  Substances safe to use commercially, industrially, agriculturally, or economically and do not have any of those properties mentioned above. These substances usually create disposal problems.

MAGNITUDE OF PROBLEM: Indian scenario

- Per capita waste generation increasing by 1.3% per annum
- With urban population increasing between 3 – 3.5% per annum
- Yearly increase in waste generation is around 5% annually
- India produces more than 42.0 million tons of municipal solid waste annually.
- Per capita generation of waste varies from 200 gm to 600 gm per capita / day. Average generation rate at 0.4 kg per capita per day in 0.1 million plus towns.

Impacts of waste if not managed wisely

Affects our health, our socio-economic conditions, coastal and marine environment, climate GHGs are accumulating in Earth's atmosphere as a result of human activities, causing global mean surface air temperature and subsurface ocean temperature to rise.

Rising global temperatures are expected to raise sea levels and change precipitation and other local climate conditions.

Changing regional climates could alter forests, crop yields, and water supplies.

This could also affect human health, animals, and many types of ecosystems.

Deserts might expand into existing rangelands, and features of some of our national parks might be permanently altered.

Impacts of waste…

- Some countries are expected to become warmer, although sulfates might limit warming in some areas.
- Scientists are unable to determine which parts of those countries will become wetter or drier, but there is likely to be an overall trend toward increased precipitation and evaporation, more intense rainstorms, and drier soils.
- Whether rainfall increases or decreases cannot be reliably projected for specific areas.
- Activities that have altered the chemical composition of the atmosphere:
- Buildup of GHGs primarily carbon dioxide (CO_2) methane (CH_4), and nitrous oxide (N_20).

- $C0_2$ is released to the atmosphere by the burning of fossil fuels, wood and wood products, and solid waste.
- CH_4 is emitted from the decomposition of organic wastes in landfills, the raising of livestock, and the production and transport of coal, natural gas, and oil.
- $N0_2$ is emitted during agricultural and industrial activities, as well as during combustion of solid waste and fossil fuels. In 1977, the US emitted about one-fifth of total global GHGs.

Impacts of waste on health

- Chemical poisoning through chemical inhalation
- Uncollected waste can obstruct the storm water runoff resulting in flood
- Low birth weight
- Cancer
- Congenital malformations
- Neurological disease
- Nausea and vomiting
- Increase in hospitalization of diabetic residents living near hazard waste sites.

  {Mercury toxicity from eating fish with high levels of mercury.

Effects of waste on animals and aquatics life

- Increase in mercury level in fish due to disposal of mercury in the rivers.
- Plastic found in oceans ingested by birds.
- Resulted in high algal population in rivers and sea.
- Degrades water and soil quality.

Impacts of waste on Environment

- Waste breaks down in landfills to form methane, a potent greenhouse gas
- Change in climate and destruction of ozone layer due to waste biodegradable
- Littering, due to waste pollutions, illegal dumping, Leaching: is a process by which solid waste enter soil and ground water and contaminating them.
- U.S. Environment Protection Agency (2009)

It is estimated that food wasted by the US and Europe could feed the world three times over. Food waste contributes to excess consumption of freshwater and fossil fuels which, along with methane and CO2 emissions from decomposing food, impacts global climate change. Every tonne of food waste prevented has the potential to save 4.2 tonnes of CO2 equivalent.

If we all stop wasting food that could have been eaten, the CO2 impact would be the equivalent of taking one in four cars off the road.

Donate/Exchange

- Old books, clothes, computers, excess building materials, equipment to local organizations

Employee Education

- Develop an "office recycling procedures" packet.
- Send out recycling reminders to all employees including environmental articles.
- Train employees on recycling practices prior to implementing recycling programs.
- Conduct an ongoing training process as new technologies are introduced and new
- Employees join the institution.
- education campaign on waste management that includes an extensive internal web site, quarterly newsletters, daily bulletins, promotional signs and helpful reference labels within the campus of an institution.

Residents may be organized into small groups to carry out the following:

1. construction of backyard compost pit
2. construction of storage bins where recyclable and reusable materials are stored by each household
3. construction of storage centers where recyclable and reusable materials collected by the street sweepers are stored prior to selling to junk dealers
4. maintenance of cleanliness in yards and streets
5. greening of their respective areas
6. encouraging others to join

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

IRON TECHNOLOGY AND SOCIAL CHANGE IN MAURYAN INDIA

Dr. Rakesh Kumar Singh

The study of iron in early India, both in its technical and social manifestations, suffers from a serious limitation. Most of the available writings are essentially uni-dimensional in approach. The society as a prime technological variable gets ignored with the result that social complex is always at the receiving end, almost as hapless passive formation devoid of any dynamism of its own. Such an understanding of the social role of technology sees techniques as independent of the milieu in which these evolve. This tantamounts to taking a position divorcing the process of the origin and growth of a technology from the contemporary social system, a line of argument that can lead to funny conclusions. It has to be emphasised, therefore, that the study of technology must keep in mind the dependant social climate. It is common knowledge that a technological innovation is the product of a social system and, in turn, it becomes viable only when the society gets ready for it. The social readiness depends upon a variety of factors - the form of the existing mode of production, the operational dynamics of the class formation, the nature of the ecological compulsions, etc. The shifting equations amongst these variables explain the variant role of a technology in differeing historical periods. It is with this perspective in mind that the present paper seeks to uncover the social dimensions of iron technology in Mauryan India.

Though the expansion and refinement of iron technology had been considerable since c. 1000 B.C.,[1] it was not until the second half of the 4th century B.C. that its full impact was felt on society. It is with the arrival of the Mauryas on the scene that dominant economic and political Mstitutions came to be formalised. The period witnessed the strengthening of iron technology both spatially and technically. A study of the NBP sites suggests that many new regions, where the precise beginning of the Iron Age was uncertain till the pre-Mauryan times, now came to acquire its developed traits.[2] Both at Has-tinapura[3] and Sravasti,[4] this phase is rich in iron objects compared to the preceding NBP phase. Similar is the case with Kausambi.[5] Out of eleven types of iron arrow-heads and five types of spears and javelins reported at the site, as many as eight types of the former and all the five types of the latter occur throughout this phase.[6] This pattern is repeated at a number of sites.[7] At a second set of sites, which have recorded cultural antecedents - Ropar, Sonepur and Sohagaura, for instance - iron appears in the 4th century B.C.[8] A third set of sites, where this phase of the NBP is not preceded by any earlier cultural phase, illustrate the physical and spatial progress of iron more poignantly. Excavations at Taxila underline this pattern of technological expansion. In

fact as one moves towards the Mauryan times, the site starts yielding a larger number of iron objects,[9] a fact that gives strength to the suggestion that the Iron Age in India almost reached a stage of culmination in the 3rd century B.C. Iron objects are forthcoming, for the first time, from Sisupalgarh, Nasik and a host of other sites in Maharashtra and Central India.[10] Except a few sites, the settlements of the period are decidedly marked by a profusion of iron objects. Iron-yielding sites even in the south, especially in Karnataka and Andhra, suddenly increase in number in the 4th-3rd centuries B.C.. but it has been suggested that this had nothing to do with the northern developments. [1] It is true that a direct linkage between the two cannot be established, but it is difficult to ignore the discovery of some of the typical idioms of Mauryan culture from the region.[12] A sudden spurt in iron-working in the area may possibly be explained in terms of the intrusion of the developed elements of late NBP culture, but with the corresponding admission the Mauryan stamp on the cultures of this area is not easily discernible from archaeological evidence.

A greater exploitation of iron mines fulfilled the growing demands for the metal on the one hand, and helped its further spread on the other. The literary evidence is very specific on this point.[13] The Mauryan state exercised a monopoly over mines and trade in mineral products. Kautilya, realising the importance of mining, provides for an Akaradhyaksa (superintendent of mines), a Khanyadhyaksa (superintendent of digging), a Laksanadhyaksha (superintendent of elements) as well as lohadhyaksa (superintendent of iron working). Archaeology, however, attests to the working in gold, silver and copper only.[14] The location of numerous small heaps of iron slags scattered all over the iron belt in south Bihar,[15] however, suggests substantial iron working. The discovery of a number of pits, contain ing charcoal, iron slag and sand, from Period I at Saradkel near Ranchi,[16] lends credence to this view. The excavator refers to these pits as iron-smelting ovens.[17] This was possibly a factory site. A better organisation of iron-working, therefore, seems to have become the halmark of the period. Kautilya was so conscious of the importance of metals and mining that he went to the extent of asserting that mining was the source of all power. [8] This concern of the state and the growing social demands on iron helped the refinement of its techniques. Now we have better evidence, both in terms of quality and quantity, of smelting and forging of iron objects. The excavations at Dhatwa bear out this development. The smelters here succeeded in extracting 99.76% pure iron. They also devised the technique of manufacturing hard implements, like hoe, in two stage involivng the process of "forging-welding."[19] The best set of evidence of the smelting and manufacture of iron objects is forthcoming from Ujjain where lime representing clacium compounds, was being used as a flux. Analysing the archaeological data, N.R. Banerjee writes that "the remains of a forge with a groove for the introductin of the working end (or nozzle) of blower of bellows, an improvised stand made from the sturdy and large neck of a broken vessel to support a water jar to store water for quenching, a small or miniature jar to collect small quantities of water according to necessity, and a shallow but large enough bowl to contain water near at hand for quenching helps to reconstruct the process of blacksmith's working. The use of an anvil also of iron and iron tools like pincers for handling the red-hot iron bar or tool, is clearly indicated. The iron nail and chisel lying near the forge, which is lined with bricks and clay, burnt hard, and contains

ash and charcoal, suggest the variety of objects produced, sharpened or remade at the forge. This method is even now in vogue and would by itself indicates an advanced stage of development of the process of iron working, with a long background."[20]

The post-c. 350 B.C. period, therefore, has two dimensions of the social implications of iron technology - manifestation of its full impact on society and furtherance of this trend through technological expansion. The Mauryan state, which is the best expression of the material milieu of the times, was essentially a culmination of the socioeconomic processes, inaugurated during the later Vedic times, which led to the transition from a pastoral/agrarian economy to an established and full-fledged agriculture based economy. The widening and strengthening of the base of agriculture could become possible due to the widespread use of iron plougshares and the extension of agricultural area through deliberate deforestation. Additional foci of agricultural production developed beyond the Ganga valley, especially in the fertile areas of the Indus and parts of the peninsula. It is needless to add that the political authority, due to both enhanced agrarian production and acquisition of coercive powers over the centuries, was in a better position to extract an unprecedented quantity of surplus. This may give an idea as to how the Mauryan state was able to sustain a huge army and a large bureaucracy. In fact, the Mauryan state, with the help of its coercive arms, seems to be an institutional attempt to organise the earlier tendencies to give it a definite direction. This was sought to be achieved through the formation of centralised kingdom controlling extensive geographical area, an experiment which was first of its kind in Indian history. It is relevant to note that the distribution of Asokan edicts, given the extent of the Mauryan empire, synchronises with the distribution of ancient sites of permanent settlement, the sole exception being a group of inscriptions in Karnataka.[21] Thus, the Mauryan conquests need to be viewed as a process of consolidating the achievements of pre-Mauryan material culture. These conquests were attempts to follow and unify a network that had been expanding for hundreds of years. The emergence of the empire became possible only when the urban tradition had reached a level of maturity. The concentration of population in urban centers became possible due to the production of a sizeable amount of surplus, its appropriation and its commercialization. The pre-Mauryan times had three major nuclei of communications - the north to south-west route (from Sravasti to Pratisthana), the north to south-east route (from Sravasti to Rajagrha), and the east-west route (along the river courses of the Ganga and Yamuna). The Mauryas capitalised on it by providing better communications facilities to create an additional social basis for the empire - the commercial groups.

The Mauryan state with the help of iron technology played the role of a homogenizer of cultures.[24] An improved network of communications[25] alongwith a vast army and a large bureaucracy provided it with the necessary perquisites to achieve this end. The existence of a common script must have helped the process.[26] The role of ideology also needs emphasis in this context.[27] An attempt at bringing about homogeneity is reflected at the ideational level in the form of the policy of dhamma enshrined in the Asokan inscriptions scattered all over the country. It was an attempt, based on current religious disputations, to provide a common factor. It was sought to be a vehicle of persuasive assimilation, not military confrontation, "in which conforming to the broad ethical ideals of dhamma was central." The military strength

of the Mauryas was so substantial that Asoka was not faced with the compulsion of elaborating upon the traditional ideology for the legitimisation of the political system. This, coupled with the emergence of a new pattern of political authority, provided an opprotune moment for redefining the "non-imperialistic" political normatives. The dhamma of Asoka needs to be viewed as an alternatives ideology armed with the new requirements of the political system.

The new political system, represented by a vast bureaucratic complex aimed at complete administrative centralisation, forced the pace of agrarian growth with its new found monopoly over a developed iron technology. Their compulsion to tap fresh resources for sustaining the overgrown political structure prompted them to found new settlements and rehabilitate the decaying ones. Kautilya devises an extremely interesting mechanism to bring the virgin soil under cultivation.[29] The state also acquired its own farms worked under the supervision of the sitadhyaksa.[30] The agrarian expansion was greatly helped by the initiative taken by the state in the field of irrigation. Iron technology obviously became instrumental in the completion of massive irrigational projects. Archaeology also attests thejprocess of planned deforestation undertaken by the Mauryan state. A recent study of 74 excavated NBP sites identifies 32 sites with early NBP culture and 57 sites with late NBP culture.[31] The frequent occurrence of ringwells during this period,[32] now made the founding of settlemetns jiwayjrom the river streams less problematic. A natural consequence of this tremendous spurt in agrarian activities was an increase in the number of agricultural taxes. The cultivators had to bear the burden of additional levies - the pindakara,[33] the senabhakta[34] and an irrigation cess,[3∘] besides the payment of an emergency tax, the pranaya.[36] The state's concern for protecting and supporting the pattern of agrarian expansion, illustrated by Asoka's repeated exhortations in favour of non-injury to animals.[37] was an essential component of the system.

This large-scale agrarianisation of the Ganga valley as well as the outlying regions generated such an amount of surplus that a number of new towns came to be established and the material roots of the older urban settlements got strengthened. The transformation of Pataliputra into a cosmopolitan centre conforms to this new reality of the material life. The Mauryan towns functioned as centres of state-control over crafts and commerce.[38] Consequently the organisation of trade became smoother and "the crafts gradually assumed the shape of small-scale industries."[39] It is significant to note that the earliest discernible well-organised network of long-distance trade belonging to the 3rd century B.C., connected only those areas that had been permeated by stable settlements.[40] The iron \ (TechlonoljObased rural settlements were undoubtedly providng support, and occasional direction, to the growing urban economic forms of the Mauryan times.

The strong material make-up of the Ganga valley became in-strumentalin affecting far-reaching changes in the peripheral zones. The process admitted of two distinct patterns - diffussion of iron-based agrarian technology in those areas and helping the organisation of the local elements of material culture by assimilating these into the mainstream. Places like Mahasthan[41] in Bangladesh and Khanamihirer Dhibi in West Bengal, which have yielded the iron implements and indubitable evidence of their emergence as stable settlements in the 3rd

century B.C., may have acted as nuclei of the transition to settled agriculture in their respective zones. Areas like Kalinga seem to have received the new elements in a greater measure. The region came into contact with Magadha in the 4th century B.C., but the transition was possibly affected in the 3rd century B.C., due to an excessive concern of Asoka for this area after its assimilation within the empire.[43] The evidence comes in the form of the earliest iron implements unearthed from five sites in the area - Sisupalgarh, Jaugada. Asurgarh, Kharliagarh and Gudbhela.[44] Iron came to be used from the 3rd century B.C. and the objects included agricultural implements. The process of agrarian transformation may have been intensified due to the spread of the knowledge of steel or semi-steel making in the area due to Mauryan contacts. Significantly the growth of material culture in Orissa was not confined to the coastal districts, as is often suggested.[40] The presence of the developed elements of material culture - iron implements and coins - from widely scattered areas points to a process of hospitable reception of iron technology almost in the whole of the province. The Cheti kingdom was a product of this agarian scenario and the Hathigumpha inscription of Kharavela, which shows the king's concern and initiative for provide ing irrigational facility to the cultivators, amply testifies to the effects of the penetration of iron technology in the area.

The role of the Ganga Valley culture in the dissemination of its elements in the Deccan, however, can not be determined with clarity. The region does have a history of iron use right from the Hallur days but, unlike the north, it failed to evolve an urban culture, at least, till c. 300 B.C. This requires an explanation specially from those who advocate for an exclusively autonomous pattern of social formations in that region.[46] It is a common knowledge that the area had a strong tradition of iron use. but this point needs to be stated with the admission that the historical transformation in the area could not be brought about before the 3rd century B.C. It is here that the Mauryas seem to have played a vital role. The earliest documented evidence of Mauryan intrusive elements comes in the form of a concertration of Asokan inscriptions from Mysore and a fragmentary one from Amaravati in Andhra. It is true that the excavations at Brahmagiri,[47] where two Asokan inscriptions were found, did not yield any identified material remains of the Mauryas, but the beginning of a new ceramic type and the first appearance of iron at the site in Period II (contemporaneous with the Mauryas) are of consequence. This ceramic type also occurs at Sisupalgarh,[48] Kesarpalli[49] (Andhra) and Korkai°° (Tamilnadu). One wonders whether the four sites are providing for a common intrusive element of the Mauryan culture. The Amaravati evidence[01] is, however, decisive. About one km. from this Buddhist establishment we have an urban site, Dharanikota.[52] It is certain that during the Mauryan phase of contact, the Amaravati-Dharanikota complex was emerging as a dynamic religious and commercial-urban complex in the lower Krishna regions. This transition to an urban settlement in the 3rd century B.C. can be best explained in terms of the organising role of the Mauryan state and the intrusion of iron technology. The available evidence further suggests that Amaravati emerged as a focal point of the diffusion of material culture in the area.°[3] The very process of state formation in the region, manifest in the form of the Satavahana polity, seems to have been influenced by

the introduction of the new elements of material culture. The new rulers sought to legitimise their rule by adoptingsome of the dominant idioms of Mauryan adminstration and culture.

The process of the diffusion of the material culture of the Ganga Valley in outlying regions was also aided by Buddhism. It is sig nificant that the earliest surviving Buddhist monastic sites emerged in the 3rd century B.C.[54] The original zone of their distribution was located in the Yamuna-Ganga valley with stray examples in central India (Bharhut and Sanchi) and the Deccan (Amaravati). All the early Buddhist centres, lying either close to early monastic sites or along routes connecting urban locations, were located within the distribution areas of either the Asokan inscriptions or the NBP. Thus, in the first phase of its evolution the Buddhist monastic settlements were closely linked to the major forms of political and economic organization that were developing at the same time."[55] Buddhism seemingly strengthened the hands of the Mauryan state in the former's endeavour to extend the material culture of the Ganga Valley to outlying areas. The emergence of an all-India economic pattern by the 2nd century B.C. bears testimony to the positivity of this effort.

By c.200 B.C. the iron technology thus came to occupy a position of centrality in the mechanism of production. The improvement in its techniques and the wide area of its expanse helped large-scale growth of stable settlements. This was a prelude to economic unity of the whole of the sub-continent. The Mauryas played a decisive role in this process by formalising, standardising and diffusing the earlier trends. The technology that shaped the character of the Mauryan empire once disseminated to the peripheral regions ironically forced the pace of its dissolution as well.

NOTES

1. For details, see V.K. Thakur : Social Dimension of Technology : Iron in early India. Patna, 1993. pp. 5-32.
2. T. N. Roy : A Study of Northern Black Polished Ware Culture : An Iron Age Culture of India, Varanasi. 1986. p. 193
3. B.B.Lai, 'Excavations at Hastinapura and other explorations in the Upper Ganga and Sutlej Basins (1950-52), Ancient India, nos. 10-11. pp. 97-99.
4. K.K.Sinha : Excavations at Sravasti, 1959. Varanasi. 1967. pp. 67-68.
5. G.R. Sharma : Excavatins at Kausambi. 1957-59. Allahabad. 1960. pp.45-48.
6. Ibid., pp. 55-56.
7. T.N.Roy, op.cit.. p. 142.
8. Ibid.
9. Iron objects at the earlier levels at Bhir Mound consisted of adzes knives and scrapers, but the subsequent level shows a wider use of iron, including weapons, tools, agricultural implements and household vessels (John Marshall : Taxila. vol.1, Cambridge. 1951. pp.104, 107: Vol.11. p.63ff).

10. T.N.Roy, op.ctt.. p. 143.
11. S.Nagaraja and B.K.Gururaja Rao. "Chronology of Iron in South India: in D.P. Agrawal & D.K.Chakrabarti (ed.): Essays tn Indian Protohistory. Delhi, 1979. pp.321-29.
12. Amarvati, for exmaple, has a few inscriptions of Mauryan times alongwith a very impressive number of stratified NBP sherds {Indian Archaeology. 1973-74 : A Review, p.4). Typical Mauryan polished inscribed granite uprights have also been found [ibid). Furthermore, Asokan inscriptions have been found in the Andhra and Karnataka.
13. Arthasatra. 11.12.
14. Murray. Journal ofthe Royal Asiatic Society ofBengal. 3rdseries, Vol.VI. p. 101. cited in R.Sharma : Perspectives in Social and Economic History of Early India. New Delhi. 1983. p. 131.
15. Ibid.
16. Indian Archaeology 1964-65 : A Review, p.6.
17. Ibid.
18. Arthasastra. 11.2
19. K.T.M.Hegde. 'Early Stages of Metallurgy in India.' in D.P. Agrawal & A. Ghosh (ed.) : Radiocarbon and Indian Archaeology. Bombay. 1973. pp.401-405.
20. The Iron Age in India. Delhi. 1965. p. 179.
21. Romila Thapar : A History of India. Baltimore. 1966. p.81.
22. James Heitzman. 'Early Buddhism. Trade and Empire', in K.A.R. Kennedy and G.L.Possehl (ed.) : Studies in the Archaeology and Palaeonthropology of South Asia. New Delhi. 1984. p. 124.
23. T.W.Rhys Davids : Buddhist India. London. 1903. p.103ff.
24. The Mauryan state seems to be a very good example of a secondary state. The secondary states, it has been argued, are formed by primary states conquering non-states (R.Cohen and E.R. Service, ed. : Origin of the State. Philadelphia, 1978. p.6ff). It is also required that the newly conquered areas be economically integrated into the conquering states. Despite Romila Thapar's objections {From Lineage to State. Bombay. 1984. pp. 159-160). the Mauryan state seems to have performed both the functions.
25. Asoka claims in his inscriptions to have constructed roads on a large scale.
26. For the role of language and script in the process of state formation, see Peter Skalnik, 'The Early State as a Process', in H.J.M.Claessen & Peter Skalnik (ed.) : The Early

Slate. The Hegue. 1978. p.607. The brahml script was fairly widespread by the time of the Mauryas.

27. Ibid., pp.628-629.
28. Romila Thapar : The Mauryas Revisited. Calcutta. 1987. p.22.
29. Arthasastra. II. 1.
30. Ibid., 11.24.
31. T.N.Roy, op.ctt, pp.89-91.
32. Ibid.. p.37ff.
33. R.S.Sharma. op.cit. p. 132.
34. Ibid.
35. Arthasastra, 11.4.
36. Ibid.. V.4.
37. Seven (Rock Edicts. I. II. III. V. VIII. IX & XI) out of the fourteen major Rock Edicts, to cite an instance of Asoka's concern for non-violence to animals, repeat this request. Kautilya too is familiar with this issue. Almost echoing the same idea, he states, "cattle such as a calf, a bull or a milch cow shall not be slaughtered" [Arthasastra. 11.26).
38. For details, see R.S.Sharms. op.cit, pp.130-131.
39. Romila Thapar : Asoka and the Decline of the Mauryas. 2nd ed. Delhi, 1973, p.72.
40. J.E.Schwartzebeg (ed.): A Historical Atlas of South Asia. Chicago. 1978. p. 19. The use of burnt bricks during the period (T.N.Roy, op.cit.. p. 184) is suggestive of the growing strength of the urban tradition.
41. R.R.Mukherji and S.K.Maity : Corpus of Bengal Inscriptions Bearing on History and Civilization of Bengal. Calcutta. 1967. pp.38-39. This is incidentally the first inscription forthcoming from Bengal suggesting the introduction of a script in the area during the Mauryan times. It refers to Pundranagara as a prosperous city where grains and coins were stored to meet the consequences of natural calamities. The establishment of village settlements and the availability of the considerable amount of agrarian surplus in the area, therefore, seems indubitable.
42. Indian Archaeology 1956-57 : A Review. p.29ff: 1957-58. p.51ff: 2959-60. p.50ff: 1960-61. p.39ff: 1961-62. p.62ff. 1962-63. p.46: 1963-64. p.63ff: 1964-65, p.52ff; 1966-67. p.48.
43. The Kalinga Rock Edicts I & II project this new policy formation. It has been suggested, however, that Kalinga was a well populated geographical entity before the war implying thereby the marginal impact of Mauryan rule over the area (B.P.Sahu.

'The Archaeology of Early Historic Orissa'. Proceedings of the Orissa History Congress. 9th Session. Rourkela, 1981. p.2; idem. 'Some Aspects of Early Orissan Economy and Society'. PIHC. 41st Session. Bombay. 1980. pp.126. 127. The figure of casualties and captives recorded in the Asokan edicts are decidedly inflated and hypothesis based on these numbers can hardly be reliable. Moreover. Kalinga's association with Magadha from an earlier period is very much admitted but the evidence at our disposal, both archeological and literary, does not permit us to picture the pre-c.300 B.C. Kalinga as an area of stable settlements (Sahu has himself cited this body of evidence, ibid. pp.122-232).

44. Ibid., p. 125. The Ganganagar minor irrigation project area and Birat-garh have also yielded iron implements, but these have a post c.200 B.C. chronology (R.N.Das. 'Adya Lauha Yugair Orissara Sanskriti'. Paurusa. Cuttack. June 1978. pp.69-72). These sites came under occupation in the 3rd century B.C.

45. See H.K.Mahatab. 'Presidential Address'' (Local History Sesction). PIHC 12th Session. 1949. Cuttack. p.278. B. P. Sahu has convincingly controverted this erroneaus conclusion (ibid., p. 126).

46. A loka Parasher. 'Social Structure and Economy of Settlements in the Central Deccan (200 B.C. - A.D. 200)'. in Indu Banga (ed.) : The City in Indian History, New Delhi. 1981. pp.22-23.

47. R. E. M. Wheeler. ·Brahmagiri and Chandrawalli 1947 : Megalithic and other Cultures in ChitaldurgDistirct, Mysore State''. Ancient India, no.4. pp.181ff.

48. B. B. Lai. ''Sisupalgarh. 1948 : An Early Historical Fort in Eastern India''. Ancient India, no.5. p.79.

49. H.Sarkar. ''Kesarpalli 1962''. Ancient India, no.22. p.45.

50. R.Champakalakshmi. 'Archaeology and Tamil Literary Tradition''. Puratattva. No.8. p.l 14.

51. Alexander Rea : Excavations at Amaravati. Annual Report. Archaeological Survey of India/or 1980-1909. Delhi. 1912. pp.88-89.

52. Indian Archaeology 1963-64 : A Review, pp.2-4: 1963-65. pp.2-3.

53. Vimala Begley. 'From Iron Age to Early Historical in South Indian Archaeology.' in J. Jacobson (ed.) : Studies in the Archaeology of India and Pakistan. New Delhi. 1986. pp.304-305.

54. James Heitzman. op.cit.. p. 125.

55. Ibid., p. 124.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Economic Life of the Settled Agriculturist in Jharkhand : A Study

Ratan Kumar Das

UGC-NET

The first and foremost characteristic of the Sattled Agriculturist tribes economy is the close relationship between their economic life and the natural environment or habitat which is, in general, the forest. Exception to this are the tribals inhabiting our islands. They depend on sea-produce like fish. Still the coconut complex of Nicobarese as has been observed by Vidyarthi[12] reflects the extent of their forest-based economy. This economy revolves around the forest. The tribals obtain their numerous requirements from the area they inhabit with the help of most simple implements and without any technological aid from outside.

Keywords :*Foremost, Characteristic, Economy, Close relationship, Natural, Environment, Habitat.*

Introduction

The economic structure in tribal communities is markedly different from that of the non-tribals or advanced groups of people. They have a very simple technology which fits well with their ecological surroundings and conservative outlook. Moreover their economy can be said to be of subsistence type. They practise 'different types of occupations to sustain themselves and live on "marginal economy." We find the tribals of India belonging to different economic stages, from food-gathering to industrial labour which present their overlapping economic stage in the broader framework of the stages of economy and the last important point to be emphasized is that a tribe is usually considered an economically independent group of people having their owen specific economy and thus havinga living, pattern of labour, division of labour and specialization, gift and ceremonial exchange, trade and barter, credit and value, wealth, consumption norms, capital formation, land tenure, and good—tangible and intangible—economic status. All these have their own specialty which identifies the tribal economy in the broader set-up of Indian economy.

The semantics of the word "economy" has no size dimensior attached to it; it may be of a hunting tribe to a big nation. Still all economies share three basic features and in this sense are similar[1].

The first and foremost characteristic of the Settled Agriculturist tribes economy is the close relationship between their economic life and the natural environment or habitat which is, in general, the forest. Exception to this arethe tribals inhabiting our islands. They depend on sea-produce like fish. Still the coconut complex of Nicobarese as has been observed by Vidyarthi[2] reflects the extent of their forest-based economy. This economy revolves around the forest. The tribals obtain their numerous requirements from the area they inhabit with the help of most simple implements and without any technological aid from outside. Nothing seems to escape them—edible roots, fruits, vegetables, flower and honey, insects, fish, pigeons, cock and other birds, monkeys, hares, pigs, etc. The Birhors of Bihar, the Chenchus of Andhra Pradesh, the Juangs of Orissa, the Kadars of Kerala, the Paliyans and Panians of Tamil Nadu, etc., depend onthe forest, and in these areas the flora and fauna predominates as, the primary source of food. For their livelihood the Birhors of Chotanagpur depend to the extent of five-sixths and hill cultivator Malers of Santhal Pargana to the extent of three-fifths on what is available in their forest. Even the agriculturist tribes like the Munda, the Oraon and the Ho of Chotanagpur depend on the forest, to the extent of nearly half (46 per cent) of their economy.

The Settled tribes of Jharkhand depend on forest for *mahua* and *bin* I eaves to a great extent. The basket-maker Mahalis of Bihar get the bamboo as raw material from the forest they inhabit. The pastoralist (Jaddis of Himachal Pradesh depend on forest for the pasture of *dhar* fortheir flock consisting of goats and sheep[3].

The mode of production of the tribal people is styled "familial" or "domestic". The family, in the tribal economy, is a unit of production. It is directly engaged in the economic processes and is largely in control of it. All the members of the family whether husband or wife, parents or children, together form the production unit. The allocation of labour and produce and decisions are for the most part domestic stipulations and production is geared to familial requirements*i.e.,* they produce what they need. Yet it never means that the familial group is self-sufficient. They get the co-operation of individuals of other households too. The family is constituted for production

by age-groups and is equipped to govern production by possession of the necessary tools that are easily made and skills that are common and uncomplicated. The children set out in the jungle with their cattle herd. Some of them accompany their mother or sister to help in digging out the roots or collection of firewood or in picking up the *mahua* flowers or certain fruits in the nearby jungles. Theyouth form the axis of familial production. They take part in their agricultural operations, *i.e.,* preparing the fields, sowing, harvesting or in some type of forest operation like collection of minor forest produce or in fishing or hunting, etc. In a Ho family of Kolhan, the children graze their livestock, the young men work in their fields and in forest, the young females keep themselves busy in their daily domestic chores apart from transplanting paddy, harvesting the crop and preparing the *Khalihan.* The old men stay at home and at times watch the *Khalihan.* The whole family works for its livelihood. Among the hill cultivators like the Malers of Santhal Pargana, each member of the family is engaged somewhere in his economic activities. The Kurwa forest is cut down by the young men, cleared by men and women and then sown and watched by the whole family. The hunting and food-gathering tribes like the Birhor also set out for materials like fibre, chop, etc., with their families. The artisan tribe Mahali is engaged in basket making. The skill is transmitted from the father to the son. Husband, wife and their children all keep themselves attached to the work. Big baskets *(Tokari)* are mainly made by the male. The Mahali female prepares winnowing fans and mat lining. The children help their mothers in their domestic chores. Co-operation of kinsmen and neighbours, m fact, is there. When one male Mahali finds himself unfit to visit the weekly market his kinsmen come and help him by talcing his baskets and other commodities to the market for sale. Among the folk-artist Nats of Madhya Pradesh the whole family jointly presents then acrobatic shows. The young boy or girl plays the musical instruments to attract the people as also with her loud voice.

The tribal women in general go out to collect roots, fruits and firei wood[4]. The women of hill and simple cultivators help in sowing, weeding and harvesting operations. Tribal women generally do not work with men in preparing the field or in ploughing. Old women of the Bagotas of Vishakhapatnam are, however, an exception to this. In Kondapodu lands twining up of the soil is done with a certain agricultural implement known

as *valuva* after the first rain, Even old women of the family participate in this operation.[5] Both young and old, irrespective of their sex, take part in weeding the field. It has been noticed that the Ho male with a better economic status takes two wives, one to serve and look after him and the other to look after his home and property.

Thus, division of labour based on age and sex seems to be a common feature among the tribals. Besides all members of a family are engaged in economic activities.

References

1. George Dalton : "Economic Theory and Primitive-Society", American Anthropologist, Volume-63, 63, No.-1, 1961.
2. L.P. Vidyarthi : "Life and Culture in the Andaman and Nicobar Islan", Page No.-99, Ranchi.
3. Ram Chandra Pal Singh : "A Monograph on Chitraia", Page No.-11, 1965, Delhi.
4. B.K. Rai : "Nature and Man : A Study of Interaction between Man and Forest in Chotanagpur", (Ph.D. Thesis Ranchi University), 1967, Ranchi.
5. Chandra Sekhar : "A Monograph on village Byrlutiguden", Page No.-35, 1965, Andhra Pradesh.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारत–रूस आर्थिक संबंध : एक अध्ययन

डॉ0 शशि भूषण प्रसाद

पटना विश्वविद्यालय, पटना

सार

भारत और रूस के बीच एक विशिष्ट और विशेषाधिकार प्राप्त साझेदारी हैं। दोनों देशों ने 2019 में 71 साल के राजनयिक संबंधों को चिह्नित किया। आर्थिक क्षेत्र में रणनीतिक साझेदारी को फिर से जीवंत करने के लिए भारत और रूस सहयोग के कई रास्ते तलाश रहे हैं। 2017 में दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार 10.17 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। 2018 में 19 वें वार्षिक शिखर सम्मेलन के दौरान दोनों देश के नेताओं, भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्रमोदी और रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन द्वारा इसे सकारात्मक परिणाम के रूप में देखा गया था। शिखर सम्मेलन के दौरान दोनों देशों के बीच आर्थिक क्षेत्र में सहयोग को और बढ़ावा देने के लिए प्रथम भारत–रूस रणनीतिक आर्थिक वार्ता आयोजित किया जाना सक्रियता का एक बिंदु था।

Keywords *: विशिष्ट, विशेषाधिकार, साझेदारी, रणनीतिक, सकारात्मक, शिखर सम्मेलन।*

परिचय

वार्षिक शिखर सम्मेलन के तुरंत बाद प्रथम भारत–रूस रणनीतिक आर्थिक वार्ता (IRSED) का आयोजन हुआ। IRSED का आयोजन सेंट पीटर्सबर्ग में 25–26 नवंबर 2018 को हुआ था।

वार्ता में भारत और रूस का प्रतिनिधित्व क्रमशः नेशनल इंस्टीट्यूशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया (NITI) आयोग्रांड मिनिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक्स डेवलपमेंट ऑफ दि रसियन फाडरेशन द्वारा किया था। जिन प्रमुख क्षेत्रों पर चर्चा की गई थी और जो संयुक्त वक्तव्य में उल्लिखित थे; वे इस प्रकार हैः

- परिवहन आधारभूत संरचना और प्रौद्योगिकियों का विकास
- कृषि और कृषि प्रसंस्करण क्षेत्रों का विकास
- लघु और मध्यम व्यापार सहायता
- डिजिटल परिवर्तन और सीमांत प्रौद्योगिकियां
- औद्योगिक सहयोग और व्यापार

IRSED सहित भारत और रूस के बीच 2018 की वार्षिक शिखर बैठक के बाद से दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंध काफी बढ़ गए हैं।

यह शोधपत्र आर्थिक वार्ता के दौरान चर्चा के रूप में पांच प्रमुख क्षेत्रों पर चर्चा करता है। शोधपत्र के लिए विश्लेषण का प्राथमिक स्रोत IRSED के परिणामों के बाद संयुक्त बयान है। शोधपत्र दोनों देशों के बीच संबंधों को और विकसित करने के लिए कुछ सुझाव देता है।

परिवहन संबंधी आधारभूत संरचना और प्रौद्योगिकियों का विकास– इस क्षेत्र में दोनों पक्ष INSTC ढांचे में जहाजी माल के गमनागमन की निगरानी के लिए डिजिटल दस्तावेजीकरण और इसके अबाधित और सुरक्षित सीमा पार जाने के लिए उपग्रह प्रौद्योगिकियों की एक प्रणाली को विकसित करने पर सहमत हुए। इस साल एक रूसी कंपनी, RT–इंवेस्ट ट्रांसपोर्ट सिस्टम (RTITS) ने ग्लोनास के तहत एक टोल–आधारित उपग्रह नेविगेशन प्रणाली की शुरुआत के लिए निविदा जीती। एक अन्य कंपनी, प्लैटन ने नई दिल्ली–मुंबई राजमार्ग पर ग्लोनास पर आधारित किराया भुगतान प्रणाली की शुरूआत की है। इसके संचालन के माध्यम से प्रति वर्ष कम से कम 2–3 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक का राजस्व प्राप्त होने की उम्मीद है। यह रकम का एक बड़ा हिस्सा है और अगर यह सफल रहा तो इस प्रणाली को अंतरराष्ट्रीय उत्तर–दक्षिण परिवहन गलियारे (INSTC) और चाबहार पोर्ट के अन्य सदस्य देशों को साथ लेकर भी सोचा जा सकता है।

कृषि और कृषि–प्रसंस्करण क्षेत्रों का विकास– आर्थिक वार्ता के दूसरे प्रमुख क्षेत्र में, दोनों पक्षों ने पाया कि कृषि विश्वविद्यालयों में नामांकित छात्रों की संख्या में कमी आई है। इस पर ध्यान देने के लिए, वे छात्रों के आदान–प्रदान और कृषि क्षेत्र में उच्च योग्य कर्मियों, संयुक्त परियोजनाओं के कार्यान्वयन और संयुक्त अनुसंधान के क्षेत्र में सहयोग को मजबूत करने पर सहमत हुए।

इन प्रस्तावों के अलावा, हालांकि इस बात पर भी सहमति बनी कि कैरियर के विकास के संदर्भ में इस क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण ब्याज की कमी के विषय पर ध्यान देने के तरीकों के अलावा, इस पेशे को अपनाने के लिए लोगों को आकर्षित करने की भी आवश्यकता होगी।

भारत और रूस को मिट्टी के ह्रास और भूजल स्तर में कमी पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है; क्योंकि सहयोग और अनुसंधान के क्षेत्र ये दोनों महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं, जो दोनों देशों के साथ–साथ क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर खाद्य और जल सुरक्षा के मुद्दों से भी जुड़ा हो सकता है।

भारत और रूस ने अपने व्यापार की मात्रा बढ़ाने के लिए ब्यूटाइल रबड़ संयंत्रों पर ध्यान केंद्रित किया है। 2017 में, एक ब्यूटाइल रबर संयंत्र जामनगर में स्थापित किया गया था। यह 2019 के मध्य तक पूरी तरह कार्यात्मक होने की उम्मीद है। ब्यूटिल रबर प्लांट के उत्पादन से होने वाली अनुमानित पूंजी 2.3 बिलियन अमेरिकी डॉलर है। इससे दोनों देशों के बीच व्यापार की मात्रा को बढ़ाने में मदद मिलेगी।

लघु और मध्यम व्यापार समर्थन

भारत और रूस का ध्यान केंद्रित करने का एक और क्षेत्र है लघु और मध्यम व्यापार समर्थन। फरवरी 2019 को वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार, रूसी संघ के उद्योग और व्यापार मंत्रालय के अधीन रूसी निर्यात केंद्र और भारतीय उद्योग परिसंघ (CII) ने लघु और मध्यम उद्यमों (SMEs) के बीच बातचीत पर रूस–भारत फोरम का आयोजन किया। डिजिटल प्रौद्योगिकियों, अपशिष्ट प्रबंधन, स्वास्थ्य देखभाल, फार्मास्यूटिकल्स और जैव प्रौद्योगिकी और खाद्य और कृषि पर ध्यान केंद्रित करने के अलावा फोरम ने रूस के सहयोग से नवाचार, पैमाने और विशेषज्ञता के लिए काम करते हुए अत्याधुनिक तकनीक विकसित करने में भारतीय SMEs और अन्य निजी क्षेत्र के उद्योग के लिए अवसर पैदा करने पर भी चर्चा की।

आवश्यक तेल के लिए कम लागत वाली मोबाइल वितरण इकाई (बिजली की कमी वाले दूर–दराज के स्थानों में इसका इस्तेमाल किया जा सकता है) और ड्रिप सिंचाई के लिए मल्टी–कैविटी

मोल्ड तंत्र (इष्टतम जल संसाधन के उपयोग के लिए) जैसे भारत के अभिनव विचार रूस के सुदूर पूर्व और साइबेरिया के अविकसित क्षेत्र में सहयोग के क्षेत्र हो सकते हैं।

डिजिटल रूपांतरण और सीमांत प्रौद्योगिकी– ब्लॉक चेन, प्रौद्योगिकियों, वित्तीय प्रौद्योगिकियों और क्वांटम क्रिप्टोग्राफी के अलावा आर्टिफिसियल इंटेलिजेंस फोकस का एक और क्षेत्र है। दोनों देशों के बीच (AI) और औद्योगिक इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IIoT) के क्षेत्र में सहयोग करने के लिए बातचीत चल रही है। रूस का मानना है कि दोनों देश क्रेता–विक्रेता संबंध से परे जा सकते हैं और संयुक्त रूप से सर्वोत्तम प्रथाओं, ज्ञान और नवाचार को साझा करेंगे; और तीसरे देशों में भी एक साथ मिल कर काम कर सकते हैं। वे कंप्यूटर विजन और डीप लर्निंग संचालित समाधानों पर ध्यान केंद्रित करने की कोशिश कर रहे हैं। दरअसल, भारत–रूस परिवहन क्षेत्र में AI के अनुप्रयोग का उपयोग करने के बारे में भी सोच सकते हैं, जिसका उद्देश्य बढ़ती चली जा रही यात्रा मांग, कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) उत्सर्जन, सुरक्षा चिंताओं और पर्यावरण संबंधी दुर्दशा की चुनौतियों पर काबू पाने के लिए हो सकता है।

यह आर्थिक वार्ता के दौरान चर्चा में सहयोग के पांच प्रमुख क्षेत्रों के साथ ट्रांसपोर्ट इंफ्रास्ट्रक्चर एंड टेक्नोलॉजी के विकास पर भी लागू हो सकता है। परिवहन क्षेत्र में AI के आवेदन से दोनों देशों को वैश्विक जलवायु परिवर्तन से लड़ने में उनके योगदान में मदद मिलेगी। ई–गवर्नेंस भी सहयोग का एक अन्य क्षेत्र हो सकता है।

औद्योगिक सहयोग और व्यापार

अप्रैल 2019 को बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE) और इंडिया इंटरनेशनल एक्सचेंज (IFSC) लिमिटेड (India INX) ने मॉस्को एक्सचेंज (MOEX) के साथ एक समझौता ज्ञापन (MoU) पर हस्ताक्षर किए। MoU से निवेशकों और कंपनियों को एक–दूसरे के एक्सचेंज मार्केट में आपस में जुड़ने में मदद मिलने की उम्मीद है। यह भी माना जाता है कि यौगिक उत्पादों, एक्सचेंज ट्रेडेड फंड्स (ईटीएफ), दोहरी लिस्टिंग और निश्चित आय उत्पाद सहयोग की क्रॉस–लिस्टिंग में एक्सचेंज को आगे बढ़ाने की संभावना तलाशने के लिए एक्सचेंज कंपनियां एक साथ काम करेंगी। इसके अलावा, रूस ने भारत को तेल, खनिज, फार्मास्यूटिकल्स, पेपर उद्योग और लॉजिस्टिक्स के क्षेत्र में सुदूर पूर्व में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया है। रूस ने अक्टूबर 2018 में 'सिंगल विंडो सर्विस' शुरू की है। यह सेवा रूस में भारतीय कंपनियों के संचालन की सुविधा के लिए है। इसके अलावा रूस ने भारत को तेल, खनिज, फार्मास्यूटिकल्स, पेपर उद्योग और लॉजिस्टिक्स के क्षेत्र में सुदूर पूर्व में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया है। रूस ने अक्टूबर 2018 में 'सिंगल विंडो सर्विस' शुरू की है। यह सेवा रूस में भारतीय कंपनियों के संचालन की सुविधा के लिए है। भाषा अवरोध के मामले में सिंगल विंडो सेवा आसानी से SMEs को एक–दूसरे के बाजारों में निवेश में मदद कर सकती है।

निष्कर्ष

2017 में भारत और रूस के बीच वार्षिक व्यापार 10.17 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। जैसा कि 2018 के संयुक्त वक्तव्य में कहा गया है रक्षा और ऊर्जा के साथ कृषि, धातु विज्ञान, नागरिक उड्डयन, बुनियादी ढांचे, परिवहन और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी और अंतरिक्ष आदि जैसे सहयोग के पारंपरिक क्षेत्रों में और सहयोग के नए क्षेत्रों में 2025 तक 30 बिलियन अमेरिकी डॉलर के इस महत्वाकांक्षी व्यापार लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रति आश्वस्त हैं। इसे प्राप्त करना तब तक प्राप्त करने के लिए एक चुनौतीपूर्ण लक्ष्य होगा जब तक कि व्यापार की नई वस्तुओं का तेजी से विस्तार नहीं होता है और व्यक्तिगत तथा कृषि मूल्य आधारित श्रृंखलाओं को विकसित करने के लिए केंद्रित प्रयास नहीं किया जाता है।

पहल 'इंवेस्ट इंडिया' कई रूसी परियोजनाओं (जैसे मिनी हाइड्रो प्रोजेक्ट्स के लिए रोस्टोम, सिस्टेमा एशिया फंड, ब्यूटाइल रबर प्लांट आदि पर रिलायंस सिबुर प्रोजेक्ट आदि) के साथ एक आशाजनक पहल है जो या तो प्रक्रिया के तहत है या जिन पर चर्चा चल रही है।

हीरे के क्षेत्र में भारत और रूस सहयोग कर रहे हैं। रूसी कंपनी अलरोसा ने मुंबई में बिक्री, विपणन और उससे जुड़ी परियोजनाओं का समर्थन किया है। इसने 2018 में मुंबई में एक कार्यालय खोला। इस बीच भारत इस क्षेत्र में विशेष रूप से व्लादिवोस्तोक के पास याकुतिया में निवेश कर रहा है। इसके अलावा भारत साइबेरियाई सोने की खान में निवेश कर रहा है। इसके अलावा भारत साइबेरियाई सोने की खान में निवेश कर रहा है। क्लाईचेव्स्कॉय गोल्ड डिपो में नई दिल्ली के निवेश का अनुमान 65 मिलियन अमेरिकी डॉलर है।

भारत में मिनी–जलविद्युत इकाइयों में निवेश पर भारत और रूस के बीच वार्ता हुई। इसके अलावा 2016 में दोनों पक्षों के वैज्ञानिकों ने ऑक्साइड सामग्री के विकास के माध्यम से नए ऊर्जा स्रोतों, अर्थात् हाइड्रोजन ईंधन कोशिकाओं को विकसित करने के लिए हाथ मिलाया। यह एक वैकल्पिक ऊर्जा उद्योग होगा।

भारत और रूस ग्रीन कॉरिडोर परियोजना के भी जल्द शुरू होने की उम्मीद कर रहे हैं। इस परियोजना का उद्देश्य भारत और रूस के बीच ले जाए जाने वाले सामानों के संबंध में सीमा शुल्क संचालन को आसान बनाना है। इनके अलावा प्छैज्ब (अंतर्राष्ट्रीय उत्तर दक्षिण परिवहन गलियारा) धीरे–धीरे लेकिन तेजी से उत्साह प्राप्त कर रहा है। एस्ट्रा–एस्ट्रा लाइन, जो INSTC का एक अनुभाग है, इस वर्ष मार्च से काम करने लगी है। फरवरी 2019 में भारत और रूस ने INSTC पर रसद सेवाएं प्रदान करने के लिए एक समझौता ज्ञापन (MoU) पर हस्ताक्षर किया। अंतरराष्ट्रीय परिवहन गलियारों का उपयोग करके भारत और रूस में संयुक्त रसद परियोजनाओं को विकसित करने के लिएबातचीत चल रही है, जिसमें INSTC भी शामिल है। हालांकि ईरान–अमेरिका के तनाव बढ़ने और तेहरान पर अमेरिका द्वारा प्रतिबंधों के फिर से लागू करने से भारत पर भी प्रभाव पड़ेगा। इसके अलावा अमेरिका का रूस के साथ ऐसा अनुकूल संबंध नहीं है, जो INSTC का भी सदस्य है। नई दिल्ली कैसे इन सभी देशों के माध्यम से युद्धाभ्यास का प्रबंधन करेगा, यह एक चुनौती होगा।

भारत के लिए, INSTC महत्वपूर्ण हैय क्योंकि यह न केवल यात्रा और कार्गो लागत में कटौती करता है; बल्कि यूरेशियन इकोनॉमिक यूनियन (EaEu), मध्य एशियाई संघ (CAU) और यूरोपीय संघ (EU) जैसे क्षेत्रीय व्यापार ब्लॉक के साथ जुड़ने में भी मदद करता है। भारत और रूस EaEU पर FTA के लिए बातचीत करने की कोशिश कर रहे हैं। भारत और EaEU के बीच व्यापार कम है। 2016 में यह 7.6 बिलियन डॉलर से 2012 में 7.3 बिलियन डॉलर रहा। नई दिल्ली और रूस सहित सदस्य राष्ट्रों के बीच द्विपक्षीय व्यापार भारत के साथ चीन और अमेरिका (क्रमशः 84.4 बिलियन अमेरिकी डॉलर और 87.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर) की तुलना में अधिक नहीं है।

भारत और रूस द्वारा सामना की गई मौजूदा वास्तविकता की खाई को पाटने के लिए दोनों सरकारें व्यापार कारोबार बढ़ाने के तरीके और रास्ते खोजने की कोशिश कर रही हैं। ऊर्जा, हीरा, ब्यूटिल रबर प्लांट, कृषि, स्वास्थ्य क्षेत्र, फार्मास्युटिकल, आईटी, शिक्षा आदि के क्षेत्र में उनके सहयोग के अलावा अन्य ऐसे क्षेत्र हैं, जहां दोनों देश सहयोग कर सकते हैं।

दोनों देशों के पास विज्ञान और प्रौद्योगिकी विशेषज्ञता को देखते हुए, वे जलवायु परिवर्तन और सुदूर पूर्व में लकड़ी की सुरक्षा जैसे पर्यावरण संबंधी स्थिरता को बनाए रखने पर अनुसंधान और विकास परियोजनाओं को एक साथ कर सकते हैं। नीली अर्थव्यवस्था एक आकर्षक उद्यम हो सकती हैय क्योंकि

समुद्री जीवन और वनस्पतियों की सुरक्षा दोनों देशों के लिए अधिक लाभ लेकर आएगी, जिसमें अंतरराष्ट्रीय समुदाय में उनके पद भी शामिल हैं। भारत और रूस स्थायी नीली अर्थव्यवस्था पर भारत–प्रशांत क्षेत्रों के देशों के साथ सहयोग कर सकते हैं। खाद्य और जल सुरक्षा संबंधी चुनौतियां सहकारी अनुसंधान और विकास के क्षेत्र हो सकते हैं तथा द्विपक्षीय, क्षेत्रीय और वैश्विक जैसे सभी स्तरों पर समाधान ला सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. V.N. Chopra : India Russia Relations Prospect, Problem and Russia Today.
2. Sputnik : Russia backs India as Possible UN Security Council Permanent Number, 2011.
3. Indrani Bagchi : India in top 5 Friends of Rusia, 2018.
4. W. John. Strong : Rusia's Plan for an Invasion of India in 1801, 1965.
5. Vojtech Mastny : The Soviet Union's Partnership with India, "Journal of Cold War Studies".
6. Rejaul Laskar : Rajiv Gandhi's Diplomacy, History Significance and Contemporary Relevance.
7. Rahul Bedi : India to Sign New 10 years Defence Deal with Russia.
8. बी0 एल0 फाड़ीया : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।
9. रुमकी बासु : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अवधारणाएं सिद्वांत तथा मुद्दे।
10. डॉ0 रश्मि शर्मा : भारतीय विदेश नीति।
11. डॉ0 एस0 सी0 सिंघल : भारत की विदेश नीति।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

A study of historical and cultural prospective In An Antique Land by Amitav Ghosh

Dr. Sanjay Kumar Sharma

In An Antique Land by Amitav Ghosh is a demi - oriental tale, an epistolary fiction in Indian writing in English. In an Antique Land, a tour de force, is the first book of its kind, written by an Indian writer. Ghosh makes comparative study of the two oldest cultures and civilizations of the two important continents Asia and Africa, that of India and Egypt. Unlike other historians, he researches on an Indian slave Bomma and his master Abraham Ben Yiju, playing a flourishing overseas trade in Mangalore, in the twelfth century. It is just a small incident on all accounts when Ghosh chance to discover in to letter written by a merchant of Aden to Ben Yiju, a Tunisan, during his research work in Oxford. This latter seems "to open a trap-door into a vast network of foxholes whose real life continues uninterrupted". He knew nothing then about the slave of MSH. 6 except that he had given me a right to be there a sense of entitlement". A "sense of entitlement" led Ghosh to go to Egypt and USA, following trades left by a Hebrew journal" Zion, letters of medieval Jewish Traders" translated and edited by SD. Goitein of Princeton University. Ben Yiju's "Origin lay in a region that was known as Ifriya in the Arabic-speaking world of the middle ages-an area centered around what is now Tunisia". Following the migration of traders to Egypt, Ben Yiju also migrated to Egypt, joined-the synagogue of the Palestinians, the building destined to last until a good seven hundred years after Ben Yiju's lifetime. "A man of many accomplishments, a distinguished calligrapher scholar and poet." Ben Yiju, a born trader migrated from Egypt to Aden, the port that at astride the most important sea routes connecting the middle east and the Indian Ocean. His paper shows that his acquaintance with a wealthy and powerful trader madmun - ibn al-Hasan ibn Bundar proves to be a turning point in the life of Ben Yiju. It is impossible that Ben Yiju was introduced to Madmun by latter of introduction by his friends and relatives.

In An Antique Land does not simply display the author's intellectual capability or epic sweep. What one discovers is a very minute and shrewd observation of human nature. Therefore , he deals with a unit small enough to manage - a microcosm, whether be it at Lataifa or Nashawy or Bangalore. The book has unadulterated, straight- forward impression of the people the writer came in contact with and the circumstances of the lives of the people during the course of this research, He paints the lively portrait of Abraham Ben Yiju and Bomma on the one hand and on the other of Abu Au, Ustaz Sabry, Sheikh Mussa, Nabeel and Zaghloui. All these characters burgeoned his wanderlust. Travel gave him a sense of freedom and leisure. Ghosh is thrilled to meet people and visit places. He could also get genuine

picture of traditional Egypt by living among the villagers. He could get to know about their aspirations and setbacks, their sense of belongingness to their soil and also the young generations' uprootedness because of their search for new pastures green.

Dhaka has been Tha'mma's place of birth but her nationality is India. As a young girl, she had thought of fighting for freedom in East Bengal. But those very same people or whom she had been willing to lay down her life are enemies now in 1964. Feelings of nationalism had after all motivated the fight against the British in Khulna. But in 1964, the group of Indians travelling in the embassy car is the enemies to be hunted down and killed. However, Tha'mma's disillusionment increases when she has to mention her birthplace on the passport-from during her visit to Dhaka. Home ought to be the place whrer one was born and brought up, sealed by an emotional bond, where one can claim one's right without a thought and without any hesitation. And if there was a basic confusion on this score-about the very roots of one's origin-an individual's identity would be in question. Leaving Dhaka during the partition had obviously'meant severing old roots and groping for a new kind of stability and identity. Therefore years later, on her visit to Dhaka, she is distressed to write 'Dhaka' as her place of birth: "She liked things to be neat and in place and at that moment she had not been able to quite understand how her place of birth had come to be so messily at odds with her nationality."

In An Antique Land which is a well-known historical work of Amitav Ghosh is a milestone in the field of historical novels in Indian writing in English. In this novel Amitav Ghosh has used the mode of the autobiographical traveller's tale to study the past thousand years Asia and Africa. Naturally the scope of this book is much larger than the former one in both chronological and geographical distribution. But one thing becomes very clear that in both these books, Ohosh's aim is to bring out the unity of human experience notwithstanding the diversity of context. World War II was generated by militant nationalism and Ghosh explores the significance of war at two different levels- personal and human, In The shadow Lines the memory of the story teller shuttles back and forth in time and on his first visit to London he is continuously hunted by Tridib's account 'of his first visit to London at 44, Lymington Road where they stayed with the prices on the eve of the War in 1939. Tridib's father Saheb, as he was jocularly referred to by his elder sister-in law, the storyteller's grandmother took some photographs of Alan Tresawsen, Mrs. Price's brother and his friends. The storyteller recounts in detail what Tridib told him about one of those pictures. It focused on the tragedy of war as well as on exhilaration- a sense of compassion and fellow - feeling brought about by the shadow of impending death. This sense of exhilaration cut across national borders and both in England and Germany that was the defense mechanism that people developed to "combat the sense of doom, In that picture besides Mayadebi, Mrs. Price and her husband Snipe, there are four, others- three young men and a young woman of whom three would be dead within two years. The specter of war looms large on their lives and in the words of Ghosh:

"In the foreground of one of those pictures, there is a large, shallow pit.. Snipe has been digging that pit for the last two weeks in the back garden. This pit is intended to be the

foundation of an Anderson air raid shelter, his second line of defense against the expected German bombs.

With the war hovering on the horizon they knew death was 'the most real of their realities'. Even before the start of the war they Knew that none and nothing of their world would survive, Books, films and photographs are part of history to be studied, analyzed and set aside but nobody can know the feeling of young, intelligent people who knew they were condemned to death simply because some people have got their priorities wrong. A couple of pages later there is a vivid description of the house where on that fateful night or' September 1940 Dan and Alan died in bombardment. This is a tragedy not only because they were casualties of ruthless nationalism but also because, they were people. 'Who raised their voices against war mongering? ha, who was a member of the socialist movement in Britain, felt proud of being a part of history. She thought of Alan and his friends who were witness to the war and fascism as much happy as she was in her political activism. But she never knew, that even a small event like a riot did have as much historical importance as war, as all were results of his politics of hatred, though perhaps on different scales and each provided insight into the personal and human aspects of political violence.

If the major themes in The Shadow Lines were nationalism and political freedom, In An Antique Land one of the predominant themes is religion-its meaning and practice, the irony inherent in religious traditions their universality and inter-tradition conflicts that have shaped much of human history, In the wedding-episode Amitav was aware of the punishment of being an Indian: But to be part of India which was been a melting pot for centuries has its own rewards, the scholar-protagonist of this book gathers parallels 'in history which reveal the unifying elements in various religious traditions and India is a potent source.

'Nashawy' section, there is the story of Sidi Abukanaka, the holy man, whose grave did not yield to the spade of the government gngineers who' were digging a canal right through the village cemetery. The villagers protested 'but to no avail, Much to their astonishment and delight the tumb of the much revered holy man resisted every effort on the government to proceed along the charted line.

References

1. Ghosh Amitav: The Shadow Lines, Ravi Dayal Publishers,New Delhi,p.60.

2. Ibid.,p.60.

3. Ibid.,p,190.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारत में इतिहास दर्शन का विकास

डॉ0 राजेश कुमार सिंह

इतिहास–दर्शन एक प्रकार की ऐतिहासिक सोच है जिसमें इतिहासकार स्वयं अपने विचार व्यक्त करता है बजाय इसके की प्राचीन पुस्तकों में वर्णित कहानियों की पुनरावृत्ति करें। इतिहास–दर्शन को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया गया है जो व्यक्ति, स्थान, युग और घटना से सम्बन्धित है। इनके सभी अंगों में व्यक्ति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है एवं शेष तीनों का सम्बन्ध भी व्यक्ति से है।

इतिहास का उद्देश्य अतीत की यथार्थता को प्रकट करना, अतीत का उसी रूप में पुनर्निर्माण करना जैसा वह था तथा अतीत के लिए ऐसे दर्पण की भाँति कार्य करना कि उसका सत्य प्रतिबिम्बित हो सके। अपने आप में कोई भी तथ्य वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता, बल्कि तथ्य को विषय से पृथक् कर वस्तुन्ष्ठिता थोपी जाती है। इतिहास लेखक एक सामाजिक प्रक्रिया है, उसका लगाव किसी समाज, जाति, धर्म और वातावरण से होता है। इस कारण वह अपने लेख में किसी अवधारणा, दृष्टिकोण, संस्कृति, व्यक्तिगत ईर्ष्या, भ्रांति तथा द्वेष का शिकार हो सकता है। इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी इस तथ्य से भलीभाँति परिचित है कि ''इतिहासकार तथ्यों के चयन में अपने राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक विचारों से प्रभावित रहता है। प्रो० वाल्श की स्पष्ट धारणा यह है कि ''इतिहास का अध्ययन विशेष दृष्टिकोण से करना चाहिए।''

चार्ल्स ओमन के अनुसार इतिहास में तथ्यों को प्रधानता देकर उसके वस्तुनिष्ठ स्वरूप को सुरक्षित रखा जा सकता है। लुई बोनापार्ट की 18वीं बूमेर की उद्धृत उक्ति इस रहस्य पर प्रकाश डालती है कि ''मानव अपना इतिहास स्वयं बनाता है, पर अपने मनचाहे ढ़ंग से नहीं।''

किसी विषय के गूढ़ तत्वों के आत्मप्रकाशन को दर्शन कहते हैं। इतिहासकार तथ्यों में से सत्य की खोज करता है। उसका उद्देश्य है उस सत्य का अन्वेषण द्वारा समसामयिक समाज के लिए इतिहास को कल्याणकारी बनाना। इसी कारण से इतिहास–दर्शन को 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' कहा गया है। ''वाल्श के अनुसार इतिहास के दर्शन में दो प्रकार की दार्शनिक समस्याएँ जन्म लेती हैं – प्रथम परिकल्पनात्मक तथा दूसरी विश्लेषणात्मक दोनों का लक्ष्य इतिहास–दर्शन के माध्यम से सत्य की खोज एवं विवेचना करना है। इसी को इतिहास–दर्शन कहा जा सकता है।''

इतिहास क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में ई०एच० कार का कहना है कि ''इतिहास इतिहासकार और तथ्यों की क्रिया–प्रतिक्रिया की एक अनवरत् प्रक्रिया है, अतीत और वर्तमान के बीच एक अंतहीन संवाद है।'' रांके का विश्वास था कि ''अगर इतिहासकार तथ्यों की देखभाल कर सके तो इतिहास का अर्थ भगवत् कृपा पर छोड़ दिया जाना चाहिए।'' इतिहासकार तथा इतिहास के तथ्य एक–दूसरे के लिए महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार बिना तथ्य के इतिहासकार आधार विहीन है उसी प्रकार इतिहासकार के बिना तथ्य महत्त्वहीन और निरर्थ है। ''इसीलिए कुल मिलाकर साक्ष्य की आलोचना समरूप और भिन्न रूप एक और अनेक के सहजबोध से लब्ध दर्शन पर आधारित होता है।''

इतिहास की अवधारणा और दर्शन के इतिहास को प्रारम्भ करने का श्रेय यूनानी इतिहासकारों को जाता है। ऐतिहासिक रचनाओं में हेरोडोटस का योगदान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। उसे इतिहास का जनक माना जाता है। हेरोडोटस की रचनाओं का गम्भीर अध्ययन करने के बाद यह पता चलता है कि उसके लेखन में इतिहास–दर्शन का समावेश था। हेरोडोटस इतिहास की दैवी योजना से प्रभावित था जिसे उसने अपनी रचनाओं में दर्शाया है।

कवि और साहित्यकार की भांति इतिहासकार भी अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह समसामयिक समाज तथा अपने व्यक्गित दृष्टिकोण से अतीत का निरूपण करता है। इसलिये क्रोचो ने सभी इतिहास को समसामयिक कहा है।'' इतिहासकार की ऐतिहासिक व्याख्या में अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का वर्णन होता है। अतीत का अध्ययन समाज के लिए अत्यंत उपयोगी है।

प्राचीन भारतीय महर्षियों तथा मनीषियों ने वेदों, पुराणों तथा महाकाव्यों के रचना के समय भावी दायित्व का बोध किया था। दायित्व बोध का अभिप्राय वर्तमान और भविष्य के विषय में चिंतन होता है। प्रत्येक इतिहासकार व्याख्या के माध्यम से अतीत की संपदा और परम्पराओं को भविष्य के गर्भ में रखकर सुरक्षित करता है। भविष्य में रूचि के कारण ही इतिहासकार अतीत से प्रेम करता है। कालिंगवुड ने सभी इतिहास को विचारों का इतिहास कहा है।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में भारतीय इतिहासकारों की अपनी लेख शैली थी तथा उन्होंने अपने ही देश–काल के लिए इतिहास लिखे थे। भारत में इतिहास लेखक में अध्यात्मवाद तथा धर्म भी निहित था। ''पश्चिम के इतिहासकारों ने भौतिक जगत को आधार बनाकर सामाजिक–राजनैतिक इतिहास लिखे तथा उसी को अधिक यथार्थ और वैज्ञानिक माना, जबकि हमारे प्राचीन इतिहास को काल्पनिक और अनैतिहासिक रचना इंगित किया। हमने उनकी बात को कहीं स्वीकार किया तो कहीं पर अस्वीकार किया। जहाँ हमने स्वीकार किया वहाँ उनका अनुकरण करते हुये वैसा ही वैज्ञानिक आधुनिक इतिहास लिखने का प्रयास किया और जहाँ अस्वीकार किया वहाँ अपनी प्राचीन इतिहास लेखन शैली को उचित एवं सर्वथा ऐतिहासिक माना। इसी मान्यता के अन्तर्गत हमने भीष्म शुक्र, बाणभट्ट, विल्हण, जयानक, कल्हन जैसे प्राचीन लेखकों को भी इतिहासकार माना। प्राचीन भारतीय को इतिहासकार की श्रेणी में खड़ा करने पर लोग आपत्ति तो करते हैं, किन्तु मेरे समझ में ऐसा किया जाना न्यायोचित नहीं हो सकता, क्योंकि ये प्राचीन इतिहासकार अपनी सामयिक विशेषताओं के आधार पर निश्चय ही एक इतिहासकार रहे हैं।

धार्मिक दर्शन के रूप में प्राचीन भारत के विद्वानों ने पर्याप्त साहित्य की रचना की है। धर्म, धार्मिक प्रथाओं, धार्मिक क्रिया, राजधर्म, प्रजाधर्म, वर्णव्यवस्था, समाज धारणा, जाति प्रथा, अर्थ व्यवस्था, राज्य, राजा, मंत्री–परिषद् मित्र, दूत, प्रजा और प्रजा के कर्त्तव्य, राजा–प्रजा, प्रजा के विद्रोह की स्थिति गणतंत्र, शासन, प्रशासन, न्याय व्यवस्था, दंडनीय, नगर–प्रशासन, कर–प्रशासन और अन्तर्राज्य–संबंधों आदि के बारे में प्राचीन विद्वानों ने अपने पुस्तकों में पर्याप्त प्रकाश डाला है तथा विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक दर्शन प्रतिपादित किये है।

प्राचीन भारतीय लेखकों ने अपने इतिहास लेख लिखने पर विशेष बल दिया है। उन लोगों ने सामाजिक जीवन का भी वर्णन किया है, परन्तु उसमें उनका दृष्टिकोण पूरी तरह नैतिकतापूर्ण दिखाई पड़ता है। उन्होंने दृष्टिकोण पूरी तरह नैतिकतापूर्ण दिखाई पड़ता है। उन्होंने अच्छाई और बुराई के मध्य अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उन्होंने लौकिक के स्थान पारलौकिक जीवन पर अधिक बल दिया है और लोगों को श्रेष्ठ कार्य करने की प्रेरणा दी है। उन्होंने भौतिकवाद, व्यापार, वाणिज्य और आर्थिक जीवन के संदर्भ में अत्यंत अल्प वर्ण किया है। उनकी रचनाओं में सत्य और

काल्पनिक घटनाओं को इस प्रकार नियोजित कर दिया गया है कि दोनों के मध्य अन्तर कर पाना अत्यंत कठिन है।''

इतिहास दर्शन के मुख्य तथ्य आलोचनात्मक एवं विश्लेषात्मक समीक्षा है जो वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित हो लकिन भारतीय इतिहासकारों में आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक गुणों का अभाव था और उन्होंने तथ्यों को स्वीकार कर लिया जिसका वर्णन उनके पूर्वगामी और समकालीन विद्वानों द्वारा किया गया था। उनके द्वारा विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्ततुत नहीं किये गये। समस्त सामग्री दूर–दूर तक फैली हुई थी, जो अभिलेखों और स्तम्भों पर उत्कीर्ण थी लेकिन कोई अन्य प्रतिलिपि उपलब्ध नहीं थी। ऐसी स्थिति में इतिहासकारों ने अपनी कल्पना शक्ति को अधिक महत्व देते हुये अपनी कृतियों को पूर्ण किया जो इतिहास लेखन का एक दोष कहा जा सकता है।''

प्राचीन भारतीय लेखन से संबंधित जो सामग्री उपलब्ध है, उससे यह पूर्णरूपेण प्रदर्शित होता है कि विद्वानों ने आदर्शवाद के सिद्धातों को मान्यता प्रदान की थी और उन आदर्शों का उल्लेख किया जो एक शासक या आदर्श राज्य अथवा आदर्श नागरिक से अपेक्षित है। अपने लेख में उन्होंने शासकों के दायित्व के साथ नागरिकों के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया है तथा शासक माता–पिता तथा गुरू के गुणों पर भी प्रकार डाला है। उन्होंने जीवन की वास्तविकता की ओर ध्यान न देकर आदर्शवाद को अपने लेखन का प्रमुख बिन्दु बनाये रखा।''

यह स्पष्ट है कि भारत के लोगों ने इतिहास की रचना नहीं की किन्तु इतिहास के प्रति उनकी जागरूकता से इंकार नहीं किया जा सकता। इतिहास लेखन की पर्याप्त सामग्री इस काल में उपलब्ध थी। प्रो० हर्डर का मानना है कि आर्यों के युग से आधुनिक काल तक इतिहास लेखक के क्षेत्र में निरन्तरता सदैव बनी रही, परन्तु उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि ''जो कुछ इस समय में प्रकाश में आया, इतिहास लेखक की दृष्टि से भारतीय भाषा में अत्यंत सीमित उपलब्धि कही जा सकती है, परन्तु अज्ञात रूप से पाण्डुलिपियों के रूप में बहुत सी सामग्री इधर–उधर छिपी पड़ी है।''

प्राचीनकाल में कालक्रम के अनुसार, व्यवस्थित लेखन पद्वति के अनुसार राजतरंगिणी को छोड़कर कोई इतिहास नहीं लिखा गया। इसके बावजूद भी यह कहना असंगत होगा कि प्राचीन भारत में इतिहास का मान्यता है कि शुद्ध ऐतिहासिक और साहित्यिक रूप में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है जिसका तात्पर्य प्रकृति, उत्तेजना, शैली और मूल्य से है। प्राचीन भारतीय साहित्य में हिंदूओं के पुराणों, बौद्धों के जातकों और मस्ती गीतों में सामाजिक परिवर्तन से संबंधित पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। इन ग्रंथों में समाज तथा सामाजिक स्थिति का समुचित ढ़ंग से वर्णन किया गया है। उन्होंने अपने लेखक में सामाजिक बुराईयों की ओर एवं समय के प्रवाह की ओर संकेत दिया है जिसे वाल्टेयर ने अच्छे इतिहास का वास्तविक रूप माना है। पुराणों में सरकार व्यापार, धर्म, शिक्षा, अभिलेखों तथा मुद्राओं का वर्ण है जिन्हें शुद्ध ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। हिंदू शासकों ने भी दरबारी इतिहास लेखकों को संरक्षण प्रदान किया था किन्तु इनके वर्णन का दृष्टिकोण विषयक परक है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के सबसे बड़ी कठिनाई तिथि–निर्धारण की है। ऐतिहासिक घटनायें तिथि परक नहीं है। प्रो0 श्रीनिवास आयंगर ने ठीक ही कहा है कि यदि इतिहास की आंख तिथियाँ हैं तो प्राचीन भारतीय इतिहास को अंधा ही समझना चाहिये।'' निःसन्देह सामाजिक इतिहास तो लिखा गया है कि किन्तु राजनीतिक इतिहास के साथ इसका संबंध जोड़ना कठिन प्रतीत होता है, उदाहरण स्वरूप रामायण और महाभारत और पुराणों में सामाजिक तथ्य तो प्राप्त होते हैं, किन्तु इन तथ्यों की रचना तिथि तथा लेखक का सही पता नहीं है। अतः उन्हें राजनीतिक घटनाओं के साथ जोड़ना उचित नहीं है।

पुराणों, महाकाव्यों, बौद्ध तथा जैन साहित्यों में ऐतिहासिक व्याख्या तथा अवधारणा दृष्टिगोचर होती है लेकिन लेखकों ने इतिहास दर्शन के आधार पर इतिहास लिखा हो ऐसा कुछ दिखाई नहीं पड़ता। साहित्य के बारे में प्रो० नीलीकंठ शास्त्री का कहना है कि ''हिन्दू साहित्य सृष्टि की रचना के आरंभ होता है तथा देवताओं और उनके अवतारों के उपाख्यान और नीति कला से गुजरता है जो इतिहास की अपेक्षा मिथक अधिक है।'' वाणभट्ट का हर्षचरित केवल इतिहास ही नहीं बल्कि साहित्य भी है। इसमें वाण ने हर्ष की जीवन घटनाओं का क्रमबद्ध उल्लेख नहीं किया है तथा हर्ष के समग्र जीवन का वृतान्त भी नहीं है। उसने अन्य साहित्य की तरह इसमें तथा गल्प का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। इसके कथावस्तु में मौखरियों पर आक्रमण है जिसमें मौखरी सम्राट की मृत्यु हो जाती है। दुश्मनों को निकाल बाहर करने के लिए हर्ष सेना के साथ आगे बढ़ता है और अपनी बहन राज्यश्री को बचाता है। वाण ने युद्ध का कोई वितरण नहीं दिया है और हर्ष जब राज्यश्री से मिल जाता है तो कहानी खत्म हो जाती है। इस दृष्टि से वाणभट्ट ने एक ठोस धरातल पर इतिहास का निर्माण नहीं किया है। हर्ष्चरित में राजनैतिक संबंध, युद्ध, दरबारी षड़यंत्र, अन्वेषण, राज्य प्राप्ति, सती–प्रथा, राज्य विस्तार, ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं, किन्तु उन तथ्यों तथा घटनाओं का क्रम नहीं है। जिसको इतिहास दर्शन की श्रेणी में रखा जा सके। इसी प्रकार विलक्षण, जानक आदि में इतिहास दर्शन की झाँकी मिलती है। ऐतिहासिक परम्पराओं की व्याख्या प्राप्त होती है। लेकिन इतिहास की आधुनिक परिभाषा के अनुसार प्राचीन भारतीय विद्वानों को इतिहासकार स्वीकार करना एक कठिन समस्या है। तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर इतिहास दर्शन की कसौआी पर उनके कृतियों को कसना उचित नहीं जान पड़ता।

केवल कल्हण की लेखन शैली में एक ऐसी इतिहास की लेख धारा का प्रमाण मिलता है जो अनेक दृष्टियों से इतिहास की आधुनिक परिभाषा के समीप है तथा जिसे गुणदोष के आधार पर थ्यूसीडाउड्स, पालिवियस अथवा हेरोडोटस जैसे यूनानी इतिहासकारों के सनिक्कट रखना आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होता। रोमिला थापर के शब्दों में 'काश्मीर के 12वीं शताब्दी के इतिहास का संबंध राज्य के प्रसिद्ध इतिहास लेखन से जुड़ा हुआ है। कल्हण की राजतरंगिणी के कारण उसकी गणना भारत के सर्वश्रेष्ठ इतिहासकारों में की जाती है। यह ग्रंथ अत्यंत उच्च कोटि का है जो अपनी अद्वितीय स्पष्टता ओर परिपक्व मानसिकता के आधार पर किये गये विश्लेषण को प्रदर्शित करता है।''

मध्यकालीन इतिहास लेखनः

भारतीय इतिहास लेखन वस्तुतः एक इस्लामी विरासत है। मुसलमान उलेमा तथा इतिहासकारों ने ही इतिहास के प्रति जागरूकता दिखाई एवं दिन–प्रतिदिन की घटानाओं तथा राजनीतिक हलचलों का विस्तुत वर्ण लिखा था। वे किसी भी अमीर उल मोमनीन के सैन्य कारनामों पर गर्व–अनुभव करते थे, जो काफिरों को इस्लाम में धर्मातरित कर 'दारूल हरब' को 'दारूल इस्लाम' में परिवर्तित करने का प्रयास करता था। वे इसी दुनिया के व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी भौतिक संपत्तियों को महत्ता दी और अपने सांसारिक लाभों को बढ़ाने कठोर प्रयत्न किया। उनकी इस सहज वृति ने ही उन्हें अपने भूत तथा वर्तमान के घटनाक्रमों को लिपिबद्ध करने में सहायता दी।

इस्लामी जगत के वंशानुगत, क्षेत्रीय या सामान्य इतिहासों पर विद्वानों ने पुस्तकें लिखी। इतिहासकारों ने बड़े एवं छोटे लेागों के जीवन संबंधी बातों का वर्णन किया एवं ऐतिहासिक उपाख्यानों तथा निजी अथवा सार्वजनिक घटनाक्रमों का विवरण दिया। उन्होंने केवल साहित्यिक प्रसिद्धि पुरस्कार या अपने संरक्षिकों के मानसिक उन्नति के लिये ही नहीं, अपितु अपनी बौद्धिक क्षुधा एवं अपने अवलोकनों एवं अनुभवों को लिखने की अपनी आंतरिक ललक को संतुष्टि करने के लिये भी लिखा। शासकों तथा अमीरों में शिक्षित लोगों ने भी अपनी कृतियाँ निजी दैनिकी में लिखी। इस प्रकार सल्तनत

काल में इतिहास लेखन अपने पूर्ण रूप में उदित हुआ। इस काल ने बड़ी संख्या में पेशेवर इतिहासकारों, इतिहास लेखकों एवं विद्वानों को जन्म दिया, जो भावी पीढ़ियों के लिए ऐतिहासिक साहित्य का एक विपुल भंडार छोड़ गये।

प्रारंभिक मध्याकालीन भारत के अधिकांश इतिहास लेखक विदेशी वंशावली के थे जिनकी प्राथमिक रूचि अपने सैन्य नेताओं के सैनिक एवं राजनीतिक कार्यों तथा दिल्ली के सुल्तान या अन्य क्षेत्रीय राज्यों के दरबारों के घटनाक्रम को आलेख बद्ध करना था। उन्होंने अधिकांशतः उन्हीं घटनाओं का वर्णन किया जिनका सामान्य जनता से कोई संबंध नहीं था। देश की सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर शायद ही उन्होंने ध्यान दिया होगा। वे कुरा और पैगबर मुहम्मद पर अधिक जोर देते थे। वे वैज्ञनिक इतिहासकार नहीं थे, अतः उनकी कृतियों को सावधानी एवं ध्यान से देखा जाना चाहिये।

सल्तनतकालीन इतिहास लेखन में कुछ कमियाँ रह गयी। एक प्रसिद्ध विद्वान महीबुल हसन कहते हैं कि ''मध्ययुगीन इतिहासकारों ने अपने उद्योग को गंभीरता से लिया और इतिहास के उच्च विचारों को बनाये रखा। उदाहरण के तोर पर बरनी इतिहास और इल्म–उल–हदीस को समतुल्य मानता था और विश्वास करता था कि इतिहासकार को सत्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिये और अतिशयोक्तपूर्ण तथा शब्दों की वृथा भाषा से परहेज रखना चाहिये। लेकिन दुर्भाग्यवश अधिकांश मध्यकालीन इतिहासकार दरबार से संबंध रखते थे, उन्होंने केवल वह नहीं लिखा जो उन्हें प्रशंसा के लेखों तथा काव्यों से संतुष्ट भी किया।''

इसके अतिरिक्त सल्तनतकालीन इतिहासकारों ने केवल घटनाओं का उल्लेख किया है और कालक्रम की उपेक्षा की है। तत्कालीन इतिहासकारों ने अपने स्वामी के भय से पक्षपता रहित वर्णन नहीं किया। उस समय का इतिहास लेखन धर्म से प्रभावित था और इतिहासकार इतिहास को धर्म के अधीनस्थ मानते थे। उन्होंने युद्धों तथा सुल्तानों की जवीन शैली का चित्रण किया है, जन साधारण तथा समाज का चित्रण नहीं किया है। इतिहासकारों के कारण और परिणामों पर घटनाओं का उल्ल्ेख किया है। उन्होंने साक्ष्यों की प्रमाणिकता की ओर ध्यान नहीं दिया है अपितु लोकगीतों, परम्पराओं तथा काल्पनिक घटनाओं को अपने लेखन का आधार बनाया। उनका इतिहास का विशेष क्षेत्र मुस्लिम जगत से है। पी० हार्डी के शब्दों में इतिहास लेखन मानववादी होने की अपेक्षा ईश्वर केन्द्रित अधिक था।'' अतः इतिहास दर्शन का असली स्वरूप उस काल मे इतिहास लेखन में दृष्टिगोचर नहीं होता है।

प्राचीन तथा सल्तनत कालीन इतिहास लेखन से मुगलकालीन लेखन अलग है। मुगलकालीन लेखन में एक स्पष्ट परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। दृष्टिकोण, विषय–वस्तु विषय निरूपण, तकनीक सभी में कुछ न कुछ परिवर्तन दिखाई देता है। मुगलकालीन इतिहास लेखन अधिक वस्तुपरक तथा परिवक्व था। वास्तव में मुगलकालीन लेखकों ने इतिहास के राजनीतिक पहलू पर विशेष ध्यान दिया, आर्थिक पहलू अपने ढ़ंग से व्यक्गिगत तौर पर थे। यह भी सत्य है कि समकालीन लेखकों ने कोई भी इतिहास दर्शन प्रतिपादित नहीं किया। उन्होंने इतिहास विचार के किसी नवीन युग की स्थापना नहीं की, जैसा कि काक्टे के सापेक्षवाद, राके ने इतिहासवाद, वाल्टेयर के इतिहास दर्शन के युग का, कारलायल ने रूमानीवाद अथवा स्वच्छन्दवाद के युगा का प्रवेशन किया। लेकिन इस युग के इतिहास लेखन का दृष्टिकोण तथा उपागम सल्तनत काल के विद्वानों से भिन्न था।

मुगलकालीन इतिहास लेखन में परिपक्वता तथा शालीनता दृष्टिगोचर होता है। राजनीतिक तथा सांस्कृतिक लेखन के लिये इस काल में अधिक सामग्री उपलब्ध है। मुगल शासक स्वंय बड़े लेखक थे और उन्होंने अपनी आत्मकथाओं लिखी तथा उन्होंने इतिहासकारों को अपनी जीवनियाँ लिखने के लिए नियुक्त किया। मुगल शासकों के निर्देशन में इतिहास लेखन बहुत अधिक विकसित हुआ। मुगलकालीन

इतिहास लेखन में धर्मनिरपेक्षता दिखाई देता है। संभवतः इतिहास भी इस काल में लिखा गया। बहुत से इतिहासकारों ने शाही दरबार के संरक्षण बिना अपनी कृतियों को पूरा किया। अतः उनके कार्य निष्पक्ष लिखे गये। मुगलकालीन इतिहास लेखन कार्य कारण पर आधारित था। अपनी वृतियों के पूर्ण होने से पूर्व इस काल के इतिहासकारों ने सभी स्त्रोंतो को प्राप्त कर लिया था। मुगलकालीन इतिहासकार अपनी विश्वसनीयता तथा प्रमाणिकता के प्रति अधिक सावधान थे।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि भारत के प्राचीन अथवा मध्यकालीन इतिहास लेखन में हीं न कहीं कुछ त्रुटियाँ थी जिसके कारण पश्चिमी इतिहासकारों ने उस लेखन पद्धति की आलोचना की है तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण से ये अनैतिहासिक कहलाये। भारतीय आधुनिक इतिहासकारों ने उनकी त्रुटियों को ध्यान रखते हुये पाश्चात्य परंपरा का अनुसरण करके जो इतिहास लिखे उनमें पूर्व की बात नहीं थी और यही कारण है कि इनकी प्रशंसा पश्चिमी इतिहासकारों ने किया है और उनको ही असली इतिहासकार माना है। आधुनिक भारत के ये इतिहासकार अनेक है जिन्होंने अपने चिन्तन अध्ययन और विश्लेषण से इतिहास में दर्शन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुये इतिहास लिखा। उनके इतिहास लेखन में कलात्मकता और वैज्ञानिकता के साथ ही सामाजिक–राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सार्थकता भी है। उनके इतिहास लेखन में सर्वाभौमत्व और विश्वबन्धुत्ववाद की झलक भी मिलती है।

इस प्रवृत्ति के इतिहासकारों में भण्डारकर, कुमार स्वामी, के०पी०जायसवाल, आर०सी०मजुमदार डी०डी० कौशाम्बी, आचार्य नरेन्द्र देव, जवाहरलाल नेहरू, लोहिया, यदुनाथ सरकार आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं इनका अपना चिंतन है। इन्होंने किसी वर्णन को अन्य प्रकार से उधृत करके संगृहीत नहीं किया, अपितु तर्क के आधार पर अलोचनात्मक ढ़ंग से इतिहास को प्रस्तुत किया।

संदर्भ

1. जी०आर० एल्टनः दी प्रैक्टिस आफ हिस्ट्री'
2. ई०एच०कारः इतिहास क्या हैं?
3. झारखंडे चौबेः इतिहास दर्शन एवं प्राचीन भारतीय इतिहास लेखनः
4. श्री निवास आयंगर, के0राय, इतिहास दर्शन
5. के.ए. नीलकंठ शास्त्री, हिस्टोरिकलमेथड
6. एस.के.माथुर एवं डी.सी.त्रिपाठी–इतिहास लेखन की आधुनिक विचाधारा एवं आवधारणा।
7. डॉ०पी०एन० सिंहः पूर्वोक्तः इतिहास दर्शन
8. डा०के०एल० खुराना एवं डा० आर०के० बसंल– इतिहास लेखन, धारणायें तथा पद्धतियाँ
9. शंकर गोयल Recnet Historiography & Ancient India, Jodhpur.
10. सतीशचन्द्र– मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

"औद्योगिक प्रतिष्ठानों की प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों का सहभाजन"

डॉ0 विकास कुमार

सहायक व्याख्याता,
श्रम एवं समाज कल्याण विभाग,
आई0डी0बी0पी0एस0 कॉलेज,
गढ़नोखा, रोहतास

आज के औद्योगिक समाज में औद्योगिक प्रजातंत्र एवं सामाजिक न्याय संबंधी मूल्यों को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है। फलस्वरूप प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों के सहभाजन की बात जोर पकड़ती जा रही है। विभिन्न देशों की सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों के अनुसार श्रम प्रबंध सहभाजन व्यवस्था को भिन्न–भिन्न रूपों में देखा जाता है। अतः इसकी अवधारणा का स्पष्ट निरूपण करने के पूर्व उसकी पृष्ठभूमि में कार्य करने वाली कुछ प्रमुख व्यवस्थाओं का विवरण समीचीन होगा। श्री वी0 पी0 सिंह के अनुसार प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों के सहभाजन को अवधारण के विकास में निम्नलिखित चार विचार धाराओं का प्रमुख योगदान है–

1. संधाधिपत्यवाद और श्रेणी समाजवादी संबंधी विचारधारा :– इन दोनों विचारधाराओं के अन्तर्गत यह स्वीकार की जाती है कि राष्ट्रीयकरण के पश्चात् औद्योगिक प्रतिष्ठानों की प्रबंध व्यवस्था संगठित श्रमिक श्रम संगठनों के हाथ में आ जाएगी पर इसके बाद की प्रक्रिया के सम्बंध में दोनों विचार धाराओं में मतैक्य नहीं है। संधाधिपत्यवाद के अन्तर्गत राज्य के प्रति अराजकतावादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। उसके विपरीत श्रेणी समाजवादियों ने राज्य एवं स्थानीय प्रशासन के जनतंत्रीकरण तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर उपभोक्ताओं पर उत्पादनकर्त्ताओं के सहयोगत्मक नियंत्रण पर बल दिया। राज्य के द्वारा उत्पादन के साधनों के नियंत्रण, पर जोर दिया गया और श्रेणी के द्वारा उत्पादन कार्य के नियंत्रण पर बल दिया गया। संघाधिपत्यवाद के अन्तर्गत औद्योगिक जनतंत्र को संसदीय जनतंत्र की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया और यह आहवान किया गया कि औद्योगिक श्रम संघवाद को एक क्रांतिकारी शक्ति के रूप में विकसित किया जाय जो कुछ संघाधिपत्यवादियों के अनुसार आगे चलकर राज्य का स्थान ले लेगा। श्रेणी समाजवाद के अधिवक्ताओं का विचार था कि श्रेणी के रूप में परिवर्तित श्रम–संगठन, राज्य से उद्योग एवं सेवाओं के प्रशासन की मांग करेंगे और राज्य उनको अधिकार के साथ ही साथ जन सामान्य के प्रति सामाजिक जिम्मेदारी भी प्रदान करेगी। इस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक श्रम से कार्यरत श्रमिकों से गठित श्रेणी को एक ऐसी जनतांत्रिक संस्था के रूप में देखा गया, जिसका उद्देश्य था राज्य के सहयोग के साथ कार्य करना। पर उपर्युकत दोनों विचारधाराएँ केवल कुछ शिक्षाविदों का ही ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सकी, किसी देश की श्रम–नीति पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सका। संघाधिपत्यवादियों को असफलता का कारण यह था कि राज्य के प्रति उनका दृष्टिकोण अराजकतावादी था। श्रेणी समाजवादियों की असफलता का कारण यह था कि वे भविष्य की सामाजिक संरचना के संबंध में एकमत नहीं स्थिर कर सके।

2. समाजवादी विचारधारा :– इस विचारधारा के अन्तर्गत सामाजिक जनतंत्र के विकास हेतु प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों का सहभाजन आवश्यक कदम समझा जाता है। इस सहभाजन का कई दृष्टियों से महतव है। आर्थिक दृष्टि से समाज के पुर्ननिर्माण हेतु उत्पादन एवं विनिमय के साधनों का राष्ट्रीयकरण आवश्यक है। राष्ट्रीयकृत सम्पति की प्रबंध व्यवस्था एवं प्रशासन व्यवस्था में भिन्नता हो सकती है पर राष्ट्रीयकरण का लक्ष्य अधिकतम सामाजिक कल्याण ही है न कि अधिकतम आर्थिक लाभ। इस सामाजिक कल्याण कल्याण की प्राप्ति तभी संभव है। जबकि प्रबंध व्यवस्था में श्रमिको का सहभाजन हो। सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से भी प्रबंध व्यवस्था में श्रमिको के सहभाजन का अत्यधिक महत्व है। साम्यवाद के अन्तर्गत अंततोगत्वा राज्य की समाप्ति एवं समाज द्वारा उसके कार्यो के संपादन की कल्पना की जाती है। इस प्रक्रिया में प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों के सहभाजन का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। श्रमिकों का सहभाजन स्वशासी समितियों के द्वारा होता है। इन समितियों के सदस्यों को स्थानीय स्थितियों का राजकीय समितियों के सदस्यों की अपेक्षा अच्छा ज्ञान होता है। ऐसी समितियाँ रचनात्मक विचारधाराओं एवं कार्यो पर आधारित होती है। इनके द्वारा नीचे से सामाजिक जनतंत्र का निर्माण प्रारम्भ होता है। धीरे–धीरे राज्य द्वारा संपादित बहुत सी अपेक्षाओं की पूर्ति भी इन समितियों के द्वारा होने लगती है। ये समितियाँ न तो मालिकों की प्रतिनिधि होती है, न तो उत्पादन के साधनों का सामूहिक स्वामित्व करती है वरन् ये समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में उत्पादन की इकाई का प्रबंध करती है। अतएव समाजवादी विचारधार के अन्तर्गत प्रबंध व्यवस्था में श्रमिको के सहभाजन के द्वारा कुछ सामानताओं कार्यात्मक प्रतिनिधित्व राज्य एवं श्रम संघों के संबंध इत्यादि का कार्यात्मक रूप से हल किया जाता है।

3. गांधियन विचारधारा– प्रारम्भ में गांधी जी मशीनों द्वारा उत्पादन के पक्ष में नहीं थे। क्योंकि इसके द्वारा उद्योग वाद का जन्म होता है जिसकी विशेषताएँ है :–1. लाभ अर्जन, 2. शक्ति का केन्द्रकरण और 3. मानवीय शोषण।[7] कालांतर में उनकी इस विचारधारा में संशोधन हुआ उन्होंने ऐसी मशीनों का स्वागत किया जिनके द्वारा श्रम और समय की बचत होती है। एक निश्चित सीमा तक उत्पादन का केन्द्रीकरण और निजी स्वामित्व उन्हें ग्राह्य था, ताकि श्रमिकों की परिस्थिति को ऊँचा उठाकर सहस्वामी के स्तर तक ला दिया जाय। इस प्रकार मालिक और मजदूर होनो ही न केवल एक दूसरे के लिए ही, वरन् पूरे समुदाय के लिए ट्रस्टी का कार्य करें।[8]

पर यदि मिल मालिक ट्रस्टी की भाँति कार्य नहीं करते है तो गाँधी जी औद्योगिक प्रतिष्ठानों का राष्ट्रीयकरण करना चाहेंगे । ऐसे राष्ट्रीयकृत औद्योगिक प्रतिष्ठान अत्यंत आकर्षक एवं आदर्श स्थिति में कार्य करते हुए लाभ के लिए नहीं वरन समस्त मानवता के कल्याण के लिए कार्य करेंगे। ऐसे प्रतिष्ठानों की प्रबंध व्यवस्था में श्रमिको के चुने हुए प्रतिनिधियों का भी प्रतिनिधित्व होगा। इस विचारधारा के अनुसार ग्रामीण जनतंत्र की भांति औद्योगिक प्रतिष्ठान जनतंत्र में श्रमिको के प्रतिनिधियों को प्रबंध व्यवस्था के प्रशासन का वही अधिकार प्राप्त होगा, जो मालको अथवा राज्य के प्रतिनिधियों को प्राप्त होगा। पर महात्मा गांधी की यह भी कल्पना थी कि धीरे–धीरे राज्य के कार्यो का तिरोधान हो जाएगा और उसका स्थान स्वैचिछक गांव ले लेंगे। श्रम संघ ऐसे ही स्वैच्छिक संघो का एक स्वरूप है। यद्यपि गांधी जी की उपर्युक्त विचारधारा अभी तक व्यवहार रूप में परिणत न हो पाई, तथापि इसमें संदेह नहीं कि इसके सैद्धान्तिक विवेचन से प्रबंध व्यवस्था में श्रमिक सहभाजन की प्रक्रिया को नवीन दिशा प्राप्त होती है।

4. उदारवादी विचार :– गैर समाजवादी देशों में प्रबंध व्यवस्था में श्रमिको के सहभाजन का सर्वाधिक उदार तरीका है–संयुक्त सलाह प्रणाली। टी0 ई0 चेस्टर और गार्डन फारसाइक के अनुसार संयुक्त सलाह कोई निर्णय करने के पूर्व प्रबन्धकों द्वारा श्रमिकों से ली जाने वाली ऐसी सलाह है जिसके द्वारा प्रबंधक श्रमिकों के विचारों से अवगत हो जाते है और अपनी समस्याओं और उद्देश्यों की सम्यक् व्याख्या

भी श्रमिको से कर लेते है। ब्रिटिश औद्योगिक परिवेश में सलाह का अर्थ सहनिर्णय से नहीं है। संयुक्त सलाह सामुहिक सौदेबाजी से भिन्न है, क्योंकि इसके अन्तर्गत सामान्यताया मजदूरी और कार्य की दशाओं को नहीं लिया जाता है, जो सामूहिक सौदेबाजी का मूल्य विषय है। संयुक्त सलाह के तीन प्रमुख उद्देश्य होते हैं–1. उत्पादकता वृद्धि एवं प्रतिष्ठान, श्रमिक एवं समुदाय को लाभान्वित करना 2. औद्योगिक प्रतिष्ठानों के प्रशासन तथा प्रबंध में श्रमिकों को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली ढ़ंग से अपनी भूमिका समझने में सहायता देना, 3. रमिक के आत्म प्रदर्शन की इच्छा को सन्तुष्टि प्रदान करना। संयुक्त सलाह की प्रक्रिया की सफलता हेतु श्रमिक शिक्षा और सशक्त तथा मान्य श्रम–संगठनों की महती आवश्यकता है। आज के युग में समाजवादी एवं औद्योगिक गणतंत्र के प्रभाव से प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों का सहभाजन श्रमि नीति का आवश्यक अंग बन गया है। अब वे दिन चले गये जब यह कहा जाता था कि प्रबंधक का कार्य है, अत्यंत प्रभावपूर्ण ढ़ंग से औद्योगिक प्रतिष्ठानों का संचालन करना और श्रमसंघों का कार्य है श्रमिकों की मजदूरी एवं कार्य की दशाओं में अधिकाधिक सुधार लाना। वरन् आज के औद्योगिक प्रतिष्ठानों की प्रबंध व्यवस्था में श्रम और प्रबंध दोनों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि यह सहभाजन देश और काल के परिवेश में एक दूसरे से कुछ भिन्न प्रकार हो सकता है। उपर्युक्त विचारधाराओं के सन्दर्भ में डॉक्टर मेहत्राज ने सहभाजन को औद्योगिक जनतंत्र का आधारभूत सिद्धांत करार दिया है। उनके अनुसार इस प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान की प्रबंध व्यवस्था के हर स्तर पर निर्णय करने के अधिकार में श्रमिक गण अपने उचित प्रतिनियिों के माध्यम से सहभाजन करते है। वास्तव में प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों का सहभाजन रचनात्मक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, इसके द्वारा श्रमिकों और प्रबंधकों में तादात्म्य संबंध का विकास होता है। इसके द्वारा रमिक और प्रबंधक दोनों अपनी रचनात्मक क्षमताओं को संगठन के सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में लगाते है। सहभागी प्रबंधक की अवधारणा को भारत में प्रबंध में श्रम सहभाजन के नाम से अविहित किया जाता है। जीवन टॉनिक के अनुसार प्रबंध में श्रमसहभाजन अनेक रूपों में पाया जाता है। एक स्थिति में तो श्रमिक केवल प्राविधिक और शारीरिक अर्थ में ही प्रबंध के साथ सहयोग करता है, इसे संयुक्त प्रबंध की स्थिति कह सकते है। दूसरी स्थिति में श्रमिक औद्योगिक प्रतिष्ठान की सामाजिक स्थिति संगठन में पूर्ण रूपेण से सहभाजन करता है। इस स्थिति को श्रमिक की सरकार की स्थिति कह सकते है। संयुक्त प्रबंध की स्थिति प्रबंध में श्रम सहभाजन की प्रारम्भिक स्थिति है और श्रमिक सरकार की स्थिति श्रमसहभाजन की अंतिम स्थिति है। भारतवर्ष में सहभागी प्रबंध की वर्त्तमान अवधारणा संयुक्त प्रबंध और श्रमिक सरकार की अवधारणाओं के बीच की अवधारणा है। अस्तु, इसे एक ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जिसके अन्तर्गत श्रमिक को प्रबंधकीय उत्क्रम के विभिन्न स्तरों में निर्णयों को प्रभावित करने का अवसर प्राप्त होता है, इस प्रकार उसे प्रबंधकीय अधिकार एवं जिम्मेदारियों में हिस्सा बंटाने का अवसर प्राप्त हो जाता है। के0सी0 अलैक्जैण्डर ने लगभग इन्हीं अर्थों में इस अवधारणा को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार किसी प्रबंध को हम उस समय सहभागी प्रबंध कह सकते है, यदि उसके अन्तर्गत किसी स्तर या क्षेत्र में श्रमिकों को प्रबंधकीय निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर प्राप्त होता है, अथवा यदि प्रबंध अपने अपने उच्चाधिकार में श्रमिकों को सहभाजन का अवसर प्रदान करता है। परन्तु वे सभी प्रक्रियाएँ या संरचनाएँ जिनके द्वारा श्रमिकप्रबंध के निर्णयों को प्रभावित करता है, प्रबंधकीय जिम्मेदारियों के निर्वाह में हाथ बंटाता है, अथवा प्रबंधकीय उच्चाधिकार उपभोग करता है, सहभागी प्रबंध की संस्था के अन्तर्गत आती है। भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार इस व्यवस्था का उद्देश्य प्रतिष्ठान स्तर पर श्रम एवं प्रबंध के मध्य सहयोग स्थापित करना है ताकि प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों एवं सामान्य समाज के लाभ हेतु उत्पादकता में वृद्धि की जा सके। 2. उद्योग के संचालन तथा उत्पादन विधियों के संबंध में कर्मचारियों को उनकी भूमिका से भली–भाँति अवगत कराया जा सके, 3. कर्मचारियों की आत्माभिव्यक्ति की इच्छा को सन्तुष्ट

किया जा सके, ताकि वे औद्योगिक शान्ति, अच्छे संबंध एवं सहयोग की दिशा में अग्रसर हो सके। इस प्रकार की योजना के द्वारा संगठन के सदस्यों की केवल आर्थिक आवश्यकताओं को ही मान्यता प्रदान करने की बात नहीं सोची जाती है वरन् उनकी सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की तुष्टि का भी प्रयास किया जाता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के परिणामस्वरूप अभिकर्मियों में प्रतिष्ठान के प्रति व्यक्तिगत रूप से लगीाव एवं तादात्म्यीकरण की वृद्धि होती है। फलस्वरूप उनकी कार्यक्षमता एवं प्रतिष्ठान की उत्पादकता में वृद्धि होती है। सहभागी प्रबंध की वकालत विक्टर एच0भ्रून तथा डगलस मैकग्रीगार आदि विद्वानों के द्वारा की गई। इसके माध्यम से प्रतिष्ठान के श्रमिक सदस्यों को प्रबंध की प्रक्रिया से संबंधित कर, उनकी मानवीय भावनाओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए, उन्हें इस योग्य बनाया जाता है कि वे प्रतिष्ठान के सामाजिक स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता में विधायी रूप से योगदान कर सके। जार्ज स्ट्रास ने महाभाजन के लक्ष्यों की व्याख्या करते हुए कहा है कि सहभाजन शक्ति संतुलन का एक स्वरूप है जिसके द्वारा प्रबंध अपने अधीनस्थों की अपेक्षाकृत अधिक स्वायत्तता प्रदान करता है, फलस्वरूप ऐसे व्यक्तियों को विशेष संतुष्टि प्राप्त होती है जो आत्मस्वातंत्रय की इच्छा रखते है। प्रौद्योगिकी के विकास के लिए केवल यही बात आवश्यक नहीं है कि श्रम प्रबंध के बीच संघर्षों का निराकरण हो, वरन् उत्पादन के विभिन्न पक्षों में रचनात्मक सहयोग तथा जनतंत्रात्मक संबंध स्थापना भी आवश्यक है। श्रम सहभाजन के द्वारा औद्योगिक जनतंत्र की प्राप्ति की दिशा में एक प्रयास किया गया औद्योगिक प्रतिष्ठान के निर्णय करने की प्रक्रिया के अन्तर्गत इस अवधारणा के प्रयोग के द्वारा महान सामाजिक परिवर्तन का सूत्रपात्र हुआ है। उपर्युक्त सभी विचारकों के मतों में बहुत कुछ समता है। डीटेका, ढेल, मेंह्त्राज तथा अलेक्जेण्डर ने सहभाजन के विविध स्तरों का विभाजन इस आधार पर किया है कि श्रमिक को निर्णय प्रक्रिया में सहभाजन की छूट किस सीमा तक प्राप्त होती है। इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान टॉनिक और ऐडम का है। इन लोगों ने सहभाजन के स्तरों का मूल्यांकन इस आधार पर करने का प्रयास किया है कि इसके द्वारा किस सीमा तक उत्पादन की सामाजिक प्रणाली में आधाभूत परिवर्तन होता है पर सामूहिक सौदेबाजी को सहभाजन के एक स्तर के रूप में स्वीकार करना एक विवादास्पद विषय है। बाकर और बेलकोम्ब ने ब्रिटिश औद्योगिक प्रतिष्ठानों में संयुक्त सलाह संबंधी विविध अभियंत्रों का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि निगोसियेशन और सहकार या सहभाजन में आधारभूत भिन्नता है। क्योंकि इन दोनों स्थितियों में श्रम प्रबंध की कार्यप्रणाली, प्रतिस्थिति, अधिकार तथा जिम्मेदारी की भावना में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। प्रबंध व्यवस्था में श्रमिकों के सहभाजन के स्तर के लिए कुछ विद्वानों ने सिस्टम थियरी का सहारा लिया है। सिस्टम थियरी को औद्योगिक संबंध के क्षेत्र में जान डनलप के द्वारा प्रयोग किया गया। सम्भरण कानिरूपण किया। परमेश्वर राव ने इस आधार पर एक नवीन माडेल का निरूपण किया। हमारे देश में श्रम और प्रबंध की मनःस्थिति, योग्यता कोशल एवं अन्य स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में कार्यशाला स्तर का सहभाजन सर्वाधिक उपयोगी है। इस स्तर पर श्रम और प्रबंध के बीच न्यूनतम मात्रा में द्वन्द्व होता है और इस स्तर कर विभिन्न समस्याओं को श्रमिक अपेक्षाकृत आसानी से समझ जाता है। उनके सहभाजन के प्रतिफल को सटीक ढ़ंग से परिमापित किया जा सकता है। इस स्तर पर निर्णायात्मक सहभाजन भी हो सकता है। कार्यशाला स्तर से ऊँचा उठने पर प्रतिष्ठान स्तर के सहभाजन की बात आती है। किन्तु इस दिशा में दूसरे देशों के अनुभव बहुत उत्साह वर्ध नहीं है। आज औद्येगिक परिवेश में एक नवीन स्तर के सहभाजन की बात कहीं जा रही है। इसे समतामूलक की संज्ञा दी जा रही है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में सहभाजन की विचारधारा का प्रादुर्भाव श्रम संघवाद, औद्योगिक प्रजातंत्र एवं सामाजिक न्याय के मूल्यों के सम्मिलित प्रभाव से हुआ। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयत्न प्रथम विश्व युद्ध के समय हिटले कमिटी ने किया। उक्त समिति ने नियोक्ताओं तथा श्रमिकों के संबंध में सुधार करने हेतु और इन दोनों पक्षों से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श हेतु संयुक्त औद्योगिक परिषदों

की स्थापना की सिफारिश की। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् औद्योगिक संस्थानों में कार्य परिषद् स्थापित करने के लिए कई देशों ने कानून भी पारित किया। जर्मनी में 1922 में ऐसे नियम बनाये गये जिसके अन्तर्गत कार्य समितियों को यह अधिकार दिया गयाकि वे प्रत्येक प्रतिष्ठान की निरीक्षकीय समिति के अन्तर्गत दो श्रमिक प्रतिनिधियों को भी पूर्णकालिक रूप से कार्य हेतु नियुक्त करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. सिंह वी0वी0 इंडस्ट्रियल लेबर इन इंडिया, 1963, पृ0–405
2. कोल, सी0डी0एच0, सेल्फ गवर्नमेन्ट इन इण्डस्ट्री, लंदन 1922 पृ0–263
3. कोटेड इन स्नोडेन पी0 सोशियलिज्म एण्ड सिंडीकलिज्म, लंदन, पृ0–207
4. कोल जी0डी0 एच0, सोशलिस्ट थाट, दि सेकेण्ड इंटरनेशनल, 1989 1914 पार्ट–1, लंदन 1956, पृ0–239
5. कोल, जी0डी0एच0 डेवलपमेन्ट ऑफ सोशलिज्म डयूरिंग टि फर्स्ट फिफ्टी इयर्स (दि वेब मेमोरियल लेक्चर, 1951) लंदन 1952 पृ0–15
6. धवन जी0 थियोलिटिकल फिलासाफी ऑफ महात्मा गांधी अहमदाबाद, 1957, पृ0–285, 313, 15
7. यंग इंडिया वालूम 3, पृ0–736
8. यंग इंडिया वालूम 2, पृ0–1130
9. कोटेड वाई वी0वी0 सिंह, इन एप्रोचेज टू वर्क्स पार्टीसिपेशन इण्डस्ट्रियल लेबर इन इंडिया, पृ0–415
10. को–डिटरमिनेशन मीनस् को मैनेजमेन्ट, देखिए दि इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनामिक्स, नं0–2, एण्ड 3, जुलाई, अक्टॅबर, 1959 पृ0–193–95
11. मेहत्राज, वी0जी0 वर्क्स पार्टिसिपेशन इन मैनेजमेन्ट।
12. कुलकर्णी, वी0आर0 वर्क्स पार्टिसिपेशन इन मैनेजमेन्ट (इंडस्ट्रियल रिलेशन नं0–3, मई–जून, 1972, पृ0–61)
13. जीवन टॉनिक वर्कर्स पार्टिसिपेशन इन मैनेजमेन्ट : आइडियल एण्ड रियलिटी इन इंडिया, श्रीराम सेन्टर फार इण्डस्ट्रियल रिलेशन, नई दिल्ली, 1969।
14. अलेक्जैण्डर, के0सी0 पार्टिसिपेटिव मैनेजमेन्ट : दि इंडियन एक्सपीरियेन्स, श्रीराम सेन्टर फार इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स एण्ड ह्यूमन रिसोर्सेज, नई दिल्ली।
15. सेकेण्ड फाइव इयर प्लान 1956, पृ0 577
16. अलैक्जैण्डर के0सी0 पार्टिसिपेटिव मैनेजमेन्ट–दि इंडियन इक्सपीरीयेन्स, श्री राम सेन्टर फॉर इण्डस्ट्रियल एण्ड ह्यूमन रिलेशन, नई दिल्ली 1972
17. स्ट्रास, जार्ज, सम नोट्स ऑन पॉवर इक्वलाइजेशन इन दी सोशन साइंस ऑफ आर्गनाइजेशन, इगिल बुड क्लिफ, प्रेंटिस हाल।
18. सेठी, कृष्ण सी0 वर्कस पार्टिसिपेशन इन मैनेजमेन्ट, ए रिपोर्ट एण्ड ए ब्यु प्वाइन्ट, इंडियन जर्नल ऑफ इण्डस्ट्रियल रिलेशन वालूम 9 नं0 2, पृ0–313–321

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Intertextuality in news headlines of select Russian newspapers

Md Waris Aqueel

PhD Scholar, JNU

Abstract

Intertextuality is an important aspect in today's world. Every day we come across instances of intertextuality. We come across things which are very new and unique which may be an event, an object, a place or even an idea. But when we term anything unique, it is not because it is completely new, but, because it is different in some parameters than the one previously known. An idea which seems to be unique is actually built on a previously known fact or conjecture. Intertextuality is the link between the existing text and the new text. Everything written or told is based on already existing texts. This leads to an understanding that words generate their meaning out of their relation to literary and cultural systems, rather than out of any direct representation of the physical world. Therefore, the phenomenon of intertextuality is unavoidable, but at the same time authors even deliberately use intertextual elements in their works.They employ various techniques to create intertextual references.

This article tries to find out the instances of deliberate intertextual referencing based on the analysis of select English language newspapers of Russia. It aims to find out the techniques employed by the authors for the purpose of intertextual referencing.

Key Words: *Intertextuality, allusion, newspaper headings, world politics*

Intertextuality is interrelation between texts or the link available between two texts, where a text seems to form the basis of another text. Merriam Webster defines intertextuality as "the complex relationship between a text and other texts taken as basic to the creation or interpretation of the text." Authors even if trying to create a completely new literature are influenced by what they have come across in their life. The influence of the previous texts,however, may or may not be explicitly seen in their work. Graham Allen remarks "Texts, whether they be literary or non-literary, are viewed by modern theorists as lacking in any kind of independent meaning. They are what theorists now call intertextual. The act of reading, theorists claim, plunges us into a network of textual relations. To interpret a text, to discover its meaning, or meanings, is to trace those relations. Reading thus becomes a process of moving between texts. Meaning becomes something which exists between a text and all the other texts to which it refers and relates, moving out from the independent text into a network of textual relations." (Allen, 2006, p. 1)

We live in an information age, where knowledge is power. There are many sources for gathering information, and newspapers are one of them. Every day, we read newspapers and get to know about all that is happening around us. We get information on whole range of issues form newspapersranging from inconsequential local incidents to huge geopolitical events. Everyday newspaper comes with the new set of information. At the same time, it is a well-known fact that we find it difficult to make sense of a completely new information, of which we have no prior knowledge of. The answer to this is 'Intertextuality.'Everything said in newspapers is based on what we already know and is a response to something which already happened. For example The Moscow Times published news titled "Russia's 2nd potential Coronavirus Vaccine nears approval" on 24thSeptember 2020. The headline makes sense only in the context we are aware of today. This headline would have made no sense, if it was published a year back. Since, today we are aware of the facts like Coronavirus pandemic gripping the whole world, vaccine trials happening all over the world, Russia already launched coronavirus vaccine in August this year and planned for newer and better vaccines, etc. we can easily understand the news.

The news available in the public domain for the past few months seem to shape up current news headlines. Shaping up of a text's meaning based on other texts is called intertextuality. The already existing texts help us understand the new text by giving a context to the new text.Language is dialogic, therefore, any news item is related to events known to us. There is a definite relation between what is being said and what has already been said. The link between these can be understood in terms of intertextuality. News items are filled with intertextual elements, some of which are not deliberate, but at the same time they are unavoidable. However, many a time deliberate intertextual elements are added to them by the author himself through allusions. These elements serve as references to other events, which may be similar in some sense. There can be many reasons for deliberate addition of intertextual references such as: making something clearer, making people read between the lines, giving own insight on the issue, forewarning people of any eventuality, etc.The effectiveness of intertextual elements, however, depends on the reader's prior knowledge and understanding of what is being alluded to. It is upon the author to use understandable allusions and hints in the process of creating a new text. In this article newspaper headlines of selected English newspapers have been studied to find out the instance of deliberate intertextual references and the techniques employed to create comprehensible intertextual references in the news headlines.

Methodology

News headlines from select newspapers: The Moscow Times, Pravda and TASS have been taken and for the sake of clarity and to reach a wider readership, English version of the newspapers Pravda and TASS has been chosen. The news items on World Politics has been chosen for the article. Time period for the data collection is 1st September to 30th September 2020, which is why it is based on topical issues. Today, any text cannot be free of intertextual elements. On the contrary, it is very difficult to find anything new and unique in a text. Ronald Barthes in his work Death of an author remarks that no text is original and the task of

an author is to collect what has already been produced and arrange it in different ways. The article, however, doesn't claim to find every intertextual element in the new headlines. The aim is to find deliberate attempts by the author to use intertextual elements such as word play, idioms, phrases, puns, reference to pop culture or religion, quotes, etc. we shall now discuss how deliberate intertextual elements are added in a text by taking examples form selected new papers.

"*Neighbors of Belarus try to involve entire EU in "anti-Lukashenko platform- top diplomat."* (TASS 1stSeptember 2020) The statement by Russian foreign minister Sergei Lavrov specifically mentions a phrase "anti-Lukashenko platform" which has come as a common expression for countries and parties opposed to Belarusian President Lukashenko's rule and have been critical of him during the ongoing political crisis. Use of such phrases is not new and limited to Russia alone. Terminologies like "Tukde-Tukde gang" and "lobby" is often used in TV media particularly against those critical of the present government.

"*Americans, 'young bourgeois' behind protest in Belarus, Lukashenko says*."(TASS 8th September 2020) The news item quotes the word of Belarusian President Lukashenko who accuses 'young bourgeois' along with others behind the protest. The word 'bourgeois' has its origin in the 11th century Central and Western Europe. It meant the people who lived in the borough. These people with time gained all the means of production and became elite in the society. This word has an important place in Marxist discourse. He carefully chose the word 'young bourgeois' to invoke the feeling that the elite are against his rule and not the common masses.

"*EU Troika rejects US attempts to trigger snapback sanctions against Iran –Germany*." (TASS 11th September 2020) The word 'Troika' is of Russian origin which means a cart pulled by three horses. However, today it is mostly used to denote 'a group of three.' In the given news item'EU Troika' means UK, France and Germany.

"*Belarusian opposition has not crossed 'red lines' yet, says Lukashenko*." (TASS 14th September 2020) The news headline here uses the phrase 'red line'. This phrase is often used to denote 'a point of no return.' The phrase can be traced back to 1928 Red line agreement between Oil companies of US, Britain and France to stop fighting among themselvesfor the oil reserves in former Ottoman Empire. During the negotiations, a businessman CalousteGulbenkian drew lines with a red pencil marking the boundary between the claimants. The phrase 'red line' is now commonly used now.

"*Foreign powers plotting color revolution in Asia, warns Chinese top diplomat*." (TASS 17th September 2020) The word 'color revolution' is a frequently used term in world politics. Various revolutions across the globe have been associated with colors. The association with colors has been because of various reasons such as yellow clad protestors in the Philippines in 1986, orange flags used by Ukrainians in 2004 protests, blue colors used by protestors in Kuwait in 2005. Growing instability in the Central Asian countries has provoked Chinese officials to make the remark about west being instigator of new wave of color revolutions. Various color revolutions in the past have been linked to western countries. This also gains

traction because theWest has been in principle supporting the protestors across the reasons. The deliberate use of the phrase 'color revolution' is an attempt to make people aware of what can happen and who is working behind the scenes.

"*Maria Zakharova's basic instinct about Serbia stains her career*" (Pravda 7th September 2020). The news headline gives a classic presents a classic example of double intertextuality. The article talks about the controversy regarding her Facebook post about Serbian President's meeting with US President. The controversial Facebook post itself used a typical intertextual tool in the form of pop culture. She compared President Alexander Vucic sitting alone facing President Trump with Sharon Stone's iconic pose from the 1992 film 'Basic Instinct.'

"*Navalny ally says poisoning 'new chapter' in Kremlin crackdown*." (The Moscow Times 3rd September 2020) The phrase new chapter here means fresh series of crackdowns on dissent by Russian government.

"*Russia has 'questions' for Germany over Navalny*" (The Moscow Times 15th September 2020). The word question here means doubts and aspersions. Germany has accused Russia of poisoning Alexei Navalny with the nerve agent 'Novichok'. However, Russia denies the claim and head of Russian foreign intelligence service raises his doubts with a few questions to Germany.

"*Turkey backs Azerbaijan fight for 'occupied lands': Erdogan aide*." (The Moscow Times 29th September 2020) The phrase 'occupied land' refers to the region of NagornoKarabakh, which has been bone of contention between Armenia and Azerbaijan for long.

There are plenty of such as examples on use of intertextual references. We shall now try to put the results in tabular form.

Newspaper	Total headlines analyzed	Word play	Phrase	Idiom	Popular culture reference
The Moscow Times	126	7	11	5	3
Pravda	53	3	5	2	0
TASS	378	16	22	9	2

Conclusion

Use of intertextual references in news headlines is a common phenomenon. To make the headlines catchy and more insightful a wide range of intertextual references are used. The use of deliberate intertextual references makes the headline more subtle and attracts readers to read the complete news.It can be concluded that word play and phrases are more frequently used in Russian newspaper headlines. There exist several others tools such as use of sobriquet, allegory, metaphors, etc. But in the time frame chosen by us, the above mentioned tools were employed. The study if done by taking a bigger time frame and more primary

source can produce even better results. Although, we have found only a few ways of intertextual referencing nevertheless, they have given near complete understanding of the process of putting intertextual references.

Bibliography

Primary sources

- The Moscow Times
- Pravda
- TASS

Secondary Sources

- https://www.merriam-webster.com/dictionary/
- https://www.brainyquote.com/quotes/
- Allen, G. (2006). *Intertextuality* (2nd ed.). (J. Drakakis, Ed.) London: Routledge.
- Gasparov, B. (2010). *Speech Memory and Meaning: Intertextuality in everyday life.* (W. Winter, W. Bisang, & H. H. Hock, Eds.) Berlin: Walter de Gruyter.
- Plett, H. F. (1991). *Intertextualities* (Vol. 15). Berlin: Walter De Gruyter.
- Seghezzi, N. A. (2007). Intertextuality in the News: The Spanish teroorist attack on March 11. *Revista Alicantina de Estudios Ingleses*(20), 195-221.
- Thamer, A. A., & Bedu, A. M. (2019, December). Intertextuality in Selected English Newspapers in the Middle East Countries: A Critical Discourse Analysis. *International Journal of Language and Literature, 7*(2), 60-65. doi:10.15640/ijll.v7n2a7
- Xie, Q. (2018, August). Analysis of Intertextuality in English News Headlines. *Theory and Practice in Language Studies, 8*(8), 1010-1014. doi:http://dx.doi.org/10.17507/tpls.0808.13

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

DEVELOPMENT THROUGH DECENTRALIZATION

Dr. Ravindra Kumar
Guest Assistant Professor,
Deptt. of Political Science
Sabour College, Sabour
(T.M. Bhagalpur University) Bihar

Real India exist in villages, said the Farher of the Nation. Mahatma Gandhi. Howevet, despite all the effective efforts even after six decades of Independence one of the striking aspects of the country has been the ‘Good Governance'.

Governance’ in the present context is an attempt to widen the scope of public administration by stretching beyond formal governments. It is broader in nature extending to the private sector, non-governmental mechanism along with govern mental intuitions. Collective problem solving is taking the place of individualized decision making. The process of governance has gained a transformative perspective in recent times due to the changing nature of the concept ‘development, which has now acquired a wider meaning. Development is not just confined to growth in Gross Nation Product of increase in National income. It encompasses all aspects of human life. Development is being thus looked upon as a process of creating a suitable enabling environment for people to lead long, healthy, productive and creative lives. There are certain rights of the downside as to maintain health, to be educated, to be well-nourished, and to be protected from deprivation and exploitation. The emphasis on the Amartva Sen’s work in welflire economics.

The constitution of India has set up a democratic form of governance which assumes that states power vests in the people and therefore the aim of governance should he to utilize the power in the interest of the people. The base of democracy is local government. A powerful central government or powerful state government can make good schemes for the country or the state and can implement them effectively. But what these two governance. In facilitating this government processes need to be effective and efficient. This leads to the crucial aspect of governance, which is called Good Governance.

Good Governance is not a new concept. In ancient India there was monarchical system but the kings were not absolute despot in practice. Their powers were checked by several popular activities. Their powers were checked by several popular activities. The power of the king was supplied by the ministers individually or in council and village headmen who took part in the coronation ceremony of the king and whom the king consulted oh all important occasions.

Besides these cheeks there where institution like sabha and samiti which always supported the king and checked his growing power. It is important to learn that the largest unit of administration during the Rigvedic period was Grama. In those days the king in his administration was helped by priest, senupati and a few officers of the lower rank.

Besides these officers, he was helped in his administration by Sabha and Samiti. These two bodies represented the people of tribe and the king himself participated in the deliberation of Sabha and Samiti. the king himself participated in the deliberation of Sahha and Samiti. To have a comprehensive understanding of the concept of good governance it would be desirable to take into account its parameters given by various scholars and institutions from time to time. Kautilya the great India philosopher in his famous treatise Arthashastra' has dwelt upon 10 indicators of good governance, which may be summed up as under.

- King must merge his individuality with duties:
- Properly guide administration:
- Avoid extremes without missing the goal;
- Discipline life with a code of conduct for king and ministers;
- Fiz salaries and allowances to the king and public servants;
- Law and order chief duty of the king-theft loses to be made good from king's salary:
- Carry out preventive, punitive measures against corrupt officials;
- Replacement of ministers by good once by the king;
- Emulation of administrative qualities:

And pursue good governance even amidst instability. The gist of these indicators drive one to conclude that the main objective of good governance is to maximize the well-being of the people. Mahatma Gandhi also redefined concept of Gram swaraj, Real Swaraj, as Gandhi spoke, 'freedom from meanest of our countrymen'. He added. 'The village republic system of rural. They will be autonomous for all purposes, including the administration of justice and keeping peace in the locality, as far as the consistent with the states. 'It is also needful to give insight onto the degree of awareness among the rural leadership by the people. It is not possible to have information regarding local problems either at the central or with the government of state. The best institution for solving local problem is local bodies.

On 2nd Oct. 1952, the Community development program me was started. This date was deliberately chosen to sumchronis the program me with the birth anniversary of the Father of the Nation, Mahatma Gandhi to whom nothing was dearer them rural amelioration.

The Panchayati Raj Act, passed by Parliament in December 1992, easily constitutes a milestone in the history of rural local government. The measure has won the support of all major political parties which examined in the joint parliamentary committee. It is an act of

political and administrative decentralization and thus releases the local population from control b bureaucrats and politician in distant state capitals. Though the law is enacted by the centre, rural local government is effectively to be the creation of the state legislature which may by law, endow the panchayat with such powers and authority as maybe necessary to enable them to function as units of local self government. The latest amendment makes elections to village Panchayats mandatory every five years. This guarantees the right of local-self government institution to exist independent of the whims and political color of the state government.

The government is trying to ensure people participation in governance through the 73rd and 741 constitutional amendments by which constitutional state has been preferred on rural and urban local bodies. These bodies are given necessary powers and authority to function as institution of local self—government. In order to bridge the gap between urban India and rural Bharat another effort is being made by the Ministry of Rural Areas (PURA) scheme. PURA is a Central Sector scheme re-launched by ministry of Rural Development during the reaming period of the XI plan with support from Department of Economic Affairs and the technical assistance of Asian Development Bank. The Ministry Private Partnership (PPP) frame work between Gram Panchayat (s) and private sector partners with active supports of the State Governments.

It is an effort to provide a different frame work for the implementation of rural infrastructure development schemes and harness private sector efficiencies in the management of assets and delivers of services. This would perhaps be the first attempt of PPP in integrated rural infrastructure development and management in the world.

The 73rd Amendment has been hailed as major land mark in the history of local self government in India. Some of the silent features of the Amendment are:

- Grant of constitutional status to PRIS.
- Reservation of one third seats for women in Panchayat bodies.
- Holding of elections to Panchayats under the direct super vision of the Chief Electoral officer.
- Setting up the Finance commission to review the financial position of panchayats after every five years and inclusion of XI schedule in the constitutions.

This Amendment in fact aimed at enhancing the capabilities of the rural people to involve themselves in the planning process with respect to their priorities. It also encisaged decentralization of the execution of all types of developmental activities with the active participation of rural masses. In nutshell, the purpose of the amendment was to bring good governance at the rural local level through decentralization.

For this in the first place ambiguity regarding functions of various bodies of Panchayati Raj contained in the XI schedule (29 in number) needs to be done away with so as to democratic clearly the role of each tire to pin down their respective responsibility,

Secondly, powers and functions of the Gram Sabha have also to be specified and at the same time it must be reinvigorated in actual specified and at the same time it must be reinvigorated in actual terms to enable it to role of parliament at the village level. This will certainly ensure transparency and accountability masters ought to exhibit their will to transfer the power and functions in the true spirit of the amendment to achieve the desired objective of democratic decentralization ultimately contributing to good governance at the grass-root level. Fourthly, the once bearers i.e., the panches and sarpanches who are the real actors in the PRI system must be men of vision and integrity, fairly educated, committed and dedicated to serve the rural masses. But this can hardly he expected in the given socio-economic and political setup of the rural Indian Society. It should be conducted in such a manner so as leave little scope for party-politics-and considerations of caste, class, religion, etc. The best alternate could he the selection of representatives through consensus who, in turn would function in the spirit of accommodation. Sixthly, keeping in view the famous dictum that 'people get the type of get the type of governance they deserve the rural masses must be an awakened lot, understanding theist right, duties and responsibilities under the Panchayati Raj system. It is only they who can ensure efficient and effective functioning of the system embedded with accountability, transparency and probity. Seventhly, to provide good governance at the cutting edge level of administration, the bureaucracy is supposed to play the role of a friend, philosopher and guide or PRIs. However, the general impression has been that it continues to play a hegemonic role in its function as effective units of participatory democracy. Lastly, the impedimentary tendencies like constitution of parallel bodies (Gram Vikas Samitis in Haryana) and postponement of timely elections of PRIs. Which are raising their ugly heads here and there need to h curbed immediately with an iron hand.

Finally if all the above-mentioned remedial measures are properly taken care of good governance at the Panchayari Raj system and people's co-operation. It is the only effective instrument, which can put speed and substance in our planning process and also ensure the most effective use of the country's resources productively. In that lies the future both of democracy and real development of economy as well as of the people in the country. In the years to come, Panchayti Raj will be catalytic agent of integrated development of rural areas.

REFERENCE:-

- *Article 40 of the Constitution of India.*
- *Asmerom H. K. Bonigman K and Hoppe R (1995) 'Good Governance"*
- *'Decentrailisation and Democratisation in Post- Colonial State"*
- *New Delhi. Indian Journal of Public Administration, Vol. 1, No. 4, October-December, P. 76*
- *Sharma, L.N, and Susmita Sharma (1998), "Kautiolyon Indicators of Good Governance", Indian of public Administration, Vol, XLIV, No. 3, July-September, PP. 265-70*
- *Mathur, P.C. (1991). Political Dynamics of Panchayati Raj, New Delhi, Konark.*

- *Bluent Perer, (1998), Good Governance and Sustainable Human Development, In O.P. Minocha, Good Governance, New Public Management Perceptive, Indian Journal of Public Administration, Vol. XLIV, No. N3, July-September, P.272-73.*
- *Bhhargave B.S. (1979). Panchayti Raj Institutions. Asish Publishing House, New Delhi, P 35.*
- *Bhargava B.S. Panchayati Raj Institution, op. cit., P-42*
- *Report of the Committee on Punchayati Raj Institutions (1978), (Chairman: Asoka Mehta) Government of Rural Dev, New Delhi, P-86.*
- *Herman Finer, 'The Theory and Practice of Modern Government of India, 'Asia Publishing House, PP. 711.*

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

"सोमनाथ के उपन्यासों में समाजिक स्थिति"

स्नेहा सिन्हा

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
ति0 मॉ0 भागलपुर वि0वि0, भागलपुर

ऐतिहासिक उपन्यासों के कुशल चितेरे आचार्य चतुरसेन द्वारा रचित 'सोमनाथ' एक श्रेष्ठ औपन्यासिक कृति है। इसमें आज से लगभग एक हजार साल पहले महमूद गजनवी द्वारा गुजरात के विश्व प्रसिद्ध महालय "सोमनाथ मंदिर" पर हुए बर्बर आक्रमण तथा उसके हवंस की रोचक तथा मर्मान्तक कथा है। इस कथा के माध्यम से उन्होने महमूद गजनी के आक्रमण के सांस्कृतिक प्रभाव तथा भारतीय संस्कृति पर मुस्लिम प्रभाव का व्यापक ब्यौरा दिया है। हमारे देश के तत्कालिक ,राजनीति,सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिदृश्य के साथ यहाँ के राजाओं की आपसी मतभेद,स्वार्थपरता एवं बैर भाव जैसी कमजोरी को इसमें उजागर किया है।–

सोमनाथ आचार्य चतुरसेन के श्रेष्ठ उपन्यासों में से एक हैं। यह प्रकाशित वर्गीकृत ग्रंथ सूचीक्रम 106 वाँ उपन्यासों में 6वाँ ग्रंथ है। इसमें आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व महमूद गजनवी द्वारा गुजरात के विश्व प्रसिद्ध महालय सोमनाथ मंदिर पर हुए आक्रमण तथा उसमें ध्वंश की रोचक तथा मर्मातक कथा है। इस कथा के माध्यम से उन्होने महमूद गजनवी के आक्रमण का संस्कृतिक प्रभाव तथा भारतीय संस्कृति पर मुस्लिम प्रभाव का व्यापक व्यौरा प्रस्तुत किया गया है। इसमें हमारे देश के तत्कालीन,सामाजिक,राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिदृश्य के साथ यहाँ के राजाओं के आपसी मतभेद,स्वर्थपरता एवं वैर–भाव जैसी कमजोरी का पर्दाफास किया गया, जिसके कारण भारत को विदेशी आक्रांताओं ने पददलित किया है।

गुजरात के एक हिस्से में उस समय लोधी जाति रहती थी यह क्षेत्र अनहिल्ल पट्टन कहलाता था। यह जाति अत्यन्त विपन्नावस्था में थी, इन्हे बडी मुश्किल से भोजन मिलता था महमूद गजनवी को इनका रहन–सहन तथा खाना देख बहुत कौतुहल हुआ–"अमीर और उसके बर्बर सैनिकों के लिए सब दृश्य नवीन और अपूर्व थे। दुष्काल में हजारों गरीबजनों के प्राणें की रक्षा इसी से होती है।

इस रचना के उपसंहार में चतुरसेन ने 'भारत में मुसलमानों की सफलता का कारण और हिन्दू समाज व्यवस्था ही पराजय का कारण शीर्षक से हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था का जन्म तथा मुसलमानों की सफलता के कारणः–लगभग चार हजार वर्षे तक हिन्दू संस्कृति निरंतर विकसित होती रही। देश देशान्तरों में भी उनका प्रचार–प्रसार हुआ। उसका सम्पर्क दूसरी संस्कृतियों से हुआ, उनका प्रभाव भी उस पर पडा,परन्तु उनका अपना रूप बिलकुल स्थिर ही रहा। विदेशी विजेताओं तक ने उस संस्कृति के आगे सिर झुकाया और उसमें अपने को लीन कर दिया। यदपि ये विदेशी षक,ग्रीक हूण, सीथ्यिन,मूची,कुषान आदि हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था एवं विभिन्न जातीय समुदायों के कारण उनमें पूर्णतया नही मिल पाए,परन्तु उन्होने हिन्दू धर्म,हिन्दू भाषा,साहित्य,रीति–रिवाज,कला और विज्ञान को पूर्णतया अपनाकर हिन्दूओं की अनेक जातियो की भांति अपनी एक जाति बना ली, और हिन्दू जाति का एक अविच्छिन्न अंग बन गए–ये ही आज राजपुत,गुजर,जाट,खन्नी,अहीर आदि के रूप में है।

यहाँ के लोग बहुत ही मिलनसार होते थे। ये अनजान व्यक्ति से जल्द घुल–मिल जाते थे। यही कारण था मुसलमान फकीर जो इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए अथवा अन्य स्वार्थ सिद्धि के लिए यहाँ आकर बसते थे उनसे यहाँ के निवासी प्रभावित हो घुल–मिल जाते तथा बाद में ईस्लाम स्वीकार कर मुसलमान हो जाते थे। यथा– "देवा भटकता हुआ इन फकीरों के पास जा पहुँचा और उनका मुरीद होकर वही रहने लगा। फकीर ने उससे हिन्दुस्तानी बोलना सीखा, उसे आरबी पढाई, धीरे–धीरे उसकी सेवा विनय और सद्‌गुणें से प्रसन्न हो वे उसे पुत्रवत स्नेह करने लगे।

हिन्दू समाज व्यवस्था ही पराजय का कारण थी ' जब कोई नया आक्रमणकारी आता,प्रजा राजा को सहयोग देने की जगह अपना माल–मता लेकर इधर–उधर भाग जाती थी। राजा के नष्ट होने पर वह दूसरे राजा की अधीनता बिना आपत्ति स्वीकार कर लेती थी और प्रजा में एकता के भाव नही उदय होते थे। इस प्रकार हिन्दू समाज व्यवस्था ही हिन्दूओं की पराजय का एक कारण बनी।

इस प्रकार सोमनाथ का शोधपरक अध्ययन करने के बाद हम देखते है की तत्कालीन भारतीय सामाजिक जीवन में धोर जातिवाद था। यहाँ का समाज उस समय भी विभिन्न वर्णो में विभाजित था। इन जातियों में आपसी कलह तथा परस्पर एकता की भावना का धोर अभाव था। इसी कारण गजनी जैसे विदेशी आक्रांताओं ने भारत को बार–बार रोदा। यहाँ के राजा पराजित हुए और भारतीय संस्कृति पर मुसलमानों का प्रभाव बढा।

संदर्भः

1. सोमनाथ, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रकाशक हिन्द पाकेट बुक्स प्रा0 लि0,जे 40,जोरबाग लेन,नई दिल्ली– 110003 नवीन संस्करण–2002, पूनमुद्रण–अपैल 2005
2. जय सोमनाथ, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी, राजकमल पेपर बैक्स,प्रथम संस्करण– 1997
3. आज का समाजवाद ,कृतनारायण प्यारा, प्रकाशक–आनन्द प्रकाषन, प्यारा भवन, कोर्ट स्टेशन, पूर्णियॉ–854301,बिहार,द्वितीय संस्करण–2006
4. आधुनिक भारतीय इतिहास के साहित्यिस्तोतः एक अध्ययन, डॉ0 विजय कुमार, प्रकाशक– के0 पी0 जसवाल शोध संस्थान, पटना संग्रहालय भवन बुद्ध मार्ग, पटना 8401 प्रकाशन –2003

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Walter Scott as a Historical Novelist

SUBHASH KUMAR

Research Scholar , B.N.M. U. MADHEPURA

Sir Walter Scott has been called the father of the historical novel in England. He blended facts and fiction, history and romance in his historical novels. He was a past master in the art of handling characters imaginatively with gusto and delight against a given historical background. He was gifted with a fecund imagination to re-live the past in all its vividness in his imagination. Scott presented the spirit of time as well as the spirit of place. With him, history was also a scenic matter, and in this rich visual abundance, he survives today so that we can still read him with surprise and delight. He had all the necessary gifts for achieving success as a historical novelist. He conceived of a novel in which history would be allied with romance, in such a manner that the past should be recreated with all its vigour and liveliness and with all the semblance of reality that it actually had.

Scott's great success as a historical novelist lies in the fact that he successfully recreated the life of the past in his novels. He imparted life to the dry bones of history. He achieved success in re-vitalising the past, for he completely indentified himself with the social and political life of the times he described or portrayed in his novels. For him the past, often by virtue of some chance revelation or contact, ceased to be the past and became in his consciousness as immediate as the present. "For Scott the dry bones re-assembled themselves" says Una Pope-Hennesy, "and became clothed in flesh, and rubble reconstituted itself into setting for pageantry. Automatically in him the past was re-born, re-animated, re-realised, and ceased in any dry-as-dust sense to be history." [1]

"His novels show the strong tide of imagination," says S.D. Neill, "released by the Romantic movement sweeping back into the past, flushing the stones of history with colour and brightness." [2] The same critic further points out that, "The past lived again in his pages; not the dust-dreary reconstruction of pedants, but warm, breathing, excitingly alive. The reading public at last found the author for which it was waiting – one who could create the past because he had lived it, in his friends, in his ancestors, in his memories. Beside him the Terror novelists with their gimcrack castles, their theatrica villains, stilted language and air of unreality appeared as the synthesis of makeshifts they were."[3]

Scott presented the past history of France and England and Scotland in a life-like and realistic manner. Scott's favourite period was the stretch of Scottish history from the Covenanters to the Jacobites. He could best interpret and reconstruct the near past. His favourite periods were those which were not very remote the Reformation to the last civil

struggles of the eighteenth century. "He organises his subjects round the great religious or Political conflicts which during these two hundred years most seriously impaired the moral unity of the Scottish people." In *The Monastery, The Abbot, Kenil-worth,* Scott revives sixteenth century life in England. In *The Legend of Montrose* and *The Fortune of Nigel,* he takes us to the seventeenth century and places his novel during the times of James Ist. In *Guy Mannering, Old Mortality, Rob Roy,* and *The Heart of Midlothian,* we have the recreation of the eighteenth century. In *Quentin Durward* we are taken to the reign of Louis XI in France. In *Ivanhoe* we are further transported to the early Middle-Ages and the days of Crusades. We meet with Richard Coeur de Lion, the black-hearted John and the glamorous figure of Robin Hood in *Ivanhoe.*

The range of Scott's novel is fairly wide and covers three centuries of English, Scottish, and European History. He was thus an inspired, an exalted pageant-master, of enormous energy and sparing no expense, who organised a procession through the ages, from the medieval to the nineteenth century moment, in which every degree of humanity played a part, and wore the appropriate costume. Kings and queens, outlaws and cut-throats, men of law and of war, girls and crones, witches and even ghosts, took their place in that procession, hundreds of them, winding their way out of the past, making the recognisable gestures, speaking the expected words. Louis XI of France in Quentin Durward, James I in the Fortunes of Nigel, Queen Elizabeth in Kenilworth, these are a few examples of the vivid evocation of which Scott was capable, while at the same time they show that he was a pageant-master rather than a historian, and a historian rather than a novelist.

Scott succeeded in presenting these past ages of history in his historical novels because of his lively imagination with which he re-lived those times. But merely relieving the past was not enough for him. He boldly projected the present into the past, and used his knowledge of contemporary life to humanise his old world characters. Manners may change and fashions alter, but human nature remain constant; and thus we have the apparent paradox that Scott's success as an historical novelist lay in his sturdy realism that he made the men of Robin Hood's day and Shakespeare's day alive and actual by virtue of his acquaintance with the men that lived around the Tweed of his own day.

Scott used the facts of history for purpose of romance. He did not care for strict historical truth. "Scott did not scruple distant facts, cutting them about to fit the episodic forms of his tales;" says Church, "but in doing so he always enriched their significance with a poetic wealth of his own; thereby proving once again how the approach to life of the novelist and the poet in the same; through terms of an inspired imagery, interpreting always through the particular to the general, and never resting content with a mere cataloguing of facts or a scientific recording." "He permitted himself only the same licence as Shakespeare in changing the sequence of events occasionally for dramatic effect, but characters and motives remained inviolate." [4]

In *Kenilworth* he represented Shakespeare's plays as already in the mouths of couriers and statesmen though he laid the scene in the eighteenth year of Queen Elizabeth when Shakespeare was hardly old enough to rob an orchard. This historical basis of Wood Stock

and Red Gaunlet is thoroughly untrustworthy. In the Abbot historical truth is wantonly violated in making all senators the devoted followers of Mary Queen of Scots. In Wood Stock it is represented that Shakespeare died in 1590 without writing his tragedies. Thus in the historical novels Scott never bothered about historical accuracy. His novels are like the historical dramas of Shakespeare in which creative imagination plays a vital and significant part to revitalise the social and political manners, ways, and life of the people. "Scott makes us live again," says Cazamian, "in past centuries, and makes innumerable human beings of his invention visible, familiar and skin to ourselves; whether he entirely creates them, recreates their souls and borrows their names history." [5]

Though Scott made certain deviations from the facts of history by colouring them with his romantic imagination, yet he did not disregard the sanctity of history. He presented historical personages and characters like Richard and Saladin, Queen Elizabeth; Marry Queen of Score, Monmouth, James I with great gusto and delight. The old historical figures are recreated by Scott with the same zest as the life of the times in which they lived. He did not show any partiality in the presentation of historical characters. "It was his desire" says Cazamian, "to keep the scales even and to grant all parties and men the same kindly interest and here he was almost always successful." [6]

The main interest in Scott's historical novels in often not historical, and the historical interest is at least always divided with a purely fictitious interest. In *Waverley* the hero and heroine are not historical; and the same is true of *OldMortality, Ivanhoe, The Fortunes of Nigel* and The Abbot. Kenilworth is different only in appearance. Amy Robsart bears an historical name, but she is really the typical tragic heroine, and Leicester is the conventional villain with some facts taken from the Earl of Leicester's life for an historical semblance. The attention is thus distracted from Elizabeth, Mary, James, Cromwell, and the young Stuart Pretenders. In adopting this method of dealing with history – which was in part Shakespeare's also – Scott was able to give within the vaguely defined boundaries of fact and legend a very free play to his imagination.

Scott added the air of romance to the historical facts in the splendid reconstruction of the past. Scott brought to converge upon the novel the same scattered influences of romanticism says Compton Rickett, "that he did in poetry; enriching its thin arid founts of inspiration with his wealth of antiquarian lore, his open air enthusiasm, his delight in the colour and moment of bygone times, and his intimate knowledge of Scottish life." It was Scott "who could put into history the poetry of history, and who could put into veracious tales of medieval days the romance of the medieval times"

In the presentation of the historical novels of the past, Scott used the language of the times in which he himself lived. He realized that pedantic fidelity to period and precisely archaic language, however titillating to the student, resulted in unreadable fiction, and his own creative sense led him to make a more electric use of his material. Rejecting antiquarian realism and over-accuracy, he favoured a language approximating to common speech, but heightened with poetry and with just enough of archaism to create an illusion of the past. The average reader of novels at that time would demand no more.

Scott left behind a big legacy for future writers and to use his own phrases – he "set the chimes a ringing" in France, Germany, and Italy. Taking the cue for Scott, many writers came out with historical novels in Italy and France. In England Scott had a number of followers. Among the ancestors to Scott, the first in the field was Mrs. Anna Eliza Bray wrote The Protestants, the subject of which is the percussive of the Protestants under Queen Mary Tudor. Though purely historical in intent, the romance had the appearance of a flaming brand, thrown by the high church party into the angry debate over Catholic emancipation. Horace Smith also wrote historical novels. His *Brambletye House* (1826) is a good example of the working of the time-spirit; for the first of its three volumes covers the same period as Scott's Wood Stock, and was published in the same year. It was followed by *The Tor Hill, Reuben Apsley, Oliver Cramwell, Arthur Arundel*, or *A Tale of the English Revolution* of 1968, and some others.

At its simplest it is a fictional account about the past. A story or stories told about an event perhaps fictional or real, and about people also fictional or real. Jerome de Groot wrote that „the intergeneric hybridity and flexibility of historical fiction have long been one of its defining characteristics.'[7]Indeed Groot lists thirteen genres in which historical fiction can be moulded into: romance, detective, thriller, counterfactual, horror, literary, gothic, postmodern, epic, fantasy, mystery, western, and children‟s books.In essence the historical novel adds flesh to the bare bones that historians are able to uncover and by doing so provides an account that whilst not necessarily true provides a clearer indication of past events, circumstances and cultures.These definitions of historical fiction are a starting point and an interesting one.

The Marxist literary theorist Georg Lukács is generally regarded as the most influential critic of historical fiction and his work the basis from which later literary theorists begin their theoretical paradigms. His thesis entitled The Historical Novel (1955) saw (unsurprisingly) the development of historical novels in the nineteenth century as a product of social forces. Lukács argues that Sir Walter Scott (1771- 1832) was the first to bring the 'specifically historical' to the novel format and is therefore to be considered the founder of the historical novel. By this Lukács is referring to Scott's use of history as a means to understand individuals historically:

> "The so-called historical novels of the seventeenth century (Scudéry, Calpranéde, etc.) are historical only as regards their purely external choice of theme and costume. Not only the psychology of the characters, but the manners depicted are entirely those of the writer‟s own day. And in the most famous „historical novel‟ of the eighteenth century, Walpole‟s Castle of Otranto, history is likewise treated as mere costumery: it is only the curiosities and oddities of the milieu that matter, not an artistically faithful image of a concrete historical epoch." [8]

In other words Lukács argued that, historical novels‟ before Scott wereanachronistic in their depictions of the past. The Marxist agenda that underlies Lukács appraisal of the historical novel focuses very much on how a sense of history emerged out of the Enlightenment, the emergence of a sense of nationalism, and more specifically the French

Revolution. Lukács claims that economic and social tumult resulted in, as Groot has recently described, „a dynamic sense of progress and, most of all, of history as process'[9] In essence Scott‟s novel is seen as the result of a new historical consciousness that had emerged in the nineteenth century; it is as much an attempt to connect with the past as it is an account of it. In Lukács words:

> "What matters therefore in the historical novel is not the retelling of great historical events, but the poetic awakening of the people who figured in those events. What matters is that we should re-experience the social and human motives which led men to think, feel and act just as they did in historical reality." [10]

Lukács believed that the 'smaller...relationships' of individuals gave meaning to the 'great monumental dramas of world history'.It has been said that the famous nineteenth century German historian Leopold von Ranke first turned to the study of history through reading the novels of Sir Walter Scott.[11] Therefore right from the inception of historical fiction in novel format the historian and the novelist have, it seems, found themselves intertwined.

Sir Walter Scott (1771-1832) was a Scottish playwright, poet and historical novelist. His first novel Waverley (1814) was followed by *Guy Mannering* (1815) and *The Antiquary* (1816) and together formed a trilogy covering Scottish history from the 1740s through to the 1800s. Scott wrote various other novels in his lifetime including *Ivanhoe* (1820). *Ivanhoe* was not only a commercial success but can also be said to have played a major role in reigniting general and scholarly interest in the medieval period. Scott also wrote novels based in the fifteenth, sixteenth and seventeenth centuries. During his lifetime Scott wrote at a feverish pace and in general was popular not just in Britain but across the world. Although his popularity can be said to have dwindled nearer the end of his life (and indeed after it) Scott is nevertheless famed for his role in popularising history through the medium of fiction.In general *Waverley* can be considered a great success for Scott. Within two days of its publication the first edition had sold out. Critics adored the work, particularly Francis Jeffrey of the Edinburgh Review who viewed its characterisation and vivid descriptions as a means for readers to understand and feel the "actual experience". The now better remembered and regarded Jane Austen wrote somewhat playfully (I think) in September 1814 (less than three months after its publication) that:

> "Walter Scott has no business to write novels, especially good ones – it is not fair – He has fame and profit enough as a poet, and should not be taking the bread out of other people's mouths. I do not like him, and do not mean to like *Waverley* if I can help it – but fear I must."[12]

References

1. Qtd. In Mundra, J.N. &Sahni, C.L., *Advanced Literary Essays*, Prakash Book Depot, Bareilly, 1965, p. 156
2. Ibid, p. 157
3. Ibid.
4. Ibid., p. 158
5. Ibid., p. 159
6. Ibid.,
7. Groot, Jerome de, *The Historical Novel* (Routledge: Oxon, 2010), p. 2
8. Lukacs, Georg, *The Historical Novel*, trans. Hannah and Stanley Mitchell (Penguin: Harmondsworth, 1962), p.15.
9. Groot, op. cit., p. 25.
10. Lukacs, op. cit., p. 42
11. Cf. Mc Garry, David D. and White Sarah Harriman, *Historical Fiction Guide: Annotated Chronological, Geographical and Topical List of Five Thousand Selected Historical Novels* (The Scarecrow Press, Inc: New York, 1963), p. 17.
12. Lamont, Claire (ed.), *Sir Walter Scott Waverley; or, 'Tis Sixty Years Since* (Oxford University Press; Oxford, New York, 1986), p.vii.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Jane Austen's Art of Characterization

SUBODH KUMAR

Research Scholar , B.N.M. U. MADHEPURA

Austen effaces herself from her texts as much as she can, and fills them with realistic portraitures of English country middle classes as well as people from the higher classes. The concept of character may encompass any fictional agent, whether human, animal, or even, as in children's stories, vegetable or mineral. One of the Austen's great nineteenth-century critics, Richard Simpson, described Austen's attitude towards character thus:

> "Hence again the individual mind can only be represented by her as a battle-field where contending hosts are marshalled, and where victory inclines now to one side, now to another. A character, therefore, unfolded itself to her, not in a statuesque repose, not as a model without motion, but as a dramatic sketch, a living history, a composite force which could only exhibit what it was by exhibiting what it did."[1]

If a sense of the complication of character contributes to Austen's realism, so too does her steady focus on manners as the medium of social knowledge. Linguistically, manners of metonyms, where individual words come to stand for, orat any rate implicate, the class of things to which they belong. Austen draws upon the metonymic power of 'manners' to create expectations in the reader, which she either satisfies or complicates, as the case may be. She proceeds to create character through the medium of manners - through metonymic associations- and this, in turn, imparts to her works a sense of realism, of social observation. For example, if John Thorpe, in *Northanger Abbey*, stands before the readers, in the mind's eye, as a re-materialized Georgian ' rattle,' with his fashionable slang and barouche, it is because Austen has captured his 'manners'. It is a force Austen realised in her novels perhaps better than any of her fictional antecedents. [2]

The air of realism Austen's novels generate is owing to a concatenation of fictional effects. Her characters undergo a process of social education within the boundaries of the probable. Instead of disclosing outlandish mysteries, her characters learn whom it is they really love, whom they have been unfair to, whom they home prejudged, or whom they have not judged severely enough. Eventually first-hand knowledge comes to them of where their responsibilities lie, to both themselves and to others. It is a process of education - an inevitable movement towards resolution and marriage - undercut and rendered 'natural' by

false recognitions and premature disentanglements that serve to impart a sense of complexity to the inevitable arc of the comic plot. At the same time, this process of social and objective knowing is mediated through manners, which imparts a sense of the real to the work. And finally, through references to improbable genres, such as the gothic, Austen succeeds in imparting a sense, not so much of the probable, as of the complicated real.

One the most interesting aspectsJane Austen'snovels is her usethe various narrative perspectives.Comments on Austen's differing viewpoints range from Frank O'Connor's statement that the classic problem or pointor view was magnificently solved by Jane Austen, who merely ignored it altogether, [3]to M. St. Francis Woods's statementin a recent dissertation that it is the skillful use or then narrative perspective which has largely made Jane Austen'sstory-telling a great art.[4]

A number or authors have incidentally concerned themselves with Austen's narrative perspective; however, little seems to have been written on the progression or thetype or narrative perspective employed throughout Austen's career. It is the purpose of this study to examine her point or view as it reflects the brilliant choice of adominant narrative perspective best suited to a specific work and as it reflects her maturation as an author.

The progression of the narrative perspective used byAusten throughout her career may be viewed as parallelto the changing viewpoint used by novelists in generalfrom the eighteenth century to the present. That is, theprogression of the mode of narration throughout her novelspresents in miniature the development from the early typeof narration which included an omniscient narrator, manyauthorial intrusions, and numerous epigrammatic generalizations, through a stage where the omniscient narrator beganto disappear as characters were viewed through a number ofminds, to the dominant present mode of the unobtrusive,third-person limited narrator.

Concerning this change, Joseph Warren Beach statesthat in a bird's eye view of the English novel from Fieldingto Ford, the most impressive factor is the disappearance ofthe author. He suggests that the authorial comment ofScott, Thackeray, Trollope, and Meredith scattered throughout the narrative tends to reduce the dramatic tension andthe illusion of life, but "the fashion has changed; we likefiction unadulterated; we like the sense of taking part inan actual, a present experience, without the interference ofauthorial guide." [5]In *The Rhetoric of Fiction*, Wayne C.Booth echoes this feeling with the statement that the formof artificial authority has been present in most narrativeuntil recent times but is not generally found in a modernshort story or novel.[6]This change from the use of the artificial authorityto the third-person limited narrator may be viewed in Austen's works. In her earliest novels, the strong influences of her predecessors and contemporaries are evident asshe follows the mode of presenting as her spokesman anobvious narrator who is superior to the characters.

In her intermediate writing period, Austen cur-tails the authorial intrusions and begins

the transition toa third-person limited narrator. In this transitional stage, Austen limits the use of direct exposition by the narrator and substitutes instead the privilege of seeing intothe minds of more than one character. The stage seems to manifest itself in Austen's work as a point of viewthat shifts between two major characters. Although thepresence of the author is less obvious in this stage, theshifting point of view still makes the presence of asuperior controlling influence felt.

In her final writing period, Austen goes onestep further towards virtually eliminating authorialeditorialism by restricting her narration to the mind ofone character. Although the story is written from the view-point of one character, the "I" of first person is changedto the third person "she." This mode of presentation hasthe advantages of allowing the reader to feel that he isreceiving the information objectively, yet allowing a feeling of immediacy.

Of Austen's six major novels *Northanger Abbey* is generally considered to be her earliest work. Although it was writtenduring the years 1797-1798 following the first versions of*Sense and Sensibility* and *Pride and Prejudice*, it is believedthat the latter two were greatly altered in their revisionsin 1809-1810 and 1810-1812, respectively,[7] whereas evidenceindicates to the contrary concerning*Northanger Abbey*. In1816 when Austen wrote the advertisement by theauthoress to Northanger Abbey, she stated:

> "This little work was finished in the year 1803, and intended for immediate publication. The public are entreated to bear in mind that thirteen years have passed since it was finished, many more since it was begun, and that during that period, places, manners, books, and opinions have undergone considerable changes." [8]

Therefore, it seems reasonable to consider this novel herearliest contribution.

Pride and Prejudice was originally conceived in 1796-1797 and titled *First Impressions*. It is believed, however,that the novel was substantially rewritten in 1812 before itspublishment in 1813. In support of this belief, R. W. Chapman states that *Pride and Prejudice* had always seemed to hima book of greater maturity than credible if supposed to have been written when Austen was twenty-one.[9]The factthat no apology for parts of the work made obsolete by thepassage of time is offered also leads one to feel that thebook was revised. Therefore, *Pride and Prejudice* will beexamined as an example of Austen's intermediate writingperiod.

Austen's final novel, *Persuasion*, was begun inthe summer or autumn of 1815, and the first draft was completed on July 18, 1816. Its publication was announced inDecember, 1817. This work will then be viewed as a productof Austen's final writing period.

The most privileged of all Austen's narratorsappears in her first novel, *Northanger Abbey*. In this novel Austen grants the narrator what Norman Friedmanhas termed "editorial omniscience." That is, the narrator,as a separate person from the characters, often

dominates,and there are frequent generalizations, uses of "I," and direct addresses to the reader.[10]Perhaps this mode of narration used in Austen's first work may be partiallyattributed to imitation of widely read authors such asFielding, in whose writing the author is present to

> "see that you are properly informed on all the circumstances of the action, to explain the characters to you and insure your forming the right opinion of them, to scatter nuggets of wisdom and good feeling along the course of the story, and to point out how, from the failures and successes of the characters, you may from a sane and right philosophy of conduct."[11]

Various critics have commented further on this earlymode of narration. John K. Mathison notes that *NorthangerAbbey* was written at the period in the author's career whenexplicit statements of intention as well as the effort toembody them closely were to be expected.[12]Ian Watt alsocomments on these explicit statements, saying that Austen followed Richardson in providing minute presentationsof daily life and Fielding in adopting a more detached attitude toward her narrative material and in evaluating it froma comic and objective point of view.[13]The use of the omniscient narrator facilitates the accomplishing of these purposesspecified by Watt.

However, the main reason that this type of narrator as chosen is obviously that this personality is necessaryto accomplish the two main purposes of the novel—literaryburlesque and social and moral comment. As stated by HelenSanders, adopting a burlesque tone and casting her story inthe form of an anti-romance make an omnipotent and omniscientnarrator inevitable.[14]

References

1. Richard Simpson, unsigned review of James Edward Austen- Leigh, *A Memoir of Jane Austen* (1870), *North British Review*, 52 (Apr. 1870), pp. 129-52 in Brian Southam (ed.) *Jane Austen:The Critical Heritage*, 2 Vols. (London: Route ledge &Kegan Paul, 1968), i, p. 250.
2. Marilyn Butler makes a similar point about Austen's proto- anthropological technique of anatomizing a society through the matching of characters and possessions: 'In *Emma*, Harrier's stub of pencil and Ms.Woodhouse's smooth, thin water- gruel speak volumes about their two possessors...' (Butler, Introduction, in *Northanger Abbey* (Harmondsworth: Penguin, 1995), p. xxiv).
3. Frank O'Connor, *The Mirror in the Roadway* (New York: Alfred A. Knopf, 1956), p. 28.
4. Sister M. St. Francis Woods, "Jane Austen and the Omniscient Narrative Voice", Catholic University of America, (Washington D.C., 1965), p. 161.
5. Joseph Warren Beach, *The Twentieth Century Novel: Studies in Technique* (New York: Appleton-Century-Crofts, Inc.. 1932), pp. 14-16.

6. Wayne C. Booth, *The Rhetoric of Fiction* (Chicago: The University of Chicago Press, 1961), pp. 4-6.
7. R. Brimley Johnson, *Jane Austen: Her Life, Her Work, Her Family, and Her Critics* (London: J.M. Dent and sons, Ltd., 1930), p. 273
8. R.W. Chapman (ed.), *The Novels of Jane Austen* (London: Oxford University Press, 1932), V, 12.
9. Ibid., p. 407.
10. Norman Friedman, "Point of View in Fiction: The Development of a Critical Concept," *PMLA*, LXX (December, 1955), 1169-1171.
11. Beach, op. cit., p.14.
12. John K. Mathison, "*Northanger Abbey* and Jane Austen's conception of the Value of Fiction," *ELH*, XXIV (June, 1957), 139.
13. Ian Watt, The Rise of the Novel" *Studies in Defoe, Richardson, and Fielding* (Berkeley: University of California Press, 1959), p. 296.
14. Helen Morse Sanders, "*Jane Austen's Novels: A Study in Narrative Method*" (New York, 1954), p. 16.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

अमृता प्रीतम के उपन्यास : औरत जात का सफरनामा

विकास कुमार साव
स्टेट एडेड कॉलेज टीचर
सेन्ट पॉल्स कैथेड्रल मिशन कॉलेज
कोलकाता

भारतीय कथा साहित्य में अमृता प्रीतम एक चर्चित और प्रतिष्ठ कथाकार हैं। इन्होंने अपने कथा-साहित्य में मानव जीवन के विविध समस्याओं,मूल्यों, मानवीय संघर्षों के सवाल को उठाया है। इनके कथा – साहित्य में स्त्री जीवन के त्रासदी को विशेष जगह मिली है। इनके कथा साहित्य में स्त्री जीवन की ये जो भी समस्याएं है, दुख- दर्द, पीड़ा तथा त्रासदी है, उसमें उनके समकालीन महिला कथाकारों से थोड़ी भिन्नता है। इन्होंने साहित्य को किसी वाद के नजरिए से देखने का प्रयास नहीं किया बल्कि सामाजिक समस्याएं जो उनके और आज हमारे समय में विकाराल रूप में खड़ी है, उसे अपने कथा साहित्य का विषय बनाया। इस संदर्भ में उनके समर्पण के सहयात्री इमरोज का यह कथन दृष्टव्य है – **"मौजूदा समय में या उसमें पहले के दौर में स्त्रीवादी साहित्य या अन्य वादो में वह शामिल नहीं होती थी। वह वादी नहीं थी, न किसी राजनीतिक पार्टी से जुड़ी हुई थी। वह इन सबसे स्वतंत्र होकर रहना, वह लिखना चाहती थी। जहां तक उसके साहित्य का सवाल है, मेरी नजर में वह खूबसूरत और पसंदीदा है । अगर वह अच्छा नहीं लिखती तो पसंद क्यों की जाती? लोगों ने उसके लेखन को पसंद किया, तभी वह लोकप्रिय लेखिका बनी ।"**[1]

अमृता प्रीतम का सबसे अधिक चर्चित और लोकप्रिय उपन्यास है 'पिंजर'। पिंजर उपन्यास का पाठ देश विभाजन और सांप्रदायिकता के संदर्भ में ही किया जाता रहा है। लेकिन एक बात ध्यान रखनी होगी कि देश विभाजन और सांप्रदायिकता तो इसमें मौजूद है ही लेकिन इस उपन्यास में अमृता प्रीतम ने स्त्री जीवन की कथा विशेष जगह दी है। चाहे वह पूरो का मामलो हो, या फिर पगली, तारों या अन्य स्त्रियों का जो पुरूषों के अत्याचार और हवस का शिकार बनी।

समय का कोई भी चक्र हो, पुरूषवादी सामंती समाज में नारी को हमेशा शोषण और उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। वह उसे कभी अपनी नियति तो कभी मजबूरी समझकर स्वीकार कर लेती है। इस उपन्यास की नायिका पूरो इसी त्रासदी को झेलते हुए नजर आती है। सामंती पुरूष सत्तात्मक समाज और पुरूष जाति के नारी उत्पीड़न के मनोविज्ञान को अमृता प्रीतम ने इस उपन्यास में बड़ी ही तत्परता से उभारा है । इस सामंती पुरूष प्रधान समाज में स्त्री के ऊपर हो रहे अत्याचार का यथार्थ चित्रण 'पिंजर' उपन्यास में दर्शनीय है । अमृता प्रीतम सामंती पुरूषवादी सोच और स्त्री के दर्द को बयान करते हुए लिखती हैं – "**पूरो के मस्तिष्क में एक विचार घूमने**

लगा, यह लड़का... इस लड़के का पिता... सब पुरूष जाति... पुरूष... पुरूष.... जो स्त्री के शरीर को कुत्ते की हड्डी की भांति चबाते हैं ।"[2]

अमृता प्रीतम ने पिंजर उपन्यास के पात्र पूरो के माध्यम से स्त्री जीवन की व्यथा और समाज में स्त्री की स्थिति का बहुत सूक्ष्म और बारीक चित्रण किया है। पूरो एक समय सोचती है – "**सब गीत सुन्दर लड़कियों के ही गुण गाते हैं, सारे भजन सच्चे प्रेम का ही वर्णन करते हैं । क्या कभी ऐसे गीत भी बनेंगे जिनमें मुझ जैसी लड़कियों के रूदन की कथा लिखी जाएगी ? क्या कभी ऐसे भजन भी होंगे जिनका कोई भगवान ही न होगा ?**"[3] अमृता प्रीतम का संवेदनशील हृदय पूरो जैसी लड़कियों के लिए दर्द से कराह उठता है और वे 'पिंजर' जैसी कालजयी रचना में पूरो के दर्द को बयान करती हैं । अमृता प्रीतम सूफी के प्रसिद्ध शायर बुल्लेशाह को याद करती हैं और काली जुबान, साजिशों को मुंह तोड़ अवाब अपनी कलम से देती हैं। वे लिखती हैं – "**इस जलवे के अलावा, इस हसिन मंजर के अलावा, जो कुछ भी है, निंदा से काली जुबानों और साजिशों से काले हो गये अक्षरों से लेकर, घरों की कोठरियों, बाजारों के चौबारों और जंग के मैदानों में बलि दिए जा रहे, इंसानों तक मेरा 'बे' है, जिसके लिए मेरा 'अलिफ' मेरे माथे का तेवर है।**"[4] आगे वह लिखती हैं – **"इंसान को महदूद से लामहदूद करने वाला यह अक्षर आज हमारे चिंतन की वर्णमाला में खो गया है । मेरे लफ्जो में – यह हमारी तहजीब के घर से चोरी हो गया है..."**[5]

अमृता प्रीतम ने मानव जीवन की स्वतंत्रता पर आघात करने वाली व्यवस्था के विरूद्ध हमेशा से आवाज उठाई है। उन्होंने अपने एक और महत्वपूर्ण उपन्यास 'दिल्ली की गलियाँ' उर्फ 'कामिनी' में नायिका कामिनी के द्वारास्त्री स्वतंत्रता पर बात करते हुए लिखा हैं – "**हमारे देश की सभ्यता औरत से इजाजत लेना नहीं सिखाती... औरत के साथ विवाह जबरदस्ती किया जाता है.... औरत के साथ इश्क भी जबरदस्ती किया जाता है... और औरत की 'जिकर' भी जबरदस्ती.... ।**"[6]

अमृता प्रीतम ने अपने समय में स्त्रीवाद, स्त्रीवादी आंदोलन और स्त्री स्वतंत्रता के नारे को न केवल देखा और सुना था बल्कि उसकी असलियत को सामने से देखते हुए इसकी पोल खोल दी। 'कामिनी' उपन्यास की नायिका कामिनी एक बार शहर में औरतों की एक कान्फ्रेंस में हिस्सा लेती है। इस कान्फ्रेंस में पहली मांग मंहगाई कम करने की थी, दूसरी कालाबाजारी की रोकथाम से और फिर औरतों के सामूहिक तौर पर उसकी हालत और अधिकारों पर विचार किया गया। इसमें मूलत: औरत की स्वतंत्रता और उन्नति पर चर्चा की गई । इसके बारे में अमृता जी लिखती हैं –"**स्वतंत्रता और उन्नति सही अर्थों में कहीं नहीं है, पर इन दों लफ्जों को हर देश की औरत अपने मुंह में इस तरह चूस रही है जैसे ये दोनों अक्षर च्युइंगम हो ।**"[7] आगे अमृता प्रीतम सारे विचार-विनियम को एक पंक्ति में कहती हैं – **"यह कोख के अंधेरे से लेकर कब्र के अंधेरे तक का एक सफरनामा था । औरत जात का सफरनामा ।"**[8] वास्तव में 'औरत जात का सफरनामा' शब्द से अमृता प्रीतम औरत की जिंदगी के संघर्ष को रेखांकित करती हैं। अमृता जी यह जानती हैं कि स्त्रीवाद स्त्री मुक्ति आंदोलन के नाम पर स्त्री को गुलाम बनाने की प्रकिया है।

वैसे तो अमृता प्रीतम अपने कई उपन्यासों में स्त्री जीवन की विभिन्न दुख – दर्द, पीड़ा, व्यथा और समस्या को सामने लाती हैं। इस संदर्भ में अमृता प्रीतम द्वारा रचित 'उनके हस्ताक्षर' उपन्यास विशेष उल्लेखनीय है। 'उनके हस्ताक्षर' एक लघु उपन्यास है । लेकिन अपने लघु कलेवर, मात्र पच्चीस पृष्ठों में भी यह

उपन्यास स्त्री जीवन के कई संवदेनशील पहलुओं को यथार्थ की धरातल पर पाठकों के सामने लाता है। यह उपन्यास 'जिंदगी और हवा' के आपसी बातचीत और भारत की सात बेटियों के दुख– दर्द की कहानी है। जिंदगी इस काल की बेटियों से मिलना चाहती हैं, उसे कुछ देना चाहती है । हवा उससे पूछती है कि यहां लाखों बेटियां बसती है, तुम किस-किस से मिलोगी। जिंदगी ने भारत को चुना और वे भारत भी सात बेटियों से मिलने वे सूरज के साथ घोड़ों के रथ पर सवार होकर निकल जाते हैं। हवा उसकी साथी बनती है और बहुत खोजने पर जिस स्त्री में आजादी, स्वतंत्रता, चेतना मौजूद है, वह उन्हें उल्का में मिलती है। जिंदगी हवा से कहती है कि वह इस काल की बेटियों से मिलना चाहती है और उसे कुछ सौगात देना चाहती है- **"अब आई हो तो मेरी एक मदद करो, मैं आज इस धरती की बेटियों से मिलना चाहती हूँ – इस काल की बेटियों से और उन्हें कुछ देना चाहती हूँ... तुम मुझे उसके पास ले चलो।"**
हवा हैरान हुई, कहने लगी – "इस धरती की लाखों बेटियां हैं, किस – किसके पास ले चलूँ ?''
जिंदगी ने जबाब दिया –"धरती बहुत बड़ी है, आज सिर्फ एक टुकड़ा देखूँगी, एक देश, जिसे भारत कहते हैं।"
हवा ने फिर किन्तु किया – "लेकिन तुम तो कण – कण में हो, कहां नहीं हो ? फिर यह सवाल कैसा?''[9]

हम सभी यह अच्छी तरह जानते है कि हवा को कहीं भी आने – जाने में कोई रोक-टोक नहीं और जिंदगी हर जगह – व्याप्त है। लेकिन यदि नजदीक से निरीक्षण किया जाए तो दुनिया भर में लाखों – करोड़ो औरतें हैं जो सिर्फ जीने के लिए जी रही हैं। उनकी जिंदगी गुलाम है। इसलिए यह जिदगी उन लोगों को कुछ सौगात देने की आकांक्षा रखती है। अमृता प्रीतम हवा और जिंदगी के बीच वार्तालाप को आगे बढ़ाते हुए लिखती हैं – **"सो तुम इस काल की सात बेटियों से मिलना चाहती हो।"**

"हां !''

जिंदगी एक चिंतन में उतर गई और कहने लगी – "उनसे बाते करना चाहती हूँ। उनके दुख-सुख को जानना चाहती हूँ और उन्हें एक – एक सौगात देना चाहती हूँ।"[10]

इस तरह उनका सफर शुरू हो जाता है। रास्ते में वे नारी जीवन की छटपटाहट, उसके ऊपर हो रहे अत्याचार, उत्पीड़न को देखते हैं और उनका दिल दहल उठता है। पहले वे सामाजिक, पारिवारिक परंपरा की दीवारों में कैद एक स्त्री के दुख को देखती हैं। दूसरी स्त्री उन्हें उन बसतियों में मिलती है जो अपने बीमार पति और बच्चों के लिए मेहनत कर रही है। उसके एक भूखे बेटे को एक सेव चुराने के अपराध में जेल जाना पड़ा। वह किसी तरह अपना और परिवार का पेट पाल रही है। आगे जिदंगी महसूस करती है – **"यकीन नहीं होता कि दुनिया में स्त्री का एक पहलू यह भी है, जिसने मेरा नाम तक नहीं सुना... "**[11] तीसरी स्त्री भारतीय समाज की एक प्रथा – सती प्रथा का शिकार होते हुए दिखाई गई है। कैसे एक जीती जागती स्त्री को आग के हवाले कर दिया जाता है। एक विधवा की क्या दुर्दशा है, इस स्त्री के जीवन में देखने को मिलता है। आगे वे दहेज के लालच में ससुराल वाले के अत्याचार का शिकार होते स्त्री को देखती हैं। हमारे समाज पर करारा व्यंग्य करते हुए हवा कहती है कि विवाह एक व्यापार है जिसमें वर पक्ष को वधू पक्ष पर अत्याचार करने और उसकी संपत्ति छीनने का लाइसेन्स प्राप्त हो जाता है। उस स्त्री को इसके ससुराल वालों ने दहेज के लालच में जिंदा जला दिया।

इस उपन्यास में छोटे –छोटे घटनाओं और खंडो में अमृता प्रीतम ने हमारे समाज के विविध कुरीतियों, परंपराओं, समस्याओं को रेखांकित करते हुए उल्का के द्वारा उन समस्त स्त्रियों को इनके विरूद्ध लड़ने की ताकत

दी है। इस उपन्यास में मूलत: तीन ही पात्र हैं – हवा, जिंदगी और उल्का। हवा और जिंदगी प्राकृतिक तत्व होते हुए प्रतीकात्मक रूप में हमारे सामने आये हैं, वे प्राकृतिक कम और मानवीय अधिक है। हवा में जीवन का अनुभव दिखता है। वह अधिक गंभीर, धीर है। जिंदगी में जीवनानुभव की कमी है। उसे लगता है कि दुनिया में सब कुछ अच्छा है, लेकिन जैसे- जैसे वह अलग- अलग स्त्रियों से मिलते जाती है, उसकी सोच में बदलाव आने लगता है, उसके मन में निराशा का भाव भरने लगता है। अंत में उल्का से मिलकर उसे लगता है कि वह जो सौगात लाई है उल्का को दे सकती है। उल्का मानवता की प्रतीक है। उसमें संघर्ष करने की ताकत है। उसे जिंदगी का अर्थ पता है। वह जिंदगी का स्वागत करती है। उसमें चेतना का बीज है। वह कहती हैं – **"औरत हूँ न, गर्भ धारण कर सकती हूँ। मेरे कई जन्म मिट सकते हैं, पर यह वरदान नहीं मिट सकता। चेतना के बीज से मैंने जिस जन्म को धारण किया, मेरे जन्म को मिटा दिया गया – मैं फिर से जन्म लेती हूँ – फिर से मिटाई जाती हूँ .... मैं हर जन्म में मौत के कागज पर जिंदगी के हस्ताक्षर करती रही... बस, इतना जानती थी कि एक दिन आएगा – और यह बीज मेरे भीतर से उगेगा – मुझे यह दुनिया को देना है – जब उल्का की एक चिंगारी होकर इस दुनिया में आई थी – तभी से जानती हूँ।"**[12]

आधुनिक सभ्य कहा जाने वाले इस उत्तर- आधुनिक युग में यह उपन्यास हमारे सामने कई गंभीर प्रश्न रखता है। सदियाँ बदल गई लेकिन स्त्री की दशा में कोई परिवर्तन नहीं आया। आज भी हमारे देश में स्त्री शोषण, अत्याचार, हवस का लगातार शिकार हो रही है। कहीं उसे शारीरिक गुलामी, आर्थिक-सामाजिक गुलामी का शिकार होना पड़ रहा है तो कहीं उसे मानसिक पीड़ा झेलनी पड़ रही है। अमृता प्रीतम के प्राय: सभी उपन्यासों में स्त्री जीवन की दुर्दशा पर पैनी दृष्टि से लेखन मिलता है। 'कम्मी', 'नीना', कैली' उर्फ रंग का पत्ता, 'कोरे कागज', 'आंक के पत्ते', 'तेरहवां सूरज', उनचास दिन', 'रतना उर्फ डाकू' , 'कच्ची सड़क, में स्त्री चेतना का स्वर मुखर हुआ है। लेकिन एक बात यह उल्लेखनीय है कि अमृता प्रीतम ने इस पुरूष प्रधान समाज में स्त्री की दुर्दशा पर लिखते हुए भी उन पुरूषों की सराहना भी की है जिन्होंने स्त्री को इस विषम परिस्थितियों में लड़ने में सहयोग किया, उनके सहयात्री बने। जैसे कैली उपन्यास का बख्शा, पिंजर का रशीद, नीना का तेज, कामिनी का नासिर, एक थी अनीता का रामबाली, कोरे का कागज के निधी महाराज आदि।

अमृता प्रीतम के उपन्यासों में भारतीय स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को, उनकी पीड़ा को, दुख-दर्द, समस्याओं की अभिव्यक्ति मिलती है। उनके उपन्यासों की स्त्री कमजोर नहीं है बल्कि वे परिस्थितियों से लड़ती है जूझती है और संघर्ष करते हुए विषम से विषम परिस्थिति में अपने लिए कही न कहीं सिर ऊँचा करके जीने की राह तलाश ही लेती है।

संदर्भ सूची

1. प्रीतम, अमृता, (सं.) इमरोज, अमृता प्रीतम की तकरीरें, मन मंथन की गाथा, किताबघर प्रकाशन,
1. नयी दिल्ली, संस्करण : 2010, पृ. सं. – 188
2. प्रीतम, अमृता, अमृता प्रीतम : चुने हुए उपन्यास, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, तेरहवां सस्करण : 2010,पृ.सं. 31-32

3. प्रीतम, अमृता, अमृता प्रीतम : चुने हुए उपन्यास, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, तेरहवां सस्करण : 2010,पृ. सं. 29
4. प्रीतम, अमृता, (सं.) इमरोज, अमृता प्रीतम की तकरीरें, मन मंथन की गाथा, किताबघर प्रकाशन,
5. नयी दिल्ली, संस्करण : 2010, पृ. सं. – 59
6. 5. प्रीतम, अमृता, (सं.) इमरोज, अमृता प्रीतम की तकरीरें, मन मंथन की गाथा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली,संस्करण : 2010, पृ. सं. – 60

   6. प्रीतम, अमृता, कैली, कामिनी और अनीता, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण : 2011, पृ. सं. 125
7. प्रीतम, अमृता, कैली, कामिनी और अनीता, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण : 2011, पृ. सं. 128
8. 8. प्रीतम, अमृता, कैली, कामिनी और अनीता, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण : 2011, पृ. सं. 128
9. प्रीतम, अमृता, उनके हस्ताक्षर, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, सस्करण : 2009, पृ. सं- 81
10. प्रीतम, अमृता, उनके हस्ताक्षर, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, सस्करण : 2009, पृ. सं- 81
11. प्रीतम, अमृता, उनके हस्ताक्षर, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, सस्करण : 2009, पृ. सं- 88
12. प्रीतम, अमृता, उनके हस्ताक्षर, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, सस्करण : 2009, पृ. सं- 104

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

लाहौर अधिवेशन और पूर्ण स्वराज *(1929) :*

डॉ0 कुमारी संगीता
इतिहास विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

31 दिसंबर 1929 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन तत्कालीन पंजाब प्रांत की राजधानी लाहौर में हुआ। इस ऐतिहासिक अधिवेशन में कांग्रेस के 'पूर्ण स्वराज' का घोषणा पत्र तैयार किया गया तथा 'पूर्णस्वराज' को कांग्रेस का मुख्य लक्ष्य घोषित किया गया। जवाहरलाल नेहरू इस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये।

अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने अपने प्रेरक अध्यक्षीय भाषण में कहा "विदेशी शासन से अपने देश को मुक्त कराने के लिए अब हमें खुलकर विद्रोह करना है, और कॉमरेड आप लोग और राष्ट्र के सभी नागरिक इसमें हाथ बटाने के लिए सादर आमंत्रित हैं"। नेहरू ने यह बात भी स्पष्ट कर दी कि मुक्ति का तात्पर्य सिर्फ विदेशी शासन को उखाड़ फेंकना भर नहीं है। उन्होंने कहा "मुझे अस्पष्ट स्वीकार कर लेना चाहिए कि मैं एक समाजवादी और रिपब्लिकन हूं। मेरा राजाओं और महाराजाओं में विश्वास नहीं है। नहीं मैं उस उद्योग में विश्वास रखता हूं जो राजे महाराजे पैदा करते हैं, और जो पुराने राजाओ महाराजाओं से अधिक जनता की जिंदगी और भाग्य को नियंत्रित करते हैं, और जो पुराने राजो-महाराजो और सामंतों के लूटपाट और शोषण का तरीका अख्तियार करते हैं"।

पंडित नेहरू ने कहा कि हमारे लिए स्वाधीनता है पूर्ण स्वतंत्रता। कांग्रेस पर पूर्ण प्रभाव स्थापित हो गया था। अधिवेशन में जितने भी प्रस्ताव पास हुए, उन सबमें गांधी ने स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करने के बाद जो विचार प्रकट किए थे, उनका अनुमोदन किया गया। सभी कांग्रेस सदस्यों को आदेश दिया गया कि वे भविष्य में काउंसिल के चुनाव में भाग ना ले, और काउंसिल के मौजूदा सदस्य अपने पदों से इस्तीफा दे दें। सत्याग्रह संबंधी प्रस्ताव में राष्ट्र से रचनात्मक कार्यक्रम को उत्साहपूर्वक करने का अनुरोध किया गया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को अधिकार दिया गया कि वह जब और जहां चाहे आवश्यक प्रतिबंधों के साथ सविनय अवज्ञा तथा करबंदी कार्यक्रम प्रारंभ कर दे। 31 दिसंबर 1929 की आधी रात को भारतीय संविधान का तिरंगा झंडा फहराया गया। इस तरह 1930 की शुरुआत में जहां सर जॉन साइमन भारत के लिए संवैधानिक सुधार के प्रस्ताव बनाने में व्यस्त थे तथा ब्रिटिश सरकार गोलमेज सम्मेलन को

अंतिम रूप देने के लिए वचनबद्ध थी, कांग्रेस ने देश के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के उद्देश्य से सविनय अवज्ञा आंदोलन की तैयारियां शुरू कर दी थी।[१]

पूर्ण स्वराज की मांग परअमल :

1929 की कांग्रेस द्वारा नियुक्त कार्य-समिति ने जनवरी 1930 के शुरू में एक प्रस्ताव पास करके सभी कांग्रेस कमेटियों को 26 जनवरी को पूर्ण स्वाधीनता दिवस मनाने का निर्देश दिया। आदेश दिया गया कि उस दिन जगह-जगह लोग इकट्ठा होकर कांग्रेस का झंडा फहराएँ और एक प्रतिज्ञा पत्र सामूहिक रूप से पढ़ें। इस प्रतिज्ञा पत्र में कहा गया था कि यदि कोई सरकार हमारी स्वतंत्रता, श्रम के फलत था जीवन-निर्वाह की आवश्यक सुविधाएं छीन लेती है तो उसे बदल देने या नष्ट कर देने का हमें पूरा अधिकार है। इसमें ऐलान किया गया था कि ब्रिटिश शासन को "अब और स्वीकार करना मनुष्य और ईश्वर दोनों के प्रति पाप करना है। " इसके साथ ही यह विश्वास प्रकट किया गया कि "यदि हमने स्वेच्छा पूर्वक सरकार के साथ सहयोग करना और कर देना बंद कर दिया और उकसाए जाने पर भी हिंसा का सहारा नहीं लिया तो यह अमानवीय शासन निश्चित रूप से समाप्त हो जाएगा। 26 जनवरी को बड़े उत्साह के साथ लोगों ने प्रथम स्वाधीनता दिवस मनाया। सार्वजनिक सभाओं की भीड़ संकेत करती थी कि नए आंदोलन के लिए जनता में कितना उत्साह था।[२]

किंतु लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पास करते समय इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई योजना नहीं बनाई गई थी और न आगामी वर्ष के लिए कोई कार्यक्रम ही तैयार किया गया था। गरमदल की ओर से सुभाषचंद्र बोस ने प्रस्ताव पेश किया था कि कांग्रेस का लक्ष्य देश में समानांतर सरकार कायम करना होना चाहिए। इसके लिए मजदूरों, किसानों और नौजवानों को संगठित करना चाहिए, किंतु यह प्रस्ताव पास नहीं हो सका था। जवाहरलाल नेहरू ने इस संदर्भ में अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है– "भविष्य के बारे में हमारे सामने अभी कुछ स्पष्ट नहीं था। कांग्रेस अधिवेशन में प्रदर्शित उत्साह के बावजूद कोई यह नहीं जानता था कि संघर्ष के कार्यक्रमों में देश के लोग कहां तक साथ चल सकेंगे। हम जिन स्थल पर पहुंच गए थे वहां से अब लौटना नहीं सकते थे पर आगे का रास्ता हमारे लिए अज्ञात था।[३]

सविनय अवज्ञा आंदोलन की तैयारी:

इधर गांधी आंदोलन की प्रारंभिक तैयारियों में जुट गए। इस दिशा में उन्होंने पहला कदम यह उठाया कि सरकार को जनता की दृष्टि में पूरी तरह से गलत सिद्ध कर दिया। उन्होंने 'यंग इंडिया' में एक लेख प्रकाशित कर के सरकार के सामने कुछ शर्तें रखी और वादा किया कि यदि सरकार उन शर्तों को मान लेगी तो सत्याग्रह की सारी चर्चा बंद कर दी जाएगी। वे शर्तें थीं :

1. रुपए की विनिमय दर घटाकर 1 सीलिंग 4 पेन्स की जाये।
2. लगान में 50 फ़ीसदी कमी की जाये।
3. सिविल सर्विस की तनख्वाह आधी कर दी जाये।

4. फौजी खर्च में कम से कम 50% कमी की जाये।
5. रक्षात्मक शुल्क लगाए जाये और विदेशी कपड़ों का आयात नियंत्रित किया जाये।
6. तटीय यातायात रक्षा विधेयक पास किया जाये।
7. सीआईडी विभाग खत्म कर दिया जाये या उस पर सार्वजनिक नियंत्रण हो।
8. हिंदुस्तानी कि आत्मरक्षा के लिए अग्नि अस्त्र रखने का लाइसेंस दिया जाये।
9. नमक पर सरकारी इजारेदारी और नमक टैक्स को खत्म किया जाये।
10. नशीली वस्तुओं को बंद किया जाये।
11. उन सब राजनीतिक कवियों को छोड़ दिया जाये जिन पर हत्या करने या हत्या के प्रयत्न का अभियोग नहीं है।[४]

दांडी यात्रा और सविनय अवज्ञा आंदोलन का पहला दौर:

वायसराय ने पत्र का जो जवाब भेजा था वह काफी असंतोषजनक था परंतु इससे अधिक अंग्रेजों से आशा भी क्या की जा सकती थी। गांधी ने उनके प्रत्युत्तर में लिखा कि मैंने रूई मांगी थी और मुझे पत्थर मिला। प्रतीक्षा की घड़ियां अब समाप्त हो चुकी थी। गांधी ने योजना अनुसार अपने 78 चुने हुए शिष्यों के साथ समुद्र के किनारे किनारे दांडी यात्रा शुरू की। करीब 200 मील की पदयात्रा 24 दिनों में पूरी कर के वह 5 अप्रैल को डांडी पहुंच गए। रास्ते में किसानों ने उनका संदेश सुना जिससे प्रभावित होकर कितने ही लोग कांग्रेस के सदस्य बने और कितने ही ग्रामीणों ने सरकारी नौकरी छोड़ दी।

आंदोलन का विस्तार:

31 दिसंबर 19 सौ 29 की अर्धरात्रि को इंकलाब जिंदाबाद के नारों के बीच रावी नदी के तट पर भारतीय स्वतंत्रता का प्रतीक तिरंगा झंडा फहराया गया। इसके बाद 26 जनवरी 1930 को पूरे राष्ट्र में जगह-जगह सभाओं का आयोजन किया गया, जिनमें सभी लोगों ने सामूहिक रूप से स्वतंत्रता प्राप्त करने की शपथ ली। इस कार्यक्रम को अभूतपूर्व सफलता मिली। गांवों तथा कस्बों में सभाये आयोजित की गयीं, जहां स्वतंत्रता की शपथ को स्थानीय भाषा में पढ़ा गया तथा तिरंगा झंडा फहराया गया।[५]

संदर्भ सूची

1. बी. पट्टाभी सीतारामय्या, हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, आई (एस. चाँद, 1969), पृ 357
2. रामगोपाल, ओपी. सीट.
3. सीतारामय्या, ओपी.सीट. पृ 3***63***
4. जवाहरलाल नेहरू, एन ऑटो बायोग्राफी (एलेड, 1962), पृ 202
5. स्पेक्ट्रम, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ 368

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

मध्यकालीन भारत में स्त्री शिक्षा

नेहा सिंह
शोधार्थी
टी0डी0 कॉलेज, जौनपुर

वैदिक युग में पुरूष तथा स्त्री भेदभाव रहित शिक्षा ग्रहण करते थे। उस समय शिक्षा केवल उच्च वर्ग के लिए नहीं थी अपितु जनसाधारण वर्ग के लिए भी थी। प्रत्येक आर्य पुरूष अथवा स्त्री साहित्यिक और धार्मिक शिक्षा प्राप्त करते थे।[1] स्त्रियाँ भी वैदिक स्तुतियों का निर्माण कर सकती थी। उन्हें बलि देने की भी अनुमति थी।[2] महिलायें नृत्य, गायन जैसी ललित कलाओं का भी प्रशिक्षण प्राप्त करती थी। ज्ञान की उन्नति में मैत्रेयी, गार्ग्री, आत्रेय, सुलभा जैसी विद्वान महिलाओं ने काफी योगदान दिया।[3] मनु ने समाज में स्त्रियों को प्रतिष्ठत स्थान नहीं दिया।

मनुस्मृति के अनुसार, सन् 200ई0पू0 के लगभग लड़कियों को वैदिक उन्हें शुद्रों के समान वैदिक कार्यों को करने का अधिकार नहीं रहा।[4] बौद्ध काल के प्रारंभिक दिनों में तपस्विनी महिलाओं ने भिक्षुणी बनकर स्त्री शिक्षा के प्रसर में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की परन्तु आगे चलकर जब बौद्ध मठों ने अंतर्राष्ट्रीय कॉलेज की प्रसिद्धि को प्राप्त किया तो पुनः स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया।[5]

मध्यकाल में मुस्लिम समाज में प्रत्येक पुरूष तथा स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। यद्यपि भारत में मुस्लिम स्त्रियाँ उच्च शिक्षा के उस स्तर को प्राप्त करने में असमर्थ रही जिस स्तर को समकालीन मुस्लिम स्त्रियाँ दमिश्क या बगदाद में प्राप्त कर चुके थे।[6] मध्य युग की कट्टरपंथी विचारधारा स्त्री शिक्षा के लिये अनावश्यक एवं समाज के लिए घातक थी। मुस्लिम स्त्रियाँ पर्दा प्रथा क बन्धनों में जकड़ी हुई थी। यद्यपि कुछ लड़कियाँ शिक्षा हेतु मकतब जाती थी परन्तु वे अल्पायु में ही मकतब छोड़ भी देती थी।[7] मुस्लिम स्त्रियों की जनसंख्या का एक छोटा भाग ही शिक्षित स्त्रियों का था। जिनको सामान्य शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता था वे घरेलू कार्यों में भी दक्ष होने का प्रशिक्षण प्राप्त करती थी।[8]

मुस्लिम शासक तथा अभिजात वर्ग के लोग अपने घरों में व्यक्तिगत रूप से अपने पुत्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध करते थे। जैसे रजिया सुल्तान एक उच्च शिक्षित महिला थी। वह स्वयं विदुषी होने के साथ–साथ विद्वानों की संरक्षिका भी थी।[9] इतिहास में कुछ शिक्षित मुस्लिम महिलाओं का उदाहरण मिलता है जिन्होंने पारसी एवं भारतीय साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया है।

गुलबदन बेगम–

गुलबदन बेगम बाबर की पुत्री थी। यह असाधारण प्रतिभावान महिला थी जिसके व्यक्तित्व में विभिन्न गुणों का अद्भूत सामजस्य था। वह फारसी और तुर्की सहित कई भाषाओं की अच्छी जानकार थी।[10] उसकी असाधारण प्रतिभा का एक बड़ा प्रमाण ''हुमायूँनामा'' नामक कृन्ति है। यह कृत्ति ऐतिहासिक रूप से काफी महत्वपूर्ण है। इसमें तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन के बारे में पता चलता है।[11]

हाजी बेगम–

हाजी बेगम हुमायूँ की पत्नी थी। वह पत्र लेखन में बहुत कुशल थी तथा इन्हें औषधी एवं उपचार की भी काफी जारकारी थी।[12] हाजी बेगम की शिक्षा में अत्यंत रूचि थी और इसका प्रमाण उनके द्वारा दिल्ली में बनवाया गया मदरसा है जिसे उन्होंने अपने पति के मकबरे के बगल में बनवाया था।[13]

हमीदा बानो बेगम–

हमीदा बानो बेगम उच्च शिक्षित महिला थी। उनमें वार्तालाप करने की अद्‌भूत कला थी। वह एक शक्तिशाली चरित्र की महिला थी तथा उत्तम शिक्षा के प्रति गहरा लगाव था।[14]

महाम अनगा–

महाम अनगा अकबर की धाय माँ थी। वह एक उच्च शिक्षित महिला थी। वह अकबर के हरम की मृत्यु पर्यन्त तक अधीक्षिका रही। सम्राट अकबर के शासन के प्रारंभिक दिनों में प्रशासन कार्यों में माहम का काफी हस्तक्षेप था। उसने अपने कौशल और ज्ञान से काफी प्राभावित किया। उसने दिल्ली में 'खैर–उल–माजलिस' नामक एक मदरसे का निर्माण करवाया जो मस्जिद के साथ संलग्न था।[13]

सलीमा बेगम–4

सलीमा बेगम पढ़ने लिखने की बहुत शौकीन थी। उसका फारसी भाषा एवं साहित्य पर पूर्ण स्वामित्व था।[16] उसकी कविताओं का संग्रह 'दीवान' नामक शीर्षक से प्रसिद्ध हुआ जो फारसी साहित्य में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[17]

जानन बेगम–

जानन बेगम अब्दुल रहीम खानखाना की उच्च शिक्षित पुत्री थी। उसने कुरान शरीफ में दक्षता प्राप्त की थी और इस पर टीका की रचना की। इस सफलता से उत्साहित होकर अकबर ने उसे 50,000 दीनार का ईनाम दिया।[18] जानन बेगम एक कवयित्री भी थी।[19]

नूरजहाँ–

बादशाह जहांगीर की पत्नी नूरजहाँ श्रेष्ठ गुणों वाली महिला थी। वह ज्ञान की विभिन्नि शाखाओं जैसे संगीत, नृत्य, चित्रकारी, सिलाई पाकशास्त्र, सजावर, घुड़सवारी, शिकार इत्यादि सभी कलाओं में कुशल थी।[20] वह किताबों को बहुत पसंद करती थी तथा उसने अच्छी किताबों का संग्रह करके एक पुस्तकालय बनाया था।[21] उसे तत्कालीन राजनीति एवं सांस्कृतिक मामलों में गहन रूचि थी। वास्तव में वह राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में प्रतिभाशाली महिला थी।[22]

मुमताज महल–

बादशाह शाहजहॉ की पत्नी बेगम मुमताज एक उच्च शिक्षित महिला थी। उसे अरबी तथा फारसी भाषा पर विशेष स्वामित्व था।[23] वह अपने साहित्यिक ज्ञान एवं काव्यात्मक प्रतिभा के लिए जानी जाती थी। वह फारसी भाषा में रचनायें भी लिखती थी।[24]

सतीउन्न–निशां–

सतीउन्न निशां एक शिक्षित फारसी महिला थी जो प्रसिद्ध कवि तालिब अमुली की बहन थी। वह विद्वानों तथा चिकित्सकों के परिवार से सम्बन्ध रखती थी। तहजीब और शिष्टाचार के बल पर उसे

मुमताज महल के समय 'मुहरदार' के पर स्थापित होने का अवसर प्राप्त हुआ।[25] सतीउन्न–निशां पारसी और अरबी भाषा की प्रकांड विदुषी महिला थी। वह कुरान शरीफ का पढ़ने के साथ–साथ उसके अर्थ को भी समझाती थी।[26]

जहाँआरा–

जहाँआरा बादशाह शाहजहाँ की बड़ी पुत्री थी। उसने उच्च शिक्षित महिला सतीउन्न निशां की देख–रेख में कुरान तथा फारसी भाषा में शीघ्र ही दक्षता प्राप्त कर ली।[27] उसके दो प्रसिद्ध ग्रन्थ थे उनमें से एक 'मुनिश–उल–अरवाह' है जो अजमेर के सूफी संत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की जीवनी है तथा दूसरा 'शाबिया' है जो उसके आध्यात्मिक शुरू मुल्लाशाह बदख्शी की जीवनी है।[28]

हाफीजा मरियम–

हाफीजा मरियम एक शिक्षित महिला थी। कुरान शरीफ को कंठस्थ याद करने के कारण उसे हाफीजा कहा जाता था। औरंगजेब ने प्रभावित होकर हाफीजा को अपनी पुत्री जैबुउन्न–निशां की शिक्षिका नियुक्त किया था।[29]

जैबुउन्न–निशां–

जैबुउन्न निशां बचपन से ही काफी प्रखर थी। उसने मात्र 7 वर्ष की आयु में औरंगजेब को कुरान पढ़कर सुनाया जिससे प्रभावित होकर औरंगजेब ने उसे 30 हजार सोने की मुहर से सम्मानित किया।[30] वह अनेक शिक्षकों के निर्देशन के बल पर एक प्रसिद्ध कवियत्री बन गई। वह विभिन्न लेखों जैसे–नस्ख, शिकस्त, नस्तालिख आदि को अपने हाथों से लिखती थी।[31] वह गणित तथा खगोल विज्ञान में भी निपुण थी। वह कवियों, विद्वानों तथा लेखकों को उनके गुणों के आधार पर पुरस्कृत भी किया करती थी।[32]

जीनतउन्न–निशां–

जीनतउन्न–निशां की शिक्षा अपने माता–पिता के कठोर नियंत्रण में हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि वह इस्लामिक सिद्धांतों में निपुण हो गयी।[33] शिक्षित होने के साथ–साथ वह भी अन्य मुगल राजकुमारीयों की भाँति विद्वान एवं शिक्षित लोगों को प्रोत्साहन एवं अनुदान प्रदान करती थी।[34]

बीबी वलिया–

बीबी वलिया एक उच्च शिक्षित एवं धार्मिक महिला थी। उसका उर्दू, फारसी तथा अरबी तीन भाषाओं पर पूर्ण स्वामित्व था। उसने उर्दू एवं फारसी भाषाओं में रचना की थी।[35]

शेख रैंगरेजिन–

शेख रैंगरेजिन एक श्रेष्ठ चरित्र तथा महान कवियत्रिक गुणों वाली महिला थी। उसकी कविताएँ हिन्दी भाषा में ब्रज भाषा से ताल्लुक रखती थी।[36]

उपर्युक्त महिलाओं के अतिरिक्त बेगम जियु, रोशनआरा, साहिबजी, मीर मिरान, जुब्दातुन–निशां इत्यादि इस काल की अन्य शिक्षित मुस्लिम महिलायें थी। मध्यकालीन भारत में कुछ मुस्लिम शासकों एवं सरदारों ने लड़कियों के लिए विद्यालयों की भी स्थापना की थी। गियासुद्दीन खिलजी ने सांरगपुर में ललित कला और शिल्प कला का एक स्कूल बनवाया। यहाँ पर महिलाओं को नृत्य, संगीत, सिलाई, बुनाई, काष्ठकला स्वर्णकार कला जैसे कलाओं का प्रशिक्षण दिया जाता था। अकबर भी स्त्री शिक्षा में विशेष रूचि रखता था। उसने फतेहपुर सीकरी में लड़कियों के लिए एक स्कूल बनवाया। जफर शरीफ

की 'कानून–ए–इस्लाम' के अनुसार, मध्यकाल में लड़कियों की शिक्षा के लिए बहुत स्कूल थे। इनमें से अधिकांशः निजी स्वामित्व के स्कूल होते थे जहाँ पर प्रौढ़ महिलायें कुरान, साहित्यिक किताबें जैसे गुलस्ता, बुश्तन तथा कुछ नैतिकता की किताबों को पढ़ाती थी।[37]

लड़कियों के लिए भी मकतब संस्कार होता था। जब लड़का या लड़की 4 वर्ष, 4 माह और 4 दिन की आयु पूरी कर लेता था तब यह संस्कार होता था।[38] मकतब संस्कार के बाद लड़की अपना अध्याय पवित्र कुरान के अक्षरों से आरम्भ करती थी।[39] कुरान की पढ़ाई पूरी होने पर 'खत्म कुरान' संस्कार मनाया जाता था तथा इस अवसर पर शिक्षक को बहुमूल्य उपहार भी प्रदान किया जाता था।[40] वास्तव में, शिक्षा का आरम्भ एवं समाप्त होना लड़की एक जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना थी।

बाल्यकाल में लड़की आपनी प्रारंभिक शिक्षा लड़कों के साथ मकतब में ही प्राप्त करती थी। कुछ मकतब केवल लड़कियों के लिए भी होते थे।[41] प्रायः प्राथमिक शिक्षा के उपरान्त सामूहिक व्यवस्था न होने के कारण उनकी शिक्षा समाप्त हो जाता करती थी। परन्तु कुछ लड़कियाँ परिवार की आर्थिक स्थिति के अनुसार निजी स्कूलों में या घर पर शिक्षाा ग्रहण करती थी।[42] यद्यपि कुछ मुस्लिम घरों की लड़कियाँ उच्च शिक्षित थी तथापि उनकी शिक्षा में गम्भीर रूकावटे भी थी। एक मुगल राजकुमारी की शिक्षा का अंत उसका विवाह हो जाने पर ही हो जाता था।[43] यही कारण है कि उनमें से कुछ को ही किसी भाषा पर अधिकार पर अधिकार हो पाता था। उदाहरण के लिए, गुलबदन बेगम की लिखावट पर उसकी शादी का काफी प्रभाव पड़ा और उसका प्रमाण उनकी 'हुमायूँनामा' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें अशुद्ध वर्तनी देखने को मिलती है।[44]

निष्कर्षतः यह नहीं कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भारत में स्त्री शिक्षा का कोई अस्तित्व नहीं था। राजघराने, सामन्तों तथा कुछ मुस्लिम परिवार की लड़कियाँ अच्छी शिक्षा प्राप्त करती थी। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली स्त्रियों की शिक्षा संतोषजनक नहीं थी। विधवाओं की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता था जिसके परिणामस्वरूप कुछ शिक्षित विधवायें शिक्षिकायें भी बन जाती थी। वास्तव में, स्त्रियों की औसत शिक्षा मध्यवर्गीय परिवार में हिन्दी, फारसी था प्रादेशिक भाषा का प्रचलित ज्ञान होता था ताकि वो अपने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ए0एस0 अल्तेकर, ऐजुकेशन इन ऐन्सियन्ट इंडिया, पृ0 22
2. एफ0ई0 कीय, इंडियन एजुकेशन इन ऐन्सियन्ट एण्ड लैटर टाइम्स, पृ0 74
3. डॉ0 ए0एस0 अल्टेकर, एजुकेशन इन ऐन्सियन्ट इंडिया, पृ0 210–12
4. डॉ0 ए0एस0 अल्टेकर, एजुकेशन इन ऐन्सियन्ट इंडिया, पृ0 214
5. डॉ0 ए0एस0 अल्टेकर, एजुकेशन इन ऐन्सियन्ट इंडिया, पृ0 220–32
6. एस0 एम0 जाफर, एजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, पृ0 3–8
7. एन0एन0ला0 प्रमोशन ऑफ लर्निंग इन इंडिया, ड्यरिंग मुहम्मडन रूल, पृ0 200
8. एस0 एम0 जाफर, एजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, पृ0 187
9. यूसूफ हुसैन गिलिम्यसिज ऑफ मिडिवल इण्डियन कल्चर, पृ0 72–73
10. गुलबदन बेगम, हूमायूंनामा, अनु0 बेवरीज, पृ0 79
11. जीनत कौसर, मुस्लिम वूमैन इन मिडिवल इंडिया, पृ0 152–53
12. अबुल फजल, अकबरनामा, वोल्यूम तृतीय, अनु0 बेवरीज पृ0 107–108
13. एस0के0 बनर्जी हुमायूँ बादशाह, वोल्यूम द्वितीय पृ0 317
14. गुलबदन बेगम, हूमायूंनामा, अनु0 बेवरीज, पृ0 151

15. अबुल फजल, अकबरनामा, वोल्यूम द्वितीय, अनु0 बेवरीज पृ0 313
16. बदायूँनी, मन्तखब–उत–तवारीख, वोल्यूम द्वितीय, अनु0 लेख, पृ0 389
17. जहाँगीर, तुजुक–ए–जहाँगारी, वोल्यूम प्रथम, अनु0 एंड सम्पा0 रोजर्स एण्ड बेवरीज, पृ0 232
18. ए0एम0 ए0 शुस्त्री, आउट लाइन ऑफ इस्लामिक कल्चर, पृ0 589
19. जीनत कौसर, मुस्लिम वुमैन इन मिडिवल इडिया, पृ0 156
20. जहाँगीर, तुजुक–ए–जहाँगीरी, वोल्यूम प्रथम, अनु0 एंड सम्पा0 रोजर्स एण्ड बेवरीज, पृ0 319
21. शाहनवाज खान, मासिर–उल–उमरा, वोल्यूम द्वितीय, अनु0 बेवरीज, पृ0 1079
22. एस0एम0 जाफर, ऐजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, पृ0 194
23. ऐडवडर्स एण्ड गैरेट, मुगल रूल इन इंडिया, पृ0 160
24. एस0एम0 जाफर, ऐजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, पृ0 195
25. शाहनवाज खान, मासिर–उल–उमरा, वोल्यूम प्रथम, अनु0 बेवरीज, पृ0 260–61
26. जीनत कौसर, मुस्लिम वुमैन इन मिडिवल इंडिया, पृ0 158
27. एन0 एन0 ला0, प्रमोशन ऑफ लर्निंग इन इंडिया, पृ0 203
28. एस0 एम0 जाफर, एजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, पृ0 195
29. जे0एन0 सरकार, स्टडिज इन मुगल इंडिया, पृ0 79
30. इलिएट एंड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, वोल्यूम तृतीय पृ0 196
31. जे0एन0 सरकार, स्टडिज इन औरंगजेब रीजन, पृ0 130
32. मो0मुस्तैद खान साकी, मासिर–ए–आलमगिरी, अनु0 सरकार, पृ0 322
33. मो0 मुस्तैद खान साकी, मासिर–ए–आलमगिरी, अनु0 सरकार, पृ0 323
34. इलिएट एंड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वोल्यूम सप्तम् पृ0 197
35. अकबर औरनवी, बिहार में उई जुबान वा अदब का इरतक, फिरोम 1204–1857 ए0डी0 (उई), पृ0 222–23
36. जीनत कौसर, मुस्लिम वुमैन इन मिडिवल इंडिया, पृ0 166
37. एस0एम0 जाफर, एजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, पृ0 189–90
38. एफ0ई0 कीय, इण्डियन ऐजुकेशन एन्सियन्ट एण्ड लैटर टाइम्स, पृ0 130
39. के0 एम0 अशरफ, लाइफ एण्ड कन्डीशन ऑफ दी पीयूप्ल ऑफ हिन्दुस्तान, पृ0 249
40. एस0एम0 जाफर, ऐजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, पृ0 191
41. एस0एफ0 जाफर, सम कल्चरल ऐस्पेक्टस ऑफ मुस्लिम इंडिया रूल इन इंडिया, पृ0 85
42. एस0एफ0 जाफर, ऐजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, पृ0 189'192
43. इलिएट एंड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वोल्यूम सप्तम्, पृ0 149
44. पी0एन0 चोपड़ा, लाइफ एण्ड लैटर्स अण्डर दी मुगल्स, पृ0 149

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

INDIAN PRESIDENT RULER OR RUBBER STAMP

Dr. Ajit Kumar
Assistant Teacher
+2 High School
Jamui Bazar, Jamui

Indian democracy is regarded to be the world's largest democracy. India is one of the oldest civilizations but it is regarded to be very young nation.

The government of India which is also known as a union government was established by the constitution of India. Our Indian constitution incorporates positive liberalism which is also identified as democratic socialism. Constitution guarantees various privileges to the citizens like justice liberty equality secularism and socialism.

In India we follow the "Westminster's model of government" which places the president as the head of the state and the prime minister as the head of the government. The president is regarded as a dignified representation of the people. The original constitution had deliberately left any description of making the distinguished head of the Indian republic formally bound by the advice of the ministers. As Nehru had visualized that power "really resides in the ministry and in the legislature and not in the president (under the fourth republic) we did not give him any real power but we have made his position one of authority and dignity."[1]

The forty second amendment of 1976 amended article 74 in a way that the president shall act in accordance with the advice of his ministers. The forty fourth amendments of 1978 made further amendments in the same article specifying that the president shall have the power to return a matter for the reconsideration of the ministers but he shall act in accordance with the reconsidered advice.

Before we go in to the debate whether the president is a true head or just a titular head as he is often regarded in the context of the Indian president.

We must know what powers and functions the president has according to the constitution.

As the head of the executive the president of India has various powers which come under the article 53 of the Indian constitution.

1. The president shall be vested with the executive powers of the union. The president shall exercise this power either directly or through officers who are subordinate to him according to the constitution.

2. He is the supreme commander of the defense forces of the union and the president shall exercise this duty as regulated by law.

3. Nothing in this article shall be deemed to transfer to the president any of the function that is conferred by any of the existing law on the state government of any state or prevent the parliament from conferring by law functions on authorities other than the president.

While the presidential government is based on the doctrine of separation of powers, the parliamentary government stands for the concentration of executive and legislative powers which is the root of our constitution.

Being the head of the state the president has these particular functions and powers.

(1) Executive powers:

Running of all administration in his name, making rules for the conduct of government work among the elected members.

Having information of all the important decisions of the cabinet.

Making important appointments and their removal.

Maintenance of foreign relations.

Holding the post of supreme commander of the defense forces.

Approval for rules and regulations for the working of Supreme Court and any other independent agency.

Directing the state government during the constitutional breakdown under the article 356.

Running of the administration of union territories and scheduled and tribal areas.

(2) Legislative powers:

Summoning and dissolving of the Lok Sabha.

Making nomination of 12 members to the Rajya Sabha and 2 of Lok Sabha.

Delivering inaugural addresses and sending messages to the parliament.

Exercising VETO power over non money bills.

E. giving prior permission for introducing certain kinds of bill in parliament.

Promoting an ordinance.

Presentation of reports and recommendations in the parliament of various commissions.

Making appointment of presiding officers of lok sabha.

Allowing extension modification or abolition of law in cases of ports and aerodromes.

Exercising absolute VETO power over state legislation in certain cases.

(3) Financial powers:

The president has the power to introduce money bill.

Keeping control over contingency funds of India.

Presentation of budget in the parliament.

Appointment of finance commission.

Determining the shares of state in shares of income tax and amounts of grants in aid for jute export duty to the state of Assam, Bihar, Orissa and west Bengal.

(4) Miscellaneous powers:

He has the power of reference in any matter of public importance involving the facts with the advisory opinion of Supreme Court.

Determining the strength of the judges of high courts.

Making rules for the working of union public service commission.

Setting up of official language commission for the use of Hindi.

Making special regulations for the state of Jammu and Kashmir.

Making rules for administration of scheduled tribal areas.

In the judicial powers which the president has the power to grant pardons or commute the sentence of any person convicted of any offence. These cases may also include court martial. Thus we find that our president has immense powers. Yet our constitution remains silent on the manner in which the power of the president can exercise these powers. He can exercise these powers with the advice of the cabinet or the law commission of India on capital punishment.

But it is often a topic of debate whether he is a real power or a mere rubber stamp. The president is certainly like a English monarch. He is the head of the state with "titular authority." the real authority is in the hand of the cabinet headed by the prime minister. Ambedkar rightly said that the "president is the head of the state but not executive".

It would be however wrong to say that he is a mere rubber stamp. He is regarded to be a friend, philosopher and guide to the government. He has to act by the advice of his ministers; still there are some areas where he enjoys absolute powers such as the appointment of prime minister in case when there is no majority in lok sabha. In 1996 Dr. Shankar Dayal Sharma appointed Vajpayee as the prime minister as the leader of the largest party.

The president also plays a very responsible role at times of exceptional crises at the death of a ruling prime minister or during a tussle of power among various parties and leaders. As he is to protect and defend the constitution because he has taken oath for such.

Like the English monarch the president is the symbol of national unity. He is a magnet of loyalty. The Supreme Court says about the president that he is like a king not only in words but he is given a pervasive and persuasive role. He is having the most dynamic role as a crown which keeps him away from the regular politics and power but has great influence over it. He has a role which is so important but has to take the advice of the ministers in order to maintain a smooth democracy. The position of the president also depends upon the personality of the president in person such as the persona of Radha Krishnan, Dr. A. P. J. Abdul Kalam Azad, Pratibha Patil are some of such towering personalities as president. So we can clearly say that the president can no longer be regarded as a mere rubber stamp in our democracy.

References:

1) Constituent assembly debates, Vol. 4, P. 736.

2) Constituent assembly debates, Vol. 7, P. : 32.

3) The Hindustan Times, Patna (Bihar), April 18 1996.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के पथ पर बाधा क्यों ?

डॉ0 रम्या जी एस नायर
श्री शंकराचार्या संस्कृत विश्वविद्यालय
प्रादेशिक केंद्र, तिरुवनंतपुरम

भारत विविधताओं का देश है। न केवल भौगोलिक दृष्टि से भाषा, जाति, धर्म तथा रूप, रंग एवं खान–पान की दृष्टि से भी यहाँ विविधता है। इस विविधता में भी देश में एक सांस्कृतिक एकता है। इस एकता का श्रेय हमारे देश की भाषा, राजभाषा हिंदी को जाता है। हिंदी ही देश में एकता का संचार करती है और विविधताओं से भरे भारत को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करती है। देश के स्वतंत्र होने पर 14 सितंबर, 1949 को देवनागरी लिपी में लिखी हिंदी को भारत की राजभाषा घोषित किया गया था और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1) में इसको स्थान दिया गया। राजभाषा हिंदी को देश में लागू करने हेतु भारत सरकार ने 1963 में राजभाषा अधिनियम तथा 1976 में राजभाषा नियम बनाये जिसके अंतर्गत हिंदी के प्रयोग हेतु दिशा निर्देश जारी किये और यह प्रयास किया कि भारत सरकार का कार्य देश की भाषा में हो किंतु अथक प्रयास किए जाने तथा राजभाषा घोषित किए जाने के इतने वर्षों के बाद भी हिंदी अभी भी संघर्ष कर रही है। हिंदी के भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा होने के बावजूद भी वह इस रूप में अपने स्वरूप को बनाए रखने के लिए अब भी संघर्षरत है। पूर्ण रूप से उसे राजभाषा और राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा अभी तक नहीं मिला है। इसका कारण शायद हिंदी भाषा–भाषियों की इस संबंधी अनास्था और गैर हिंदी भाषियों का विरोध है। साथ ही साथ भारतवासियों के दिमाग में अंग्रेजियत और अंग्रेज़ी भाषा का भूतसवार होना भी एक कारण है। हिंदी भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा होने के बावजूद भी अपने अस्थित्व के लिए लड रही है। पूर्ण रूप से उसे राजभाषा की प्रतिष्ठा अभी तक नहीं मिला है। मेरी राय में इसका मुख्य कारण कुछ इस प्रकार है;

अंग्रेज़ी भाषा का प्रभाव

अंग्रेज़ों को भारत छोडकर लगभग 67 साल बीत चुके हैं। लेकिन अंग्रेज़ी के प्रति हमारी गुलामी अब भी बनी रही है। व्यक्ति विशेष अपने दैनिक कामकाज में अंग्रेज़ी को बहुत ज्यादा महत्व दे रहा है। भारत के संविधान द्वारा हिंदी को राजभाषा और अंग्रेज़ी को सह राजभाषा का दर्जा दिया है, किंतु अब स्थिति उल्टे हो गया है कि अंग्रेज़ी अब हमारी राजभाषा का स्थान ले लिया है। इसमें हिंदी की कोई दोष तो नहीं है। लोग ज्यादा अधुनिक बनने या दिखाने के लिए अंग्रेज़ी को बहुत ज्यादा अपनाता जा रहा है। वे अपने इज्जत या झूठी इज्जत बनाए रखने के लिए अपने दैनिक जीवन में अंग्रेज़ी काअधिक प्रयोग करने लगे है।

हमारे देश में अनेक भाषाओं के इस्तेमाल के कारण हमें किसी एक भाषा को बोलचाल का मध्यम बनाना होगा ताकि हमे पूरे भार में संपर्क बना सकें। तो फिर वह भाषा अंग्रेज़ी के स्थान पर हमारी अपनी भाषा हिंदी क्यों नहीं हो सकती, माना यह कार्य कठिन है कि समस्त भारत को हिंदी भाषा

के माध्यम से एक सूत्र में बाँधा जाये परंतु यह असंभव भी नहीं है, केवल हमें आवश्यकता है कि राजभाषा के रूप अंग्रेज़ी के स्थान पर हिंदी भाषा के प्रयोग पर महत्व देने की।

ज्ञान

राजभाषा कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित दूसरी प्रमुख बात है इस क्षेत्र में प्रयुक्त हिंदी की ज्ञान। केरल पाढ्य–प्रणाली के अनुसार यहाँ के ज्यादतर लोगों को हिंदी में बुनियादी ज्ञान तो होगा। लेकिन सामान्य हिंदी और कामकाजी हिंदी में थोडा बहुत अंतर है। काजकाजी हिंदी के लिए पारिभाषिक शब्दावली के ज्ञान होना अवश्यक है। इसके लिए राजभाषा विभाग द्वारा चलाए जाने वाले विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं उनके द्वारा प्रकाशित/तैयार किए गए पुस्तकों और सॉफ्टवेयरों का लाभ उठाना ही वाँछनीय है।

हिंदीतद भाषी कर्मियों के लिए और एक कठिनाई हिंदी व्याकरण और वर्तनी के संबंध में होता है। साथ ही अधिकारी और कर्मचारी दोनों हिंदी में काम करने में झिझाकते हैं। इसके लिए तो कार्यशालाओं का आयोजन होता है। लेकिन हिंदी अनुभाग के कर्मियों के अलावा इसमें रुचि रखने वाले विरले ही होते है तथा इन कठिनाइयों को सुधारने के लिए प्रशिक्षण के साथ निरंतर प्रयोग का भी जरूरत है।

शिक्षा प्रणाली

राजभाषा हिंदी के कार्यन्वयन में भी यह बडी बाधा बन गयी है कि उच्च कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम हिंदी नहीं होना तथा हिंदी में उच्च कोटि की पाठ्य पुस्तकों का अभाव। उच्च शिक्षा के लिए हिंदी को अक्षम सिद्ध कर दिया गया है। भारत के संघ लोक सेवा आयोग में अंग्रेज़ी का प्रश्न पत्र अनिवार्य है लेकिन हिंदी का है ही नहीं। यह समस्या बेहद गंभीर है क्योंकि अधिकतर उच्च शिक्षित लोगों का मोह अंग्रेज़ी से हट ही नहीं रहा है। फिर वे लोग कैसे हिंदी में काम करने के लिए तैयार हो जाएगा?

इसका समाधान तो सरकार की तरफ से ही होना चाहिए कि उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में तथा प्रतियोगिता परिक्षाओं में हिंदी को अनिवार्य स्थान दिलाना। साथ ही सभी केंद्र सरकारी कार्यालयों में नौकरियों के लिए होने वाली परीक्षाओं के लिए हिंदी का ज्ञान अनिवार्य तथा परीक्षाओं का माध्यम हिंदी ज़रूर रखा जाना चाहिए।

प्रशिक्षण

राजभाषा हिंदी के समुचित कार्यान्वयन के लिए प्रशिक्षण व प्रोत्साहन की बहुत ज़रूरत है। सभी केंद्र सरकारी कार्यालयों में कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों/अधिकारियों को हिंदी में काम करने के संकोच को दूर करने के लिए कार्यशालाओं का आयोजन होता है। यह तीन महीने में एक बार यानी साल में चार बार होना चाहिए। लेकिन इस प्रकार नियमित तौर पर कार्यशालाओं का आयोजन करने वाले कार्यालयों की संख्या हाथ में गिन सकते है।

कुछ कार्यालयों में नियमित रूप से हिंदी कार्यशलाओं का आयोजन होता है, किंतु इसमें भाग लेने वालों की संख्या बहुत कम है। हिंदी कर्मियों के अलावा इसमें रुचि रखने वालों का भी अभाव होता है। मात्र प्रशिक्षण से हिंदी में कार्यान्वयन संभव होना मुश्किल है इसके लिए निरंतर प्रयोग की भी आवश्यकता है।

पदों की कमी

राजभाषा नीति के अनुसार "कम से कम 25 कर्मचारियों वाले प्रत्येक कार्यलय में एक हिंदी अनुवादक और 25 अनुसचिवीय कर्मचारियों वाले प्रत्येक कार्यालय में एक हिंदी टाइपिस्ट का होना ज़रूरी है। लेकिन इससे यानी 25 से कम कर्मचारियों वाले कार्यालय में हिंदी कार्यान्वयन कैसे हो जाएगा? इसके लिए भी उपाय है कि हिंदी जानने वाले किसी और कर्मचारी को अतिरिक्त कार्य के रूप में हिंदी का भी कार्य–भार सौपता है। क्या इनके हाथों से हिंदी कार्यान्वयन सुनिश्चित रुप से चालेगा? पूर्ण रूप से नहीं हो जाएगा। क्योंकि हिंदी का काम उनके लिए एक अतिरिक्त कार्य है, वे पहले अपने यानी जिस पद के लिए उन्हें नियुक्त किया है उस काम करेगा। हिंदी के बारे में बाद में सोचेगा। इस अतिरिक्त काम के लिए उन्हें अतिरिक्त वेतन थोडी मिलता है। इसके अलावा हिंदी में काम करने के लिए ज्ञान की कमी और समय की कमी भी इसका कारण होता है।

जहाँ एक अलग हिंदी अनुभाग या कर्मी होता है वहाँ हिंदी कार्यान्वयन की अनुकूल परिस्थिति ज़रूर पैदा होगा। कार्यालयों में हिंदी कार्यान्वयन में बाधा न होने के लिए प्रत्येक कार्यालय में कम से कम एक हिंदी कर्मी होना ज़रूरी है।

निरीक्षण की कमी

प्रत्येक कार्यालय अपने हिंदी कार्यान्वयन से संबंधित बातों का विवरण 'तिमाही प्रगति रिपोर्ट' के ज़रिए हर तिमाही में नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति को भेजेगा। इस रिपोर्ट के अनुसार नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति उन कार्यालयों के हिंदी काम काज के बारे में जांच किया जाता है। लेकिन इस तिमाही प्रगति रिपोर्ट में लिखित आँकडों और वास्तविकता में दिन रात का फरक होता है। इन कमियों को दूर करने केलिए नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के एक प्रतिनिधि प्रत्येक कार्यालय में जाकर तिमाही प्रगति रिपोर्ट तथा वार्षिक कार्यक्रम में निर्देशित बातों के अनुपालन से संबंधित सूचनाओं के कार्यान्वयन का जांच करने से राजभाषा के प्रयोग में सुनिश्चित रूप से प्रगति पहुँचाएगा।

मानसिकता

सरकारी कामकाज में राजभाषा हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए सबसे बड़ी समस्या हमारी अपनी मानसिकता है। अतः सर्वप्रथम हमें अपनी मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है। हिंदी व्यवहार हमारे लिए गर्व और गौरव का विषय होना चाहिए।

राजभाषा नीति, पुरस्कार व प्रोत्साहन योजनायें, प्रशिक्षण कार्यक्रम, वेतन वृद्धि आदि कई कार्यक्रमों के ज़रिए सरकार कार्मिकों को हिंदी की ओर आकृष्ट करने की सतत प्रयत्न कर रहे है। आज आवश्यकता अनुकूल मानसिकता की है। सभी केंद्र सरकारी कर्मियों को ही नही हम सब को अपनी देश की भाषा के प्रति आदर होना चाहिए। सब को मन में लगना चाहिए कि हिंदी का प्रयोग करना कोई बडी बात नहीं बल्कि संविधिक आवश्यकता है। केवल औपचारिकाता के लिए नहीं बल्कि मानसिक तौर पर हिंदी को हमें अपनाना है। हम जब तक अपने दिल में हिंदी को सम्मान नहीं देंगे उसे दिल से नहीं अपनाएंगे तब तक हिंदी आगे नहीं बढ सकती।

कार्यालयीन परिस्थिति तथा कार्यालय प्रधान की भूमिका

कार्यालयों में हिंदी में मूल काम करने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन देने से ही राजभाषा कार्यान्वयन को प्रभावी बनाने के लिए अनुकूल परिस्थिति पैदा होगी। किंतु उच्च अधिकारियों की अनुकूल मानसिकता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

किसी भी कार्यालय में हिंदी का प्रचार एवं प्रसार उच्च अधिकारियों पर ही निर्भर करता है। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि जिस कार्यालय का उच्च अधिकारी हिंदी भाषी होता है वहाँ ज़्यादातर कार्य हिंदी में होता रहता है परंतु अगर कार्यालय प्रमुख हिंदीतर भाषी है तो स्थिति उल्टा होगा। तो कर्मचारियाँ ऐसे सोचेगा कि जब अधिकारी ही हिंदी के प्रति सजग नहीं है तो हमें क्या लेना देना । नदि ऊपर से नीचे की ओर बहती है, उसी प्रकार राजभाषा नीति के संबंध में ऊपर यानी उच्च अधिकारी से शुरुआत होना चाहिए। यथा राजा तथा प्रजा यानी कार्यालय प्रधान एक टिप्पणी हिंदी में लिखे तो कर्मचारियाँ कम से कम दस टिप्पणी लिखेगा।

इन सब समस्याओं के अलावा ध्यान देने योग्य और एक बात है कि हिंदी कर्मियों के स्थिति। उन्हें अन्य कर्मचारियों के तरह यथासमय पदोन्नति तथा सम्मान मिलना ज़रूरी है ताकि आने वाले पीढियों को इस काम की ओर विमुखता न होना चाहिए। हिंदी कर्मियों के मन में हिंदी भाषा के प्रति जो सम्मान है, हमारी राजभाषा के लिए काम करने का जो दिलचस्पी है उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके लिए उन्हें उचित माहौल की अनिवार्यता है। ऐसी माहौल प्रदान करना प्रत्येक कर्मचारी की ज़िम्मेदारी होता है।

संक्षेप में मैं कहना चाहती हूँ, प्रत्येक स्वाधीन देश का जिस प्रकार एक राष्ट्रध्वज होता है, राष्ट्रगीत होता है, राजमुद्रा होती है उसी प्रकार हर देश की अपनी एक राजभाषा होती है। ये चारों प्रतीक किसी भी प्रभुतासंपन्न राष्ट्र की धरोहर होते हैं। संविधान के अनुसार हिंदी ही संघ की राजभाषा है। केंद्र सरकार के कार्यालयों में अंग्रेज़ी की भी छूट है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हिंदी का उपयोग कम से कम इस मात्रा तक तो अवश्य हो कि वह अंग्रेज़ी के समकक्ष आ जाए। अभी तो स्थिति यह है कि राजभाषा होते हुए भी सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग नाममात्र का होता है। हिंदी को राजभाषा स्वीकृत करने का कारण यह नहीं था कि वह देश की अन्य भाषाओं से श्रेष्ठ है, बल्कि इसलिए था कि यह देश के बहु संख्यक लोगों द्वारा बोली जाती है और अधिकांश लोगों द्वारा समझी जाती है। कालांतर में संपर्क भाषा के रूप में इसको अंग्रेज़ी का स्थान लेना है। राष्ट्र की एकता में विशेष स्थान रखने वाली हमारी भाषा, जिसकी विपुल साहित्य संपदा है, हमें इसे अपनाने में संकोच नहीं करना चाहिए। इसलिए प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद केंद्रीय दफ्तरों में हिंदी का उपयोग बढ़ाना प्रत्येक कर्मचारी का कर्तव्य है। इससे संविधान का अनुपालन होगा और संसद द्वारा चयन की गई भाषा नीति का कार्यान्वयन भी।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

नवगछिया अनुमंडल में केले की कृषि का भौगोलिक विश्लेषण

डॉ० सुमित कुमार सिंह
+2 शिक्षक (भूगोल)
इन्टर स्कूल खेरैहिया, भागलपुर

केला एक स्वादिष्ट पौष्टिक पाचक एवं लोकप्रिय फल है। नवगछिया अनुमंडल अन्तर्गत इस फल का उत्पादन कृषि कार्य के रूप में बड़े पैमाने पर किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र नवगछिया अनुमंडल भागलपुर जिला का उत्तरी हिस्सा है जो गंगा नदी द्वारा अलग होता है। इसका विस्तार 25°04′ उत्तरी अक्षांश से 25°30′20″ उत्तरी अक्षांश तथा 87°01′ पूर्वी देशान्तर से 87°06′ पूर्वी देशान्तर के मध्य है।नवगछिया अनुमंडल का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 893 वर्ग किलोमीटर है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ कुल 7,46,089 जनसंख्या निवास करती है जिनमें पुरुषों की संख्या – 3,97,941 एवं स्त्रियों की संख्या–3,48,118 है। इस अनुमंडल के अन्तर्गत नारायणपुर, बिहपुर, खरीक, नवगछिया, रंगराचौक, गोपालपुर और इसमाइलपुर कुल 7 अंचल आता है।

अध्ययन क्षेत्र में केले की कृषि आरंभ करने से पूर्व समतल खेत को चार–पाँच चास गहरी जुताई करके मिट्टी को भुर–भूरा बना लिया जाता है। उसके बाद तैयार खेत में पंक्ति बनाकर गढ्ढे खोदे जाते है। गढ्ढों की गहराई और एक पौधे से दूसरे पौधे के बीच की दूरी केला के किस्मों के आधार पर तय किया जाता है। जैसे हरी छाल के लिए 1.5 मीटर लम्बा 1.5 मीटर चौड़ा तथा सब्जी के लिए 2–3 मीटर की दूरी पर 50 सेंटीमीटर लम्बा 50 सेंटीमीटर चौड़ा 50 सेंटीमीटर गहरा गढ्ढे मई माह में खोदकर डाल दिये जाते हैं। गढ्ढे को 15–20 दिन खुला छोड़ दिया जाता है जिससे धूप और हवा अच्छी तरह से लग जाता है। इसके बाद 20–25 किलोग्राम गोबर की खाद 50ई०सी० क्लोरोपाइरीफास 3 मिलीलीटर और 5 लीटर पानी के साथ आवश्यकतानुसार मिट्टी के साथ मिलाकर गढ्ढे को भर दिया जाता है।

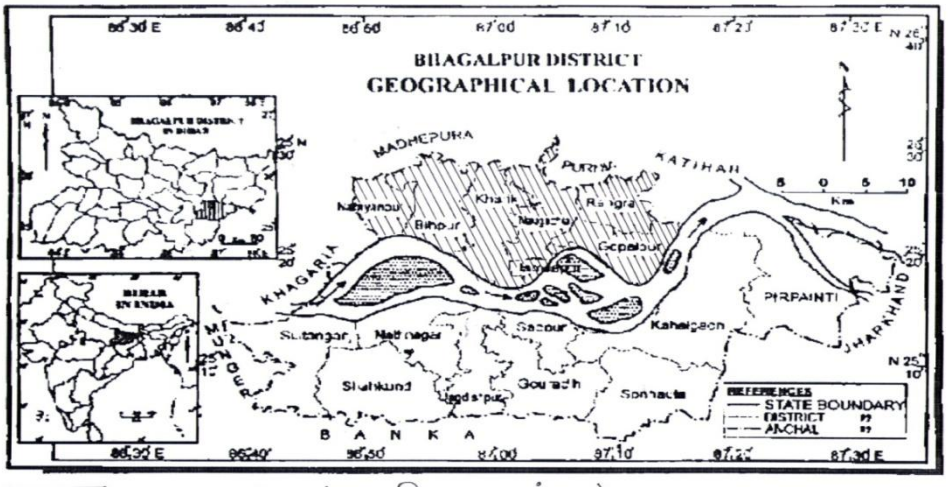

अध्ययन क्षेत्र (नवगछिया अनुमंडल)

जनसंख्या का वितरण

क्र०सं०	अंचल	कुल जनसंख्या	पुरूषों की संख्या	स्त्रियों की संख्या
1	नारायणपुर	106701	57127	49574
2	बिहपुर	123386	65614	57722
3	खरीक	132898	70873	62025
4	नवगछिया	154428	82196	72232
5	रंगराचौक	90284	48240	42044
6	गोपालपुर	94952	50606	44366
7	इशमाइलपुर	43440	23285	20155
कुल		7,46,089	3,97,941	3,48,118

स्त्रोत– जिला सांख्यिकी कार्यालय, भागलपुर (जनगणना वर्ष–2011)

पौधे रोपण में केले का रोपण पुत्तियों द्वारा किया जाता है तीन माह की तलवारनुमा पुत्तियाँ जिसमें घनकन्द पुरी तरह से विकसित हो गया होता है उसे वर्षा ऋतु आरंभ होने से पूर्व बोया जाता है। पौधा लग जाने के बाद भूमि की उर्वरता के अनुसार प्रति पौधाा 300 ग्राम नत्रजन 100 ग्राम फास्फोरस और 300 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। फास्फोरस की आधी मात्रा को पौधे रोपण के पूर्व ही प्रयोग कर दिया जाता है तथा शेष आधी मात्रा का उपयोग रोपाई के बाद किया जाता है। केले के बाग में नमी बनी रहनी चाहिए इसके लिए समय–समय पर सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। ग्रीष्म ऋतु में 7 से 10 दिन तथा शीत ऋतु में 12 से 15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करके बाग में नमी बरकरार रखा जाता है। नवगछिया अनुमंडल में कई केले बगानों में किसान खेत में नमी बनाए रखने के लिए पौधों की जड़ों को चारो ओर पुआल से ढ़क देते है इससे नमी बनी रहती है और सिंचाई कम करना पड़ता है साथ ही साथ खर–पतवार भी नहीं उगता है।

केले के रोपण के दो माह के बाद पौधे की जड़ों के बगल से नई पुत्तियाँ निकलने लगती है। किसान इन पुत्तियों को समय–समय पर काटकर निकालते रहते हैं। साथ ही साथ मिट्टी से 25–30 से०मी० ऊँची चबुतरानुमा आकृति पौधों की जड़ों को मजबूती देने के लिए बना दिया जाता है और बॉस से कैची बनाकर पौधों को दोनों तरफ से सहारा दिया जाता है तकि पौधा गिरने से बच सके। पौधों में कई प्रकार की बीमारियाँ भी लगती है जैसे–पत्ती बिटल, तना बिटल, तनागलन, हर्टरार, लीफ स्पॉट इत्यादि। किसान समय–समय पर उपर्युक्त कीटनाशकों जैसे–कॉपर आक्सीक्लोराइट 0.3 प्रतिशत, मोनो क्रोटोफास, थिमेट, फोरेट इत्यादि से छिड़काव कर अपने केला बगान की सुरक्षा करते हैं।

केले में फूल निकलने के बाद यह पूर्ण रूप से 20 से 30 दिनों में विकसित हो जाता है इसे स्थानीय भाषा में खानी कहा जाता है। खानी पूर्ण रूप से विकसित हो जाने के बाद इसके अगले भाग से नर फूल को काट कर अलग कर दिया जाता है। यह खानी लगभग 4 महीने में पक कर तैयार हो जाता है। पकने के कुछ दिन पूर्व ही किसान इसे काटकर एक जगह जमा करते है तथा केले की पत्तियों से इसे ढक देते है। ऐसा करने से फल एक साथ पक कर बेचने के लिए तैयार हो जाता है।

कभी जब फल अधिक कच्च रहता है, तब खानी को एक बंद कमरे में रखकर पत्तों से ढकने के बाद कमरे में गोबर के उपलों को कोने में रखकर अंगीठी जलाया जाता है। ऐसा करने से दो से तीन दिनों में सभी केला एक साथ पककर बाजार के लिए तैयार हो जाता है।

अध्ययन क्षेत्र में कई प्रकार के केलों का उत्पादन किया जाता है जैसे– पूवन, चम्पा, अमृत सागर, सफेद बेलची, लाल बेलची, हरी छाल, मालभोग, मोहनभोग, रोबस्टा, सिंगापुरी इत्यादि। यहाँ कुल 600 हेक्टेयर भूमि पर केला की खेती की जाती है। केला की खेती में प्रति एकड़ लगभग 28,000 रू० तक खर्च आता है और अगर अच्छी पैदावार हुआ तो किसान को प्रति एकड़ शुद्ध लाभ लगभग – 75,000 रू० प्राप्त होता है। केला के थम्ब से धागा का निर्माण किया जाता है जिससे कई प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त किया जाता है। इसके आलावे केले के थम्ब का उपयोग और भी कई औद्योगिक रूपों में किया जा सकता है इससे रोजगार की वृद्धि होगी। नवगछिया अनुमंडल से होकर गंगा और कोशी नदी बहती है। वर्षा में दोनों नदियाँ बाढ़ जैसी प्रलयंकारी दृश्य को उपस्थित करती है। यहाँ का मध्यवर्त्ती भाग दोनों नदियों के लिए प्राकृतिक तटबंध का कार्य करती है। जहाँ उत्तरी भाग कोशी की बाढ़ तो दक्षिणी भाग गंगा की बाढ़ से प्रत्येक वर्ष प्रभावित होते रहता है। वैसे तो सरकार द्वारा बाढ़ से सुरक्षा के लिए तटबंध का निर्माण किया गया है लेकिन यह तटबंध शत–प्रतिशत विश्वसनीय नहीं है। यदा–कदा जब तटबंध टूट जाता है, तब केले का फसल बड़े पैमाने पर कुप्रभावित होता है। परिणामस्वरूप किसानों की आर्थिक रीड़ टूट जाती है और एक उन्नत किसान भी आर्थिक रूप से कमजोर हो जाता है। लौटते मानसून काल में चक्रवाती वर्षा और तेज हवाओं के कारण केले के पेड़ जमीन पर गिर जाते है। ऐसे होने से किसान का महीनों से किया गया मेहनत और लगाया गया पूंजी बेकार चला जाता है। इस प्रकार के चक्रवाती तुफान में केले का पुरा बगान नष्ट होने का खतरा प्रतिवर्ष बना रहता है। पहले से कर्ज लेकर बगान लगाना और बगान का बर्बाद हो जाना किसानों के मन–मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डालता है। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अत्यधिक आर्थिक हानि नहीं सहन कर पाने के कारण किसान आत्महत्या तक कर लेते है। दूसरी ओर यह भी देखा गया है कि बाढ़ प्रति वर्ष नूतन मृदा के निक्षेप द्वारा भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ा देता है जिससे अगला फसल का उपज दर मन अधिक हो जाता है।

क्र०सं०	अंचल	केला उत्पादन (एकड़ में)	उत्पादन खर्च (रूपये में)	विक्रय मूल्य (रूपये में)	शुद्ध आय (रूपये में)
01	नवगछिया	205	90,20,000	5,33,00,000	4,42,80,000
02	खरीक	170	74,80,000	4,42,00,000	3,67,20,000
03	नारायणपुर	210	92,40,000	5,46,00,000	4,53,60,000
04	बिहपुर	200	88,00,000	5,20,00,000	4,32,00,000
05	गोपालपुर	193	84,92,000	5,01,80,000	4,16,88,000
06	इशमाइलपुर	105	46,20,000	2,73,00,000	2,26,80,000
07	रंगरा चौक	100	44,00,000	2,60,00,000	2,16,00,000

स्त्रोत– जिला सांख्यिकी कार्यालय, भागलपुर और व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2019

नवगछिया अनुमंडल में केले की कृषि के मार्ग में कुछ अन्य सामान्य बाधाए भी हैं जैसे– फलों का झड़ना, वृक्षों का कम फैलना, अधिक बांझापन, (ऐसा पौधा जिसमें फल नहीं लगता है) समय से पहले बागों का जीर्ण–शीर्ण होना, नये बाग लगाने के लिए उन्नत किस्मों के रोग रहित कलमी पौधों का आसानी से उपलब्ध नहीं होना, बाढ़ की विभिषिका, मुख्य फसल कटाई के समय लौटती मानसून का चक्रवात आना, अपर्याप्त बैंकिग सुविधा के कारण किसानों का गुंडा बैंक की गिरफ्त में फंसना, यातायात मार्गों का बाढ़ में अस्त–व्यस्त हो जाने से व्यापार चौपट हो जाना जैसी अनेकों समस्याए केला बगान के विकास के लिए हानिकारक है। इन समस्याओं के निदान हेतु फसल कटाई के समय सुनिश्चित यातायात की व्यवस्था, बैंक से सरल ऋण की व्यवस्था, फसल बीमा किया जाना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि इसके आभाव में अच्छी फसल के बावजूद कभी–कभी बाढ़ एवं चक्रवात जैसी विपदा के कारण किसानों के साथ राजा से रंक बनने वाली कहावत चरितार्थ हो जाता है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित इस शोध प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य अन्य फसलोत्पादन की तुलना में केला के उत्पादन की आर्थिक महत्ता तथा इससे सम्बन्धित कुछ खास समस्याओं एवं उनके निदान के उपायों को उल्लेखित करना है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा बी० एल० (1990) कृषि भूगोल, साहित्य भवन आगरा पृ० सं०–160, 148.
2. पाण्डेय एस० एन० (1980) भूमि एवं भूमि उपयोग ति० मा० भा० वि०वि०, भागलपुर के भूगोल विभाग से प्रकाशित पत्रिका चम्पा में पृ० सं०–42
3. Jones W.D. and Frinch (1925) "Delailed Field Mapping of an Agricultural Area" Annals Association American Geographers, Vol. P.-15.
4. Wood H.A. (1972) A Classification of Agricultural land use for Development Planning International Geography.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

CRITICAL STUDIES OF HUMAN RIGHTS AND HIGHER EDUCATION

Dr. Sunil Kumar
Political Science
A.I.H.M.,
Inter Level Upgraded School,
Udhadih, Sultanganj, Bhagalpur (Bihar)

The present scenario examines the role played by the Government is spreading the human rights education. HRE is the only guarantee of demonstration our commitment to human dignity, promotion of an adequate stranded of life to everyone and finally for the promotion of world peace and prosperity for all.

India is a signatory to the 'Universal Declaration of Human Rights' (Resolution 217-A III) adopted by the General Assembly of the United Nations on December 10 1948. The Universal Declaration guarantees all citizens of India the right to a quality higher education. The Universal Declaration unequivocally states—"Everyone has the right to education …and higher education shall be equally accessible to all on the basis of merit". The specific focus on higher education (based on the debate and agreement) was to make available quality higher education. Justice Dr. K. Punnayya in his report on 'UGC Funding of Institutions of Higher Education' in 1993 reiterated this same sentiment when he stated "... higher education determines its (India's) economic and technological progress.... Government funding must continue to be an essential and mandatory requirement for support to higher education. The Government! State must continue to accept the major responsibility for funding". The Common Minimum Program adopted by the UPA constituents prior to the last parliament election promised to deliver the access to quality higher education to all.

One may wonder why countries and their leaders agreed in 1948 that merit based access to quality higher education, including quality higher education in science and technology, was a fundamental human right.

The World Development Report (1994), published by the World Bank under the title infrastructure for Development', rightly states — 'the adequacy of infrastructure helps determine one country's success and another's failure - in diversifying production, expanding trade, coping with population growth, reducing poverty, or improving environmental conditions". The World Bank realizes that in any modern society, infrastructure plays a pivotal role, often a decisive role, in determining the overall productivity and development of a country's economy and consequently the quality of life of its citizens. The World Bank defined infrastructure as activities that provide society with the services necessary to conduct

daily life and to engage in productive activities. Such activities require highly educated citizens.

Access to quality higher education in science and technology is a primary catalyst for mastering the skills that are necessary to engaging in these activities and services and to building the right infrastructure.

In the report on 'Economic Reforms and Financing Higher Education in India', P. Geeta Rani of National Institute of Educational Planning and Administration argued that access to quality higher education in science and technology is a fundamental human right for individuals who must participate in a global economy According to her—"Knowledge is the driving force in the rapidly changing globalize economy and society. Quantity and quality of highly specialized human resources determine their competence in the global market. Emergence of knowledge as driving factor results in both challenges and opportunities. It is now well recognized that the growth of the global economy has increased opportunities for those countries with good levels of education and vice versa. The benefits of globalizations accrue to the countries with highly skilled human capital and t is a curse for the countries without such specialized human capital'.

Without access to quality higher education in science and technology, survival in a globalize economy is in peril. President of India, Dr. A.P.J. Abdul Kalam, echoed this same sentiment in 2004 while discussing the 'Science and Technology Policy 2003'. According to Dr. Kalam—"Today India has become one of the strongest in the world in terms of scientific manpower in capability and maturity.

Hence, we are in a position not only to understand the technologies that we may have to borrow, but also to create our own technologies with extensive scientific inputs of indigenous origin. Basically we have come a long way since our independence, from mere buyers of technology to those of who have made science and technology as an important contributor for national development and societal transformation. In a world where the powers are determined by their share of the world's knowledge, reflected by patents, papers and so on, the WTO starts to play a crucial role in the economic development. It is important for India to put all her acts together to become a continuous innovator and creator of science and technology intensive products". Again, the key according to Dr. Kalam to survival in a globalize knowledge driven economy is access to quality higher education in science and technology.

Prime Minister of India, Dr. Manmohan Singh, speaking at the same conference as Dr. Kalam went a step further with his statement on need for quality higher education in science and technology in India. According to Dr. Singh—"We take satisfaction from the fact that over 100 global companies have come to India to set up R&D Centers, affirming the intellectual capital of our scientific and engineering community. Science must grapple with the key challenges facing the country today. These include the pressures of increasing population, greater health risks, changing demographics, degraded natural resources, and dwindling farmlands. We need new science and technologies, new priorities and new

paradigms to address these fundamental challenges. We in India are practicing new physics and new chemistry to make new materials. These are of direct relevance to the Millennium Development Goals of the United Nations".

Minister of state for Science and Technology, Mr. Kapil Sibal, while speaking at the same event reiterated the view of the government, country, past administration and post independence policy that making quality higher education in science and technology available to all is key to survival in the global knowledge economy. According to Mr. Sibal—"Since independence, the government of India has been strongly aware of both needs - the need to build up a powerful science base, and the need to ensure that science is not restricted to the university laboratories. Under a succession of enlightened leaders, Indian governments have long recognized the need for any country that aspires to call itself a modern nation to invest heavily in science and technology. The fruits of this foresight are now widely visible. Thanks largely to the government's determination that the country should build a strong independent base in science and technology, India has been able to build up a capacity in a wide range of areas of modern technology, from software engineering to health biotechnology. And this has placed it in a strong position to engage in the global knowledge economy, rather than remaining on the margins. Science and technology have had unprecedented impact on economic growth and social development. Knowledge has become a source of economic might and power. This has led to increased restrictions on sharing of knowledge, to new norms of intellectual property rights, and to global trade and technology control regimes. Scientific and technological developments Page 3 today also have deep ethical, legal and social implications. There are deep concerns in society about these. The ongoing globalization and the intensely competitive environment have a significant impact on the production and services sectors".

According to the report 'India's Economy at the Midnight Hour Australia's India Strategy' prepared by the East Asia Analytical Unit of Department of Foreign Affairs and Trade, the similar sentiment is echoed by our "Look East" partner Australia, whose prime minister had a state visit to India in March 2006. According to the report "... the health of a nation depends on, among other factors, the health of the state of its science & technology. The health of science & technology is measured quantitatively and monitored rigorously by many advanced nations".

The report of the CABE Committee on Financing of Higher and Technical Education compiled by National Institute of Educational Planning and Administration, New Delhi in June 2005 summarizes the importance of access to quality scientific and technological education to improving fundamental human existence. According to the report"... education is an important investment both from social and individual point of view. Investment in higher education makes a vital contribution to accelerate the process and rate of economic growth, through increasing human productivity. Higher education is, therefore, regarded crucial to the development of developing countries, and to their ability to compete in the global economy. Higher technical education is one of the most important components of human capital.

This in fact, is seen as 'specialized human capital'. Increasing returns to total factor productivity are due to investment in specialized human capital formed through investment in higher technical and professional education, including science and technology After all, the 1948 Universal Declaration of Human Rights of the United Nations did include higher education as an important human right …"

In summary,

1. Access to quality higher education is a basic human right.
2. In modern society, infrastructure plays a pivotal role, often a decisive role, in determining the overall productivity and development of a country's economy, as well as the quality of life of its citizens.
3. Quality higher education in science and technology catalyzes the mastery of these activities and services and is critical to building the right infrastructure.
4. Higher scientific and technical education is one of the most important components of human capital.
5. The health of a nation depends significantly upon the state of its science and technology.
6. Investment in higher education makes a vital contribution to accelerate the process and rate of economic growth, through increasing human productivity.
7. Government funding must continue to be an essential and mandatory requirement for support to higher education. The Government) State must continue to accept the major responsibility for funding.
8. The Common Minimum Program adopted by the UPA constituents prior to the last parliament election has promised to deliver the access to quality professional education to all.

India is home to a thriving democracy and to recent stunning economic growth. Unfortunately, this has not prevented multiple serious human rights abuses from remaining a fact of life in many parts of the country. Political and separatist violence and the government's heavy-handed response have threatened the well-being and human rights of millions. Economic development has often threatened the livelihoods, land, and lives of the poor who are in its way. Hundreds of millions live in severe poverty, and women, religious minorities, dalits, adivasis and LGBT Indians can face harsh discrimination and shocking violence.

In Jammu & Kashmir, some northeastern states, and wide rural swaths of central India infiltrated by Maoists, civilians are caught between armed insurgents and Indian security forces, suffering violence and human rights abuses by both sides. The state government in J&K has consistently held Kashmiris for months and even years without charge and subjected prisoners to torture, disappearance, and death. In Chhattisgarh, the state has threatened and imprisoned human rights defenders on trumped-up charges of sedition and treason, while

state-supported militias operate with impunity. Terrorist attacks by Hindu and Muslim extremists are not uncommon in northern and western India The 2002 anti-Muslim pogrom in Gujarat continues to go unpunished, as do the mass killings of Sikhs in 1984 and the killing of Muslims across India in 1992-1993. In Orissa and other resource-rich parts of the country massive industrial projects, such as mines, dams and economic development zones, force thousands off their land with inadequate compensation. In Bhopal, site of the world's worst industrial disaster over 26 years ago, thousands of survivors and their children suffer debilitating medical problems while those responsible for the leak walk free.

Along with these headline-grabbing issues are other equally grave human rights concerns that threaten Indians' economic, cultural and social rights. Hundreds of millions of Indians live in extreme poverty and these marginalized people suffer most from a poor healthcare system, often non-existent education, economic exploitation, sexual violence, an overwhelmed judicial system, and police brutality and impunity. Extrajudicial killings by the police are common as is torture in police custody. India retains the use of the death penalty.

Women and girls face persistent discrimination and the threat of rape and other acts of violence, particularly in the north, and often at the hands of family members through dowry deaths, honor killings, and female foeticide. Members of lower castes, as well as adivasis (indigenous people), remain the victims of violence and humiliation despite their growing political and economic empowerment. Many Muslims and Christians face routine violence and harassment on account of their faith. Similarly, LGBT Indians find it very difficult to live openly in Indian society despite significant recent legal rulings in their favor.

Finally, a changing climate and a rapidly growing population will mean that soon millions of Indian lives will be threatened by rising oceans, melting glaciers, unpredictable monsoons, devastating droughts, polluted water sources, growing urban slums, and the resulting societal upheaval.

While participating on the 2006-2007 budgets in March 2007, Mr. Rahul Gandhi suggested that the future of the country is in jeopardy as there is very little investment in education and the Central Government must invest more in Education to produce productive citizens. We have shown in this report that the most deprived states have almost zero probability to succeed in the post liberal economy. Yet, our finance minister is expecting the economy to grow at least 8% or with the right incentive even up to 10% this year.

Obviously the growth rate of the most deprived states will be around 3-4%. What do the citizens of these most deprives states expect from this imperfect union called "Mother India"?

1. Is it necessary to get what they deserve by following the paths taken by the citizens of Assam and other North Eastern States?
2. Should the country and her political leaders practice economic segregation and build two different Indians that would be in conflict with each other?
3. Should the development be clustered and the investments be channeled to even spread

the economic disparity?

4. Can India achieve a consistent growth rate of 8-10% on an annualized basis with internal turmoil created by clustering development in few states and denying the basic human rights to the most deprived states?

5. Civil society is the basic norm of a developed society and should our limited vision and clustered growth help build a civil society?

6. There is a saying "A stitch in time saves nine'. Do our leaders understand this message before the Naxals or the Maoists in the deprived states take over the control of the most deprived states?

We recommend that the Central Government adopt a similar formula for Orissa and Bihar as it has adopted for the North Eastern States. In the budget, the North Eastern States get 10% under each expense category.

1. The modified Gadgil formula and the Consensus approach has not worked to alleviate the utter poverty in Orissa and Bihar. Orissa and Bihar need to be included with the North Eastern states and the 10% quota need to be increased to at least 20% to bring Orissa and Bihar to mainstream of envelopment.

2. The Central Government must create the new IlTs, lIlTs, and lIMs in Orissa, Bihar, and Rajasthan.

3. The Central Government needs to allocate additional funding for Higher Education in Science and Technology as recommended in the "India Science Report" and CABE Committee.

4. A Significant tax incentive should be offered for private investment in higher education.

5. Politics should not be used to decide the locations for centers of excellence.

Based on the recommendations, the government of India has signed the UN Convention against Torture and other cruel inhuman and degrading treatment or punishment. The Central Government has been a No cating adequate funds for the effective functioning of different projects working for Human Rights and population growth.

References:

1. *Jois, MR.; Human rights and Indian Value, NCTE.*
2. *Mehta, P.L. and Verma, N.; Human rights under the Indian Constitution.*
3. *Narain's Indian Government and Politics*
4. *Kataria, Dr. Surendra; Public Administration.*

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

कोरोना महामारी, नारी एवं गांधी दर्शनः एक विवेचना

डॉ. प्रज्ञा पाण्डेय
पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, दिल्ली विश्वविद्यालय

समाज में गहन आर्थिक संकट, बीमारी का डर तथा मृत्य के भय ने लोगों को हतोत्साहित कर दिया। दिनोंदिन बढ़ते संक्रमण के मामले तथा मौत के आंकड़ों का बढ़ना भी देशवासियों में भय उत्पन्न कर रहा है। सामाजिक दूरी का पालन करते हुए लोग अपने घरों में बंद हैं, इस प्रकार चारदीवारी के अंदर रहकर न केवल लोगों में अवसाद की प्रवृत्ति विकसित हुई है बल्कि सामाजिक सम्बन्धों पर भी प्रभाव पड़ा है। परिवार में आपसी सम्बन्ध भी इस महामारी से अछूते नहीं रहे हैं। समाज की सबसे छोटी ईकाई परिवार की धुरी स्त्री भी इस कोरोना महामारी के दुष्प्रभाव को झेल रही है। स्त्रियां न केवल महामारी के संक्रमण से भयभीत हैं बल्कि वह सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक संकट का सामना कर रही हैं। इस संकट में यदि युगपुरुष महात्मा गांधी होते तो नारियों की इन समस्याओं का अपने सिद्धांतों के द्वारा तर्कसंगत समाधान प्रस्तुत करते। उन्हें आर्थिक संकट से उबारते, महामारी के डर से निर्भयता पूर्वक निपटने की सलाह देते, घरेलू हिंसा तथा शराब पीने से उत्पन्न समस्याओं को अहिंसा तथा अदम्य साहस से सुलाझने को कहते।

चीन में पैदा हुए एक वायरस ने पूरी दुनिया को एक महामारी में जकड़ लिया। धरती पर मौजूद सभी देश इस भयावह त्रासदी का सामना कर रहे हैं। ऐसे में सवाल उठता है कि हमारे युगपुरुष महात्मा गांधी होते तो क्या करते? क्या वह इस विनाश की प्रक्रिया को मूक दर्शक के रूप में देखते? नहीं, गांधी इन परिस्थितियों में स्वराज की व्याख्या करते, लोगों को स्वयं के राज्य का महत्व बताते। अहिंसा का प्रयोग कर अर्थव्यवस्था को महाकाय से छोटे स्थानीय समुदायों की ओर ले जाते। छोटी अर्थव्यवस्था से धूल-धुंआ कम होता है। तन-मन को निरोगी रखने हेतु जरूरतों तथा लालच के बीच विवेक बताते। स्थानीय अर्थव्यवस्था का ऐसा प्रारूप विकसित करते जिसमें पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी काम अवसर मिलता। महिलाएं अपनी घर की प्राथमिक जिम्मेदारियां निभाते हुए आत्मनिर्भर तथा निडर होतीं। वह सत्याग्रह तथा स्वच्छाग्रह पर जोर देते । वह प्राकृतिक उपचार तथा खानपान की महत्ता बताते। उसके बाद अपनी तरफ से किए सभी प्रयत्नों के परिणामस्वरूप वह ईश्वर की प्रार्थना पर बल देते। ईश्वर में विश्वास ही सबसे बड़ा अस्त्र है। ईश्वर ने इस जगत को बनाया है और वही हमारी रक्षा करेंगे, इस मूलमंत्र पर विश्वास करने वाला कभी दुखी नहीं होता है। गांधी लोगों को ढ़ाढस बांधते तथा रामनाम के जप की सलाह देते।

संक्रामक रोग विश्व के लिए कोई नया नाम नहीं है, यह पहले भी आते रहे हैं। सभ्यताओं के विकास के साथ खेती का काम शुरू हुआ। विकास के साथ मानव जनसंख्या घनत्व में विस्फोटक वृद्धि और आगे चलकर नगर-राज्यों के संगठन ने परस्पर संपर्क को बढ़ावा दिया। इसमें घनी आबादी में संख्या वृद्धि करने और फैलने की क्षमता ने कुछ जीवाणुओं व विषाणुओं में घातकपन को बढ़ावा दिया। इस प्रकार भयावह संक्रामक रोग फैले लेकिन मनुष्य के अथक प्रयासों के परिणाम स्वरूप हज़ारों सालों से इस पर अंकुश लगाया जा सका है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी महामारियों के बारे में वर्णन किया गया है। आयुर्वेद ग्रंथ चरक संहिता

और उसके समकालीन हिपोक्रेटस की चिकित्सा संहिताओं में टीबी को क्रमश: शोशा रोग या राजयक्षमा और थायसिस कहा गया है। उक्त दोनों ही ग्रंथों में रुक-रुककर आने वाले बुखार का भी ज़िक्र है जो विभिन्न किस्म के मलेरिया का लक्षण है।

भारत अभी कोरोना संक्रमण के खतरे का सामना कर रहा है, लेकिन देश में पहले भी कई तरह की घातक बीमारियां आयी हैं जिनका भारत ने डट कर मुकाबला किया है। भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद देश में चेचक के बहुत मामले सामने आए। इस निपटने के लिए 1948 में बीसीजी का टीका बनाया गया। अगले वर्ष बीसीजी का टीकाकरण प्रारम्भ हुआ। 1962 में राष्ट्रीय चेचक उन्मूलन कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ तथा भारत 1977 में चेचक मुक्त घोषित हुआ। इसी प्रकार 1994 में भारत ने प्लेग की समस्या का सामना किया तथा आइसोलेशन और बचाव के उपाय से छुटकारा पा सका।

साथ ही भारत में हैजा महामारी के रूप में बार-बार आता रहा है। पहली बार हैजा कलकत्ता में 1817 से 1824 के मध्य फैला था। इस बार में कई भारतीयों की जान गयी। उसके बाद बीसवीं सदी तथा 1960 में भी हैजा आया। हैजा आखिरी बार 2007 में उड़ीसा में पाया गया था लेकिन अब उस पर भी नियंत्रण हो गया है। इसी प्रकार पोलियो भी एक बीमारी के रूप में सामने आया जिसने बच्चों में विक्लांगता की समस्या को जन्म दिया। इससे निपटने के लिए भारत में तीन साल तक के बच्चों को पोलियो ड्रॉप पिलाने का अभियान प्रारम्भ किया गया। बाद में इस समयसीमा को बढ़ाकर पांच साल कर दिया गया। इसके अलावा मलेरिया से निपटने हेतु भारत ने वैक्सीीन बनायीभारत के अलावा कई देशों ने मलेरिया की वैक्सीन बना ली है और उस पर ट्रायल चल रहे हैं।

हाल के कुछ दिनों में कोरोना महामारी से लोग डर कर घरों में बंद हैं। सामान्य गतिविधियों में कमी आने के कारण लोगों में अवसाद घर कर रहा है। लेकिन कोरोना पहली महामारी नहीं है जिसने दुनिया में तबाही मचायी है बल्कि इससे पहले भी विश्व ने कई घातक बीमारियों का सामना किया है। इस तरह की खतरनाक बीमारियों में स्पेनिश फ्लू प्रमुख है। 1918 में आयी इस बीमारी से दुनिया भर में 5-10 करोड़ लोगों की मौत हुई थी। लेकिन 1919 में यह बीमारी खत्म हो गयी। इसके अलावा मिश्र में फैले जस्टिनियन प्लेग को इतिहास की दूसरी सबसे घातक महामारी के रूप में माना जाता है। यह बीमारी अगली दो सदी तक बार-बार आती रही इससे पांच करोड़ लोगों की मौत हुई थी।

विश्व भर में आपदाएं आती रही हैं, चाहे वो बांग्लादेश में 1991 का चक्रवाती तूफान हो या 2003 में यूरोप में आयी गर्म लहर सभी ने मानव सभ्यता को प्रभावित किया है। एशिया में 2004 के दौरान आने वाली सुनामी तथा 2005 में कैटरीना तूफान ने केवल वर्तमान पीढ़ी को बल्कि आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए मुश्किलें खड़ी कर दी थीं। आज विश्व कोरोना संकट के दौरान कई प्रकार के संकट से गुजर है। इसमें कोरोना वायरस के साथ मानव अस्तित्व को बनाए रखने, भयमुक्त रहने तथा घर के अंदर रहकर भी अवसाद मुक्त होना एक बड़ी चुनौती है। साथ ही वैश्विक स्तर पर छायी हुई आर्थिक मंदी ने लोगों के मन अनिश्चचताओं का एक ऐसा भंवर तैयार किया है जिससे निकलना कठिन है। यही नहीं पर्यावरणीय समस्याओं ने भी मनुष्यों को उस ओर धकेल दिया है जहां से कोई राह नहीं दिखती। इन विकट परिस्थितियों में जहां दुनिया में लॉकडाउन है और संक्रमित व्यक्ति क्वारंटीन होकर केवल अपनों से दूर ही नहीं बल्कि समाज से भी कट रहा है, ऐसे में युगपुरुष गांधी के विचार आज भी प्रासंगिक है।

कोरोना महामारी ने भारतीय स्त्रियों के लिए पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों पर निर्भरता को बढ़ा दिया है। महामारी का संक्रमण तो स्त्री तथा पुरुष पर समान आक्रमण कर रहा है लेकिन हमारा समाज स्त्रियों के प्रति होने वाले भेदभाद भाव के प्रति तटस्थ नहीं रहा है। कोरोना महामारी के बहाने स्त्रियों के लिए सदियों से खीचीं गए घरेलू दायरों की लक्ष्मण रेखा पर चर्चा हुई है। साथ ही स्त्रियों हेतु काम के अधिकार, उनकी लैंगिक समानता तथा आजीविका हेतु संघर्ष के विषय भी आज प्रासंगिक हैं।

महामारी में पुरुषों ने लक्ष्मण रेखा का पहली बार किया अनुभव

कोरोना महामारी के दौरान सार्वजनिक स्थानों तथा घर के बीच में खीचीं गयी लक्ष्मण रेखा का पुरुषों ने पहली बार अनुभव किया। ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक रूप से ऐसा पहली बार हुआ जब स्त्रियों के साथ पुरुष भी घर की चारदीवारी में बंद थे। इस दौरान न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में स्त्रियों के खिलाफ असहनीय उत्पीड़न की कहानी लिखी गयी। महिलाओं को इस लक्ष्मण रेखा की आदत थी लेकिन इस बार वह घर के अंदर सुरक्षित नहीं थी। इस बार उत्पीड़न की शिकार स्त्रियां घर से बाहर नहीं जा सकती थीं। स्वास्थ्य तथा पेट भरने की कठिनाइयों ने नयी परिस्थितियों को जन्म दिया। इस बार घर में हिंसा तो थी आजीविका हेतु घर के बाहर किए जाने वाले छोटे-मोटे काम भी हाथ से जा रहे थे।

सामान्य परिस्थितियों में स्त्रियों को आजीविका हेतु इच्छा न होते हुए भी जबरजस्ती घर से बाहर भेजा जाता था। लॉकडाउन में महिलाओं ने घर में अधिक समय व्यतीत किया। इन परिस्थितियों वह अनावश्यक घरेलू कामों में लगी रहीं। इसके अलावा कई महिलाओं ने स्वेच्छा से खुद को काम में व्यस्त कर लिया। इसके लिए उन्होंने घर की साफ-सफाई से लेकर साल भर के लिए आचार पापड़ बनाना उचित समझा।

घर में रहें, सुरक्षित रहें की टैग लाइन स्त्रियों के लिए सुख लेकर नहीं आयी

घर में विभिन्न परम्पराओं को छोड़ दिया जाय तो स्त्रियां सामान्यतया पितृसत्ता के विभिन्न रूपों पूंजीवाद, सामन्तवाद और गुलामी के तहत जीवन व्यतीत करती हैं। वेतन हेतु कार्य करने वाली महिलाएं चाहे वह कामकाजी हो या घरेलू अपनी गृहिणी की भूमिका को कभी त्याग नहीं पाती हैं। घरेलू क्षेत्र में विवाह तथा बच्चों को पालने के माध्यम से स्त्रियां शक्ति, प्रभुत्व, हिंसा, अवैतनिक श्रम तथा पितृसत्ता के पुनरूत्पादन का शिकार होती रही हैं। ऐसे में लॉकडाउन के दौरान घर में रहें, सुरक्षित रहें की टैग लाइन स्त्रियों के लिए तो सुखदायी नहीं ही रही। लॉकडाउन के दौरान न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में स्त्रियों के खिलाफ घरेलू हिंसा में वृद्धि देखी गयी। भारत में असंगठित क्षेत्र में महिलाओं द्वारा अपनी नौकरियों को खोना भी उन्हें हिंसा की ओर ले गया। घरेलू हिंसा के पीछे बहुत से कारण थे। प्रताड़ना का कारण प्रताड़ित करने वालों का घर में रहकर पैदा होने वाला अवसाद भी था। महिलाएं घरों में भय के माहौल में जी रही थीं। लॉकडाउन के दौरान स्त्रियां अपने घरों में रहने को मजबूर थीं।

वर्क फ्राम होम की अवधारणा ने भी बढ़ायीं मुश्किलें

लॉकडाउन के दौरान महिलाओं के लिए वर्क फ्राम होम में भी समस्याएं कम नहीं थी। भारत में अंसगठित क्षेत्र में महिलाओं हेतु कोई वर्क फ्राम होम का तो प्रावधान नहीं था तथा संगठित क्षेत्रों में जिन्हें ऐसी सुविधा मिली वह काम के बोझ से कराह उठीं। पतियों और बच्चों का लगातार घर में रहना अनावश्यक काम के बोझ बढ़ाता चला गया। जो बच्चे पहले डे-केयर सेंटर या कामवालियों के हाथों पलते थे उनकी जिम्मेदारी भी मां की हो गयी। यही नहीं बच्चों की ऑनलाइन कक्षाओं ने उन्हें घंटों लैपटॉप के सामने बैठने को मजबूर कर

दिया। महामारी के दौरान सामाजिक दूरी ने न केवल बच्चों को उनके दादा-दादी, नाना-नानी तथा पड़ोसियों से दूर किया बल्कि दोस्तों के साथ खेलने में भी परेशानी खड़ी की। ऐसी परिस्थितियों में मां के ऊपर काम का बोझ बढ़ता चला गया।

महिला स्वास्थ्य कर्मचारियों की भी समस्याएं कम नहीं

भारत में कोरोना महामारी के दौरान महिला स्वास्थ्य कर्मचारी आशा तथा आंगनबाड़ी कार्यकर्ता भी व्यापक स्तर पर प्रभावित हुई हैं। उन्होंने अपनी स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं को नजरदांज कर न केवल इस महामारी में घर-घर घूम कर न केवल सर्वे किया बल्कि लोगों को जागरूक भी किया। इन स्त्रियों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी तथा परिवार में भी महामारी का खतरा बढ़ता जा रहा था।

जब गांधी जी भी आ गए महामारी की चपेट में, किया एकांतवास

दुनिया भर में पहले विश्वयुद्ध के बाद 1918 में स्पेनिश फ्लू ने तबाही शुरू कर दी थी। भारत में भी लोग स्पेनिश फ्लू के शिकार हुए थे। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी स्पेनिश फ्लू से ग्रसित थे। उस समय महात्मा गांधी 48 वर्ष के थे। फ्लू होने पर उन्हें आराम करने को कहा गया था और उन्होंने लिक्विड डाइट लिया। साथ ही महात्माथ गांधी ने संयम का पालन किया तथा एकांतवास में रहे। इस दौरान उनके आश्रम में रहने वाले सभी लोगों ने महात्मा गांधी द्वारा बताए गए नियमों का पालन किया और सभी लोग स्पे निश फ्लू से बच गए। वर्तमान में कोरोना संक्रमण के प्रसार को रोकने के लिए ष्क्वारंटीनष शब्द का इस्तेमाल किया जा रहा है। लेकिन गांधी ने इसके लिए ष्सूतकष शब्द का प्रयोग किया था। ये ष्सूतकष भारतीय परंपरा का एक हिस्सा है। इसी प्रकार नई प्रसूता को प्रसव के बाद कुछ समय तक अलग रखा जाता है। इसके अलावा भारत में मृतक को मुखाग्नि देने वाले व्यक्ति को ऐसे 10 दिनों तक अलग-थलग रहना पड़ता था। इसे भी सूतक कहा जाता है।

महामारी से बचाव हेतु स्वच्छता है जरूरी

गांधी ने स्वच्छता को प्राथमिकता दी है। वह कहते हैं कि आरोग्य के लिए स्वच्छता आवश्यक है। तन , मन तथा जीवन की स्वच्छता भी जरूरी है। गांव , घर और समाज की स्वच्छता से मानव जाति का कल्याण होगा तथा महामारियां दूर होती हैं। तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति दयनीय थी वह परिवार तथा समाज में सबसे उपेक्षित प्राणी थी। उस समय स्त्री को केवल संतान उत्पत्ति की मशीन तथा चूल्हा –चौका में जीवन बिताने वाली नौकरानी समझा जाता था। स्त्री उपेक्षित और वंचित थी , नारी तथा उसकी दैहिक स्वच्छता से जुड़े विषय पर चर्चा नहीं की जाती थी। गांधी ने नारी की स्वच्छता को प्राथमिकता देकर उसे समाज और परिवार में सम्मान पूर्वक जीने की राह दिखायी। यही नहीं उन्होंने नारी की दैहिक स्वच्छता पर चर्चा कर न केवल उसके कष्टों को समाप्त करने का प्रयास किया अपितु उसका आत्मविश्वास भी बढ़ाया। तत्कालीन परिवेश में स्वच्छता को आम जनता नजरअंदाज कर देती थी और नारी की दैहिक स्वच्छता उपेक्षा की शिकार थी। उस समय गांधी ने इस विषय पर चर्चा कर जन -मानस का ध्यान खींचा और समाज को संवेदनशील बनाया।

गांधी न केवल सत्याग्रही थे बल्कि वह स्वच्छाग्रही भी थे। सत्याग्रह में सत्य के प्रति आग्रह था तो स्वच्छाग्रह में स्वच्छता के प्रति आग्रह। सत्याग्रह के द्वारा यदि वह स्वराज प्राप्ति चाहते थे तो स्वच्छाग्रह के जरिए नारियों की व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान कर उन्हें निरोगी तथा निर्भय बनाना चाहते थे। गांधी के

स्वच्छता से सम्बन्धित विचार कोरोना महामारी में अनुकरणीय है, ऐसे में स्त्रियों को अपने परिवार तथा समाज की कोरोना महामारी से रक्षा हेतु स्वच्छता को अस्त्र बनाना होगा।

स्त्रियां रहें भय मुक्त

गांधी स्त्रियों को साहसी तथा भयमुक्त रहने को कहते हैं। उनके लिए व्यक्तिगत शक्ति के अलावा आध्यात्मिक तथा नैतिक शक्ति अधिक आवश्यक है। गांधी भारतीय नारियों के समक्ष द्रौपदी, सीता तथा दमयंती का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं उन्हें द्रौपदी की भांति साहसी, निडर तथा अनुशासन युक्त होना चाहिए। उनके साहस के समक्ष भीम भी शांत रहते थे। इसी प्रकार वह सीता का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सीता की पवित्रता के सामने रावण भी कुछ नहीं कर सका। नारियों को द्रौपदी के समान आत्मनिर्भर तथा सीता की पवित्रता को अनुसरण करने को कहते हैं। गांधी कहते हैं कि स्त्रियों में निहित नैतिक तथा आध्यात्मिक साहस उनकी समस्याओं को दूर करता है। द्रौपदी ने इसी आध्यात्मिक साहस द्वारा आत्मदृढ़ता से भगवान श्रीकृष्ण से अपनी रक्षा हेतु प्रार्थना की। इसलिए विकट परिस्थितियों में नारी को निर्भय रहना चाहिए। वे कहते थे कि हमारे भारतीय समाज में हमें सीता , सावित्री तथा द्रौपदी जैसी नारियों का विकास करने की आवश्यकता है जो अपनी दृढ़ता तथा आत्मविश्वास से सफल हुईं थीं। उन्होंने तत्कालीन युग में महिलाओं का सुधार कर नए समाज का सृजन किया। साथ ही वह शोषणरहित समाज की स्थापना को आवश्यक मानते हैं।

यदि स्त्री भयभीत होती है तो समाज उसके ऊपर विभिन्न प्रकार के आरोप तथा लांछना लगाना प्रारम्भ कर देता है। लेकिन नारी अगर निर्भीकता पूर्वक डटकर मुश्किलों का सामना करती हैं तो आरोप लगाने वाले समुदाय ही डरकर पीछे हट जाता है और उसका सम्मान करने पर मजबूर हो जाता है। गांधी का मानना है कि नारियों के साथ बलात्कार भी तभी होता है जब वह भयभीत होती है। यदि वह पवित्रता तथा नैतिक बल का सहारा लेकर दुराचारियों का डट कर मुकाबला करेंगी तो वह स्वयं भी पीछे हट जाएंगे। श्उनके विचार में दुनिया में कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जो पुरुष कर सकता है, किंतु स्त्री नहीं।[1]

वर्तमान परिस्थिति में कोरोनो वायरस के संक्रमण से पूरी दुनिया डरी हुई है, इस वायरस ने न केवल लोगों को भयभीत किया है बल्कि उन्हें घरों में बंद कर पंगु भी बना दिया है। गांधी जी ने हमें पहले इस प्रकार के भय को दूर करने के लिए कहा है।उन्होंने भारतीयों से अंग्रेजों के प्रति डर को कम करने के लिए कहा था। साथ ही गांधी जी बीमारों की देखभाल करने पर विशेष ध्यान देते हैं। महामारी के माहौल में सदैव भयमुक्त रहे, निडर होना न केवल आपकी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है बल्कि मृत्यु से भय को भी समाप्त कर देता है। इसलिए महामारी से लड़ने के लिए व्यक्तिगत साफ-सफाई के साथ भय मुक्त रहें।

वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा है महत्वपूर्ण

कोरोना संकट के दौरान दुनिया भर में तरह-तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हम एक दूसरे से जुड़े रहें। हमारे जीवन ए आजीविका और अर्थव्यवस्था के लिए सभी राष्ट्रों में एकता ए एकजुटता और सहयोग आवश्यक है। इसलिए इस समय वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा सर्वोपरि है।

रोगियों की सेवा से होगा लाभ

गांधीजी ने बोअर युद्ध ए प्रथम विश्व युद्ध तथाभारत में महामारियों के दौरान कुष्ठरोग के शिकार व्यक्तियों की सेवा करते रहे। साथ ही वे कहते हैं डॉक्टर और दवाइयों के खर्च पर निर्भर रहने की अपेक्षा लोगों के लिए आत्मनिर्भर एवं स्वास्थ्य-स्वातंत्र्य प्रदान करने वाली सस्ती और सहज पद्धति बेहतर होती है। गांधी जी इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा के समर्थक थे। वे कहते हैं कि श्शरीर का भगवान के मंदिर की तरह उपयोग करने के बजाय हम उसका उपयोग विषय-भोगों के साधन की तरह करते हैं और इन विषय-सुखों को बढ़ाने की कोशिश में डॉक्टरों के पास दौड़ने में तथा अपने पार्थिव आवास, इस शरीर का, दुरुपयोग करने में लज्जा का अनुभव नहीं करते। [2]

गांवों को प्राथमिकता

भारत में कोरोना संक्रमण के प्रसार में लॉकडाउन के समय शहरों से गांवों की तरफ हुए पलायन ने गांव के महत्व को पुनः उजागर किया। लॉकडाउन से शहरों में उपजी बेरोज़गारी और बेकारी ने लोगों को अपने गांवों की ओर लौटने के लिए बाध्य कर दिया। ऐसे में गांधी के ग्राम-स्वराज ने लोगों को यह सीख दे दी कि गांव के विकास से ही सबका उत्थान है। आत्मनिर्भर ग्राम ही सशक्त भारत की बुनियाद हैं। गांव के विषय में गांधी कहते हैं कि श्मेरी कल्पना की ग्राम-इकाई मजबूत-से-मजबूत होगी। मेरी कल्पना के गांव में 1000 आदमी रहेंगे। ऐसे गांव को अगर स्वावलम्बन के आधार पर अच्छी तरह संगठित किया जाय, तो वह बहुत कुछ कर सकता है। [3]

महामारी की रोकथाम हेतुधार्मिक और सामाजिक एकता है जरूरी

कोरोना महामारी ने आज सभी को अकेला कर दिया है। लोग महामारी से बचने के लिए एक दूसरे के संपर्क में आने से बच रहे हैं। इन परिस्थितियों में लोग अवसाद के शिकार हो रहे हैं।ऐसे में गांधी कहते हैं कि अपने आसपास सहिष्णुता बनाएं रखें। रोग को रोकने के लिए पड़ोसी से अच्छे सम्बन्ध बनाएं। सहिष्णुता के विषय में गांधी कहते हैं- मैं ऐसी आशा नहीं करता हूं कि मेरे सपनों के आदर्श भारत में केवल एक ही धर्म रहेगा, यानी वह संपूर्णतः हिन्दू या ईसाई या मुसलमान बन जायेगा। मैं तो यह चाहता हूं कि वह पूर्णतः उदार और सहिष्णु बने और सबके सब धर्म साथ-साथ चलते रहें। [4]

समाज में सामाजिक एकता तथा सौहार्द बनाए रखने में स्त्रियों की महत्वूर्ण भूमिका होती है। सत्याग्रह का प्रयोग कर वह देश में सामाजिक एकता कायम रख सकती हैं। वह कहते हैं कि भारत-विभाजन के दौरान होने वाले दंगों में उनके घर के पुरुष जाते हैं तो वह उनका खाना बनाना बंद कर दें। परिवार में स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, इसलिए उन्हें अब बच्चों को सदैव सामाजिक सौहार्द बनाएं रखने की सीख देनी चाहिए। इसी प्रकार अस्पृश्यता निवारण में गांधी स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार स्त्रियां मां की भूमिका में अपने बच्चे की साफ-सफाई करती हैं ऐसे में उन्हें हरिजनों को भी अछूत नहीं मानना चाहिए बल्कि समाज में उनके उत्थान हेतु प्रयास करना चाहिए।

गांधी धर्मों के मध्य होने वाले भेदभावों से व्यथित होते थे। वे कहते थे कि किसी भी संकट के समय सर्वधर्म समभाव आवश्यक है। विकट परिस्थितयों में बिना किसी भेदभाव के लोगों की सेवा करनी चाहिए इससे न केवल आत्मशुद्धि होती है बल्कि समाज का भी उत्थान होता है। कोरोना महामारी को जड़ से खत्म करने के लिए स्त्रियों को समाज में सभी वर्गों के प्रति प्रेम तथा सदभाव बनाएं रखना

चाहिए। इस समय अपने पड़ोसी की यथासम्भव सहायता करें। गांधी ऐसे में मीराबाई का उदाहरण देते हैं जिन्होंने अपने अदम्य साहस द्वारा पत्नी तथा मां की परम्परागत भूमिका को त्याग कर अपने परिवार का मार्ग प्रशस्त किया।

अपनी गलतियों को स्वीकार कर उनमें सुधार करें

गांधी कहते हैं कि अपने द्वारा की गयी गलतियों को सदैव स्वीकर करो और उसमें सुधार करो। यह बात कोरोना महामारी के विषय में भी लागू होती है। यह महामारी नयी है इसलिए इसके समुचित ज्ञान और उपचार न होने से निर्णय लेने में गलतियां हो सकती हैं। इसलिए गलतियों के बाद इसे स्वीकार करें और सही राह चुनें।

स्थानीय वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित कर स्वराज की ओर अग्रसर हों

वर्तमान में कोरोना संकट ने विश्व स्तर पर जो तबाही मचायी है उसने स्थानीय उत्पादों का महत्व बढ़ा दिया है। स्वदेश में ही कार्य होना चाहिए तथा इसे सिद्धांत रूप में स्वीकार कर व्यवहार में लाना श्रेयस्कर होगा। गांधी ने अर्थव्यवस्था में स्थानीय उत्पादन ए स्थानीय उपयोग तथा परस्पर संबद्ध स्थानीय लघु समूह तथा स्थानीय मानवीय प्रारूप पर ध्यान केन्द्रित किया है। समाज में इस व्यवस्था को ष्ग्राम स्वराजष कहते थे। गांधी कहते हैं कि श हर एक गांव में गांव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभाभवन रहेगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा-वाटर वकर्स होंगे-जिससे गांव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सब के लिए लाजिमी होगी। जहां तक हो सकेगा, गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किए जाएंगे। जात-पांत और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम-समाज में बिल्कुल नहीं रहेंगे। [5]

देश में स्वदेशी कार्यों को बढ़ाने के लिए गांधी स्त्रियों की भूमिका पर विशेष जोर देते थे। नारियां स्वदेशी कार्यों हेतु परिवार को प्रोत्साहित कर सकती हैं। परिवार में मां का बच्चों पर नियंत्रण होता है और वह अपनी संतानों को प्रेरित कर सकती हैं। इसलिए स्वदेशी आंदोलन नारियों की भूमिका के अभाव में पूर्ण नहीं हो सकता है।

ग्लोबलाइजेशन से दुनिया को लाभ तो हुआ है लेकिन कोरोना महामारी को वैश्वीकरण के कारण ही दुनिया भर में फैलने का अवसर मिला है। इसलिए कोविड महामारी ने अर्थव्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। गांधी एक दूरदर्शी विचारक रहे हैं उन्होंने समस्याओं को समय रहते ही भांप लिया और स्वराज का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इसके द्वारा औपनिवेशिक परतंत्रता के साथ-साथ राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दासता से मुक्ति और आत्मानुशासन का भी समावेश किया गया है। गांधी स्वराज के इन पांचों तत्वों की सिद्धि हेतु सत्य तथा अहिंसा का पालन करते हैं। गांधी अहिंसक पद्धति के द्वारा भारत कोधीरे-धीरे इस विशालकाय आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था से छोटे-छोटे स्थानीय समूहों की मानवीय व्यवस्था की ओर अग्रसर करते हैं।

गांधी कहते हैं कि- स्वदेशी एक सर्वकालिक सिद्धांत है और इसकी उपेक्षा के परिणामस्वरूप मानव ने अपरिमित दुख भोगा है स्वदेशी का अर्थ है अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन अपने देश में किया जाए और उन्हीं का वितरण तथा उपभोग किया जाए। [6] महिलाओं द्वारा स्वदेशी को अपनाने से न केवल

देश की अर्थव्यवस्था समृद्ध होगी बल्कि आत्मा की शुद्धता की रक्षा होगी। अर्थव्यवस्था को इस प्रकार बढ़ाने से गांधी निरंतर स्त्रियों की सार्वजनिकता का प्रचार कर रहे थे।

स्वराज का शाब्दिक अर्थ है - ष्स्वशासनष या "अपना राज्य"। देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रचलित यह शब्द आत्म-निर्णय तथा स्वाधीनता पर बल देता था। गांधीजी के स्वराज का विचार ब्रिटेन के आर्थिक, राजनैतिक, ब्यूरोक्रैटिक ए सामाजिक, कानूनीए सैनिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं का बहिष्कार करने का आन्दोलन था। स्वराज्य शब्द का अर्थ स्वयं और उसकी प्राप्ति के साधन यानि सत्य और अहिंसा –जिनका पालन करने के लिए हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं-ऐसी किसी संभावना को असंभव सिद्ध करते हैं कि हमारा स्वराज्य किसी के लिए तो अधिक होगा और किसी के लिए कम, किसी के लिए लाभकारी होगा और किसी के लिए हानिकारी या कम लाभकारी।[7]

गांधी देश में स्वराज प्राप्ति हेतु स्त्री-पुरुष की समान भागीदारी के समर्थक थे। गांधी कहते हैं कि स्त्री-पुरुष में समानता का अर्थ यह कदापि नहीं है कि दोनों के कार्यक्षेत्र भी समान हो। नर-नारी के कार्यक्षेत्र अवश्य पृथक हैं लेकिन ईश्वर ने दोनों को बनाया है इसलिए समान हैं। यही नहीं ईश्वर ने स्त्री-पुरुष की रचना एक दूसरे के पूरक एवं सहायक के रूप में की है। शरीर संरचना पृथक होने के कारण उनके कार्य भी भिन्न हैं। जहां पुरुष सक्रिय है वही स्त्री निष्क्रिय। पुरुष एक तरफ आजीविका के लिए घर से बाहर काम करता है तो स्त्री घर तथा बालकों की देखभाल तथा पालन-पोषण का कार्य करती है। गांधी महिलाओं में मातृत्व की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे कहते हैं कि नारियों में यह शक्ति होती है कि वह अपने बालक-बालिकाओं का पालन कर उन्हें निर्भीक और बहादुर बना सकती है जिससे वह राष्ट्र निर्माण में सहायक सिद्ध हो सके। श्गांधी जी नारी को अहिंसा का अवतार मानते हैं। उन्होंने 'अहिंसा श को परिभाषित करते हुए कहा अहिंसा का तात्पर्य है अपरिमित प्यार जो पुनः अर्थ प्रकट करता है कष्ट सहन करने की अपरिमित सामर्थ्य है।[8] वह मानते थे कि महिलाएं त्याग ,ज्ञान तथा नम्रता और अहिंसा का परिचायक होती हैं। पुरुषों की तुलना में महिलाएं अहिंसा के प्रयोग हेतु उपयुक्त होती हैं। नारियों में सहनशक्ति पुरुषों से अधिक होती है इसलिए वह अहिंसा को सही अर्थों में समझ कर उसका प्रयोग करती हैं।

आवश्यकता को करें सीमित, संयम बनाएं रखें

हमारी उपभोक्तावादी संस्कृति ने भी कोरोना महामारी के दौरान समस्याओं को बढ़ाया है। अधिकाधिक उपभोग की प्रवृत्ति ने शहरों में फैक्ट्रियों तथा उद्योगों की बाढ़ उत्पन्न की है। इन उद्योगों से उपजे प्रदूषण ने न केवल हमारे वातावरण को प्रदूषित किया है बल्कि रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी नुकसान पहुंचाया है। प्रदूषित वातावरण तथा खराब प्रतिरोधक क्षमता ने कोरोना महामारी के खिलाफ होने वाले युद्ध में हमें पीछे धकेल दिया। गांधी के अनुसार आत्मा, मन और शरीर का संयम ही स्वास्थ्य है। इस स्थिति में व्यक्ति सुव्यस्थित तरीके से काम करता है। गांधी कहते हैं श्यह वह आदर्श स्थिति है, जिसमें शरीर स्फूर्तिवान, मन प्रसन्न एवं आत्मा मुदितापूर्ण होती है और दसों इन्द्रियों (पांच कर्मेन्द्रियां, यथा-हाथ, पांव, मुंह, जननेंद्रिय एवं गुदा और पांच ज्ञानेंद्रियां, यथा-आंख, नाक, कान, जिह्वा एवं त्वचा) और मन (ग्यारहवीं इंद्रिंय) का कार्य-व्यवहार संपूर्ण (सम्यक) रूप से चलता है। [9]

गांधी कहते हैं कि हमारी उपभोक्तावादी संस्कृति तथा कभी न तृप्त होने वाली इच्छाएं भी बीमारियों का कारण होती हैं।अपनी इंद्रियों की तृप्ति के लिए हमेशा लालयित रहना अप्राकृतिक है। इस

उपभोक्तावादी संस्कृति ने अपनी लाभ के लिए तुम्हारा उपभोग किया है। ऐसे में निरोगी काया पाना मुश्किल है इसलिए जीवन मे संयम बहुत आवश्यक है। विवेक पूर्ण उपयोग से हम अनुभव करते हैं कि अतिपूर्ण जीवन नहीं बिताने पर भी हम आनंद में रह सकते हैं। आत्मसंयम तथा नियंत्रण से हम न केवल अपनी प्रकृति को संरक्षित करते हैं बल्कि अपनी काया को भी निरोगी बनाते हैं।

प्रार्थना से हर मुश्किल होती है दूर

गांधी कहते हैं कि ईश्वर भक्ति में बहुत ताकत है। किसी रोगी की ईश्वर में आस्था उसे शीघ्र स्वस्थय होने में सहायक होती है। इसलिए गांधी प्रार्थना पर विशेष बल देते हैं, वे कहते हैं श्ईश्वरीय श्रद्धा प्राकृतिक चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण अंग है। वास्तव में, वह शक्ति जो कर सकती। जब मनुष्य में इस अदृश्य शक्ति के प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीर में भीतर परिवर्तन होता है और वह पूर्ण निरोग एवं पवित्र बन जाता है। इसके लिए गांधी ने ष्रामनामष के जाप की सलाह दी है। यहां ष्रामनामष मात्र सांकेतिक है, रोगी (व्यक्ति) अपनी श्रद्धानुसार ऊं, खुदा, अल्ला, गॉड किसी भी नाम का जाप कर सकता है। [10]

ईश्वर के लिए प्रार्थना के विषय में महात्मा गांधी रामनाम की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श सब जगह मौजूद रहने वाली रामबाण दवा है ए यह शायद मैंने पहले.पहल उरुलीकांचन में ही साफ.साफ जाना था। जो उसका पूरा उपयोग जानता है ए उसे जगत में कम से कम बाहरी प्रयत्न करना पड़ता है। फिर भी उसका काम बड़े से बड़ा होता है। [11] गांधी कहते हैं कि किसी समस्या से बचने हेतु पहले प्रयास करें उसके बाद सब कुछ ईश्वर को सौंप दें। द्रौपदी ने भी भरी सभा में लाज बचाने हेतु अंत में श्रीकृष्ण से प्रार्थना की थी।

महामारी में खानपान का रखें ख्याल

गांधी महामारी के दौरान आहार पर विशेष ध्यान देते हैं। उनके अनुसार संकट काल में खानपान में बदलाव आपको कई तरह की मुश्किलों से बचा सकता है। वह आहार के विषय में कहते हैं कि श्मनुष्य जैसा आहार करता है वैसा ही वह बनता है-इस कहावत में काफी सत्य है। आहार जितना तामस होगा, शरीर भी उतना ही तामस होगा।[12]

स्त्रियां बनें आत्म निर्भर

गांधी स्त्रियों को आत्मनिर्भर होने की सलाह देते हैं। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान नमक सत्याग्रह में महिलाओं को सम्मिलित किया। नमक महिलाओं के रोजमर्रा के इस्तेमाल की वस्तु थी और इस पर ब्रिटिश सरकार ने एकाधिकार कर लिया था। इस तरह गांधी ने देश की राजनीति से रसोई को जोड़ने का प्रयास किया। इस आंदोलन में बड़ी संख्या में स्त्रियों ने हिस्सा लिया। दांडी मार्च के दौरान वैसे तो शहरी महिलाओं ने भी भाग लिया लेकिन ग्रामीण महिलाओं की संख्या अधिक थी। नमक कानून तोड़ने में महिला संगठनों ने प्रमुख भूमिका निभायी। नमक सत्याग्रह के दौरान कई महिलाओं ने पुरुषों की भांति काम किया। धरना प्रदर्शन में भी साक्षर तथा निरक्षर दोनों तरह की महिलाओं ने भाग लिया। अब स्त्रियों की गतिविधियां सब तरफ दिखाई देने लगी।

इसी प्रकार गांधी ने स्त्रियों को चरखा कातकर खादी निर्माण द्वारा आजीविका कमाने हेतु प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि इन कार्यों से स्त्रियां न केवल अपने घरेलू जिम्मेदारियों का निर्वहन करेंगी बल्कि आत्मनिर्भर भी होंगी। वह वेश्याओं को अपना जीवन सुधारने हेतु चरखा तथा खादी निर्माण की सलाह देते हैं। इस प्रकार नारियां घर के साथ बाहर का काम कर आत्मनिर्भर बन सकती हैं।

सत्याग्रह आंदोलन में स्त्रियों की भूमिका

गांधी का सत्याग्रह सर्वोदय केसिद्धांत पर केन्द्रित है। इस सर्वोदय में समाज के सभी वर्गों के विकास की बात की जाती है। यहां पक्ष तथा प्रतिपक्ष दोनों के व्यक्तियों का हृदय परिर्वर्तित किया जाता है। प्राचीन काल में धर्म तथा सत्य का विवेचन प्रायः होता रहता था। गांधी के सत्याग्रह में धर्म तथा सत्य दोनों परिलक्षित होता है। दोनों का मौलिक निहितार्थ ईश्वर सत्य है के रूप में होता है। जीवन में धर्म तथा सत्य ही सब कुछ है। अहिंसा भी ईश्वर है तथा सत्य भी ईश्वर है। इसलिए हमारे जीवन का सम्पूर्ण ध्येय सत्याग्रह में निहित है। वर्तमान में जितनी समस्याएं दिखाई पड़ती हैं सत्याग्रह उनका समाधानयुक्त अस्त्र है जो सभी देश -काल में साध्य और साधन के रूप में सदैव दृष्टगत होगा।

गांधी ने नारियों को स्वतंत्रता आंदोलन में सम्मिलित किया। महिलाओं को उनके प्रकृति के अनुसार विदेशी समान का बहिष्कार तथा शराब की दुकानों पर धरना जैसे काम दिए गए। डांडी यात्रा के बाद स्त्रियों को आंदोलन में शामिल किया गया। गांधी ने अछूतोद्धार जैसी समाजिक समस्या को दूर करने के लिए नारियों को पुरुषों से बेहतर माना। उनका मानना था कि परिवार की पुरुषों की तुलना में महिलाएं अधिक देखभाल करती हैं। इसलिए वे इस कार्य में निपुण होंगी।

गांधी ने शराब बंदी तथा महिलाओं द्वारा दिए गए धरनों को सत्याग्रह का साधन माना था। नारियों द्वारा शांति पूर्ण तरीके से की गई इन गतिविधियों की सराहना की थी। वर्तमान में लॉकडाउन के दौरान स्त्रियों के प्रति घरेलू हिंसा का कारण शराब पीना भी था। इन परिस्थितियों से लड़ने में महिलाएं गांधी के बताए सत्याग्रह का प्रयोग कर सकती हैं।

प्राकृतिक उपचार

गांधी जी प्राकृतिक उपचार के साथ व्यक्तिगत साफ-सफाई को भी प्राथिमकता देते थे। वे कहते हैं कि श्पश्चिम से हम एक चीज जरूर सीख सकते हैं और वह हमें सीखनी ही चाहिये-वह है शहरों की सफाई का शास्त्र। पश्चिम के लोगों ने सामुदायिक आरोग्य और सफाई का एक शास्त्र ही तैयार कर लिया है, जिससे हमें बहुत कुछ सीखना है। बेशक, सफाई की पश्चिम की पद्धतियों को हम अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बदल सकते हैं। [13] कोरोना संक्रमण के दौरान हल्के लक्षण वाले मरीजों को साफ-सफाई का ख्याल रखना चाहिए तथा गम्भीर मरीज अस्पताल में जाएं।

वह कहते हैं कि- प्राकृतिक का जैसा नाम है , वैसा ही उनका गुण भी है। क्योंकि ये कुदरती हैं , इसलिए सामान्य मनुष्य भी निश्चिंत होकर उनका उपयोग कर सकता है। [14] वह प्राकृतिक उपचारों में ईश्वरीय शक्ति को भी शामिल करते हैं। यह वह शक्ति है जो सब कुछ कर सकती है। यही नहीं उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी को भी स्थान दिया है। उन्होंने फोड़ा -फुंसी, सिरदर्द, टायफाइट और तेज बुखार में मिट्टी को बहुत उपयोगी माना है। मिट्टी के साथ ही वह जल के उपयोग को भी महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका मानना है कि गर्म पानी से गठिया और मोटापे जैसी बीमारियों से छुटकारा मिल सकता है।

कोरोना महामारी के दौरान उत्पन्न हुए वैश्विक संकट ने हमें सोचने पर मजबूर कर दिया है कि हम आत्मनिर्भर आत्मानुशासित तथा स्वावलम्बी बनें। दूसरे देशों पर निर्भरता ने न केवल हमें आर्थिक रूप से कमजोर किया है बल्कि समस्याओं के चक्रव्यूह में बांध लिया है। ऐसे में आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना में गांधी का स्वराज, सत्याग्रह, स्वच्छता के प्रति लगाव , सत्य तथा अहिंसा सहायक सिद्ध होते हैं। निडर होकर, प्राकृतिक उपचार, खानपान में सावधानी तथा ईश्वर में विश्वास हमें किसी भी प्रकार की समस्या से सामना करने की शक्ति प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एस.आर.बख्शी, गांधी एंड हीज सोशल थॉट, 1988, दिल्ली, पेज न.168।
2. यंग इंडिया, 8-8-1929
3. हरिजन, 4-8-1946
4. यंग इंडिया, 22-12-1927
5. हरिजन सेवक, 2-8-1942
6. हरिजन सेवक, 30-10-37
7. यंग इंडिया , 5-3-1931
8. सेवाग्राम ,40-2-12,हरिजन ,40-2-24 महात्मा गांधी ,वीमेन एंड सोशल इंजस्टिस ,गांधी जी , पृ27-26.।
9. गांधी; आरोग्य की कुंजी, अनुवादिका-सुशीली नय्यर, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात), प्रथम संस्करण-1948, पृ.2
10. गांधी; हरिजन सेवक, 2 जून 1946
11. हरिजनसेवक, 22-6-47
12. हरिजन, 5-8-1933
13. यंग इंडिया, 26-12-1924
14. गांधी ; आरोग्य की कुंजी, अनुवादिका-सुशीला नय्यर, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात), प्रथम संस्करण -1948, पृ. 40

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

"Impact of Demonetisation:India"

Dr. Roopam Kumari

(NET/JRF, Ph.D), V.B.U., Hazaribag

Structured Abstract:

Purpose:

Demonetisation means the closure or ban on the use of large denomination notes by the government in any country so that they are no longer of any use. Neither any transaction can be done from them, nor can anything be purchased. In this process, the government eliminates the old currency and turns on the new currency. When black money increases and becomes a threat to the economy, this method is used to remove it. Those who have black money do not have the courage to take a new currency in exchange for it and the black money itself is destroyed. It has been used by Prime Minister of India Shri Narendra Modi on 8 November 2016(Tuesday). From this day old currency of 500 and 1000 rupees was stopped and new currency was introduced.

The first demonetization of 500, 1000 and 10,000 notes was done in the year 1946(Saturday). The Reserve Bank of India, formed in 1938, has not yet issued a note of more than Rs 10,000. In the 1970s, the Wanchoo Committee on Direct Taxes Investigation suggested demonetization to bring out black money and eliminate it. But as this suggestion became public, the black money-keepers immediately withdrew their money here and there.

In 1978 (Monday), the currency of the first currency was demonetised by Shri Morarji Desai, the fourth Prime Minister of India, in which 1000 and 5000 notes were discontinued.

This paper focused on the dual impact (positive and negative)of demonetization on various sector and sub-sector of the Indian economy.

Design/Methodology/Approach: Newspapers, Electronic media, different websites, personal opinion and observation.

Findings: Asdemonetization create both negative as well as positive impact on various economic factors and on the people's life too. Peoples are force to stand in a long queue to deposit old currency notes and to withdraw small amount of money. It has some good impact too as it helps to curb black money, to stop terror and maoists funding through hawala and extortion, fake currency racket destroyed, digital transaction encouraged and more and more people start using different medium of online transaction, etc. There is also some adverse impact to as real estate and property business suffered. Agricultural activity disturbed, daily wages worker suffers a lot, Liquidity crisis occurs.etc.

Originality Value: This paper deal with the situation aroused due to demonetization in India. And here we find out different factors which create impact on Indian economy in both positive and negative ways.

Keywords: Currency, online , transaction, Digital, Withdraw, corruption, Counterfeit, economy.

Paper Type: Research paper.

Introduction: Demonetization means the withdrawal of legal tender rights to any value of currency. Units of money have denied legal tender status. Demonetisation is an act of stripping the legal tender rights of any currency. Units of currency will not be considered as valid currency. Demonetization is the process of issuing a unit of money of its status as a legal tender. Demonetization is a necessary condition to replace the old currency with new units of money. This may include the introduction of new notes or coins of the same denomination or completely new denominations. Till now, a note has been completely closed in India, but many times it closes the old note slowly and instead replaces new notes of equal value. For example, in 2005, Shri Manmohan Singh's Congress-led government demonetised 500 pre-2005 notes. The year of issue was not written on the back of 500 notes printed before 2005. The government stopped old notes to eliminate hoarding of fake currency and 500 notes running in the market. The facility of replacing 500 old notes with new ones was given in banks.On 8 November 2016, Prime Minister Shri Narendra Modi suddenly announced the closure of 500 and 1000 notes.

That is, from November 9, except for certain places (petrol pumps, hospitals, railway stations etc.), transactions of 500 and 1000 notes were stopped anywhere in the country. The use of these notes was also allowed in these places till the deadline (now 24 November). However, he has the support of current RBI Governor Urjit Patel. Urjit Patel has described PM Modi's decision as "very bold step". However, former RBI Governor Shri Raghuram Rajan does not consider demonetization to be effective for bringing out black money. Several other experts have also questioned the move. According to Professor Abhirup Sarkar of the Indian Statistical Institute, Kolkata, most people who own black money keep their money in foreign banks, so there will be nothing worse for big fish than demonetisation in the country.

There is lots of question aroused by the many politician, Economist and other individual on the decision taken by honorable PM of Indian Shri Narendra Modi. Some economist was in favor of PM’s decision and some experts have adverse opinion.

Now the question aroused “What was the reason and motto behind demonetization of Rs-1000 and Rs-500 currency notes. So, there is following certain reasons which are as follows:

- ✓ **Demolition of counterfeit currency operation:** As The Malda and Murshidabad districts of Bengal have long been acknowledged as the entry point of fake currency into India from Bangladesh, because of the porous border they posses. But demonetisation brings the serious impact on the fake currency syndicate thus puted an end of terror funding in various region of country including Jammu & Kashmir and North east State of the country.

- ✓ **To encourage the digital/online transaction:**There was also a strong motive to motivate and encourage citizen of India to practice cashless transaction. As less cash transaction lead to more disclosure of income and this will lead to more tax collection and easy for govt. to track the monetary flow.
- ✓ **To curb black money:**The total value of invalidated Rs 500 and Rs 1,000 notes at the time of **demonetisation** was Rs 15.44 lakh crore, out of which only Rs 16,000 crore was not returned to the RBI. Lots of business like property dealer, jewellers sellers, foreign currency dealers, private money lenders usually hold huge amount of unaccounted money in the form of currency notes which create a parallel economy. But due to demonetisation these currencies reached bank account through direct/indirect medium.
- ✓ **To hit and break the financial backbone of the Maoists:**As of ANI report the Maoists horded Rs.7000 cores with them at Chhatisgarh. And due to demonetisation all these currency became piece of paper until deposited in to bank within given time frame.
- ✓ **To improve GDP:** In spite of all the country is heading towards 9% of GDP by FY2018-19.

Impact of demonetisation on various sector:

- ✓ **Real Estate/Property business:**The real estate sector will be the most affected by demonetization as most of the transactions in it are through cash and black money also contributes to this. However, most such transactions take place in the secondary sales market where a large part of the transaction is through cash. In simple words, resale properties will take a big hit to ensure the market.
- ✓ **Jewellery/Gems business:**Demand for gold jewelers has fallen by 80 per cent as demonetization was announced during the wedding season on 8 November. As more people paid in cash for jewelry. But due to demonetization less cash held in the hand of the people for their daily needs let alone purchasing jewellery. Small unorganized retailers suffers more drastically even few of them shut their shop for few month as they find themselves unable to pay their workers. Many of the jewelers start selling gold on more prices to take advantage of banned notes.
- ✓ **Automobile business:** Two wheeler sales decline drastically as more people buy two-wheeler in cash. Due to cash crunch they are not able to buy.The new and used car sales also affected.
- ✓ **Tourism business industry:As most** of foreign trips are sponsored by black money has come to a halt. Due to the cash crunch local tourism is also get infected. Slowdown also seems in to the restaurant and hospitality business revenue.
- ✓ **Sales of Luxurious goods/services:** Majority of the people spend their unaccounted money on buying luxurious goods and services. After demonetization luxury and their allied business segment face a huge setback.e.g:- luxury car, clothing etc.

- ✓ **Banking sector:** As per the govt. direction the all Rs.1000 and 500 old notes can be deposited and exchanged at banks only. During this period banks prove to be the backbone of entire process of demonetization and also the biggest beneficiaries as their liquidity increased.
- ✓ **Agriculture and Retail sector:The** retail and agricultural sector also get affected due to the sudden cash crunch as the transporting, marketing, distribution, supply chain, this sector has severely been impacted by huge wastage of perishables. The sales of small farmers at local mandi, wholesale centers get affected due to fall in to the demand. Since, cash is the favorable ways of transaction to full fill the daily needs, but due to scarcity of cash in hand of people demand for these product falls down unexpectedly.
- ✓ **Daily wages and labor intensive sectors:** Huge cash is required to pay daily workers wages as they use to buy their stuff on daily basis. Due to cash crisis they lost their job temporarily. They find themselves difficult to full fill their daily basic needs.

Positive impact of demonetisation are as follows:

- ✓ **Over Black money:** Black money is considered Cancer in any economy. It is the same economy, which weakens the very foundations of any country. It is estimated that in India, the total amount of black money is Rs. 3 lakh crore. It is great when we consider that the total amount distributed is only Rs.17 lakh crore. With this one demon-making plant, all black money will come in the account book or will be destroyed.
- ✓ **Over Naxalites and North-East insurgency:They are a group, their oxygen is black money. They are the worst victims of demon possession. Therefore they call this the "Financial Emergency". It is estimated that their annual profit is more than Rs.500 crore trough funding, NGOs, fraud, fraud and local taxes. This large amount is used for rent, arms, food, medicine and shelter.In the process of demon possession, all of this abandonment of money is just a useless piece of paper. However, it has also been noted that Naxals use locals to deposit money into their accounts. The authority must take the matter seriously and prohibit any imposition of such funds.It should also be mentioned that after committing demons, crimes such as theft, robbery, dacoity etc. are immersed in many places like Delhi, Pune and Mumbai according to the latest data.**
- ✓ **By financial inclusion:** The inflow of banks will enable them to offer loans from other institutions to Jan Dhan's account holder. Jan Dhan's total bank account deposit account is less than 1%. A campaign to cast demons on high notes may deliver money into Jan Dhan's accounts. And this move will also make Jan Dhan Account holders familiar with the Bank system.
- ✓ **In addition to government funds:** Unexpected funds will go to the official channel. This will increase income tax collection. This increase in income tax will help the government reduce its deficit in the 2017 financial year. The latest step will move the

economy from the informal sector to the formal sector. And the formalization of non-refundable funds will also aid in the implementation of the GST program.

- ✓ **By crossing borrowing prices:**This large money fund allows banks to reduce their financial costs because higher deposits compensate for higher borrowing costs and reduce overall financial costs. Banks are expected to cut deposit rates by 125 bps in the next six months. The new MCLR (Credit Alternative Cost-Based Cost Guidelines) examines lower costs at that time. This will pave the way for lower interest rates, which will accelerate economic activity in the medium term.
- ✓ **For cleaning of buildings:**It is often said that the housing industry is built on black money. The level of black money distribution in this sector is very high. According to the report, at least 40 per cent of Delhi-NCR real estate transactions are done with black money. The demonic action will prevent black money from flowing into the real estate sector.
- ✓ **Along with hawala transactions:**The ghost possession had a profound effect on hawala rockets. Hawala is a way to transfer money without real cash flow. Intelligence reports indicate that the hawala route is widely used as a tool to reduce terrorist financing and terrorist financing. Hour jobs came to a standstill as black money was abruptly removed from the market.
- ✓ **On the Kashmir Uprising:** If any demonic activity shows its impact in the near future, it is the Kashmir Valley. Four months of unrest in Kashmir have reached out to others due to lack of funds. The intelligence report indicates that separatists are making $ 1 billion a year in Pakistan by creating unrest in Kashmir. Money is transferred through hawala route. Ghost possession completely halted the hawala transaction. For this reason, the separators do not know now. Demon influences have killed a fake Indian money company operating inside and outside the country.The demons also brought peace to the stone structures in Kashmir. As demonetisation backed down with the support of the separatists, they could not follow the youth to revolt against war or empire.
- ✓ **Above the bond market:**Restrictions on currency notes increase the need for government bonds in the market. As we know, this improves bank deposits, which eventually leads to higher demand for SLR (Legal Liquidity).
- ✓ **More than counterfeit money:**According to the ISI (Indian Statistical Institute) the total distribution of counterfeit money in India at any given time is Rs.400. It is estimated that about 70 million worth of counterfeit money is invested in India every year.
- ✓ **Along with banks:** It is known that 86 per cent of Indian distribution is made up of 500 and 1000 notes. And the demonic practice of these notes made people deposit their money in Rs.500 and Rs.1000 notes in banks. As on November 18, the bank had received $ 5.12 trillion in deposits, according to the RBI. This cash deposit will

increase India's GDP by 0.5 to 1.5 per cent. State Bank of India (SBI), India's largest public sector bank, has said it has received R27.2 trillion.

Negative impact of demonetisation are as follows:

- ✓ **Economic Growth slows down:** Post demonetization growth of Indian Economy slowed down from 9.1% to 5.7% in less than one year.
- ✓ **The construction industry is bearing the brunt:** Three times the decisions to cast out demons, RERA and GST have led to a slowdown in the resumption of new assets. The provision of new housing in India's top six cities in the first three quarters of 2017 dropped by almost 60 percent, compared to the same period of 2016.In terms of the sale of goods, the second market was apparently more affected by demon activity compared to the first market. The sale of real estate in second-hand real estate and luxury homes has often had major financial implications, and such sales have been hampered by demonic activity.
- ✓ **Fall in GDP:** Due to sudden announcement of demonetization GDP fall by 2-3% .
- ✓ **Agricultural activity became unbalanced:** As Indian economy largely depend on agriculture. Small and marginal farmers suffered due to cash crunch as they mostly use cash to pay for seed, irrigation, fertilizer, transporting activity, daily wage payment for the supporting daily worker.
- ✓ **Lack of adequate cash in Bank and ATM:** Due to non-availability of adequate cash in bank people have to withdraw limited amount of money once in a week initially. Which was not sufficient for many business and agricultural activity?
- ✓ **Poor daily wages worker:** The daily wages worker mostly buys their food and stuff on daily basis as they work and earn everyday basis. But due to cash crisis they are not getting their work payment which leads them to sit idle.
- ✓ **Real Estate business:** This sector also came to a standstill and still gasping for buyers of their half and full constructed property without buyers.
- ✓ **Black money not recovered fully:** large amount of black money kept in foreign bank so, demonetization did not work to recover this money.

Objective Of the study: Understanding the demonetisation done in India and discussing the impact of this demonetisation on the various sector of the Indian economy. As well as understanding the both positive and negative aspects of demonetisation.

Research Methodology: This paper is prepared on the secondary data .The information collected from published and unpublished data source. e.g.: Television news, Newspaper, articles and journals. Nature of this study is of descriptive and the data used in this study is consisting secondary data. The entire study is a documentary analysis of observed information and fact to understand the meaning and impact of demonetisation.

Limitation of the Study: The analysis is conducted keeping focused on demonetisation in INDIA.

Conclusions and Suggestions:-Surprisingly the government has taken steps to reduce the old money to a new one. The move was an attempt to address the threat of money laundering, corruption, terrorist financing and counterfeit money. The decision to suspend the old currency was seen as a kind of surgical strike against undisclosed wealth in India's economic history, it would be a step towards an economically weak economy. Demon possession took place after a shortage of money at banks and ATMs across the country. The country is facing a severe financial crisis in various small businesses, agriculture and transport. The ban on money by the Indian government has created chaos in the short term as adults. There have been difficulties in exchanging long currency notes outside banks and ATMs throughout India. The total value of the old circulated currency notes was 86% of the total circulated value. Black money is calculated by paying heavy taxes and fines are reached into bank accounts through direct or indirect channels. Demon possession will have a positive impact on the Indian economy as it promotes digital payment methods such as e-wallets and Transaction apps, demonizing using e-banking, plastic money etc.

References:-

I. https://www.jagranjosh.com/current-affairs/impacts-of-demonetisation-we-must-know-1479894107-1

II. https://www.google.com/search?safe=active&sxsrf=ALeKk00ACcJvdg4_W_m1g4HS4KLOWa3Q6A%3A1603037077697&ei=lWeMX7SJKo-E4-EP7Ju70Ak&q

III. Abhani, D. K. A Study On Impact of Demonetization Over The Banking Sectorwith Reference To Veraval City. *International Journal of Marketing & Financial Management*. 5(3). 21-26.

IV. Shah, A. Y. Impact of Demonetization on Rural India. *International Journal of Scientific and Research Publications*. 7(3). 220-223

V. Veerakumar, K. A Study on People Impact on Demonetization. *International Journal of Interdisciplinary Research in Arts and Humanities*.2(1). 9-12.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

اردوناول پرتحریکِ آزادی کےاثرات

محمدار شد،ریسرچ اسکالر،کلکتہ یونیورسٹی

تحریکِآزادیکےزیرِاثرکئیعواملکارفرماتھے۔یہتحریکصرفآزادیکیتحریکنہیںتھیبلکہآزادیکےساتھساتھاستحریکمیںملککیا صلاح،معاشرہکیاصلاح،ذاتپاتکےمسائلکیسےحلکئےجائینگے،ملککیمعاشیحالتکیسےاچھیہوگی،سیاستکوکیساہوناچاہئ ے،آزادیملنےپرملککانظامکیساہوگا،یہساریچیزینموجودتھیں۔استحریککااثرادبپرگہراپڑا۔خاصطورپرناولاستحریکسےکاف یمتاثرہوا۔کیونکہناولایکایسیصنفہےجسمینگوناگونزندگیکےسارےمسائلپیشکئےجاتےہیں۔تقریباًہرناولنگارکےیہاںانکےنا ولمینکہیںنہکہیںیہتحریکدیکھنےکوملتیہے۔کوئیآزادیسےمتعلقباتینکرتاہےتوکوئیاشتراکیتسے۔کسیکےیہانطبقاتیکشمکشہے توکسیکےیہانذاتیمداخلت۔کوئیسماجکوبہتربناناچاہتاہےتوکوئیمعاشرےکو۔کوئیمزدورونارکسانونکےمسائلکوحلکرناچاہتا ہےتوکوئیعورتونکے،کوئیمذہبپرتنقیدکرتاہوانظرآتاہےتوکوئیسیاستپر،کوئیجنسیاتکےمسئلےکوحلکرناچاہتاہےتوکوئیفرقہ وارانہفساداتکوحیوانیتتصورکرتاہے،ہرناولنگارکےیہانکوئینہکوئیتحریککیاٰنچدکھائیدیتیہے۔

ہندوستانیعوامکےدلونمیںآزادیکیلہرینموجینمارہیتھیں،سیاسیلیڈراپنےطورپرہندوستانکوآزادکرانےمینلگاہواتھاتوشاعراو رادیباپنےطورپر۔تحریکِآزادیٔہندکاآغاز۱۸۵۷ ؁ءکیجنگسےہوا۔جسمینہندواورمسلماندونونملکرانگریزونکےخلافلڑےتھے۔لیکنتحریکِآزادیکاباقاعدہآغازاندینیشنلکان گریسسےہوتاہے۔جو۱۸۸۵ ؁ءمینعملمیںآیا۔تحریکِ آزادیکےسلسلےمینتقسیمِبنگالایکدھماکےکیحیثیترکھتیہے۔انھیںانگریزیحکومتکینیتپرازسرِنَوغورکرنےپرآمادہکیا۔ تقسیمِبنگالکیمخالفتایکتحریککیشکلمینشروعہوئی۔اسنےفرقہوارانہفساداتکوبھیجنمدیا۔سودیشیتحریکاوربائیکاٹکاتعلقبھیتقس یمِبنگالکیمخالفتسےہے۔گاندھیجیکےسیاسیمیدانمیںآنےکابھیزمانہہے۔ ۱۸۹۸ ؁ءسے۱۹۱۴ ؁ءتککےدرمیانجبوہجنوبیافریقہمیںتھےاسوقتسےہیانکےدلمیںہندوستانکےمتعلقہمدردیکااحساسہونےلگاتھا۔انھوننےستی ہگرہآشرمقائمکیا۔اسکےبعدنیلکےکاشتکارونپرڈھائےگئےمظالمکےخلافچمپارنمیںستیہگرہشروعکیاورکاشتکارونکےحق میں۱۹۴۷ ؁ءمینحکومتکےسامنےچمپارنمسودہ ٔ قانونکیتجویزرکھی۔۱۳؍اپریل۱۹۱۹ ؁ءمینجلیانوالاباغجیساالمناکسانحہرولٹایکٹکاہینتیجہتھا۔اسیدورانخلافتتحریکچلرہیتھی۔فروری۱۹۲۲ ؁ءمینگاندھیجین ےعدمتعاونتحریکپرزوربنانےکیغرضسےسولنافرمانیتحریککااعلانکیا۔۲۶؍جنوری۱۹۳۰ ؁ءکویومِآزادیمنانےکافیصلہعملمیںآیا۔ چنانچہ۳۱؍ دسمبرکونیمشبمیںآزادہندوستانکاترنگاجھنڈالہرایاگیا۔اورکافیجدوجہدکےبعد۱۵؍اگست۱۹۴۷ ؁ءکوہندستانآزادہوگیا۔ آزادیکیخوشیکادیاابھیبجھبھیںپایاتھاکہہرطرفقتلوخونکابازارگرمہوگیا۔

برصغیرآزادیکےساتھاسکیتقسیمتاریخِہندکاایکالمناکسانحہہے۔اسنےفرقہوارانہفساداتکیلعنتکوجنمدیا۔انسانیتکےدشمنوننے انسانونکےخونسےہولیکھیلی۔سیکڑونگھرنذرِآتشہوئے۔خوشحالذیحیثیتخاندانفساداتکیزدمیںآکرتباہہوگئے۔بےشمارعورتوں کواغواکیاگیا۔شیرخوارِبچےاپنیماؤنکییادمینبلکنےلگے۔انسانوننےوحشیدرندونکاروپاختیارکرکےکنواریدوشیزاؤنتککیع صمتدریسےاپنیہوکمٹائی۔جسصبحآزادیکےخوابملککےجانبازشہیدوننےدیکھےتھےوہداغدارہنکرطلوعہوئی۔پرچمِآزادی خونسےلتپتہوگیا۔ اسطرحپورےملکمینخونکیہولیکھیلیگئی۔اسالمناکسانحہکااثربھیہمارےناولنگارپرہوا۔

اردونثرکےتناظرمینجبہمناولکیابتداکےمحرکاتکاسراغلگاتےہینتوہمیناسحقیقتکااعترافکرناپڑتاہےکہ۱۸۵۷ ؁ءکیاولینجنگِآزادیکیناکامیکےبعدہندستانکامعاشرتی،معاشیاورتہذیبیشیرازہبالکلبکھرگیا۔سیاسیحالاتنےنئےنئےمسائلک وجنمدیا۔فرداپنےآپکوغیرمحفوظسمجھنےلگا۔معاشرےمینمتضادپیچیدگیانپیداہوگئیں۔زندگیکیقدرینیکسربدلگئیں۔یہیفضاءنا ولکیابتداکیباعثبنیں۔

پریمچندکاشمارارددوکےبڑےناولنگارونمیںہوتاہے۔انھوننےپہلیبارکسانونکواپنیناولکاہیروبنایااوردیہاتیزندگیکیخوبصورتت صویرکشیکی۔پریمچندکانگریساورگاندھیجیسےمتاثرتھے۔اوراسیںپرانھوننےانگریزیسرکارکیملازمتسےاستعفٰیدےدیااو

رکانگریسکیتحریکمینشاملہوگئے ۔ملکمینانگریزیحکومتکےجبروتشدداورناجائزتسلطکیفضاءاوراسکیمخالفتمینچلیکانگری سکیتحریککیجھلکیانپریمچندکیناولونمینصافنظرآتیہیں۔

''

گوشۂعافیت''سےپریمچندنےپہلیبارشمالیہندکےغریبومظلومکسانکواپنےناولکاموضوعبنایاہے ۔اسناولکاہیروبلراجزمیندار وناوراسکےحواریونسےٹکرلینےوالاایکباغیکسانہے ۔گیانشنکرایکروایتیقسمکاجابراورلالچیکسانہے ۔اسیجاگیردارانہلوٹگ ھسوٹسےپلنےوالاغوثخاناورگردھرہے ۔علاوہازینکسانونکےدکھدردکوسمجھنےوالےاورہمدردیرکھنےوالےمتوسططبق ےکےکچھافرادمثلاًپریمشنکر ،جوالاسنگھ،دیاشنکراورڈاکٹرعرفانعلیہیں۔''گوشۂعافیت''جاگیردارینظامکےخلافکسانونکیب یداریکیکہانیہے ۔اسناولکےذریعہپریمچندنےآزادیسےپہلےہندستانیکسانونپرہونےوالےاُسمظالمکینشاندہیکیہے جسکےتحت کسانونکیآدھیفصلزمینداراوراسکےگماشےلےجاتےتھے ۔فصلخراہونےکیصورتمینزبردستیپورالگانوصولکیاجاتاتھا ۔مہا جن،مویشی،زمینہتھیاکراپنیرقموصولکرلیتےتھےاورموقعپڑنےپرکمزورکسانونکیہوبیٹیونکوبھیاستعمالکرلیتےتھے،ان کےگھرجلادیتےتھے،انسےبلامعاوضہکاملیتےتھے ۔کسانونکوزندہرہنےکےلئےتھوڑااناجدےدیتےتھے ۔

پریمچندکاشاہکارناول''چوگانِہستی''ہے ۔گوشۂعافیتمینآدرشوادیرنگنظرآتاہےجویہانمفقودہے ۔یہناول۱۹۲۴ ء مینشائعہوا ۔یہوہزمانہتھاجبسولنافرمانیاورعدمتعاونکیتحریکاپنےعروجپرپہنچکردمتوڑچکیتھی ۔لیکنگاندھیجیکافلسفۂ عدمتشددابنیتمامترتفصیلاتکےساتھہندستانیعوامکےسامنےعیانہوچکاتھا ۔گاندھیجیکےعدمتشددکامجسمروپ'جوگانِہستی' کےسورداسکیشکلمیںنظرآتاہے ۔کچھنقادتوسورداسکےکردارکوگاندھیجیکےکردارسےمماثلقراردیتےہیں ۔سورداسہندستانی عوامکےجذباتواحساساتاورحریتپسندیکیعلامتہے ۔سرمایہدارخانسیوکسورداسکیزمینچھینکراسپرفیکٹریقائمکرناچاہتاہے ۔لی کنسورداسعدمتشددپرمبنیمزاحمتکرتاہے ۔سورداسایکغریباورکچلےہوئےطبقےکینمائندگیکرتاہے ۔

میدانِعمل'' ۱۹۳۱ ''

ء مینلکھاگیا ۔یہناولپریمچندکےمقبولناولونمینسےایکہے ۔یہناولاسدورمینلکھاگیاتھاجبسائمنکمیشنکےبائیکاٹسےآزادیکیت حریکمیندوبارہزندگیکیلہردوڑگئیتھی ۔جو ۱۹۳۰ ء مینننمکقانونکیخلافورزیاورسولنافرمانیکیشروعاتسےاوربہترہوگئیتھی ۔سولنافرمانیکیتحریککےساتھہیبدیسیمصنوعا تکابائیکاٹبھیشروعہوا،بہتسےہندستانیونےلاکھونروپےکابدیسیسامانپھونککر،سرکاریملازمتونسےاستعفٰیدےکراورسرکا ریتعلیمیادارونکابائیکاٹکرکےسودیشیتحریککیحمایتکی ۔میدانِعملمیناسدورکےسیاسیہیجاناورپیچیدگیونکواضحانداز مینپی شکیاگیاہے ۔

میدانِعمل'کاہیروامرکانتایکقومپرستاورحریتپسندنوجوانہے ۔جواپنےرئیسباپکوچھوڑکرگاندھیائیفلسفےکےزیر ' اثرکھدّربیچکرگزربسرکرنےلگتاہے ۔ایکگاؤنمینپہنچکرتعلیمکےفروغکےلئےکامشروعکردیتاہے ۔اورمقامیزمیندار اور مہنتکےخلافگاؤنوالونکومتحدکرتاہے ۔کچھایسےاتفاقہوتےہینکہتقریباًسبھیکردارجیلپہنچجاتےہیں ۔اوروہانانکیقلبماہیتہوجات یہےجوکافیغیرفطریہے ۔''میانِعمل''مینپریمچندنےشہریزندگیکوبھیپیشکیاہے ۔لیکندیہاتکےسادہلوحکسانوناورجاگیردارونک یمعاشیونفسیاتیزندگی،انکےتوہماتونقصاناتانکیچھوٹیچھوٹیچالاکیوں،انکیمذہبیت،رحمدلیاورانکےفرسودہرسومورواجکیپی شکشجسمہارتکےساتھکیگئیہےوہیمہارتشہریمزاجوناورکردارونمینظرآتیہے ۔

گئودان '' ''

پریمچندکیآخریناولہے ۔کیونکہپریمچندابگاندھیجیکےعدمتشدداورجاگیردارونسےانکیمفاہمتپرستانہذہنیتسےکافیحدتکمایوس ہوچکےتھے ۔اورابانکاآدرشوادبھیانکیفنیتقاضونکوپوراکرنےسےنہینروکپاتاتھا ۔پریمچندنےایکحقیقتپسندادیبکیطرحاسناول مینہندوستانیزندگیکےتمامگوشونپرروشنیڈالیہے ۔انھوننے ''گئودان '' مینہوریجیسےکمزورمظلوماورجاہلوپسماندہکسانکوہیروبناکراردوفکشنکیتمامسابقہروایاتکوتوڑاہے ۔ہوریایکسیدھاسادہک سانہے ۔وہظلمکوخاموشیسےسہتاہے ۔لیکناسکےبرعکساسکابیٹاگوہرایکباغینوجوانہے ۔وہاسدیہنچلےطبقےکانمائندہہے ج وگاؤنمیناورزندگیتنگہونےپرہجرتکرکےشہرکیگندیبستیونکوبساتاہے ۔فیکٹریاورمِلمینمحنتمزدوریکرکےاپنےپیٹکیآگبجھات اہےاورگاؤنمینعزتبھیحاصلکرلیتاہے ۔ضرورتپڑنےپروہتحریکِآزادیمینبھیشاملہوتاہے ۔اورمِلکیہڑتالمینبھیحصّہلیتاہے ۔وہگا ؤنمینڈرامہکرتاہے ۔اوراسکےذریعہجاگیردارونکوراہجانونکامزاقاُڑاتاہے ۔وہباپکیطرحقسمتپرستیااوہامکاشکارنہینہے بلکہ ایکحقیقتپسندہےاوراپنےکامکامعاوضہچاہتاہے ۔موقعپڑنےپرباپکیطرحچھوٹیموٹیچالاکیبھیکرجاتاہے ۔لیکنگلملاکراپنےفر ضاورمحنتکونونمینتوازنبرقراررکھتاہے ۔کیونکہوہبنیادیطورپرمحنتکشہے ۔

پریمچندکےبعدجسنسلنےناولنگاریکےمیدانمینقدمجمایاوہجدیدعلوموسائنسپرمبنیفکرسےمتاثرتھی ۔بقولڈاکٹرقمررئیس:

''
اسکے پاسبشریتاور عقلیتکینئیکسوٹیتھی۔اسکے ذہنوشعور کیتعمیر میناگر ایکطرفمارکساور اشتراکیسرمایہٗادبتھاتودوسریطر
''ففرائد،ڈیایچلارنساور جیمسجوائسجیسے مفکر وادیبتھے۔

انکے نظریاتاور ادبسے ہر ادیبنے اپنے کردار اور ذہنیساختکے مطابقاکتسابکیا۔انھوننے فرداور سماجکے بدلتے ہوئے رشتے کو سمجھتے ہوئے سماجیعواملکے ساتھساتھفردکے کردار اسکے تجرباتپر زور دیا۔اردو مینا سمکتبِفکر کاباقاعدہآغاز ''انگارے''ک یاشاعتسے کیا۔۱۹۳۳
ءمینسجادظہیر ،محمددینتاثیر ،ڈاکٹر ملکراجآنند اور ڈاکٹر جیوتیگھوشو غیرہنے انجمنترقیپسندمصنفینکیباقاعدہتشکیلکی۔ی ہسبھینوجوانیاتوطالبعلمتھےیاادیبجنمینانساندوستیاور عالمیبھائیچارےکاجذبہمشترکتھا۔انسانکے دکھدرداور مصائبکاحلیہنو جوانمارکسزممینڈھونڈتے تھے۔اور ادبکوسماجیتبدیلیکاذریعہسمجھتے تھے۔۱۹۳۷
ءمینلکھنؤمیناسانجمنکاپہلااجلاسہوا۔اسکیصدارتپریمچندنے کیتھی۔اسانجمنکے قیامکامقصدادباور عوامکے رشتہکوم ضبوطترکرناتھا۔

ترقیپسندناولنگار ونکیاولیننسلمینسجادظہیر ۔عصمتچغتائی،کرشنچند،عزیز احمدکانامسرِفہرستہے۔انکے علاوہقاضیعبدالغفا رخاننے دوناول
''لیلیٰکے خطوط''اور ''مجنونکیڈائری''بھیاسیدورمینتصنیفکئے گئے ۔قاضیعبدالغفار خانکو اولینترقیپسندناولنگار ونمینشمارکی اجاسکتاہے۔
لیلیٰکے خطوط '' ''
مینایکطوائفکیزندگیکو پیشکیاگیاہے ۔جوسماجکیمروجہفرسودہاقدارکے خلافجہادکرتیہے۔اور انکے خلافجہادکرتیہے ۔یہناو لایکٹھکرائیہوئیہندستانیعورتکیصدائے احتجاجہے ۔اور انگارےکیطرحسماج،حکومتاور مذہبکے فرسودہطرزِفکر پر ایکتازی انہہے ۔لیلیٰکے لہجےکیتلخی،زہرناکیاور جوشو غضبقصہکیجانہے
''
مجنونکیڈائری''مینمجنونایسے ہیحالاتکاپیداکردہنوجوانہے ۔وہکسیبھیمفروضےیااصولکو ہوبہوتسلیمنہینکرتا۔زندگیکے ہر شعبےمینوہاپنے لئے اپنے ہیمعیار پر ہر چیز کو جانچتاہے ۔اسکایہآزاد،بےخوفاور غیرمتوازناجتہاداسکوکسیمقامپر قرار نہینلین ےدیتا۔جبہتسے امکاناتنامکنثابتہوتے ہینتووہفرسٹریشنکاشکارہو جاتاہے ۔توکبھیمذہبپر حملہکرتاہے توکبھیتمدنپر یورشکرت اہے ۔اور زندگیکے قدامتکے خلافاعلانِجنگکرتاہے ۔وہدنیاکاباغیاپنے میدانمینبڑھتے بڑھتے یکایکٹھہر جاتاہے ۔
لندنکیایکرات '' ۱۹۳۶ ''
ءمینترقیپسندتحریککے زیر اثر لکھاجانے والااولیننا ولتھا۔جسے ترقیپسندتحریککے روحِرواںسجادظہیر نے لندنکے زمانۂ طالبعلمیمینتصنیفکیاتھا۔اردو مینشعور کیرد کیٹکنکپہلیبار اسناولمینسجادظہیر نے استعمالکیاتھا۔''لندنکیایکرات''لندنمینزیرِتعل یمہندستانینوجوانکیایکرات کیکہانیہے ۔

اسناولٹمینسجادظہیر نے ہندستانینوجوانوں،مقامیمزدوروناور انگریز طالبعلمونکے مختلفالخیالگروپونکیذہنیکشمکشاور نظری اتیٹکراؤکو موضوعبناکر انگلینڈکیسیاسیفضاءاور ہندستانکیغلامیکے بارےمینوہانپر رہنے والے ہندستانیاور غیر ہندستانیباشند ونکیفہماور ذہنیالجھنوںپر روشنیڈالیہے ۔اسکے لئے مصنفنے ناولٹمینتینمختلفالنوع رشتونکو اپنے مطالعے کامحور بنایاہے ۔پہلا زمینیر شتہیعنیو ہتعلقہے جو تمامہندستانیونکو انکے نظریاتمفروضاتاور احساساتکے اختلافکے باوجود ایکر شتہمیںباندھے ہوئ ےہیں۔دوسرا نظریاتیر شتہہے جو انگریز مزدورونکو ہندستانمیںآزادیکے حصولکے لئے جدوجہدکرنے والے عوامسے ہمدردی کرنے پر اکساتاہے ۔جو یہشعور عطاکرتاہے کہانگریز حکمرانا پنے حقوقکے لئے جدوجہدکرنے والے انسفیدفاممزدورونکے سا تھبھیو ہیسلوککرتے ہینجو وہکالے ہندستانیونکے ساتھکرتے ہیں ۔تیسرا رشتہجذباتیہے ۔جسکے بناپر بیرینا ور شیلا اور اعظموجی نایکٹوریمینبندھے ہوئے ہیں۔یہر شتے عاممحبتونکیطرحجنسیتعلقات،شخصیاتکیکشش،رومانکیخوابناکی،فراقکیلمحات،یاد ونو عدوناور انتظار سے پُر ہیں۔لیکنلندنکیایکرات کاکابنیادیموضو عمحبتیاجنسنہینہے ۔بلکہناولٹکے اہمکردار اعظم،راؤ،نعیمو غی رہسبہولونکیطرح حراتکیتاریکیمینایکدوسرے سے مخاطبرہتے ہیں۔کبھیوہایکدوسرے سے الجھتے ہیناور کبھیو اپسا پنیذاتکے خ ولمینمراجعتکر جاتے ہیں۔

انکیایکمشترکخصوصیتہےکہوہمحملسےزیادہفکرپراعتمادکرتےہیناوراپنیمخصوصفکریساختکےباوجودایکطرحکیژولی دگیکاشکارہیں۔یہاسداخلیجذباتیکشمکشکانمونہہےجوپہلیجنگعظیمکےبعدمتوسططبقےکےتعلیمیافتہنوجوانکےذہنونمینجاگ زینتھی۔وہزندگیگزاررہےہینلیکنانکےیہانکوئیقدرپائیدارنہینکوئیرشتہمستقلنہینہےیانکیمحبتشدیدہےانکینفرتانہینعملپیراکرپ اتیہے۔

اسطرحناولکاہیرونعیمایکموقعپرسوچتاہے ؎

انسانکیقسمتمینجگرخراشی،یہکوفتآخرکیونلکھیہے۔ ''
ہمکتنےبےبسہیں۔سبسےزیادہروحانیمصیبتہےجوہمینلاچارکردےجوہمارےجذباتکواتناالجھادےکہپھرانکاسلجھانامشکلنہ ''ینبلکہناممکنہوجائے

دراصلیہوہنوجوانسلہےجوترکموالاتاورجنگِعظیمکےبعدکےعاماخلاقیزوالکیپیداکردہتھیاورجسکےذہنکیتعمیرمینانقلابِر وساورآزادیکیانتہاپسندتحریکوننےاہمرولاداکیا۔

کرشنچندرکیاولیننال 'شکست'جو۱۹۴۳ ؁ءمینلکھاگیا۔

اسکاموضوعروایتیجاگیردارانہسماجکیکشمکشہے۔ہیروموہنسنگھراجپوتہے۔ہیروئنچندراچھوتہے۔اوردونونمحبتمینگرفتا رہیں۔دونونکےراستےمینسماجرکاوٹپیداکرتاہے۔چندرااپنےمحبوبموہنسنگھکےمرنےپرپاگلہوجاتیہے۔کیونکہمذہبکاٹھیکی دارپنڈتسروپکشنیہگوارانہینکرسکتاکہراجپوتکینسلخرابہوجائے۔اسیطرحدوسرانوجوانشیامایکایسیلڑکیسےشادیکرناچاہتاہ ےجسکیمانکوبرادریسےنکالاجاچکاہے۔چونکہشیامبرہمنہےاسلئےاسکیشادیدوسریجگہطےکردیجاتیہے۔لیکناسکیمحبوبہ ونتیاسکیجدائیسےمایوسہوکرخودکشیکرلیتیہے۔کرشنچندرکایہناولایکحدتکرومانویاوراصلاحیہے۔جوہندوسماجکیزمانہقد یمسےمروجہذاتپاتکیدرجہبندیکےخلافتحریرکیاگیاہے۔

''

میرےبھیصنمخانے''تقسیمِہندکےالمیےکےموضوعپرایکاہمناولہے۔جسمینقرۃالعینحیدرنےتقسیمِہند،قیامِپاکستاناورآزادیٔہن دکےزیرِاثرجاگیرداروناورزمینداروںکےتناظرمینمتحدہندستاناوراسکےصدیونکےتہذیبیوثقافتیڈھانچےکیشکستوریختکیال مناکیونکوپیشکیاہے۔

آزادیٔہندسےقبلکیہندستانیتاریخکاایکالمناکپہلویہبھیہےکہہندومسلمکےدرمیانقومیمنافرتاورفرقہوارانہعصبیتکیایکخلیجپیداہ وجاتیہے۔لیکناگرمسلمانوںکیصورتحالکاجائزہلیاجائےتوتاریخکاایکشرمناکپہلویہبھیسامنےآئےگاکہمسلمانخودمسلمانونکین گاہمینمطعونوملعونتھے۔سیاسیناسمجھیکےباعثمسلمانونمیناتحادواتفاققافقدانتھا۔ملیشیرازہندیناپیدہوکررہگئیتھی۔مسلمانونک اوہگروہجومطالبۂپاکستانکومقصدِاولینسمجھتاتھا۔اسکاتعلقمسلملیگسےتھا۔ایکگروہایساہیتھاجوہندستانکواسکیسالمیتکےتن اظرمیندیکھناچاہتاتھا۔مسلمانونکےاسگروہکیوابستگیکانگریسسےتھی۔مسلملیگمسلمانونکینگاہمینیہگروہاسلاماورآئین ِ اسلامسےکوسوندورتھا۔ناول 'میرےبھیصنمخانے'مینمسلمانونکےملیانتشاراورذہنیکشمکشکییہکیفیتبدرجہاتممووجدہے۔

مسلمان۔۔۔لاحولولا۔۔۔مولیٰنانےداڑھیپرہاتھپھیرکرکہا۔کنورعرفانکیاولادایکسرےسےمسلمانہینہینہے۔انکےلڑکے ''
۔۔۔شرابوپیئیں،انگریزیناچوہناچیں،ہروقتکاانگریزوں،کافرونکےساتھاٹھنابیٹھنا ۔

سوربھییقیناًکھاتےہونگے۔بلکہمیراتوخیالہے
کہانکیلڑکیشادییہیکسیہندوسےکریگی۔

تقسیمِہندکےالمیےکےموضوعپر''آنگن''خدیجہمستورکاایکمقبولناولہے۔اسناولکاآغازتحریکِآزادی ٔ ہندسےہواہے۔اورتحریکِعدمتعاونکےمناظرکوپیشکرتاہوافرقہوارانہفسادات،تقسیمِہنداوراعلانِآزادیپریہناولختمہوجاتاہے۔م سلمخاندانکاوہمتوسططبقہجسنےجدوجہدآزادیمیناپنیذہنیصلاحیتاورجانومالللٹانےمینکوئیکسرباقینہینرکھی۔یہناولاسپیلاٹک ےاردگردگھومتاہے۔

ہندستانکیجنگِآزادیمینہندومسلمدونوقوموننےکندھےسےکندھاملاکرحصّہلیاتھا۔

انکےسامنےصرفایکمدعاتھاکہملککیآزادیکےبعدانکاسیاسیاوراقتصادیبحراندورہوجائےگا۔مصیبتونکےبادلچھٹجائینگے۔

خوشیوناور بہارونکے دنآئینگے۔ اپناملکاور اپنیحکومتہوگیجسسے ہر فردوبشرکو خوشحالزندگیگذارنے کاموقعملےگا۔
استحصالاور تفریقنامکیکوئیچیز نہینرہےگی۔

اسمقصدکے تحتدونونقومونے قیدوبندکیصعوبتینجھیلیں۔انگریزونکیگولیانکھائیں۔اور اپنیجانونکیقربانیاندین۔لیکنابھیآزادیملی
بھینہیںتھیکہفرقہواریتکے زبردستبھونچالکیحیثیتمیندونونقومیںآگئیں۔انحقائقکو پیشکرنے مینخدیجہمستورکہانتککامیابہوئیہیں
اقتباسکیروشنیمینکریمنبواکیلفظونمیں ؎

''
زمانے زمانے کیباتہے وہبھیزمانہتھاجبہندو اپنے گاؤنکے مسلمانونپر آنچآتے دیکھتے توسر دھڑکیبازیلگادیتے۔اور مسلمانہندو
کیعزّتبچانے کیلئے اپنیجانتکنچھاور کر دیتے تھے۔ایسابھائیچارہتھاکہلگتاایکمانکے پیٹسے پیداہوئے ہیں۔پر ابکہانگیا
''۔دونونکے ہاتھونمینخنجر آگیا۔

تقسیمِہندکے المئے کے موضوعپر عبداللہحُسینکاناول ''اداسنسلیں''خاصیشہرت رکھتاہے۔اسناولمیں۱۹۱۴
؁ءسے ۱۹۴۷ ؁ءتککے واقعاتدرجہیں۔واقعاتکیپیشکشکے اعتبار سے اُسے چار عنواناتکے تحتتقسیمکیاگیاہے۔
برٹشانڈیا(۲)ہندستان(۳)بٹوارہ(۴)اختتامیہ(۱)

جہانتکہندستانکیتقسیماور آزادیکے واقعاتکاتعلقہے۔اسسلسلے مینناولنگارنے تاریکیحقائقکو نظرانداز نہینکیاہے۔تاریخبتاتیہ
ےکہتحریکِآزادیکے زمانے مینہیمسلماندوزمرے مینبٹگئے تھے۔ایکگروہمتحدہہندستانکیآزادیکامتلاشیتھا،اسکے برعکسدو
سرا گروہتقسیمہندکے تناظر مینآزادیکامتمنی۔
اِندونونگروہونکے نمائندونمینمولاناآزاداور محمد علیجنّاحکے ناماٰتے ہیں۔ناول
''اداسنسلیں''مینمسلمانونکے دومختلفسیاسینظریونکیجھلکواضحطور پر سامنے آتیہیں۔آزادیکے وقتکیصورتِحالکے تناظر میں
نعیمکارڈّعململاحظہہوآزادیکاخواہانہے ؎

''
پارلیمنٹکیعمارتکیبیرونیسیڑھیونپر کھڑےہوکر اسنے آزادیاور مسرتکالمباسانسلیا۔انقلابزندہآبادکئیلوگچلائے،وہمڑکر کھڑاہ
وگیا۔مختلفقسمکے نعرونکاشور اسکے کانونمینآرہاتھا۔انقلابزندہآباد،پاکستانزندہآباد۔۔۔اسنے اپنیٹوپیاتاریاور اسے چھڑیکینوکپ
''رچڑھاکر بلندکیااور پوریقوتسے چیختاآزادیزندہآباد۔

ناولکے محولۂبالا عبارتونسے یہحقیقتمنکشفہوتیہے کہاداسنسلینتقسیمِہندکے المئے کو موضوعپر ایکتاریخیدستاویزکیحیثیترک
ھتاہے۔عبداللہحسیننے تقسیمِہندستانکے المناکواقعاتکو پیشکرنے مینفنکارانہصلاحیتونکامظاہرہکیاہے۔
لہوکے پھول''حیاتاللہانصاریکاایکمعروفومقبولناولہے جسکاکینوسوسیعہے۔اسمیں۱۹۱۱ ؁ءسے ۱۹۵۲ ''
؁ءتککے متحدہاور منقسمہندستانکے معاشرتی،اقتصادی،تہذیبیاور سیاسیاحوال،کوافمندرجہیں۔
یہناولپانچجلدونپر منقسمہے ۔''لہوکے پھول
''مینرونماہونیوالے واقعاتکو مختلفعنواناتکے تحتپیشکیاگیاہے۔جنسے تینموضوعاتکے تانے بانے اُبھرتے ہیں۔اور زمیندارونا
رجاگیردارونکے ذریعہکسانونکااستحصال،دوماچھوتونکے مسائلاور سوہندومسلمکشیدگیکے سببفرقہوارانہفسادات،ناول
مینانموضوعاتکیپیشکشکاجائزہاسعہدکے ہندستانکیسیاسیصورتحالکے تناظر مینلیاجائے تو اسحقیقتکاانکشافہوگاناولنگارنے
تاریخیصداقتکو پیشکرنے مینفنیتقاضونکو مجروحنہینہونے دیا۔

آزادیکینصفصدیگزرجانے کے بعدبھیملککے اندر فرقہوارانہتشددکہینکہیندیکھنے کو ملتاہے۔اسموضوعپر بھیناولنگارنے ب
ہتدردناکتصویر پیشکیہے۔نمونہملاحظہہو ؎

’’

ابکیابتاؤنکیاحالہے،ہملوگونکا،اسسے اچھاتھاکہہپہسنانے والے ایکدنسبھونکو اسیطرحمارڈالتے جسطرحاورجگہکرتے ہیں،پ
ھوپھیرونے لگیں،لڑکیونکیآنکھبھیڈبڈباآئیں۔پھوپھیرورو کر آنچلسے آنسوپونچھپونچھکر بہتدردبھریآواز سے کہنے لگیں۔۔ہول
کے مارے ہملوگونکونہراتکونیندآتیہے اور نہدنکو چینملتاہے ،ہر وقتدھڑکالگارہتاہے کہدیکھاجائے کیاہوتاہے ،یہکمبختعورتو
نکے ساتھجوسلوککرتے ہینوہہمسبجانتے ہیں۔مینتوکہتیہونانسببیبیوں
’’!ہمکو چاہئے کہادھر حملہہواور ادھر سبکوئینمینپھانڈپڑیں،یہموتحرامنہہوگیشہادتہوگی

حیاتاللہانصاریکاناول ’’لہوکےپھول‘‘ایسیہتسیباتینبھریپڑیہینجسے سُنکر رونگٹاکھڑاہوجاتاہے ۔
عزیزاحمدکاناول ’’گریز‘‘اور ’’آگ‘‘مینبھیتحریکِآزادیکے اثراتدکھائیپڑتے ہیں۔عصمتچغتائینے
’’تیڑھیلکیر‘‘مینعورتونکینفسانیتکو اجاگرکرنے کیکوششکیہے ۔
اسزمانے مینمسلممتوسطگھرانے مینلڑکیونپر بہتسیپابندیانعایدتھیں۔اسکیوجہسے وہگھٹنکاشکارتھیناسباتکو بھیعصمتنے بڑیب
ےباکیسے پیشکیاہے ۔

مختصرطورپر ہمیہکہسکتے ہینکہاسزمانے مینجتنے بھیناولللکھے گئے کمو بیشسبھیپر تحریکآزادیکے اثراتدیکھنے کو ملتاہے
۔ والٹر لکیننے بیسوینصدیکیناولنگاریکیخصوصیاتبتاتے ہوئے لکھاہے کہ
’’اسدورکے ناولاپنے عہدکاآئینہہیں۔لیکنیہآئینہصرفخارجیحالاتکیعکاسینہینکرتابلکہافرادکی
’’اندرونیزندگی‘‘کو بھیپیشکرتاہے ۔

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

हिन्दी उपन्यासों में वर्णित आदिवासी जीवन : सामाजिक दृष्टिकोण

डॉ0 अरविन्द कुमार

पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, आई0सी0एस0एस0आर0,
समाजशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

'आदिवासी' शब्द का अर्थ है– 'आदिम' अर्थात् मूल निवासी। पूर्णतः वन सम्पदा पर आधारित वनवासी जातियों का स्वाभाविक जीवन अपनी एक अलग संस्कृति और दुनिया में सिमटा होता है। आदिवासियों को भारत में जनजातीय लोगों के रूप में जाना जाता है। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों जैसे– उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक रूप में निवास करते हैं। मिजोरम, मेघालय, नागालैण्ड जैसे पूर्वोत्तर राज्यों में ये बहुसंख्यक हैं। भारतीय संविधान की पाँचवीं अनुसूची में इन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता प्राप्त है।

स्वतंत्रता के 72 वर्षों बाद भी भारत में यदि कोई समुदाय उपेक्षित, अभिशप्त, शोषित और अशिक्षित है तो वह है– आदिवासी समाज। यह समाज सभ्यता के प्रारम्भ से ही निर्वासित जीवन व्यतीत करता आ रहा है। प्रकृति की गोद में पल रहे इन आदिवासी वनरक्षकों को वर्तमान समय में किसी चीज की आवश्यकता है तो वह है शिक्षा, चिकित्सा, प्राथमिक सुविधायें और संसाधनों के साथ–साथ सम्मान की। हमारे भारत देश में हर पग पर जहाँ विकास की उपलब्धियों में महागाथायें लिखी जा रही हैं, वहीं यह आदिवासी समाज पग–पग पर अभाव तथा शोषण के कारण सिमटता जा रहा है। ''कल का किसान आज वहाँ कोयला चोरी पर जिन्दा है या बड़े शहरों में मजदूरों की यायावर जमात बनकर जी रहा है। भूमि का मालिक भूमिहीन हो गया है। खेतिहर मजदूर जो दूसरों की जमीन जोतते थे, उनकी तो और भी दुर्गति हुई। उजड़ गया बिहार, झारखण्ड, बंगाल, उड़ीसा व उत्तर प्रदेश का पूर्वी हिस्सा या मध्य प्रदेश छत्तीसगढ़ का आदिवासी बहुमूल्य इलाका।''[1]

वास्तविक स्थिति यह है कि वर्तमान में आदिवासी समाज अपने अस्मिता की तलाश में है। ''किसी भी समाज को जबरन मूल स्थान, मूल भाषा तथा मूल पहचान से अलग किया जाता है तो उस समाज में असुरक्षा की भावना पनपती है। स्वयं के अस्तित्व को

बनाये रखने के लिए संघर्ष करता है और यही संघर्ष एक सीमा के बाद आन्दोलन का रूप ले लेता है। इसी आन्दोलन में वह अपने शोषण के प्रति विरोध दर्ज कराता है।''[2] यद्यपि आदिवासी अस्मिता का आन्दोलन अंग्रेजी राज्य के समय से ही प्रारम्भ हो गया था और झारखण्ड, मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र में इस आन्दोलन की नींव पड़ चुकी थी। तुणराम, वाहरू सोनवणे, भुजंग मेश्राम व लक्ष्मण गायकवाड़ आदि कई नेताओं ने इस आन्दोलन को प्रारम्भ किया। इन आन्दोलनों के प्रभाव के कारण ही आदिवासियों में अपने साथ हो रहे अन्याय का बोध हुआ। यही भावबोध एवं विरोध आगे चलकर आदिवासी विमर्श की नींव बना। समाज के दर्पण कहे जाने वाले कला, साहित्य तथा रंगमंच की पीठिका पर भी इन कठपुतलियों के द्वारा किये गये विरोधों ने इनके जीवन पर दृष्टि डालने को विवश किया है। आखिर क्यों इनका विरोध इस स्थिति को प्राप्त करता है कि इन्हें नक्सलवादी करार दिया जाता है? क्या कारण है कि शोषण के मुद्दे इसी समाज में ज्यादा पनपते हैं और विरोध एक भयावह लीला के दर्शन कराता है। इस प्रकार के भावबोधपूर्ण कई मुद्दों का मार्मिक विमर्श एवं साक्षात्कार हमें हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा में देखने को मिलता है। इनके जीवन के रसातल से लेकर विरोधों के प्रस्फुटन तक की प्रत्येक स्थिति का समग्र, सहानुभूतिपूर्ण प्रत्यक्षदर्शी विवेचन हिन्दी उपन्यास साहित्य में मिलता है। इनमें आदिवासी जीवन के विभिन्न जातियों/उपजातियों की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है।

1899 ई0 में 'बसन्त मालती' नामक पहला आदिवासी केन्द्रित हिन्दी उपन्यास सामने आया जिसमें मल्लाह वर्ग की एक कथावस्तु प्रस्तुत की गयी। यह उपन्यास मुंगेर जिले के मलयपुर अंचल के मल्लाहों से सम्बन्धित था। जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने इस उपन्यास द्वारा आदिवासी हिन्दी उपन्यास साहित्य की आधारशिला रखी। तदुपरान्त आदिवासी जीवन के मूल अर्थ को आधार मानकर जो उपन्यास लिखे गये, उनमें वन–कंदराओं में निवास करने वाले तथा वन प्रहरी माने जाने वाले आदिवासी समुदायों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। आदिवासी भारत की प्राचीन परम्पराओं के वाहक तथा संरक्षक माने जाते हैं। विडम्बना यह है कि जब वो अपनी नष्ट होती हुई संस्कृति तथा परम्पराओं की पहचान बनाये रखने के लिए संघर्ष करते हैं तो उन पर नक्सलवादी होने का आरोप लगा दिया जाता है। कुछ ऐसी ही रूपरेखा ब्रजरंजन सहाय के द्वारा रचित उपन्यास 'अरण्यबाला' (1904) ई0 में प्रस्तुत की गयी। इस उपन्यास में विंध्याचल के पहाड़ों में निवास करने वाले आदिवासी जीवन की वर्तमान झलक प्रस्तुत की गयी है। इसी क्रम में मन्नन द्विवेदी जैसे उपन्यासकार भी चर्चित रहे। उन्होंने आदिवासी समुदाय के एक अनाथ और असहाय व्यक्ति को अपने उपन्यास के मुख्य पात्र के रूप में चुना। कथानक में संदर्भित उसकी बुद्धि–क्षमता व जीवन आदर्श उसे विशिष्टता प्रदान करती है। 'रामलाल' (1904) नामक इस उपन्यास के नायक की जीवनशैली गोरखपुर, जिला– बाँसगाँव के एक आदिवासी वर्ग की जीवन्त घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत करती है।

1948 ई0 में वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा लिखित उपन्यास 'कचनार' आदिवासी जीवन का आधुनिक, प्रासंगिक तथा प्रभावशाली रूप प्रतिष्ठित करता है। यह उपन्यास आदिवासी उपन्यासों को एक नये पायदान की ओर अग्रसर करता है, जिसमें निम्न वर्ग की एक स्त्री अपने अस्तित्व व स्वाभिमान की रक्षा हेतु पूर्व प्रचलित नीतियों का पुरजोर विरोध करती है। इस उपन्यास के माध्यम से गोंड जनजाति के आदिवासी जीवन की संस्कृति, रीति–रिवाज, रहन–सहन आदि का परिचय दिया गया है। इस उपन्यास की मुख्य नायिका के रूप में स्थापित कचनार गोंड जाति की एक साधारण स्त्री है जो स्थितिजन्य विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुऐ नारी–शक्ति का सूचक बनती है।

समय के साथ–साथ परिस्थितियों में भी परिवर्तन होता रहा है। यह परिवर्तन आदिवासी उपन्यास साहित्य में भी उभर कर सामने आया। आजादी के पूर्व अंग्रेजों के शासन के समय आदिवासियों को कुछ सहयोग तथा संरक्षण प्राप्त हुआ। जहाँ एक ओर जीवन के मानकों में परिवर्तन हुआ वहीं दूसरी ओर शोषण के तरीके भी बदले। तत्कालीन समय में इन अशिक्षित आदिवासियों को ईश्वरीय प्रकोप का भय दिखाकर धर्म के नाम पर बर्बर बर्ताव किये गये। शोषण व प्रताड़ना की नई–नई नीतियाँ निजात की गयीं। एक अलग सम्बोधन व पहचान देकर समाज में रहते हुए भी समाज की मुख्य धारा से इन्हें सदैव बहिष्कृत किया गया। फणीश्वरनाथ रेणु का आँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' भारतीय संस्कृति की इसी कुरूपता को दर्शाता है। सन् 1954 में लिखित यह उपन्यास पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक एक पिछड़े गाँव की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक ने आदिवासी वर्ग के विघटन, प्रताड़ना, शोषण तथा मानवीय नैतिकता के प्रति प्रस्फुटित होती हुई विद्रोही भावना को उजागर किया है।

योगेन्द्रनाथ सिन्हा आदिवासी विमर्श को बढ़ाने वाले सशक्त उपन्यासकार हैं। इनका 'वनलक्ष्मी' (1956) उपन्यास बिहार की 'हो' जनजाति पर आधारित है। इनका दूसरा उपन्यास 'वन के मन में' भी 'हो' जनजाति को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इस जनजाति पर अन्य कई उपन्यासकारों ने अपनी–अपनी दृष्टि से विचार किया है। गुरुचरण सिंह का 'वनपाखी', कान्हजी तोमर का 'तमाम', 'जंगल', रामदीन पाण्डेय का 'चलता पिटारा', भालचन्द्र ओझा का 'साँवला पानी', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी' के द्वारा इस आदिवासी जाति का मर्म प्रस्तुत किया गया है।

देवेन्द्र सत्यार्थी का उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' (1956) ब्रह्मपुत्र नदी के तटीय आदिवासियों पर केन्द्रित है। इसमें पिसांगमुख के आदिवासियों की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति का जीवन्त रूप प्रस्तुत किया गया है। वन–सम्पदा तथा उन पर आश्रित गाँव आदिवासी जीवन का मूल केन्द्र रहे हैं, परन्तु देश में वाघरी, भील, गोंड, करनट, हो, संथाल आदि जातियों को समाज में अपनी पहचान मिली। शहरी सीमा में प्रवेश कर चुकी इन जातियों के कुछ सामाजिक मुद्दों को चुनकर साहित्यकारों ने उनकी पीड़ा का मार्मिक वर्णन किया है।

रांघेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' (1957) उपन्यास इस श्रेणी में श्रेष्ठ उपन्यास है। करनट जाति पर आधारित यह उपन्यास समाज की सर्वथा उपेक्षित और जरायमपेशा जीवन का समग्र तथा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है। ''यह कहानी चार पीढ़ियों तक फैली है, जिसमें सामंती व्यवस्था का भूत पुकार रहा है। लहू से इसकी नींव खड़ी हुई है। इसमें एक बहुत सुनहरा छलावा है जो आज की विवशताओं एवं विषमताओं को भी छलने लगता है।''[3]

मिथिला प्रदेश के गरोखर अंचल के मछुआरों की बस्ती का प्रत्यक्ष दर्शन कराता नागार्जुन का उपन्यास 'वरुण के बेटे' (1957) पिछड़ी आदिवासी जातियों का चित्र खींचकर उनके जीवन यथार्थ से परिचित कराता है। इस उपन्यास में पात्रों की जीवनशैली को समाज की मुख्य धारा से जुड़ते देखा जा सकता है, जिस कारण समाज में इनकी प्रबल स्थिति दर्ज होती है।

आदिवासी जीवन की भौगोलिक सीमा भारत की पूर्वी सीमा व नेपाल के भूभाग को भी स्पर्श करती है। ऐसी रचनाओं में बलभद्र ठाकुर की 'मुक्तावली' (1958), 'नेपाल की वो बेटी' (1959), 'देवताओं के देश में' (1960), 'घने और बने' (1961), 'आदित्यनाथ' (1962) और 'लहरों की छाती पर' जैसे उपन्यासों ने आदिवासी उपन्यास साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी। इनमें मणिपुर, कुल्लू, नेपाल, अण्डमान, निकोबार के आँचलिक जीवन का प्रस्तुतिकरण है।

वस्तुतः देखा जाय तो आदिवासी साहित्य की प्रखर एवं वास्तविक तस्वीर झारखण्ड के जीवन पर केन्द्रित आदिवासी उपन्यासों में परिलक्षित होती है। इस क्षेत्र की सीमा के अन्तर्गत उन्नीस कबीलों में बँटी वैविध्यपूर्ण आदिवासी संस्कृति विशेष उल्लेखनीय है। आधुनिक युग के पूर्वार्द्ध में वृन्दावन लाल वर्मा कृत 'मृगनयनी' भील जनजाति पर केन्द्रित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके पश्चात् साठवें दशक में देवेन्द्र सत्यार्थी का उपन्यास 'रथ के पहिये', गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया' आदि लिखे गये। झारखण्ड की कथाभूमि पर केन्द्रित उपन्यास राजेन्द्र अवस्थी कृत 'सूरज किरण की छाँव' (1958) है। एक आदिवासी युवती एवं गाँव के मुखिया (सवर्ण) के बेटे के मध्य चल रहे प्रेम– प्रसंग की आधारशिला पर खड़ा यह उपन्यास शारीरिक तथा मानसिक शोषण से उद्वेलित होकर आदिवासियों के ईसाई मिशनरियों की ओर आकर्षित करता है।

आदिवासी उपन्यास साहित्य के चल रहे प्रवाह में दो दशकों का विराम आ गया। लगभग सन् 1958 में प्रकाशित 'सूरज किरण की छाँव' के बाद इस अवरोध का पुनः प्रवाह मणि मधुकर के 'पिंजरे का पन्ना' (1981) से पुनः प्रसारित हुआ। यह उपन्यास रेगिस्तान के यायावर जनजाति के लोहारों की जीवनलीला का प्रस्तुतीकरण है। हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु–राज' (1982) में आदिवासी चेतना को जागृत करने का काम किया गया है। इस उपन्यास में आदिवासी समाज में शोषण के प्रति विद्रोही भावना पनपती है। तभी तो

इसका नायक देवा कहता है कि– ''जो हमें जीने नहीं देंगे हम उनका जीना कठिन करेंगे।''[4] इसी प्रकार लेखक ने अपने दूसरे उपन्यास 'अंधेरा और' (1982) में थारू आदिवासियों के जीवन का मर्म और संघर्ष उजागर किया है। राकेश वत्स ने इस प्रकार की विषयवस्तु को अपने उपन्यास 'गल के आसपास' (1982) में स्थान दिया है। वर्तमान समय के उपन्यास में ''हरिराम मीणा का उपन्यास 'धूणी तपे तीर' आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में एक अमूल्य निधि है जिसमें जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से चार गुणा अधिक शहादत हुई थी।''[5]

विरोध व विद्रोह की भावना से मुखरित हो परिस्थितियों के वशीभूत स्वयं से समझौता कर लेना संजीव के उपन्यासों का केन्द्र–बिन्दु रहा। 'सावधान नीचे आग है' (1986) और 'धार' (1990) जैसे उपन्यासों में उन्होंने आदिवासी मनोभाव में पनपते ऊहापोह की स्थिति के बीच अपने अस्तित्व की खोज को उजागर किया है। झारखण्ड– कोयलाँचल के आदिवासी मजदूरों के अभावग्रस्त जीवन, अज्ञानता, आर्थिक, मानसिक व शारीरिक शोषण, प्रताड़ना तथा संघर्षरत जीवन के कई मुद्दों को बल मिला। इनका उपन्यास 'धार' संथाल आदिवासी जीवन के संघर्ष को व्यक्त करता है, जिसमें भूखमरी के मार्ग पर समर्पण नामक अस्मिता, त्याग के अगले पड़ाव तक की व्यथा स्पष्ट की गयी है। अभाव के कारण 'धार' की नायिका 'मैना' का मन किस प्रकार व्यभिचारी भावना से ग्रसित हो जाता है कि वह स्वाभिमान व अपनी अस्मिता से समझौता करने को तैयार हो जाती है। क्षुधा की वह स्थिति जिसके कारण वह किसी भी शोषण को ग्राह्य करने को विवश है, का मर्म उन वक्तव्यों से स्वतः प्रकट हो जाता है, जब वह कहती है– ''धन्न मनाऊँ रेल कम्पनी का बछड़ा–बकरा कट जाता और हमको भोज खाने को मिला जाता। धन्न मनाऊँ रेलवई पुलिस का कि हमको सिलातोड़ी कराता, हमरा बहिन, बेटी, माँ के साथ रंडीबाजी करता कि हमको दू–चार पैसा भेंटा जाता।''[6] अपने ही पति के द्वारा बेची गयी इस पात्रा को कई पुरुषों के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाने पड़ते हैं। इसके साथ ही मैना व उसकी माँ को डायन घोषित कर दिया जाता है।

मनमोहन पाठक के 'गगन घटा गहरानी' (1991) उपन्यास में शोषण अभाव पिछड़ापन, भूख जैसी समस्याओं से जूझती 'ओराँव' जनजाति की कथावस्तु प्रस्तुत की गयी है। इस उपन्यास में रायबहादुर जैसी सामंती– व्यवस्था के सूचक कबिलाई दबंग हैं तो वहीं इनमें से ही एक सोनाराम जैसा व्यक्ति भी है जो इन आदिवासियों की आजादी के लिए विरोध में नेतृत्व करता है। शिक्षा के कारण आयी स्थितिजन्य जागृत ने ओराँव जनजाति को अपने प्रति हो रहे अन्याय के विरूद्ध खड़े होने हेतु बल दिया है। इस उपन्यास में चेतना–जागृति के स्वर पैरु मुनी नामक पात्र के शब्दों में झलकते हैं– ''जंगल छोटा होता जा रहा है और इतिहास बड़ा से बड़ा। पर रोज इतिहास में नए–नए अध्याय जोड़ती यह दुनिया, पठार पर उसे इस जंगल को, जंगल में बसे गाँवों को क्या दे रही है।''[7]

1995 ई0 में प्रकाशित हुए उपन्यास 'पाँव तले की दूब' में झारखण्ड के आदिवासियों के शोषण को अभिव्यक्ति मिली है। प्रलोभनों का छलावा परोसकर बदले में जमीन छीन लेना और उन पर कारखाने खड़े करना आदि समाज के भ्रष्ट अधिकारियों की पोल खोल देते हैं। स्पष्ट है कि झारखण्ड के इन आदिवासियों को बेहतर भविष्य का स्वप्न दिखाकर ''उन्हें जमीन से भी बेदखल किया जा रहा है और मुआवजा भी अफसरों के पेट में जा रहा है।''[8] इसी उपन्यासकार के दूसरे उपन्यास 'जंगल जहाँ से शुरू होता है' (2000) में 'थारू' जनजातियों को केन्द्रित किया गया है। इस उपन्यास के कथानक में क्षुधा, निर्धनता तथा खंडित होती एकता के कारण बिसराम जैसे थारू नवयुवक की करुण स्थिति प्रदर्शित की गयी है। जिसमें वह कहता है– 'जंगलों में बेंत है, हाथ में हुनर है, झुंडी, खंची तो बन ही सकता है, लेकिन उसे लाने कौन देगा? बेंत का ठेकेदार एक जल्लाद....।''[9] जहाँ एक ओर इनके इलाकाई जंगली डाकुओं के भय परिलक्षित हुए हैं वहीं इनके कबीले की कुप्रथाएँ तथा अंधविश्वास इनका जीना दूभर करती है। बिसराम निर्धनता से विवश होकर बच्ची को गाय का दूध पिला देता है, जिस कारण पूरा परिवार अशुद्ध करार दिया जाता है। प्रायश्चित के तौर पर पूजा करनी पड़ती है। यह कबिलाई अंधविश्वास की पराकाष्ठा नहीं तो क्या है। जहाँ गाय को माता कहा जाता है, वहीं इस कबीले का गौ–दुग्ध–भक्षी पापी कैसे हो सकता है? और तो और डाकुओं के संरक्षण देने के तथाकथित फर्जी एनकाउंटर में पुलिस निरपराधी बिसराम को मारती है। 'थारू' आदिवासियों के जीवन तथा एकता के अभाव के कारण यह प्रश्न बार–बार सामने आता है कि– ''जिन विषम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों का शिकार होकर परशुराम आदि को अपराधी जीवन बिताना पड़ा, उन विषमताओं के खिलाफ वे मिलकर जंग क्यों नहीं छेड़ते।''[10]

भगवानदास मोरवाल द्वारा लिखित 'काला पहाड़' (1999) उपन्यास आँचलिकता के साथ आदिवासी विमर्श है, जिसमें लोक संस्कृति के साथ जाति, धर्म, सम्प्रदाय और राजनीति की कलुष छाया भी दिखती है। उपन्यास में मेवातियों की जीवन–पीड़ा स्पष्ट की गयी है। ''काला पहाड़ ऐसे ही बुरे समय में अपने डैने फैलाकर उन निरीहों को आश्रय देता है जो उसकी ओर लपके हुए आते हैं। सच, अगर आज भी वह काला पहाड़ आश्रय प्रदान नहीं करता तो पता नहीं तब ये खाकी वर्दियाँ और कितना जुल्म ढातीं।''[11]

''अंग्रेजों द्वारा अपराधी जाति के रूप में घोषित 'कबूतरा' भारत की आजादी के 68 साल बाद भी अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर हैं।''[12] मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' (2000) उपन्यास इन्हीं के जीवन की त्रासदी को उद्घाटित करता है। ''अल्मा कबूतरी उपन्यास की कथा–भूमि में बुंदेलखण्ड की कबूतरा नामक आदिवासी जाति है जो अपना सम्बन्ध जौहर के लिए किंवदंती बन चुकी रानी पद्मिनी से जोड़ती हैं तथा पौराणिक युग तक छलांग लगाकर महादेव शिव के समाज में शामिल हो जाती हैं।''[13] यह उपन्यास दो समाजों की रूपरेखा है– (1) सभ्य (2) आदिवासी। पूँजीपति धन के बल पर गरीब, अज्ञानी तथा निर्धन आदिवासियों का शोषण कर धनवान बनते जा रहे हैं। लेखिका ने इस जाति के

जीवन–संघर्ष और विस्थापन को संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका 'कदम' के लिए संघर्ष नवीन नहीं, नियति है। वह अपने बेटे को बचपन से पाठ पढ़ाती है कि– ''बेटा आलस हमारा दुश्मन है, शिकार करेगा नहीं तो शिकार हो जाएगा।''[14] इन शब्दों से लेखिका ने इस जाति के जीवन–संकट को अभिव्यक्ति दी है। भगवानदास मोरवाल का उपन्यास 'रेत' (2003) नयी सदी के आदिवासी उपन्यासों में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। यह उपन्यास सभ्य समाज की दृष्टि में अस्पृश्य, घृणित, पतित कंजर जनजाति का वर्णन करता है। 'रेत' उपन्यास कंजर जनजाति के उस जीवन को उद्घाटित करता है जहाँ कामुकता है, जुगुप्सा है तो वहीं स्तब्ध करने वाली मार्मिक परम्पराएँ और बंधन भी हैं। स्त्री–प्रधान संस्कृति वाली यह जनजाति वेश्यावृत्ति पेशे से सम्बन्धित है। जिनकी जिन्दगी मुट्ठीभर रेत के समान होती है। उपन्यास में इस जनजाति के संरक्षक के रूप में उभरे पात्र 'वैद्यजी' के लिए लिखा गया है कि– ''यह वह चरित्र है जो कंजर स्त्रियों के जीवन की गीली सूखी रेत में पैर धँसते समय और राजनीति के उबड़–खाबड़ रास्तों से गुजरते वक्त गाइड बनकर हमेशा हमारे साथ रहता है।''[15]

राकेश कुमार सिंह का 'महारण्य में गिद्ध' (2008) उपन्यास बिहार और झारखण्ड के ग्रामीण और आदिवासी जीवन की विसंगतियों और त्रासदियों को उद्घाटित करता है। उपन्यास का केन्द्र–बिन्दु वह अरण्य है जहाँ के राजा जंगल के मूल निवासी हैं। यह उपन्यास विकास के नाम पर हो रहे विनाश की लीला के दर्शन कराता है। उपन्यास का पात्र ददुआ मानकी अपने साथियों सहित वन में रहते हुए, उस गल के दावेदार रक्षकों से संघर्ष करता है। स्थिति की वास्तविकता उजागर करने आये एक पत्रकार अजय जोशी से कहता है कि– ''अरे कितने दिन जिएँगे हमलोग? कितने दिन आदिवासी को जीने देगी यह सरकार? एक दिन ऐसा जरूर आएगा जोशी बाबू कि हमारे जंगल का आखरी पेड़ भी कटवा लेगी सरकार। उसी दिन देश–दुनिया को पता चलेगा कि खदान–कारखाने का माल आदमी का पेट नहीं भर सकता। रुपया चबाकर नहीं जीता आदमी। आदमी का पेट भरता है अन्न पानी से.....सो मिलेगा इसी जंगल से।''[16] अर्थात् ये आदिवासी वनरक्षक जितनी गहराई से जंगल के अस्तित्व का मर्म समझकर उसे संरक्षित करने हेतु प्रयासरत रहते हैं, उतनी ही निर्दयता से उन पर शोषण व तथाकथित विकास के ठेकेदारों की मनमानी चलती है। सच ही कहा गया है– 'दीपक तले अंधेरा'। जहाँ सरकारों की विकास–नीतियों में चकाचौंध भारत की छवि प्रस्तुत की जाती है, वहीं आदिवासी समाज पग–पग पर अपनी ही परछाई में सिमटा जा रहा है– एक शून्यगत अंत की ओर।

उपर्युक्त चुने गये उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य कई आदिवासी उपन्यास इस श्रेणी में उत्कृष्ट हैं। आदिवासी जीवन पर केन्द्रित उपन्यासों में उपेक्षित एवं शोषित आदिवासी समाज की त्रासदपूर्ण स्थिति का चित्रण और उनकी परिस्थितियों से उबरने का मार्ग ही अनेक उद्देश्यों में से एक है। उपन्यासों में यथार्थ की पकड़, भाषा की कसावट और भावपूर्ण

कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण आदिवासी हिन्दी उपन्यास हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर सिद्ध हुए हैं।

संदर्भ :

1. गुप्ता, रमणिका– आदिवासी अस्मिता का संकट, पृ0 17, कामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, दरियागंज, नई दिल्ली
2. डॉ0 अहमद, एम0 फिरोज– 'वाङ्मय', पृ0 160, अंक– अक्टूबर 2013– मार्च 2014
3. राघव, रांगेय– 'कब तक पुकारूँ', पृ0 107, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1957
4. जोशी, हिमांशु– 'सु–राज', राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ0 55
5. शर्मा, सत्यपाल व मीना, टीमचन्द– आदिवासी जीवन : संस्कृति, संघर्ष और हिन्दी साहित्य, पृ0 43, प्रोग्रेसिर बुक सेंटर, प्रथम संस्करण, वाराणसी, 2015
6. संजीव– 'धार', पृ0 56, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
7. पाठक, मनमोहन– 'गगन घटा घहरानी', पृ0 169
8. संजीव– 'पाँव तले दूब', पृ0 54, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1995
9. संजीव– 'जंगल जहाँ से शुरू होता है', पृ0 23, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
10. अग्रवाल, रोहिणी– 'इतिवृत्त की संरचना और स्वरूप', पृ0 141, आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2006
11. मोरवाल, भगवानदास– 'काला पहाड़', पृ0 435, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
12. डॉ0 अर्चना कुमारी– 'हिन्दी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श : एक विश्लेषण', पृ0 279, Annuals of Multi-Disciplinary Research, Volume-VI, Issue-1, March- 2016.
13. शर्मा, सत्यपाल व मीना, टीकमचन्द– 'वही', पृ0 85
14. पुष्पा, मैत्रेयी– 'अल्मा कबूतरी', पृ0 39, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
15. सिन्हा, रीता– 'समीक्षा', पृ0 16, अंक– अप्रैल–जून, 2006
16. कालजयी, किशन (संपादक), संवेद, पृ0 29, नई दिल्ली, 2008

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भोजपुरी लोकगीतों में व्यक्त समाज एवं संस्कृति

कु0 रेनू बाला
शोध छात्रा, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हमारें समाज और साहित्य में गहरा संबंध है क्योंकि हमारा जीवन समाज से जुड़ा है। और समाज साहित्य से। इन्हे एक दुसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार साहित्य मानव द्वारा व्यक्त किए गए अपने तथा अपने आस–पास के समाज से प्राप्त अनुभवों, संवेदनाओं, घटनाओं, अनुभूतियों, एवं विचारों का संचय होता है मानव समाज में लोक साहित्य आदिकाल से समाहित रहा है। किसी देष की वास्तविक संस्कृति उस देष की लोक–साहित्य का संरक्षण और अध्ययन नितान्त आवष्यक है। विदेषों में लोक–साहित्य की रक्षा के लिए अनेक समितियॉ और संस्थाऍ बनी हुई है।

समाज में लोक–साहित्य का महत्व अत्यधिक हैं। यदि इसका सम्यक अनुषीलन एवं अभिवर्धन किया जाय तो हमारे साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। लोक–साहित्य के अन्तर्गत वे सभी वस्तुएँ आती हैं जो लोंगो में मौखिक रूप में प्रचलित हैं जैसे लोकगीत, लोककथा, महावरे, कहावते, तहेलिया, और मुकरियाँ। पालने के गीत, खेल के गीत और गलियाँ भी इसी में अन्तर्भुक्त होती हैं। लोक–साहित्य जन–समाज की वस्तु है अतः उससे जनता का हृदस लिपटा रहता है। लोक–साहित्य कृत्रिमता से कोसों दूर रहता है।

गाँव के अषिक्षित कवि के हृदय में जो भाव उमड़ पड़ते है, उन्हें वह अपनी टूटी–फूटी पॅक्तियों में गाने लगता है, वहीं लोकगीत का रूप धारण कर लेती है। अतः इस कविता में एक अनुठी स्वाभाविकता और स्वच्छन्दता रहती है। ''लोकगीतों का एकमात्र उद्देष्य स्वान्तः सुखाय होता है। फागुन के मादक मास में मस्त भोजपुरिया जवान जब मस्ती में आकर होली या फाग गाने लगता है, तब वह कुछ समय के लिये अपनी सुध–बुध खो देता है, और तन्मय होकर झमता दिखाई पड़ता है।

'लंगा गर्द मिले होली खेलत पवन कुमार'

इसी प्रकार चैत की रमणीय दिनों में चैता गानेवाला व्यक्ति–

''अरे हमरी अटरिया हो रामा, सगना बोले हो'' का मधुर राग अलापता हुआ अपने को भूल जाता है। सोहर, मुण्डन, जनेउ, और विवाह के अवसर पर इन लोकगीतों की मधुर राग से गाने वाली स्त्रियाँ अपनी गान–प्रियता का परिचय देती है।

''होली खेले रघुवीरा अवध में,
केकरा हाथ ढोलक भल सोहे, केकरा हाथें मजीरा''

कथा–साहित्य में भारत वर्ष संसार का गुरू रहा है। भारतीय कहानियों की छाप संसार के विभिन्न देशों की कथाओं पर पाई जाती है। कथा कहने की परम्परा चिर काल से चली आयी है। प्राचीनकाल में बूढ़ी दादियाँ अपने बालकों को गोद में लेकर, कहानी सुनाकर उनका मनोरंजन किया करती थीं। यह परम्परा आज भी जारी हैं, छोटे बच्चों को पालने में सुलाकर लोरी गा–गाकर उन्हें

प्रसन्न किया करती थी। भारतवर्ष के हर एक प्रान्त में, हमारी प्रादेषिक बोलियों में हजारों गीत, कथा, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ आज अब भी प्रचलित मिलती है। परन्तु हमारी यह अमूल्य सम्पत्ति प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है, आष्चर्य नहीं कि यह एक दिन विलुप्त हो जाय। लोकसाहित्य हमारी राष्ट्रीय निधि है, अतः इसे सुरक्षित रखना हमारा परम धर्म है।

भोजपुरी लोकसाहित्य की व्यापकता चिरकाल से अर्जित ज्ञानराषि का लोक साहित्य हैं। जो साहित्य साधारण जनता से सम्बन्ध रखता है उसे 'लोकसाहित्य' कहते हैं। जिस प्रकार साधारण जनता नागरिक जीवन से भिन्न होता है। उसी प्रकार उनका साहित्य भी आदर्ष साहित्य से पृथक होता है। भोजपुरी लोकसाहित्य की अभी विषेष उन्नति नहीं हुई है। इसमें जो कुछ साहित्य मिलता भी है, प्रायः मौखिक रू‍प ही उपलब्ध होता है। इन बिखरे हुए रत्नों को बटोरकर पुस्तकरूपी मंजुषा में रखने का विनम्र प्रयत्न कतिपय लेखकों ने किया है, परन्तु अभी बहुत कार्य शेष है।

भारतवर्ष की आर्य भाषाओं में भोजपुरी हिन्दी एक प्रमुसख बोली है। इस सरस भाषा में साहितय की रचना अभी विषेष नहीं है, फिर भी जो कुछ रचनायें उपलब्ध ह, वे इसकी सरसता एवं मधुरता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

भोजपुरी भाषा को कुछ विद्वान 'भोजपुरिया' के नाम से भी पुकारते है।

भोजपुरी अथवा भोजपुरिया भाषा का नामकरण बिहार प्रान्त के षाहाबाद जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के नाम पर हुआ है। प्राचीन काल में 'भोजपुर' बड़ा समृद्धिषाली नगर थी। यह उज्जैनवंषी, पराक्रमी राजपूत राजाओं की राजधानी थीं। इन उज्जैनवंषी राजपूतों की उप्पत्ति मालवा के सुप्रसिद्ध राजा भोज से मानी जाती हम है। उंन्ही के नाम से 'भोनपूरी' पड़ा।

भोजपूरी एक जीवन्त भाषा है। जिस प्रकार इसके बोलने वालों में षौर्य, उत्साह एवं जीवट के गुण पाये जाते है, उसी प्रकार इस भाषा में भी जीवट है। सभी मंगल कृत्यों के अवसर पर स्त्रियाँ भोजपुरी में गीत गाती हैं जिन्हें जनता बड़ी रूचि से सुनती एवं पसन्द करती है। विवाह के अवसर पर आजकल जो विदेसिया नाटक खेला जाता है, उसकी भाषा ठेठ भोजपुरी होती हैं। मिर्जापुर, बनारस, एवं बलिया जिला में जो कजली गाई जाती है उसकी भाषा विषुद्ध भोजपुरी है। इस प्रकार भोजपुरी का प्रयोग सभी धार्मिक सामाजिक एवं राजनैतिक अवसरों पर किया जाता है।

भोजपुरी भाषा लगभग 50 हजार वर्गमील में फैली हुई है। इसकी सीमान्त रेखायें किसी एक प्रान्त की राजनैतिक सीमा से सम्बद्ध नहीं है। भोजपुरी भाषा के प्रधान केन्द्र उत्तर प्रदेष के पूर्वी जिले और बिहार प्रान्त के पष्चिमी जिले हैं। परन्तु इन जिलों के अतिरिक्त भी यह भाषा बोली जाती हैं।

हिन्दी के अनेक कवियों ने भोजपुरी भाषा के षब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। ऐसे कवियों में जायसी और तुलसीदास के नाम प्रसिद्ध है।

संत कवियों में कबीर, धर्मदास, षिवनारायण, धरनीदास आदि कवियों ने भोजपुरी षब्द का खुब प्रयोग किया भिखारी ठाकुर की रचना 'विदेसिया नाटक' बहुत प्रसिद्ध है। भिखारी ठाकुर वास्तविक अर्थ में हमारे जन–कवि है। हिन्दी की जो प्रधान उपभाषायें या बोलियॉ है उनमें भोजपुरी की गणना और उसकों बोलनेवालों की संख्या भी काफी बड़ी है। परन्तु जहॉ और कई बालियों न अपने लिए हिन्दी–साहित्य के इतिहास में गौरवमय स्थान बना लिया वहॉ भोजपुरी ऐसा न कर सकी। ब्रजभाषा का स्थान साहित्य की दृष्टि से सबसे उचॉ है ही तुलसीदास ने अवधी और विद्यापति ने मैथिली को गौरवान्वित किया है। परन्तु भोजपुरी को किसी महाकवि ने अपनी प्रतिमा के माध्यम के रूप में नही

अपनाया। भारतवसियों का जीवन सदा से संगीतमय रहा है। षायद ही दूसरी कोई जाति होगी जिसके जीवन पर संगीत का इतना प्रचुर प्रभाव पड़ा हो।

ग्राम–गीतों का संग्रह तथा अध्ययन अनेक दृष्टियों से महत्वपुर्ण है। रसमय होने के कारण ये गीत केवल हमारे जीवन को ही सरस तथा मधुर नहीं बनाते, बल्कि दुःख को भी भुला देता है।

''जेहि दिन गोपीचन्द तुमरो जनम भयो,

बाजै तबला निसान हो राम

हरियर गोबरा मँगाय के गोपीचन्द,

अँगना वेदी लिपाये हो राम''

आधुनिकता के दैर में लुप्त होते लोकगीतों : लोकसाहित्य को पुनः जीलाना होगा हमें अपनी आने वाली पीढ़ी के लिये यह धरोहर सजोना होगां। जो स्थान फिल्मी गानों ने ले लिया है, मंगलकृत कार्यक्रम में उसे पुनः लाना होगा। अपनी संस्कृति को बचाना होगा, जो स्थान दादा, नाना, नानी, की टी०वी०, कार्टूनों ने ले लिया है, उस स्थान को पुनः उन रिष्तों को दिलाना होगा। हमें अपनी दादी से 'सोना चिरईया' की कथा (गीतात्मक षैली) सुनने को मिला।

इस गीत को बुजुर्ग महिलायें कहानी सुना–सुना कर गाती हैं। इसमें सोन चिरई की कहानी होती हैं। इस कहानी में सोने चिरई का एक अन्न का दाना खूँटा निगल जाता है। यह कहानी छोटे से जीवन के संघर्ष की कहानी है। देखें इस कहानी के गीत के कुछ पंक्तियों को–

'हमरा के डंसे–ओसे जन कोई

हम खुँटा गढ़वा लोई।'

यह उक्ति बढ़ई की है जो षुरू में सोने चिरई की मदद करने से नकार देता है, बाद में मदद करने के लिए तैयार होता हे। सोन चिरई मदद करने के लिए तैयार होता है। सोन चिरई मदद की गुहार पहले बढ़ई से करती है, फिर सर्प से करती है; फिर पानी से करती है; फिर हाथी से करती है। जब हाथी अंत में पानी सोखने के लिए तैयार होता है।

पूर्वांचल के समाज में बुर्जुग महिलाएँ इसे गा–गाकर कहानी कहती हैं। अब यह गीत जनता की जुबान से छूट चुके हैं।

पराती के गीत जो षादी के पहले, पराती पूजते हुए गाया जाता हैं आज इसे कोई गाने वाला नहीं मिलता है।

'उन्हीं के द्वारा 'मुस' 'ढोका ढोकी''भरबितना भइया' आदि गीतात्मक कथा सुनने को मिला।'

जाति संबंधि गीतों का अपना महत्व था। इन गीतों का संबंध उनके श्रम एवं जीवन षैली से था। यह बात जरूर है कि आधुनिकता ने जाति संबंधी विचारधारा एवं संस्थाओं को कमजोर किया है, जो अच्छी बात है लेकिन जो हर जातियों की अपनी विषिष्ट संस्कृति थी उसको भुलना दुखःदपूर्ण है। अपनी संस्कृति को खोने से व्यक्ति की पहचान खोने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे व्यक्ति का अपने समाज के साथ अलगाव भी होता है। आधुनिक पूर्वांचल का समाज का यह भटकाव उसे लोकगीतों, लोकसंस्कृति, मानवीय प्रेम से कटने के लिए भी प्रोत्साहित कर रही। लेकिन यह दौर काफी लम्बा चलने वाला नही हैं, एक दिन अंधेरा छटेगा ही।

सन्दर्भ

1. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय–लोक संस्कृति की रूपरेखा,
2. डॉ० श्रीधर मिश्र–भोजपुरी लोक साहित्य
3. संस्कृति समुच्चय,
4. संस्कृति समुच्चय

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

संयुक्त प्रान्त में गॉधी जी : कृषक आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में!

डॉ0 चन्द्रहास चॉद
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग,
ति0 मॉ0 भागलपुर वि0 वि0 भागलपुर

सदा जीवन धार्मिकता, नैतिकता और वैचारिक ढंग से पवित्र आदर्शो का प्रयोग करके गाँधी जी ने समाज के संधर्ष के संवैधानिक तरिकों में विश्वास करने वाले वर्ग से सम्बंध स्थापित किया। 1.अब पहली बार राष्ट्रीय नेतृत्व ने स्वंय को निचले स्तर की समस्याओं से सम्बद्ध किया और भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों के करोडो सुसप्त लोगो को स्वाराज,राजनितिक स्वंतन्त्रता, आत्मविश्वास और राष्ट्रिय एकता का संदेश देकर जागृत करने का प्रयास किया। 2. सर्वप्रथम गाँधी जी ने ही समझा कि कोई भी साम्राज्य विरोधी संधर्ष, ग्रामीणो और किसानों के प्रतिनिधित्व बिना संभव नही है। 3. राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यक्रमों में किसाानो का समर्थन प्राप्त करने के लिए वह पूर्णरूप से सजग थे। इनका आभास 1916 में उनके द्वारा दिए गये व्याख्यान से मिलता है। उन्होने स्पष्ट किया " हमारी मुक्ति केवल किसानो के द्वारा ही, हो सकती है, ना वकीलों से न डॉक्टरो से और ना ही धनी जमीनदारो के द्वारा यह प्राप्त की जा सकती है 4. किसान गाँधी जी एक ऐसे मसीहा के रूप में देखते थे, जो औपनिवेशिक सामन्तवादी उत्पीडनों से उन्हे मुक्ति दिलायेगा। 5. गाँधी जी के इस किसान समर्थक छवि के कारण बाबा रामचन्द्र ने उन्हे अवध के किसानों का नेतृत्व करने के लिए आमन्त्रित किया। 6. किन्तु गाँधी जी ने कृषको की समस्याओं को ब्रिटिश सरकार के परिपेक्ष्य में तो उत्साह पूर्वक उठाया परन्तु जब कृषक हित देशी जमीनदारो के हितो से टकराने लगे तो उन्होने पारस्परिक विश्वास और समझ बूझ की वकालत की तथा राष्ट्रीय हित के निहित स्वार्थो के पक्ष में समझोता करते गये।7

गाँधी जी इस बात से पूर्ण रूप से सहमत थे कि जमीनदार असहयोग कार्यक्रम में सबसे बड़ी बाधा सिद्ध होंगे, फिर भी देशी जमीनदारों के विरूद्ध संधर्ष गाँधीवादी नीतियो के विपरित था। 8 यधपि वे काश्त कारो का शेषण, कांग्रेस का विरोध और सरकार का ठोस समर्थन करते थे। गाँधी जी ने किसान आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन से पूर्णतः पृथक और स्वतन्त्र बताया। 9 गाँधी जी को समय समय पर सरकार को कर ना देने की सलाह देने में कोई हिचकिचाहट नही थी किन्तु वह आशा करते थे कि असहयोग आन्दोलन के किसाी भी चरण में किसानो द्वारा जमीनदारो को उनके लगान से वंचित न किया जाए। 10 स्वराज प्राप्ति में किसानों ने सहयोग की अपरिहार्यता मानते हुए भी गाँधी जी ने अपने राजनीतिक कार्यक्रमों में किसानो के लिए कुछ भी नही रखा। कृषि समस्याओ के गम्भीर मुददे–लगान की उच्चदर,अवैधानिक वसूली, बेगारी, तथा ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा शोषण आन्दोलन के कार्यक्रमों में शामिल ना करते हुए 11 किसानो और मजदूरो का राजनितीक उपयोग धातक बताया 12 आन्दोलन का आरम्भ शिक्षित वर्ग के साथ शुरू करने की गाँधी जी ने स्पष्ट रू‍प से धोषणा कर दी। 13

1921 के आरम्भ में संयुक्त प्रान्त के दौरे में गाँधी जी किसान आन्दोलन के नेताओ से मिलने में हिचकिचाते रहे। 14 साथ ही मोतीलाल नेहरू को भी किसान आन्दोलन में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के खतरे से सजग किया। 15 उन्होने फौजाबाद में लूट की धटनाओं के लिए किसानों की बड़े शब्दो में आलोचना कि, किन्तु उनके भाषणो में तालुफेदारी जुल्मो की भर्त्सना नही की गयी। उन्होने किसानो को सचेत

किया कि यदि वे उनके और कांग्रेस तथा खिलाफत के सिद्धांतो का अनुशरन नही करेगं तो वह उन्हे सहन नही करेगें।16

गाँधी जी ग्रामीण सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में निहित विरोधाभासों को साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक वहु वर्गीय संगठन की रचना के हित में समाप्त करना चाहते थे, अतः वे अवध के तालुकेदारों के साथ संधर्ष के लिए तत्पर नही थे। किसानो द्वारा जमीनदारो औश्र सरकारो के विरूद्ध की जाने वाले सीधी कार्यवाही से गाँधी जी चिन्तित थे, क्याकि वे उनकि राजनितिक कार्यप्रणाली की योजनाओ की सीमाओ को तोड़ रहे थे। उन्होने उनकी उग्र कार्य वाहियो को पागलपन और उपद्रवो की संज्ञा दी। वही नही चाहते थे कि दंगे फसाद के लिए उनके नाम का दुरूप्योग किया जाए।17

गाँधी जी ने किसानो को जमींदारो के वर्ग समायोजन का उपदेश दिया।18 गाँधी वादी विचार धारा ने कृषक क्रांति के विकास को बाधित किया उन्होने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्यावादी गुट की उस सलाह पर विचार करना अस्वीकार कर दिया, जिसमें एम0 एस0 राय और ए0 मुखजी ने कांग्रेस से मांग की थी कि वह किसानों और मजदूरो की वर्गीय माँगो को अनदेखा करने की अपनी जनता के आर्थिक हितो का राजनीतिक प्रदर्शनो के लिए बलिदान करने की नीति छोड़ दे।19

किसानो का आन्दोलन साम्रपज्यवाद और उनके स्तम्भे तालुकेदारों के विरूद्ध था। फिर भी गाँधी जी ने किसानो की उग्र कार्यवाही को सार्वजनिक रूप से भर्त्सना की और जमींदारो को कांग्रेस के अन्दर सुरक्षा का आश्वासन दिया। 20 और गाँधी जी ने जमींदारो का कांग्रेस और असहयोग से भयभीत न होने के लिए आश्वस्त किया। 21

गाँधी जी ने चोरी–चोरा की धटना (5 फरवरी 1922) के बाद असहयोग आन्दोलन उस समय स्थगित किया जब किसानो में विस्त्त जागरण हो रहा था और वे निचले स्तर से ब्रिटिश साम्राज्य औश्र जमीदारों पर दवाब बना रहे थे। 22 बारदोली प्रस्ताव में जमींदारो को आश्वासन दिया गया कि रेयतो द्वारा लगानबन्दी कांग्रेस प्रस्तावों के विपरित है और यह देश के हितो के लिए हानिकारक है।23

वास्ताव में गाँधी जी ने किसानो की क्रान्तिकारी क्षमता को प्रतिरोधित करने का ही कार्य किया। एम0 एम0 राय और ई0 राय के विचार से गाँधी जी ने असहयोग अन्दोलन को सामन्तवाद और पूँजीवाद की दोहरी बेदी पर बलिदान कर दिया।24

गाँधी जी किसानो को जागीरदारो से हुए सभी अनुबन्धों को पुरा करने सलाह देते थे किन्तु आधुनिक तालुकेदार ब्रिटिश शासन की उपज थे और उनके तथा किसानो के बीच अनुबन्ध मनाने तथा साम्राज्यवादी सत्ता तथा न्यायालयों द्वारा बाद में जबरन लादे गए थे। 26 निप्पक्ष भाव से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि गाँधी जी उत्पीड़क और उत्पीड़तो से जुड़े हुए समामिक अवमानना और शोषण को कोई महत्व नही देते थे। जमीदारो के उत्पीड़क स्वरूप के प्रति किसानो में जागरूकता उत्पन्न हो जाने पर यह आशा करना तर्कसंगत नही था। कि किसान जमींदारो के साथ मित्रवत सम्बन्ध बनाकर स्थिति को ठीक करने के लिए कार्य करेगें।27 महात्मा गाँधी ने किसान को सदैव सैद्धान्तिक (जीवन) महत्व ही अधिक दिया यद्यपि ग्रामीण पुननिर्माण के गाँधीवादी कार्यक्रम में चरखा और खादी के द्वारा आत्म निर्भरता के कार्यक्रम चलाकर एक आर्थिक क्रांति उत्पन्न करना था। उन्होने किसानो को दिये अपने निर्देशो में मादक द्रव्यो के सेवन तथा अन्य बड़ी आदतो को छोडने की अपील की। उन्होने किसानो को जुआ ना खेलने, रेलगाडियो को ना रोकने, उनमें बिना टिकट यात्रा ना करने तथा अपने समस्त कार्यव्यवहार में सत्यवादर रहने की जो सलाह दी वे सब निश्चित ही जीवन के उच्च मूल्यो को परिलक्षित करते है। 28

गाँधी जी ने किसी का अहूत और निम्न न मानने तथा सभी के साथ समानता व भाईचारे की भावना जागृत करने का प्रयास किया। महिलाओ के सम्मान व हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल दिया। उन्होने समस्त विवादो को आपसी समझ बुझ से हल करने की सलाह दी। उन्होने सभी परिस्थिति में क्रोध को शांत रखने तथा हिंसक ना बनने का उपदेश दिया। 29

गाँधी जी ने एक वर्ष में स्वराज्य का आकर्षक नारा दिया, जो किसान के कष्टो का अंत करता। 30 किन्तु समाज की यह अवधारणा उनके अर्थ और उद्देशय को वे स्वंय भी स्पष्ट नही कर सके और विभिन्न अवसरो पर स्वराज्य को भिन्न रूप से व्याख्यायित किया 31 फलस्वरूप किसानो की दृष्टि में स्वराज्य का अर्थ रामराज के ऐसे स्वर्णयुग में प्रवेश था जिसमें स्वशासन के साथ ही ब्रिटिश राज्य और सभी उत्पीडक समाजिक तत्वों का अंत भी हो जाता । 32

वास्तव में किसान अब तक गाँधीवादी कार्यक्रमों से अनभिज्ञ थे। कृषक सिर्फ इतना जानते थे कि गाँधी जी शोषित के सहयोग है और वे अपने आर्थिक दास्ता की मुक्ति के लिए व्यग्र थे 33 / यद्यपि गाँधी जी किसानो की लूट और अगजनी के कृत्यों के तीव्र विरोधी थे, फिर भी उन्होने विदेशी कपड़ो की होली जुलाई और गाँधी जी के इस कृत्य का प्रभाव किसानो पर भी हुआ और उन्होने गाँधी जी के इस क्रान्तिकारी कार्य को अपने अपने अर्थो मे अपने अपने शोषको के विरूद्ध प्रयोग किया। अवध के किसानो के दृष्टि में गाँधी जी की अहिंसा का अर्थ केवल मनुष्य के प्रति हिंसा को बचाना था। लूटपाट को किसानो के द्वारा हिंसक कार्य नही माना जा सकता था। कृषक उपद्रवों में जमीदार अथवा उनके कारिन्दो की मृत्यु नही हुई। इस प्रकार किसान अपनी दृष्टि से पूर्णतः अहिंसक बने रहें। 34

गाँधी जी अछूतो के समाजिक उत्थान की बात करते थे किन्तु उन्होने गांवो में उनकी आर्थिक दशा को महत्व नही दिया। काश्तकारों में बहुमत अछुतो का था। फिर भी उनकी दशा सुधारने के लिए कुछ भी नही किया। 35 अवध में निम्न जातियो के काश्तकार उच्च जातियो के अपेक्षा अधिक ऊची दर से लगान का भुगतान करते थे। 36 किन्तु गाँधी जी ने इनके विरूद्ध एक शब्द भी नही कहा।

गाँधी जी को अपने आंदोलन के लिए किसानो की सहयोग की आवश्यकता थी, किन्तु उनके निपूण नियंत्रण के प्रशन पर वह संशंकित थे कि उनका प्रभाव उनकी योजनाओ पर पडेगा। 39 निःसद्देह किसी भी अन्य राष्ट्रवादी नेता ने गाँधी जी ने किसान भारत की विचाारधारा को अधिक प्रोत्साहित किया फिर भी उददेश्यतः औपनिवेशिक भारत में किसानो के प्रति उनका व्यवहार और परस्पर विरोधी ही रहा। वह चाहते थे कि किसानो और जमीदारो के मध्य का विवाद अहिंसा के द्वारा निपटाया जाय। इस तरह से वर्ग संधर्ष के एक विकल्प के रूप में व्यासित (ट्रस्टीशिप) को अवधारणा का विकास हुआ। उनके विचार से न्यासिता से वर्ग संधर्ष की सभी सम्भावनायें समाप्त हो जाऐगी तथा भाईचारे की भावना को बढावा मिलेगा। गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि वह जमीदारो और तालुकेदारो को उनकी जमीन से बेदखल नही करना चाहते, बल्कि उनका हृदय परिवर्तन करना चाहते है। इससे वह स्वंय अपने काश्यकारो के दुःखों को समझ जायेगे। 42 करॉची कांग्रेस 1931 के बाद गाँधी जी ने जमीनदारो को स्पष्ट आश्वसन दिया कि उनके हितो के विरूद्ध किसी प्रकार के आन्दोलन का अनुमोदन नही करेंगे एवं साम्पतिक वर्गो को बेदखल करने में शरीक नही होंगे। श्रमिको और मालिको में तथा किसानो और जमीदारा में सहयोग और समन्वय के लिए काम करते रहेंगे।43

1930 के दशक के मध्य तक गाँधी जी की विचाारधार में कृषक समस्याओ के प्रति परिवर्तन हुआ। संयुक्त प्रांत में जमीदारो के अत्याचारो की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप किसानो में असन्तोष उगृता की और बढ रहा था। 44 जमींदारो को एक संदेश में गाँधी जी ने भावी खतरे से आग्रह करते हुए कहा। मै आशा करता हूँ कि आप किसानो के स्थिति के यथार्थ को समझे और उसी के अनुरूप अपने

दृष्टिकोण में परिवर्तन करें। जमीदार अपने में परिवर्तन नही लाऐंगे तो उनकी प्राकृतिक मृत्यु हो जाएगी।45

गाँधी जी अहिंसक नागरिक अवज्ञा आन्दोलन की सफलता के लिऐ किसानो को सम्मिलित करने की आवश्यकता महशूश करते थे। भूराजस्व पर भयंकर दवाब से वह चिन्तित थे। लार्ड इरविन को लिखे पत्र में वह स्पष्ट रूप से लिखते है "इसमें महत्वपूर्ण सुधार अवश्य ही होनी चाहिए। स्थायी बन्दोबस्त से केवल कुछ धनी जमीदारो को ही लाभ हो रहा है रैयतो को नही।45

गाँधी जी ने अपने को किसी विशेष वर्ग के साथ सम्बन्ध होने तथा आर्थिक एवं समाजिक पुननिर्माण के ठोस उदेश्यो से बचने का प्रयास किया। आर्थिक उग्रता से बचने का यह प्रयास अंशंतः इस बात पर निर्भर था कि उन्हे इस बात का भय था कि वह जमीदारो और उधोगपतियो के विपरित होगा और यह राष्ट्रीय संधर्षो को बाँट देगा और अंशतः इसलिए कि किसी भी प्रकार की उग्रता उनकी अहिंसा आन्दोलन की नीति की विरूद्ध थी। 46 गाँधी जी ने राष्ट्र वाद के नाम पर ग्रामीण जनता को राजनीतिक आन्दोलन के लिए सम्बन्ध स्थापित किये और साथ ही जमीदारो से भी मधुर सम्बन्ध बनाये रखा, उनके मूलभूत अध्किारो की रक्षा का आश्वासन देकर।

इस प्रकार गाँधी जी ने राजनीतिक उद्देश्यो के लिए सदैव सामाजिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया और वर्ग विभेद को समाप्त करने का प्रयास किया । गाँधी जी का कृषको का संम्बंन्ध में आन्दोलन राजीनतिक दृष्टि से सफल रहा किन्तु समाजिक और आर्थिक मोर्चो पर उसे असफलता मिली। वास्तव में उनके नैतिक उद्देश्यो का पालन जनसामान्य के लिए कठिन था, उनके लिए गाँधी जी जैसा ही व्यक्तित्व होना चाहिए था।

सन्दर्भः

1. धिंगारे डी.एस : एग्रेरियन मुवमेन्टस एण्ड गाँधियन पॉलिटिक्स आगरा,1975, पेज 221।
2. वही
3. धिंगाटे डी.एन. : पिजेन्ट मूवमेन्ट इन इन्डिया (1920–50), 1983, पेज 671 ।
4. गाँधी जी एड्रेस. टू बी.एच.यू. स्टूडेन्टस ऑन 06.02.1916, कलेकटेड वकर्स ऑफ महात्मा गाँधी वॉल्यूम xiii पेज 2131
5. मित्तल एस के एण्ड कुमार कपिलः एण्डीफयूडल एण्ड एण्टीकॉलोनियल स्ट्रगल ऑफ द अवध पीजेन्ट्री इन अर्ली नाइन्टीन सोशाल साइन्सेज वाल्युम 8, नं0 12 जुलाई 1980, पेज 341
6. लीडर, 23.09.1920 मेहता रिपोर्ट पेज 031
7. पाण्ड्या आभा गाँधी एण्ड एग्रेटियन कलासेज, इकोनॉमी एण्ड पॉलिटिकल वीकली वॉल्युम, 13 नं0 26 जुलाई 1928 पेज 1077।
8. फा0 न0 75/ जनवरी 1921 होम पॉलिटिकल डिपॉटिट, रा. अण् ए पेज 081
9. स्रकार सुमितः द लॉजिक आफ गाँधियन नेशनलिज्म, इण्डियन हिस्टोरिकल रिव्यु, वाल्युम 111, न0 1 जुलाई 1976 ।
10. नोट्स रिटेन बाई गाँधी एट आनन्द भवन ऑन 18.07.1921, क.व.म.गा.वा.ए पेज 1061
11. क.व.म.गा.व.ए पेज 105–06
12. कुमार कपिल पिजेन्ट इन रिवोल्ट, नई इिल्ली, 1984 पेज 1201
13. यंग इंडिया 09.02.1921
14. स्पीच एट गुजरात पॉलिटिकल कॉन्फेंस 28.08.1920 क.व.गा. वाल्युम नं0 xviii, पेज 2021
15. फा0 नं0 1 / फरवरी 1921,होम पॉलिटिकल डिपॉजिट , 21 पेज 39 रा0 अ0 ।

16. वीकली रिपोर्ट ऑफ डी. सी. आई 01.03.1921, फा.नं0 90/ मार्च 1921 होम पॉलिटिकल डिपॉजिट रा. अ.
17. गाँधीज स्पीच एड फैजाबाद 10.02.1921 फा. नं0 87/1921 होम पॉलिटिकल रा. आ. भि.
18. गाँधीज स्पीच एड बनारस 09.02.1921, फा. नं. 87/1921 होम पॉलिटिकल
19. ए. मेनीफेस्टो टू द थर्टीसिकस आई. एन. सी. बाई. एम. एन. राय एण्ड अवर्णी मुखर्जी इन. जी अध्किारी (सं पा0) डॉक्युमेन्ट ऑफ द हिस्ट्री ऑफ द सी0 पी0 आई0 वा0 1 नई दिले 1971 पेज 3521
20. कुमार कपिल पिजेन्ट्रस इन रिवोल्ट पेज 2271
21. क.व.म.गा.वा पृष्ट 265
22. ब्राउन जुडिथ गाँधी एण्ड इण्डियन पिजेन्टस स्टडीज (1971–22)
23. बारदोली रिजल्युशन ऑफ कांग्रेस वर्किंग कमेटी यंग इंडिया 16.02.1921
24. राय.एम.एन. वन इयर ऑफ नॉन को ऑपरेशन फ्रॉम अहमदाबाद टू गया कलकत्ता 1923 पेज 10 ।
25. कुमार कपिल, वही , पेज 231।
26. कुमार कपिल,पीजेन्टस परसेप्सन ऑफ गाँधी हिज प्रोग्रोम पेज 25।
27. यंग इंडिया 09.03.1921 ।
28. वही
29. लीडर 06.12.1920 इण्डिपेन्डेन्ट 02.07.1920 और 11.01.1921।
30. कुमार कपिल वही पेज 17–18।
31. वही
32. कुमार कपिल पीजेन्टस इन रिवोल्ट पेज 144।
33. वही पेज 228–29।
34. वही पेज 23।
35. मेहता एन.वी.ए. रिपोर्ट एग्रेरियन डिस्टरवेन्स इन प्रतापगठ फा नं0 753/1920 रेवेन्यू ए, रा. उभि उ0 प्र0।
36. ब्राउन जुडिथ वही पेज 479।
37. पाण्ड्या आभा गाँधी एण्ड ऐम्तेरियन कलासेज इकॉनॉमिक एण्ड पालिटिकल , वॉल्यूम, 13 नं0 26 जुलाई, 1978 पेज 1077।
38. वही
39. यंग इंडिया 20.03.1931 ।
40. बोझ एन.के.ए ऐलेकशन फ्रॉम गाँधी अहमदाबाद 1957 पेज 91।
41. पाण्ड्या आभा वही पेज 1078 ।
42. हरिजन 05.11.1936
43. कुमार शिव पिजेन्ट्री एण्ड इंडियन नेशनल मुवमेन्टस मेरठ 1979 पेज 153
44. धिंगारे डी. एन. पिजेन्ट मूवमेंट इन इंडिया पेज 47–48।
45. मितल एण्ड कुमार, वही, पेज 41–42।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

पर्यावरण संरक्षण और अग्निहोत्र

डॉ0 मोनिका गर्ग

(सहायक आचार्य) गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, कोटा

सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक मनुष्य का अपने पर्यावरण से अति घनिष्ठ संबंध रहा है। प्रकृति प्रदत्त उपहारों से मनुष्य ने सदा ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की है। प्रकृति पर निर्भर मनुष्य ने अपनी स्वाभाविक जिज्ञासाओं के समाधान और अधिकारिक सुविधा पूर्वक जीवन प्राप्ति की लालसा के विभूत अनेकानेक वैज्ञानिक आविष्कार किए। आज विश्व के कोने–कोने से पर्यावरण के प्रति चिंता की जो आवाज उठ रही है वह हमारे ऋषि–मुनियों ने वैदिक काल में ही दे दी थी, क्योंकि वे प्रकृति को धरती माँ मानते हुए उसकी सुरक्षा करने, उसको संवारने, वन्य जीव जंतुओं आदि की रक्षा करने के प्रति सदैव सजग थे। हमारे ऋषि–मुनियों ने वेदों की रचनाओं का सृजन प्रकृति की गोद में ही किया था। महर्षि कपिल, कश्यप और राष्ट्र जैसे मुनिगण ने पर्यावरण को जन आंदोलन के रूप में लिया अर्थात् वनों को पुत्रवत मानकर उनकी रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहे। वाल्मीकि चेतावनी देते हैं कि जो भी मेरे वन के पत्र एवं अंगूर का विनाश करेंगे और फल फूल का अभाव करेंगे वह निश्चित ही श्राप के भागी होंगे।[1]

हम देख रहे हैं कि बीसवीं सदी के साथ ही विज्ञान की प्रगति अत्यंत तीव्र गति से हुई और मानव के सामने आने का एक नई संभावनाओं के द्वार खुलने लगे। प्रकृति के रहस्य उद्घाटित होने लगे। महान सफलता ने वैज्ञानिकों को निरंकुश बना दिया और वे उभरती हुई अति भोगवादी संस्कृति की मरीचिका के पीछे पागल हाथी सा दौड़ पड़े। उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर अधिक बल दिया जाने के कारण, अविवेकपूर्ण, अनियंत्रित, औद्योगीकरण प्रारंभ हुआ साथ ही प्रकृति का अव्यवस्था, असंतुलित दोहन। विज्ञान और प्रकृति आमने–सामने आ खड़े हुए और प्रारंभ हुआ एक द्वंद्व। धरा पर मानव के आगमन के साथ पुज्या रही प्रकृति–भोग्या बन गई। परिणाम के रूप में सामने आई पर्यावरण को भारी क्षति और जन्म हुआ प्रदूषण के भस्मासुर का।[2]

पर्यावरण चेतना

आज पर्यावरण एक जरूरी सवाल ही नहीं बल्कि ज्वलंत मुद्दा है आज भी लोगों में इसे लेकर जागरूकता नहीं आई। ग्रामीण समाज को छोड़ दें तो भी महानगरी जीवन में भी इसके प्रति खास उत्सुकता नहीं है। जबकि यह पूरे समाज से संबंधित मुद्दा है। पर्यावरण का सीधा संबंध प्रकृति से है।

पर्यावरण दो शब्दों– परी+आवरण से मिलकर बना है। परी अर्थात् चारों तरफ, आवरण अर्थात् घेरना। हमारे चारों तरफ का घेराव ही हमारा पर्यावरण है। वास्तव में जीव धारियों के चारों ओर पाए जाने वाला समस्त जैविक और और अजैविक पदार्थ एवं परिस्थितियाँ ही उसका पर्यावरण कहलाती है। अर्थात् भूमि, जल, वायु, वनस्पति, जंतुओं, मानव और सूर्य प्रकाश पर्यावरण के घटक हैं।

ब्रह्माण्ड में पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा खगोलीय पिंड है जहाँ जीवन है और जीवन की निरंतरता बनी हुई है इसके लिए प्रकृति के घटकों का संतुलित होना जरूरी है तभी हम सुरक्षित हैं।[3] सामान्य

अर्थों में यह हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी जैविक और अजैविक तत्व तथ्यों प्रक्रियाओं और घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है।[4] यह हमारे चारों ओर व्याप्त है और जीवन की प्रत्येक घटना इसी के अंदर होती है तथा हम मनुष्य समस्त क्रियाओं से इस पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार एक जीवधारी और उसके पर्यावरण के बीच अन्योन्याश्रम संबंध भी होता है। प्राचीन साहित्य में कवियों की कविताओं में प्रकृति भरी पड़ी है। तुलसीदास जी की यह पंक्ति निरक्षर तक को याद है[5]–

बूंद अघात सहहिं गिरी कैसे।

खेल के बचन संत सहे जैसे।।

उपनिषदों की एक कथा के अनुसार ज्ञान एवं विकसित संसाधनों के होने पर भी मनुष्य का चिंतित और दुखी रहना तथा ज्ञान–विज्ञान संसाधनों के नितांत अभाव में मनुष्य जीवों का निश्चिंत एवं मस्त रहना एक ऐसा तथ्य था, जिसकी ओर विषयों का ध्यान आकर्षण हुआ और उन्होंने इस पर गंभीरता पूर्वक चिंतन कर जो निष्कर्ष निकाले उसका सार इस प्रकार है– ''धरती हमें माँ के समान सुविधा एवं सुख देती है। धरती मेरी माँ है और मैं उसका पुत्र हूँ।''[6]

अथर्ववेद–

''अग्नि, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा, औषधि एवं वनस्पति आदि सब देता है। जो प्रति उपकार की इच्छा के बिना सदा हमारी सहायता कर रहे हैं, वह देवता होता है। इन सभी देवताओं के साथ हमें भावनात्मक संबंध रखने चाहिए।''–यजुर्वेद

प्राचीन काल से हम यह चिंतन के अनुसार सुनते आए हैं कि जीव पंचभूतों (जल, पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि) का सम्मिश्रण है। इस एक में से किसी की भी सत्ता डगमगा गई तो उसका हर्ष क्या होगा, यह हम सब जानते हैं फिर यह अज्ञानता क्यों? पर्यावरण का ध्यान रखते हुए हम आगे बढ़ें तभी वह हमारे लिए सही अर्थों में आगे बढ़ना है।

भोतिक विकास के पीछे दौड़ रही दुनिया ने आज जरा ठहर कर सांस ली तो उसे एहसास हुआ कि चमक–दमक के फेर में क्या कीमत चुकाई जा रही है। ऐसा कोई देश नहीं जो पर्यावरण संकट पर मंथन नहीं कर रहा हो।[7]

वैदिक काल में पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना–

भारत देश में कभी प्रकृति पर विजय प्राप्ति की आकांक्षा नहीं की अपितु यहाँ तो सदैव इसकी पूजा हुई है। वृक्षों की, सागरों की, सूर्य और चंद्रमा की और प्रकृति के अनगिनत प्रतीकों की। हमने वायु को देवता, वनों में ईश्वर का वास तथा पर्वतों को देवताओं की शरण स्थली माना। केला, पीपल, बरगद, नीम, तुलसी जैसी वनस्पतियाँ अत्यंत पवित्र और पूज्य समझी गई, नदियाँदेवी स्वरूपा मानी गई।

मैं आपके उत्खनन से कुछ प्राप्त कर रहा हूँ, पर ऐसा कभी ना करूँ कि इस प्रक्रिया में आपके ह्रदय अर्थात् मर्म स्थल पर चोट पहुँच जाए।

स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है कि हमारे इर्द–गिर्द परिवेश स्वच्छ सुंदर स्वास्थ्य वर्धक रहे। इस निमित्त हमें अपने पर्यावरण को शुद्ध रखना आवश्यक है। हिन्दू धर्म के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद और उपनिषद् हैं। इसमें जगह–जगह प्रकृति से विरासत में मिली सभी वस्तुओं का जीवन से गहरा जुड़ाव मिलता है और इन सभी को अत्यंत पवित्र मानकर लोग इनकी पूजा अर्चना करते हैं और जीवन का

अंग बनाते। वैदिक काल में पर्यावरण शिक्षा, प्रदूषण कारण और निवारण के विषय में चिंतन किया जाता रहा है।[8]

हमारी प्राचीन धार्मिक परंपराएँ इतनी महत्वपूर्ण है कि समूचे जनजीवन को सुख समृद्धि प्रदान करने के साथ ही विज्ञान सम्मत है। यज्ञ भी हमारी प्राचीन परंपरा है। स्वामी दयानंद सरस्वती कहते हैं, यदि पर्यावरण की शुद्धि एवं सुखों की वृद्धि चाहते हो तो नित्य प्रातः सायं प्रत्येक घर में हवन यज्ञ करो। प्रतिदिन सूर्योदय और सूर्यास्त के समय अग्निहोत्र करने का विधान वेदों में है। वेद में इन मंत्रों को महर्षि दयानंद ने अपनी पंच महायज्ञ विधि में प्रस्तुत किया अतः यहीं से अग्निहोत्र परंपरा का आरंभ माना जाता है।[9] अग्निहोत्र यज्ञ में गाय का घी, शक्कर, चावल, केसर, कस्तूरी और आयुर्वेदिक औषधि सोम लता गिलोय आदि की मंत्रोच्चार से आहुति दी जाती है। अग्नि अमूल्य है जिससे अनगिनत सूक्ष्म जीवाणुओं का नाश होता है। चेचक के टीके के आविष्कार डॉक्टर हैफफिन के अनुसार– घी जलाने से रोग के कीटाणु मर जाते हैं। फ्रांसीसी वैज्ञानिक कहते हैं कि– जली हुई शक्कर में भी वायु शुद्ध करने की शक्ति होती है। डॉक्टर कर्नल किंग आई एम एस कहते हैं– घी और चावल में केसर मिलाकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है। जर्मनी में अग्निहोत्र फाउंडेशन ने एक शोध की जिसमें प्रदूषित तालाब के आसपास सूरज की पहली किरण के साथ कंडे, घी और चावल का धुँआ आसपास के सम्पूर्ण क्षेत्र को शुद्ध करता है। ऑक्सीजन बढ़ती है लोगों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। यज्ञ की राख भी बैक्टीरिया मुक्त होती है जो मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है।

हमारे आसपास की हवा को पवित्र करने के लिए नियमित रूप से अग्निहोत्र करने की परंपरा हिंदूधर्म में एक प्राचीन परंपरा रही है।[10]

यज्ञ एवं पर्यावरण विषय– भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अभिमत– वैदिक ऋषियों के आचार–विचार प्राकृतिक स्वास्थ्य के प्रति सचेत थे और वह पंच तत्वों को ही देवता के रूप में पूजते थे। यूनेस्को भी वैदिक परंपरा को सुरक्षित करना चाहती है। अथर्ववेद में कहा है– अभयं न करत्यन्तरिक्षमभयम्....हमें अंतरिक्ष से भय नहीं, आकाश पृथ्वी हमारे लिए अभय कारक हो, सामने पीछे से हम अभय हो, दिन और रात में हमें भय ना हो, समस्त दिशाएँ हमारी मित्र हो।[11] लेकिन आज मनुष्य ने पर्यावरण को प्रदूषित करके पृथ्वी के तापमान को बहुत गर्म करके सब दिशाओं को अपना शत्रु बना लिया है। अतः विश्व के सभी देशों को विनाशकारी प्रदूषण से बचाने के लिए शीघ्र प्रयत्न करना होगा। आज यह समस्या विकराल रूप में हो गई है। ग्रीन हाउस के प्रभाव के कारण पृथ्वी का औसत तापमान लगातार बढ़ता जा रहा है।

नेशनल बोटैनिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट लखनऊ के डिवीजन ऑफ माइक्रो इंस्टीट्यूट के चंद्रशेखर नौटियाल, पुनीत सिंह चौहान तथा एशियन एग्री हिस्ट्री फाउंडेशन सिकंदराबाद के यशवंत लक्ष्मण नेने इन्होंने जनवरी 2007 तथा पुनः अगस्त 2007 में भी हवन औषधीय धुएँ पर शोध कर सिद्ध किया है कि "Medical Smoke reduces air born bacteria." तत्पश्चात् 22 अगस्त 2007 को यह मान लिया गया कि वायु के प्रदूषण को दूर करता है, स्वास्थ्य व रोगों के उपचार करता है। इस प्रयोगशाला ने इस तथ्य की विस्तृत व्याख्या की है। यह औषधीय धुआँ 14 प्रतिशत बैक्टीरिया को कम करता है और हवा को बैक्टीरिया रहित बनाता है। एक बंद कमरे में 1 घंटे तक किया गया हवन का धुआँ 24 घंटे तक उस कमरे को शुद्ध रखता है। खुले कमरे में भी किया गया हवन का धुआँ प्रदूषण को दूर करता है और सभी तरह के पेड़–पौधों, वनस्पति तथा प्राणी मात्र को बाधित करने वाले बैक्टीरिया को उसके आसपास के कीटाणुओं को नष्ट करता है।[12]

डॉ0 रजनी आर जोशी ने अपनी पुस्तक "The Integrated Science of Yagna" में है यज्ञ के मंत्रों का सही उच्चारण (गतिश लय और उतार–चढ़ाव) से जो ध्वनि ऊर्जा उत्पन्न होती है, वह कानों को तो प्रिय लगती है पर साथ ही वह वायुमंडल में व्याप्त जीवन निर्वाह ऊर्जा से मिलकर उसको बलवती बना देती है।

अमेरिका में कैलिफोर्निया नगर के एक अनुसंधान केंद्र में यज्ञों के मंत्रों के उच्चारण का विशेष अध्ययन किया गया है।[13] भूगर्भ शास्त्री डॉक्टर जी लेन ने बताया जो हम बोलते हैं, उसकी तरंगें एक सीधी रेखा में वायुमंडल में जाती है और जब हम यज्ञ के मंत्रों का उच्चारण करते हैं तो ध्वनि तरंगें सीधी रेखा में ना जाकर गोलाकार रूप में जाती है और जब हम यज्ञ के मंत्रों का उच्चारण करते हैं तो ध्वनि तरंगें सीधी रेखा में ना जाकर गोलाकार रूप में आकाश तक जाती है। वाणी तरंगों की इस गोलाकार रूप में ऊपर उठने के कारण हवन कुंड से निकलने वाले छोटे–छोटे कार्बन के कण तथा गैसें भी इन तरंगों के साथ गोलाकार रूप में ऊपर जाते हैं तथा वातावरण को पवित्र करते हैं। जापानी वैज्ञानिकों का कहना है कि यज्ञ से उठने वाले सुगंधित धुएँ का असर सीधा दिमाग पर होता है। मनुष्य निरंतर प्रदूषण के शिकंजे में फंसता जा रहा है। आज की आधुनिक जीवन पद्धति जो थोड़ी सुविधाओं के साथ अधिक समस्या बढ़ाती जा रही है। प्रकृति से जुड़ी हुई प्राचीन शैली और आज के विज्ञान और तंत्र विज्ञान का समुचित समन्वय करके संतुलित शुद्ध जीवनशैली निर्माण करनी होगी।

हमें मानना होगा कि हम पृथ्वी के मेहमान हैं मालिक नहीं। और यह सब हमें आने वाली पीढ़ी को सौंपना है। प्रकृति के सारे संसाधन केवल मानव मात्र के लिए नहीं अपितु जीव जंतुओं, वनस्पतियों के लिए भी है। श्री सुंदर लाल बहुगुणा कहते हैं जब तक वन तब तक अन्न।

प्राचीन वेदों में पर्यावरण और यज्ञ– वेद वैदिक संस्कृति का मूल स्रोत है। यह वेदों की आत्मा है जिसमें अग्नि जल वायु पृथ्वी और आकाश को प्रदूषण रहित करने के सामर्थ्य का उल्लेख बारंबार किया गया है। वैदिक संस्कृति में प्रकृति प्रेम और उसका संरक्षण बहुत महत्वपूर्ण भाग है। प्राचीन मनुष्यों ने प्रकृति को माता और प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना है। प्राकृतिक परिवेश को आज पर्यावरण से संबोधित किया जाता है। पर्यावरण व्यापक शब्द है यह उन संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है जो मानव जगत को परावृत करती है तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती है। हमारे चारों ओर जो विराट प्राकृतिक परिवेश व्याप्त है उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं।[14]

वैदिक ऋषियों ने उन समस्त उपकार तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित तो किया ही है साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्व को भी भली भांति स्वीकार किया है। इन देवताओं के लिए मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया और शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्य को पितृ ऋण और ऋषिऋण के साथ–साथ देव ऋण से उन्मुक्त होने के लिए संकेत दिया। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें वायु, सूर्य, वरुण एवं अग्नि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से उल्लेखित है। पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना सुख शांति का आधार है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की भावनाएँ अनेक स्थलों पर हमें उपलब्ध होती है जैसे पृथ्वी हमारे लिए कंटक रहित और उत्तम बसने योग्य हो। ऋग्वेद (7/35/3) तथा यजुर्वेद (36/13) हमारे दर्शन के लिए अंतरिक्ष शांति प्रद हो, ऋग्वेद (10/35/5) वह आकाश जिसमें बहुत पदार्थ रखे जाते हैं। हमारे लिए सुख करने वाला हो। ऋग्वेद (7/35/2) सूर्य अपने विस्तरण तेज के साथ हमारे लिए सुख करने वाला हो। ऋग्वेद (10/35/8) नदी समुद्र और जल हमारे लिए सुख रूप हो। ऋग्वेद (7/35/8) पीने का जल और वर्षा का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो। यजुर्वेद

(36/12) जल धाराएं तुम्हारे लिए अमृत बरसाए अथर्ववेद (8/6/5) इसी प्रकार अन्य पर्यावरणीय घटकों के लिए शुभकामनाएँ दी गई। वेद के मंत्र ओम समिधाग्नि दुवस्यत घृतैबोधियतातिथिम्। अस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।। इदमग्नये इदन्न मम। मैं कहाँ गया है की विद्वान लोगों जिस प्रकार प्रेम और श्रद्धा से अतिथि की सेवा करते हो वैसे ही तुम समिधाओं तथा घृतादि से व्यापम शील अग्नि का सेवन करो और चेताओ इसमें हवन करने योग्य अच्छे द्रव्यों की यथाविधि आहुति दो। एक अन्य मंत्र–

सुसमिदाय शोचिषें घृतं तीव् जुहोतन।

अग्नये जातवेद से स्वाहा। इदमग्नये जातवेद से– इदन्न मम्।

में विधान है कि यज्ञकर्ता! अग्नि में तब आए हुए शुद्ध घी की यज्ञ में आहुति दोजिससे संसार का कल्याण हो। यह सुंदर आहुति संपूर्ण पदार्थों में विद्यमान ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं। वेद के विधान व शिक्षाओं का पालन करना मनुष्य काधर्म कहलाता है और ना करना अधर्म।

अग्निहोत्र यज्ञ एक आध्यात्मिक एवं पूर्ण कल्याण कर्म है। स्वामी दयानंद कहते हैं कि जब तक भारत में सभी घरों में अग्निहोत्र यज्ञ हुआ करता था तब तक हमारा देश सभी सुखों से पूरित था। यदि आप भी हमारे देश व विश्व अग्निहोत्री आपको अपना ले तो पुनः सभी मनुष्य दुखों व तनहा वो से मुक्त तथा सुख व शांति से युक्त हो सकते हैं।[15] यज्ञ से अनेक लाभ हैं। यज्ञ अनेक प्रयोजनों और अनेक नामों से किया जाता है। घर में रहने वालों के लिए दैनिकी देव यज्ञ का विधान है। जिससे प्रातः सायं दोनों समय किया जाता है। महर्षि दयानंद ने पंच महायज्ञ विधि एवं संस्कार विधि ग्रंथों की रचना की है व इनमें यज्ञ की विधि पर विस्तार से प्रकाश डाला है। वेदों में यज्ञ के स्पष्ट निर्देश हैं। यज्ञ करने से मनुष्य की सभी उचित प्रार्थना एवं इच्छा पूरी हुई है।

यज्ञ के लाभ–

यज्ञ करने के पीछे धार्मिक के साथ–साथ वैज्ञानिक कारण भी है। अग्निहोत्रम में जलायी गई लौ व्यक्ति को कई रोगों से भी मुक्त कर रक्षा कवच का कार्य करती है।[16] यज्ञ से उत्पन्न हुए को खांसी, जुकाम, जल, सूजन आदि बीमारियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। मध्यकालीन युग में प्लेग जैसी घातक बीमारियों से मुक्ति पाने के लिए धूप, जड़ी–बूटी तथा सुगंधित पदार्थों का धुमीकरण किया जाता था। घरों में यज्ञ करने से एक लाभ यह है कि यज्ञ करने से ग्रह या निवास स्थान की दूषित वायु यज्ञ अग्नि से संपर्क में गरम होकर हल्की हो जाती है और वह दरवाजे खिड़कियों व रोशन दारों से बाहर चली जाती है और बाहर की शुद्ध वायु निवास के भीतरप्रवेश कर जाती है जो स्वास्थ्य के लिए हितकर व सुखदायक होती है। अग्निहोत्र में यज्ञ पदार्थों की आहुति से वह जलकर छोटे हो जाते हैं, और वायु से मिलकर वायु के दुर्गंध आदि अनेक दोषों को दूर करते हैं, जिनमें हानिकारक बैक्टीरिया और सूक्ष्मजीव भी प्रभावित होकर उनका अनिष्टकारी प्रभाव यज्ञ करता व उसके परिवार के सदस्यों पर नहीं होता।[17]

यज्ञ द्वारा प्रदूषण निवारण–

भूमि प्रदूषण निवारण हेतु अनेक उपाय वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। उन उपायों में यज्ञ महत्वपूर्ण है, जिससे पृथ्वी फरियादी से पुष्ट होकर सुख देने वाली बनती है। वैदिक ऋषि कहते हैं, कि विस्तृत द्यूलोक तथा भूमि हमारे यज्ञ का सेवन करें और वह यज्ञ से पोषण प्राप्त करें हमारा भरण पोषण करें। क्योंकि यजमान द्वारा अनुष्ठान यज्ञ, वर्षा कारक इंद्र की शक्ति को बढ़ाता है और भूमि को अनेक प्रकार के अनाज से पुष्ट करता है।[18] प्रदूषण से भूमि फलवती नहीं होती जिसे आचार्य सायण ने अनृत का परिणाम लिखा है। उन्होंने कहा है कि सत्य विरोधी अधर्माचरण से भूमि में अन्नादि नहीं फलते।

यजमान द्वारा यज्ञ आदि में दी गई आहुति से देवगण नया जीवन पाते हैं। अग्नि में घी सामग्री को हवि देने से भूमि महती होती है और वर्षा द्वारा अनाज आदि की वृद्धि के कारण औषधि से प्रभावित पृथ्वी बलवती होती है। यजुर्वेद में भी पृथ्वी को यज्ञ द्वारा समर्थ बनाने की कामना की गई है। उसमें कहा गया है कि विस्तृत भूमि और उसमें स्थित पत्थर, हीरा आदि रत्न मिट्टी में छोटे–बड़े पर्वत और उसमें होने वाले पदार्थ रेत आदि और बड़, पीपल, आम आदि वृक्ष सोना, चाँदी, लोहा, तांबा, नीलमणि, लाख, जस्ता एवं पीतल आदि यह सब यज्ञ से समर्थ होते हैं। इसमें पृथ्वी को भस्म से भरने के भी संकेत हैं जो यज्ञ से प्राप्त होती है। चूंकि यज्ञ की भस्म द्वारा उत्तम औषधियों का क्षारतत्व पृथ्वी को प्राप्त होता है।

यजुर्वेद में आया है कि भूमि को उपयोगी बनाते समय यज्ञ का प्रयोग करें। इससे पृथ्वी समर्थ और शक्तिशाली बनेगी। वर्षा भी यज्ञ द्वारा समर्थ होती है।

विश्व के वैज्ञानिकों को यज्ञ की उपादेयता पर सभी दृष्ट से अनुसंधान करना चाहिए और उसके परिणामों को जन–जन तक संप्रेषित करना चाहिए तभी इस धरा पर हरित क्रांति और श्वेत क्रांति की भांति यज्ञ क्रांति भी आ जाएगी जिससे हमारी पृथ्वीशुद्ध, पवित्र होकर सुजलां सुफलां मलयज शीतलां शस्य श्यामलां बन जाए। अंत में यज्ञ विश्व के वृद्ध जनों द्वारा प्रमाणित एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया है। अतः रोग निवारण प्रदूषित पर्यावरण की शुद्धि एवं संतुलन जैसी समस्याओं के समाधान के लिए यज्ञ का प्रचार और प्रसार होना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हृदेश कुमार शर्मा, डॉ0 आर0आर0 सिंह1, डॉ0 आर0आर0 सिंह 2, Volume-4, Issue-5, May 2019, RR Journals.
2. सुनीता मिश्रा– India water petrol 2014
3. ओम प्रभात अग्रवाल– प्राचीन भारत, अध्यात्म और विज्ञान
4. सुभाष सिंह– पर्यावरण की विशेषता
5. डॉक्टर सविता मिश्रा– पर्यावरण प्रदूषण प्रकार नियंत्रण व उपाय
6. अथर्ववेद
7. लोकेंद्र सिंह– बेबुनियाद– पर्यावरण संरक्षण का संदेश देती भारतीय परंपराएँ
8. संध्या जैन– International Journal of Research Granthaalayah
9. नमिता दुबे– पर्यावरण संरक्षण में अग्निहोत्र की उपादेयता
10. नई दुनिया– अगस्त 2017
11. अथर्ववेद
12. पर्यावरण विकास– अगस्त 2017, पृ0 11
13. डॉ0 रजनी जोशी– The Intergrated science of yagna
14. अमरनाथ त्यागी–वैदिक वाङ्मय और पर्यावरण संस्कृति
15. मनमोहन आर्य– अग्निहोत्र यज्ञ से अनेक लाभ व इसके कुछ पक्षों पर विचार
16. योगेश शर्मा– प्राचीन काल से पर्यावरण प्रदूषण का अचूक समाधान है यज्ञ
17. मनमोहन आर्य– अग्निहोत्र यज्ञ से अनेक लाभ व इसके कुछ पक्षों पर विचार
18. अमरनाथ त्यागी– यज्ञ द्वारा प्रदूषण निवारण

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

The Impact of Indian Agricultural revolutions

Dr. Sanjay Kumar

Agriculture plays a vital role in India's economy. Over 58 percent of the rural households depend on agriculture as their principal means of livelihood. Agriculture along with fisheries and forestry is one of the largest contributors to the Gross Domestic Product(GDP).

At the time of Independence, India's agriculture was in a state of backwardness. Productivity per hectare and per worker was extremely low. The techniques employed were old and traditional. Because of low productivity , agriculture merely provided 'subsistence' to the farmers and had not become 'commercialized'. Indian agriculture was backward and qualitatively traditional in nature on the eve of the First Five year plan. The chief objective of First 5- Year Plan was to restore the disequilibrium created by the Second World War and the Partition. The Partition of the country resulted in a transfer of the fertile wheat areas of the Punjab and rice areas of Bengal to Pakistan. The First 5- Year Plan gave a predominant Importance to the development of agriculture and irrigation. The targets were realized in most of the cases. The over fulfillment of the target of food production brought about a fall in the prices in the country. The targets were expected to be achieved through various measures like institutional reforms, organizational changes, structural changes and technical progress. But during Second Plan poor development of agriculture led to a good number of difficulties in the Indian economy. The most important effect was the rise in the price level. Third 5-Year Plan gave a predominant emphasis to agriculture. One of the major objective of the plan was to achieve self sufficiency in food grains and to increase agricultural production for exports.

In 1965-66 and 1966-67 the country faced serious drought conditions and food grains had to be imported to avert starvation. This called for a re-examination of the agricultural strategy to continue so far and initiation of steps to increase agricultural production and productivity. Thus, from institutional reforms, the focus of agricultural policy shifted to technology. The New Agricultural Strategy (NAS) was introduced in selected regions of the country in a bid to push up agricultural production. The focus now shifted to minor irrigation from major and minimum irrigation, provision of credit and other agricultural inputs to farmers at subsidized rates to encourage their widespread usage; guarantee of remunerative prices to farmers to ensure that the incentive to produce more remains, better agricultural marketing facilities etc.

The changed form of Indian agriculture is due to various Agricultural Revolutions occurred in India. It became a phenomenal change in food grains production in one side and the other side white revolution was the cause of maximum production in milk. After the success of 'Green Revolution' and 'White Revolution' it begins a lot of revolutions in different fields of

agriculture. All these revolutions were successful and through its success we can fulfill the need of food grains. According to a figure it will need 350million ton of food grains in 2030.

To know and under stand the saga of agricultural development except first green revolution and white revolution other revolutions like Pink Revolution, Red Revolution, Round Revolution, Blue Revolution, Gray Revolution, Silver Revolution and Rainbow Revolution will need to know. So in Agriculture.

Green Revolution-A part of a larger initiative by Norman Borlaug Green Revolution in India was founded by M.S. Swaminathan in 1966-67. The aim was to increase agricultural productivity in the developing world with use of technology and agricultural research. Green Revolutions was based as new technology, new ideas and new application of inputs like High-Yielding Varieties (HYV) seeds, fertilizers, irrigation water and pesticides among others. Since all these brought sudden reformation in agricultural practices and spread quickly to attain dramatic results thus, it is termed as revolution in green agriculture.

As a result of new agricultural strategy, food grains output increased substantially from 81.0 million tons in the Third Plan (annual average) to 202 million tons in Tenth plan (annual average). In 2018-19, it stood at 285.21 million tons.

HYV was restricted to only five crops-wheat, rice, jowar, bajra and maize. Therefore, non-food grains were excluded from the ambit of the new strategy.

White Revolution- During the 1964-65, Intensive Cattle Development Program (ICDP) was introduced in the country in which a package of improved animal husbandry was given to cattle owners for promoting the white revolution in the country. Later on to increase the speed of the white revolution, a new program named “Operation Flood” was introduced in the country by the National Dairy Development Board. India is the largest milk producing country in the world. It produced 146.31 million tons of milk in 2014-15.Uttar Pradesh, Rajasthan, Andhra Pradesh, Punjab and Haryana are the major milk producing states in India.

Yellow Revolution- The revolution launched in 1986-87 to increase the production of edible oil, especially mustard and sesame seeds to achieve self-reliance is known as the Yellow Revolution. Sam Pitroda is known as the father of the Yellow Revolution in India. Yellow Revolution targets nine oil seeds that are ground nut, mustard, soybean, safflower, sesame, sunflower, niger, linseed and castor. The oil production in India was about 12 million tons when the revolution started now it is 30.20 million tons.

Pink Revolution- The modernization of the meat and poultry processing sector and to increase onion production in India is the Pink Revolution. The authority of the Pink Revolution falls under the National Meat and Poultry Processing Board that works under the directives of the Ministry of Food Processing. Under the Pink Revolution, the focus was on onion production and the poultry and meat sector. India being a country that is rich in poultry and cattle population has a high potential to grow in this sector.

Red Revolution- Red Revolution in India refers to that revolution which was related to meat production and tomato production .Tomato is the most widely cultivated crop in India.

Tomato is very important vegetable crop regarding both income and nutrition. In its fruit contain vitamins like 'A' and 'C' and antioxidant in abundance quantity. Tomatoes are also used as fresh fruits and they are cooked in pickles, chutneys, soups, ketchup, sauce , etc.

Total meat production in India was 6.7 million tons in 2014-15 which was only 1.9 million tons in 1998-99.In last 20 years meat production increased 3.5 times.

Round Revolution-Round Revolution is the revolution adopted by the Government of India for the increase in production of Potato. This revolution is aimed to make the production doubled or tripled instead of single annual increase.

Blue Revolution-The concept of rapid increase in the production of fish and marine product through package program is called as blue revolution. It was launched in India during the seventh Five Year Plan (1985-1990) when the central government sponsored the Fish Farmers Development Agency (FFDA). It was brought improvement in aqua culture by adopting new techniques of fish breeding, fish rearing, fish marketing and fish export. The fisheries and aqua culture production contributes 1% and 5% to India's GDP and Agricultural GDP respectively

Gray Revolution- Gray Revolution is related to increase fertilizer production. It was launched in 1964 to increase fertilizers consumption. In 1950-51 fertilizers use was below one million tons which increased 126.83 million tons Nitrogen and 40.17 million tons Phosphorus per year in 2014-15.

Silver Revolution- Silver Revolution was started in 1969-78 when Indira Gandhi was the Prime Minister. It refers to a period of enormous production of eggs with the help of medical sciences. It was done to increase job opportunities in rural areas as it requires small capital and can be done with a short frame of time. In fiscal year 2019 the production of eggs across India amounted to over 100 billion.

Golden Revolution- Golden Revolution happened between 1991-2003 in India and is marked by increased productivity in the areas of horticulture, honey and fruit production. The changes that were adopted during this period included the use of new technologies to assist and increase the production of honey and horticulture products such as flowers, fruits , spices, vegetables and plantation crops.

Rainbow Revolution- Rainbow Revolution is an integral development program of agriculture, horticulture, forestry, sugarcane, fishery, poultry and animal husbandry. Interlinking of all sectors in the form of Rainbow Revolution has driven the attention of the people towards those sectors of agriculture and husbandry which were left ignored and untouched.

Various agricultural revolutions have occurred in India and have marked the beginning of a completely new era in the agricultural field. The agricultural revolutions helped Indian agriculture grow exponentially and created new opportunities. But these days agricultural cost has increased and the farmers are not getting remunerative price. Costly agricultural inputs, flood and drought situations are the main cause behind the loss. In recent years, organic farming as a cultivation process is gaining increasing popularity.

Reference:

1. S.K. Mishra & V.K. Puri: Indian economy its development experience Ramesh Chand: Demand for food grains
2. Ashok Gulati and Tim Kelly: Trade Liberalization and Indian Agriculture
3. Vaidyanathan: India's Agricultural development policy
4. C.H. Hanumantha Rao: Agriculture policy and performance.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Jahangir as a patron of justice

Dr. Ananta Kumari

At.-Mednimal Katra, Hajipur, Vaishali

Jahangir was a great lover of justice and he took a keen interest in its administration. The most noticeable and attractive feature of the royal court was the golden chains and bells hung up by the emperor Jahangir. One end of chain was fastened to the battlement of the shah burj of the fort at Agra, and the other to a stone post fixed on the bank of river. The device was adopted by the emperor so that litigants and the aggrieved persons could tie their petitions to be drawn up to the emperor and avoid the harassment of the porters and court underlings. He did not want that any of his courtiers should hinder the oppressed in their approach to him and so installed a golden chain of justice. Jahangir writes, "it was a chain of pure gold, thirty gaz in length and containing sixty bells. If the officers of the court of justice should fail in the investigation of the complaints of the oppressed and in granting the redress, the injured persons might come to this chain and shake it, and so give notice of their wrongs."[1]

This institution made great impression on the people. Khafi khan praises this innovation of Jahangir very much. He writes that Jahangir made a proclamation that anyone who was oppressed might, through the bells, bring his complaint to king's ears. 2 v.a.smith points out that in india and in asia generally appalling sentences of mutilation of limbs and flaying alive were customary. Jahangir interdicted the cutting of noses and ears, and no death sentence could be inflicted without its permission and confirmation. Again from the travel of monsieur de Thevenote, we find that "all the sentences of death passed whether by civil or criminal judges had to wait for executions until the emperor's confirmation was obtained."

But at times he would go into fits of passion and committed barbarous act. Thus he writes "on the 22nd, when i got within short of a nilgaw, suddenly a groom and two kahars appeared, and the nilgaw escaped. In a great rage, I ordered them to kill the groom on the spot and to hamstring the kahars and mount them on asses and parade them through the camp, so that no one should again have the boldness to do such a thing."[3]

Such incidents gave to the European travelers a very bad impression about the emperor. Terry for example, regards him as a man of extremes, cruel as well as wild, given to excessive drinking himself but punishing that faulting others.4 he also observed that the trials concluded speedily. The execution of sentences took place quickly and the culprits were usually executed in the market place.5 sir tomas roe supports terry in this assertion and mention the absence of any written laws at that time.6 But jahangir was very particular about dispending justice. He had especially reserved on day in the week for tat duty. De lact's evidence is worth quoting:

"Once a week on tuesday, he takes his seat on the tribunal, and hears patiently all cases that are brought before him, both civil and criminal, and pronounces judgment on each, which is final. Capital punishment is generally inflicted before his eyes and with great cruelty, whether in capital city or wherever he is holding his court. Those found guilty are punished with severity, being either beheaded, hung impaled or thrown before elephants or other wild bests, according to the nature of crime."[7]

It appears from here and elsewhere that the provincial governors could not inflict capital punishment unless specially authorized by the emperor. Thevenote writes in connection with surat: "The king reserves that power to himself, and therefore when any man deserves death, a courier is dispatched to know his pleasure, and they fail not to put his orders in execution as soon as the courier comes back."

It also appears that ordinary cases were attended to by the king in the open durbar every day and important cases requiring the evidence of witnesses were attended to by him on the day of the week fixed exclusively for the administration of justice, i.e. On tuesday. It is very significant that jahangir followed this practice even during his expeditions and pleasure trips and above all, even when he was indisposed. Even when in pain or sorrow, he observed his fixed custom. At ahmadabad he selected an open place for administering justice to the "weak hearted and wretched" people of that place.[9]

Jahangir was easily accessible to his subjects. A gardener of the royal gardens once approached him and complained against the servant of the governor who had taken away some plants under his charge. After investigating the matter, he found that the complaint was true, so he ordered that both the thumbs of the accused be chopped off.Another european traveler.Hawking, praises his methods very much. According to him the rayats' complaints were heard and prompt action was taken against oppressive officials. He would at once summon the person shaking the chain of justice and allow him to present his case in person.[11]

That jahangir's love of justice was high is shown by many cases on record. Jahangir came to know that hoshang, who was the nephew of a great noble, khan alam, had committed a murder. The guilt was proved, so he ordered his execution and declared:" God forbid that in such affairs, i should consider princes and far less that i should consider amirs."[12]

Besides, he was also very anxious about the fate of prisoners. He visited the ranthambor fort and examined the cases of all prisoners and issued orders about them. Even the great nobles could not escape him. The eunuchs of said khan chagtai troubled the poor, jahangir sent him a message to the effect that he could not tolerate oppression and that great or small had no meaning for him. He warned him that he would receive due punishment, if the blunder was again repeated.[13] jahangir set free all the prisoners confined in the prison for long periods. In 1611, jahangir issued orders to the amirs forbidding them to punish and persons ordering him to be blinded. He also instructed them not to impose muslim burdens on any one. There were some rules which were promulgated under the title of in- i — Jahangiri.14 in 1618, he further issued orders that criminals sentenced to death should not be

executed till sunset, and if up to that time no reprieve was issued, the punishment should be inflicted.[15]

These various cases show jahangir's great passion for justice, and that he can justly claim to be impartial in dispensing justice. A very interesting case is cited by Beni Prasad in his history of Jahangir. He writes, "a respected muslim pir whose family migrated from afghanistan to sindh, refused to prostrate himself before the emperor jahangir. He was thrown into prison, but the emperor soon repented his harshness, released the pir and begged his pardon. The lineal descendants of the pir still count among their followers from ten to twelve lakhs of persons."

Jahangir's judiciary had a destine of organization and officers of its own. Except in grave matters, the village was generally left undisturbed, and the village or cast panchayats were every where suffered to exercise a sort of jurisdiction. But every town generally even a very small town had a qazi and a miraddl who formed a judicial bench. The former investigated the case, while the latter pronounced the sentence. In all important cases, an appeal lay to the court of the provincial diwan, or qazi or governor, who likewise exercised original jurisdiction in all case that occurred round there seats. From the provisional courts, appeal could be preferred, doubtless only in important cases, to the imperial diwan or qazi or the emperor himself, who likewise sat to decide original cases arising around the headquarters. When the emperor sat at the jharokha, one had only to hold up petition to be heard and answered. From the jharokha, the emperor would come down to the diwan -i- khas at about eight a.m. And sit on the throne of justice till midday. The officers of justice presented the plaintiffs one by one, and reported their grievances. His majesty very quietly ascertained the facts by inquiry took the law from the ulema and pronounced judgment accordingly.

The procedure of the court was simple and summary. No sooner were the accused apprehended than they were produced before the court. It was seldom that a man had to wait for more than twenty four hours for his trail. The parties to every civil suit or criminal cases were examined by the judges. Witnesses were summoned and severity cross- examined. Hindus had to swear as a cow, muslim on the quran, and christians on the bible. It is a tribute to the on lightened character of the mughal administration that it did not recognize the ordeal as a mode of judicial trial.

Jahangir himself tries to establish as a just monarch. He pronounced his attitude in this regard that my justice would not put up with oppression from any one, and that in the scales of equity neither smallness nor greatness was regarded. He proclaimed that if any cruelty or harshness should be observed on the part of his people, he would receive punishment without favour. 16 for example muqarrab khan, the emperor's favorite was punished with the reduction of his mansab by half for an individual act of cruelty. Chin qulich khan, the tyrant of jaunpore, was likewise recalled and would have been suitably punished if he had not died on the way. Abdullah khan firoz jang, governor of gujarat, one of the valiant soldiers of the empire and a favorite of the powerful shah jahan, was recalled and

had to undergo the uttermost humiliation and to seek the good offices of his patron to secure pardon.[17] justice indeed, was the strong points of jahangir.

Foreign travelers have also mentioned Jahangir as a great long of law and justice. Europeans visited india during the reign of jahangir and some of them have left their impressions about the court of the emperor and the condition of the country. Hawkins' account is mainly confined to the description of the personal character of jahangir and his daily routine. But it must be noted that all these accounts are not entirely free from exaggerations. Sir Thomas Roe's accounts reveal that most of the subahdars were exacting and tyrannical in their dealings with their subjects. According to some sources the nobility was courteous and the courtiers as a class were corrupt and unprincipled. The highest officials were extravagantly paid and bribery was commonly practiced. The provincial governor s behaved as despots and their allegiance to the central government was half-hearted.

But by setting up the 'chain of justice', jahangir became an innovator in the domain of justice. This chain is an illustration of the eagerness of Mughal emperors to do justice to their subjects. No doubt, jahangir in spite of all his weakness had a large share and even to this day he is spoken of with respect by mohammedans on account of his love of justice.

References;

1. Jahangir emperor: Tuzuk-i-jahangiri or memories of jahangir english translation by rogers and beveridge.new dewlhi,1968 vol-i,page-7
2. Khafi khan: Munitakhab-ul-lubab (per text) bib.ind, 1964, by beni prasad in history of jahangir 3rd edn, allahabad, 1940, page-in.
3. History of jahngir, op.cit. page- iii.
4. Memories of jahangir vol.- i, page 164
5. William fester's early travelers in india. 331
6. Ibid.
7. Ibid.
8. Thevenot: Travels in the levent, eng translation, 1986 vol.-iii, page-19.
9. Early travelers in india, op.cit.,page- 326
10. Hawkins.purcha's piligrims,vol.-iii,pp.13-14
11. Tuzuk-i-jahangiri (r&b)vol.-ii,pp. 13-14
12. Tuzuk-i-jahangiri (r&b)vol.-ii,p.14
13. Tuzuk-i-jahangiri (r&b)vol.-ii,p.13
14. Tuzuk-i-jahangiri(r&b) vol.-i, page-13, blockmann.page- 331
15. Tuzuk-i-jahangiri (r&b)vol.-i,page-421

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

A Study of Agro-Industries in Bihar

Dr. Arti Jha

Assistant Professor,
Department of Commerce,
Madhepura College BNMU (Bihar) 852113

Agriculture has always been India's most important economic sector, record of taking the country out of serious shortages despite rapid population increase. The most outstanding achievement since independence is the phenomenal growth of food grains output which increased from 50.82 millions tones in 1950-51 to 230-67 million tones in 2007-08 (Government of India 2008).

Bihar is the eastern state of India, bordered by Nepal in the North, Jharkhand in the south, Uttarpradesh in the west and Meghalaya in the east. Its third largest state by population with a seraration of 918. Bihar population in 2019 is estimated to be 124 million (12.4 Crore). On 15th November 2000, Southern Bihar was ceded to form the new state of Jharkhand, Only 11.3% of the population of Bihar lives in urban area which is the lowest in India after Himachalpradesh.

Agriculture is still an important sector in Bihar since it contributes about 16 percent to state Gross Domestic product and provides employment to about 70 percent of working force in rural area. The state is characterized by small land holder in the country.

Bihar lies in the river plains of the basin of the river Ganga. It is endowed with fertile alluvial soil ground water resources. This makes the agriculture of Bihar rich and diverse.

Rice, Wheat, and maize are the major cereal crops. Arhar, Urad, Moong, Gram, Pea, Lentils and khessari are some of the pulses cultivated in Bihar. Bihar is the largest producer of vegetables, which dominated by Potato, Onion, Egg plant and cauliflower in fruit cultivation, it is the largest produces of pineapple, as well as a major produced of Mango, Banana and guava. Sugarcane and jute are two other major cash crops of Bihar.

Bihar produces 90% of the world production of for nut (Makhana) It has been adapted to the tropical climate of India and is found in natural, Wild forms in various parts of north-east India and Scattered pockets of central and northern India. Northern part of Bihar, constitution district of Madhubani, Darbhanga, Sitamarhi, Saharsa, Katihar, Purnia, Supaul, Kishanganj and Araria is agro climatically suitable for Makhana cultivation.

As per the estimates of the National Research Center for Makhana, Darbhanga (ICAR), total world's jute cultivation is concentrated in the Ganges Delta. This ferfile

geographic region is shared by both Bangladesh and India, China also has a dominating place in jufe cultivation. On a smaller scale, Thiland, Myanmar, Pakistan, Pepal and Bhutan also cultivate jute. Once a thriving industry in the 1980's, the sugar sector is now cited as an example of the state's de industrialization.

Gone are the days when Bihar used to contribute 40% of the total sugar production of the country. It has now gone down to barley 4%. Thanks to the apathy of the Nitish Kumar-led state Government, which experts believe, has done nothing in the past 15 years to revive this industry except making hollow claims for electoral gains.

There were 33 sugar mills in Bihar before Independence. The number according to the sugaracane Development Department- has reduced to 28, of which 11 are operational and rest 17 have been closed.

Irrigation is being practiced there since ancient times doing back to kautilya, who lived n Patliputra which was the capital of the mighty Mauryan emire (400 BC). Kautalia. Had laid down the principle on rainfall and irrigation in his famous book 'Kautilya Arthashastra'.

In Bihar the history of irrigation can be traced long back but one could find the systematic written documents from the early British period only. Sone canals, Saran canal, Dhaka canal, Triveni Canal and Kharagpur irrigation works are some of the earliest milestones on the path of scientific development of water resources in the state of Bihar.

The economy of Bihar is largely service oriented, but it also has a significant agricultural base. The state also has a small sector. The Gross state Domestic product (GSDP) of Bihar will increase at a CAGR Of 13-17-percent between 2015-16 and 2017-18. The per capita GSDP of Bihar increase at a CAGR of 12.91 (MA) percent between 2015-16 and 2018-19.

Bihar is one of the strongest agricultural states. The percentage of population employed in agricultural production complied in agricultural production in Bihar is round 80%, which is much higher than the nation average. It is the fourth largest producer of vegetable and the eight largest producers of fruits in India. The state has a larager base of cost effective industrial labour, making it an ideal destination for a wide range of industries. Total foreign Diect Investment (FDI) for Bihar and Jharkhand stood at us & 119 million between April 2000 and 2018, In 2018, Eight investments were field in the state worth Rs 671 corer (US & 96.01 million). Under BSHP-2, construction of ROB (Part of S4-83-Baghi-Brbigha Road) was expected to complete in January 2019. Total cost of the project was Rs. 32.74Cr. (Us & 5.08 million). During 2019, Patna and Gaya handled 30959 and 63606 aircraft movements, respectively. Patna and Gaya handled 4525765 and 237452 passengers respectively in same period. Patna airport handled 12249 MT freight traffic during same period. As on April 2018, under the AMRUT Scheme total amount of Rs. 2469.77 Crore (US & 383.21 million) was allocated to the state of Bihar.

The contribution of Agriculture in the economy of the country is important and significant. Agriculture sector makes up 14% of GDP of the country and as the state of Bihar

is concerned agriculture's Contribution is even greater at about 18%. The dependence of population on agriculture in Bihar is for greater than the rest of the country. Natural resources and favorable condition for the development of agriculture such as fertile soil, wither and conductive weather conditions are available in the state. The per unit Reproductively in agriculture, dairy, meat production, Fisheries and plantation is lower than the average productivity found during scientific research, In this back ground many important step have been taken for rapid development of agriculture in the state.

First agriculture road map was introduced in the year 2008 which was valid for the period 2008-2012. The 2nd Agriculture road map was prepared for the period 2012-2017. The implementation of first and Secord agriculture road map has resulted in significantly and substantial development in the state Government of India has given Krishi Karman 'Award' to the state of Bihar four outstanding achievements in the production of Rice for the year 2012, for what in 2013 and for maize in 2016, The working period of Third agriculture Road Map is from 2017 to 2022 and it incorporates major strategies and programs.

Current agriculture marketing system in the country is the outcome of several years of Government Intervention. The System has undergone several changes during the last 50 years owing to increased market surplus, increase in urbanization and income levels and consequent changes in the pattern of demand of marketing services.

REFERENCES:

Dos Gupta Chirshree (2010) "Unraveling Bihar's 'Growth Miracle, Economic & Political Weekly, vol Viv No 52,December 25.

Go B, (2011), 'Economic Survey 2010-11' Finance Department, Government of Bihar.

GOB, Road Map for Agriculture Development 'Government of Bihar.

GOI (2008) 'Bihar's Agriculture Development Opportunities & Challenges. A report of the special task force on Bihar, Government of India, New Delhi, April.

Sethi, A (2007), Curious Practices, fronline, 24(13). Retrieved April 28 from http:// www.google.com

Singh, R. and Bhagat K. (2004) Forms +corporate: New Form supply chain Initiatives in Indian Agriculture. Indian Management, Feb 24, 76-77.

Srivastva, U.K, and Patel, N.T. (1994). Managing food Processing Industries in India. New Delhi: Oxford & IBH Publishing Co. Pvt.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

AGRARIAN LANDSCAPE IN BHOJPUR PLAIN

Dr. Birendra Kumar
Ph.D. Geography
M.U. Bodh Gaya

During the period of aboriginal occupance the region was sparsely populated and abundant land was available villages were structured in compact form and surrounded immediately by the sacred grove of trees of the primeval forest, left standing when the forest clearing had been made, and by cultivated fields and pastures. The community areas were separated by inter tribal forests."[1] The contemporary socio-economic and geographical factors played a leading role in shaping the agrarian land-scape, clearing were made with the co-operation of the entire population of a clan community and as a general rule, the fields were divided into blocks corresponding in number to that of heads of the houses in the village. All the families had common rights over the occupied land, whether cultivated, waste or forest, Individual ownership was unknown and the cultivation was a joint enterprise of the whole community. The rotation of plots was a general rule and the rotation of crops was not known. Through the archaeological finding it is evident that rice and sugarcane were produced before 700 B.C. to the east of Varanasi. Thus it is believed that rice cultivation was a feature of the rise of the Ganga Valley."[2] But there is practically no evidence to suggest the cultivation of great millets (Javar. Sorgham, Vulgar) Until the opening of the Christian era."[3]

The present narrow strip system of land settlement is not a spontaneous creation of the aboriginal peasantry but was superimposed by Rajputs and other later enlightened occupants. The land was seldom put into continuous use by the aboriginals except the plots contiguous to the village. Along with the extensive agriculture there aboriginals often restorted to hunting and forestry which was the secondary occupation to earn livelihood. With increase in population these aboriginals brought extensive pathches of the waste or forest areas under cultivation.

"Surajbedi" (east west elongation) tanks of the The obriginal"[4] as against the 'Chandrabedi' (North-South elongation) tanks of the Rajput or other enlightened Hindus greatly influenced there agricultural pattern. The wells made of large size bricks were also an important features of the agrarian cultural landscape. These tanks and wells provided necessary irrigation facilites. The land use pattern might have conformed to that envisaged by von Thunen because a single aboriginal territory corresponds to his ideas of isolated state and the mechanical vehicular transport was not in vogue. Now we may safely assume that there was a circular ribbon like distribution of land around the residential faci which the land value and efficiency continuously decreasing away from the village site Between the dense forests and acable land was a narrow strip of pasture lands for grazing and other purpose Undoubtedly aboriginal agriculture suffered a lot due to wild beasts and raids from without which necessitated the communal ownership and responsibility.

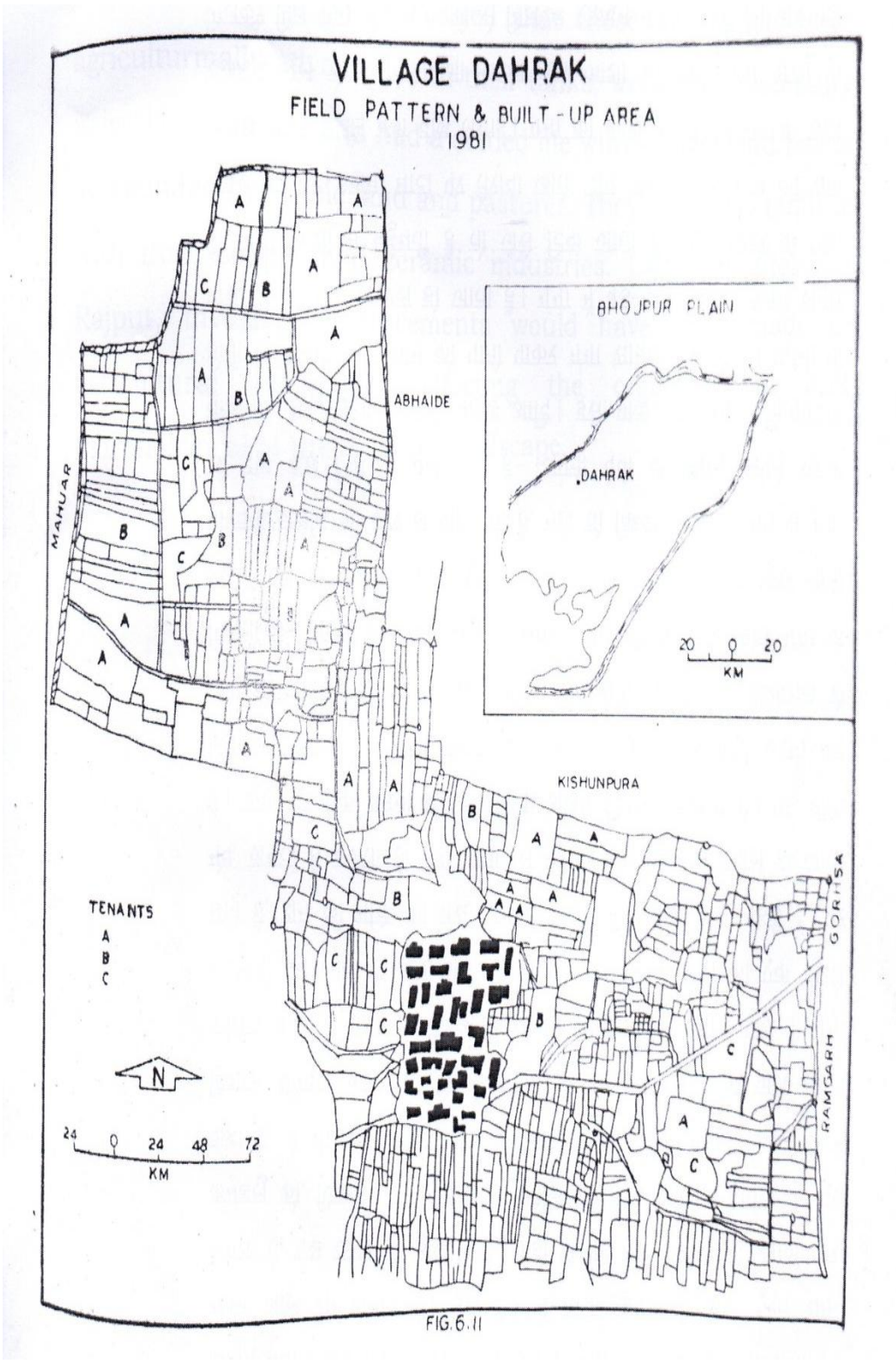
VILLAGE DAHRAK
FIELD PATTERN & BUILT-UP AREA
1981
BHOJPUR PLAIN
DAHRAK
20 0 20
KM
ABHAIDE
MAHUAR
KISHUNPURA
GORHSA
RAMGARH
TENANTS
A
B
C
N
24 0 24 48 72
KM

FIG. 6.11

Thus it may be concluded that these aboriginals were agriculturally advanced with their tanks, wells, and necessary irrigation channels and had a settled life with villages and towns surrounded by arable land and pastures. They were also familiar with iron, copper and ceramic industries. Later on after the Rajput, invasion, improvements would have been made in agricultural techniques affecting the organizational and morphological of the agrarian landscape.

References -

1. Wagner, P.L. and M.W. Mikesell, (ed), Reading in cultural Geography Chicago: Uniqe of Chicago press (1962);
2. C.O. Sauer, "The morphology of Landscape, "Univ of California publication in Geography, 2, No. 2 (1925): 19-54.
3. Verma, R.V., "Evolution of settlement in Avadh, "India, V.S.D. College, Kanpur, 21st International Geography Congress, Abstract of papers Vol. 3, Calcutta, 1971, P. 305.
4. Molley, L.S.S.O Revised Edition by J.F. W. James, Bihar- Orissa, District Gazetter, Shahabad. 1954, P.-19
5. Mukherjee, R.K. The changing face of Bengal, Calcutta, 1938, P. 31.
6. Dwivedi, Kailash Nath, Regvedic Bhoogol, P. 12
7. Sharma, G.R., History to Pre-history, P.P. 110-111
8. Baba, Satya Sai, Ram Katha Ras Vahini, P. 63
9. Sabha Parva, Adhyas-14 Sloka-2
10. Cunningham, Alexander, Op. cit., PP xxvi-xxvii.
11. Sharma, G.R. op.cit, pp. 110-1l1.
12. Upadhyay, Acharya Kamal Kant, "Bharat Ke Itihas me Shahabad.
13. Shabha Parva, Adhyay 14, Sheloka-12

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

निराला काव्य की युगीन अर्थवत्ता

डॉ स्मिता कुमारी
पीएच.डी. हिन्दी
वी.एन.मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

बीसवीं सदी के काव्य -रचनाकारों में हिन्दी कविता को सबसे अलग वनई ऊर्जा से संपृक्त करने वाले महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने जो सृजन किया , वह काव्य-जीवन और साहित्य के श्रेष्ठतम मूल्यों से अनुप्राणित है। अपने रचना संसार में कवि का व्यक्तित्व काव्य के विराट आयामों के साथ तादात्म्य का अनुभव करके प्रेरणा की समाधि में कुछ ऐसा उठ गया है कि वहां से वाणी की जो भी झंकार उठती है वह सत्य , शिव और सुन्दर की पर्यायवाची बन जाती है। सम्भवतः इसी कारण से उन्हें 'महाप्राण'सम्बोधन मिला। महा प्राण निराला की रचनाओं में अनुभूति की पूरी ऊष्मा जीवन का पूरा आवेग है। उसमें कवि की सृजन कल्पना कला की पूरी ऊँचाई से रम्य तम सौन्दर्य प्रसाधनों का चयन करके उद्भूत हुई है। फलतः निराला रचित काव्य की प्रासंगिकता वर्तमान में उन्मेषमूलक अर्थवत्ता प्रदान करने में सक्षम है।

निराला काव्य में छायावादी प्रेमगीत है , राष्ट्रप्रेम की अभिव्यंजना करने वाले गीत हैं , मातृभूमि की वंदनाएँ व उद्बोधन हैं, शोषणमुक्त समाज की संकल्पना है तथा आध्यात्मिक चेतना, रहस्य व निच्छल भक्ति से पूरित भावुकभक्ति गीत भी हैं। इनके अतिरिक्त सांस्कृतिक आलोक को बिखेरने वाली उनकी लम्बी कविताओं यथा 'राम की शक्तिपूजा ', 'तुलसीदास', 'शिवाजी का पत्र ', विशेष रूप से उल्लेख नीय हैं। इसी प्रकार जीवन , कर्म और मृत्यु सभी के प्रति उदात्त भाव अभिव्यक्त करने वाली रचना 'सरोजस्मृति'है। राष्ट्रीयता, देश की मिट्टी के प्रति प्रेम, उसकी विरासत के प्रति प्रणत भावना, उसके जन और संस्कृति के प्रति प्रेम और निष्ठा , अतीत की गरिमामय संस्कृति की गाथा, वीर पुरूषों के प्रति श्रद्धा , वर्तमान स्थिति का विश्लेषण और भविष्य के प्रति उज्ज्वल आकांक्षा आदि में प्रकट होती है। छायावादी काव्य में यह राष्ट्रीयता मुख्यतः सांस्कृतिक धरातल पर प्रतिष्ठित हुई है। कविवर पंत ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है 'छायावादी युग में हिन्दी काव्य भारतीय

पुनर्जागरण की चेतना तथा लोक जागरण के आह्वान के साथ सांस्कृतिक परम्पराओं को भी युगबोध के अनुरूप नवीन वाणी दे सका है और उसका सृजन अपना एवं महत्व रखता है'।[1]

महाकवि निराला ने युगीन आवश्यकता को दृष्टिगत रखकर राष्ट्रीयता को संस्कृति के स्वरूप में ढ़ालकर चित्रित किया। भारती वंदना , यमुना के प्रति, मातृ वन्दना, जागो फिर एक बार, दिल्ली, खण्डहर के प्रति, छत्रपति शिवाजी का पत्र, राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास आदि में राष्ट्रीयता का भव्य स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। भारतभूमि को माता मानकर स्तुति क रते हुए लिखते हैं-

भारति, जय विजय करे
कनक-शस्य-कमल धरे
लंका पद-तल-शत दल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।[2]

भारत की गरिमामय संस्कृति की उपेक्षा एवं तिरस्कार करके पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध के मोहजाल में आत्मविस्मृत हो अंधाधुंध दौड़ती भारतीय पीढ़ी को चेतावनी देते हुए उसे सर्वसंहारक बताया है-

तुमने मुख फेर लिया,
सुख की तृष्णा से अपनाया है सरल,
लेब से नव छाया में
नव स्वप्न ले जगे
भूले वे मुक्त गान, साम गान, सुधा पान।[3]

महाप्राण निराला की युगचेतना से अनुप्राणित कविता में भारत की राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को आत्मसात करने वाली मिली है। 'तुलसीदास'में इतिहास पर नयी दृष्टि डालते हुए कवि ने कुसंस्कारों के वशीभूत हो पतन के कगार पर खड़ी भारतीय संस्कृति की तुलना को तत्कालीन स्थिति से करके भारत के सांस्कृतिक वैभव के सूर्य के अस्त होने का चित्रण कर सावधान किया-

भारत के नभ का प्रभा पूर्य

शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज के – तम स्तूर्य।[4]

संसार में असत की शक्ति प्रबल है और वह सत्को आच्छादित करने के लिए सभी प्रकार के साधनों से काम लेती है। विजय का निश्चय साधन करते हैं। यह स्थिति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आतंकवादी परिदृश्य से मेल खाती है। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' के माध्यम से संदेश दिया कि यदि असत्शक्तिशाली है, तो सत्को भी शक्ति का संधान करना चाहिए-

वह एक ओर मन रहा राम का जो नथ का,
जो नहीं जानता दैन्य नहीं जानता विजय
गर गया भेद वह माया वरण प्राप्त कर जय।[5]

निराला जी ने साम्राज्यवादी शक्तियों की पशुता व अत्याचार को निकट से देखा। उनकी लूटखसोट की प्रवृत्ति व मानवता पर अत्याचार करने की वृत्ति पर तीव्र प्रहार करते हुए कहा-

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू रंगो आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतर रहा है के पट लिस्ट।[6]

'सरोजस्मृति' को निराला की आत्मपरक रचना माना गया। इस कविता की निर्वैयक्तिकता की ओर ध्यान देते हुए डॉ. रमेश मिश्र ने लिखा है कि, "सरोजस्मृति में समाज की अव्यवस्था ओर उसके फलस्वरूप जीवन की घुटन का भी ऐसा स्वरू प व्यक्त किया गया है जो मानवीय धरातल पर निराला की आवाज सरोज के प्रति न होकर जीवन चेतना का वह स्वर है जो मानवीयता के नाते लाजिमी और अनुकूल है। निराला अपने गहन अवसाद की भूमिका से उठकर विद्रोह के स्वर में सामाजिक चेतना सम्पन्न होकर मानवीय हक और मनुष्यत्व की सार्थकता की माँग करता हुआ संवेदना से विद्रोह तक पहुँच जाता है। "[7] निराला ने सामाजिक रूढ़ियों का विद्रोह कर सामाजिक चेतना को जाग्रत किया। समाज में व्याप्त दहेज प्रथा का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा-

जो कुछ है मेरा अपना धन,
पूर्वज से मिला, करूँ अर्पण

यदि महाजनों को, तो विवाह
कर सकता हूँ, पर नहीं चाह
मेरी ऐसी, दहेज देकर
मैं मूर्ख बनूँ, यह नहीं सुघर।[8]

भारत के स्वाभिमान को जाग्रत कर भारतीयों को अपने इतिहास से परिचित कराना और उसके अनुकूल आचरण का संदेश देना निराला की अन्यतम विशेषता रही है। यथा-

क्या यह वही देश है
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र,
चिर कुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य दीप्त
उड़ती है आज भी जहां के वायुमण्डल में
उज्ज्वल, अधीर और चिर जीवन।[9]

निराला काव्य में भक्ति की अजस्र धारा बही है , जो मूलतः वेदान्त दर्शन से प्रभावित है। यह दर्शन निराला के स्पर्श से और रामकृष्ण परम हंस व विवेकानंद के माध्यम से अधिकाधिक पुष्ट, परिमार्जित व परिवर्द्धित होता गया। भक्ति के इस स्रोत से उन्होंने भारतीय जनमानस को व्यावहारिक अद्वैत से परिचित कराया , वहीं विनय पूरक भक्ति से लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग भी दिया। मानवता की मुक्ति हेतु संघर्षरत राम को जब शक्ति का दिग्दर्शन होता है, तो वह सत्य की विजय का पूर्वाभास होता है। शक्ति का उज्ज्वल रूप द्रष्टव्य है-

देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वाम पद असुर स्कंध पर, रही दक्षिण हरि पर,
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र सज्जित,
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित।[10]

निराला ने साहित्य कर्म को ज्ञानयोग की साधना के रूप में स्वीकारा और कहा कि एक ही प्रकार के विचारों की नेमि में चक्कर काटता हुआ साहित्य भी निर्जीव हो जाता है। [11] निराला ने वाद की सीमा से परे रहकर युग की चेतना को आत्म सात कर आवश्यकतानुरूप साहित्य का निर्माण किया। पण्डित नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में 'महानकवि वह है जो आस्था नहीं खोता , पराजित नहीं होता और अपने को कठिन परिस्थितियों में रखकर भी मानववादी भूमि पर बना रहता है। निःसंदेह निराला ऐसे ही कवि हैं।[12]

निराला का जीव न खण्डित चित्रों की विवश प्रदर्शनी है , उनकी तुलना एक ऐसे उत्कृष्ट देशभक्त राजकुमार से की जा सकती है , जिसे राजधानी के चौराहे पर फाँसी दे दी गई हो। जीवन की विषमताएँ जिस तरह निराला के समक्ष उपस्थित हुई , परन्तु उनकी जितनी तीव्र प्रतिक्रिया इस सरल, उदार और अति संवेदनशील मानव के मानस पर हुई, ऐसे उदाहरण दुर्लभ हैं। निराला इन संघर्षों में अपराजेय योद्धा की तरह खड़े रहकर अपनी प्रतिभा व परिश्रम से रचनाधर्मिता को समृद्ध करते रहे। संघर्ष में सृजन की धारा अधिक वेगवती हो गई-

बाहर मैं कर दिया गया हूँ।
भीतर पर भर दिया गया हूँ।।

भावना द्वारा अनुभूति का सहयोग मिलता है , काव्य के लिए वहीं दार्शनिकता अभीष्ट एवं ग्राह्य है। निराला जी का भक्ति से परिपूर्ण साहित्य अनुभूति पर आधारित होने से हृदय का संगीत प्रतीत होता है। सर्व खलु इदं ब्रह्म की वेदान्तिक विराटता का स्वर निराला के काव्य में आद्यन्त भरा है। पंथ या सम्प्रदाय से परे निश्छल भक्ति का स्रोत निराला काव्य की पहचान है। निराला ने समय की गति को पहचान कर काव्य लिखा , फलतः वह कालजयी हो गया। डॉ . जुयाल के शब्दों में 'समय आयेगा जब तुलसीदास का उद्बोधन लिखने वाले कवि-शिरोमणि निराला को वहीं स्थान प्राप्त होगा जो भक्तकालीन महाकवि तुलसीदास को है।'

हिन्दी साहित्य का वर्तमान समय संक्रमणकालीन वेला से गुजर रहा है , नवनवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा स्फोट की प्रतिध्वनि में बौद्धिकता साहित्य के मस्तिष्क पर विलास कर रही है। हृदय पक्ष अमा -निशा के गर्त में दु बक कर बैठा है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य की आंकाक्षी भारतीय साहित्यिक विरासत विद्रुपताओं से ग्रस्त होती जा रही है। आस्था , अनास्था, नव्य-पुरातन, पौर्वात्य-पाश्चात्य के द्वन्द्व में फँसा साहित्य पटल स्वयं 'अर्थ-वल' ग्रसित है। भक्ति के अजस्र स्रोत विलुप्त हो रहे हैं , ऐसे समय में महाप्राण निराला की स्मृति हमें गंतव्य का बोध करायेंगी।

विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण।
हे पुरूष सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण।।
आराधना का दृढ़ आराधन से दो उत्तर।
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर।।[13]

वस्तुतः निराला जी ने अपने काव्य को जो विशिष्टता प्रदान की उसका प्रमुख कारण उनकी वह दिव्य दृष्टि थी , जिससे उन्होंने युग की अर्थवत्ता को पहचाना , फलतः कालजयी साहित्य रचा। वह साहित्य वर्तमान समय की समस्याओं को हल करने में सक्षम ही नहीं , बल्कि नई दिशा प्रदान करने वाला है , प्रतीत होता है कि निराला सांस्कृतिक नवजागरण व सांस्कृतिक पुनरूत्थान के कवि हैं , पर वे अतीत की ओर लौटने वाले कवि नहीं , बल्कि अतीत को वर्तमान में जोड़कर भविष्य की दिशा तय करने वाले कवि थे। अतः युगीन अर्थवत्ता में निराला सदैव प्रासंगिक रहेंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. सुमित्रानंदन पंत, साठ वर्ष एक रेखांकन, पृष्ठ 56
2. अपरा, पृष्ठ 11
3. अपरा, पृष्ठ 133
4. तुलसीदास, पृष्ठ 11
5. राम की शक्तिपूजा, पृष्ठ 17
6. कुकुरमुत्ता, पृष्ठ 1
7. डॉ. रमेश मिश्र, निराला काव्य में मानवीय चेतना, पृष्ठ 129
8. निराला रचनावली, पृष्ठ 303
9. अनामिका, पृष्ठ 58
10. राम की शक्तिपूजा, पृष्ठ 18
11. निराला ग्रंथावली, भाग-5, पृष्ठ 441
12. पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी, कवि निराला, कुछ प्रश्न।
13. राम की शक्तिपूजा, पृष्ठ 18

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

WOMAN EMPOWERNMENT AND DEVLOPMENT

DR. SANTOSH KUMAR SINGH

Women's empowerment is the process of empowering women. Empowerment can be defined in many ways, however, when talking about women's empowerment, empowerment means accepting and allowing people (women) who are on the outside of the decision-making process into it. Women's empowerment is the most crucial point to be noted for the overall development of a country. Many celebrities are all for girl power such as Liza Koshy and Lilly Singh (who has her own late night show and has won many awards and also raised money for #girllove and other charities) "This puts a strong emphasis on participation in political structures and formal decision-making and, in the economic sphere, on the ability to obtain an income that enables participation in economic decision-making." Empowerment is the process that creates power in individuals over their own lives, society, and in their communities. People are empowered when they are able to access the opportunities available to them without limitations and restrictions such as in education, profession and lifestyle. Feeling entitled to make your own decisions creates a sense of empowerment. Empowerment includes the action of raising the status of women through education, raising awareness, literacy, and training. Women's empowerment is all about equipping and allowing women to make life-determining decisions through the different problems in society.

Alternatively, it is the process for women to redefine gender roles that allows them to acquire the ability to choose between known alternatives whom have otherwise been restricted from such an ability. There are several principles defining women's empowerment such as, for one to be empowered, they must come from a position of disempowerment. For example: A stripper no longer has to take off her clothes to get money and now is a receptionist for a respectable company. Empowerment stems from self respect. Furthermore, one must acquire empowerment themselves rather than have it given to them by an external party. Other studies have found that empowerment definitions entail people having the capability to make important decisions in their lives while also being able to act on them. Lastly, empowerment and disempowerment is relative to other at a previous time; therefore, empowerment is a process, not a product.

Empowerment in media and in political, academic and even legal circles are often been talked about. On account of the economic weakness and insecurity particularly of the marginalized, unorganized and other disadvantaged groups, classes and categories, the concept of empowerment occupies a centre-stage. Throughout the world, more so, in the

developing world, the fairer sex had the misfortune of lagging behind in both economic conditions and in social security acutely. Hence, empowering women has become the buzz-word in all spheres of developmental literatures.

Concept ofEmpowerment

Empowerment represents a wide range of concepts, apart from describing a proliferation of outcomes; hence, it can be described as a process of enhancing the choice-making capacity of individuals or groups, total freedom to choose from among available options and thereafter, transforming the chosen options into desired actions and outcomes. Hence, it involves social transformation of common persons through a rearrangement of power. By power, a chance for humans to realize their won will in social actions, even against resistance of others within a society is meant. Obviously then, such concepts as self-esteem and self-efficacy are imbibed in them. Still the whole domain of enlightenment does not come to the fore.

The Center for Psychiatric Rehabilitation, United States came up with definition of empowerment the prime elements of which are:

1. Having decision - making power : No one achieves independence unless given the opportunity to make important decisions about one's life

2. Having access to information and resources: The process of decision-making needs to be conducted in situations, where individuals have sufficient information to weigh consequence of each choice. To create it, adequacy of information is an essential pre-requisite.

3. Choice from a range of options : All choices need to be made f.om among various options, the absence of which curtails freedom of individuals drastically.

4. The feeling that individuals can make a difference : The importance of hope in shaping an individuals future holds the key to empowerment of an individual.

5. The understanding that people have rights : The main reason of differentiated treatment meted out to different categories of people lies in the incorrect assessment of their true rights. Only when rights are understood, the sense of strength and self confidence can be increased.

6. Change in one's life and one's community : Empowerment not only inculcates a "feeling" or a "sense" but also a change, both to the individual and the community.

7. The necessity to learn skills: the process of empowerment is a human transcendence from one echelon to another. Acquiring appropriate skills is one of the many tools to achieve it.

8. Freeing oneself from the closet: Usually empowerment implies breaking free from the shackles of human restrictions so as to reveal their identity and displaying self confidence.

9. Raising one's self-image and overcoming stigma : Empowerment leads to confidence and enhanced capability, which in turn, leads to increased ability to manage one's life, resulting in a still more improved self-image.

As per Bina Agarwal, women's empowerment involves a central component of enhancement of women's ability to function collectively in their own interest. Srilatha Batliwala Points out that the process of empowerment involves recognition of the ideology that legitimizes male dominations and understanding of how it perpetrates their oppression. Again, Jo Rowlands considers empowerment as a process that involves some degree of personal, close and collectivefelationship. Finally, empowerment refers to a process by which those who have been denied the ability to make strategic life choices acquire such ability.

Thus, World Bank identified empowerment as a prime element of poverty reduction and as primary development assistance goal. Again, to achieve that goal, gender equality both as a development objective and as a tool for promoting growth needs to be brought forth.

Usually, it was found that women occupy an insignificant role in social inclusion or empowerment. Hence, the concept of women empowerment must integrate within its ambit, some unique additional figures. Women empowerment first hogged the limelight in the 1970s when the third world feminist and women's organization brought into fore, the concept, so as to facilitate the struggle for social justice and equality through transformation of economic, social and political structures. However, the term, "women empowerment" was coined in the 1990s when various agencies used it to develop strategies that enable enlarging the choices and productivity of individual women.

Though various views abound the literature on women empowerment, some common aspects are worth mentioning. Firstly, to get empowered, one needs to be disempowered and women are disempowered relative to men. Secondly, empowerment must themselves, create favorable conditions. Thirdly, definitions of empowerment involve people, making decisions on matters at collective levels. Hence, women empowerment too needs collective efforts and finally, as stated earlier, since empowerment is an ongoing process, so is women empowerment too needs collective efforts and finally, as stated earlier, since empowerment is an ongoing process, so is women empowerment. However, woman's level of empowerment varies from individual to individual on account of difference in her class or caste, ethnicity, relative wealth, age, family position, etc. Hence, any analysis of women's empowerment must appreciate these contributory dimensions. Empowerment of women as a group necessitates analysis of gender-relations to elucidate the ways by which the relations between the sexes are constructed and maintained. Again, gender relations vary both geographically and over time. Hence, empowerment involves initiating developmental interventions involving change-over of the power relations between men and women. In doing so, lots of impediments lay in the path, especially the difficulties for agencies in seeking to facilitate empowerment. Since, the power of funding agencies is greater than the activities they fund, hence, in the planning of projects and programmes, agencies need to consider the extent upto which they themselves are able to accommodate the empowerment.

By it, the access to, and control over the means to make a living on a sustainable and long-term basis, and receiving the material benefits of this access and control are meant. It implies not only, women's access to income at the immediate point of time but also its future sustainability, through changes in laws and policies.

Analysis of studies of women empowerment showed that strategic choices of life consists of three interrelated and indivisible elements - Resources, Agency and Outcomes, all of which necessitate equivalent importance before any assertion about empowerment be made. Resources are the human and social materials, access to which reflects the rules and norms which govern distribution and exchange indifferent institutional areas. Agency is the ability to define one's goal. It includes an individual's sense of agency or power within, while Outcomes imply the result of selecting from among alternatives that transcend the position of women. **Millennium Development Goals**

In the year 2000, at the Millennium Summit Governments of 189 countries a commitment was made to achieve eight goals that are labeled the Millennium Development Goals - MDGs. These pertain to the following.

Goal 1 : Eradicate Extreme Poverty and Hunger :

Goal 2 : Achieve Universal Primary Education ;

Goal 3 : Promote Gender Equality and Empower Women ;

Goal **4**: Reduce Child Mortality ;

Goal 5 : Improve Maternal Health ;

Goal **6**: Combat HIV /AIDS, Malaria, and other Disease ;

Goal 7 : Ensure Environmental Sustainability ; and

Goal 8 : Develop a Global Partnership for Development.

These MDGs provide an opportunity to fulfill the Isasic impediments of development like reduction of poverty, hunger, improve health, and eliminate illiteracy.

Among the eight goals, the third one seeks to achieve gender equality through empowerment of women. Through this goal, the role of the governments to recognize the contributions of women in economic development and the costs incurred by societies due to the multiple disadvantages that women face, in nearly every country, are focused.

A time-bound target was set for achieving the goal. The target for achieving the goal of gender equality and empowerment of women, eliminating gender disparity in levels of education, 2015 was given the ultimatum time.

Further, it was stressed that without combining gender equality, the ideal condition of empowerment remains an elusive goal. These again cannot be fulfilled without imparting education to enable women obtain decent employment or to participate fully in decision-making in the political arena.

Analysis conducted by the International Center for Research on Women for the Millennium Project Task Force on Education and Gender Equality showed that the progress of women empowerment since 1990 had not been up to the mark. A significant number of countries are on the verge of missing the target for gender parity in primary and secondary school enrolment in both 2005 and 2015. In the area of primary school enrollment, 25 out of 124 countries for which data are available predicted to be seriously falling behind. For secondary enrollment, 32 of 118 countries having data are predicted to be falling behind. In paid non-agricultural wage employment the share of female ***ii*** less than 50% in 96 out of 105 countries for which data are available. In the political arena, women held 30% or more of the seats in their respective national parliaments in as small as in 11 countries and less than 20% in most, other countries. Again, 10-50% of women are reportedly hit or physically harmed by an intimate male partner at some point in their lives in nearly 50 population-based surveys from around the world.

In order to rectify the trend, the following resurrection stances need to be effectuated:

1. Gender equality in education, health labor markets, political life, and social opportunities are to be achieved. As per a recent World Bank paper, "attempting to meet the MDGs without promoting gender equality will both increase the costs and reduce the likelihood of attaining the goals."
2. Investment in education, health, safety, and economic well-being of adolescents, especially girls, is to be given a priority. Priority actions include opportunities to provide secondary education; access to sexual and reproductive health information and facilities, education, and services apart from the provision of appropriate legal and administrative protection from violence.
3. Reducing women's and girls poverty through gender-sensitive infrastructure investments and public policies that support women's care responsibilities is considered vital for appropriate empowerment.
4. Sex-disaggregated data are vital for monitoring the progress of MDGs. At the international level, monitoring progress toward Goal 3 is necessary pait of optimal allocation of aid resources.

References :

1. Agarwal, B. (1997), Bargaining and Gender Relations within and beyond the household, Feminist, 3(1)., 1-51
2. Batliwala, S. (2001), UN expert group meeting on Gender and poverty, U.N, 14, Dec.
3. Gokhale, N. (2011), Women in 21st century., Shree publishers and distributors, New Delhi.
4. Mehara Rekha N (1994), Women empowerment and development.
5. Rowlands, J. (1997), Questioning Empowerment, Oxford.
6. Singh, R.V. (2011), women empowerment in India, Shree publishers and distributors, New Delhi.
7. Tiwary, E. (2008), Women and Society, University publication, New Delhi.
8. Tomor, P. (2006), Indian women, Shree Publishers and Distributors, New Delhi.
9. Indrapuri Colony Near R.N.College, Hajipur (Vaishali)- 844101

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

भारत में कृषि विकास के दीर्घकालिक अंग

डॉ0 अशोक कुमार सिंह
प्रवक्ता, भूगोल विभाग,
कूबा पी0जी0 कालेज
दरियापुर, नेवादा–आजमगढ़

संकल्पनात्मक पृष्ठभूमि :

दीर्घावधिक विकास की संकल्पना एक भौगोलिक संकल्पना है। जिसमें मानव और पारिस्थैतिकीय दोनों तत्वों के अन्तरक्रियात्मक सम्बन्धों को इस तरह व्यवस्थित रूप से नियंत्रित करने परी बल दिया जाता है कि मानव अपने आर्थिक विकास हेतु वर्तमान की आवश्यकता को पूरा करते हुए भावी पीढ़ियों की आवश्यकता को पूर्ण कर सके। आज विकास प्रक्रिया में कुछ ऐसे क्षेत्रों में मानवीय क्षमता के सर्वाधिक निवेश से पर्यावरण के तथ्यों का सर्वाधिक शोषण करके अल्पावधि में विकास की चरम सीमा को प्राप्त कर समूचे जैविक समुदाय की मृत्यु के कगार पर पहुँचा दिया है। जैसे विभिन्न पर्यावरणीय तथ्यों के सर्वाधिक ह्रास से पारिस्थितिकीय संतुलन भी नष्ट होने लगा है जिससे मनुष्य के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। इसी तरह कुछ ऐसे क्षेत्रों में भौगोलिक संसाधनों के अविकसित तकनीकी शोषण से भी पारिस्थितिकीय संतुलन प्रभावित होने लगा, अतः ऐसी विषम परिस्थिति से राहत पाने के लिए दीर्घावधिक विकास या शाश्वत विकास की संकल्पना का जन्म हुआ है, जो एक विश्वव्यापी नारे के रूप में विस्तृत होती जा रही है जिसमें पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखना और जैवीय सुरक्षा पर शिष रूप से बल दिया जा रहा है। सातवें दशक के अन्त में और 1992 में हुए पृथ्वी सम्मेलन से इस संकल्पना को व्यापक आधार मिला है।

दीर्घावधिक विकास के मानदण्ड :

कृषि :

''कृषि'' अध्ययन क्षेत्र का मुख्य उधम है। क्षेत्र की सम्पूर्ण जनसंख्या का 20.48 प्रतिशत या कुल कार्यशील जनसंख्या का 77.61 प्रतिशत कृषि कार्य में संलग्न है। अतः ग्रामीण विकास में कृषि की मूलभूत आवश्यकताओं को दृष्टिगत करते हुए विभिन्न प्रस्ताव किये गये हैं। कृषि दीर्घावधिक के अन्तर्गत सामान्य भूमि उपयोग प्रतिरूप का वितरण, परिवर्तन, उन्नतशील क्षेत्र एवं उर्वरकों का प्रयोग, सिंचाई, भण्डारण एवं विपणन तथा नवीन कृषि तकनीकी के प्रचार–प्रसार हेतु योजनाएँ प्रस्तुत की गयी है। सामान्यतः कृषि विकास में प्राकृतिक और सांस्कृतिक अवरोधक बाधक होते हैं। प्राकृतिक अवरोधों जैसे– मानसून की अनियमितता, मिट्टी अपरदन, धरातली अपवाह तल आदि, जो उत्पादन को प्रभावित करते हैं, को निश्चित सिंचाई की सुविधाओं मिट्टी में पोषक तत्वों एवं कृत्रिम अपवाह–तंत्र के माध्यम से दूर किया जा सकता है, सांस्कृतिक अवरोधों जैसे– भूमि अधिकार (भूमि जोत अधिकार, भूमिधरी, सीरदारी, बटाई

आदि) खेतों के आकार प्रकार से भी कृषि प्रभावित होती है। इस स्थिति में क्षेत्र के अविकसित सामाजिक संगठन प्रतिरूप पूर्णतः असफल हो जाते हैं।

सिंचाई :

आधुनिक वैज्ञानिक गहन कृषि तथा अधिकतम उत्पादन के लिए सिंचाई एक प्रमुखतम् कारक है। इसी कमी में अन्य सभी लागतों को प्रयोग करने पर भी वांछित उत्पादन नहीं हो सकता है इसलिए सिंचाई के साधनों का शाश्वत् विकास के लिए अपरिहार्य है। मात्र सिंचाई सुविधाओं के विस्तार से ही वांछित कृषि उत्पादन संभव नहीं, बल्कि उसके साथ ही तकनीकी ज्ञान भी आवश्यक है। दूसरे शब्दों में किसी शस्य के लिए कितनी मात्रा में सिंचाई और कब–कब (समय) जल की आवश्यकता है, इसका पूर्ण ज्ञान कृषकों में नहीं है, इस परिप्रेक्ष्य में कृषकों को समुचित जानकारी देने का महत्व कृषि विकास हेतु अधिक बढ़ जाता है। प्रायः सिंचाई साधनों द्वारा खेतों में अधिक मात्रा में जल प्राहित कर दिया जाता है जिससे कृषि उपज में ह्रास होता है। वर्ष 1971 में क्षेत्र में शुद्ध कृषित भूमि का (68.37%) 4689.86 हेक्टेयर सिंचित शेष असिंचित थी लेकिन 1990–91 में क्षेत्र में शुद्ध कृषित भूमि का (98.81%) 7067.00 हेक्टेयर सिंचित हो गयी थी। 1997–98 में (99.27%) 7100.00 हेक्टेयर सिंचित हो गयी शेष असिंचित है। ये सिंचित भूमि नहरों, राजकीय कूपों, व्यक्तिगत पम्पसेटों द्वारा सम्पन्न की जाती है। क्षेत्र में 2001 ई0 तक सिंचाई हेतु व्यक्तिगत कूपों की संख्या में वृद्धि की संभावनाएं अधिक हैं, परन्तु इससे निर्धन कृषकों को वांछित लाभ नहीं होगा, इसलिए राजकीय नलकूपों की और वृद्धि की आवश्यकता है जिसमें वर्षा पर आश्रित व्यक्तियों का उत्पादन सुनिश्चित हो सकेगा, जिसके परिणाम स्वरूप 2001 ई0 तक क्षेत्र में सिंचित क्षेत्रफल शस्यों के उपज में निश्चित ही वृद्धि की संभावना परिलक्षित तो है लेकिन एक शाश्वत विकास भी संभव है जब तक इसके सभी चरों का विकास न हो, यथा भूमि समतलीकरण, नियोजित पकी खेती का विकास, कृषि यंत्रीकरण, उन्नत बीज, खाद एवं उर्वरक कीटनाशक दवाओं तथा विपणन की समुचित व्यवस्था हो।

फसल प्रतिरूप संरचनात्मक व्यावसायिक प्रत्यावर्तन :

अध्ययन क्षेत्र में खरीफ, रबी और जायद फसलें क्रमशः वर्षा, शीत एवं ग्रीष्म काल में पायी जाती है। धान, अरहर, बाजरा, अरहर, गन्ना, चारे की फसल, ज्वार, अरहर, साँवा, मकई, उड़द, मूंग और मक्का आदि फसलें खरीफ के अन्तर्गत बोयी जाती है। स्पष्ट है कि 1975–76 से 1995–96 के मध्य 41. 79 प्रतिशत की वृद्धि हुई। खरीफ फसल के अन्तर्गत ज्वार फसल क्षेत्र में प्रायः सभी न्याय पंचायतों में गिरावट आयी है, सर्वाधिक प्रतिशत का गिरावट (63.05 प्रतिशत) पाण्डेपट्टी न्याय पंचायत में तथा सबसे न्यून गिरावट बजारेपुर न्याय पंचायत में– 7.80 प्रतिशत 20 वर्षों के अन्तराल में हुआ है। इसका मुख्य कारण सिंचाई में वृद्धि है। लेकिन सिंचाई में वृद्धि के कारण धान जैसी फसल प्रतिरूप का वृद्धि होना स्वाभाविक है। सर्वाधिक वृद्धि (448.34 प्रतिशत), पाण्डेपट्टी न्याय पंचायत व सबसे न्यून (+ 123.38) प्रतिशत बजारपुर न्याय पंचायत में है। इसी प्रकार ईख जैसी व्यावसायिक फसल के प्रत्यावर्तन में सभी न्याय पंचायतों में वृद्धि हुई है। इसमें सर्वाधिक वृद्धि (173.03 प्रतिशत) पाण्डेपट्टी जैसी न्याय पंचायत में हुई है तथा सबसे कम (85.84 प्रतिशत) पिलखिनी न्याय पंचायत में हुई है। इसके अतिरिक्त खरीफ फसल के अन्तर्गत दाल व मक्के का भी स्थान महत्वपूर्ण है। दाल जैसी व्यावसायिक फसल के अन्तर्गत न्याय पंचायत को छोड़कर शेष सभी न्याय पंचायतों में वृद्धि हुई है। सर्वाधिक वृद्धि 122.13 प्रतिशत, सबसे न्यून 85.00 प्रतिशत हुई है। मक्का जैसी फसल में प्रतिवर्ष गिरावट रही है, यह गिरावट 89.55 प्रतिशत करमही न्याय पंचायत तथा सबसे कम गिरावट 8.56 प्रतिशत हो गयी है।

खरीफ फसलों का प्रतिरूप अवलोकन करने से स्पष्ट दिखाई देता है कि 1976–76 में सभी न्याय पंचायतों में ज्वार, मक्का के क्षेत्रों की अधिकता रही किन्तु 1995–96 तक सिंचाई विकास के फलस्वरूप दोनों फसलों का क्षेत्रफल कम हो गया तथा धान, गन्ना आदि फसलों का क्षेत्र लगभग सर्वत्र विकसित हो गया।

रबी फसलों के अन्तर्गत गेहूँ, चना, जौ, मटर, तिलहन, आलू और मसूर बोया जाता है। वर्ष 1975–95 के मध्य रबी फसल के क्षेत्रफल में 29.12 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वर्ष 1975–95 के बीच की अवधि में गेहूँ के क्षेत्र में न्याय पंचायत पाण्डेपट्टी 64.41, करमही 35.05, पिलखिनी 36.45, देवचन्दपुर 33. 70, कुछमूट 25.32 तथा बंजारेपुर में मात्र 14.66 प्रतिशत की वृद्धि हुई। आलू के क्षेत्र में सर्वाधिक (107. 29 प्रतिशत), पिलखिनी व सबसे कम देवचन्दपुर (17.35 प्रतिशत) न्याय पंचायत में वृद्धि हुई। मटर के क्षेत्र में वाधिक देवचन्दपुर (110.15 प्रतिशत) व सबसे कम (48.22 प्रतिशत) बजारपुर न्याय पंचायत में वृद्धि हुई है। सरसों के क्षेत्र में सर्वाधिक पिलखिनी (14.95 प्रतिशत) व सबसे कम देवचन्दपुर (4.74 प्रतिशत) में वृद्धि हुई है इसके अतिरिक्त जो जैसी फसल के क्षेत्रफल में सभी न्याय पंचायतों में गिरावट आयी है। सर्वाधिक गिरावट (82.34 प्रतिशत) पिलखिनी तथा सबसे कम गिरावट (16.48 प्रतिशत) बंजारेपुर नयाय पंचायत में हुई है। चना के क्षेत्रफल में कुछमुछ (59.37 प्रतिशत) व देवचन्दपुर (20.11 प्रतिशत) न्याय पंचायत में गिरावट आयी है। शेष पिलखिनी (115.55 प्रतिशत), बजारपुर (41.01 प्रतिशत), करमही (47.05 प्रतिशत) और पाण्डेपट्टी (47.37 प्रतिशत) न्याय पंचायतों में वृद्धि हुई है।

सिंचाई के साधनों में अति तीव्र विकास होने से रबी के फसल प्रतिरूपों में प्रत्यावर्तन स्वाभाविक है। विकासखण्ड के सभी न्याय पंचायतों में जौ, गोजई जैसी फसलों का 20 वर्षे के मध्य क्षेत्रफल में गिरावट आयी है तो गेहूँ, आलू, मटर और सरसों जैसी फसलों के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है।

अध्ययन क्षेत्र में जायद की मुख्य फसलें खरबूज–तरबूज, करेल, लौकी, भिण्डी और धान (टाइचून, आई आर आठ) इत्यादि हैं। काश्तारों ने चकों के अन्दर प्रायः निजी विद्युत ट्यूबवेल एवं डीजल पम्पिंग सेट्स लगावाये हैं, परिणामस्वरूप सिंचाई की क्षमता में विकास होने में गर्मी में भी बड़े पैमाने पर धान की खेती की जा रही है। फिर भी जायद फसल क्षेत्र खरीफ व रबी की फसल की तुलना में कम है एवं उसका अध्ययन क्षेत्र में कोई विशेष महत्व नहीं है। चकों के अन्दर ट्यूबवेल व पम्पिंग सेट्स होने से फसलों (खरीफ, रबी और जायद) के क्षेत्रफल और प्रतिवर्ष बदलाव एवं कृषि गहनता में वृद्धि के साथ प्रति हेक्टेयर उत्पादन में भी वृद्धि हुई। चकों के अन्दर चक नाली का निर्माण होने से नहरों का भी पानी आसानी से एक चक से दूसरे चक तक पहुँचाया जा रहा है। इसी प्रकार चकरोड द्वारा ट्रैक्टर, खाद और बीज आसानी से पहुँचाया जाता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ग्रामीण दीर्घावधिक विकास हेतु फसल उत्पादन की होड़ में भूमि का सर्वाधिक उपयोग तो किया जा रहा है लेकिन कृषकों का ध्यान आकृष्ट किया जाना अधिक उपयोगी होगा कि खाद्यान्न फसलों के क्षेत्रफल में कमी करके व्यावसायिक फसलों के क्षेत्रफल में वृद्धि किया जाय। इस व्यावसायिक फसल प्रत्यावर्तन से ही भूमि की गुणवत्ता भी बनी रहेगी व उत्पादन मुद्रा भी प्राप्त होगी जिससे उनके सामाजिक, आर्थिक क्रियाओं में मात्रात्मक एवं गुणात्मक सुधार लाकर सामूहिक व्यक्तित्व का शाश्वत् विकास किया जा सकता है। आगामी जनसंख्या का पोषण भी संभव हो सकता है।

(4) उसर भूमि सुधार :

अध्ययन क्षेत्र के लगभग सभी न्याय पंचायतों में यत्र–तत्र उसर भूमि न्यूनाधिक मात्रा में वितरित है। इस प्रकार विकास खण्ड के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का 0.22 प्रतिशत रेह के कारण कृषि अयोग्य संदर्भ में है जिस पर कृषि असम्भव नहीं परन्तु कठिन अवश्य है। जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण खाद्य

समस्या के समाधान हेतु इस प्रकार की भूमि को कृषिगत भूमि में परिवर्तित करना आवश्यक है। उसर भूमि के सुधार हेतु अकार्बनिक एवं जैविक सुधार विधि में कैल्शियम क्लोराइड, जिप्सम आदि का प्रयोग होता है जिसमें जिप्सम का प्रयोग सर्वोत्तम एवं सफल तकनीक है। इसके प्रयोग द्वारा उसर भूमि की भौतिक दशाओं में सुधार के साथ, अभावग्रस्त पोषक तत्वों के कमी की भी पूर्ति हो जाती है। जैविक विधि द्वारा इस प्रकार की भूमि को सुधारने हेतु गोबर की खाद, हरी खाद एवं कीचड़ का प्रयोग किया जाता है, जिससे उत्पादक पोषक तत्वों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार उसर भूमि सुधार द्वारा विकासखण्ड के कृषि क्षेत्रफल में लगभग 0.22 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है शेष नयी समीपवर्ती उसर भूमि में वृक्षारोपण करके भूमि–क्षरण एवं पर्यावरण संतुलन को बनाये रखा जा सकता है।

(ब) सामाजिक एवं आर्थिक सुधार :

अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग में अनेकानेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु निम्न योजनाबद्ध कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना आवश्यक है–

(1) वर्तमान भूमि उपयोग में सम्भाष्य परिवर्तन :

वर्ष 1990–91 में अध्ययन क्षेत्र का 9.86 प्रतिशत क्षेत्रफल कृषि अप्राप्य भूमि, 13.25 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि, 76.87 प्रतिशत क्षेत्रफल कृषिगत भूमि के अन्तर्गत था। जनसंख्या के सतत् बढ़ते दबाव के फलस्वरूप उनके भरण पोषण हेतु कृषिगत भूमि में सुधार हेतु संभावनाओं को विश्लेषित करना आवश्यक हो जाता है अतः भूमि उपयोग के विभिन्न वर्गों का नियोजनात्मक स्वरूप निम्नवत् हो सकता है–

अध्ययन क्षेत्र की भौतिक समस्याओं के समाधान :

जल निकास की व्यवस्था द्वारा लगभग 218.18 हेक्टेयर (2.34 प्रतिशत) उसर भूमि सुधार द्वारा 21.25 हेक्टेयर (0.22 प्रतिशत) क्षेत्रफल भूमि में परिणत किया जा सकता है। वर्तमान तकनीकी विकास प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप अधिवासों का विस्तार, परिवहन मार्गों, नहरों आदि के निर्माण में प्रयुक्त भूमि में वृद्धि संभव है। उक्त तत्वों के भविष्य में विकास हेतु अन्य कृषि अयोग्य भूमि का (2.04 प्रतिशत) क्षेत्रफल पर्याप्त होगा। इस प्रकार भौतिक समस्याओं के समाधान द्वारा शुद्ध कृषित भूमि 76.87 प्रतिशत के स्थान पर 81.47 प्रतिशत हो जायेगी।

(2) भूमि उपयोग में परिवर्तन हेतु आवश्यक सुविधाओं का प्रावधान :

इसके अन्तर्गत प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि हेतु आवश्यक विभिन्न सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु अनेक कार्यक्रमों का सुझाव दिया गया है। भू–धारण प्रणाली, कृषि यंत्रीकरण, उत्तम बीजों एवं रासायनिक खादों का सीमित प्रयोग, अल्प सिंचाई साधन तथा विस्तृत क्षेत्र के जल–जमाव व जल प्लावन से प्रभावित होने के कारण विकास खण्ड में प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन अत्यल्प है जिसमें सुधार हेतु निम्नांकित कार्यों को कार्यान्वित करना आवश्यक है। यथा भूमि स्थायित्व में सुधार, कृषि यंत्रीकरण, सिंचाई सुविधा कार्यक्रम, जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग, उन्नतशील बीजों का प्रयोग आदि कार्यक्रम सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(3) शस्य स्वरूप में सम्भाव्य परिवर्तन :

भौगोलिक तथा सामाजिक कारकों से प्रभावित शस्यों का प्रति हेक्टेयर उत्पादन क्षेत्रीय स्तर पर भिन्न है। इस क्षेत्र विशेष हेतु प्रमुख खाद्यान्नों एवं नदी शस्यों को प्रमुखता देना अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा, क्योंकि सर्वाधिक लाभ प्राप्त करने की अवधारणा का महत्वपूर्ण तथ्य क्षेत्र विशेष में उगायी जाने वाली शस्यों के वर्तमान स्वरूप में आवश्यक परिवर्तन से सम्बन्धित है। अतः यह आवश्यक है कि क्षेत्रीय

संतुलन, जनाभिरुचि एवं वातावरण के अनुकूल शस्योत्पादन के लिए योजना तैयार की जाय जिससे भविष्य में मानव आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तथा अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहन मिले विकासखण्ड के उत्तरी एवं पूर्वी, भाग में जल जमाव की समस्या का समाधान कर धान की उन्नतशील प्रजातियों की कृषि अधिक लाभप्रद होगी।

(4) शस्य चक्र सम्बन्धी सुझाव :

अध्ययन क्षेत्र में प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पादन प्राप्त करने एवं मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनाये रखने हेतु कृषकों को वैज्ञानिक शस्य चक्र का ज्ञान अति आवश्यक है। क्षेत्र के विभिन्न भागों में पारिस्थितिकी दशाओं के अनुरूप शस्य चक्र का निर्धारण दो आधारों पर होना चाहिए, प्रथम– शस्य ऐसी होनी ाहिए जो उगने की अवधि एवं भूमि के उर्वरा तत्वों के शोषण अथवा पुर्नचक्रण की दृष्टि से परस्पर परिपूरक हो तथा द्वितीय– शस्य चक्र में कुछ ऐसी शस्यें हों जो व्यापारिक महत्व की हो जिससे कृषकों को नगद आय प्राप्त हो सके।

Reference

Farmer, B.H., Green Revolution? Macmillan, Hong Kong.

Frankel, F.R., 1971, India's Green Revolution, Princeton University Press.

Husain, M., 1979, Agricultural Geography, New Delhi, Inter India Publications.

Husain, M., 1993, Emerging Pattern of Crops and Social Tension in India, in Socio-Economic and Policy Issues for Sustainable Farming System, edt. by Paolette, M.G. and Napier, Padova, Italy.

Sen, B., 1974, The Green Revolution in India: A Perspective, New Delhi, Wiley Eastern.

Singh, Jaisbir, 1979, Commercialization of Agriculture in Pubjab: A Spatial Analysis, Geographical Review of India, 41, pp. 1-10.

Singh, Jasbir and S.S. Dhillon, 1994, Agricultural Geography, New Delhi, Tata McGraw-Hill Pub. Co.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

बिहार में पंचायती राज व्यवस्था एवं समुदायिक विकास कार्यक्रम

डा0 सुधीर कुमार

व्याख्यता, ई0द0भा0प्र0 सिंह महाविद्यालय, नोखा, रोहतास

देश के संविधान में पंचायत के गठन के लिए प्रावधान किया गया है कि संविधान के भाग 4 में राज्य के नीति–निर्देशक तत्व के अर्न्तगत अनुच्छेद 40 के अनुसार – ''राज्य ग्राम पंचायतों के संगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उनकी ऐसी शक्तियॉ और अधिकार प्रदान करेगी जो उन्हें स्वायत शासन की ईकाईयों के रूप में कार्य करने के योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।''

24 अप्रैल 1993 को 73वाँ संविधान संशोधन पंचायत राज अधिनियम पारित हो जाने से पंचायत को स्थानीय संस्थाओं का अधिकार मिल गया है, जिसमें सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं स्थानीय सुशासन को सुदृढ़ करने की बात निहित है तथा स्थानीय जनहीत में नीतियॉ बनाने की स्वतंत्र इकाई के रूप में पंचायत का गठन किया गया है, जिससे देश के सभी तबकों का विकास हो सके। महात्मा गांधी ने भी कहा है कि '' अगर हिन्दुस्तान के हर गांव में कभी पंचायत राज कायम हुआ तो मैं अपनी इस तस्वीर की सच्चाई साबित कर सकूँगा – जिसमें सबसे पहला और आखिरी दोनों बराबर होंगे यो कहिए कि न तो कोई पहला होगा ना आखिरी ।''

पंचायत राज व्यवस्था के अन्तर्गत पंचायतों को अधिकार दिया गया है तथा जनसहयोग के माध्यम् से स्थानीय स्तर पर संसाधन जुटाने और नियोजन के अधिकार भी दिये गये है। इसके बावजूद भी पंचायत राज व्यवस्था और सामुदायिक विकास की पूर्ति नहीं हो सकी क्योंकि दबंग बाहुबली, अयोग्य व्यक्ति का चयन होना, सरकारी तंत्र इन संस्थाओं पर अपना प्रमुख बनाए रखना, गांव के लोगों को पंचायत में आस्थ नहीं होना है।

इस प्रकार पंचायत एक समाजिक व्यवस्था के रूप में शुरू होकर बहुत सारे अधिनिमों के दायरे से होते हुए आज एक संस्था के रूप में हमारे सामने क्रियाशील है पर संस्था या व्यवस्था तो एक माध्यम मात्र होती है, इसकी सार्थकता तो इसके व्यवहार में होती है।

पंचायत राज व्यवस्था अपने उद्धेश्य की पूर्ति भले नही कर पा रही हो लेकिन पंचायत राज व्यवस्था के माध्यम से पंचायत सामुदायिक विकास देखने को मिलते है। इसके लिए जरूरी है कि पंचायत प्रतिनिधियों एवं समुदाय के लोगो को शिक्षा व प्रशिक्षण दिया जाए।

आजादी मिलने के साथ ही बिहार में पंचायती राज व्यवस्था का गठन 1947 में हुआ जो 1948 में पुरे प्रदेश में लागू कर दिया गया। जिसमें ग्राम पंचायतों का गठन, कार्य एवं शक्ति आदि का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम के तहत ग्राम पंचायत प्रतिनिधि का कार्यकाल 3 बर्ष, उम्मीदवार का उमर सिमा 25 वर्ष मतदाता का उमर 21 वर्ष निर्धारित की गई थी जो बाद में क्रमशः 5 वर्ष, 21 वर्ष एवं 18 वर्ष निर्धारित की गई।

बिहार पंचायती राज 1961 पंचायत समिति/जिला परिषद का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम के तहत सर्वप्रथम भागलपुर में त्रिस्तरीय पंचायत का गठन हुआ। किन्तु 1976 के बाद चुनाव न होने के कारण जिला परिषद एवं पंचायत समितियां स्वतः भंगः हो गई, केवल ग्राम पंचायत ही कार्यरत रही। इन दोनों अधिनियमों के अंतर्गत फिर से 1978 में ग्राम पंचायतो का, 1979 में पंचायत समिति का, और 1980 में जिला परिषद का चुनाव हुआ। ये सभी पंचायते पाँच वर्ष की अवधि पुरा होने के बाद भी बिना चुनाव के बने रहे।

पंचायत का वर्तमान स्वरूप 1986 में तत्कालिन प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा सिंधवी समिति की देन है, सिंधवी समिति की सिफारिश के आधार 73वें संविधान संशोधन के रूप रेखा तैयार की गई। जिसके अन्तर्गत त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्था में ग्राम स्तर पर पंचायत, प्रंखण्ड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद की व्यवस्था की गई। इसी अधिनियम में ग्रामीण न्याय व्यवस्था हेतु ग्राम कचहरी की अवधारणा को सम्मिलित किया गया है। बिहार पंचायत राज अधिनियम 2006 के अन्तर्गत कुछ विशेष प्रावधानो को जोड़कर पंचायत राज व्यवस्था को अधिक समुदाय केन्द्रित एवं सशक्त बनाने की कोशिश की गई।

जिसमें महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों को सभी के स्तर के पदों पर जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण, पिछड़ा वर्ग हेतु सभी स्तरों पर 20 प्रतिशत आरक्षण, ग्राम सभा का कोरम पूर्ति अनिवार्य ग्राम कचहरी को पुनः स्थापित करना, तीनों स्तरों के पंचायतों निर्वचन पदधारको एवं सम्बन्धित सरकारी पदाधिकारी एवं कर्मचारियों के विरूद्ध प्राप्त शिकायत की जांच हेतु लोकयुक्त की भाँति लोक प्रहरी का प्रवधान, हटाने का अधिकार प्रमण्डलीय आयुक्त से वापस लेकर सरकार में निहित, जन प्रतिनिधियों को लोक सेवकों का दर्जा, भत्ते का निर्धारण आदि का विशेष प्रावधान किया गया। बिहार पंचायत राज व्यवस्था को बिहार में सुचारू रूप से चलाने के लिए कुछ और भी कदम उठाय गये है।

इस प्रकार पंचायती राज व्यवस्था बिहार के अन्दर सामुदायिक सहभागिता के आधार पर चलने के लिए कार्यक्रम नियम कानून बने तो है, लेकिन चुनाव में धनबल, दबंगता जातिए गोलबंदी, उच–नीच के लड़ाई में सामुदायिक विकास कार्यक्रम को पीछे की तरफ धकेलता जा रहा है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम – प्रखण्ड विकास पदाधिकारी ग्रामीण विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत कार्य करते रहे यह सामुदायिक विकास कार्यक्रम विकास अधिकारियों तक सीमित रह गया तथा जनता की सहभागिता तथा सुनिश्चित नही कर पाया। इसकी कार्य प्रणाली तथा सुनिश्चित नही कर पाया। इसकी कार्य प्रणाली तथा उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए पंचायत राज व्यवस्था में सामुदायिक सहभागिता एवं एक सुनियोजत कार्यक्रम तय करने हेतु विभिन्न समितियों का गठन किया गया है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम 1952 ई0 में प्रारम्भ हुए इस कार्यक्रम का प्रारम्भ इस उद्धेश्य से किया गया कि आर्थिक नियोजन एवं सामाजिक पुर्नउत्थान की राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति देश की ग्रामीण जनता में सक्रिय रूची उत्पन्न की जा सके। सरकार के साथ मिलकर ग्रामीण जनता स्वयं सहभागी होकर ग्रामीण एवं सामुदायिक विकास को सफल बनाए। सामुदायिक विकास कार्यक्रम में मुख्य रू‍ से निम्नलिखित कार्य पूरा करना का उद्धेश्य रखा गया–

1. गॉव में सम्पर्क मार्गों का विकास
2. स्वास्थ्य कल्याण कार्यक्रम
3. प्राइमरी शिक्षा का विस्तार

4. कृषि उपज बढ़ाने के लिए ग्रामीण किसानों को प्रशिक्षित करना।
5. ग्रामीण जनता का आय बढ़ाना एवं आत्म विश्वास बढ़ाना।
6. विकास एवं कल्याण कार्यक्रम में स्वयं ग्रामीण जनता आगे आये तथा सरकारी तंत्र के सहयोग से कार्य करें।
7. स्थानीय स्तर पर शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
8. शक्तियों का विकेन्द्रीकरण केन्द्र से स्थानीय स्तर तक करना।

इस प्रकार सभी लोगों के गांव से शहर तक सम्पर्क मार्गों का विकास, सभी लोग स्वस्थ्य रहे, सबको पीने का साफ पानी, बिमारियों से बचने के लिए टिके, बच्चों, गर्भवती महिलाओं को पोषण आहार, सभी को गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा आदि ग्रामीण जनता स्वयं सहभागी होकर ग्रामीण एवं सामुदायिक विकास को सफल बनाया जा सकता है, जल, जंगल, जमीन, शुद्ध प्राण वायु हमारे जीवन के आधार है। यह कीमती खजाना हमारे जीवन को चलाता है। नदी, नाले, पोखरा, कुऍं की सुरक्षा तथा जंगलों की कटाई पर रोक, पर्यावरण सुरक्षा, सामुदायिक सहभागिता आधार पर ही संभव है। विकास की योजनाएँ एवं कार्यक्रम स्वयं ग्रामीण जनता आगे व सहभागिता के आधार पर संभव है।

सामुदायिक विकास की बात करने पर सामाजिक न्याय के अंतर्गत छुआछुत, भेदभाव, महिलाओं की उपेक्षा, दलितों, अनुसूचित जनजाति वंचित वर्ग और गरीबों को बराबरी का स्थान सामुदायिक विकास का आधारशीला है, इसे सामुदायिक बढ़कर सहभागिता के आधार पर सम्भव करें।

इस प्रकार पंचायती राज व्यवस्था एवं सामुदायिक विकास कार्यक्रम, देश की ग्रामीण जनता स्वयं सहभागी होकर आपने जन प्रतिनिधि, विकास कार्यों में सरकारी क्षेत्र के लोगों से मिलकर कार्य करें।

पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत सामुदायिक विकास कुछ सम्भव हुए लेकिन इसकी समस्याएँ भी बढ़ती जा रही है। पंचायती राज की समस्याएँ निम्नलिखित देखने को मिलता है –

1. पंचायत चुनाव दलबन्दी के आधार पर होती है, जिससे समाज में जातिवाद एवं वैमनस्यता की वृद्धि हुई है।
2. पंचायत के पास अपने आय के साधन बहुत कम है, जिससे वह प्रभावी कार्य करने में सक्षम नही है।
3. योग्य व्यक्तियों को चुनकर आना सम्भव नहीं होता, जिससे यह भ्रष्टाचार तथा भाई–भतीजावाद के अड्डे बन जाते है।
4. सरकारी तंत्र इन संस्थाओं पर अपना प्रभुत्व बनाए रखता है, जिससे इनका मूल उद्धेश्य पूरा नहीं होता।
5. गाँव के निवासियों को ही पंचायत में आस्था नही होता।
6. समुदाय व जन प्रतिनिधियों को राज व्यवस्था की जानकारी का अभाव का मिलता है।
7. विकास योजनाओं में भ्रष्टाचार का बोलवाला देखने को मिलता है। पंचायत राज व्यावस्था अपने उद्धेश्यों की पूर्ती नहीं कर पा रही है, सामुदायिक विकास में पंचायतों की भूमिका सकारात्मक नहीं हो पाती है। विकास धनराशि में एक तरफ लूट है, तो दूसरी तरफ धनराशि कम करने की रही है।
8. ग्राम सभाओं का बैठक नही होना, जन प्रतिनिधियों व कर्मियों के सहभागिता के आधार पर कागज पर करना।

आगे की राह – पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिकता प्रदान करने के साथ–साथ अनिवार्य भी किया जाए। गांव को विकास की युनिट बनाया जाए। सभी विकास योजनाएँ एवं ग्रामीण सार्वजनिक कार्य ग्राम सभा के माध्यम से चयन कर निर्णय लिया जाए। इसके लिए जरूरी है कि ग्राम सभाओं का बैठक समय–समय आहूत किया जाए। ग्राम सभाओं की बैठक में बुद्धिजीवी, बुजुर्गों एवं सुलझे हुए व्यक्ति जाए और ग्रामीण विकास में उनका कार्यों में हिस्सा हों। विकास धनराशि व विकास योजना में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने के लिए भी समुचित उपाय किया जाए।

पंचायत में स्थायी वेतन भोगी कर्मचारियों को नियुक्त किया जाए ताकि कार्यों में गतिशीलता लायी जाए और भ्रष्टाचार पर रोक लगाया जाए सकें। सरकारी तंत्र एवं जन प्रतिनिधियों को निहित स्वार्थ को दूर कर आपसी समाजस्य बनाया जाए। पंचायत राज व्यवस्था में सामुदायिक विकास तभी सम्भव हो पायेगा जब पंचायत में योग्य व्यक्ति का चयन किया जाए। जातिय गोलबन्दी बनाने वाले या दबंग, बाहुबली पर नियंत्रण किया जाए। ग्रामीण लोगों के आय में वृद्धि करने की योजना भी बनायी जाए ताकि ग्रामीण समुदाय का अस्था भी पंचायत के प्रति बढ़े। पंचायत के जन प्रतिनिधियों, पंचायत स्तर के सरकारी तंत्र के लोगों के पंचायत राज व्यवस्था का शिक्षण वे प्रशिक्षण देकर जानकर बनाया जाए ताकि ग्रामीण कार्य एवं ग्राम सभा में साकारात्मक कार्य हो सकें।

सामुदायिक, सरकारी और अन्य विकासात्मक एजेन्सी के माध्यम से प्रभावी संयोजन/सहलग्नता द्वारा सामजिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्य स्थिति में सुधार लाकर ग्रामीण लाभार्थियों के जीवन में एक समग्र परिवर्तन लाना इस समय की तात्कालिक आवश्यकता है।

सन्दर्भ में :

लोक प्रशासन – डा0 वीरकेश्वर प्रसाद सिंह

पंचायती राज विभाग – बिहार सरकार

पंचनामा पचायतनामा साप्ताहिकी

दृष्टि व दर्पण विशेषाक

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 01, January-June : 2020

Cultural Geography of Bhojpur plain in Pre-Rajput period

Dr Shailendra Kumar
M.A.Ph.D. Geography
V.K.S.U. Ara

Cultural Geography is concerned with systems of cultural practices and bun an technologies as those are developed in particular regions of the earth trough time by human populations conceived as culture groups.[1] Mankind is an active agent on the surface of the earth, operating in regional units through its differentiated systems of cultures. Man reacts to variable conditions in different environments, but he also exerts variable impacts on environments through the constructive or destructive processes by which he utilizes the earth's landscapes, Culture groups do not operate in isolation but instead develop systems of interaction and cultural transfer as they undergo development, material growth and expansion of the ability to perceive positive values in their environments during different time periods. These facts lead to the cultural geographer to some form of evolutionary and ecological systemization of the human occupance of the earth.

The core of cultural geography can be distinguished in its five implicit terms - culture, cultural area, cultural landscape, cultural history and cultural ecology.[2] Thus it involves the total study of man and society in spat 10 temporal frame. Very time a new relationship was established between man and the land a new geography was created[3]. The study of any culture requires investigation of its territorial setting Organization and identity, and the study of any single one or combination of these themes forms the subject matter of cultural geography.. Here an at tempt has been made to distinguish the identity and processes of the landscape evolution in the context of its cultural history and ecology. Though the archaeological findings, historical evidences and especially place nape analysis the sequent occupance of the study area is delimited and it is hoped that the conclusions may be tested in other sectors in order ultimately to reconstruct a more complete cultural Geography of the region.

Before the arrival of man in the Ganga Valley, the region is believed to have boon covered with forest. The people of Negrito and Protons Austratiod stocks were the earliest to occupy this region during the prehistoric period.[4] In prehistoric period, Shababad was occupied by aboriginal races of won the chief represented was the Shar, Chere and Savara.[5] Rig veda refers that there were the Aryans who thinking themselves of superior race, contemptuously called the now Aryans as 'Dasyu' or Asuras', Rigveda also refers to name

rous towns and forts built of stone in the now Aryan kingdom.[6] Moreover, the presence of Sheva temples in urban centres bears testimony to the fact that this region was earlier occupied by non-Aryans.

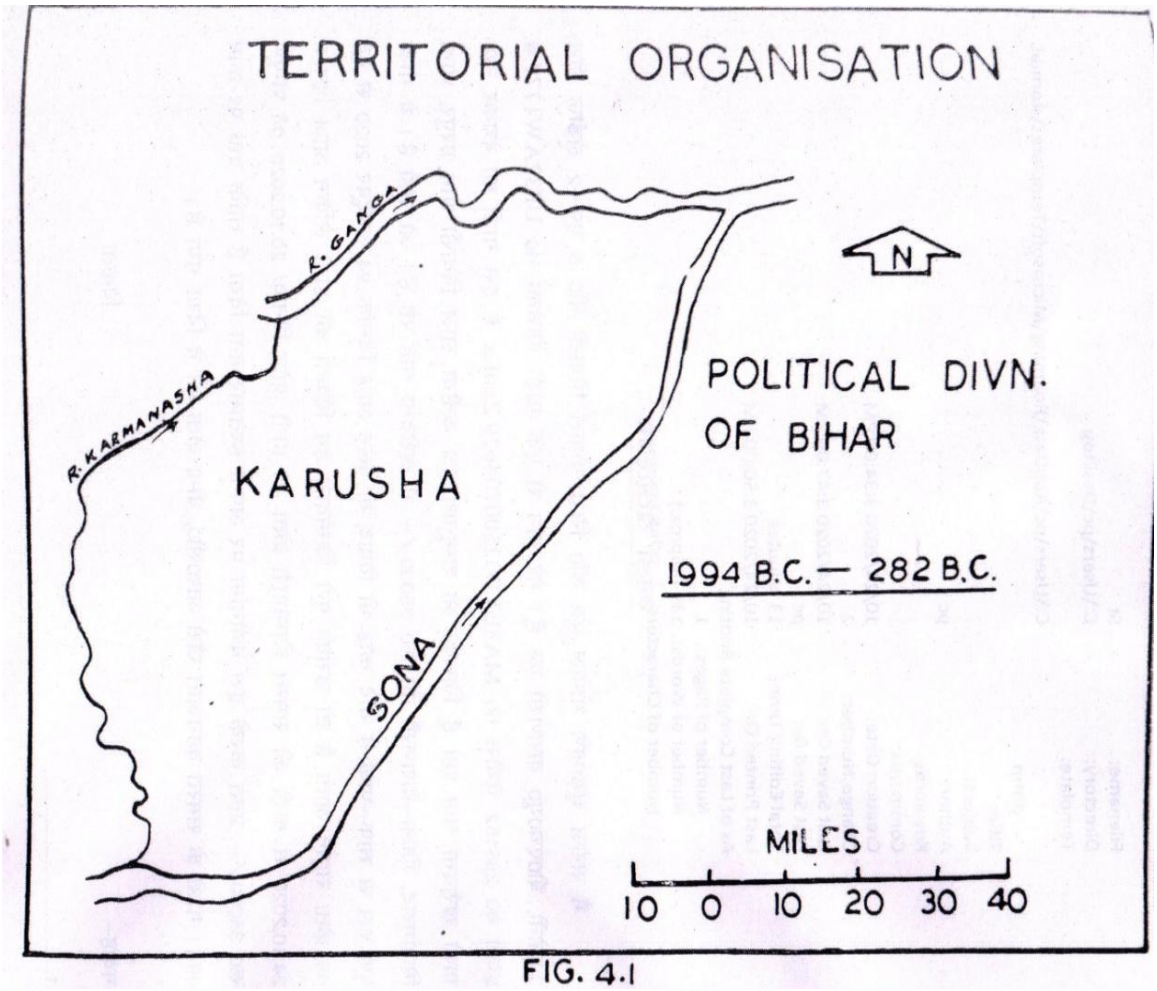

FIG. 4.1

Vedic literature and other scriptures where in the study area is described as Karusdeah, is one of the oldest region of the world having evidences of human habitat, Baxar, an important place of the region both culturally and historically, has been mentioned. Rig Veda as the holiest of holy places on the earth. The Rigvada Itself being as older 25000 B.C.[7] is sufficient to prove that this region has a definite history of human habitat and cultural succession. The Archaeological evidences through the excavations carried out in the Belen valley and the Ganga Valley have showed rice rice cultivation bas been carried out in Ganga Valley as early as 8500 years B.C.[8] The area formerly known as Karus Desh was so named after the name of Karus the ninth son of Man, the first human being erected by

Brahms to perpetuate the human race on the earth. The second reason of this name is that Indra after slaying Britrasur was accursed by the sin of Brahma Hatya due to the killing of a brahmia and in order to free Indra of this sin, the creator brought Indra to Ganges at Buxar, bad Gangas water poured at him and thus freed him from the Karus & Mulla, the anger and filth of Brahma Hatya was pleased to see Indra free from Karus and kulla of Brahma Hatya and named the region south of ganga as KAHUS and that on the north as MULL HALLAD.[9] Both the probable reasons of this region being so named are sufficient to show that the study area is one of the most ancient region of the earth conserving human civilization. The Vedas, prior being given literary forms by Maharshi 'Vadrayan, subsequently known as Vad Vyas' were in the form of 'SHHUTIS' For more than 2000 years during the period of 'Satwayug and Treta', the period of Ramayan and even before it. Thus the history of Buxar goes back to as early as 15000 year B.C. when Ram came here and slow the most dangerous domes queen Tadka. Karus has also been mentioned in Mahabharat. [10]

It is clear from the above mentioned facts that the history of KARU DASH starts with the mere dawn of the human civilization on tbe earth, because it is named after the son of Manu himself. For the purpose of proper understanding of historical and cultural succession of the region, it is essential that the sequence may be divided into two parts: (1) the Vadic and Pauranik period i.e. the prehistoric period which covers the period of the Satwayuga, the Trata and Dwapar and (11) the historic period which can be sub-divided into (a) pre-Rajput period and (b) Rajput period.

The Vedic and the Pauranik period.- After Indra was freed from the Sid of Brahma Hatya, Brahma, the creator was very much happy and be blessed both the Kans and the Malad Pradesh with prosperity and happiness till the advent of Tndke originally & Yakshini who was cared by August Rishi with demon hood. Being infuriated by the curse she and her son Marich destroyed both Karus and Malad Pradesh and the Inhabitant of both the regions left their habitation to settle in other regions. Thus, these beautiful prosperous regions tuned into jungle. Karus Pradesh being part of *A*nyavarta was culturally one with the rest of Ganga plain west of it forming todays Uttar Pradesh and was under the dominance of people of solar line (Suryabansis) who ruled the whole of *A*ryavarta for about 100 generations right from Mara to hobitashwa, the son of Raja Herishchandra (Fig. 4.1). The fort of Rohi tashwa Garb established by Rohi tasbwa is the glaring proof of the dominance of people of solar line in the region, Raja Trissnku who wished to go to Heaven in his earthly body was no other than the father of the famous King Raja Herishchandra is we know the origin of the river Karmanasa forming the western boundary of Kans is associated with the curse of the king Trisanku. The mighty Trisanku conquered the Brahmin King of Vidarbha and snatched his wife. Father of Trisanku cursed him for this henlous work with chandal hood and deprived him from the thrown. Irisanku wanted to his kulgur vashistha to purify him and to get him freed from Chandalhood, but the later refused to do so and then Trisanku turned to

Vishwamltra who was the only competitor of Vashistha those days. 'Vishwa Mitra' with the power of his Yoga, and view a view to demolishing Vashistha Munl provided 'Trisanku' with a Viman which proceeded towards Heaven. But the Gods pushed Trisanku out of the viman who began to fall on the earth with his head downward. Vishwa Mitra stopad him in between and the water which dropped out of his mouth gave rise to Karmanasa. Thus the existence of Rohltashwa garh and river Karmanasa are sufficient proof of the dominance of people of solarline to the region. The people of lunar line were also flourishing in the grand son of Rohitashwa and father of Raja sagar by Turwasu, the third son of Yagati. This Chandrabans dynasty was subsequently divided into two separate dynasties the Yadawa or Yadubansl and the Hahawhansis. The descendents or Tarwasu were subsequently known as Hahawhansis.

In Dwapar or the Mahabharat period Karus Pradesh was under the dominance of the aforesaid people of Lunar Line, In Mahabharata Dentbakra has been described as Karusadhipati (the king of Karus). It may be motioned here that Anirudha, the grand son of Krishna was married to Usha, the daughter of Banasur whose capital was at Masarh a place 8 Kms. west of Arrah, In this marriage Dyut was being played between Bal Ram, the elder brother of Krishna and Danta Bakra. This play gave rise to a fued between Bal Ram and Danta Bakra in which Danta Bakra was killed by Bal Ram and Karus came under the dominance of Chandra bansis. Again we see that during the period of exile of Pandwas, they were moving incognita and thin killad Bankasur to save the life of the only son of a widow Brahnini. Bankasur was living at Bakari a place 8 km south of Arrah. At bakari even today the garb of Bankasur can be seen in the shape of mound, People of village has raised a Pucca Platform under a Pipal tree and they still worship Bankasur calling them as Banka Baba.. The old stone statues collected at one place by the villagers are sufficient proof for Bakari being an ancient site with royal habitat. In the old revenue me records village bakari had been mentioned on Banka.

Reference :

1. Spencer, J.R. and W. S. Thomas, Introducing Cultural Geography John Wiley & Sons, New York, 1973, P. 20
2. Wagner, P.L. and Mike sell, M.W. (Editors), Headings in Cultural Geography, The University of Chicago Press, 1962, P.L
3. Sauer, C.o., "The Morphology of wandscape", University of California publications in Geography, 2, No.2, 1925, pp.19-84.
4. Verme, A.V., "Evolution or settlements in Avadh" India, V.S.S.D. college, Kanpur, 21st International Geography Congress. Abstract of papers. vol.3. Calcutta 1971. P.305.

5. Halley, B.S.S.O. Revised edition by J.P.W. James, Bihar Oriasa. District Gazetteer Shahabad, 1954, P.19
6. Mukherjee, K.K., The changing face of Bengal, Calcutta, 1938, P.31
7. Ivivedi Kailash Nath, Rgvedik Bhoogol, p.12.
8. Sharma, G.R., History to Pre-history, pp.110-111.
9. Baba, Satya *S*al, Ram katha Ras Vahini, p. 63.
10. Shabha Parwa, Adhyay 14, Sheloka- 12
11. Upadhyay, Acharya, Kamal , " Bharat Ke Itihas de Sbabobad",(Unpublished)
12. Shabba Parwa, Adbyay 14, Sheloka.12.